इकाई 1 समकालीन वैश्विक एवं भारतीय पर्यावरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 पर्यावरण की विशेषतायें
1.3 समकालीन व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषतायें
  1.3.1 परिवर्तनकाल में व्यवसाय
  1.3.2 प्रतिस्पर्धा का दबाव
  1.3.3 अपार अवसर
  1.3.4 वैश्वीकरण
  1.3.5 तकनीक
  1.3.6 सूचना
1.4 वैश्विक पर्यावरण
  1.4.1 वैश्विक व्यापार प्रदर्शन/निष्पादन
    1.4.1.1 वैश्विक संकट एवं विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में मंदी
    1.4.1.2 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव
  1.4.2 वैश्विक मंदी एवं नीति प्रतिक्रिया :-
  1.4.3 वैश्विक व्यापार व्यवस्था में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों (MNCs) का प्रभुत्व
1.5 भारतीय व्यावसायिक पर्यावरण
  1.5.1 भारतीय अर्थव्यवस्था
  1.5.2 व्यापक आर्थिक प्रदर्शन
  1.5.3 आर्थिक विकास में उच्चावचन
  1.5.4 अनियमित औद्योगिक विकास
  1.5.5 तत्कालीन वर्षों में बचत एवं विनियोग का विकास
  1.5.6 मूल्य एवं स्फीति
  1.5.7 राजकोषीय असन्तुलन
  1.5.8 पूंजी बाजार में प्रगति :-
  1.5.9 बाह्य क्षेत्र :-
  1.5.10 आर्थिक गिरावट 2008-09
1.6 भारत में वैश्वीकरण
  1.6.1 वैश्वीकरण की ओर प्रेरणा/प्रोत्साहन
  1.6.2 वैश्वीकरण के प्रति उपाय
    1.6.2.1 विदेशी विनिमय दर समायोजन एवं रूपये की परिवर्तनीयता
    1.6.2.2 आयात उदारीकरण
    1.6.2.3 विदेशी पूंजी को आमंत्रण
  1.6.3 वैश्वीकरण के प्रभाव
    1.6.3.1 बाह्य क्षेत्रों का प्रभाव
    1.6.3.2 भारतीय उद्यमों पर प्रभाव
1.7 सारांश

1.8 शब्दावली
1.9 बोध प्रश्न
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.11 स्वपरख प्रश्न
1.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- व्यावसायिक पर्यावरण की प्रकृति एवं क्षेत्र का वर्णन कर सकें।
- समकालीन व्यवसाय की विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- वैश्विक पर्यावरण में प्रभावी शक्तियों की व्याख्या कर सकें।
- भारतीय व्यावसायिक पर्यावरण की व्याख्या कर सकें।
- भारत पर वैश्वीकरण के प्रभाव का वर्णन कर सकें।

1.1 प्रस्तावना

पर्यावरण का शाब्दिक आशय उस परिवेश, वाह्य तत्वों से है जिनसे कुछ या कोई घिरा हुआ है अथवा प्रभावित होता है। किसी संस्थान का पर्यावरण परिवेश, घटनाओं एवं प्रभावी तत्वों का प्रभावी संकलित स्वरूप है। पर्यावरण में वह समस्त वाह्य तत्व साम्मिलित हैं जो व्यवसाय की कार्यप्रणाली को प्रभावित करते हैं। यह तत्व अनेकों है जिनमें प्रमुखतः सामाजिक–आर्थिक, तकनीकी, पूर्तिकर्ता, प्रतिस्पर्धी एवं सरकार होते हैं। व्यापार में इस पर्यावरण में उपलब्ध लाभ के अवसरों को तलाशा जाता है। अल्प पूर्ति, अधिक मांग, अप्रत्यक्ष आवश्यकतायें, निवेश एवं उत्पादन के नवीन, बेहतर आर्थिक संसाधन आदि के रूप में व्यवसाय के सम्मुख अवसर उपस्थित हो सकते हैं। कोई पर्यावरणीय परिवर्तन एक व्यवसाय के लिये अवसर तथा दूसरे के लिये चुनौती हो सकता है। कई बार पर्यावरण में विशिष्ट परिवर्तन एक ही उद्योग की एक इकाई के लिये सकारात्मक तो दूसरी इकाई के लिये नकरात्मक हो सकता है।

1.2 पर्यावरण की विशेषताये

1. <u>पर्यावरण जटिल है :–</u>

   पर्यावरण में अनेकों तत्व, घटनायें, परिस्थितियां एवं विभिन्न स्रोतों के प्रभाव सम्मिलित होते हैं। यह सभी सामान्य या विशिष्ट रूपों से किसी उद्योग को प्रभावित कर सकते हैं। यह तत्व ग्राहकों, पूर्तिकर्ता, प्रतियोगी, विनियोजकों से सम्बद्ध हो सकते हैं, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैधानिक या तकनीकी भी हो सकते हैं। इनकी पारस्परिक निर्भरता इन्हें जटिल बना देती है।

2. <u>विशिष्ट :–</u>

   पर्यावरण अपने निरन्तर विशिष्ट परिवर्तनशील स्वाभाव के कारण संचालनीय व्यवस्थाओं एवं आर्थिकताओं को निरन्तर प्रभावित करता है।

3. <u>पर्यावरण बहुमुखी है :–</u>

पर्यावरण का एक तत्व विभिन्न पृथक उद्योगों, व्यवसाय पर पृथक प्रभाव दिखा सकता है। उदाहरणार्थ GATS कुछ कम्पनियों के लिए अवसर तो कुछ के लिए चुनौती प्रस्तुत करता है।

4. दूरगामी परिणाम/प्रभाव :—

किसी भी संगठन पर वह सभी तत्व प्रभाव डालते हैं जिनसे वह घिरा हुआ है, यह पर्यावरणीय तत्व संगठन पर दूरगामी प्रभाव डालते हैं।

5. किसी के लिए अवसर तो किसी के लिए चुनौती :—

पर्यावरण का एक ही तत्व अलग अलग प्रभाव रखता है वह किसी संगठन या व्यवसाय के लिए अवसर तो किसी के लिए चुनौती हो सकता है। उदाहरणार्थ 1991 में उदारीकरण की नीति को अवसर मानते हुए HLL ने Lakme, TOMACO, KISSAN आदि को अधिग्रहित किया जबकि नवीन प्रवेशित बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सम्मुख इससे कठोर चुनौतियां उपस्थित हुईं।

6. पर्यावरण परिवर्तन प्रतियोगी परिदृश्य में परिवर्तन कर सकता है :—

भारत में संचार क्षेत्र में विनियमितीकरण के प्रभाव से विभिन्न प्रतियोगी संस्थान परस्पर सहयोगी बन गये। अतः पर्यावरणीय परिवर्तन प्रतियोगिता के स्वरूप एवं क्षेत्र में परिवर्तन कर सकता है।

1.3 समकालीन व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषतायें

भारतीय संदर्भ में इन विशेषताओं को परिवर्तन, प्रतिस्पर्धा, अवसर, वैश्वीकरण, तकनीक एवं सूचना/संचार के रूप में विभाजित किया जाता है।

1.3.1 परिवर्तनकाल में व्यवसाय :—

भारतीय व्यवसाय एक लम्बे समय तक आश्रित एवं संरक्षित व्यवस्थाओं में कम उत्पादकता एवं उच्च लागत के साथ अपनी कमियों को ढकते हुए चलता रहा। सन् 1990 में सभी सुरक्षात्मक प्रतिबन्ध हटा लिये गये और वैश्वीकरण की वृद्धि ने पूरा परिदृश्य बदल दिया जिससे भारतीय बाजार में विदेशी व्यवसाय से प्रतिस्पर्धा का एक नवीन पर्यावरण उदय हुआ। व्यवसाय एवं उद्यमों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपनी परम्परागत विधियों एवं व्यवहारों को नवीन व्यवसायिक पर्यावरण से संतुलित करें और परिवर्तन की इस मांग को स्वीकार करें।

1.3.2 प्रतिस्पर्धा का दबाव :—

भारतीय परिदृश्य में पहले एकाधिकारी प्रवृत्तियां थी जिसके परिणामस्वरूप कम गुणवत्ता, उच्चतम मूल्य एवं वस्तुओं सेवाओं की कमी थी। उदाहरण के लिए फोन कनेक्शन, कुकिंग गैस कनेक्शन, नया दोपहिया वाहन आदि की लम्बी सूची है, जिसके लिए ग्राहक को वर्षों या लम्बे समय तक प्रतीक्षारत रहना होता था परन्तु उदारीकरण ने भारतीय व्यवसाय के समक्ष विदेशी प्रतिस्पर्धा उत्पन्न की, उपभोक्ताओं की संतुष्टि के नये मानक स्थापित किये तथा ग्राहक हित के नये आयाम स्थापित किये। इसके अतिरिक्त स्वामित्व के निजी हाथों में हस्तान्तरण की प्रक्रिया ने नवीन प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न सरकारी संचालन प्रक्रिया जैसे राजस्व संग्रहण, शिक्षा, सार्वजनिक वितरण आदि में भी आउट—सोर्सिंग की गयी।

विविधताओं के इस क्रम में विभिन्न संसाधनों एवं व्यवसाय को निजी हाथों में हस्तान्तरण ने लाभदायकता एवं प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की। सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी समता को अन्तर्राष्ट्रीय विनियोजकों एवं सामान्यजन को विक्रय के लिए प्रस्तावित किया गया। सार्वजनिक उपक्रम से आशय ऐसे उपक्रमों से है जिनमें शत प्रतिशत अथवा 51% से अधिक अंशधारिता सरकार की हो जैसे BHEL, ONGC आदि।

1.3.3 अपार अवसर :–

जहां एक ओर भारतीय व्यवसायों के समक्ष कड़ी प्रतियोगिता आयी, वहीं विकास के भी अनेकों अवसर उपलब्ध हुए। BPO, Call Centre, IT, ITE, Wealth Management, Risk Management एवं प्राइवेट बैंकिंग व्यवसाय के क्षेत्र में नवीन शब्दावली के रूप में उदय हुए परन्तु परम्परागत उद्योगों के समक्ष वास्तविक अवसर उपलब्ध हुए। भारत में विभिन्न क्षेत्रों में वैश्विक प्रतिस्पर्धी उत्पादन हो सका जैसे दवा, रसायन, वस्त्र, धातु, शोधन, सीमेंट, मोटर गाड़ी एवं सहायक उद्योग आदि। निर्यात क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश से भारतीय कम्पनियों की परिस्थिति में सुधार हुआ। सुजुकी, हुण्डई इसके उदाहरण हैं और भारत, चीन के बाद दूसरा वैश्विक उत्पादक बन गया।

Commodity व्यापार एक अन्य ऐसा क्षेत्र था जहां पर भारतीय कम्पनी एवं उद्यमियों की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हुई। ईस्पात में L.N. Mittal, पोलिस्टर में अम्बानी, फाइबर में बिरला आदि कुछ प्रमुख नाम हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। इनकी इस सुदृढ़ एवं अधिकृत स्थिति के लिए उत्पादन की कम लागत, प्रतिस्पर्धी एवं वैश्विक परिदृश्य के प्रति उद्यमिता विश्वास, सहयोग एवं ऐसे उत्पादक देशों का प्रवेश जहां कम उत्पादन लागत के कारण प्रतियोगिता सरल हुई इसके यह तीन प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं। गुणवत्ता नियन्त्रण एवं जांच ने उपभोक्ता की कीमत को बढ़ाया। गुणवत्ता के क्षेत्र में भारतीय मानक संस्थान (ISI) एव अन्तर्राष्ट्रीय मानक संगठन (ISO) ने प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया है।

Table 1.1 Commodity Czars

Company	Product	Annual Capacity	Rank
Mittal Steel	Steel	70 million tones	1
Birla Viscose	Viscose	251,850 tonnes	1
Basell (Chatterjee/Access)	Polypropylene	8 million tones	1
Reliance Industries	Polyester	1.8 million tones	1
Hero Cycles	Cycles	5.2 million units	1
Essel Propack	Laminated Packaging	4 billion units	1
Bharat Forge	Forgings	102,900 tonnes	2
Moser Bear	Optical Media Storage	2.5 billion units	3
Hero Honda	Two-Wheelers	2.6 million units	1
Jubiliant Organosys	Pyridine	22,500 tonnes	2
Orchied Chemicals	Cephalosporin	1,100 tonnes	5

Source : *Business Today, June 5, 2005*

1.3.4 वैश्वीकरण :

व्यवसाय एवं आर्थिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के पुरोधा Theodore Levitt ने सर्वप्रथम अपने लेख जिसका शीर्षक "The Globalization of Markets" था सन् 1983 में वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग किया। वैश्विकता एवं वैश्वीकरण की अवधारणा में विभिन्न हितधारकों को सम्मिलित कर मुद्रा में व्यवहार करने के सुअवसर प्राप्त होते हैं जो कि विश्व अर्थव्यवस्था की प्रभावी शक्तियों को सन्तुलित करने की क्रियाओं के आधार पर होगा। 1980 के पश्चात् विश्व अर्थव्यवस्था में क्रमिक परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। विभिन्न व्यवसायों एवं वैश्विक वित्त प्रभाव जिसमें विदेशी सीधा निवेश (FDI) सम्मिलित है इसकी प्रमुख विशेषतायें थी। पहले की तुलना में वैश्वीकरण का वर्तमान दौर बहुपक्षीय वैश्विक व्यापार एवं वित्तीय संवाओं की दृष्टि से अधिक विकसित एवं एकीकृत है।

आधारीकरण मे आधुनिकता के कारण एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वायु सेवाओं के अधिक प्रयोग से परिवहन लागतें कम हुई हैं। FDI के क्रमिक विकास, TNC के तीव्र विस्तार आदि ने भी अपना प्रभाव डाला। TNC ने आर्थिक वैश्वीकरण में विस्तार की दृष्टि से प्रतिनिधि रूप में कार्य किया है। विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन एवं सेवाओं का संगठन वैश्वीकृत हुआ है। व्यापार की नयी विधियां जैसे Out sourcing एवं Production Network आदि भी बाजार में प्रचलित हुए और समय के साथ विकसित परिपक्व एवं लोकप्रिय हो गये। सूचना एवं प्रौद्योगिकी तकनीक का आधुनिक होना, वैश्वीकरण और आर्थिक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन का एक नवीन एवं आवश्यक घटक सिद्ध हुआ। इन्टरनेट के प्रयोग ने परिवहन एवं संचार लागतों को बहुत कम कर दिया। सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाना अत्यन्त सुगम एवं सस्ता हो गया। सूचना एवं प्रौद्योगिकी की आधुनिकता ने वैश्वीकरण की गति एवं स्तर सकारात्मक रूप से प्रभावित किया तथा वस्तु उत्पादन एवं सेवाओं के सम्बन्ध में परिपक्व औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं ने विस्तारित स्तर या Out Sourcing को अपनाया।

मूल्य श्रृंखला और पूर्ति श्रृंखला में नाटकीय परिवर्तनों ने प्रबन्ध के लिये न केवल निर्माण प्रक्रिया को परिवर्तित किया वरन् उत्पादन लागतों को भी कम किया। उत्पादन प्रक्रिया में वैश्विक वितरित पूर्तिकर्ता एवं Just in Time (JIT) आदि तकनीकों ने कुशल उत्पादन में वृद्धि की। समकालीन वैश्वीकरण की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता सीमा पार सहयोग से संयुक्त उपक्रमों का विभिन्न रूपों में जैसे वस्तु उत्पादन अथवा सेवाओं में तकनीकी एवं वित्तीय सहयोग प्राप्त करना है। इस प्रकार के सहयोग उपक्रमों में 1980 के प्रारम्भ से क्रमिक वृद्धि हुई है।

समकालीन वैश्वीकरण के माध्यम से वस्तुओं एवं सेवाओं का व्यापारिक स्तर पर अत्यधिक विस्तार चिन्हित किया गया है। बहुमुखी व्यापार में व्यापारिक सेवाओं का विस्तार एक प्रमुख अवयव सिद्ध हुआ है। यदि विस्तारित रूप से परिभाषित किया जाये तो वैश्वीकरण में बहु–महाद्विपीय दूरियां कम हुई हैं और सामाजिक सांस्कृतिक एवं सूचनाओं के स्तर पर निकटता बढ़ी है। इसके माध्यम से विभिन्न देशों एवं अर्थव्यवस्थाओं में सम्बन्ध विविधता उत्पन्न हुई है और वैश्विक भावना का विकास हुआ है।

आधुनिक व्यापारिक गृहों में अन्तर्राष्ट्रीय होने का प्रचलन हुआ है। राजनीतिक सीमायें अब व्यापार के लिए बंधन नहीं रही हैं। उत्पादन सुविधायें सभी

देशों में उपलब्ध हैं तथा विक्रय वैश्विक तन्त्र के माध्यम से किया जाने लगा है। व्यापारिक गृहों की यह वैश्विक प्रतिस्पर्धा ग्राहकों के हित की बात है। वैश्वीकरण की प्रमुख बातों में– तकनीकी उन्नयन, व्यापारिक प्रतिबंधों का अतिक्रमण, FDI, सूचना विस्फोट, बाजार प्रतिस्पर्धा से सामन्जस्य, परिवर्तित जीवन शैली एवं नवीन उत्पादों की मांग प्रमुख है। सबसे महत्वपूर्ण जो अर्थव्यवस्थाओं से सम्बद्ध है – उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का वैश्विक वितरण एवं निर्यात शुल्क, आयात कोटा आदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रतिबन्धों को कम किया जाना।

1.3.5 तकनीक :–

व्यापार को नवीन एवं उन्नत तकनीक के रूप में विश्लेषित किया गया, व्यापार पर तकनीक का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है। उत्पादन विधि, संगठन की कार्यशक्ति, विपणन विधि, सेविवर्गीय प्रबन्ध, अभिप्रेरणा विधि, वित्तीय कार्यप्रणालियां आदि सभी क्रियायें तकनीक द्वारा प्रभावित होती हैं। तकनीक के माध्यम से वैश्वीकरण एवं विस्तार तीव्र गति से संभव होता है। वृहद् एवं संसाधन युक्त औद्योगिक इकाईयां किसी भी अर्थव्यवस्था का तकनीकी रूप से नेतृत्व करती है और इस प्रकार के संयुक्त उपक्रमों के निर्माण के लिए पहल भी करती है। वर्तमान में लघु एवं मध्यम आकार के संस्थानों ने भी इस प्रकार के अन्तर्संस्थान संयुक्त उपक्रमों में अपनी बढ़ती भागीदारी को सुनिश्चित किया है। इस प्रकार के संयुक्त उपक्रम के सामान्य क्षेत्रों में अन्तरिक्ष, इलेक्ट्रोनिक्स, संचार, कम्प्यूटर्स एवं ऑटोमोबाइल आदि हैं।

ऐसे औद्योगिक क्षेत्र जिनमें शोध एवं अनुसंधान की गहनता होती है सीमापार संयुक्त उपक्रम सहयोग के उपयुक्त होते हैं। यह क्षेत्र अपेक्षाकृत रूप से अधिक लाभदायक एवं वैश्विक प्रकृति के होते हैं। सूचना संचार तकनीक जैसे विद्युत एवं प्रवाह में सामान्य उपयोग तकनीक का प्रयोग है जबकि सकल घटक उत्पादन क्षमता को व्यापकता से प्रभावित करते हैं। सकल घटक उत्पादकता उन्नयन, श्रम एवं तकनीक के परिमाण में सुधार का मूल्यांकन होता है।

सूचना अर्थव्यवस्था के जन्म के लिए भी सूचना, संचार तकनीक की आधुनिकता एवं नवीन सूचना उत्पाद ही उत्तरदायी होते हैं। जहां उन्नत विचार एवं तकनीक के माध्यम से वस्तु निर्माण/उत्पादन एवं सेवाओं में निरन्तर परिवर्तन एवं सुधार होता है उसे ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था कहा जाता है। आधुनिक तकनीक के माध्यम से ही व्यक्ति एवं निगमीय व्यवसायों की गतिविधियों एवं घटकों को पूर्व (भूतकाल) की तुलना में वर्तमान में अधिक तीव्रता से निष्पादित किया जाना सम्भव हुआ है। सूचना, संचार का एक महत्वपूर्ण योगदान व्यवसाय में श्रम शक्ति का एकीकरण है। तकनीकी नवोन्मेष के माध्यम से श्रम शक्ति को सेवा अवसर उपलब्ध कराने के लिए विशिष्ट बाजार उपलब्ध कराया गया है जिसकी पहुंच दूरस्थ स्थानों तक है। कोई भी उत्पादन या सेवा जो Digitized है को लगभग शून्य लागत पर कहीं पहुंचाना संभव है।

1.3.6 सूचना :–

समकालीन व्यवसाय की एक अन्य विशेषता सूचना की आवश्यकता एवं उनकी मान्यता है। सूचनाओं का आदान प्रदान समंक विश्लेषण सहित, सूचना तकनीक विश्लेषण, प्रभावी अभिलेखों एवं प्रतिवेदनों का निर्माण आदि के रूप में सूचनाओं का एक विस्तृत एवं प्रभावी क्षेत्र है। वर्तमान व्यवसाय की जटिलताओं एवं

सरकारी आवश्यकताओं के चलते सूचनाओं के माध्यम से विकास सम्भव हुआ है। परन्तु इस क्षेत्र के विस्तृत विकास का प्रमुख कारण गणना एवं संचार हेतु इलेक्ट्रोनिक साधनों की उपलब्धता है जिनके माध्यम से त्वरित, स्पष्ट, सत्य सूचना प्रक्रिया एवं उनका वितरण संभव होता है। अब दीर्घ एवं कठिन श्रम वाली कागजी कार्यवाही आवश्यक नहीं है। सूचना तन्त्र के माध्यम से उचित व्यक्ति तक उचित सूचना त्वरित आधार पर पहुंचाना संभव है। सूचना तकनीक में स्वयं सदैव क्रान्तिकारी एवं त्वरित परिवर्तन संभावित रहते हैं। किसी भी वैश्वीकृत व्यवसाय में प्रक्रियाओं का आनलाइन होना सम्पूर्ण विश्व से सम्पर्क हेतु अत्यन्त उपयोगी है।

सूचना प्रौद्योगिकी विकास के लिये एक महत्वपूर्ण तर्क है कि इसके माध्यम से राजनीतिक एवं तकनीकी प्रक्रिया के तहत संगठन को प्रबन्धकीय सूचनायें अधिकृत रूप से प्राप्त होती हैं जिसके आधार पर प्रबन्ध को सौदेबाजी संसाधन उपलब्ध होते हैं। परम्परागत प्रबन्ध सूचना तन्त्र में सूचनाओं एवं शक्ति में संगठनात्मक निर्णयों की दृष्टि से अनेकता की उपेक्षा की जाती थी परन्तु अब सूचना तन्त्र की वर्तमान व्यवस्था में सम्बन्ध, संचार पद्धतियां, प्रभावशीलता, अधिकार एवं नियन्त्रण आदि में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। अब राजनीतिक आंकड़ों, संभावनाओं, यहां तक कि वैधानिकताओं पर भी विचार कर पूर्व में ही प्रतिस्पर्धी रणनीति का निर्माण संभव है।

1.4 वैश्विक पर्यावरण

पिछले दो दशकों में होने वाले परिवर्तनों का साक्षी वैश्विक व्यावसायिक पर्यावरण रहा है। इन परिवर्तनों के कारण अनेकों अर्थव्यवस्थायें अपना आधार खो चुकी हैं। जापान की तीव्रगामी अर्थव्यवस्था मंदी से अब तक नहीं उबर पायी हैं। 1991 में पूर्वी यूरोप 1997 में सोवियत यूनियन की अर्थव्यवस्था भी समाजवादी चक्र में उलझ गयी। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) तथा विश्व बैंक (IBRD) द्वारा उपलब्ध कराये गये विभिन्न पैकेज भी इनके विकास हेतु अप्रभावी रहे जबकि चीन की अर्थव्यवस्था में लगभग 10% वार्षिक की विकास वृद्धि दर रही। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अब भी सुपर पावर बना हुआ है। 1995 में विश्व व्यापार संगठन (WTO) ने व्यापार, सेवाओं, विदेशी विनियोग, बौद्धिक सम्पदा अधिकार आदि के क्षेत्रों में एक निरीक्षक के रूप में कार्य किया, परन्तु आशानुसार धनी देशों के पक्ष में ही सभी विश्व व्यापार संगठन प्रपत्र रहे। इसके साथ ही इसी के निर्देशन में विश्व व्यापार को बढ़ावा देने के अनेकों प्रयास किये गये तथा गत वर्षों में विभिन्न देशों द्वारा द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय क्षेत्रीय व्यापार सन्धियां की गयी तथा अनेकों सकारात्मक परिणाम सामने आये।

1.4.1 वैश्विक व्यापार प्रदर्शन/निष्पादन :-

2006 में सकल विकास दर 4% अंकित की गयीं 2007 में यह दर 3.7% तक गिरी और फिर पुनः 2008 में 2.5% दर्ज की गयी। उच्च आय वर्ग के देशों में भी 2006 में 3% से 2007 में 2.6% एवं 2008 में 1.3% दर्ज हुई। विश्व की व्यापकतम अर्थव्यवस्था अमेरिका में 2006 में 2.8% की वृद्धि हुई परन्तु 2007 में 2% की गिरावट तथा 2008 में 1.4% दर्ज की गयी। विश्व की दूसरी व्यापक अर्थव्यवस्था जापान की विकास दर में 2006 में 2.4%, 2007 में 2% तथा 2008 में 0.5% की गिरावट दर्ज हुई। कुल मिलाकर इस अवधि में विकासशील

अर्थव्यवस्थाओं ने उल्लेखनीय विकास किया और विशेषकर चीन और भारत ने सकल विकास दर में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की।

इस परिवर्तन के दौर ने विश्व के विभिन्न देशों में अनिश्चितताओं की स्थिति उत्पन्न की जो कि अनेकों देशों में 2013 तक जारी रही। चीन की स्थिति अपेक्षाकृत आशावादी रही, यहां की अर्थव्यवस्था ने गिरावट के बाद 2012 तक विकास की गति प्राप्त कर ली जबकि जापान 2012 तक आशान्वित स्थिति में नहीं आ पाया। भारतीय अर्थव्यवस्था ने भी गिरावट के दौर के बाद, परिस्थितियों में सुधार किया।

1.4.1.1 वैश्विक संकट एवं विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में मंदी :–

2008 के मध्य में अमेरिका, इंग्लैंड, जापान आदि अन्य यूरोपीय खंड के देशों में नकारात्मक विकास दर के कारण मंदी अनुभव की गयी। सम्पूर्ण विश्व विचार एवं अर्थव्यवस्थाओं में अनिश्चिततायें एवं मंदी व गिरावट का दौर रहा। विभिन्न विश्लेषणों, अध्ययन आदि के पश्चात् सन् 1930 के बाद का यह सबसे बड़ा मंदी काल एवं संकट काल माना गया। साख सुविधायें स्थिर, नष्ट प्राय स्टॉक बाजार, तरलता की कमी, सरकारी प्रतिबन्ध आदि अनेकों कारक थे जिन्होंने विश्व व्यापार अर्थव्यवस्था के सम्मुख विभिन्न चुनौतियां प्रस्तुत की।

1.4.1.2 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव :–

2007 में इस आर्थिक संकट के प्रथम दौर में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर यह प्रभाव सीमित रहा, परन्तु 2008 तक प्रभाव गम्भीर होने लगे विशेषकर सितम्बर 2008 में लेहमैन ब्रादर्स का पतन इसका प्रमुख कारण रहा, कोष प्रवाह स्थिर हो गये, सार्वजनिक निर्गमन अदृश्य प्रायः हो गये। बैंक दर एवं विदेशी सीधे निवेशों में गिरावट आयी। बढ़ती हुई अस्थिरता, बैंकिंग व्यवस्था में गिरावट आदि ने विश्व व्यापार के स्तर पर विकासशील देशों के समक्ष अनेकों संकट, समस्यायें एवं चुनौतियां प्रस्तुत की। सभी अर्थव्यवस्थाओं की विकास दरों में गिरावट रही।

1.4.2 वैश्विक मंदी एवं नीति प्रतिक्रिया :–

जैसा कि पूर्व में भी बताया जा चुका है कि 1930 की विकराल मंदी के पश्चात् विश्व व्यापार में वर्तमान दौर सबसे बड़ी मंदी का था। लम्बी उल्लेखनीय प्रगति एवं विकास के पश्चात् वैश्विक उत्पादन में गिरावट हुई और वैश्विक अर्थव्यवस्था स्थिर सी हो गयी तथा अनेकों लोग अपने कार्य एवं सेवा से विरत हो गये। वैश्विक विकास शून्य और 2009 में नकारात्मक हो गयी और विकासशील देशों में विकास दर 6% या इससे भी अधिक गिरावट तक पहुंची। इसके प्रभाव स्वरूप उच्च आय अर्थव्यवस्थाओं की निर्यात दर में तीव्र कमी, वाणिज्यिक वित्त में भारी कमी तथा लागतों में वृद्धि हुई। सम्पूर्ण वैश्विक अर्थव्यवस्था का परिदृश्य धूमिल सा हो गया।

इस संकटकाल पर प्राथमिक प्रतिक्रिया अमेरिका, यूरोपीय, इंग्लैंड, स्विटजरलैंड, जापान आदि आधुनिक देशों के केन्द्रीय बैंकों द्वारा व्यक्त की गयी। यह प्रतिक्रिया सहयोगी क्रिया के रूप में गहन तरलता प्रदान करना था। केन्द्रीय बैंकों द्वारा इन आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में बाजारों को क्रियाशील करने हेतु विस्तृत एवं उल्लेखनीय गतिविधियां संचालित की गयी जिनमें राजकोषीय नीतियां भी प्रमुख थीं। इस सारी प्रक्रिया के लिये केन्द्रीय बैंक एवं राजकोषीय अधिकृतों में पारस्परिक सामन्जस्य आवश्यक था।

चीन के नेतृत्व के लिए यह संक्रमण काल था, सरकारी नीतियों एवं नवीन नेतृत्व के ऊपर आर्थिक चुनौतियों का सामाना करने के सम्बन्ध में प्रश्न किये गये। यह रोचक है कि निवर्तमान राष्ट्रपति हू जिन्ताओं ने 2010 से 2020 तक अपनी सकल विकास दर को दोगुना करने का लक्ष्य निर्धारित किया था। यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भौगोलिक चुनौतियों के सम्बन्ध में दीर्घ विकास दर अर्जित करने की सुधारवादी नीतियां अपनाना आवश्यक था।

जापानी परिदृश्य अपेक्षाकृत दुर्बल एवं कमजोर रहा। 2013 की द्वितीय छमाही तक यूरोप में मंदीकाल ने भी जापानी अर्थव्यवस्था के निर्यातों पर नकारात्मक प्रभाव डाला। तत्कालीन जापान सरकार की नीतियों का विकास को सहयोग न करना भी एक कारण रहा।

जब वैश्विक अर्थव्यवस्था वापसी एवं बहाली के मार्ग पर थी भारत का नकारात्मक पक्ष जोखिम संकटों में वृद्धि रहा। वर्तमान वर्ष की सकल विकास दर में भारत में प्रथम छमाही में औसतन 5.4% की वृद्धि दर्ज की गयी एवं वर्ष के अन्त में यह विकास दर कुछ और भी वृद्धि कर सकती है। वर्तमान सुधारों का लागू होना और उनका व्यापक रूप से सफलतापूर्वक लागू होना संकट काल से पूर्व स्थिति में अर्थव्यवस्था को पहुंचाने की आशा जागृत करता है।

1.4.3 वैश्विक व्यापार व्यवस्था में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों (MNCs) का प्रभुत्व :–

आर्थिक प्रक्रियाओं के अन्तर्राष्ट्रीयकरण, वैश्वीकरण को बहुराष्ट्रीय निगमों / संगठनों द्वारा प्रवर्तित करने की प्रक्रिया अति तीव्रता से लागू की गयी, परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादन एवं वितरण, कार्यदशाओं, नौकरियों, तकनीकों आदि का सृजन हुआ। सम्पूर्ण विश्व में अनेकों देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) एवं विश्व व्यापार संगठन (WTO) की प्रगतिशील नीतियों से वित्तीय संस्थानों एवं बहुराष्ट्रीय संगठनों ने विकास कार्यों में सहयोग किया।

विभिन्न देशों की आर्थिक स्वतन्त्रता के समक्ष बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा आर्थिक चुनौतियां प्रस्तुत की गयी। यह अत्यन्त शक्तिशाली होकर उभरकर आये तथा कहीं–कहीं इन्होंने विक्रय की दृष्टि से एकाधिकारिक शक्ति के रूप में विभिन्न देशों की सकल विकास दर को भी पीछे छोड़ दिया जबकि अन्य निगमों ने विलियन एवं अधिग्रहण के माध्यम से अपना शक्ति प्रदर्शन किया। इसी समय वैश्विक मुद्रा बाजार में उतार चढ़ाव एवं सट्टा व्याप्त हो गया और व्यापक परिवर्तन हुए। सन् 1998 में वैश्विक बाजार में फोरेक्स बाजार के स्तर पर मूल्यों में इस उतार चढ़ाव एवं सट्टेबाजी से विभिन्न राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थायें नष्ट होकर निम्न स्तर पर पहुंच सकती थीं।

वर्तमान समय में 40 हजार बहुराष्ट्रीय निगम वैश्विक अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं यह संस्थायें अपने 2,50,000 विदेशी सहयोगियों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में व्यापक रूप से कार्यरत है। पिछले 2 दशकों में सर्वोच्च 200 निगमों में व्यापक परिवर्तन एवं खींचतान हुई है और श्रेणियों में भी निरन्तर परिवर्तन हुए हैं। बाजार को हथियाने के लिए सभी सीमाओं को तोड़कर संविलयन एवं अधिग्रहण का सहारा भी लिया गया। वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर 200 बड़े निगमों में 61 अमेरिका के, जापान के 25 अपेक्षाकृत छोड़े देश स्विटजरलैंड के

5 तथा अन्य निगमों में कोरिया, चीन, भारत, मलेशिया, मैक्सिको, सऊदी अरब, थाईलैंड, तुर्की आदि विकासशील देशों के निगम सम्मिलित हैं।

1.5 भारतीय व्यावसायिक पर्यावरण

व्यावसायिक पर्यावरण में वह सभी तत्व सम्मिलित होते हैं जो कि व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। किसी भी व्यावसायिक फर्म की सफलता उपलब्ध संसाधनों और पर्यावरण द्वारा उनकी स्वीकार्यता एवं पर्यावरणीय तत्वों का फर्म के विकास में अनुकूलता से कार्य करना है। किसी भी संस्था का अस्तित्व एवं सफलता मुख्यतः दो प्रकार के तत्वों पर निर्भर करती है आन्तरिक तत्व या आन्तरिक पर्यावरण एवं बाह्य तत्व या बाह्य पर्यावरण यद्यपि व्यावसायिक पर्यावरण का आशय प्रमुखतः बाह्य तत्वों से ही लगाया जाता है। बाह्य पर्यावरण में व्यापक रूप से दो तत्व सम्मिलित होते हैं व्यवसायिक अवसर एवं व्यवसाय के समक्ष चुनौतिया। ठीक इसी प्रकार संगठनीय पर्यावरण में भी दो तत्व सम्मिलित होते हैं संगठन की शक्तियां एवं संगठन की कमजोरियां। किसी भी कम्पनी का नियन्त्रण अपने आन्तरिक तत्वों पर होता है। इन नियन्त्रण योग्य तत्वों को परिवर्तित तथा संशोधित किया जा सकता है जैसे सेविवर्गीय, भौतिक सुविधायें, कार्यात्मक संगठन जिसमें विपणन मिश्रण जो कि संगठन एवं पर्यावरण के अनुकूल हो आदि सम्मिलित होते हैं जबकि व्यावसायिक पर्यावरण के बाह्य तत्व कम्पनी के नियन्त्रण से बाहर होते हैं जैसे आर्थिक घटक, सामाजिक सांस्कृतिक घटक, सरकारी नीतियां, वैधानिक तत्व, भौगोलिक तत्व आदि। ऐसे बाह्य तत्व जो फर्म की मांग एवं वितरण पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं उन्हें सूक्ष्म पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है। इन्हें मानक पर्यावरण अथवा संचालनीय पर्यावरण भी कहा जाता है। व्यापक पर्यावरण में उन तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जो कि सामान्य रूप से किसी उद्योग या व्यवसाय को प्रभावित करते हैं जैसे औद्योगिक नीति, भौगोलिक तत्व आदि।

वर्तमान भारतीय व्यवसाय में नवीन उद्यमियों के लिए अनेकों अवसर उपलबध हैं और वैश्विक बाजार की दृष्टि से भारत एक प्रचलित एवं अनुकूल लक्ष्य बना हुआ है। किसी विदेशी संस्था को या विनियोजक को भारत में कोई भी नवीन कम्पनी अथवा संस्था स्थापित करने के लिए भारत सरकार की अनुमति एवं अनुमोदन आवश्यक है। इस सम्बन्ध में भारत में विदेशी विनियोगों पर नियमन एवं नियन्त्रण हेतु FEMA 1999, कम्पनी अधिनियम 1956, औद्योगिक अधिनियम 1951, नवीन औद्योगिक नीति 1991 आदि लागू है जो कि वैधानिक रूप से उनकी योग्यताओं को परखते हैं एवं विदेशी विनियोजकों पर नियमन एवं नियन्त्रण रखते हैं।

1990 के प्रारम्भ से आर्थिक सुधारों के लागू होने के बाद भारतीय व्यवसायिक पर्यावरण में उल्लेखनीय सुधार हुआ। बाजार की दक्षता एवं विकास की तीव्रगति में इन सुधारों के आधार पर घरेलू एवं विदेशी विनियोजकों का मार्ग अपेक्षाकृत सुगम हुआ परन्तु दूसरी ओर उदारीकरण सीधे विदेशी निवेश आदि के कारण प्रतियोगिता का स्तर भी कठिन हुआ। वैश्विक बाजार में आर्थिक संकटों तथा आर्थिक मन्दी के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था एवं बाजार में घरेलू एवं विदेशी उद्यमियों के लिए अपार अवसर उपलब्ध हुए हैं।

1.5.1 भारतीय अर्थव्यवस्था :

भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है जहां स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् योजना एवं विकास के लिए वृहद् सार्वजनिक उद्योगों को स्थापित किया गया और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के पश्चात् सामाजिक, आर्थिक सम्बन्धों के दृष्टिगत जहां एक ओर निजी क्षेत्रों को बढ़ावा मिला वहीं दूसरी ओर निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी किया गया।

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख बिन्दुओं को अथवा मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में इसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्न प्रकार बताया जा सकता है। –

1. भारतीय संविधान के अनुसार निजी स्वामित्व को उत्पादन करना अनुमत किया गया है जबकि राष्ट्रीय उत्पादन में सार्वजनिक क्षेत्र का अंशदान लगभग 25% है।
2. भारतीय बाजार में मूल्यों का निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियां करती हैं भारतीय संस्थायें उत्पादक के मूल्यों के आधार पर यह निर्णय करती है कि किस वस्तु का उत्पादन उन्हें करना है। इसके बावजूद भारतीय बाजार तन्त्र राज्य के नियन्त्रण से पूरी तरह मुक्त नहीं कहा जा सकता। औद्योगिक गतिविधियों को नियन्त्रित करने के लिए सन् 1951 में उद्योग विकास एवं नियमन अधिनियम देश में लागू किया गया। लाइसेंसिंग प्रणाली के अतिरिक्त सरकार ने बाजार निर्णयों को प्रभावित करने के लिए अन्य नियन्त्रण एवं प्रेरक प्रक्रियाओं को लागू किया। इनमें उल्लेखनीय है आयात नियन्त्रण, आवश्यक वस्तुओं के वितरण के लिए उचित मूल्य दुकानें एवं सरकार का निर्धारित सहायक मूल्यों पर कृषि उत्पादनों को खरीदना प्रमुख है।
3. निजी क्षेत्रों में एकाधिकार का विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही तीव्रता से विकसित हुआ। आय वितरण एवं रहन–सहन स्तर समिति द्वारा इसको चिन्हित् किया गया परन्तु इनको नियन्त्रण करने के सरकारी प्रयासों के बाद भी वृहद व्यवसायों की पकड़ देश में बढ़ी है।
4. भारत में एक विशाल सार्वजनिक क्षेत्र श्रृंखला के साथ निजी क्षेत्र की व्यापकता से कार्यरत है। यह तथ्य भारतीय अर्थव्यवस्था के मिश्रित होने को प्रमाणित करता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् निजी उद्यमी पर भारी विनियोग एवं संसाधनों के अभाव में सरकार को प्रेरणा दी कि वह मूलभूत क्षेत्र में उद्योगों को स्थापित करे।
5. सन् 1951 से आर्थिक योजना भारतीय अर्थव्यवस्था का एकीकृत भाग है। भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन की प्रवृत्ति सोवियत यूनियन एवं अन्य पूर्वी यूरोपियन देशों से पृथक है और उनका मिला जुला स्वरूप भी कही जा सकती है।

1.5.2 व्यापक आर्थिक प्रदर्शन :–

इस उद्देश्य के लिए हमे गत वर्षों की भारत की आर्थिक विकास दर, औद्योगिक विकास प्रवृत्तियां, बचत एवं विनियोग विकास दर, मूल्य एवं मुद्रा स्फीति, अर्थव्यवस्था की आर्थिक असामान्यतायें, वर्तमान पूंजी बाजार प्रवृत्तियां एवं अर्थव्यवस्था के बाह्य क्षेत्रों की प्रवृत्तियों आदि का अध्ययन करना होगा।

सन् 2012 में सितम्बर मध्य से कुछ सुधारों की घोषणा के पश्चात् एवं विकास कार्यों के लागू होने के पश्चात् सन् 2013–2014 में कुछ थोड़ी या हल्की

वापसी एवं वसूली का रूप भारतीय अर्थव्यवस्था में दिखा। इन सुधारों में खुदरा व्यापार में विदेशी सीधे विनियोग की उदारवादिता, बैंकिंग नियमन एवं अधिनियम संशोधन तथा कुछ विशाल परियोजनाओं को लागू करने एवं अनुमोदित करने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में बनी एक विनियोग परियोजना समिति प्रमुख है। GAAR की प्रमुख सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकार करने के पश्चात् वित्तीय स्थितियों में सुधार हुआ। इसके माध्यम से कराधान सम्बन्धी विषयों को अधिक स्पष्ट किया गया।

1.5.3 आर्थिक विकास में उच्चावचन :–

केन्द्रीय संख्यिकीय संगठन (CSO) ने एक नयी सीरीज 1999–2000 के सम्बन्ध में सम्पूर्ण नियोजन काल के आधार के रूप में जारी की। इस सीरीज के अनुसार 1992–97 के मध्य सकल घरेलू उत्पाद दर 6.5% प्रतिवर्ष आठवीं योजना के अनुसार निर्धारित की गयी। यद्यपि नवीं योजना (1997–2002) में यह दर केवल 5.5% वार्षिक रही। सन् 2002–2003 में कृषि क्षेत्र की हानि के कारण यह 3.8% तक हासिल हुई। आठवीं एवं नवीं पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि क्षेत्र खाद्यान्न आादि के उत्पादन में आपूर्ति, मानसून आदि परिस्थितियों के कारण निरन्तर उच्चावचन बना रहा। दसवीं योजना (2002–2007) में राष्ट्रीय आय में 7.8% वार्षिक की उच्च वृद्धि दर रही। सकल घरेलू उत्पाद दर 2007–08 में बढ़कर 9% वार्षिक हो गयी। इसमें एक प्रवाहकीय व्यावसायिक वातावरण का निर्माण किया तथा सम्पूर्ण व्यावसायिक वातावरण आशापूर्ण हो गया। 2008–09 में अन्तर्राष्ट्रीय मंदी के फलस्वरूप सारी व्यावसायिक गतिविधियां शिथिल हो गयी, अर्थव्यवस्था में मंदी का दौर रहा, आर्थिक विश्लेषकों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने विकास दर के 5.0% से 5.5% वार्षिक की भाविष्यवाणी की। जबकि आर्थिक सर्वेक्षण 2008–09 द्वारा यह दर 6.7% वार्षिक जो उक्त दर से कहीं अधिक थी अनुमानित की, परन्तु वास्तविक विकास दर इस वर्ष अपेक्षाकृत बहुत कम रही।

अर्थव्यवस्था में होने वाले उच्चावचनो के आन्तरिक एवं वाह्य कारक होते हैं। आन्तरिक गिरावट के कारणों में सूखा एवं सामान्य से कम वर्षा का होना भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में उत्पादकता हानि का प्रमुख कारण होता है वाह्य कारणों में सरकारी, आर्थिक, राजनीतिक नीतियां या परिस्थितियां अथवा कराधान नीति आादि होती हैं। आर्थिक उच्चावचन का एक प्रमुख वाह्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पैट्रोलियम पदार्थो में वृद्धि भी होता है, यह एक प्रमुख कारण होता है जिसका सभी उत्पादों के मूल्य पर प्रभाव पड़ता है तथा आयात एवं अर्थव्यवस्था पर इसका गहन प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में मंदी या गिरावट भी एक अन्य बाह्य कारण हो सकता है।

1.5.4 अनियमित औद्योगिक विकास :–

सन् 1996–97 से ही भारत में औद्योगिक विकास दर अनियमित रही। सन् 1995–96 में औद्योगिक विकास दर 12.12% से 1996–97 में गिरकर 5.6% पर आ गयी। यह दर 1999–2000 में 6.7% थी परन्तु 2001–02 में 5% गिरकर 2.7% रह गयी। 2002–03 में कुछ वापसी हुई और औद्योगिक विकास दर 5.8% रही। नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान औद्योगिक विकास दर औसतन 5% रही। दसवीं योजना में 10% वार्षिक विकास दर का लक्ष्य रखा गया परन्तु उल्लेखनीय रूप से विकास दर 8.2% वार्षिक रही।

औद्योगिक क्षेत्र की दृष्टि से यह एक मिश्रित परिदृश्य है। निर्यात सम्बन्धी घोषणा, उपभोक्ता मांग में कमी, आय में असमानता, कृषि आय का कम होना, औद्योगिक विनियोगों का कम होना, औद्योगिक संरचनाओं में परिवर्तन आदि अनेक कारण थे जिनके कारण औद्योगिक विकास में अनियमितता रही। विभिन्न घरेलू एवं बाह्य कारणों से गत वर्षों में उत्पादित माल के निर्यात में उल्लेखनीय गिरावट आयी है। रूस एवं पूर्वी यूरोपीय देशों में भारतीय माल की मांग का कम होना तथा वैश्विक बाजार में मंदी के कारण भी हमारे निर्यातों में कमी हुई। इन सब प्रतियोगी परिस्थितियों के फलस्वरूप इस्पात, इलेक्ट्रोनिक्स, कैमीकल आदि अनेक उद्योगों को दबाव में उत्पादन में कमी करनी पड़ी।

1996–97 के बाद से ही अनेकों वर्ष औद्योगिक विनियोगों में उल्लेखनीय गिरावट हुई जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास दर में भी कमी आयी। इससे उद्योगों की विस्तार क्षमता भी कम हुई तथा औद्योगिक क्षेत्रों की आय कम होने के कारण उत्पादन की मांग पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

सामुदायिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत सेवा क्षेत्र में सरकारी, प्रशासनिक, सुरक्षा, सामुदायिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों सकल घरेलू उत्पाद में सर्वाधिक अंशदान इन सेवा क्षेत्रों का ही है। यह सेवा क्षेत्र वस्तु उत्पादन की दृष्टि से अर्थव्यवस्था में कोई योगदान नहीं देते जो कि अर्थव्यवस्था की मूलभूत अल्पता है। उदाहरणार्थ वित्तीय सेवाओं में आय का विकास, बढ़ी हुई ब्याज दरों से उच्च आय का होना, व्यापारिक आय में वृद्धि आदि अस्थायी कमियों को लाभदायकता प्रदान कर सकते हैं परन्तु अर्थव्यवस्था का मूलभूत विकास नहीं कर सकते।

1.5.5 तत्कालीन वर्षों में बचत एवं विनियोग का विकास :–

सन् 1990 के दौरान सकल घरेलू बचत दर में वृद्धि नहीं हुई। 1990–91 में यह 22.8% थी। इसके पश्चात् लगातार तीन वर्षों तक इसमें गिरावट होती रही, सन् 1994–95 से इसमें कुछ बहाली प्रारम्भ हुई और यह दर 25.0% के आस पास रही। सन् 2001–02 में पुनः गिरकर 23.5% रह गयी जबकि 2002–03 में अचानक इसमें वृद्धि दर्ज की गयी। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) के अनुसार 2003–04 में सकल बचत दर 29.8% तथा 2007–08 में बढ़कर 37.7% थी, इन अनुमानों की सत्यता संदेहजनक है।

सकल घरेलू पूंजी निर्माण की दर सकल घरेलू बचत की तुलना में GDP की 1.2% से अधिक रहती है। इस विनियोग बचत अन्तराल को विदेशी पूंजी प्रवाह द्वारा पूरा किया जाता है। आर्थिक सर्वेक्षण 2008–09 के अनुसार विनियोग दर में वृद्धि के प्रमुख कारण विनियोग वातावरण का तैयार करना, अर्थव्यवस्था के विकास के लिये सकारात्मक दृष्टिकोण आदि होते हैं। जहां तक औद्योगिक संरचनाओं में विनियोग का प्रश्न है यह अपेक्षाकृत अल्प रहा। अनिवासी भारतीयों एवं विदेशी संस्थागत विनियोगकर्ता द्वारा निगमीय क्षेत्रों में व्यापक विनियोग किये गये लेकिन इन विनियोगों का एक उल्लेखनीय हिस्सा प्रतिभूति पूंजी एवं सट्टागत गतिविधियों में विनियोजित किया गया जिसे दूरगामी या दीर्घकालीन दृष्टि से अर्थव्यवस्था के वास्तविक आर्थिक विकास की दृष्टि से बहुत उपयुक्त नहीं माना जा सकता।

भारत की दृष्टि से निजी क्षेत्र भारत में विनियोग का एक बहुत बड़ा स्रोत हे। निजी क्षेत्र की दृष्टि से विनियोगकर्ताओं की दो श्रेणियां हैं– निजी निगमीय

क्षेत्र एवं घरेलू क्षेत्र। निजी विनियोगों में कमी आने के लिये भी अनेकों कारक उत्तरदायी रहे जिनमें रिजर्व बैंक द्वारा रैपो दर में कमी [मार्च 2010 से अक्टूबर 2011 तक 375(BPS)] जिसके कारण ऋणों की लागत बढ़ी और मांग कम हुई। निजी विनियोगों के घटने का एक अन्य प्रमुख कारण भारतीय निर्यातों की मांग होना भी था। तृतीय कारण के रूप में नीतिगत परिवर्तन, तेल दर, भूमि अधिग्रहण आदि के कारण भी निजी क्षेत्र के विनियोग हतोत्साहित हुए।

1980 में औसत बचत दर 18.6% थी जबकि 1990 में यह 23% थी। सन् 2004–05 में प्रथम बार बचत दर 30% तक बढ़ी। बचत तीन क्षेत्रों से आती है– निगमीय क्षेत्र, निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र। 1980–81 से 2011–12 तक एकल घरेलू बचत में पारिवारिक अंशदान तीन चौथाई था। गत वर्षों में पारिवारिक वित्तीय बचत एवं भौतिक बचत में गिरावट हुई है। कुल बचतों में निजी निगमित क्षेत्रों का अंशदान बढ़ने का एक प्रमुख कारण कुल लाभ एवं उत्पादन अनुपात में वृद्धि होना है।

1.5.6 मूल्य एवं स्फीति :–

परम्परागत अर्थों में थोक मूल्यों में परिवर्तन के आधार पर स्फीति की गणना होती है जबकि उपभोक्ता की दृष्टि से फुटकर मूल्य स्फीति की गणना के लिए अधिक तर्क संगत कहे जा सकते हैं और यहां स्फीति की गणना उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर होती है। भारत में वर्तमान में थोक मूल्य सूचकांक (WPI) के अतिरिक्त उपभोक्ता मूल्यों के तीन अन्य निर्देशांक उपलब्ध हैं– औद्योगिक कर्मियों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, शहरी क्षेत्र के अनियमित कर्मचारियों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक तथा ग्रामीण मजदूरों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक।

सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि आम आदमी के रहन सहन स्तर एवं मूल्य वृद्धि के अनुमान के लिए औद्योगिक कर्मियों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की तुलना में बेहतर परिणाम होता है। इस सूचकांक की गणना खुदरा मूल्य, सरकारी एवं निजी कर्मचारियों को दिये जाने वाले महंगाई भत्ते के आधार पर की जाती है। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने इससे पूर्व 2002 से 2008–09 तक सूचकांकों की अनियमितताओं को स्थिर करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय एवं घरेलू स्तर पर धातु, केमीकल, कपड़ा आदि उद्योगों सम्बन्धी मूल्यों को शिथिल किया।

1.5.7 राजकोषीय असन्तुलन :–

जब राजकोषीय प्राप्तियों से राजकोषीय व्यय अधिक हो जाते हैं तो उसे राजकोषीय असन्तुलन कहा जाता है। राजकोषीय असन्तुलन को राजकोषीय संकट भी कहा जा सकता है। 1980 में गैर विकास सम्बन्धी व्ययों के भार ने भारतीय राजकोषीय परिस्थितियों में क्षय की स्थिति उत्पन्न की। बाद में इसके परिणामस्वरूप 1991–92 के प्रारम्भ में राजकोषीय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

राजकोषीय संकट के प्रमुख लक्षण निम्न में कमी होना है –

1. राजस्व में कमी = राजस्व आय – राजस्व व्यय
2. बजट में घाटा = कुल आय – कुल व्यय

3. राजकोषीय घाटा = कुल प्राप्तियों एवं योजनाओं पर कुल व्ययों का आधिक्य
4. प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – भुगतान योग्य ब्याज

भारत में राजकोषीय संकट के लिए निम्न कारण उत्तरदायी होते हैं –

1. अनुदान में वृद्धि
2. ब्याज का भुगतान
3. सुरक्षा व्यय
4. सार्वजनिक क्षेत्र का दयनीय प्रदर्शन
5. सरकारी ऋणों की अधिकता
6. कर चोरी
7. राजस्व की दुर्बल वसूली
8. ऋणों का आधिक्य

राजकोषीय असन्तुलन वर्षों तक सरकार के घाटे के रूप में चलता रहा यद्यपि सरकार की वित्तीय दुर्बलता के लिये राजस्व में कमी एवं प्राथमिक कमी को उत्तरदायी माना जा सकता है। परन्तु केवल इन्हीं को इस असन्तुलन के लए पूर्णतः उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। सकल राजकोषीय घाटे की गणना शुद्ध राजस्व प्राप्तियों में गैर देय पूंजी प्राप्तियां जोड़ने तथा कुल व्यय देय ऋण को सम्मिलित करते हुए की जा सकती है। गैर देय पूंजी प्राप्तियां सम्पत्तियों के विक्रय से प्राप्त होती है। वर्तमान भारतीय संदर्भ में यह प्राप्तियां सरकार द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों की समता के विक्रय से प्राप्त होंगी। परन्तु विद्वानों के अनुसार इन प्राप्तियों को सामान्य प्राप्तियों के साथ सम्मिलित करना लेखांकन अवधारणा एवं सिद्धान्तों का उल्लंघन है। सकल राजकोषीय घाटे के सम्बन्ध में यह एक अधिकृत अपवाद है। अपनी समस्त आलोचनाओं के बावजूद भारत में सकल राजकोषीय घाटे का अनुमान विभिन्न राजकोषीय असन्तुलन उत्पन्न करता है। 1990–2001 में केन्द्रीय सरकार का राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 7.8% था। 1991 में राजकोषीय घाटे को कम करने हेतु विभिन्न सुधार एवं उपाय प्रतिबन्धों को शिथिल करके किये गये। परिणामस्वरूप 2003–04 में सकल राजकोषीय घाटा घटकर सकल घरेलू उत्पाद का 4.5% हो गया। सरकार द्वारा FRBM अधिनियम का स्वीकार किया जाना राजकोषीय घाटे पर नियन्त्रण के लिए महत्वपूर्ण एवं प्रभावी रहा तथा 2006–07 में यह 3.5% तथा 2007–08 में सकल घरेलू उत्पाद के 2.7% पर रहा। परन्तु 2008–09 में सरकार द्वारा मंदी से निबटने के लिए विभिन्न प्रयास किये गये तथा व्यापक व्यय योजनायें लागू की गयी जिसके परिणाम स्वरूप राजकोषीय घाटा 6.2% पर पहुंच गया।

राजकोषीय असन्तुलन अभी भी जारी है क्योंकि सरकार अपने व्ययों को ही कम करने में असफल रही है। राजनीतिक व्यक्तियों एवं मंत्रियों द्वारा बिना किसी प्रतिबन्ध के अत्यधिक व्यय किये जा रहे हैं। सरकार की जनसंख्या नीति, उर्वरक एवं खाद पर अनुदान कम करने में विफलता, ब्याज राशि भुगतान का भार आदि कारण हैं जिनसे भारतीय अर्थव्यवस्था गम्भीर राजकोषीय असन्तुलन की स्थिति में है।

1.5.8 पूंजी बाजार में प्रगति :–

पूंजी बाजार मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन कोषों में व्यवहार करते हैं। इसके अन्तर्गत मध्यम एवं दीर्घकालीन कोषों को प्राप्त करने एवं प्रदान करने के सम्बन्ध में सभी सुविधायें एवं संस्थागत प्रबन्ध उपलब्ध कराये जाते हैं। दीर्घकालीन कोषों की मांग निजी व्यावसायिक निगमों से, सरकारी निगमों से तथा सरकार से प्राप्त होती है वहीं कोषों की पूर्ति व्यापक रूप से व्यक्तियों, संस्थागत विनियोजकों, बैंकों, विशिष्ट वित्तीय संस्थानों एवं सरकार द्वारा की जाती है।

पूंजी बाजार के विकास में निम्नलिखित तत्व प्रमुख रूप से अंशदायी होते हैं –

1. <u>विकास बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं की प्रगति एवं विकास :–</u>

उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराने के लिए 1948 में सरकार ने IFCI की स्थापना की, इसके बाद 1955 में ICICI, 1964 में IDBI, 1971 में IRCI, 1991 में FIPB, 1992 में OTCEI आदि प्रमुख संस्थान स्थापित किये गये। सन् 1969 में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा 1980 में पुनः 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इन वित्तीय संस्थानों एवं बैंकों ने पूंजी बाजार को सशक्त बनाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2. <u>सेबी की स्थापना :–</u>

1988 में सेबी की स्थापना की गयी तथा 1992 में इसे वैधानिक स्वरूप प्रदान कर दिया गया।

3. <u>क्रेडिट रेटिंग एजेंसी :–</u>

क्रेडिट रेटिंग एजेंसी विनियोगकर्ता को साख जोखिम के सम्बन्ध में निर्देश एवं सलाह प्रदान करता है। 1988 में CRISIL की स्थापना तथा 1991 में ICRA की स्थापना इसी उद्देश्य से हुई। यह संस्थायें भी पूंजी बाजार को विकसित करने में अपना योगदान प्रदान करती हैं।

4. <u>म्युचुअल फंड का विकास :–</u>

म्युचुअल फंड के माध्यम से विभिन्न विनियोजकों के माध्यम से कोष संग्रह करके निगमीय विनियोग के रूप में प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजार में विनियोजित किया जाता है। यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया द्वारा 1964 में प्रथम म्युचुअल फंड स्थापित किया गया।

5. <u>ज्ञान में वृद्धि :–</u>

पिछले कुछ वर्षों में विनियोग अवसरों के प्रति जनता के मध्य ज्ञान एवं रूझान में वृद्धि हुई है। व्यावसायिक समाचार पत्र एवं वित्तीय पत्रिकायें (जैसे– इकोनोमिक टाइम्स, फाइनेन्सियल एक्सप्रेस, बिजनस इंडिया आदि) एवं टीवी चैनल्स (CNBC, ZEE BUSINESS, BLOOMBERG, etc) आदि के माध्यम से उपभोक्ताओं को प्रतिभूति बाजार एवं दीर्घकालीन विनियोग के सम्बन्ध में नवीनतम जानकारी प्राप्त होती है।

6. <u>जनमानस का बढ़ता विश्वास :–</u>

विभिन्न बड़े निगमीय संस्थानो ने विकास के क्षेत्र में प्रभावशाली प्रदर्शन किया है जिससे जनमानस का विश्वास इनके प्रति दृढ़ हुआ है इसके अतिरिक्त छोटे विनियोजकों का रुझान भी ऋणपत्रों एवं अंशो के प्रति हुआ है।

7. <u>संवैधानिक उपाय :–</u>

कम्पनी अधिनियम 1956 जो कि समय–समय पर आवश्यकता अनुसार सरकार द्वारा संशोधित किया जाता है के माध्यम से सरकार को निगमित क्षेत्र को विकसित एवं नियन्त्रित करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त विनियागकर्ताओं के हितों की सुरक्षा हेतू और भी विभिन्न अधिनियम क्रियाशील हैं।

8. <u>अभिगोपन व्यवसाय का विकास :–</u>

विकसित होते हुए अमिगोपन ने पूंजी बाजार के विश्वास में उल्लेखनीय योगदान किया है।

9. <u>जोखिम पूंजी कोष का विकास :–</u>

1991 के पश्चात् आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के पश्चात् ऐसी संस्थायें जो विकास क्षमता रखती हैं परन्तु विभिन्न कारणों से प्राथमिक बाजार से पूंजी संग्रह नहीं कर पाती, अधिक जोखिम वाली परियोजनाओं में अधिक प्रत्याय दर की आशा में विनियोग करने वाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं से विभिन्न विदेशी, घरेलू एवं बैंको के माध्यम से विनियोग प्राप्त कर सकते हैं।

10. <u>बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विकास :–</u>

नवीन परियोजनाओं की स्थापना एवं विस्तार के उद्देश्य से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मध्यम एवं दीर्घकालीन कोषों की आवश्यकता होती है जिसके लिए वह बैंकों एवं विदेशी विनियोजकों के माध्यम से कोष संग्रह करती हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की उपस्थिति से पूंजी बाजार को बढ़ावा प्राप्त हुआ है।

11. <u>उद्यमियों का विकास :–</u>

1980 के बाद से ही उद्यमियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसके कारण मध्यम एवं दीर्घकालीन कोषों की मांग निर्मित हुई है। उधमियों को कोष प्रदान करने के लिए विदेशी विनियोगकर्ता, बैंक एवं प्रतिभूति बाजार अवसर उपलब्ध करातें हैं जिससे पूंजी बाजार के विकास में वृद्धि हुई है।

12. <u>मर्चेट बैंकिंग का विकास :–</u>

1967 में ग्रिंडलेज बैंक 1970 मे सिटी बैंक ने मर्चेंट बैकिंग सुविधाओं का प्रारम्भ किया। पूंजी निर्गमन प्रबंध के अतिरिक्त सलाहकार सेवायें एवं अन्य ओर भी सेबायें मचेंट बैंक विभिन्न परियोजनाओं के सम्बन्ध में निगमीय क्षेत्र को प्रदान करते हैं।

1991 के बाद पूंजी बाजार के विकास के लिये लागू सुधारों एवं विकास उपायों के सम्बन्ध में सरकारी स्तर पर व्यापक प्रयास किये गयें है जिन्होने पूंजी बाजार को एक नयी ऊंचाइयो पर पहुंचा दिया हैं यह प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपाय निम्न प्रकार है–

1. भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI)
2. राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (NSE)
3. अंशों का अभौतिकीकरण (Dematerialisation)
4. दृश्य पटल व्यापार

5. विनियोगकर्ताओं की सुरक्षा
6. चक्रीय निष्पादन
7. भारतीय समाशोधन निगम लि0 (CCIL)
8. राष्ट्रीय सुरक्षा समाशोधन निगम लि0 (NSCL)
9. केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों में व्यवसाय
10. क्रेडिट रेटिंग एजेंसियां
11. वैश्विक कोष बाजारों का मूल्यांकन
12. म्युचल फंडस
13. इन्टरनैट व्यापार
14. व्युत्पन्न (Derivatives) व्यापार
15. अंशों की पुनः खरीद
16. PAN एवं KYC की वैधनिक अनिवार्यता

1.5.9 बाह्य क्षेत्र :–

1990 के प्रथम मध्य में भारत के बाह्य व्यापार की स्थिति संतोषजनक थी यथार्थ मे 1990 के मध्य से तीन वर्षो तक भारतीय निर्यात की विकास दर अत्यन्त प्रभावी लगभग 20% प्रतिवर्ष तक रही परन्तु 1996 के मध्य से यह सब परिवर्तित हुआ, निर्यात की दशा निराशाजनक रही, आयात घरेलू उद्योगों में मंदी के कारण घट गये। व्यापार संतुलन के अत्यन्त विपरीत होने के कारण परिस्थितियां अत्यन्त चिन्ताग्रस्त रही।

दसवीं परियोजना में निर्यातों की विकास दर में उल्लेखनीय सुधार एवं वृद्धि हुई। इस अवधि में निर्यात की विकास दर का लक्ष्य 12.38% निर्धारित किया गया जबकि वास्तव में यह लगभग 24% रहा। आन्तरिक (घरेलू) एवं बाह्य तत्वों ने संतोषजनक योगदान अर्थव्यवस्था में किया। वैश्विक व्यापार की बहाली एवं विकास के फलस्वरूप भारतीय निर्यातों की स्थिति भी सशक्त हुई। अर्थव्यवस्था में उदारवाद एवं निगमीय पुनर्संरचना से भारतीय उद्योगों में प्रतियोगिता के स्तर में वृद्धि हुई। इस कारण तीन वर्षों 2001–02, 2002–03, 2003–04 में चालू खातों में अवशेष अंकित रहा। शुद्ध पूंजी प्रवाह में उल्लेखनीय वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप विदेशी विनिमय कोष व्यापकता एवं विशालता से निर्मित हुये। यद्यपि अन्य देशों के अनुभवों के आधार पर यह सुझाव दिये गये कि इन कोषों की अत्याधिक वृद्धि सट्टे की प्रवृत्तियों को उत्पन्न कर सकती है।

1.5.10 आर्थिक गिरावट 2008–09 :–

अगस्त 2007 के आस पास वैश्विक वित्तीय संकट का उदय हुआ। सितम्बर 2008 में लेहमैन ब्रादर्स के पतन ने इस संकट को और गहरा दिया तो विनियोजकों के बाजार में विश्वास में और कमी दिखायी देने लगी। इस वैश्विक मंदी का प्रभाव यूरोप, जापान, अमेरिका तक रहा और 2009 के बाद तक दृष्टिगोचर हुआ।

मंदी के प्रारम्भिक दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं दिखायी दिया वरन् विदेशी विनियोगों की प्राप्ति से जनवरी 2008 तक प्रभाव सकारात्मक भी दिखायी दिये। परन्तु शीघ्र ही इस वैश्विक आर्थिक संकट के नकारात्मक प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी परिलक्षित हुये। शुद्ध पोर्टफोलियो प्रवाह नकारात्मक हो गये, विदेशी विनियोजक अपनी समता का

विक्रय करने लगे, प्रतिभूति बाजार में मांग एवं पूर्ति में असन्तुलन व्याप्त हो गया तथा विदेशी विनिमय बाजार भी नकारात्मक रूप से प्रभावित हुआ। निर्यातों की दशा सितम्बर 2008 में नकारात्मक हो गयी और वित्तीय वर्ष के अन्त तक यही दशा बनी रही। यथार्थ में भारतीय अर्थव्यवस्था के अधिकांश क्षेत्रों में 2008–09 में उल्लेखनीय गिरावट का दौर रहा।

1.6 भारत में वैश्वीकरण

भारत में वैश्वीकरण का अर्थ देश को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने से है। परिणामस्वरूप विदेशी सीधे निवेश (FDI) खोले गये तथा विदेशी कम्पनियों एवं विनियोजकों को विभिन्न सुविधायें प्रदान की गयीं जिससे वह भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग हेतु प्रेरित हो सकें। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए नियम एवं शर्तें उदार किये गये तथा फेरा जैसे प्रतिबन्ध वाले अधिनियम को समाप्त किया गया साथ ही भारतीय उद्यमियों एवं कम्पनियों को अपनी अवसंरचना विदेशी बाजारों में स्थापित करने हेतु भी प्रेरित किया गया। भारतीय एवं विदेशी संयुक्त उपक्रमों को प्राथमिकता दी गयी तथा आयात नीति को उदार किया गया, टैरिफ सम्बन्धी प्रतिबन्धों को समाप्त एवं सरल किया गया, आयात शुल्क में कमी की गयी। निर्यातकों को लाइसेंस प्रदान करने की व्यवस्था का सरलीकरण किया गया तथा उन्हें प्रेरित करने हेतु प्रोत्साहन योजनायें लागू की गयी।

1.6.1 वैश्वीकरण की ओर प्रेरणा/प्रोत्साहन :–

1980–81 का वर्ष भारत में भुगतान संतुलन की दृष्टि से समस्याओं एवं संकटों से भरा था। 1979–80 में तेल बाजार में दूसरा झटका लगा तथा OPEC देशों ने तेल के मूल्यों में अत्याधिक वृद्धि की जिससे भारत के आयात मूल्यों में वृद्धि हुई तथा निर्यात में गिरावट दर्ज की गयी। 1990–91 में खाड़ी देशों में युद्ध के कारण संकट एवं समस्याओं में और वृद्धि हुई। जिसके परिणामस्वरूप 1990–91 में अर्थव्यवस्था को 17,369 करोड़ रूपये का घाटा उठाना पड़ा। घरेलू राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण ने विनियोजकों के विश्वास को दुर्बल किया।

उपरोक्त परिस्थितियों के संदर्भ में 1991 में IMF एवं विश्व बैंक के संरचना समायोजन कार्यक्रम को भारत ने स्वीकार किया क्योंकि वैश्वीकरण भी इसी कार्यक्रम का एक भाग था। निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि 1990 की विपरीत एवं निराशाजनक परिस्थितियों के कारण भारत 1991 में वैश्वीकरण स्वीकार करने के लिए प्रेरित हुआ।

1.6.2 वैश्वीकरण के प्रति उपाय :–

वैश्वीकरण के लिये भारत सरकार द्वारा अपनाये गये नीतिगत प्रयासों को निम्न बिन्दुओं में विभाजित किया जा सकता है –

1.6.2.1 विदेशी विनिमय दर समायोजन एवं रूपये की परिवर्तनीयता :–

वैश्वीकरण के लिये विश्व व्यापार से एकीकृतता के लिए मुद्रा को पूर्ण परिवर्तनीय, बिना किसी वैधानिकता के, उचित दरों पर बनाया जाना था। इस ओर IMF द्वारा भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन प्रथम प्रयास था। इसी के साथ धीरे धीरे भारत सरकार ने आयात निर्यात नीति में द्विपक्षीय विनिमय दर प्रणाली लागू कर रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता का प्रयास किया। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा IMF के

अनुच्छेद VIII को स्वीकार किया गया जिसके अनुसार विनिमय प्रतिबन्धों को अन्तर्राष्ट्रीय लेन देनों एवं भुगतान सन्तुलन के लिये विभिन्न छूट एवं शिथिलतायें प्रदान की गयीं।

1.6.2.2 आयात उदारीकरण :–

1990 में व्यापार सुधारों की दिशा में विश्व बैंक के सुझाव पर आयात नीति को शिथिल किया गया तथा आयात शुल्क एवं प्रतिबन्धों में कमी की गयी। 1993–94 के बजट में विभिन्न वस्तुओं के आयात शुल्कों में उल्लेखनीय सकारात्मक परिवर्तन किये गये और सर्वाधिक आयातित गैर कृषि वस्तुओं पर मात्र 10% आयात शुल्क किया गया।

विश्व व्यापार संगठन का सदस्य होने के नाते 1997 से यह सारी रियायतें भारत ने आगामी 6 वर्षों तक देना स्वीकार किया। इन उदारवादी प्रक्रियाओं एवं रियायतों के अतिरिक्त आयात प्रक्रियाओं के सरलीकरण हेतु भारत सरकार द्वारा TRIP, पेटेंट अधिनियम लागू किये गये तथा आवश्यकतानुसार समय समय पर उन्हें संशोधित भी किया जाता रहा।

1.6.2.3 विदेशी पूंजी को आमंत्रण :–

विदेशी पूंजी को आकृष्ट करने के लिए तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने विदेशी विनियोगकर्ताओं के लिए अपने द्वार खोल दिये। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत सरकार ने विदेशी विनियोजकों एवं अनिवासी भारतीयों को विभिन्न प्रोत्साहन एवं सुविधायें प्रदान की। 1991 में सरकार ने उच्च तकनीक तथा अधि विनियोजन प्राथमिक उद्योगों (अनुसूची III में सूचीकृत) को विशिष्टीकृत किया जिनमें विदेशी समता के लिये सीधे विदेशी निवेश के 51% विनियोग की स्वतः अनुमति है। इस सीमा को कुछ विशिष्ट उद्योगों के लिए 51% से बढ़ाकर 74% तथा कुछ के लिए 100% कर दिया गया। कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में विदेशी सीधे निवेश पर प्रतिबन्ध के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में विशिष्ट नियमों एवं परिनियमों के तहत विदेशी पूंजी का सीधे निवेश संभव है।

1.6.3 वैश्वीकरण के प्रभाव :–

1.6.3.1 बाह्य क्षेत्रों का प्रभाव :–

1991 में वैश्वीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के पश्चात् उद्योगों में नीतिगत परिवर्तनों की दृष्टि से बाह्य क्षेत्रों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। 1994 एवं 1995 में वित्त मंत्री ने अपने अभिभाषण में बाह्य क्षेत्रों के मोर्चे पर निम्न उपलब्धियों का उल्लेख किया–

1. हमारे विदेशी मुद्रा कोष जो 1991 में बुरी तरह गिरकर एक बिलियन डालर रह गये थे 1995 में बढ़कर 20 बिलियन डालर से भी अधिक हो गये।
2. विनिमय दर एवं व्यापार नीतियों में सुधार की दृष्टि से निर्यातकों ने सकारात्मक रूख प्रदर्शित किया। वहीं अर्थव्यवस्था में आयातों में भी सुधार हुआ है तथा भुगतान संतुलन की स्थिति भी संतोषजनक हुई है।
3. कुछ क्षेत्रों का यह भय कि हमारी सुधारवादी उदार व्यापार नीति से आयात की हानिकारक बाढ़ सी आ जायेगी तथा अर्थव्यवस्था को कमजोर

करेगी, पूर्णतः भ्रामक सिद्ध हुआ। उदारीकरण एवं खुलेपन की नीति से हमारे आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है।

4. 1990–91 में चालू खाते का घाटा सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 3% से भी अधिक था जो कि 1994–95 में 0.5% से भी कम अनुमानित है।
5. संकट के दौर में या मंदीकाल में हमारी बाह्य देनदारियां 8 बिलियन वार्षिक की दर से बढ़ी थी परन्तु 1993–94 में यह घटकर 1 बिलियन डालर वार्षिक से भी कम हो गयी।
6. विभिन्न भयों के विपरीत रूपये की विनिमय दर उल्लेखनीय रूप से स्थिर हुई। विदेशी विनिमय के हवाला आदि अवैध स्रोत प्रतिबन्धित हुये तथा वैधानिक प्रक्रिया सशक्त हुई।
7. भारत में अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास पुनः जागृत हुआ जिसके परिणामस्वरूप पिछले तीन–चार वर्षों में सीधे विदेशी निवेश एवं पोर्टफोलियो निवेश में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

1.6.3.2 भारतीय उद्यमों पर प्रभाव :–

भारत में वैश्वीकरण प्रक्रिया का नेतृत्व एक असमान प्रतियोगिता था – वृहद एवं अति विशाल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं छोटे भारतीय उद्यमों के मध्य। भारत के विशाल उद्यम भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के समक्ष बौने से दृष्टिगोचर हो रहे थे। पश्चिमी बंगाल के एक सांसद ने भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण पर तुलना करते हुए इसे चूहा और हाथी की तुलना बताया था।

उदारीकरण के प्रारम्भिक उत्साह के दौर में निजी क्षेत्रों ने सरकारी उपायों का स्वागत किया परन्तु शीघ्र ही उन्हें अनुभव हुआ कि भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रतियोगिता के लिये खोलने का अर्थ सस्ते आयात, अधिक विदेशी विनियोग, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को विलय अधिग्रहण के अवसर प्रदान करना तथा कमजोर अर्थव्यवस्था का सामना सशक्त बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से आदि था। इसके पश्चात् विभिन्न भारतीय उद्योगपतियों एवं औद्योगिक संस्थाओं ने इस पर तीखी तथा विपरीत प्रतिक्रिया व्यक्त की। एस0के0 बिरला, राहुल बजाज, एम0वी0 सुबीह, बौम्बे क्लब, भारतीय उद्योग फैडरेशन आदि ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को वित्तीय रूप से अत्यधिक शक्तिशाली माना और आशंका व्यक्त की कि यह बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारतीय ब्रांडों को क्रय करने एवं समाप्त करने का उद्‌देश्य लेकर आयी हैं। यह भी कहा गया कि इन्हें अतिस्वतन्त्र करना भारतीय व्यापार एवं उद्योग के लिए घातक है। यदि इन्हें रोका या प्रतिबन्धित नहीं किया गया तो भारतीय अपने ही देश में दोयम दर्जे के हो जायेंगे। एसोचैम के अध्यक्ष एच0 सोमानी ने कहा कि हमें विदेशी पूंजी के हिंसक या लुटेरी प्रवृत्ति के प्रति सावधान रहना चाहिये द्वेषपूर्ण अधिग्रहण इसी की एक कड़ी है।

1.7 सारांश

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है आस पास का वातावरण, माहौल, बाह्य तत्व, प्रभावशीलता या परिस्थितियां जिनके मध्य कोई या कुछ विद्यमान रहता है। किसी भी संस्था या संगठन के पर्यावरण में वह सभी परिस्थितियां या घटनायें सम्मिलित होती हैं जो किसी भी प्रकार उसको चारों तरफ से प्रभावित करे। पर्यावरण उन सभी बाह्य शक्तियों से सम्बद्ध है जो व्यवसाय की कार्यप्रणाली को प्रभावित करें। व्यावसायिक पर्यावरण से आशय से आशय उन सभी तत्वों से है जो व्यवसाय को

किसी भी प्रकार प्रभावित करते हैं। इन शक्तियों, संसाधनों एवं पर्यावरणीय तत्वों की सकारात्मक स्वीकार्यता पर किसी व्यवसाय का अस्तित्व एवं सफलता निर्भर करती है। अतः किसी भी फर्म या संस्था का अस्तित्व एवं सफलता दो प्रकार के तत्वों पर निर्भर करती है– आन्तरिक घटक या आन्तरिक पर्यावरण – बाह्य घटक या बाह्य पर्यावरण। दीर्घकालीन समय तक भारतीय व्यवसाय अकुलशलता, कम उत्पादन एवं अधिक लागत के कारण आश्रित बाजार के रूप में कार्य करते रहे। फिर सन् 1990 में समस्त सुरक्षात्मक प्रयासों को समाप्त कर दिया गया।

भारत में वैश्वीकरण का अर्थ भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना है। इसका स्पष्ट तात्पर्य विदेशी विनियोगों को भारत में सीधे प्रवेश एवं विदेशी कम्पनियों को भारत में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में हिस्सेदारी के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाये प्रदान करने से है। इस सम्बन्ध में लगाये गये विभिन्न प्रतिबन्धों को शिथिल किया जाना जो कि फेरा कानून के रूप में लागू किये गये तथा भारतीय कम्पनियों एवं विनियोगकर्ताओं को विदेशी कम्पनियों से सहयोग एवं सामन्जस्य स्थापित करना तथा उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक स्तर पर व्यापार के अवसर प्रदान करना है। आयात प्रक्रिया को विभिन्न प्रतिबन्धों को समाप्त कर सुगम बनाना, विदेशी संस्थाओं के साथ संयुक्त उपक्रम स्थापित करना, निर्यात संवर्द्धन हेतु विभिन्न योजनायें एवं प्रस्ताव लागू करना आदि वैश्वीकरण की दिशा में उठाये गये कदम हैं। 1991 की उदारीकरण एवं वैश्वीकरण प्रक्रिया ने व्यापारिक क्षेत्रों को एक नयी दिशा दी तथा घरेलू एवं विदेशी विनियोगकर्ताओं को लाभार्जन के नवीन अवसर प्रदान किये।

1.8 शब्दावली

पर्यावरण – व्यवसाय की कार्यप्रणाली को प्रभावित करने वाले बाह्य तत्व

व्यवसाय – एक ऐसी संस्था या फर्म जो वस्तु, सेवा या दोनों का व्यापार उपभोक्ताओं के लिए करे

वैश्वीकरण – अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया

उदारीकरण – सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र की नीतियों पर सरकार द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों को शिथिल या समाप्त करना।

व्यापक अर्थशास्त्र – यह अर्थशास्त्र की एक शाखा है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की संरचना, स्वभाव, प्रदर्शन, निर्णयन आदि का अध्ययन किया जाता है।

स्फीति – किसी अर्थव्यवस्था में एक निश्चित अवधि में वस्तु एवं सेवाओं के मूल्यों में सामान्य वृद्धि होना।

1.9 बोध प्रश्न

1. .... का शाब्दिक आशय उस परिवेश, वाह्य तत्वों से है जिनसे कुछ या कोई घिरा हुआ है अथवा प्रभावित होता ळें
2. ....ने सर्वप्रथम अपने लेख जिसका शीर्षक "The Globalization of Markets" था सन् 1983 में वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग किया।
3. जब राजकोषीय प्राप्तियों से राजकोषीय व्यय अधिक हो जाते हैं तो उसे राजकोषीय ....कहा जाता है।

4. उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराने के लिए 1948 में सरकार ने .... की स्थापना की ।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. पर्यावरण 2. Theodore Levitt 3. असन्तुलन 4. IFCI

1.11 स्वपरख प्रश्न

1. पर्यावरण की विशेषतायें बताइये।
2. पर्यावरण एक व्यापार को किस प्रकार प्रभावित करता है ?
3. समकालीन व्यवसाय की प्रमुख विशेषतायें विस्तार से समझाइये।
4. भारतीय व्यावसायिक पर्यावरण के प्रमुख तत्वों पर एक विस्तृत आलेख लिखिये।
5. भारतीय वैश्वीकरण को आगे बढ़ाने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
6. भारतीय वैश्वीकरण को समृद्ध करने एवं शक्ति प्रदान करने वाले प्रमुख कारकों को बताइये।
7. भारत में वैश्वीकरण के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

1. ''वर्तमान व्यवसाय में पर्यावरण का अध्ययन अनिवार्य है'' व्याख्या कीजिए।
2. भारतीय संगठन के लिए वैश्वीकरण एक चुनौती है अथवा अवसर? विश्लेषण कीजिए।
3. विश्व व्यवसाय वातावरण की विशिष्टताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. भारतीय व्यावसायिक पर्यावरण के परिदृश्य का विस्तृत वर्णन कीजिए।

1.12 संदर्भ पुस्तकें

1. B. R. Nayar, "Globalisation and Nationalism", Sage, New Delhi, 2001
2. D. Nayyar, "Globalisation : What does it Mean for Development", Konark, New Delhi, 1998
3. P. A. Samuelson et al, "Economics", Tata McGraw-Hill, New Delhi, 1998

इकाई 2 व्यवसाय तथा समाज

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 व्यवसाय के उद्देश्य तथा बदलती अवधारणा

2.2.1 मूल्य

2.2.2 जीवन क्षमता

2.2.3 लोक जीवन क्षमता

2.3 पर्यावरण मामले

2.4 ऊर्जा के मामले

2.4.1 शक्ति के वैकल्पिक श्रोत

2.5 महिलायें तथा व्यवसायिक अवसर

2.5.1 व्यवसाय में महिलायें

2.5.2 महिला रोजगार की समस्यायें

2.6 बाल श्रम

2.6.1 बाल रोजगार क्यों है?

2.6.2 बाल श्रम एक सार्वभौमिक अवधारणा

2.6.3 उपाय

2.7 ग्रामीण विकास

2.8 परियोजना तथा व्यक्ति

2.9 शरीरिक रूप से अक्षम

2.10 एक्वायर्ड इम्यून डेफिसियेन्सी सिड्रोम (AIDS एड्स)

2.11 सामाजिक अंकेक्षण

2.11.1 अर्थ

2.11.2 सामाजिक अंकेक्षण के उद्देश्य व लाभ

2.11.3 सामाजिक अंकेक्षण की विधियाँ

2.11.4 सामाजिक अंकेक्षण की कठिनाइयाँ

2.11.5 भारत मे सामाजिक अंकेक्षण

2.12 सारांश

2.13 शब्दावली

2.14 बोध प्रश्न

2.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.16 स्वपरख प्रश्न

2.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यवसाय की परिभाषा तथा उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- पर्यावरण से संबंधित मामलों की पहचान कर सकें।
- व्यवसाय में महिलाओं के महत्व का विवेचन कर सकें।
- बाल श्रम, ग्रामीण विकास, शारीरिक रूप से अक्षम आदि की समस्यायों का वर्णन कर सकें।

- सामाजिक अंकेक्षण का विवेचन कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

व्यवसाय तथा समाज के मध्य संबंध के मुख्य पक्ष में व्यवसाय की उपभोक्ताओं, कर्मचारियों तथा स्वामियों के प्रति सीधी जवाबदेयता से है। इस इकाई में सामाजिक उत्तरदायित्व के द्वितीय भाग का विवेचन प्रस्तावित है जिसे व्यवसाय का समाज के प्रति उत्तरदायित्व के नाम से जाना जाता है। व्यवसाय का समाज के प्रति उत्तरदायित्व में पारिस्थितिकी, उपभोक्तावाद, महिलाओं की स्थिति में सुधार, ग्रामीण विकास, नये परियोजना, शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्ति तथा एड्स से संघर्ष से संबंधित वृहद क्षेत्र सम्मिलित है। व्यवसाय का दिन–प्रतिदिन इन हितबद्ध पक्षों से प्रत्यक्ष संबंध हो भी सकता है और नही भी। परन्तु व्यवसाय का महिलाओं, बालश्रम, परिस्थितिकी तथा ग्रामीण विकास, जो समाज के एक भाग है, के प्रति कर्तव्य होता है।

इस इकाई में आप व्यवसाय के उद्देश्य तथा उसके मामलों, महिलाओं तथा व्यवसायिक अवसर, ग्रामीण विकास, सामाजिक अंकेक्षण का अध्ययन करेंगे।

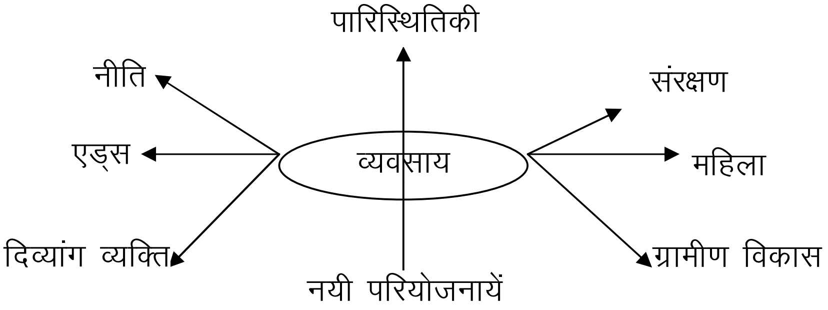

चित्र 2.1

2.2 व्यवसाय के उद्देश्य तथा बदलती अवधारणा

व्यवसायिक फर्में ऐसे संगठन है जो लाभ के लिये उत्पाद के निर्माण में संलग्न रहते हैं या सेवायें प्रदान करते हैं। वृहद अर्थों में समाज से आशय मानव तथा उसके द्वारा सामूहिक रूप उत्पन्न सामाजिक ढाँचे से है। व्यवसाय समाज का एक अंग है तथा उसके आन्तरिक पर्यावरण/वातावरण के साथ होने वाले लेन–देन में संलग्न रहता है। व्यवसाय तथा समाज मिलकर एक पारस्परिक सामाजिक पद्धति का निर्माण करते हैं जिसके कार्य अन्य को आकर्षित/प्रभावित करते हैं।

समाज मानव संबंधों का नेटवर्क है जिसमें विचारों, संस्थाओं तथा भौतिक वस्तुओं को शामिल किया जाता है।

- विचार, सोच के अदृश्य तत्व होते हैं। विचार में निम्न सम्मिलित होते हैं:
- मूल्यों या अटल विश्वास जो मूलभूत जीवन चयनों से संबंधित हो।
- विचारधारा या मूल्यो का समूह जो वैश्विक विचार उत्पन्न करते हैं।

संस्थायें, संबंधों का औपचारिक प्रारूप है जिसमें लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यक्ति आपस में मिलते हैं। भौतिक वस्तुये समाज की दृश्य (कौशल) होती है।

सरकार से आशय संस्था में ढॉचो तथा प्रक्रियाओं से है जो अधिकारपूर्वक नीतियों तथा नियमों को बनाते तथा लागू करते हैं। व्यवसाय से आशय लाभार्जन के उद्देश्य से मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट करने हेतु वस्तुओं तथा सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए वृहद मात्रा में कार्यों, संस्थाओं तथा संचालन से है।

व्यवसाय को सामाजिक संविदा के साथ अनुपालन करना चाहिए जैसे व्यवसाय तथा समाज के मध्य काल्पनिक, अलिखित ठहराव जो व्यवसाय के मूलभूत दायित्वों तथा कर्तव्यों को परिभाषित करते हैं। पूर्वाकाल में आर्थिक सिद्धान्त की एक मूल अवधारणा थी कि व्यवसाय का आधारभूत उद्देश्य लाभ अधिकतमीकरण है, जबकि वर्तमान अवधारणा इससे भिन्न है, लाभ अधिकतम करना द्वितीयक उद्देश्य है। सामान्य व्यक्ति के लिये व्यवसाय से आशय उद्योग तथा वाणिज्य से है।

व्यवसाय की प्राचीन अवधारणा वाणिज्य तथा निजी लाभ तक सीमित थी, वर्तमान में इसमें गुणोत्तर परिवर्तन हुआ है। आज व्यवसाय को एक सामाजिक संस्थान माना जाता है जो सामाजिक पद्धति के आन्तरिक भाग का निर्माण करती है।

डेविस तथा ब्लामस्टार्म के अनुसार ''व्यवसाय एक सामाजिक संस्था है, जो सामाजिक मिथक का कार्य करती है तथा व्यक्ति के कार्य तथा जीवन दोनों की वृहद स्तर पर प्रभावित करता है।''

काल्किन के अनुसार, ''यह पाया गया कि व्यवसाय की दिशा सामाजिक कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है। व्यवसायी सामाजिक कार्य करते हैं।''

डेविस तथा क्लामस्टार्म के अनुसार, ''समाज का आधुनिक दृष्टिकोण पारस्थितिकी से संबंधित है। परिस्थितिकी, मानव जनसंख्या या पद्धतियों का पर्यावरण से आपसी संबंध है। व्यवसाय को शेष समाज से पृथक नही किया जा सकता है। वर्तमान में सम्पूर्ण समाज में व्यवसायिक पर्यावरण है।''

2.2.1 मूल्य

व्यवसाय में भी अन्य सामाजिक संस्थाओं की भाँति कुछ विश्वास पद्धति तथा मूल्य विकसित किये जाते हैं। जिसके लिये उसकी स्थापना हुयी है तथा ये विश्वास तथा मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय प्रेरक के श्रोत हैं। ये विश्वास, भीड़ से संचालित होते हैं जैसे व्यवसाय का सामाजिक संस्था के रूप में मिलान, देश जहाँ व्यवसाय स्थित है, तथा कर्मचारियों के स्वभाव। ये मूल्य, व्यवसाय के कर्मचारियों में लिये मार्गदर्शन का काम करते हैं। दूसरे, ये व्यवसाय में व्यक्तियों के लिये सशक्त अभिप्रेरक होते हैं।

व्यवसाय, स्वस्थ समाज तथा समृद्धि को उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु सामाजिक चुनौती के प्रति बढ़ती जागरूकता से कम्पनियाँ वृहद समुदाय की लागत पर समृद्धि में वृद्धि कर रही है। सामाजिक, पर्यावरणीय तथा आर्थिक समस्याओं के मुख्य कारण के रूप में व्यवसाय भी देखा जाता है। सरकार तथा सिविल समाज, व्यवसाय की लागत पर सामाजिक मामलों की व्यवस्था करने का प्रयास करते हैं। व्यवसाय में दृष्टिकोण से लोकोपकार मूल्यों को उत्पन्न करके निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व की व्याख्या का साधन है।

मूल्य : निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत 'अच्छे कृत्य' के मूल्य उत्तम नागरिकता, लोकोपकार तथा दीर्घजीविता को सम्मिलित करते है जबकि बाँटे गये मूल्यों में लागत के सापेक्ष आर्थिक तथा सामाजिक लाभ आते हैं।

2.2.2 जीवन क्षमता

डेविस तथा बलाम स्टार्म ने जीवन क्षमता को, ऐसी क्षमता को प्राप्त करने जिसमें तक अभी नही पहुचा जा सका है। तथा जीवन पद्धति जो प्राप्त करने योग्य है, को प्राप्त करने हेतु रहने तथा विकास के साधन के रूप में परिभाषित किया जाता है।

2.2.3 लोक जीवन क्षमता

पद 'लोक जीवन क्षमता से आशय संगठन के बाहर के व्यक्तियों की संगठनात्मक गतिविधियों से है। लोक जीवन क्षमता लोक धारणा के विचार से भिन्न है लोक धारणा से आशय संगठनात्मक कृत्यों के प्रति व्यक्तियों के विचार से है, जबकि लोग जीवन क्षमता से आशय उसके कृत्यों को किस सीमा जाना जाता है, से है। लोक जीवन क्षमता का महत्व यह है कि वह व्यावसायिक कृत्यों का लोक परीक्षण, विचार विमर्श तथा निर्णयन से संबंधित है। यदि कृत्य नही जाने जाते हैं तो उनका निर्णयन नही हो सकता है।

निगमीय सामाजिक उत्तदायित्व का मुख्य पक्ष यह है कि यह वैकल्पिक है। हॉ लोक 'विकल्प' एक सापेक्षिक पद है। बाजार व्यवसायों पर उत्तरदायित्व निभाने हेतु तीव्र दबाव डालता है। यहाँ इसमें वाणिज्यिक कारण है कि कम्पनियों को क्यों नीतिपूर्ण तथा स्थापित मूल्यों एवं अधिकारों के अनुसार कार्य करना चाहिये ।

2.3 पर्यावरणीय मामले

प्रारम्भिक रूप में, पर्यावरणीय मामलों से आशय जनसंख्या वृद्धि तथा औद्योगीकरण के अन्तरसंबंधित तत्वों से है। विकेन्द्रित उद्योगों की स्थापना तथा शहरी व ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि से जल, वायु तथा भूमि संसाधनों पर दबाव बढ़ा है, जो पर्यावरण के अपघटन के रूप में देखा जा सकता है।

वर्षों से औद्योगीकरण प्रक्रिया के परिणामस्वयप औद्योगिक गतिविधियों, जिसमें खतरनाक सामग्री का उपयोग तथा ठोस अपशिष्ठ का निर्माण सम्मिलित है, का उद्भव हुआ। ठोस अपशिष्ट का भण्डारण, डम्पिंग तथा ट्रिटमेण्ट से औद्योगिक क्षेत्र में बृहद समस्याओं का जन्म हुआ। पेट्रोकेमिकल उद्योगों के विकास से ज्वलनशील तथा विस्फोटक रसायनों के विनियमतीकरण/नियंत्रण की समस्या भी बढ़ी है। उद्योग अपना बचा जल नदियों मे गिराते हैं तथा यह जल बिना शुद्धीकरण के नदियों में डाला जाता है। 17 राज्यों के 11 शहरों के 241 वर्ग में केन्द्रीय पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड द्वारा किये सर्वे में निष्कर्ष निकला कि कुल जल आपूर्ति का 90 प्रतिशत जल प्रदूषित है।

वायु प्रदूषण का मुख्य कारण औद्योगिक इकाइयॉ थर्मल पावर प्लाण्ट में फोसिल ईधन (कोयला, पेट्रोलियम या गैस) का उपयोग होता है जो वातावरण में सल्फर होता है जो वातावरण में सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, काबन मोनोआक्साइड, कार्बनडाइआक्साइड आदि के उत्सर्जन से वायु प्रदूषण में वृद्धि करते हैं। खदान उद्योग भी अपने आस पास के क्षेत्र में वायु तथा जल प्रदूषण का कारक है। खदान की खुदाई के कारण उस क्षेत्र के भूमि व अंकन को

क्षति होती है। गैसीय उत्सर्जन से एसिड वर्षा होती है जो क्षेत्र की मृदा शाकाहारी तथा जीवन की प्रभावित करती है।

सूक्ष्म कणों के मामले अधिकतर शहरों में पाये जाते हैं जहॉ अधिक औद्योगीकरण तथा वाहन होते हैं। सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मामले तथा टेस्पीरेबल पार्टीकुलेट मामलों के परिणामस्वरूप धूल संबंधी स्वास्थ्य बीमारियाँ होती है। धूल प्रदूषण सामान्यतः निर्माण कार्य। उद्योग का परिणाम है जैसे भवन सामग्री का भण्डारण आदि। एस0पी0एम0 (SPM) की परमीसिबिल सीमा 140 Hg/M^3 वार्षिक तथा 24 घंटे के लिये 200 Hg/M^3 है। आर0पी0एम0 के लिये औसत सीमा 60 Hg/M वार्षिक तथा 24 घंटों के लिये 100 Hg/M^3 है। 10 माइक्रोग्राम से बड़े धूल के कण हवा में नीचे आ जाते हैं जबकि छोटे कण हवा में अनिश्चित काल तक बने रहते हैं। उत्सवों तथा त्यौहारों जैसे दीवाली व विवाह में पटाखों के प्रयोग से शहरों तथा उपशहरों के प्रयोग से शहरों तथा उपशहरों में वायुतथा ध्वनि प्रदूषण फैलता है। बड़े शहरों में ध्वनि प्रदूषण सड़क यातायात तथा वायुयानों से फैलता है जो मानव स्वास्थ्य तथा श्रवण क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। इसमें शारीरिक तथा मानसिक दबाव बढ़ता है। भूमि अपघटन विभिनन रूपों में गिरावट, एग्रो रासायनिक प्रदूषण भूममि क्षरण, शाकाहारी अपघटन अभिलिखित है। मानवीय गतिविधियों से भी भूमि अपघटन होता है जिसमें कृषि भूमि का गलत उपयोग, कमजोर मृदा, जल प्रबंधन, कृषि विधियाँ आती है। राष्ट्रीय आपदाओं (सूखा, बाढ़ आदि) से भी भूमि अपघटन होता है।

ग्लोबल वार्मिंग एक अन्य पर्यावरणीय समस्या है जिसे वैज्ञानिकों द्वारा खोजा गया तथा अन्तर्राष्ट्रीय रूप में इसकी पहचान क्योंरी प्रोटाकाल तथा पर्यावरण परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क समझौते (UNFCC) द्वारा बनी।

विश्वव्यापी पर्यावरण परिवर्तन या ग्लोबल वार्मिंग का कारण ग्रीन हाउस गैसों (कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन, नाइट्स आक्साइड, हाइड्रोफ्लूरो कार्बन, परफ्लरो कार्बन तथा सल्फर हेक्साफ्लूराइड) का उत्सर्जन है। इन ग्रीन हाउस गैसों में 60 प्रतिशत अंश के साथ कार्बन डाइआक्साइड सबसे बड़ा प्रदूषक है तथा उसके बाद 15–20 प्रतिशत अंश मीथेन गैस का है।ये गैसे स्ट्रेटोस्फीयर में ओजोनपरत के विघटन की कारक है। ओजोन परत धरती को सूर्य की अल्ट्रावायलेट जैसे– श्वसन, एलर्जी, सूखा, कफ, अस्थमा आदि से बचाती है। इन गैसों के कारण ग्लोबल वार्मिंग बढ़ी जिससे समुद्र स्तर में वृद्धि ग्लेशियर व पहाड़ों पर बर्फ का टूटना तथा समुद्र के किनारे के क्षेत्र डूब जाते हैं। वर्ष 2007 में पर्यावरण परिवर्तन पर अन्तर सरकारी पैनल की चौथी एसेसमेंट रिपोर्ट के अनुसार विगत 650000 वर्षों में कार्बन डाइआक्साइड का सतर वर्ष 2005 के बाद बहुत अधिक बढ़ गया है। दिसम्बर 2007 में इण्डोनेशिया, बाली में आयोजित यू0एन0 पर्यावरण परिवर्तन कांफ्रेंस में निर्णय हुआ कि सभी विकसित तथा विकासशील देश क्योटो प्रोटोकाल के अनुसार सी0डी0एम0 (Clean Development Mechanism) प्रोजेक्ट का पंजीकरण करेगा तथा इसे लागू करेगा।

2.4. ऊर्जा मामले

आर्थिक विकास निर्विवाद रूप से उर्जा के आदानों पर निर्भर है। जैसे प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग को देश के आर्थिक विकास का संकेतक माना जाता है।

भारत की ऊर्जा नीति का संकेन्द्रण मुख्यतः ऊर्जा के वैकल्पिक श्रोतों न्यूक्तियां, सौर तथा वायु उर्जा पर है।

भारत के 70 प्रतिशत ऊर्जा क्षमता का उत्पादन, फोसिल ईधन से होता है, जिसमें 40 प्रतिशत कोयला, 24 प्रतिशत कच्चा तेल तथा 6 प्रतिशत प्राकृतिक गैस है। भारत अपने ऊर्जा मांग की पूर्ति हेतु ईधन के आयात पर निर्भर है। वर्ष 2030 तक भारत की उर्जा आयातों पर निर्भरता, उसके कुल उर्जा उपभोग के 53 प्रतिशत तक वृद्धि प्रत्याशित है।

तीव्र आर्थिक विस्तार के कारण भारत का ऊर्जा बाजार, विश्व के तीव्रतर वृद्धि होने वाले बाजारों में है तथा वर्ष 2035 तक वैश्विक ऊर्जा मांग की वृद्धि में योगदान देने वाला दूसरा सबसे बड़ा देश होगा। (वैश्विक ऊर्जा उपभोग में 18 प्रतिशत वृद्धि) भारत की बढ़ती ऊर्जा मांग तथा सीमित घरेलू फोसिल ईधन आपूर्ति के कारण देश ने अपनी योजनाओं में नवीकरण तथा आणविक ऊर्जा उद्योगों पर ध्यान केंन्द्रित किया है। वायु ऊर्जा बाजार में भारत का विश्व में पॉचवा स्थान है तथा वर्ष 2022 तक सौर ऊर्जा क्षमता को जोड़ने की योजना है। भारत अगले 25 वर्षों में कुल ऊर्जा उत्पादन क्षमता में आणविक ऊर्जा का योगदान को 4.2 प्रतिशत से 9 प्रतिशत तक वृद्धि प्रस्तावित है। भारत में 5 आणविक रियेक्टर निर्माण में संलग्न है।

भारत में ऊर्जा के परंपरागत स्रोतों कोयला, तेल तथा प्राकृतिक गैस फोसल ईंधन के रिजर्व को ऊर्जा के गैर नवीकरण श्रोत के नाम से भी जाना जाता है, सीमित है, जो वर्तमान उपभोग दर के हिसाब से 20–25 वर्षों के बिलों ही है, जबकि भारत में आर्थिक विकास ने व्यक्तियों की जीवन शैली तथा औद्योगिक व्यवहार में उर्जा की आवश्यकता में वृद्धि की है। ऊर्जा की उत्पादन तथा उपभोग आवश्यकता मे विगत दशक में 64 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है, जो प्रस्तावित वृद्धि दर के 10 प्रतिशत वार्षिक है।

भारत का ऊर्जा उत्पादन कोयले पर निर्भर है। वर्ष 1995 में भारत के ऊर्जा उत्पादन में कोयला 63.3 प्रतिशत पेट्रोलियम 18.6 प्रतिशत है जल विद्युत 8. 9 प्रतिशत प्राक1तिक गैस 8.2 प्रतिशत तथा आणविक ऊर्जा का योगदान 1 प्रतिशत थाज ो 2007–08 में कोयला 62.2 प्रतिशत हो गया। भारत के कुल विद्युत उत्पादन क्षमता का 10.5 प्रतिशत गैस या द्रव ईधन पर आधारित है। बढ़ती हुयी ऊर्जा मॉग की पूर्ति हेतु थर्मल पावर के उत्पादन के लिये इन वर्षों में कोसिल ईधन विशेषतः कोयला का उपयोग किया गया है। इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण में खतरनाक गैसों का उत्सर्जन तथा राख प्रदूषण फैला रही है।

2.4.1 शक्ति के वैकल्पिक स्रोत :

जल विद्युत तथा आणविक विद्युत के ऊर्जा के वैकल्पिक श्रोतों, कुछ नवीकरण श्रोत है– जिन्हें 'आय' ऊर्जा कहते हैं जैसे सोर ऊर्जा व वायु ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।

भारत में 150000 MW जल विद्युत शक्ति के उत्पादन का अनुमान है, वर्ष 2007 के अन्त तक मात्र 21.14 प्रतिशत ही विकसित थे तथा 9.53 प्रतिशत की विकसित होना था। जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा उत्तर पूर्व में सीमित होना है। जल विद्युत शक्ति के धीरे विकास का कारण कठिन क्षेत्र, भूमि अधिग्रहण की कठिनाई, पुनर्वास, पर्यावरण तथा वन संबंधी मामले,

अन्तरराज्य मामले, निर्माण की लम्बी अवधि, भौगोलिक भिन्नता है। जनवरी 2006 तक जल ऊर्जा में निजी क्षेत्र का योगदान नगण्य था, जब विद्युत टैरिक नीति को लाया गया जिसमें निजी क्षेत्र तथा पी0एस0यू0 द्वारा प्रोजेक्ट, विकास को पूँजीगत करे तथा विशेष ध्यान दिया गया।

आणिविक ऊर्जा एक अन्य वेकल्पिक ऊर्जा का प्रत्याशित स्रोत है। अप्रैल–दिसम्बर 2007 के दौरान भारत में कुल ऊर्जा उत्पादन का 2 प्रतिशत आणविक ऊर्जा का योगदान था। इसी अवधि में कुल ऊर्जा 525 बिलियन kwh में आणिविक ऊर्जा 12.8 बिलियन kwh थी। आणविक ऊर्जा के विकास के लिये दो महत्वपूर्ण कच्चा माल आवश्यक है– यूरेनियम तथा कुछ मात्रा में थोरियम। भारत के पास विश्व के कुल ज्ञात थोरियम का 24 प्रतिशत जबकि यूरेनियम बहुत कम है। यूरेनियम की उपलबधता, उपकरणों की पूर्ति ताकि सक्षम तकनीक तक पहुँच आदि अन्तर्राष्ट्रीय डील के मामले हैं। आणविक ऊर्जा के प्रति किलोवाट उतपादन में उच्च लागत तथा रेडियो ऐक्टिव तत्वों का उत्सर्जन होता है जो प्रतयक्ष रूप से जुड़े लोगों के साथ भावी पीढ़ी के लिये भी हानिकारक है। रेडियोएक्टिव अपशिष्ट का उत्सर्जन अनेक समस्यायें उत्पन्न करता है तथा न्यूक्लियर रियेक्टर से बड़ी मात्रा में अपशिष्ट निकलता है। रियेक्टर खराब होने पर न तो उन्हें नष्ट कर सकते हैं तथा न ही कहीं हस्तान्तरित कर सकते हैं और वे लगातार वायु, जल तथा भूमि में रेडियोऐक्टिव तत्वों का उत्सर्जन करते रहते हैं।

सौर ऊर्जा कभी न समाप्त होने वाला शक्ति का सत्रोत हैं परन्तु वर्षों के शोध से वैज्ञानिक द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचे कि सौर ऊर्जा, बड़ी मात्रा में वृहद प्लाण्ट के लिये तथा संकेन्द्रित उपयोगों के लिये अनुपयुक्त है। सौर ऊर्जा का उपयोग निम्न क्षमता के कारण लघु स्तरीय इकाइयों में कर सकते हों। सौर ऊर्जा का उपयोग कई प्रकार से कर सकते हैं जेसे वाटर हीटर, पानी के पम्प, कुकर आदि।

वायु ऊर्जा, का अन्य श्रोंत है गैर परमपरागत ऊर्जा स्रोतों के मंत्रालय के अनुसार पवन ऊर्जा का उत्पादन 45000MW हो जायेगा। भारत में समन्वित पवन ऊर्जा कार्यक्रम वर्श 1980 के मध्य में लागू किया गया, जिसमें लोकोपयोगी तथा आधारभूत संख्याओं के निर्माण वाले उद्योगों को शामिल किया गया देश में पवन ऊर्जा के विकास के लिये सेंटर फार विंड एनर्जी टेक्नालाजी (C-WET) की स्थापना की गयी है, जो वृहद निजी क्षेत्र निगमों लोक क्षेत्र की इकाइयों तथा ऊर्जा उपयोग को पवन ऊर्जा प्रोजेक्ट के लिए अभिप्रेरित करती है।

भारत में सभी परंपरागत तथा गैर परंपरागत ऊर्जा श्रोतों में बायोगैस के बाद पवन ऊर्जा का सबसे अधिक उत्पादन है। इसके विकास हेतु वर्ष 1986 में नेचुरल एनर्जी प्रोसेसिंग कम्पनी (NEPC) की स्थापना जल पमप करने वाली पवन मिली तथा एग्री जनरेटर के साथ की गयी। इस निजी क्षेत्र की उपक्रम ने 2000 से अधिक पवन टर्बाइन जनरेटर (WTG) स्थापित किये जिनकी क्षमता 400 MW है जो देश की कुल स्थापित क्षमता का 30 प्रतिशत है।

निवेशकों की दृष्टिकोण से पवन ऊर्जा क्षेत्र अनेक लाभ आमंत्रित करता है इसमें पवन मिलों सें गैर प्रदूषित ऊर्जा के अतिरिक्त स्थापना वाले वर्ष में कर में 80 प्रतिशत ह्रास की व्यवस्था है। पवन टर्बाइन जनरेटर द्वारा उत्पादित ऊर्जा शक्ति पर कोई कर या शुल्क नही लगेगा। पवन ऊर्जा में मूल्य उच्चावचन नही होता है क्योंकि इसकी ईधन लागत शून्य होती है। पवन ऊर्जा के उत्पादन हेतु वित्तीय संस्थान तथा भारतीय नवीकरण उर्जा विकास एजेन्सी (IREDA) कम ब्याज दर पर वित्तीय सहायता उपलबध कराते हैं।

2.5 महिला तथा व्यावसायिक अवसर

पूर्वकाल से ही इस पुरूष सत्तात्मक समाज में महिलाओं सें भेदभाव हो रहा है। अधिकांश कन्यायें कम उम्र में ही विवाहित हो जाती है। विधवा पुनर्विवाह को समाज में अच्छा नही माना जाता है, उनका शैक्षिक स्तर प्राइमरी या अधिकाधिक स्कूल सतर तक ही है, विशेषतः ग्रामीण तथा छोटे कसबों में महिलायें अपरिपक्व तथा बाहरी दुनिया से कटी रहती है तथा महिलाओं का केवल भोजन पकाने के लिये उपयुक्त माना जाता है, व्यावसायिक उपक्रमों के लिये नहीं हालॉकि संविधान लिंग आदि क आधार पर पक्षपात से रहित है। सम्पूर्ण संविधान में महिलाओं का जिक्र मात्र 6 बार हुआ है जिसमें से 5 बार वे पुरूषो तथा बच्चों के साथ जोड़ दी गयी हैं अनुच्देद 14 में लिंग की समानता का विशेष प्रावधान है जबकि अनुच्देद 15 पर भी गुणवत्ता, अवसर तथा सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक न्याय की भी गारण्टी देता है।

महिलाओं की स्थ्इाति के विषय में राष्ट्रीय कमेटी की रिपोर्ट में यह पाया गया कि महिलाओं तथा बालिकाओं की मृत्यु दर में वृद्धि के कारण लिंग अनुपात में गिरावट आयी है, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच में असमानता तथा महिलाओं एवं पुरूषों में शिक्षा व रोजगार में खाई और बढ़ी है। दैनिक समाचार प प्रतिदिन हिंसा, बलात्कार, दहेज आदि की रिपोर्ट प्रकाशित करते हैं महिलायें आदेश होने के बाद अकेले बाहर निकलने में भयाभीत रहती है तथा बिना पुरूष की सुरक्षा के बाजार नही जा सकती है।

तालिका–1 लैंगिक असमानता

महिलायें		पुरूष
933.11 (per 1000 males)	Sex ratio	1000
58.1 Yrs	Life expectancy at birth	57.7 Yrs.
6.3%	Population aged 60 + Yrs.	5.7%
35.9%	Population aged 0-14 Yrs	36.5%
75	Infant mortality rate (1993)	73
54.16%	Literacy (2001)	
School enrolment (1993-94)	75.85%	
42.9%	Primary	47.1%
39.3%	Middle	
Drop-out rate (1993-94)	60.7%	
39.1%	Primary	36.1%
10.2%	Women in polytechnies and ITIs	89.8%

22.27%	Work participation rate	51.61%
14.8%	Organised sector	85.2%
8.7%	All India services	91.3%
8%	Parliament	92%
Note: Data excepted from Censes 2001, unless otherwise stated.		

विश्व के 1.3 बिलियन गरीब व्यक्तियों में 70 प्रतिशत महिलायें हैं जिसमें अधिकतर निरक्षर तथा मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। जैसे शुद्ध पेयजल। पूरे विश्व के 130 मिलियन बच्चों में 2/3 बच्चे कभी स्कूल नही गये जो लड़कियाँ है। पुरूषों के समान कार्य करने के लिये महिलाओं को औसत पुरूषों के वेतन का 3/4 मिलता है। पूरे विश्व में विवाह के बाद 20–30 प्रतिशत महिलायें घरेलू हिंसा का शिकार होती है।

जहाँ का भविष्य की बात है तो भविष्य में महिलाओं से भेदभाव खत्म होगा तथा महिलायें, पुरूषों के समान स्तर प्राप्त करेंगी। अच्छे कल के लिये बीज बोये जा चुके हैं। आजकल लड़कियॉ अधिक शिक्षित, उत्साही तथा अधिक बोल्ड हो चुकी है। महिला सशक्तीकरण आन्दोलन से भी महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है।

2.5.1 व्यवसाय में महिलायें

व्यवसाय में मालिक, प्रबंधक तथा कर्मचारी के रूप में महिलाओं की सहभागिता बहुत संतोषजनक नही है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में 48 प्रतिशत महिलायें हैं, जिसमें से 20.85 प्रतिशत महिलायें ही कार्यरत हैं। कार्यरत महिलाओं को कम वेतन/मजदूरी का भुगतान होता है। उच्च पदों पर बहुत ही कम महिलायें हैं। इसके निम्न कारण है–

1. महिलायें कार्य के बारे में कम जानती है, इसलिए वे निम्न/छोटे पदों पर कार्यरत है।
2. उन्हें परिवार में प्राथमिक धन अर्जन करने वाला नही माना जाता है, इसलिए परिवार की आज अधिक या संतोषजनक होने पर महिलाओं को बाहर नौकरी करने से मना कर दिया जाता है।
3. विवाह तथा घरेलू कार्य होने के कारण उनकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण, पुरूषों की तुलना में बहुत कम होता है।
4. उन्हें विधि तथा अन्य चुनौतिपूर्ण कार्यों में भर्ती में कम मौका दिया जाता है।

2.5.2 महिला रोजगार की समस्यायें

यद्यपि संविधान में महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा रोजगार देने में प्राथमिकता का कोई पृथक प्रावधान है फिर भी कुछ खेत्र की नौकरियों के लिये महिलायें अधिक उपयुक्त होने के कारण उनका महत्वपूर्ण प्रतिशत कार्यरत है, कई क्षेत्रों में उपयुक्त पुरूष प्रत्याशियों के न मिलने के कारण महिलायें रोजगार में है। महिलाओं को रोजगार में रखने मालिकों की अतिरिक्त समस्यायें होती है। जैसे कारखाना अधिनियम तथा मातृत्व लाभ अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन किया जाना चाहियें पुरूष कर्मचारी, महिला अधिकारी के पर्यवेक्षण में कार्य करने में हीन महसूस करते हैं महिलाओं को पुरूषों की

रह कार्य करने पर उनके बराबर वेतन देना चाहिये परन्तु व्यवहार में ऐसा नही है, इसका कारण महिलाओं में कम शारीरिक क्षमता होना बताया जाता है। समान कार्य के लिये समान वेतन अनिवार्य हो गया है।

महिलाओं को रोजगार देने पर लागत में वृद्धि हो जाती है। कैरियर में रूकावट व उत्पादन महिला कर्मचारियों में सामान्य बात है तथा ये सभी खर्चीली है। कम्पनियाँ पुरूषों की तुलना में महिला कर्मचारी पर भर्ती प्रशिक्षण तथा विकास के लिये कम धन विनियोजित करती है।

समस्याओं के बावजूद व्यवसाय के मालिकों को महिलाओं को विभिन्न पदों पर प्राथमिकता देनी चाहिये। महिलाओं की शिक्षा तथा विकास में व्यवसायी अच्छा योगदान दे सकते हैं। विभिन्न कम्पनियों में महिलाओं का रोजगार निम्न सारणी में हैः—

तालिका 2

सूचना प्रौद्योगिकी में महिला कर्मचारी

कम्पनी	कर्मचारी	महिलाओं का प्रतिशत
WIPRO	43.880	24
TCS	43.681	21
INFOSYS	31.000	22
HCL Technologies	20,249	22
Satyam	20,000	20
Cognizant	13,000	28
Accenture	11,000	25
Patni	5,980	19
Iflex	4,688	20
(Million tones, 2006)		

2.6 बाल श्रम

बालश्रम से जुड़े मुद्दे पर देश के उच्चतम न्यायालय में डिवीजन बेंच द्वारा 10 दिसम्बर 1996 को ऐतिहासिक फैसला दिया गया। सेवा क्षेत्र तथा अन्य उद्योगों में 35 मिलियन से अधिक बालकों का शोषण देश के शर्मनाक रिकार्ड है। इस दिशा उच्चतम न्यायालय का निर्णय माननीय संवेदनाओं को देखते बालरम आवश्यक होने के विश्वास के ऊपर रखेगा।

उच्चतम न्यायालय ने 9 उद्योगों को खतरनांक घोषित करते हुये उसको बाल श्रमिकों को हटाकर वयस्क श्रमिकों को रखने का निर्देश दिया। इन खतरनाक चिन्हित उद्योगों में शिवकाशी का माचिस उद्योग, किये जा बाद का कांच उद्योग, मिर्जापुर का कालीन उद्योग शामिल है। इसके अतिरिक्त जो व्यवसायी, बाल श्रम (प्रतिषेध) तथा विनियमन अधिनियम का उल्लंघन कर बाल श्रमिकों को रखता है, उसे प्रति बालक 20000/— रू0 क्षतिपूर्ति देना होगा जिसे बाल श्रम पुनर्वास कल्याण कोष में जमा किया जायेगा। इस कोष को राज्य सरकार के प्रति बालक को 5000 रू0 दिया जायेगा, यदि बालक के घर का वयस्क सदस्य रोजगार प्राप्त करने में अक्षम है। इस कोष की आय से

बच्चे को उपयुक्त संस्थान में शिक्षा दी जायेगी जिससे वह अच्छा नागरिक बन सके।

देश की शीर्ष न्यायालय ने 14 से कम आयु के बच्चों को खतरनाक पेशें/उद्योगों में रोजगार पर प्रतिबंध लगा दिया है। इन खतरनाक पेशों में यातायात, रेलवे, सिलेंडर, रेलवे परिसर में भवन संचालन, कैटरिंग पटाखों का विक्रय आदि वह निर्णय बालकों के बीड़ी बनाने, कालीन बुनने, सीमेंट बनाने, कपड़ा रंगने, बुनने, माचिस निर्माण, विस्फोटक, निर्माण उद्योग, इलेक्ट्रानिक, ऊन, निर्माण उद्योग आदि में रोजगार को प्रतिबंधित करता है।

2.6.1 बाल रोजगार क्यों है?

बच्चों के कार्य करने के अनेक आर्थिक तथा सामाजिक कारण है। इसमें सबसे बड़ा कारण बच्चों के अभिभावक का निर्धन होना है जो उन्हें बच्चों को विद्यालय के स्थान पर काम पर भेजने का दबाव बनाता है यद्यपि जहाँ पर शिक्षा, शुल्क से मुक्त है, वहाँ पर भी बच्चों को काम पर भेजा जाता है क्योंकि उस बच्चे ने कमाने पर उसके अभिभावक व अन्य सदस्य और गरीब हो जायेंगे।

बाल श्रम का अस्तित्व इसलिये है क्योंकि व्यक्ति अपने लाभ के लिये बच्चों का उपयोग करते हैं। एक बच्चे को कम भुगतान करना पड़ता है, आज्ञाकारी होता है, संघ में भाग नही लेता है तथा उसे किसी भी कार्य को करने के लिये कहा जा सकता है। ये सभी नियोक्ता के लिये लाभप्रद होते हैं।

कुछ समाज में यह प्रबल विश्वास है कि उसके सदस्यों को शिक्षा से बचना चाहिये। यदि कोई सदसय इसका उल्लंघन कर विद्यालय जाता है तो वह ईश्वरीय शक्तियों द्वारा दण्डित होगा। इसके कारण भी बच्चों की विद्यालय नही भेजा जाता हैं परन्तु वर्तमान यह विश्वास समाप्त हो चुका है।

2.6.2 बाल श्रम एक सार्वभौमिक अवधारणा :

बाल श्रम केवल भारत तक ही सीमित नही है। सभी विकसित तथा विकासशील देशों में भी यह समस्या है। वस्तुतः बाल श्रम के कई अत्यधिक शोषण वाले रूप हैं जेसे अमेरिका, जर्मनी व फ्रांस में बाल वैश्यावृत्ति।

हमारे देश में संपूर्ण विश्व के कुल बाल श्रम का सर्वाधिक प्रतिशत है। लगभग 35 मिलियन बच्चे छोटे मोटे काम कर रहे हैं। वर्ष 1983–94 के दशक में इसके कुल बच्चों का 35 प्रतिशत बच्चे प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मियों की उपस्थिति में जन्मे थे, जबकि अन्य साथ विकासशील राष्ट्रों में यह 63 प्रतिशत है। इन राष्ट्रों प्रत्येक 100 नवजात शिशु में से 7 शिशु की जन्म के बाद मृत्यु हो जाती है। परन्तु भारत में यह 12 है। यदि वे जीवित रहते हैं तो निरक्षरता व बीमारी आदि राष्ट्र के आधे बच्चों को मार देती है।

2.6.3 उपाय :

यह अच्छी बात है कि बालश्रम नीति की चार अवधारणा है। पहली, गरीबी को समाप्त करने पर बल देती है जो बालश्रम का प्रमुख कारण है। यह अवधारणा बाल श्रम के विषय में प्रत्यक्ष रूप से कुछ नही कहती है। दूसरी अवधारणा बच्चों को विद्यालय लाने की रणनीति से संबंधित है, जिसमें बच्चों व उनके अभिभावकों को तरह–तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं जैसे मुक्त किसी, यूनिफार्म, मध्यान्ह भोजन आदि। तीसरी अवधारणा बाल श्रम को अल्पकाल में

आवश्यक मानती है तथा इसे रोकने के लिये कठिन उपाय पर जोर देती हैं तथा कार्यरत बच्चों को सहायता प्रदान करती है। यह अवधारणा सबसे अधिक बालश्रम से जुड़ी हुयी है।

यूनीसेफ ने सामाजिक व नियमन अवधारणा, को एक चेकलिस्ट बनायी है जिससे बच्चे की सर्वाधिक राशि के क्षेत्र को जाना जाता है।

यूनीसेफ की रिपोर्ट में सरकारी बजट में शिक्षा तथा मूलभूत सामाजिक सेवाओं के लिये 20 प्रतिशत आवंटन संस्तुत किया है तथा दानदाता सरकार को अपनी सरकारी मशीनरी के माध्यम से सहायता उपलब्ध कराने को संस्तुत किया है।

कई देशो जैसे यू0एस0ए0 व जर्मनी ने अपने यहाँ बाल श्रम के उत्पादों में आयात पर प्रतिबंध लगाना शुरू कर दिया है। यदि ऐसे उत्पाद प्रतिबंधित किये जाते हैं, तो यह विश्वास किया जाता है कि उत्पादक तथा कारखाने बाल श्रम वाले उत्पाद का उत्पादन रोक देंगे, बच्चे अपनी नौकरी (कार्य) खो देंगे तथा उनके अभिभावक अतिरिक्त आय–खत्म होने से बच्चों को बुरा व्यवहार करेंगे। इस समस्या को प्रभावी ढंग से बच्चों के अभिभावक, स्वयं सेवी संस्थाओं तथा समाज के अन्य व्यक्तियों द्वारा ही समाप्त कर सकते हैं, जिससे बच्चे का लाभ के लिये शोषण न हो।

2.7 ग्रामीण विकास

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे देश की अधिकंश जनता गांवों में निवास करती है। ग्रामों की रहन–सहन बहुत संतोषजनक नही है। उनका जीवन स्तर में सुधार के उठाया गया कोई भी कदम प्रशंसनीय होगा। भारत सरकार इस दिश में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में अन्तर्गत प्रभावी सेवायें दे रही है। सरकार के प्रयासों को व्यवसायिक प्रतिष्ठानों के सहयोग की आवश्यकता है। क्योंकि ग्रामीणों में जीवन स्तर को श्रेष्ठ व सुविधाजनक बनाना अवसर कार्य है, जिसमे हमारे देश के गांवों की संख्या व उनका भौगोलिक बिखराव सम्मिलित है। व्यवसाय, ग्रामीण विकास के नाम पर कौन से विशिष्ट कार्य कर सकते हैं? वहाँ कई महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य सुविधायें पहुचना बांकी है जैसे अच्छी सड़कें, पेयजल, रोजगार, चिकित्सा सुविधा, परिवार नियोजन, आवास, विद्यालय तथा पोषण कार्यक्रमं ।

कई व्यावसायिक घरानों ने गांवों के सम्पूर्ण विकास के लिये गांवों को गोद ले लिया है। जैसे लोकक्षेत्र की बड़ी कम्पनी भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि0। कुछ अन्य उदाहरण भी है। आई0एम0आर0बी0 के अध्ययन को यह पाया गया कि ग्रामीण विकास में 150 प्रतिदर्श कम्पनियों में 83 प्रतिशत सक्रिय है। सबसे ऊपर टाटा धराने द्वारा इस दिशा में टाटा स्टील रूरल डेवलपमेण्ट सोसाइटी स्थापित किया गया, मफतलाल घराने द्वारा सर्वप्रथम ग्रामीण विकास संगठन, 'सतगुरू सेवा संघ' स्थापित किया गयां कई कम्पनियाँ विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित प्रोजेक्ट या सरकार के समन्वित ग्रामीण विकास प्रोजेक्ट के अनुपालन में सहयोग व महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यूवी समूह की कम्पनी, मॅगरोर के केमिकल एवं फर्टिलाइजर्स इस सामाजिक आर्थिक विकास के कार्य में कई वर्षो से लगी हुयी है। वर्ष 1975 में यूनाइटेड किंगडम ने कोलम्बों पलान के अनतर्गत विकासशील राष्ट्रों के गांवों के सम्पूर्ण विकास के लिये

सहायता प्रदान की। इस सहायता में 2700 मिलियन टन उर्वकर, कर्नाटक के अविकसित क्षेत्रों के विकास कार्यों के लिये यू0के0 सरकार द्वारा एम0सी0एफ0 को आपूर्ति की गयीं एम0सी0एफ0 द्वारा इसका वित्तीय कर 40 लाख रूपये प्राप्त किया। एम0सी0एफ0 ने बेल्लारी व रायचन्द्र के आलोक गांवों में सिंचाई का भविष्य अपनायी गयी कृषि पद्धति, लघु व मध्यम जोत वाले कृषकों व ग्रामीण कर्मकारों का समुचित प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखते हुये शोध किया। इस प्रोजेक्ट के अनुपालन में लिये बेल्लारी जिले के संमानकाल गांव व रायपुर जिले के गंगावटी तालुके का हेरूर गूंव को चयनित किया गया। इस प्रोजेक्ट का नाम था UK-MCF-TGB, दोहरी कृषि, अच्छे उर्वरक का उपयोग, उत्तम जल प्रबंध आदि की शुरूआत से परिवारों की आय में 4000 रू0 से 10000 रू0 वार्षिक की वृद्धि कर दी। 40 लाख रूपये के कोष में अर्जित ब्याज से प्रन्यास ने 21.26 लाख य0 विभिन्न विकासात्मक कार्यों पर व्यय किये।

इसके अतिरिक्त दक्षिण, एस0पी0आई0सी0 (SPK) को कृषि सेवा केन्द्रों (ASC) का भी इसी प्रकार का परिणाम रहां 10 कृषि सेवा केन्द्र तमिलनाडु में स्थापित किये गयें वर्तमान में 21 पड़ोसी राज्यों आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा पांडिचेरी में कार्यरत है। प्रत्येक कृषि सेवा केन्द्र, से 10 गाँव, सेटेलाइट गाँव के रूप में सम्बद्ध है जो मुख्य केन्द्र की परिधि से 10–15 किलोमीटर में स्थित है।

कृषि सेवा केन्द्रों के अतिरिक्त एस0पी0आर0सी0 ने तमिलनाडु व आन्ध्र प्रदेश में वैज्ञानिक कृषि के प्रशिक्षण तथा समन्वित ग्रामीण कृषि प्रयासों के लिये ग्रामीण विकास केन्द्रों की स्थापना की। कृषि तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का संचालन तकनीकी सहायकों द्वारा किया जाता है। इसके द्वारा आवश्यक उपकरण जैसे ट्रैक्टर पूर्व सज्जित भवन, कृषि उपकरण व संयंत्र सुरक्षा उपकरण रियायती दर पर उपलब्ध कराये गये।

2.8 परियोजना तथा व्यक्ति

किसी विशेष क्षेत्र में प्रोजेक्ट लगाना हमेशा स्वागत योग्य नही होता है। प्रोजेक्ट में एक बार पूर्ण होने पर उसके अन्य क्षेत्रों मे जैसे व्यक्तियों के विस्थापन या मृत्यु के परिणाम भी निकलते हैं। यह व्यवसाय का उत्तरदायित्व है कि वह विस्थापित व्यक्ति को उनकी उपयुक्तता के हिसाब से समायोजित करेगा। उनमें से 1339 को नौकरी मिली। अन्य 3500 को ठेकेदारों द्वारा रोजगार दिया गया। परन्तु यह स्पष्ट नही था कि ठेका पूर्ण होने के ये सब कहा जायेंगे अन्य उदाहरण आन्ध्र प्रदेश के चेलूम रिजवीयर प्रोजेक्ट का है जो 10121 व्यक्तियों को विस्थापित करेगा, जिसमें 1000 व्यकित अनुसूचित जाति व जनजाति के हैं।

यह स्वागत योगय है कि स्व0 श्रीमती इंदिरा गांधी ने किसी प्रोजेक्ट को क्लीयरेन्स देने के पूर्व उन शर्तों को पूर्ण कराने का कड़ा कदम उठाया। राज्य सरकार द्वारा कम से कम दो योजनायें, प्रोजेक्ट का अनुमोदन होने के पूव्र लागू की जाय जिसमें से एक afforestatio तथा दूसरी विस्थपित व्यक्तियों के पुनर्स्थापन से संबंधित हैं दोनों का उद्‌देश्य मानव हितों की रक्षा करना है।

2.9 शारीरिक रूप से अक्षम

व्यावसायिक घरानों का अन्य सामाजिक कार्य विकलांग (जो अब दिव्यांग कहलाते हो) व्यकित का पुनर्स्थापना है। हमारे देश में 70 मिलियन विकलांग व्यक्ति है तथा निगमीय क्षेत्र का इनके प्रति रवैया बहुत असंतोषजनक है। विकलांगता अधिनियम 1995 के अनुसार संगठित क्षेत्र के प्रत्येक प्रतिष्ठान को अपने यहाँ विकलांग (शारीरिक) के लिये 3 प्रतिशत पद आरक्षित करने होंगे परन्तु इससे बहुत अन्तर नही पड़ा है। विकलाँग व्यक्तियों हेतु रोजगार में संवर्धन के राष्ट्रीय केन्द्र ने कराये गये अध्ययन में पाया कि लोक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में कार्यरत विकलॉग (शारीरिक) व्यक्तियों का औसत प्रतिशत मात्रा 0.4 प्रतिशत है जबकि निजी क्षेत्र में यह बहुत कम 0.23 प्रतिशत है।

2.10 एक्वायर्ड इम्यून डेफिसिएन्सी सिंड्रोम (AIDS)

इतिहास में वर्ष 1983 काले वर्ष के रूप में माना जाता है क्योंकि इस वर्ष वैज्ञानिकी ने गंभीर बीमारी 'एड्स' की खोज की जिसे 'ग्रे पलेग' के नाम से भी जाना जाता है। इसने मानव जीवन की बांकी खति पहुचायी है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वर्ष 1997 में 2.3 मिलियन व्यक्ति इस बीमारी से खत्म हो गये थे। वर्श 1998 के प्रारम्भ में इस बीमारी से सम्पूर्ण विश्व में 30 मिलियन से अधिक व्यक्ति संक्रमित थे जो पृथ्वी की कुल जनसंख्या का 0.5 प्रतिशत था।

इसमें सबसे शोचनीय दशा अफ्रीका महाद्वीप की है। उदाहरण के लिये जिम्बाब्वे तथा हवाना में वयस्क जनसंख्या का 1/4 एड्स से संक्रमित है। इससे भी अफसोसजनक इसकी चिकित्सा का तथा हो, कि सभी संक्रमित व्यक्तियों की मौत हो जायेगी। परिणामतः 1990 जिम्बाब्वे में जो औसत जीवन प्रत्याशा 56 थी, वह शताब्दी के अन्त तक मात्र 19 रह गयी तथा बोत्सवाना में तो एक दशक की कम हो गयी।

पूर्व में एड्स मुक्त क्षेत्रों में भी एड्स का वायरस फैल रहा है। विगत 3 वर्षों में यूरोप के पूर्व साम्यवादी देशों में एच0आई0वी0 संक्रमित व्यति कई सौ गुना बढ़ गये। चीन में जहाँ अब तक एच0आई0वी0 संक्रमण दक्षिण–पश्चिम तथा तटवर्ती क्षेत्रों तक सीमित था, वह अब प्रत्येक प्रान्त में फैल चुका है। भारत भी इसकी गिरफ्त में आ चुका है। लगभग 5 मिलियन व्यक्ति इससे संक्रमित है तथा यह सम्पूर्ण राष्ट्र में फैल रहा है।

श्रमशक्ति के अधिकता व बिखराव एड्स का कारण है जब कर्मचारियों को यह महसूस होता है कि वे एड्स संक्रमित श्रमिक के साथ कर रहे हैं तो वे उस संक्रमित कर्मचारी को बर्खास्त करने की मांग करने लगते हैं। यदि प्रबंधन कर्मचारी को हटाता है तो वह कानून का उल्लंघन करेगा। विशेषता यू0एस0 में जहाँ कानून संरक्षित करता है। सामान्यतः संरक्षण से आशय भेदभाव के विरूद्ध संरक्षण से है तथा यह इस तथ्य पर आधारित है कि वायरस औपचारिक संबंधी से नही फैलता है।

जब संगठन कोई कर्मचारी एड्स से संक्रमित होता है तो उस संगठन की अतिरिक्त लागतें : प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष बढ़ जाती है। प्रत्यक्ष लागत बढ़े हुये चिकित्सकीय बोझ के रूप में होती है, अप्रत्यक्ष लागते, उत्पादकता को

कमी के रूप में होती है, जब संक्रमित कर्मचारी काम करने से मना कर देता है। एड्स से संबंधित अधिकतर समस्यायें बीमारी के विषय में अनभिज्ञता से उत्पन्न होती है। उनका विश्वास है कि बीमारी बहुत संक्रामक तथा इसका कोई इलाज नहीं है। यहाँ सरकार व्यवसाय तथा स्वयं सेवी संगठनो का उत्तरदायित्व हो कि वे व्यक्तियों के दिमाग में अच्छी जागरूकता उत्पन्न करे तथा उचित चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध कराये।

सरकार मात्र एड्स निरोधक उपकरणों के विज्ञापन तक ही सीमित दिखायी देती है। एक सक्रिया सरकार इससे ऊपर उठकर इस बीमारी के नियंत्रण के लिये कदम उठाती है।

एड्स निरोधक उपायो को शुरू करने में केन्द्र सरकार के उपक्रम एच0एम0टी0 व भेल का उल्लेखनीय योगदान है। चिकित्सकों का समूह संयंत्रों (प्लाण्ट) में जाकर कर्मचारियों को एड्स निवारण उपायों पर लेक्चर देता है। ये लेक्चर प्रत्येक वर्ष एक या दो बार होते है।

आशा फाउण्डेशन (एक्शन सर्विस होपफार एड्स) एक बैंगल्स आधारित स्वैच्छिक संगठन है जो एड्स संक्रमण पर जागरूकता उत्पन्न करता है तथा एच0आई0वी0 पॉजिटिव व्यकित थे उनके परिवारों व समाज को सलाह देता है। अन्य जहाँ में भी इसी प्रकार के संगठन कार्यरत हैं। कर्मचारियों को एड्स के विषय में शिक्षित करने की आवश्यकता है। शैक्षिक कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिय निम्न दिशा निर्देश का पालन आवश्यक है–

1. कर्मचारियो ंको यह समझना चाहिये कि एड्स से संक्रमण कैसे होता है। एड्स संक्रमण के तरीकों को कर्मचारियों को समझाने पर ये आवश्यक होता है कि कर्मस्थल की गतिविधियों से एड्स नही फैलता है।
2. पेशवरों, विशेषतः विशेषज्ञों द्वारा कर्मचारियों को प्रस्तुतीकरण होना चाहिये। ऐसा इसलिए आवश्यक है चूँकि संदेश कें लैंगिक तथ्यों का भी उल्लेख किया जाता है जो यदि उचित ढंग से नही किया गया तो कर्मचारियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।
3. सभी कर्मचारियों की उपस्थिति प्रस्तुतीकरण क्षेत्रों में अनिवार्य होनी चाहिये।

2.11 सामाजिक अंकेक्षण

वर्ष 1950 से सामाजिक अंकेक्षण पद का प्रयोग किया जा रहा है। भारत में विगत 7 से 8 वर्षों में इस क्षेत्र की गतिविधियों तथा रूचि में वृद्धि हुयी है। स्वैच्छिक विकास संगठन भी इस क्षेत्र में सक्रिय है। सामाजिक अंकेक्षण इस सिद्धान्त पर आधारित है कि लोकतंत्रात्मक स्थानीय स्वशासन, जितना संभव हो, संबंधित पक्षों की सलाह से चलाया जाना। यह एक प्रक्रिया है न कि घटना। संगठन के सामाजिक तथा नीतिगत निष्पादन क गणना, समझना, रिपोर्ट करना तथा उसमें सुधार करने की विधि सामाजिक अंकेक्षण कहलाती है। सामाजिक अंकेक्षण उद्देश्य तथा यथार्थ के मध्य तथा प्रभावपूर्ण व प्रभावोत्पादकता के मध्य खांई को कम करने में सहायक होता है। यह संगठन के सामाजिक निष्पादन को समझने, गणना, सत्यापित, प्रतिवेदन तथा सुधार करने की तकनीक है। सामाजिक अंकेक्षण स्वशासन पर प्रभाव उत्पन्न

करता है। यह धनदाताओं/आधारित की आवाज, जिसमें सीमान्त/गरीब वर्गों की आवाज शामिल है, को महत्व देता है। स्थानीय शासन में सुधार, विशेषतः स्थानीय निकायों की मजबूत करने, जवाबदेयता तथा पारदर्शी बनाने के लिये सामाजिक अंकेक्षण सहायक होता है। विकास तथा सामाजिक अंकेक्षण सहायक होता है। विकास तथा असामाजिक अंकेक्षण में मूलभूत अंतर यह है कि सामाजिक अंकेक्षण, सामाजिक प्रभाव के बहिष्कृत मामलों पर केन्द्रित होता है जबकि विकास अंकेक्षण, पर्यावरण तथा आर्थिक मुद्दों जैसे कार्यक्रम/प्रोजेक्ट की क्षमता पर संकेन्द्रित होता है।

2.11.1 अर्थ :

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से संबंधित एक महत्वपूर्ण यह है कि सामाजिक निष्पादन का मूल्यों का कैसे किया जाय।

बार एवं फेन के अनुसार ''सामाजिक अंकेक्षण कम्पनी की गतिविधियों का, जिनका सामाजिक प्रभाव है, के व्यवस्थित मूल्यॉंकन का आवश्यकता कहे। अहमद बलकऊ के अनुसार ''सामाजिक अंकेक्षण, वित्तीय अंकेक्षण की तरह है– सामाजिक पर्यावरण की पहचान, मूल्यांकन, गणना तथा प्रभाव पर रिपोर्ट के लिये फर्म की गतिविधियों की पहचान तथा परीक्षण है।'' अन्य शब्दों में सामाजिक अंकेक्षण मे सम्मिलित है–

1. फर्म की उन गतिविधियों की पहचान जिनका सामाजिक प्रभाव पड़ेगा?
2. ऐसी गतिविधियों के सामाजिक लाभों तथा सामाजिक लागतों का अनुमान तथा मूल्यॉंकन।
3. रिपोर्टिंग– फर्म के सामाजिक निष्पादन का उचित प्रारूप तथा विधि से प्रस्तुतीकरण।

डा0 क्लार्क सी0 एक्ट ने अपनी पुस्तक 'प्रबंध को अंकेक्षण' में सुझाव दिया है कि सामाजिक अंकेक्षण को, जहॉं होना चाहिये; जिसे सामाजिक आर्थिक चिट्ठे जिसमें डेबिट पक्ष तथा क्रेडिट पक्ष हो पर आधारित होना चाहिए। जहॉं तक आर्थिक चिट्ठे का संबंध है उन्होंनें इसे आगत और निर्गत लागतों तथा लाभों कहा है। सुझाव के बाद प्रत्येक ' आगत' तथा ' निर्गत' की गणना मौद्रिक रूप में होनी चाहिये उन्होंने कहा कि व्यवसायिक निगम का मूलभूत उद्देश्य वित्तीय लाभ को अधिकतम करना है, जो उसने वित्तीय विनियोग तथा सामाजिक लाग पर सामाजिक लाभ तथा इस यदि वित्तीय विनियोगों के समान गणना करते हैं तो इसे 'डालर' के रूप होना चाहिये, पर अर्जित किया जाता है। इसके बाद उन्होंने कहा कि पहले या बाद में सामाजिक आर्थिक चिट्ठे को कम्पनी के सामान्य वाणिज्यिक आर्थिक चिट्ठे का अनिवार्य भाग होना चाहिये।

2.11.2 सामाजिक अंकेक्षण के उद्देश्य तथा लाभ :

सामाजिक अंकेक्षण का मूल या आधारभूत उद्देश्य कम्पनी के निष्पादन के सामाजिक पक्षों का मूल्यॉकन करना है।

1. इसका अन्य मुख्य उद्देश्य सामाजिक अंकेक्षण के द्वारा उपलब्ध फीडबैक के आधार कम्पनी के सामाजिक निष्पादन में सुधार के लिये कदम उठाना जिससे उपरोक्त उद्देश्य को पूर्ण किया जा सके।
2. सामाजिक अंकेक्षण संगठन की लोक दृश्य क्षमता में वृद्धि करता है।

3. यदि सामाजिक अंकेक्षण में यह पाया जाता है कि कम्पनी का निष्पादन सामाजिक रूप असंतोषजनक है, तो वह कम्पनी का लोक इमेज की वृद्धि में सहायक होता है।

2.11.3 सामाजिक अंकेक्षण की विधियाँ

विभिन्न व्यकितयों या संगठन द्वारा विकसित सामाजिक अंकेक्षण की कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ निम्न है–

1. **सामाजिक प्रक्रिया अंकेक्षण** : सामाजिक प्रक्रिया अंकेक्षण को कार्यक्रम प्रबंध अंकेक्षण के नाम से भी जाना जाता है, का उद्‌देश्य आन्तरिक प्रबंध सूचना तन्त्र विकसित करना होता है जिससे प्रबंध सामाजिक कार्यक्रमों का सुचारू रूप से उत्पन्न तथा प्रशासन कर सके। इसमें यह निर्धारित करने के लिये कि इन उददेश्यों को प्राप्त किया गया या नहीं, सामाजिक कार्यक्रमों के उद्‌देश्यों का निर्धारण व सामाजिक लाभ लागत विश्लेषण को शामिल करते हैं।
2. **वित्तीय प्रपत्र प्रारूप अंकेक्षण** : इसके अन्तर्गत सामाजिक सूचना को परम्परागत वित्तीय स्टेटमेण्ट प्रारूप जैसे आर्थिक चिट्‌ठा या आय विवरण में प्रस्तुत किया जाता है।
3. **समष्टि–व्यष्टि सामाजिक अंकेक्षण** : इसके अन्तर्गत समष्टि संकेतांक जैसे राष्ट्रीय नीतियों के विरूद्ध व्यक्ष्टि संकेताओं के मूल्यांकन का प्रयास किया जाता है।
4. **क्षेत्र समूह अंकेक्षण** : इसके अन्तर्गत विभिन्न पक्षों (कर्मचारी, लेनदार, आपूर्तिकर्ता व उपभोक्ताओं) के व्यवहार तथा प्राथमिकताओं की पहचान तथा गणना की जाती है। तथा प्रत्येक समूह की Criteria के विरूद्ध फर्म की निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है।
5. **अंशतः सामाजिक अंकेक्षण** : इसके अन्तर्गत सामाजिक निष्पादन के किसी विशेष पक्ष जेसे ऊजा, संरक्षण या परिस्थितिकी संरक्षण, का मूल्यांकन किया जाता है।
6. **समन्वित अंकेक्षण** : इसके अन्तर्गत संगठन तथा सामाजिक निष्पादन के सम्पूर्ण निष्पादन का मूल्यांकन होता है।
7. **निगमीय रेटिंग अवधारणा** : इसके अन्तर्गत लोक समूहों जैसे उपभोक्ता संगठनों, सामाजिक कल्याण संगठन, मीडिया, द्वारा कम्पनी के निष्पादन का बाह्य मूल्यांकन किया जाता है।

2.11.4 सामाजिक अंकेक्षण की कठिनाइयाँ :

सामाजिक अंकेक्षण की निम्न समस्यायें हैंः–

1. नयी अवधारणा होने के कारण, सामाजिक सामाजिक अंकेक्षण को अभी और स्वीकृति की आवश्यकता है।
2. नयी अवधारणा होने के कारण सामाजिक अंकेक्षण को स्पष्ट तथा पूर्णतः स्वीकृति पद्धति उपलब्ध नही है।
3. सामाजिक अंकेक्षण में शामिल मदों में कोई ठहराव नही होता है।
4. विभिन्न मदों के सामाजिक लागत/लाभ का मौखिकीकरण कठिन होता है।

5. इसमें समय, प्रयास तथा कठिनाई होने के कारण कम्पनी में सामाजिक अंकेक्षण का विरोध होता है।
6. सामाजिक अंकेक्षण के फलस्वरूप असंतोषजनक चित्र प्रस्तुत या बर्खास्तगी के भय से इसका विरोध होता है।

टिस्को (Tisco) : के सामाजिक अंकेक्षण करने के लिये द्वारा एक समिति का गठन किया गया सामाजिक अंकेक्षण अनेक देशों द्वारा कराया जा रहा है, विशेष रूप से अमेरिका, जापान, यू0के0 तथा एक या दो अन्य पश्चिमी राष्ट्रों में कराया जा रहा है, परनतु इसे अभी विज्ञान का दर्जा मिला है। इसमें पूर्ण सहमति नही है, कुछ भिन्नतायें हैं, विशेषतः इसके मूलभूत सिद्धान्तों या सत्य उद्दश्यों के संबंध में पिछले दशक यी एक विषय था जिसमें पर्यावरण, प्रदूषण की समस्यों, उपभोक्ता संरक्षण, रमिक सुरक्षा तथा समान रोजगार के अवसर के बारे में चिंता की गयी।

मल्विन एन्शन के अनुसार ''सामाजिक अंकेक्षण एक ऐसा विचार है जिसका समय आ चुका है परन्तु वह ड्राइंग बोर्ड लेकर उस पर कार्य करने को तैयार नही है।

2.11.5 भारत में सामाजिक अंकेक्षण :

यद्यपि सामाजिक अंकेक्षण के विचार की खोज संयुक्त राज्य अमेरिका में आधी शताब्दी पूर्व हुयी थी, परन्तु निगमों द्वारा इस पर गंभीर ध्यान अभी हाल में दिया जा रहा है।

भारत में प्रथम समन्वित सामाजिक अंकेक्षण टिस्को द्वारा वर्ष 1980 में किया गया। यह ''उपभोक्ताओं, कर्मचारियों, अंशधारियों, समाज, तथा स्थानीय समुदाय के प्रति सामाजिक तथा नैतिक उत्तरदायित्वों के लिये कम्पनी के पार्षद सीमानियम के वाक्य 3ए में उल्लिखित उद्देश्यों के अनुपालन की सीमा की जॉच तथा प्रतिवेदन करने के लिये'' कम्पनी के प्रबंध संचालक मण्डल द्वारा नियुक्त सामाजिक अंकेक्षण समिति द्वारा किया गया। समिति की रिपोर्ट में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति कम्पनी के सामाजिक तथा नैतिक दायित्वों के अनुपालन के लिये कम्पनी की काफी सहराहना की गयी कुछ कम्पनियाँ जैसे सीमेण्ट कारपोरेशन ऑफ इण्डिया अपनी वार्षिक प्रतिवेदन में कुछ सामाजिक प्रतिवेदन भी करने लगी है।

एम0आर0टी0पी0 अधिनियम तथा कम्पनियों की उच्च शक्ति प्राप्त विशेषज्ञ समिति (सच्चर समिति) ने कहा ''सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा की स्वीकृति, कम्पनी द्वारा विभिन्न पक्षों–अंशधारियों, लेनदारों, श्रमिकों तथा समुदायों के लाभ के लिये बनायी गयी सूचना, तथा उसके प्रकटीकरणों में झलकनी चाहियें'' ताकि सुझाव दिया कि विगत वर्ष में प्रत्येक कम्पनी द्वारा उठाये गये सामाजिक उत्तरदायितव से संबंधित विभिनन गतिविधियों के विषय में जहाँ तक संभव हो सारभूत सामाजिक रिपोर्ट दे तथा कम्पनी अधिनियम में सामाजिक रिपोर्ट का प्रावधान किया जाय। इसके अतिरिक्त समिति ने यह भी सुझाव दिया कि जहाँ तक संभव है कमपनियाँ अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा की गतिविधियों के सुचारू संचालन के लिये अपने पार्षद सीमा नियम के उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन करना चाहिये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 1970 में टिस्को ने अपने

उपभोक्ताओं, कर्मचारियों, अंशधारियों, समाज तथा स्थानीय व्यक्तियों के प्रति नैतिक तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को ऐच्छिक रूप से अपने पार्षद अन्तर्नियम में सम्मिलित किया।

2.12 साराँश

परम्परागत रूप से व्यवसाय से आशय संगठन द्वारा की जाने वाली कोई भी वाणिज्यिक गतिविधि जिसका उद्देश्य लाभ कमाना है, व्यवसाय की पुरानी अवधारणा वाणिज्य तथा निजी लाभ तक सीमित है जबकि नयी अवधारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान में व्यवसाय से आशय एक सामाजिक संगठन से है जो सामाजिक पद्धति का आन्तरिक भाग है। प्राथमिक रूप से पर्यावरण के मृद्दे औद्योगीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि से अर्न्तसंबंधित होते हैं। विकेन्द्रित उद्योगों की स्थापना तथा भारत के ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या में लगातार वृद्धि से वायु, जल तथा भूमि संसाधनों पर दबाव बढ़ा है, जिससे वृहद रूप से पर्यावरण में विघटन दिखायी देता है। महिलाओं की व्यवसाय में नियोक्ता प्रबंधक तथा कर्मचारियों के रूप में सहभागिता, जनसंख्या के आकार तथा उपलब्ध सम्भावनाओं को देखा है। व्यवसाय में बाल श्रम मात्र भारत तक ही सीमित नही है। सभी विकसित तथा विकाशील देशों में बालश्रम का उपयोग हो रहा है, बाल श्रम के कुछ शोषणात्मक प्रारूपों के यू0एस0ए0, जापान तथा फ्रांस में बाल वैश्यावृत्ति हो। सामाजिक अंकेक्षण, जो काफी कुछ वित्तीय अंकेक्षण की तरह ही है– सामाजिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की पहचान, मूल्यांकन, गणना तथा रिपोर्ट देने के लिये फर्म की गतिविधियों की पहचान तथा परीक्षण से है।

2.13 शब्दावली

व्यवसाय : व्यवसाय को प्रतिष्ठान या फर्म के नाम से भी जाना जाता है, जिसमें संगठन, उपभोक्ताओं को वस्तुओं, सेवाओं या दोनों के व्याख्या में संलग्न रहती है।

मूल्य : व्यक्तिगत या सांस्कृतिक मूल्य एक सापेक्ष या निरपेक्ष नीतिगत मूल्य है, जिसकी अवधारणा नीतिग कार्यों का आधार बनती है।

सामाजिक अंकेक्षण : संगठन की सामाजिक तथा नीतिगत निष्पादन की गणना, समझना, प्रतिवेदन तथा सुधार करने की विधि को सामाजिक अंकेक्षण कहते हैं।

2.14 बोध प्रश्न

1. वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में 48 प्रतिशत महिलायें हैं, जिसमें से .... प्रतिशत महिलायें ही कार्यरत हैं।
2. .... मानव संबंधों का नेटवर्क है जिसमें विचारों, संस्थाओं तथा भौतिक वस्तुओं को शामिल किया जाता है।
3. वर्ष .... से सामाजिक अंकेक्षण पद का प्रयोग किया जा रहा है।
4. सामाजिक प्रक्रिया अंकेक्षण को कार्यक्रम .... के नाम से भी जाना जाता है।

5. .... के अन्तर्गत लोक समूहों जैसे उपभोक्ता संगठनों, सामाजिक कल्याण संगठन, मीडिया, द्वारा कम्पनी के निष्पादन का बाह्य मूल्यांकन किया जाता है।

2.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 20.85 2. समाज 3. 1950 4. प्रबंध अंकेक्षण 5. निगमीय रेटिंग अवधारणा

2.16 स्वपरख प्रश्न

1. व्यवसाय की परिभाषा दीजिये तथा उसके उद्देश्यों को बताइये?
2. डेविस तथा ब्लोमस्टार्म द्वारा सुझाये गये समाज के साथ व्यवसाय के तंत्र के संबंध की परिस्थितिकीय विचार की विवेचना कीजिये।
3. व्यवसायिक गतिविधियों से उत्पन्न पर्यावरण के मुद्दे को विस्तार से विवेचना कीजिये।
4. व्यवसाय की शक्ति व विद्युत आवश्यकताओं ` संबंधित मद्दों की विवेचना कीजिये।
5. वर्तमान में व्यवसाय के प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका तथा महत्व की विवेचना कीजिये।
6. महिला रोजगार की समस्याओं का वर्णन कीजिये।
7. बालश्रम से संबधित मामलों तथा ऐसी समस्यायें के उपाय का वर्णन कीजिये ।
8. ग्रामीण विकास के महतव का वर्णन कीजिये तथा ग्रामीण विकास में व्यवसाय की भूमिका का विवेचन कीजिये।
9. भारत में गंभीर बीमारियों से निपटने में व्यवसाय की भूमिका का विवेचन कीजिये।
10. सामाजिक अंकेक्षण की परिभाषा दीजिये तथा उद्देश्यों की विस्तार से विवेचना कीजिये।
11. सामाजिक अंकेक्षण की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।
12. समाज में महिलाओं की बदलती भूमिका का विवेचन कीजिये तथा उनके, व्यवसाय तथा रोजगार पर प्रभाव को बताइये।
13. भारत में ग्रामीण विकास के मूल तत्वों में से एक व्यवसाय है। क्या आप सहमत है? अपने उत्तर के पक्ष में कारण दीजिये।
14. व्यवसाय की सामाजिक बुराइयों से लड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्णन कीजिये
15. आजकल, सामाजिक अंकेक्षण व्यवसाय की महत्वपूर्ण गतिविधि है। वर्णन कीजिये।

2.17 संदर्भ पुस्तकें

1. B. Carrol, Business and Sociity", south Western College Publishing, Cincinatti, 1996.
2. K. Davis et al, "Business Society and Environment" Mcgraw Hill, Newyork, 2004.
3. Hariyappa, "Business Environment" Create space Banglore, 2009.

इकाई 3 व्यवसाय के समाजिक उत्तरदायित्व

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 परिभाषा एवं वर्गीकरण
3.3 सामाजिक उत्तरदायित्व का विचार विकास (विकास–क्रम)
3.3.1 शास्त्रीय आर्थिक सिद्धान्त में व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व
3.3.2 18वी एवं 19वी शताब्दी
3.3.3 19वी शताब्दी के उतरार्द्व एवं बीसवी शताब्दी के पूर्वाद में व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के परिवर्तित दृष्टिकोण (मत/विचार)
3.3.4 सामाजिक उत्तरदायित्व के आधुनिक (समकालीन/सम–सामाजिक) विचार /दृष्टिकोण.
3.4 भारतीय परिदृश्य
3.5 आधुनिक लोकोपकार के चार चरण
3.6 सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रतिमान
3.7 समाजिक प्रतिसंवेदनशीलता (प्रतिक्रियात्मकता) पर दबाव आरोपित करने वाले बल (शक्तियाँ)
3.8 विभिन्न हितधारियों (हिस्सेदारों) के प्रति उत्तरदायित्व
3.8.1 अंशधारियों के प्रति उत्तरदायित्व
3.8.2 कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायित्व
3.8.3 उपभोक्तोओं के प्रति उत्तरदायित्व
3.8.4 समुदाय (समाज) के प्रति उत्तरदायित्व
3.9 व्यवसाय के प्रधान (प्रमुख) सामाजिक उत्तरदायित्व
3.10 निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व के विपक्ष में तर्क
3.11 निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में तर्क
3.12 सामाजिक उत्तरदायित्व की सीमितता
3.13 साराँश
3.14 शब्दावली
3.15 बोध प्रश्न
3.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.17 स्वपरख प्रश्न
3.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- समाजिक उत्तरदायित्व को परिभाषित कर सकें।
- व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के सिद्वाँत के विकास का वर्णन कर सकें।
- सामाजिक उत्तरदायित्व प्रतिमानों का पुनरीक्षण कर सकें।
- सामाजिक प्रतिसंवेदनशीलता (प्रतिक्रियात्मकता) पर दबाव आरोपित करने वाली शक्तियों का वर्णन कर सकें।

- व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों का सूचीकरण कर सकें।
- निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष– विपक्ष के तर्को का पुनरीक्षण कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

मिल्टन फेडमैन दावा करते है, कि व्यवसाय का नीतिपरक (नैतिक) जनादेश अंशधारियों के लाभ की वृद्धि के लिए है। यह एक सामान्य मानयता (विश्वास) है, कि व्यवसाय अंषधारियों के प्रति जवाबदेह (उत्तरदायी/हिसाबदेय) होता है , क्योकि यह उनके (अंशधारियों) संसाधनों द्वारा संचालित (चल–रहा) हों रहा है।

किन्तु यह एक भ्राँति (गलत विचार) है। यदि एक व्यवसाय इसलिये अंशधारियों कों प्रति जवाबदेह क्योकि यह उनके संसाधनों को प्रयोग कर रहा है, तब एक व्यवसाय को प्राथमिक रूप से समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये क्योकि वास्तविक अर्थों में यह (व्यवसाय) समाज के संसाधनों का प्रयोग करता है। वह धन जो व्यवसाय, बैक से ऋण के रूप में प्राप्त करता है। वह समाज का होता है। व्वयसाय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष (अप्रत्यक्ष) रूप से राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता है, जो समान का होता है। व्यवसाय समाज के मानव–संसाधन का प्रयोग करता है, और सर्वप्रथम (सबसे पहले/सर्वोपरि) समाज के कारण ही अस्तित्व में रहता है। यह समाज है जो व्यवसाय को आय प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है। इसलिये (अतः) व्यवसाय सर्वप्रथम समाज के प्रति उत्तरदायी है।

व्यवसाय का (निगमिय) सामाजिक उत्तरदायित्व, कम्पनी के निर्णयों एवं कार्यो (क्रियाओं) के पर्यावरण एवं समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में गंभीर विचारण से सम्बन्धित है। किसी व्यवसाय की इसके सामाजिक एवँ परिस्थीतीय पर्यावरण पर निभरता व्यापक एवँ इस हद तक होती है, कि किसी व्यवसाय का जीवन (अस्तित्व), उत्तर जीविता, एवँ विकास (वृद्वि) पर्यावरण एवँ समाज द्वारा इसकी स्वीकृति पर निर्भर करता है, तो यदि एक व्यवसाय अपनी उपयोगिता को समाज एवं पर्यावरण के लिए नहीं बनाये रहता है तो इसके रहने का कोई कारण एवं स्थान नहीं होता है।

अब आप इस इकाई में सामाजिक उत्तरदायित्व एवं व्यवसाय का अध्ययन करेगे।

3.2 परिभाषा एवँ वर्गीकरण

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की संकल्पना इस विचार पर आधारित है, कि न सिर्फ लोक–नीति वरण् कम्पनियों को भी सामाजिक मुद्वों के लिये उत्तरदायित्व उठाना चाहिये। नव (आधुनिक/हाल के) उपागमों में (के अंतर्गत) व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व को एक ऐसे सिध्दांत (संकल्पना) के रूप में देखा जाता है, जिसमें कम्पनियों सामाजिक एवं वातावरणीय विषयों (मुद्वों) में एकीकृत करती है। तथा इनका प्रयोग अपने अंशधारियों (हितधारकों) के साथ अंर्तक्रिया में करते है। सामाजिक रूप से आशय, मानव संसाधनो एवँ पर्यावरण में निवेश करते समय महज कानून का पालन करने (कानून अनुसार/वृद्वि अनुसार चलने) से अधिक करने से है। सामान्य अर्थ (पद में) में व्यवसायिक, सामाजिक

उत्तरदायित्व उपागम उन चुनौतियों एवं समस्याओं के लिये कम्पनीयों को अभिप्रेरित करने की कोशिश (प्रयास) करता है जो राज्य विद्यालय (नियमन) के द्वारा ज्ञापित होती है। व्यावसायिक, सामाजिक उत्तरदायित्व के सुस्पष्ट (असंदिग्ध) वर्णन (विवरण) के बावजूद इसकी आज तक एवं एक समान परिभाषा नहीं दी जा सकी है। परिणामतः विभिन्न हितधारको ने व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है। तथा व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के कई उपागम पाये जाते है। विद्यमान उपागमों के दो ध्रुव रूप विनियम (नियन्त्रण) एवँ विधिक विनियमन है। इन दो धाराओं के मध्य बहु–हित धारक पहल (अगुआई) दृढ़मत (खडे/रहना) जो एक वैकल्पिक उपागम–एवं–विनियम एवं अनुशासन/स्व–विनियमन एवं–अनुशासन/स्व–नियन्त्रण) के विकास के लिए होता है। यह भी महत्वपूर्ण है, कि आन्तरिक व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व–जिसमें कर्मचारी, अंशधारी तथा निवेशक लाभार्थी होते है। तथा वाह्य व्यावसायिक, सामाजिक उत्तरदायित्व जिसमें समाज (समुदाय) नागरिक समाज –समूह अन्य कम्पनियाँ अथवा संस्थान, प्रमुख लाभार्थी होते है। यदि व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के संवहनीय स्थायी/टिकाऊ) नीति को प्राप्त करना है, तो आन्तरिक एवं वाह्य व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व को एक दूसरे के पूरक के रूप में देखना होगा। भारत में सी0एस0आर0 (व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व) आन्तरिक एवं वाह्य हितधाराकों के मध्य उचित (पर्याप्त) रूप से संतुलित नहीं है। भारतीय कम्पनियाँ अपने सी0एस0आर0 अनुबंध को वाह्य हितधारकों के प्रति रखने का उद्देश्य धारणा करती है। विशेषकर समाज (समुदाय) न कि आन्तरिक हितधारियों के प्रति।

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से ऑशय यह है, कि व्यवसाय वैधानिक आवश्यकताओं के ऊपर और अधिक समाज के लाभ हेतु क्या करता है। उत्तरदायित्व शब्द यह संकेत (इंगित) करता है, कि व्यवसाय के समाज के प्रति कुछ नैतिक दायित्व होते हैं।

व्यवसायिक (कारपोरेट) नागरिकता पद के प्रयोग सामान्यतः व्यवसाय के समाज के प्रति दायित्व के संकेत हेतु (बताने हेतु/सम्बन्ध–स्थापन हेतु) किया जाता है। इसका अभिप्राय (आशय) यह है कि एक व्यक्ति की भाँति वसायी भी समाज के अनिवार्य (अंगभूत) भाग तथा उनका व्यवहार (क्रिया–कलाप) कतिपय सामाजिक मानदण्डों द्वारा निर्देशित (मार्गदार्शित/नियंत्रित) होगा। व्यावसायिक उद्यमों की संक्रियायें (परिचालन) आर्थिक एवं सामाजिक र्प्यावरण की विस्तृत श्रेणी को प्रभावित करती है। वे संसाधन जो उनके द्वारा उपयोग में लाया जाता है, केवल उसके स्वामियों तक ही सीमित नहीं करना उनके संचालन (परिचालन) का प्रभाव कई (बहुत से) उन लोगों पर भी पड़ाता है, जो किसी भी प्रकार से उद्यम से सम्बन्धित (जुड़े) हुये नहीं है। उद्यम के कार्य करने के ढंग (तरीके) से अंशधारी, संसाधनों के आपूर्तिकर्ता, उपभोक्ता, स्थानीय समुदाय तथा समाज व्यापक रूप से प्रभावित होते हैं। अतः एक व्यावसायिक उद्यम के सामाजिक रूप से अति–संवेदनशील (उत्तरदायी/प्रतिक्रियाशील) क्योंकि इन विभिन्न समूहों के परस्पर विरोधी हितों के मध्य सामाजिक संतुलन समाप्त (मारा जा/नष्ट विचलित) हो सकता है। गोयडर के अनुसार बीसवीं सदी में उद्योग अशधारियों को समृद्ध बनाने के लिये निर्मित निजी–प्रबन्ध (व्यवसाय) के रूप में नहीं समझे (देखे) जा

सकते है। यह एक संयुक्त उद्यम (उपक्रम) बन गया है, जिसमें कर्मचारी, प्रबन्धन, उपभोक्ता, स्थान, सरकार तथा व्यापार–संघ के पदाधिकारियों सभी अपनी भूमिका निभाते हैं। यदि उस व्यवस्था को जिसे हम निजी उद्यम के नाम से जानते हैं, जारी (चालू/बनाये) रखना है, तो कुछ ऐसे तरीकों को पाने का प्रयास करना होगा जो बहुत से ऐसे हितों को समाविष्ट (अंगीकार) कर सके जो उद्योग को एक समान (एक/एक प्रकार/सम) उद्देश्य प्रदान कर सके (एक समान उद्देश्य गढ़ सके)।'' कालान्तर में 1978 में सी.सी. देसाई स्मारक व्यख्यानमाला में व्याख्यान देते हुए उन्होंने अपने इस तर्क (अनुनय/अभिवचन) को दोहराया कि यदि निगमों को दक्षता पूर्वक (कुशलतापूर्वक) कार्य करना है, तो उन्हें व्यापक रूप में जनता के प्रति हिसाबदेय होना होगा तथा उन्होंने उत्तरदायी कम्पनी के सुझाव को गाँधीजी द्वारा समर्पित न्यासधारिता के सिद्धान्त, से समान बनाने (जोड़ने का प्रयास किया) रास्ता खोजा जिसका उद्देष्य यह सुनिश्चित करना था कि निजी–सम्पत्ति सर्वहित के लिये उपयोग किया जाता है। 1965 में भारत व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय विमर्ष गोष्ठी (परिसंवाद/सेमीनार) द्वारा निर्गत घोशणा–पत्र ने न्यासधारिता के गाँधी जी के सिद्धान्त को व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व, पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय विमर्ष गोष्ठी (परिसंवाद/सेमीनार) द्वारा निर्गत घोशणा–पत्र ने न्यासधारिता के गाँधी जी के सिद्धान्त को व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व, उपभोक्ताओं कर्मचारियों, अंशधारकों तथा समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व, से सम्बन्धित किया।

एच. एस. सिंघानिया ने व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रकृति को दो वर्गों में वर्गीगृत किया है :–

1. वह तरीके (विधियाँ) जिस प्रकार एक व्यवसाय अपनी व्यावसायिक गतिविधियाँ (कार्य) को सम्पादित (करता/ले जाना) करता है।
2. कल्याणकारी गतिविधियाँ (कार्य) जो यह अतिरिक्त कार्य के रूप में करता है। प्रथम प्रकृति में इस तथ्य की स्वीकारोक्ति सम्मिलित है, कि व्यवसाय महज एक लाभ प्राप्त करने की है, जो कतिपय कर्तव्यों को सम्मिलित करता है, तथा पर्याप्त एवं उपयुक्त नीतिशास्त्रों (नीति) के पालन की आवश्यकता को घाटित करता है। उदाहरणार्थ व्यवसाय को समस्त विधियों (कानूनों) का पालन करना चाहिये तब भी यदि वे असहमति योग्य हो, व्यवसाय को अच्छी गुणवत्ता की अधिक वस्तुएँ उत्पादित करनी चाहिये, प्रतिस्पर्धात्मक मूल्य पर वस्तुओं की सुगम आपूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए, कर चुकाने चाहिये, अनाचार से बचाना (दूर रहना) चाहिये, अपने कर्मचारियों (श्रमिकों) को उचित मजदूरी तथा अपने अंशधारियों को युक्तियुक्त (युक्तिसंगत) लाभांश देना चाहिये। व्यवसाय का यह भी कर्तव्य है, कि वह नये निवेषों का प्रयत्न (बीड़ा उठाना) करे तथा सहायक (अनुपंगी) इकाईयों एवं नये उद्योगों को पिछड़े इलाके में स्थापित करके आर्थिक गतिविधियों का प्रसार (बिखराव) करे तथा श्रमिकों को उनके क्षेत्र (दरवाजे पर) में ही रोजगार प्रदान करे तथा उद्यम का प्रसार करे। अपने व्यवसायिक गतिविधि (कार्य) के अतिरिक्त व्यवसाय सामाजिक कल्याण के कार्यों के प्रोत्साहन में, प्रत्यक्षतः भी विशेष भूमिका निभाता है।

3.3 सामाजिक उत्तरदायित्व का विचार विकास (विकास क्रम/विचारों के विकास का क्रम)

सामाजिक उत्तरदायित्व के विचार का समय के साथ विकास हुआ है, इसके विकास के दीर्घ इतिहास की कुछ प्रमुख अवस्थायें (चरण) निम्नांकित हैं :–

3.3.1 शास्त्रीय आर्थिक सिद्धान्त में व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व :–

इतिहास के आरम्भ में से ही राष्ट्रीय आर्थिक सिद्धान्त व्यवसाय में व्यक्तियों हेतु प्रेरणा का मूलभूत स्त्रोत रहा है। राष्ट्रीय आर्थिक दृष्टिकोण में (के अनुसार) एक व्यवसाय सामाजिक लोकचारानुरूप ढंग से तब कार्य (आचरण) करता हुआ होता है, यदि वह संसाधनों को यथा सम्भव दक्ष (कुशलतापूर्वक) विधि से समाज के लिये ऐच्छिक (आवश्यक) वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोक्ताओं के ऐच्छिक मूल्य पर उत्पाद करता है। व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य निश्चित ही अपने संचालन (परिचालन) के दौरान लाभ कामना है किन्तु विधि के अन्तर्गत यदि व्यवसाय ऐसा करता है तो राष्ट्रीय आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार यह अपना एक प्रधान दायित्व पूर्ण करता है।

यह सरलता से समझने योग्य लक्ष्य, एड्म स्मिथ के वेल्थ ऑफ नेशन्स से व्युत्पत्ति हुआ, बिना आरक्षणों के कभी भी व्यवसाय व्यवहार में नहीं समझा (देखा/माना) गया/ यहाँ तक कि स्वयं एड्म स्मिथ ने भी सामाजिक कारणों से आश्चर्य जनक (आप्रत्याशित) संख्या में अपवादों को व्यक्त किया। हमारे सम्पूर्ण इतिहास में आरम्भ से अंत तक व्यवसाय एवं व्यवसायियों ने समय–समय पर प्रथमतः नहीं, सामाजिक दायित्वों के प्रति अपने ध्यान केन्द्रण हेतु अधिकतम लाभ के कठोर सिद्धान्त को संषोधित (परिवर्तित) किया। तथापि आज भी यह आधारभूत राष्ट्रीय विचारधारा मजबूत बनी हुयी है।

3.3.2 <u>18वीं (अठारहवीं) एवं 19वीं (उन्नीसवीं) शताब्दी :–</u>

औपनिवेशिक युग में व्यवसाय छोटे आकार के थे। व्यापारी मितव्यायिता पूर्वक तथा किफायती ढंग से कार्य (व्यवहार/व्यवसाय) किया करते थे जो उस समय प्रभावी (अधिशासी) गुण (विशेषता) था। किन्तु परोपकार (दान) भी सह सह–प्रचलित विशेषतः (गुण) थी तथा इन लघु उद्यमों के स्वामियों ने विद्यालयों, गिरजाघरों तथा गरीबों की सहायता की। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में कम्पानियाँ अपने सामाजिक सरोकारों (दायित्वों) के प्रति अधिक संवेदी (भावुक) नहीं थी। परोपकार अंशदान (सहायता) समय के साथ चल रहे एवं बढ़े जो व्यवसाय में एक सुखद संयोग (बड़े संयोग) बने। कई मामलों में समृद्ध (धनी) उद्यमी जिन्होंने अपनी विपुल सम्पत्ति, समाज के भले के लिये प्रदान की थी ऐसा उन्होंने कम्पनी के बिना किसी हितों के सन्दर्भ में किया जो कि उनकी सम्पत्ति का स्त्रोत थे। उदाहरणार्थ जॉन डी0 रॉकपिलर जिन्होंने प्रचुर (विपुल) सम्पत्ति 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अर्जित की, अपने जीवनभर की कमाई से 550 मिलियन अमेरिकी डालर राकपिलर फाउण्डेशन को ''सम्पूर्ण विश्व के मानव के कल्याण के प्रोत्साहन हेतु दान कर दी। एण्डयू कार्नेगी ने अपने जीवन काल में 350 मिलियन अमेरिकी डॉलर सामाजिक कार्मों (कारणों) हेतु त्याग (दान दिया) दिया जिससे उन्होंने 2,811 पुस्तकालय बनवाये तथा अमेरिकी गिरजाघरों को 7,689, पत्रिकाये/उपकरण प्रदान किये।

3.3.3 19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के परिवर्तित दृष्टिकोण (मत/विचार)

उत्तरार्द्ध तथा बीसवी शताब्दी में व्यवसायिक नेताओं (अग्रणी व्यवसायियों) को नीत करने हेतु कई शक्तियाँ (बल) अभिसरित (अभिमुख/सामाभिरूप) हुये विशेषकर (विशेषतया) दीर्घ (विशाल निगम) निगम जो कि स्व–हित (व्यवसाय के हित) के बिना सामाजिक समस्याओं पर ध्यान देने के लिये प्रेरित/उद्यत हुये/प्रबल औद्योगिक विकास (वृद्धि) के कई नकारात्मक सामाजिक प्रभाव हुये थे। व्यवसाय सरकार के नये विधानों (नियमों/कानूनों) से भयभीत हुआ तथा अपनी अत्यावश्यकता (महत्व) को कुँद (भोथरा) करने के रूप में समझा। व्यावसायिक अग्रणियों (व्यावसायिक नेता/अगुआ) में से कई वास्तविक उद्यमी नहीं थे बल्कि अपने द्वारा प्रबधित कम्पनी के अंश (स्कन्ध/भाग) के एक छोटे भाग के स्वामी थे वे सामाजिक कार्यों हेतु व्यावसायिक सम्पत्ति के प्रयोग में मुक्त (दबाव रहित) अनुभव करते थे।

व्यवसाय अधिकारतित सिद्धान्तों के साथ छल करने वाले के रूप में देखे गये तथा इस हेतु तर्क भी खोजे।

1920 तक व्यापक व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व को न्यायसंगत सिद्ध करने हेतु (उचित सिद्ध करना) तीन अर्न्तसम्बन्धित विषय उभरे। प्रथम, प्रबंधक न्यासी (विश्वस्त) प्रतिनिधि थे जिनकी व्यावसायिक (निगमीय) भूमिका ने उन्हें ऐसी शक्ति की स्थिति (शक्ति–सम्पन्न) में रखा था जहाँ वे सिर्फ (महज) अंशधारियों का ही नहीं वरन अन्य पक्षों यथा, उपभोक्ताओं, कर्मचारियों एवं समुदायों (समाज) के कल्याण का वर्धन विकास कर सकते थे और किये/ द्वितीयतः प्रबन्धकों का यह विश्वास था कि इन समूहों के हितों को संतुलित करने का दायित्व उनका है। प्रभाव में उनकी भूमिका एक समन्वयक की भाँति की, जो उद्यम पर (उद्यम के प्रति) बहु–संख्यक (बहुल) अंशधारियों के दावें का समाधान करता था और तृतीयतः कई प्रबन्धक सेवा–सिद्धान्त पर सहमत हुये, दो पृथक परिभाषओं से युक्त सिद्धान्त एक परिभाषा आध्यात्मिक मान्यताओं (विश्वास) के समीप (पर आधारित) है, कि व्यवसाय को महज लाभ हेतु संचलित करने के एवज में व्यवसाय, सामाजिक कल्याण के व्यापक कार्यक्रमों द्वारा इसका मूल्य चुका सकता है, अर्थात व्यवसाय एवं व्यापक सामाजिक कल्याण के सह–आस्तित्व के मार्ग के अनुकरण को महत्व दिया गया यदि प्रबन्धक (व्यक्तिगत रूप से/प्रत्येक प्रबन्धक) व्यवसाय को आर्थिक रूप से सफल (लाभप्रद) बनाकर समाज की सेवा करते हैं, तो सम्पूर्ण (समस्त/समुच्चय) व्यवसाय व्यवस्था (प्रणाली) सामाजिक अन्याय, निर्धनता एवं अन्य दोषों (बुराइयों) को दूर करने हेतु कार्य (प्रयास) कर सकते है। सेवा–सिद्धान्त के द्वितीय ज्ञाप्ति के अनुसार तथा हालाँकि पूँजीवाद ने मानवता को ऊपर उठाया तथा व्यक्तिगत रूप से कम्पनियाँ एवं प्रबन्धक फिर भी सामाजिक लाभ के कार्यकमों अथवा जनता की सेवा के दायित्व को अंगीकार किया। ये त्रि–अर्न्तसम्बन्धित, विचार–अभिन्वासिता, हितों का संतुलन तथा सेवा, अधिकाधिक व्यवसायिक अगुवाओं एवं विचारकों द्वारा स्वीकार किये गये। हालाँकि प्रेरणाप्रद होने के बावजूद न तो वे सामाजिक कार्यक्रमों में उदार योगदान को प्रोत्साहित किये तथा न ही वे व्यक्तिगत रूप से कई प्रबन्ध को उनके अहस्तक्षेप (निर्बधक) रवैया एवं लाभ पर विशेष ध्यान के रवैये से विचलित (विस्थापित) कर सके।

3.3.4 सामाजिक उत्तरदायित्व का आधुनिक (समकालीन/सम–सामाजिक) दृष्टिकोण

पिछले चालीस वर्षों में सामाजिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त विकसित एवं विस्तरित हुआ है। सम्पत्ति (आज/वर्तमान में) लाभ प्राप्ति हेतु संसाधनों के कुशल प्रयोग को अभी भी व्यवसाय के प्राथमिक सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा जाता है। लेकिन इसमें आर्थिक निष्पादन का समावेश्या पूर्व युगीन (प्राचीन/पहले के) विचारों में किया गया है। यह विचार समगत (कुल) सामाजिक उत्तरदायित्व का दृष्टिकोण, सामान्य (साधारण) आर्थिक उत्तरदायित्वों की अपेक्षा अधिक व्यापक है, अधिक अकाण्टय प्रबन्धकों द्वारा स्वीकृति (पूर्व की तुलना में अधिक) तथा पूर्व की अपेक्षा (पहले से ज्यादा/कभी भी इतना न होना) अधिक व्यापक रूप से व्यवहार में लाया गया।

शताब्दी के आरम्भिक वर्षों से ही व्यवसाय द्वारा कल्पित सामाजिक कार्यक्रमों की सीमा (क्षेत्र) निरन्तर विस्तारित हुयी है। वर्तमान में निगम, (व्यवसायिक निकाय) सामाजिक कार्यों (क्रियाओं) के व्यापक श्रृंखला–समूह को कार्यान्वित (पूर्ण) कर रहे है। कार्यक्रमों के फैलाव (विस्तार) के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, कर्मचारी, कल्याण आवास, श्याहरी नवीनीकरण, पर्यावरण–सरंक्षण, संसाधन संरक्षण, कार्यषील, अभिभावकों हेतु दिन–देख–रेख केन्द्र की व्यवस्था इत्यादि सम्मिलित होते है। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में कई निगमों (व्यवसायिक निकायों/घरानों) द्वारा हजारों की संख्या में कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

समाजिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त एवं सीमा के क्षेत्र के विस्तारित होने का मूलभूत कारण यह है कि त्वरणशील औद्योगिक गतिविधियाँ निरन्तर समाज को परिवर्तित करती है इस स्थिति में सामाजिक उत्तरदायित्वों का अभ्युदय (उद्‌गम/जन्मना) सामाजिक कार्यों के समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के फलस्वरूप होता हैं इसके अतिरिक्त यह कहना भी सही होगा कि वर्तमान में हम कुछ व्यवसायिक उदाहरणार्थ, इस शताब्दी के आरम्भ में औद्योगिक अपशिष्टों (कूड़ा–करकटों) में कैसरकारी तत्व अज्ञात (नही जान पाये गये) थे।

व्यवसायिक सामाजिक कार्यक्रमों का उदय द्वितीय स्तोत्रों–6ठी (प्रचण्ड/आलोचशील) सामाजिक समस्याओं, जो कि व्यवसाय/निगमीय वातावरण में व्याप्त थी, के कारण भी हुआ। पीटर ड्रकर के शब्दों में ''एक स्वस्थ व्यवसाय एवं रुग्ण समाज कदाचित (बहुत मुश्किल से) शायद ही सहवर्तनीय हो।''

नस्लभेद, युद्ध, हिंसक अपराध महाबिमारियों यथा एड्स तथा कम होते स्कूल (गिरते स्कूल) आदि वे सामाजिक विकृति विज्ञान है, जो व्यवसाय नहीं करते किन्तु इनकी गम्भीरता को कम करने से लाभ उठा सकते है।

3.4 भारतीय परिदृश्य

हमारे देश (भारत) में सामाजिक उत्तरदायित्व का विचार अति–प्राचीन है। किसी एक के अधिक्य को समाज की भलाई हेतु व्यय करने का सिद्धान्त (संकल्पना) न तो आधुनिक है न ही भारत में पश्चिमी (पश्चिमी देशों से) आयात है। व्यवसायिक समुदायों का प्राचीन भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। व्यापारियों के साथ सम्मान एवं शिष्टता का व्यवहार किया जाता था उन्हें सामाजिक कल्याण (भलाई) के साधन के रूप में सम्मान दिया जाता था और यह उनकी परोपकारिता (सहायतार्थ भावना) नीतिशास्त्रों (नैतिकताओं) द्वारा पोषित

सहायता (दान/परोपकारी) भावना, जिसने सहायता हेतु दान को अपनी प्राथमिकता सूची में शीर्ष पर स्थान दिया था।

उस समय के वंशानुगत व्यापारियों के समुदाय के जीवन का अन्तनिर्मित भाग था, जिसने आधुनिक व्यवसाय वर्ग के आधार (मेरूदण्ड) का निर्माण किया। व्यापारियों ने अकाल (सूखा) अादि महामारियों के संकट काल में अपने अनाज के गोदामों को खोलकर तथा अपने धन संग्रह के द्वार (तिजोरी) खोलकर जरूरतमंदों की देखभाल की, मन्दिरों का निर्माण किया एवं सहायता प्रदान किया, धर्मशालाओं रैन–बसेरों, स्नान घाटों, पानी की टंकियों, कुओं, आवास पशुओं हेतु स्थानों का निर्माण करवाया तथा पेयजल की सुविधा प्रदान की। उन्होंने परम्परागत विद्यालयों में शिक्षा हेतु दान दिया तथा गरीब कन्याओं के विवाह खर्च को भी वहन किया।

व्यावसायिक, सामाजिक, उत्तरदायित्व के साथ सबसे बड़ी (प्रमुख) समस्या यह है कि किसी को भी यह स्पष्ट नहीं है कि वास्तव में सामाजिक उत्तरदायित्व में क्या सम्मिलित है। भारत सरकार ने कई बार (बहुत दिन) प्रयास किया कि यह अनिवार्य कर दिया जाये कि कम्पनियाँ अपने लाभ के कम से कम 2 प्रतिशत भाग को सामाजिक उत्तरदायित्व पर व्यय करें। भारी विरोध के चलते सरकार ने मध्य जुलाई में इस प्रयत्न (प्रयास) को त्याग दिया तथा इस पर व्यय को स्वैच्छिक बना दिया, किन्तु वाद–विवाद (विमर्श) निरन्तर जारी है। यदि प्रस्तावित नियम अस्तित्व में आने चाहिये तो उसके पूर्व सरकार को यह स्पष्ट (बताना) करना होगा कि व्यावसायिक सामाजिक उत्तरदायित्व में क्या–क्या सम्मिलित है। यह इस पद की अनिश्चिता को दूर करने में कुछ सहायक होगा। वर्तमान में कुछ कम्पनियों हेतु सामाजिक उत्तरदायित्व से अभिप्राय कर्मचारियों को दोपहर का भोजन उपलब्ध कराना है। अन्य के लिये यह वैश्विक तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) तथा प्र्यावरणीय मुद्दों को रोकना (उनसे निपटना) है। व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को परिभाषित करने के स्थान पर (बजाय) भारतीय सरकार ने इसे 'उत्तरदायी व्यवसाय के नवीन रूप में ढाला है, जिसमें आठ (8) जुलाई को व्यावसायिक (निगमीय) मामलों के केन्द्रीय मंत्री (तत्कालीन) श्री मुरली देवड़ा द्वारा विमोचित (जारी) फर्मों के लिये स्वैच्छिक दिशा–निर्देश सम्मिलित है।

हालाँकि हालिया असफल प्रयत्नों को सामाजिक उत्तरदायित्व को अनिवार्य रूप से व्यय करने के सन्दर्भ में अन्तिम शब्द (निर्णय) के रूप में नहीं अपेक्षित किया जा सकता है। उद्योगों के साथ अपनी सभाओं में देवड़ा ने बार–बार अपना यह व्यक्तिगत विचार प्रस्तुत किया कि सामाजिक उत्तरदायित्व पर व्यय को अनिवार्य किया जाना चाहिये। अपने नवीन चक्र की संस्तुतियों में सरकार ने कम्पनियों को सामाजिक उत्तरदायित्व पर व्यय पर केन्द्रित करने तथा इसे अपने प्रधान हितधारकों के सम्मुख प्रस्तुत करने को कहा है।

सामाजिक उत्तरदायित्व के उपाय प्रावधान वस्तुतः (वास्तव में) नये कम्पनी विधेयक का भाग हैं, जो कि कई वर्षों से कार्य में (कार्यशील) रहा है। कम्पनी अधिनियम 1956, जो कुछ वर्ष पूर्व तक (कम्पनी अधिनियम 2013 के अस्तित्व में आने के पूर्व तक) विधिक कानून कथा, में कई ऐसे प्रावधान (वाक्य/उपवाक्य) थे जो वर्तमान (तत्कालीन) व्यवसायिक एवं आर्थिक वातावरण हेतु अनुपयुक्त थे। इन्हीं कमियों को दूर करने हेतु सन् 2003 में एक पुनरीक्षक प्रक्रिया आरम्भ हुई तथा सदन में इसे रखा गया। वह विधेयक सन् 2009 में लोकसभा के विघटन के

कारण रदद् (अवनत/समाप्त) हो गया। तत्पश्चात सन् 2009 में कम्पनी विधेयक 2009 प्रस्तुत किया गया जो सम्पूर्ण संवैधानिक प्रक्रिया को पूर्ण करने के उपरान्त हमारे सामाने कम्पनी अधिनियम 2013 के रूप में प्रस्तुत है एवं वर्तमान में विधिका कानून है।

जहाँ (जबकि) कम्पनी विधेयक में उद्योग के महत्व के कई प्रावधान थे किन्तु सामाजिक उत्तरदायित्व का भाग (विषय) ही ऐसा था जिस पर सर्वाधिक विमर्श हुआ।

श्री देवड़ा के पूर्ववर्ती श्री सलमान खुर्शीद (वर्तमान केन्द्रीय विधि मंत्री–तत्कालित वर्तमान में 2014 मई के बाद परिवर्तित सरकार में श्री रविशंकर प्रसाद जी विधि मंत्री है ने एक बार सामाजिक उत्तरदायित्व के व्यय को अनिवार्य करने का समर्थन किया किन्तु बाद में उन्होंने अपना विचार यह कहते हुये परिवर्तित कर लिया कि यदि इसे अनिवार्य बना दिया गया तो यह व्यावसायिक रूप से सुस्त सस्थाओं पर पर्याप्त दबाव आरोपित करेगा।

उद्योग इसे अनिवार्य करने के पूर्ण विरोध में रहा है। फिक्की (फेडरेशन ऑफ इण्डियन चेम्बर्स ऑफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्री) ने उन लोगों के लिये जो स्वेच्छा लक्ष्य (स्वैच्छिक लक्ष्य) को पूर्ण करते हो कर–अन्तराल' का सुझाव दिया है। प्रतिद्वन्द्वी संगठन सी.आई.आई. (कन्फेडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्री) के अनुसार अनिवार्य सामाजिक उत्तरदायित्व प्रति उत्पादक होगी। कम्पनियाँ विशेषतः मंदीकाल और आर्थिक कटौती (व्यापार घाटे) के काल में इन प्रावधानों से बचने हेतु क्षमावरण (क्षद्म आवरण) का आश्रय ले सकती है। ऐसा तर्क पक्ष में जनमत तैयार करने वाले समूह द्वारा दिया गया।

भारत के लोकोपकारी समुदाय (संगठनों) भी अनिवार्य सामाजिक उत्तरदायित्व के विरोध में ले। 'यह एक सनकी विचार है'' यह गैर–सरकारी संगठन 'गिव इण्डिया' के मुख्य कार्यकारी (अधिशासी) अधिकारी धवल उडानी का कहना था।'' यदि एक बार आप इसे अनिवार्य कर देगें तो लोग इससे बचने (बाहर निकलने) का मार्ग ढूँढ लेंगे। निगम बहुत अस्पष्ट (अनिश्चित) होंगे अतः उनका प्रतिवेदनीकरण/रिर्पोटिंग भी अस्पष्ट ही होगें। एक रणनीति परोपकारी फाउण्डेशन दसरा के सह–संस्थापक एवं मुख्य अधिशाषी अधिकारी देवल साँधती के अनुसार, मैं अनिवार्य व्यवसायिक सामाजिक उत्तरदायत्वि के विरुद्ध हूँ। जब आप चीजों को अनिवार्य करते हैं, उनके न होने की सम्भावना ज्यादा (अधिक) होती है।

उद्योगपति आदि गोदरेज ने कहा ''यह कहना उचित है कि सामाजिक उत्तरदायित्व वांछनीय है, अब व्यक्तियों को अपना स्वयं निर्णय करना चाहिये कि क्या किया जाये। लोकोपकारी रोहिनी नीलकेनी अधिक समीक्षात्मक (दोषदर्शी) है। मै इसे नहीं प्राप्त करती (समझ सकती) यह प्रशासन की आउट सोर्सिंग है। यह सरकार एवं व्यवसासियों की विफलता है तथा इसके बाहर (इतर/अलग) कोई प्रतिमान ढूंढने का प्रयास कर रहे है। यदि आप चाहते हैं तो व्यवसायिों पर कर लगाइये तथा प्राप्त धन को सामाजिक कार्यक्रमों में लगाइयें किन्तु आप सामाजिक उत्तरदायित्व का आदेश/आज्ञा नहीं दे सकते।

विश्व भर में बहुत कम (कुछ) देशों में अनिवार्य सामाजिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता है, सउदी अरब सम्भवतः एकमात्र अपवाद है। ''विकसित देशों में

कानून अनिवार्य सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्धारण (प्रावधान) नहीं करते हैं'', के. पी. एम. जी. के साझेदार, सुधीर सिंह डूँगरपुर के अनुसार।

हाल के बीते वर्षों में कम्पनियों को अपने वार्षिक बुलेटिन में व्यवसायिक सामाजिक उत्तरदायित्व को सम्मिलित करना आवश्यक है।

भारत में व्यावसायिक परोपकार की परम्परा रही है। समस्या यह है कि कहीं न कही इसके साथ ही 'देना (देने) एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के मध्य की रेखा अस्पष्ट रूप (अनिश्चित) से बढ़ी है। डूँगरपुर ने ध्यान दिया कि ''व्यावसायिक वास्तव में दो अलग–अलग बाते हैं हो गयी है। सामाजिक उत्तरदायित्व वास्तव में आपके व्यवसाय करने के ढंग से सह–सम्बन्धित होना चाहिये जबकि यह इसमें भूमित हो रहा है कि जिसमें जिसके समुदाय को प्रदान करने से वह भी सरकार के इस अभिमत (आदेश) के विरुद्ध है। सामान्यतः गाजर सिद्धान्त–जिसमें व्यवसायिक घराने स्वयं ही परोपकारी कार्यों पर केन्द्रित इस ओर प्रयास भी करते हैं, छड़ी सिद्धान्त से श्रेष्ठतर होता हैं धन (वित्त की) की कितनी मात्रा व्यय की गयी है यह उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना कि उसे किस प्रकार व्यय किया गया है यह मायने रखता है। पारूल सोनी (अधिशासी निदेशक एवं व्यवहार नेता (अगुवा/प्रबन्धक) अर्नेस्ट श्रीयंग–भारत, आगे जोड़ते हुए कहते हैं, ''सामाजिक उत्तरदायित्व एक यात्रा है, पड़ाव (मंजिल) नहीं अर्पन सेठ, मुम्बई में स्थित बेन एण्ड यंग के साझेदार तथा बेन की हालिया प्रकाशित ''इण्डिया फिला–थरोपी रिपोर्ट 2011 के लेखक, कहते हैं कि ''मैं नहीं समझता कि परोपकार एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के मध्य स्पष्ट अंतर है। यह एक देन आरेख की भांति है जहाँ इन दोनों के मध्य अतिच्छादन (आतिव्यापन) व्याप्त है। मेरे विचार से विशेषकर भारत में सामाजिक उत्तरदायित्व लगभग शत–प्रतिशत प्रवर्तकों (व्यवसाय के स्वामियों) के परिवार की इच्छाओं, रूचियों से अतिव्यतीत है।

हाल में सरकार ने व्यावसायिक प्रशिक्षण को कर्मचारियों को दिये जाने को सामाजिक उत्तरदायित्व के भाव के रूप में सम्मिलित करने के महत्व को समझा एवं इस हेतु प्रयत्न किये है। किन्तु यह पद भी परिभाषित कर पाना दुरुह (कठिन) है। क्या इन्फोसिंग जो विशाल विश्वविद्यालय इस हेतु संचालित कर रही है, वह यह करेगी अथवा यह व्यवसायिक प्रशिक्षण की छतरी महज उनके लिये जिन्होंने मानव–कौशल (मानवीय कुशलता) सीखी है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2009 में जारी किये गये प्रथम सरकारी पत्र–सामाजिक उत्तरदायित्व पत्र 2009, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कल्याण तथा शिक्षा को सामाजिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत लाने की बात करता है।

वस्तुतः सामाजिक उत्तरदायित्व को प्रत्येक अपने–अपने चश्में (लेंस) से देखता है। जब बिल गेट्स और वाटेन बफट भारत अपने प्रतिज्ञा के प्रचार के लिये आये, जिसमें अमीर व्यक्तियों से यह वचन लेने का प्रयास था कि वे अपनी सम्पत्ति कमा प्रचुर भाग परोपकारार्थ व्यय करें, तब उसमें उन्होंने कहा कि प्रयत्न सामाजिक उत्तरदायित्व का नहीं वरन व्यवसाय की सामाजिक बाध्यप्त (अनिवार्यता) थी। अर्नेश्ट श्रीयंग के श्वेत पत्र 'द इमर्निंग रोल ऑफ बिजनेस–सिर्फ लाभ के लिये नहीं'', अन्य विकल्प प्रस्तुत करता है, यथा सामाजिक उत्तरदायित्व को व्यवसायिक उत्तरदायित्व, व्यवसायिक नागरिकता, संवहनीय उत्तरदायी व्यवसाय, व्यवसाय का सामाजिक निष्पादन तथा व्यवसाय की संवहनीयता

(टिकाऊपन/स्थायित्व) के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इस दिशा में इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टड एकाउण्डटेन्टस ऑफ इण्डिया ने प्रयास किया। लेखांकन नियामक ने यह तय करने हेतु कि सामाजिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत क्या आना चाहिये। क्यों नहीं एक उपसमिति गठित की। किन्तु यह प्रयत्न कुछ आन्तरिक विवादों तथा कतिपय बाहर के प्रश्नों की (आई.सी.ए. आई) का सन्दर्भ में क्या अधिकार है, के चलते असफल हो गया।

यह बहस जारी रहने की सम्भावना है क्योंकि के. पी. एम. जी. तथा एसोचैम द्वारा वर्श 2008 में दिल्ली में आयोजित प्रथम अतराष्ट्रीय सम्मेलन जो सी0एस0आर0 पर थी कहा गया कि सी0एस0आर0 विभिन्न व्यक्तिओं द्वारा अलग–अलग अर्थों में समझा गया। प्रतिवेदन –'' सी0एस0आर0 टूवर्डस एँ सस्टेनेबल फ्यूचर'' ने ध्यान आकृष्ट कराया कि 1990 तक सी.एस.आर. परोपकार के विचार से अधिभावी था तथा व्यवसायिक प्रयास एक मुश्त वित्तीय सहायता तक ही प्रायः सीमित थे। इसके अतिरिक्त व्यवसाय इस प्रकार के पहलों के नियोजन के समय अपने हितधारकों को कभी ध्यान में नहीं रखता फलतः सी.एस.आर. की दक्षता हटाती है तथा यह प्रभावी नहीं हो पाता है। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में सी.एस.आर. की संकल्पना में कतिपय अथवा सहायता के रूप में न मानकर रणनीति अथवा उत्तर दायित्व के रूप में देखने का रूपान्तरण दृश्यमान होता है।

3.5 आधुनिक लोकोपकार के चार चरण

प्रथम चरण :– औद्योगीकरण के दौरान विशुद्व परोपकार पूर्वपरोपकारियो) एवँ सहायता :

द्वितीय चरण :– स्वतत्रता सघर्ष के दौरान सामाजिक उत्तरदायित्व :–

तृतीय चरणः– मिश्रित अर्थब्यवस्था प्रतिमान के अंतर्गत व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व :

चतुर्थ चरण :– वैश्विक (विश्वव्यापी) जगत में अस्पष्ट अवस्था में व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व :

1850–1914:–

प्रथम चरण कमोवेश धार्मिक एवँ कार्यो से सम्बन्धित का यह पूर्व –ओद्योगीकरण के युग से पूर्व का (1850–से पूर्व) तथा 1850–1914 का काल अधिक पश्चात प्रकार के परोपकारों के काल को सभाहित करता है। इस युग ने ओद्योगीकरण का आरम्भ देखा तथा अपने पाश्चात्य समकक्षों के समान नये, समृद्व व्यवसायिक घरानों ने न्यासों की स्थापना की तथा आधुनिक संस्थानों यथाः विद्यालयों, महाविद्याालयों, चिकित्सालयों, अनाथालयों, तथा विधवा आश्रमों, कलाविधिकाओं (आर्ट– गैलरी) तथा संग्रहालयों का निर्माण जन–कल्याण एवँ भारतीय संस्कृति के संरक्षण के उद्वेश्य से करवाया इसके साथ ही उन्होने सहायता (परोपकार) के प्राचीन/परम्परागत प्रकारों यथाः मंदिरों का निर्माण एवं रख–रखाव, धर्मशालाओं एवं पानी की टंकियों का निर्माण करवाया/इस प्रकार इस काल में व्यवसायिक सहायता में सहायता एवँ परोपकार दोनों तत्वों का समावेश था। गुजरात के दिनशाँ पेटिट एवँ प्रेमचन्द रामचंद ने नये चलन (प्रवृत्ति) की अगुवाई की। आरंभिक औद्योंगिक अग्रदूत न सिर्फ आर्थिक रूप से वरण् सामाजिक क्षेत्र में भी नेता की है। सियत रखते के तथा इन्होने समाजिक सुधारों एवँ जनकल्याण के

कार्यक्रमों के प्रति अपनी सक्रिय रूचि एवँ धार्मिक सुधारों के कार्यक्रमों में भी सक्रिय रूप से अपनें हाथ में लेकर सम्पादित किया ।

1914—1960:—

द्वितीय चरण, जो कि भारतीय पूँजीवाद एवँ व्यावसायिक परोपकारता का स्वर्णिमकाल था, में परोपकारिता(धमार्थ आदि) कार्यो(व्यवहारों) में परिपक्वता थी । आजादी के आदोंलनों के लिये राजनैतिक दान (चंदे) के अलावा ब्यापारियों (व्यवसायों) ने कई सामाजिक एवँ सास्कृतिक कार्यों के लिए, जो भारतीय संस्कृति—कला शिक्षा आदि के संरक्षण एवँ उन्नयन जैसे महत्वपूर्ण उद्वेश्यों से जुडें थें, के लियें भी दान, सहायतायें प्रदान किया। तत्कालीन भारत के कुछ महान व्यवसायियों :— धनश्यामदास बिडला, जमनालाल बजाज, लाला श्रीराम, अक्वालाल सारा भाई, एवँ अन्य महात्मा गँाधी के प्रभाव (आकर्षण/जादू) में आये तथा महात्मा गँाधी जी के आन्दोलनों के क्षेत्र यथाः अस्पृष्यता नारी—स्वातृत्रय, तथा ग्रामीण पुन निर्माण, में भौतिक एवँ सामाजिक संस्थानात्मक अवस्थापनाओं (आधारभूत संरचनाओं) के निर्माण (उनकी व्यवस्था) से सहयोग कर इनके उद्वार के कार्यक्रमों को जारी रखा। यह इनके भारत हेतु इनके दर्षन (दृष्टिकोण) — स्वत़त्र, उन्नतशील तथा आधुनिक भारत, का भाग था ।

जब भारत स्वतत्र हुआ, स्वतत्रराज्य व्यावसायिक समुदाय (समाज) की और समृद्व भविष्य तथा स्वतत्रता के एल्लासोन्माद (सुखाभास) को गति प्रदान करने हेतु देखा था। इस संदर्भ में व्यावसायिक वर्ग ने अपनी क्षमताओं का विस्वासपूर्ण ढंग से उपयोग किया तथा अधिक सम्पत्तियों का अर्जन किया। कई अग्रणी व्यवसायिओं यथाः धनश्यामदास बिडला, जे0आर0 डी0 टाटा, लाला श्रीराम, कस्तूरबा भाई लाला भाई एवँ अन्य ने विज्ञान एवँ तकनीकी शोध तथा कला—अकादानियों एवँ संस्थानों से देष को सम्पन्न किया जिससे भारतीय संस्कृति, कला, एवँ इतिहास का प्रचार हो सके विभिन्न क्षेत्रों के कई ख्यातिलब्ध संस्थान यथाः टाटा इस्टीट्यूट ऑंफ फन्डामेण्टल रिसर्च, बिरला इस्टीट्यूट ऑंफ टेक्नालाजी पिलानी एवँ रॉंची, कैलिको वस्त्र संग्रहालय अहमदाबाद, आदि कतिपय संस्थान निजी व्यवसायिक घरानो की दानशीलता के अस्तित्व (होने) में होने के प्रमुख उदाहरण थे।

<u>1960—1980</u>:—

अगला परिवर्तन 1960 में आया जिसनें आर्थिक एवँ राजनैतिक अशान्ति के युग में प्रवेश कराया तथा देखा कि व्यावसायिक समुदाय (समाज) अनेक बाधाओं (परेशानियों/सीमितताओं) दायित्व अपने ऊपर लिये जो पूर्व में सामान्ययतः समाज का उत्तरदायित्व के यथाः शिक्षा, रूग्ण (बीमार) लोगों की देखभाल, प्राकृतिक आपदाओं के समय सहायता कार्य, तथा निस्तारण लोगों की मदद्। यह क्रमागत (सुसंगत) ढ़ग से निजी पारोपकारिता की रूचि में कमी को नीत करता हुआ था। व्यावसाय के अविस्वास को परिणाम स्वरूप कुछ लोगों (व्यापारियों) ने प्रखर (तीखा/होरिसा) एवँ अनैतिक व्यापार (व्यवसाय) व्यवहारों को अपनाया जो सरकार द्वारा जारी विकास हेतु धन ब्यवस्था हेतु (अधिक) दरों से युग्मित हुआ। इसके अतिरिक्त इसने जन—लाभ हेतु निजी—समपदाओं की अनिच्छा को बढ़ाया। विडम्बना से उच्च कर देने से व्यवसाय में नैतिकता की अवनिति को बढ़ाया फलतः विशाल सहायतार्थ संगढनो की स्थापना कर नियोजन के उद्वेश्यों हेतु की जाने

लगी। इस मोहभंग के परिणाम स्वरूप सरकार अपने गरीबी हटानें एवं सामाजिक परिवर्तन लाने के कार्यक्रम जोकि सदैव से ब्याप्त एवँ बढ़तें अमीर एवँ गरीब के बीच के अंतर को पाटने हेतु समृद्ध/उच्च गुणवत्ता युक्त जीवन प्रदान करने तथा इन परिवर्तनों हेतु/के प्रति निजी पहलों की अगुवाई से सम्बन्धित था, में असफल हो गयी। इसने व्यक्तिगत दृष्टि को स्वैच्छिक बनाया तथा सरकारी/आधिकारिक प्रयासों/कार्यों के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया। फलतः व्यवसाय राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों के प्रति अधिक सचेत/जागरूक एवं सहयोगी बना।

सन् 1970 (70 का दशक) ने सामाजिक मुद्दों (जिम्मेदारियों) के प्रति व्यावसायिक हितों के पुर्नन्वीनीकरण को देखा तथा परोपकारिता के परिदृश्य में एक नवीन तत्व–व्यावसायिक (निगमीय) परोपकारिता का उदय हुआ जो पारिवारिक व्यवसाय परोपकारित से भिन्न था। वास्तविकता बोध से अंशतः प्रेरित, जो अपने व्यवसाय में सर्वश्रेष्ठ देने के हित तथा सरकार द्वारा प्रयोग में लाये गये 'गाजर एवं छड़ी' के सिद्धान्त का परिणाम था, के द्वारा इन्होने सरकार के उद्देश्यों के सुसंगतता के क्रम में समुदाय के विकास हेतु परोपकारिता के कार्यक्रम संचालित किये साथ ही कई व्यावसायिक अगुवाओं ने व्यवसाय के ऊपर (हिस्सें में/के लिए) और सामाजिक उत्तरदायित्व आरोपित करने के समर्थन में आयें/इनके अनुसार, परोपकारार्थ दान महज एक पक्ष (पहलू) था, अन्यपक्ष अपने व्यवसाय के व्यवहार को अधिक नीतिपरक (नीतिपूर्ण) बनाना तथा उस भौतिक वातावरण के प्रति सजग/चिंतित/ध्यानशील रहना था। जहाँ वह व्यवसाय संचालित हो रहा था। यह एक विविधतापूर्ण युक्त कार्यक्रमों का गुलदस्ता था जिसमें वनीकरण, व्यक्तियों के लिये विज्ञान शिक्षा, स्मारकों का संरक्षण, महिलाओं के अधिकार एवँ उपभोक्ता शिक्षा सम्मिलित थे।

<u>1980 के आगे :–</u>

1980 के बाद के अवधि (समय/काल) ने व्यावसायिक संयोगों में एक चढ़ाव, (विकास/उभार) का दौर देखा जो उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण, सामवेत रूप में, आर्थिक सुधारों का परिणाम था, साथ ही आत्म–विस्वास के पुर्नप्रदय का भी दृश्य परिलक्षित हुआ इसने व्यवसाय की समाज को देने की इच्छा एवँ क्षमता के साथ समाज एवँ सरकार की व्यवसाय से अपेक्षाओं को भी बढ़ावा/यह समकालीन समय जो व्यवसायिक नागरिकता के पद से विशेषित किया गया। सहायता एवँ पारम्परिक परोपकारिता के प्रत्यक्ष्य मुख्यधारा विकास एवँ समाज के लाभ वंचित समूहों के प्रति झुकाव /जुडाव का साक्षी बना।

सार रूप में, व्यवसाय एवँ उद्योग के भारत में विकास समाज एवँ व्यवसायिक समुदाय के अपने दायित्वो तथा वे किस प्रकार उन्हे व्यक्त (अभिव्यक्त) होने की आवष्यकता है, के उनके रूख (रवैये) के स्पष्ट परिवर्तन के संग–संग स्थान लिया है। यह कहा जा सकता है कि व्यापार सहायता से व्यवसायिक नागरिकता की और रिवसकाव (परिवर्तन) पूर्ण नहीं है। तथा यह अनभ्यस्त नहीं है, कि समस्त तीन–सहायता, परोपकारिता एवं व्यावसायिक नागरिकता का सम्पादन (संचालन) कुछ व्यावसायिक परिवारों अथवा निगमों द्वारा ही व्यवहार में किया जा रहा है।

भारत का आर्थिक सुधार एवं विश्व के एक बड़े बाजार एवं प्रमुख खिलाड़ी (देश/संख्या) के रूप में इसके आभार (अभ्युदय) ने इसके सी. एस. आर.

(सामाजिक उत्तरदायित्वता) के प्रति रवैया में कोई तात्विक (संतोशजनक) परिवर्तन नहीं किया है।

इन विविध अपेक्षाओं के विपरीत कि भारत वैश्विक सी.एस.आर. के प्रति रूख अभी भी अपनी स्वयं की विषेशताओं को धारण करता है तथा वैश्विक मुख्यधारा में सम्मिलित सी.एस.आर. के महज कुछ प्रावधानों (पहलुओं/पक्षों) को ही सम्मिलित करता है। अध्ययन दर्शाते हैं, कि भारतीय सी.एस. आर. अभी अस्पष्ट (अनिश्चित) अवस्था में है, निम्नांकित कथन इसके साक्ष्य हेतु पर्याप्त हैं।

ऐसा होता दिख रहा हे कि भारत की सी. आर. के प्रति समझ (रवैया) परम्परागत परोपकारिता से संवहनीय (टिकाऊ) व्यवसाय की ओर परिवर्तित (खिसक) हो रही है, इसके बावजूद तमाम भारतीय कम्पनियों में परोपकारिता प्रणाली (पद्धति) व्यापक रूप से व्याप्त (फैली हुयी) है।

समुदायिक विकास अभी भी भारतीय (भारत के) सी. एस. आर. कार्यक्रम में निर्णायक भूमिका निभाता है।

3.6 सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रतिमान

कतिपय ऐसे प्रतिमान है जो कम्पनियों के सामाजिक अभिविन्यास (अभिमुखीकरण) के विकास एवं मात्रा को वर्णित करने का प्रयत्न करते हैं। जिनमें, कैरोल का मार्डॅल, हलाल का मॉडल तथा एकरमेन का माडल प्रमुख हैं।

आर्ची बी. कैरोल, जिन्होंने व्यवसाय की सामाजिक उत्तरदायित्वता को उन समस्त दायित्वों की सीमा के रूप में परिभाशित किया जो व्यवसाय समाज के प्रति रखता है, ने व्यावसायिक (निगमीय) निष्पादन के त्रि–विभीगय सैद्धाँतिक प्रतिमान प्रस्तुत किया।

कैरोल के अनुसार फर्म निगमीय (व्यावसायिक) निष्पादन के दायित्व के निम्नलिखित चार वर्गों को धारण करती है।

1. आर्थिक
2. विधिक
3. नैतिक (नीतिपरक)
4. विवेकगत (विवेकाधीन/स्वनिर्णयगत)

आर्थिक संस्थान होने के कारण फर्म का प्रारम्भिक उत्तरदायत्वि, आर्थिक है यथा समाज की आर्थिक आवश्यकताओं को संतुश्ट करना तथा अतिरिक्त विकास एवं निवेशकों को पुरस्कृत करने हेतु आधिकक्य का सृजन करना।

विधिक दायित्व (उत्तरदायित्व) भी मूलभूत प्रकृति के उत्तरदायित्व हैं, क्योंकि एक कम्पनी देश के कानूनों (विधियों) का पालन करने को बाध्य है।

नीतिपरक (नैतिक) उत्तरदायित्व कतिपय ऐसे मानक हैं, जो हालाँकि विधिक द्वारा बाध्यकाकारी (अनिवार्य) नहीं होते हैं, किन्तु व्यवसाय द्वारा आपेक्षित होते हैं, कि वे इन दायित्वों का पालन करें। उदाहरणार्थ एक कम्पनी रिश्वत अथवा अनैतिक व्यवहारों का आश्रय नहीं ले सकती तथा अनुचित प्रतिर्स्पधात्मक व्यवहारों में सम्मिलित नहीं होगी।

विवेकगत उत्त्रदायित्व से ऑशय सामाजिक उद्देश्यों (सामाजिक कार्यों) हेतु व्यवसायक के स्वैच्छिक अंशदान से है, जिसके अन्तर्गत सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों एवं अन्य सामाजिक कार्यक्रमों को समिम्मलित किया जा सकता है।

कैरोल ने पाया (ध्यान दिया) कि ये चार वर्ग परस्पर अनन्य नहीं है तथा इनके मध्य की सीमाओं को परिभाशित करना यदि असम्भव नही ंतो अति कठिन अवश्य है। इसके अतिरिक्त ये पद 'मूल्य– युक्त' नहीं है तथा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा अलग–अलग प्रकार से निर्वचित किये जा सकते हैं।

बाद में कैरोल ने इन उत्तरदायित्व के विभिन्न वर्गों को व्यावसायिक सामाजिक उत्तरदायित्व के (सी. एस. आर.) पिरामिड के रूप में प्रस्तुत किया आर्थिक उत्तरदायित्व पिरामिड के आधार में (आधार रूप में/प्रारम्भिक रूप में) अवस्थिति है, तत्पष्चात विधिक उत्तरदायित्व तथा अन्त में विवेकगत (परोपकारी) उत्तरदायित्व आते है।

कैरोल के पिरामिड के अनुसार विधिक उत्तरादायित्व केवल द्वितीय चरण (अवस्था/स्तर) में आते हैं। यह सही दृष्टिकोण (विचार) नहीं है, क्योंकि कम्पनी को अनिवार्य रूप से विधिका पालन करना ही होता है यहाँ तक कि यदि वह आर्थिक दायित्वों/उद्देश्यों का निर्वहन न कभी कर रही हो तो भी चह विधिक उत्तरादायित्वों के पालन तब तक अनिवार्ययतः करेगी जब तक कि वह अस्तित्व में रहेगी। निम्न प्रस्तुत चित्र वास्तविक पक्ष (दृष्टिकोण) को स्पष्ट करता है ।

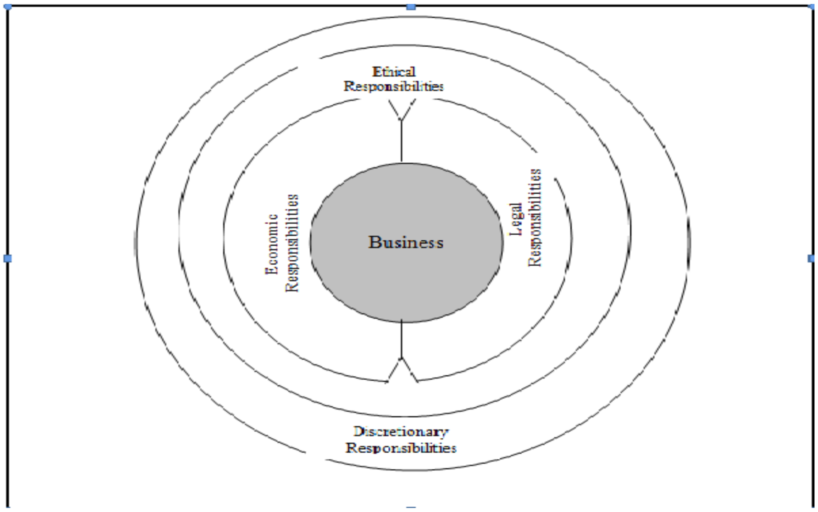

चित्र 3.1 व्यवसाय के उत्तरादायित्व

विलियम ई. हलाल का निगमीय (व्यावसायिक) निष्पादन का संसाधनों पर प्रत्यय (रिर्टन आन रिर्सोसेज) प्रतिमान ने इस तथ्य को पहचाना कि कोई भी सामाजिक हाव–भाव (क्रिया) मूल्य–मुक्त नहीं होगी और इसने व्यवसाय की सामाजिक उत्तरदायित्वता की अनुक्रियाशीलता (संवेदनशीलता) को अत्याधिक कठिन कार्य बना दिया। उन्होंने पाया कि (कहा कि) एक फर्म महज संगठन/गठबंधन के सदस्यों के मध्य मूल्यों के वितरण हेतु प्रयासरत एक कार्ययोग्य गठबंधन के विभिन्न सामाजिक समूहों के विविध (अलग–अलग) हितों को संयुक्त करने का प्रयास भर कर सकती है। आर्थिक गतिविधियों की एक निष्चित सीमा के परे एक सिद्धान्त पर सामाजिक मुद्दों संघर्श का (विवाद) कारण बन सकते हैं। उदाहरणार्थ, सामाजिक कार्यों पर अत्याधिक व्यय फर्म की लाभदायकता को प्रभावित कर सकता है, जो कि फर्म के हित धारकों एवं फर्म के भविष्य के लिये एक उलझाव का कारण हो सकता है। यह आर्थिक एवं नीतिपरक

(नैतिक) दोनों, निर्णयों से सम्बन्धित दुविधा को आमंत्रित करेगा जो अवश्य ही किसी हितधारक (प्रत्येक हितधारियों) की आवश्यकता को नहीं संतुष्ट करेगा।

आकमेन प्रतिमान के अनुसार किसी कम्पनी की सामाजिक अनुक्रियाशीलता के विकास के तीन चरण होते हैं।

प्रथम चरण वह होता है, अब उच्च प्रबंधन किसी ऐसी सामाजिक समस्या को पहचानता (मान्यता देता है) है, जिस ओर कम्पनी का ध्यान अपेक्षित (आवश्यक) तथा मौखिक अथवा लिखित कथनों द्वारा इस हेतु कम्पनी की नीतियों को ज्ञापित करता है।

द्वितीय चरण कम्पनी द्वारा समस्याओं के अध्ययन एवं इनसे निपटने हेतु रास्तों (ढंग) की प्रति हेतु स्टाफ विशेषज्ञों की अथवा वाहय परामर्षकों की नियुक्ति से सम्बन्धित है।

तृतीय चरण के अन्तर्गत सामाजिक उत्तरदायित्वों से समबन्धित कार्यक्रमों के क्रिया—वदन को सम्मिलित किया जाता है।

3.7 सामाजिक अनुक्रियाशीलता (प्रतिसंकेत) पर दबाव आरोपित करने वाले बल

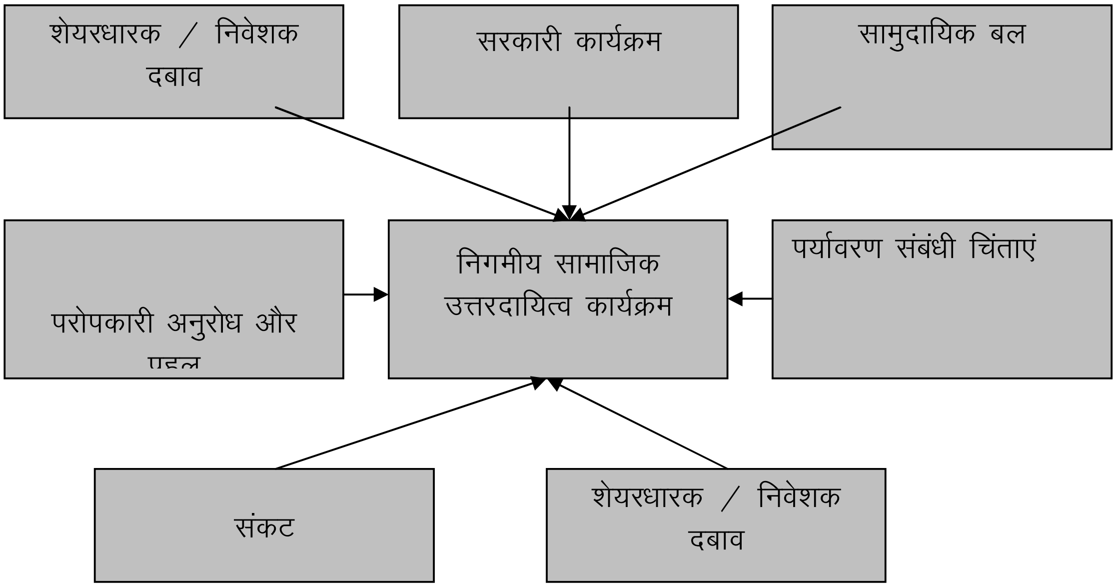

चित्र – 3.2 सामाजिक उत्तरदायित्व हेतु दबाब कारक।

सभी फर्म सामाजिक समूह के दबावों तथा सामाजिक नियमों के प्रति कमजोर नही हैं। केवल कुछ फर्म पर दबाब है, कि वे सामाजिक उत्तरदायित्व के कार्यो को अपने हाथ में लें। फर्म को सामाजिक विषयों (मुद्दों) के प्रति अनुक्रियाशील (प्रतिक्रियात्मक) बनाने वाले प्रमुख बल (शक्तियाँ), सरकार, सामुदायिकहित एवं माँग, पर्यावरणीय मुद्दे प्रतिर्स्पधात्मक दबाब, अंशधारियों, निवेषकों का दबाब, परोपकारी अनुनय तथा पहल (अगुवाई) एवं आपदा (संकट) हैं।

सरकारी कार्यक्रम :— सरकारें (देश अथवा विदेशी) फर्म को सामाजिक कार्यों के लिये दबाब बनाने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं। अधिकांश सरकारें उपक्रमों/फर्म को विद्यमान नियमों/कानूनों का पालन करने हेतु दबाव बनाती हैं,

किन्तु सरकारें सम्भावित (सम्भाव्य) कानूनों का एक सर्वप्रमुख स्त्रोत हैं, यह तथ्य महत्वपूर्ण है तथा व्यवसाय को यह बात ध्यान में रखना चाहिये। सरकार व्यवसाय को उनकी समस्याओं के समाधान हेतु कह सकती हैं।

सरकार के सामाजिक कार्यों हेतु शासनादेश नयी बात नहीं है। सन् 1300 में, उदाहरणार्थ, लन्दन में रहने वाले जिन लोगों ने नगर के धूम–प्रदूषण विधेयकों का पालन नहीं किया, उन नियमों को भंग किया उनका सिर कटवा दिया गया था। अमेरिका में उत्तरार्द्ध में कतिपय वस्तुओं की गुणवत्ता एवं शुद्धता हेतु नियामक प्रावधान औपनिवेशिक समय से ही था तथा प्रान्तीय एवं संघीय सरकारों क जल–प्रदूषण रोकने हेतु प्रयत्नों की शुरूआत 1800 के उत्तरार्द्ध में हुयी।

विदेशी सरकारों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसायों पर यह दबाब डाला कि वे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रारूपित (निर्मित/बनाये गये) आचार–संहिताओं का पालन करें। संहिता व्यवसायों से मानवाधिकारों एवं सामाजिक न्याय के सम्मान की अपेक्षा रखती थी। व्यवसायों से यह अपेक्षित था कि वे उचित मजदूरी प्रदान करें पर्यावरण की संरक्षा करें, कर्मचारियों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को सुनिश्चित करें, श्रामिकों की जीवन–निर्वाह स्तर को उन्नत बनायें तथा नीतिपरक आचरण करें।

सामुदायिक हित एवं माँग– कम्पनियों (फर्मों) ने कई सामाजिक लाभ के कार्यक्रमों, सामान्यता का बीड़ा उठाया जो अंशधारियों के हितार्थ (पक्ष में) हो यह आवश्यक नहीं था। कार्यक्रमों को क्षेत्र व्यापक हो सकता है, लाभवंचित वर्गों के व्यक्तियों के पुर्नस्थापना सहायता से लेकर सरकारी उपक्रमों को चलाने हेतु अधिशाषी प्रतिभाओं को प्रदान करने तक।

अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विदेशों में कार्यक्रमों को व्यापक सीमा का बीड़ा उठाया है, उदाहरणार्थ, मलेशिया, कोरिया एवं मैक्सिकों के गरीब किन्तु योग्य (सुपात्र) छात्रों को उच्च अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति का सृजन।

पर्यावरणीय मुद्दे :– फर्म के पर्यावरणीय कार्यक्रम सरकारी अभिकरणों द्वारा स्थापित मानकों के परिणाम है। उदाहरणार्थ, भारत सरकार ने पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 अधिनियमित किया। अधिनियम का मुख्य उद्देश्य मानव अन्य जीवित जन्तु (जीवों) पौधों एवं सम्पत्तियों का खतरे से रक्षण करना था। अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत स्थापित (गठित) प्रदूषण नियंत्रण परिषदों ने विभिन्न मानकों को निर्धारित किया जिनका पालन फर्म (कम्पनियों) से अपेक्षित था।

अंशधारको/निवेशकों के दबाव : – बड़े अंशधारी, यथा पेंशन निधि अपने निवेशों में दीर्घकालिक हित रखते हैं। उनमें से कुछ फर्मों पर सामाजिक हितों के प्रति पर्याप्त/उपर्युक्त प्रति संवेदात्मकता/अनुक्रियाशीलता दर्षाने (रखने) का दबाव आरोपित करते हैं। उदाहरणार्थ पेप्सी कम्पनी के अंशधारियों ने म्याँमार से मानव अधिकारों के उल्लघंन के कारण सैनिक शाशन हटाने का अभियान चलाया। पेप्सी कम्पनी ने अपने अंशधारियों को उपकृत किया।

3.8 विभिन्न हितधारियों (हिस्सेदारों) के प्रति उत्तरदायित्व

बहु–हितधारी सिद्धान्त व्यवसाय के स्व–नियमन (स्व–अनुशासन) के दोषों एवं विधिक नियमन की दुर्बलताओं के परिणाम–स्वरूप कार्य–सूची (कार्यक्रमं) में रखा गया। यह गैर–सरकारी संगठनों, तथा बहु–पक्षीय संस्थानों के लिये आवष्यक था किये एक साथ सृजनकारी एवँ सहयोगात्मक ढ़ग से सी0एस0आर0 प्रकिया के पूरक लक्ष्यों, विविध अपेक्षाओं की प्राप्ति हेतु कार्य करें ।

भारत के मामले में बहुहितधारी संकल्पना के पूर्ण संभाव्यता (क्षमता) को अभी तक नही प्राप्त किया जा सकता है, इसके दों प्रमुख कारण है। प्रथम सी0 एस0 आर0 के क्षेत्र में केवल कुछ नागरिक सामाजिक संगठनों की ही सहयोग प्राप्त हो रहा है। कोई भी आरम्भ किया गया बहु–हितधारी प्रक्रिया इसीलिए स्वयं जारी नही रह पायी । दूसरा (द्वितीयतः) भारतीय कम्पनियाँ इस आधार पर बहुहितधारी उपागम अपनाने को अनिच्छुक है। कि सी0 एस0आर0 व्यवसाय द्वारा न कि गैर –सरकारी संगठनों द्वारा चालित होना चाहिये।

सामान्य रूप में (साधारण) भारतीय सी0एस0आर0 नीति बहु–हितकारी उपागम के विचार से प्रत्यक्षतः नहीं जुडी (श्रृखलाब) हैं दूसरी तरफ इस विषय (बिन्दुपर) पर गैर– सरकारी संगठनों की प्रतिक्रियाशीलता (अनुक्रियात्मकता) दूसरी ही तस्वीर दिखाती है। सामान्य धारणा (सोच/मान्यता) यह है, कि कम्पनियँा सामुदायिक विकास परियोजनाओं के सफल क्रियान्वयन हेतु गैर सरकारी संगठनों के तौर पर नहीं । उपरोक्त परिणामों के बावजूद भारत में बहु–हितकारी उपागम पर एक सकारात्मक दृष्टिकोण लोकप्रिय है। हालाँकि भारत में सी0एस0आर0 अभी भी व्यवसाय के स्व–अनुशाशन (स्व–नियमन) पर आधारित है। विभिन्न हितधारकों के प्रति उत्तर–दायित्व को निम्नवत वर्णित किया गया है।

3.8.1 अंशधारियों के प्रति उत्तरदायित्व :–

व्यक्ति पैसा कमाने के लिए पैसे में निवेश करते है। मिलटन फ्रीडमेन ने कहा था कि (दावा किया था) व्यवसाय का नीतिपरक शाशनादेश अंशधारकों के लाभ को बड़ाना है। व्यवसाय का प्राथमिक उत्तरदायित्व, अंशधारको की सम्पति (धन) को बढ़ाना, निवेश पर उचित (श्रेष्ठ) प्रत्यक्ष प्रदान करना, अंशधारियों छोटे अंशधारी के भी एवँ उनका सम्मान करना, अंशधारियों को नियमित रूप से निर्णयन में आमँत्रित करना है।

इस प्रकार अंशधारियों के प्रति प्राथमिक उत्तरदायित्व उनके लिए धन (संम्पदा) का सृजन करना हैं। आर्थिक मूल्य संकलित विश्लेशण (इकोनोमिक बैलयू एडेड एनलासिस –EVA। (इवा विश्लेशण) अंशधारकों की सम्पत्ति में अभिवृध्दि मापने का एक प्रभावी उपकरण है। इकोनोमिक बैल्यू रूडेड अंशधारकों की सम्पूर्ण के प्रत्यय में आशातीत अभिवृध्दि है। ऋण की लागत ब्याज के रूप में चुकानी होती है। किन्तु वित्तीय पदों में समता की कोई लागत नहीं होती । अतः ई0वी0ए0 में समता लागते, जाखिम–समायोजित प्रत्यय दर होती है। जिसे निवेशक को इस प्रकार के निवेश से अपेक्षा रखनी चाहिये।

यह ई0वी0ए0 के बराबर अथवा ऊपर हो सकता है। और यदि यह इसके नीचे के पदो में यह अंशधारियों की घटती संम्पत्ति (धन) का सूचक है। ये अपेक्षित प्रत्यय मिलान करने चाहिये और यदि ऊपर (अधिक) है। तो ई0वी0ए0 धनात्मक है। तथा यदि यह कम है तो ई0वी0ए0 नकारात्मक (ऋणात्मक)है। इस प्रकार फर्म लाभ में हो सकती है, किन्तु अपने अपेक्षाओं को पूर्ण करने में असफल हो रही है।

3.8.2 कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायित्व :–

किसी संगठन की सफलता इसके कर्मचारियों पर निर्भर करती है। ये बीते दिनों की बातें हैं जब कर्मचारी संगठन के सर्वाधिक उपेक्षित संसाधन हुआ करते थे। वर्तमान में मानव संसाधन प्रबंध समस्त उद्योगों की सफलता हेतु एक क्रॉन्तिक (महत्वपूर्ण/सूक्ष्म) नाजुक धटक है। वह चाहे प्राचीन आर्थिक उद्योग यथाः स्टील,

सीमेन्ट, हो एएम0 सी0जी0 हो अथवा नयी अर्थव्यवस्था में बी0पी0ओ0 एवँ सॉफ्टवेयर सर्विस हो, मानव संसाधन की महता सभी जगह है। संगठन की अपने कर्मचारियों के प्रति निम्नलिखित उत्तरदायित्व होता है।

1. उचित व्यवहार,
2. जाति, लिंग, अथवा रंग के आधार पर कोई विभेद नहीं :,
3. उचित मजदुरीः,
4. उचित आगणन प्रणालीः,
5. सुरक्षित एवँ स्वास्यप्रद (स्वरूप) कार्यकारी वातावरणः,
6. उचित कार्य मानकों एवँ मानदण्डों की स्थापनाः,
7. श्रम–कल्याण सुविधाओं का प्रावधानः,
8. पूर्णता (प्रारित) एवँ पदोन्नति के उचित अवसर प्रदान करनाः,
9. श्रमिकों के विशेष कौसल एवँ क्षमताओं (अभियोग्यताओं) के उचित पहचान (मान्यता) प्रशंषा एवँ प्रोत्साहन का प्रयास करना :,
10. दक्ष (कुशल) परिवेदना निस्तारण प्रणाली का प्रतिष्ठानपनः,
11. यथा वाँछनीय स्तर (मात्रा / सीमा) तक प्रबंधकीय निर्णयों में भागीदारी का अवसरः,
12. प्रशिक्षण एवं विकास के समुचित कार्यक्रमों का संचालन जिससे कि श्रमिक अपने को परिवर्तित वातावरण के अनुसार विकसित कर सकें।
13. परिवार कल्याण : इसके अनुसार, यदि श्रमिक अपने परिवारिक जीवन में कम समस्यायें रखेगें तो उनकी उत्पादकता उच्च (अधिक) होगी। इसी कारण से टाटा समूह ने अपने कर्मचारियों के परिवार –कल्याण हेतु बड़ी मात्रा में निवेश किया है। जे0 आर0डी0 टाटा ने यूनेस्कों का विश्व जनसंख्या पुरस्कार जीता है। जे0 आर0डी0 टाटा ने अपने कर्मचारियों के विशय में ज्ञान / समझ बढ़ाने हेतु अत्यधिक धन निवेश किया हैं , जिसका परिणाम अंततः कर्मचारियों के प्रसन्न परिवार के रूप में सामने आया। भारत का अधिंकाश (ज्यादातर) कार्य–बल निजि–क्षेत्र में नियोजित है। कल्पना करिये कि यदि सभी निजी –क्षेत्र परिवार नियोजन पर ध्यान देते है। तो देश को लाभ पहुचाने के साथ–साथ संगठन के लिए भी वरदान होगा ।

हालाँकि व्यवसायियों की (व्यवसाय की) कर्मचारियों नितियों से सम्बन्धित दो पहलु है, जिनका निकटता से परीक्षण किया जाना आवश्यक है।

1. <u>बाल–श्रम</u>

जब यह आपूर्त्ति श्रृखला में सी0एस0आर0 में आता है, कम्पनियाँ अपने आपूर्त्तिकताओं के मध्य बाल–श्रम के प्रभावी उन्मूलन पर जोर दार देती है। जबकि बाल–श्रम, भारतीय संविधान द्वारा प्रतिबंधित /निषिद्ध किया गया है। किन्तु इस विधिवा प्रवर्तन यथा रूप में नहीं हो पा रहा है। भारत में कार्यरत कम्पनियाँ उत्तरदायी सी0एस0आर0 एवँ ठेकेदारों द्वारा बाल–श्रम के उन्मूलन को परिभाषित किया (अर्था–वयन) है। जो कि लिखित विधि की आवश्यकता से आगे नहीं जा रहा हैं, बल्कि भारत में सामान्यतः प्रचलित विधि के पार (परे) जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार '14 वर्ष से कम के किसी बच्चे को किसी कारखाने, अथवा किसी खतरनाक नियोजन में नियोजित नहीं किया जायेगा'

तथापि भारत ने अंतर्राष्ट्रीय श्रम–संगठन के कोर (कार) कन्वेशन संख्या 182 जो कि 'बाल–श्रम के निकृष्टतम प्रकार' से सम्बन्धित है, को अंगीकार नहीं किया है।

2. संविदा–श्रम

संविदा–श्रम को उत्तरदायी व्यवसायिक आचार के बचाव (पलायन) मार्ग के रूप में देखा जाता है। भारत में संविदा–श्रम एक व्यापक सिद्धान्त है। अतर्राष्ट्रीय श्रम–अधिनियम द्वारा निर्धारित कठोर श्रम–नियमों के फलस्वरूप मंदी काल में भारतीय कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को बर्खास्त (पदच्युत) करने में कठिनाई का अनुभव कर रही थी। अपने आदेशों (माँग–आदेश) में उच्चावचन के प्रत्युत्तर (प्रतिकार) में कम्पनियों ने अपने उत्पादन प्रक्रिया को घरेलू संविदा श्रमिकों को आउटर्सोस कर दिया था। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में संविदा–श्रमिक श्रमविधि एवं श्रम–अनुबंधों में वर्णित संरक्षण एवं लाभ नहीं प्राप्त करते हैं, सिवाय न्यूनतम मजदूरी के इस प्रकार संविदा श्रम एक छिद्र है, जो षोशणकारी उद्योगों को सशक्त करता है, तथा श्रम अधिकारों के हनन एवं प्रदूषण को बढ़ाता है।

3.8.3 उपभोक्ताओं के प्रति उत्तरदायित्व :–

1. प्रमाणित गुणवत्ता की वस्तुओं को प्रदान करना।
2. उत्पाद के वर्द्धन एवं नव–प्रवर्तन हेतु नियमित शोध एवं विकास को सुनिश्चित करना।
3. यह सुनिश्चित करना कि उत्पाद उपभोक्ताओं तक पहुँचता है, तथा किसी भी प्रकार के कालाबाजारी अथवा मध्यस्थों अथवा गैर–सामाजिक तत्वों द्वारा मुनाफाखोरी को रोकने के कदम अमल में लाना।
4. उचित मूल्यों पर वस्तुओं की आपूर्ति।
5. विक्रय–पश्चात सेवाएँ प्रदान करना तथा सुनिश्चित करना की उत्पाद के स्पेयर पार्ट्स बाजार में उपलब्ध हों।
6. अपने वचनों (प्रतिश्रुतियों/प्रतिबद्धताओं) को निष्पक्षता एवं षिश्टता के साथ सुदृढ़ एवं स्पश्ट व्यावसायिक सिद्धान्तों के अनुक्रम (सुसंगतता में) में पूर्ण करना।
7. उत्पाद के विषय में संतोशजनक सूचनायें प्रदान करना साथ ही उत्पाद के विपरीत प्रभावों, जोखिमो तथा प्रयोग के समय बरती जाने वाली सावधानियों को भी बताया जाना आवश्यक है।
8. यह सुनिश्चित करना कि आपूर्ति किये गये उत्पाद उपभोक्ता के ऊपर कोई विपरीत प्रभाव नहीं रखते हैं।
9. उपभोक्ताओं के वाजिब (उपर्युक्त) परिवेदनायें को सुनना एवं निस्तारित करना।
10. किसी भी प्रकार के उत्पादक–संघ के निर्माण से (गठन को) बचना जो एकाधिकारी लाभ उठाने का प्रयास करें।

3.8.4 समुदाय (समाज) के प्रति उत्तरदायित्व :–

1. पर्यावरणीय प्रदूषण तथा परिस्थितिकीय असंतुलन को रोकना।
2. व्यावसायिक परिचालनों की दक्षता (कुशलता) को उन्नत बनाना।
3. शोध एवं विकास में योगदान।
4. पिछड़े क्षेत्रों का विकास।
5. लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना।

6. उस क्षेत्र का विकास करना जहाँ वे व्यवसाय संचालित कर रहे हैं। इसमें विद्यालयों के विकास के लिये कार्य करना, सामाजिक जागरूकता के कार्यक्रमों प्रौढ़–शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सकीय सुविधाओं पल्स पोलियो मिशन इत्यादि सामाजिक उद्देष्य के कार्यों में सरकार तथा गैर–सरकारी संगठनों की सहायता करने के कार्यों को करना।
7. अल्प (कम/अत्यल्प/सीमित) संसाधनों को संरक्षित करना तथा यथा सम्भव वैकल्पिक संसाधनों को विकास करनां

3.9. व्यवसाय के प्रमुख (प्रधान) सामाजिक उत्तरदायित्व

1. **दुष्प्राप्य (अल्प) राष्ट्रीय संसाधनों का अनुकूलतम संदोहरण** :– सभी निगमों (फर्म/उपयोग करना चाहिये तथा इसका अपव्यय नहीं करना चाहिये तथा इसके निष्कासन (व्यवस्थापन) पर किसी क्षति अथवा पतन (नुकसान) को रोकने का/बचाने का प्रत्यन करना चाहिये। यह ऊर्जा/विद्युत के अल्प संसाधना युक्त देशों यथा भारत में अत्यावश्यक है। सिर्फ इतना ही नहीं व्यवसाय को ऊर्जा/विद्युत के वैकल्पिक स्त्रोतों को विकसित करना चाहिये। उदाहरणार्थ (आई.टी.सी.) ने अपने कतिपय परियोजनाओं के लिये पावन ऊर्जा प्रयोग करता है, जबकि वैकिल्पक ईधन के शोध पर व्यय करता है। रिलायंस संसाधनों के कुशल उपयोग (संदोहरण) का उत्तम (बेहतरीन) उदाहरण है, यह अपनी एक परियोजना में प्रयोग करता है। इसके पेट्रोकेमिकल संयत्र एवं शोधन शालाएँ (रिफाइनरी) परस्पर इस प्रकार एकीकृत हैं जिसके कि वे एक–दूसरे के उत्पादों का उपयोग कर सकें।
2. **हानि/घाटा न उठाने का उत्तरदायित्व** :– घाटे में चलने वाली इकाईयाँ समाज पर बोझ (भार) होती है। इन्हें महज समाज के संसाधनों को संरक्षित ही नहीं करना चाहिये वरन् अपने उपभोक्ताओं के प्रति अपने कर्तव्य को उचित (श्रेष्ठ) उत्पाद प्रदान कर, अंशधारियों के प्रति अपने कर्तव्य को उनकी सम्पत्ति में वृद्धि करके, समाज कें प्रति अपने कर्तव्य को इसके संसाधनों का उचित उपयोग कर तथा अपने कर्मचारियों के प्रति श्रेष्ठतर मानव–संसार मानकों का पालन करके करना चाहिये।

   अधिकांश सार्वजानिक क्षेत्र की इकाईयाँ घाटा उठाने के बावजूद समाजवाद एवं नियोजन के नाम पर चालू रहते हैं जो कि समाज पर मूलतः एक बोझ है। उनके घाटों की पूर्ति समाज पर आरोपित कर के होती है। कोई कह सकता है, कि समाज सार्वजानिक क्षेत्र की इकाईयों की अकुशलता (अदक्षता) को अनुदानित (सहायता) करने हेतु करता है। प्रश्न यह उठता है, कि उन्हें क्यों करना चाहिये।
3. **जीवन की गुणवत्ता को उन्नत बनाना** :– संगठन को समाज के जीवन–स्तर (गुणवत्ता) को उन्नत बनाने में सहायता करना चाहिये जो कि वित्तीय शक्ति एवं वस्तुविकास पर आधारित होती है।
4. **नियोजन एवं आय का उत्तरदायित्व** :– प्रत्येक व्यवसाय को उचित मजदूरी (पारिश्रमिक) प्रदान करने संतोषजनक कार्यवातावरण (कार्य–दशाएँ) प्रदान करने नियमित रोजगार एवं कार्य–सुरक्षा प्रदान करने, पदोन्नति के

अवसर (सम्भावना) श्रमिकों की वृद्धि एवं विकास तथा कर्मचारी कल्याण हेतु पर्याप्त एवं उचित उपाय अपनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

5. **उचित मूल्यों पर गुणवत्तायुक्त उत्पादों को प्रस्तुत करना :–** (पूर्णतः) उपभोक्ताओं का सृजन (उपभोक्ता को बनाना/जोड़ना) है तथा उपभोक्ता तभी बन सकते हैं जब वे संतुष्ट हों। उपभोक्ता तभी संतुष्ट हो सकते हैं, जब उन्हें उचित (श्रेष्ठ) गुणवत्ता की वस्तु उचित मूल्य पर प्राप्त होती है, इसके साथ–साथ विक्रय–पश्चात् सेवाएँ समयानुसार सूचना तथा उत्पाद को वास्तविक/सही उपभोक्ता तक कब पहुँचाता है ये घटक भी ग्राहके–संतुष्टि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

6. **पर्यावरण संरक्षण :–** औद्योगीकरण पर्यावरण को भारी अप्रतिकार्य (अपूरणीय) हानि/क्षति (नुकसान) पहुँचा रहा है। अतः यह उनके लिये न सिर्फ नैतिक वरन् विधिक दायित्व है, कि वे इन क्षतियों (नुकसानों) को अन किया (हटाने/कम करने) हेतु गम्भीर एवं जिम्मेदार कदम उठाये जिससे पर्यावरण संरक्षित, स्वरूप एवं संवहनीय हो सके। उन्हें यह सुनिश्चित करने हेतु आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाना चाहिये कि उनके परिचालन प्रक्रिया से पर्यावरण को कोई हानि (क्षति/नुकसान) नहीं पहुँच रही है। व्यवसायों को अपने कर्मचारियों एवं व्यक्तियों को पर्यावरण के प्रति साामन्य रूप से शिक्षित करने हेतु कदम उठाने चाहिये।

7. **उचित व्यापार–व्यवहार :–** उचित व्यापार–व्यवहार में निम्नलिखित सम्मिलित
होते हैं।
    1. व्यापार–संघों की रचना (निर्माण) तथा एकाधिकारी व्यवहारों से बचना (न करना)
    2. कालाबाजारी एवं सट्टा (अधिक मूल्य पर बेचने की आशा से मोल लेना) लगाने के उद्देश्य से वस्तुओं की आपूर्ति को कम करना (कृत्रिम आभाव उत्पन्न करना)
    3. दावों के बारे में अतिशयोक्ति (अत्युक्ति) करना एवं मिथ्या–वर्णन कहना।
    4. अपने पक्ष में निर्णयों हेतु राजनैतिक पक्ष को न खरीदना,
    5. प्रतिस्पीद्वियों के साथ स्वस्थ प्रतिस्र्पधा करना तथा उनकी गुप्तचारी (जासूसी) या अन्य अनैतिक/अनितिपरक कार्यो में न सम्मिलित होना,
    6. दायित्वों से बचने अथवा उत्तरदायित्वों से पलायन करने हेतु जान–बुझकर (सोद्वेश्य) संगढनों को रूग्ण न बनना,
    7. भेदिया व्यापार में सम्मिलित न होना तथा आँतरिक सुचनाओं का अनुचित लाभ न उठाना,
    8. लोक –सेवकों को रिश्वत न देना तथा देश के लोकताँत्रिक ढ़ाँचे को भ्रष्ट न करना,
    9. करों, शुल्कों एवँ अन्य बकायों का सत्यनिष्ठा पूर्वक एवँ समयानुसार भुगतान करना,

10. अंशधारियों एवं समस्त अन्य हितधारियों को आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना,
11. ऋणों एवं ब्याजों का समयानुसार भुगतान करना,
12. अपने आपूर्तिकर्ताओं से व्यवहार करते समय संगठनों को अपनी सौदेबाजी क्षमता का प्रयोग करने के स्थान पर उनसे अच्छे सम्बन्ध निर्माण में निवेश करना चाहियें । यह गुणतंत्र बनाये रखने तथा संगठनों के लिये नवीन उत्पादों के निर्माण /विकास में आपूर्तिकताओं की सहायता करेगा आरम्भ में यह महँगा लग सकता हैं किन्तु बाद में यह फल देगा । जापानी प्रायः अपने आपूर्तिकर्ताओं से अच्छी समझ विकसित करने में विस्वास करतें है।
13. व्यवसायको देश के कानून (विधियों) का पालन करनें वाला होना चाहियें।

8. <u>स्थानीय विकास :–</u> व्यवसाय चूँकि समाज के संसाधनों का प्रयोग करता है। अतः व्यवसाय अपने आस–पास के क्षेत्र के विकास हेतु कई कार्य कर सकता है। वास्तव में यदि प्रत्येक व्यावसायिक घराना कुछ गाँवों की जिम्मेदारी उठा ले तों भारत में चमत्कार हो सकता है।

व्यावसयिक घराने यथा : टाटा केमिकल आई0 टी0 सी0 तथा एच0 एल0एल0 ऐसा कर रहे है। ये व्यावसयिक घरानो गाँव गोद लेते है। सडकें बनवाते है, साक्षरता का प्रसार करते है। नियोजन एवँ अन्य सामाजिक सुधार के कार्यक्रम को प्रोत्साहित करते है। कृषि कार्यो में किसानो की मदद करतें है। तथा उनके उत्पादों का विपणन करते है, इसी प्रकार वे हथकरघा एवँ कुटीर उद्योग को प्रोत्साहित करतें हैं, एच0एल0एल0 आपरेशन शक्ति के माध्यम से ग्रामीण औरतों को रोजगार प्रदान कर उनके सशक्तिकरण का कार्य कर रहा है तथा आई0टी0सी0 अपने ई–चौपाल प्रणाली के माध्यम से ग्रामीण वितरण प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला रहा है।

3.10 निगमीय (व्यावसायिक) समाजिक उत्तर–दायित्व के विपक्ष में तर्क (विचार)

व्यवसायिक समामजिक उत्तरदायित्वता के विपक्ष में प्रमुख तर्क निम्नलिखित है।

1. <u>अधिकतम–लाभ की हानिः–</u> संसाधनों को फर्म के स्वाभाविक (पास से) सामाजिक उत्तरदायित्व के कार्यक्रमों तक ले जाना (खिसकाना/विचलित करना) प्रतिर्स्पघा बाजार के सिद्वाँत को खतरे में डालता है तथा अंशधारियों को उचित (अधिकार सम्मत) आर्थिक लाभ, प्राप्ति से वंचित करता है।
2. <u>लागतः–</u>समाजिक दायित्व बहुत व्यय साध्य (महंगे) हो सकते हैं, तथा इसे क्रिया –वंचित करने वाली फर्म को आकर्षण व्यावसायिक निवेश से जाने में (निवेश करने में) अक्षम बना सकते हैं, अथवा व्यवसाय को छोड़ने पर विवश कर सकते हैं।

3. <u>कौशल का अभाव :–</u> अधिकांश व्यवसायिक सामाजिक मामलों में (विषयों/मुद्दों) पर प्रभावी ढंग से कार्य करने हेतु आवश्यक कौशल एवं प्रशिक्षण नहीं धारण करते हैं।
4. <u>उद्देश्यों को कमजोर करना :–</u> सामाजिक लक्ष्यों को अनुसरण फर्म की आर्थिक उत्पादकता को कमजोर (फीका) कर सकता है।
5. <u>अत्यधिक शक्ति :–</u> यह कहा जा सकता है, कि व्यवसाय अपने सामाजिक प्रभावों को बढ़ाने के प्रोत्साहन के बगैर भी अत्यधिक सामर्थ्य (शक्ति/प्रभाव) रखता है।
6. <u>व्यापक सहयोग का अभाव :–</u> जिन उत्तरदायित्वों के प्रति जनता का व्यापक सहयोग अपेक्षित रूप में नहीं प्राप्त हो जाता है, और यह असफल होने पर इसकी निन्दा करता है।
7. <u>हिसाबदेयता (उत्तरदायित्व/जवावदेयता) का अभाव :–</u>
   एक बार स्थापित हो जाने के पश्चात ऐसा कोई रास्ता नहीं है, कि व्यवसाय को इसकी सामाजिक प्राप्तियों (परिणामों) हेतु जवावदेह बनाया जा सके।

3.11 निगमिय (व्यवसायिक) सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में तर्क (विचार)

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वता का समर्थन (पक्ष में) करने वाले प्रमुख तर्क (विचार) निम्नलिखित है।

1. **लोक –व्यय :–** जनता के वर्गो के अंतर्गत (भीतर) यह पूर्ण विस्वास (दृढ़मत) है कि व्यवसाय एक स्पष्ट दृष्टि एवँ सामर्थ रखता है, जो इसके पक्ष में (साथ) जाती है।
2. **दीर्घकालीन व्यवहारिकता :–** यदि व्यवसाय समाजिक उत्तरदायित्व की आवश्यकताओं की पूर्ति इसकी शक्तियों एवँ उत्तरदायित्वों को ग्रहण / अपना लेना) कर लेगे।
3. **जन–छवि (लोक धारणा) :–** उत्तरदायित्वपूर्व व्यवहार, व्यवसाय के पक्ष में एक सकारात्मक जन–धारणा (लोक–छवि) का निर्माण करती है। टाटा एवँ बिरला की उनके समाजिक कल्याण के कार्यक्रमों के फलस्वरूप बहुत ही अच्छी छवि जनता के मध्य में है।
4. **श्रेष्ठतर वातावरण :–** व्यवसाय उन्नत (श्रेष्ठतर) वातावरण का निर्माण कर सकते है, जो उनके भविष्य की व्यावसायिक सफलता में अत्यधिक सहयोगात्मक एवँ प्रभावी होगा ।
5. **सरकारी नियमों (विनियमों/नियन्त्रण) का परिहार (वर्जन) :–.** यदि व्यवसाय अपने समाजिक उत्तरदायित्वों को कारित करता है तो महँगें (लागतशील) एवँ प्रतिबंधात्मक सरकारी नियमों का परिहार/वर्जन किया जा सकता।
6. **उत्तरदायित्व एवँ शक्ति का संतुलन :–** चूँकि व्यवसाय पहले से ही अत्यधिक समाजिक शक्ति (सामर्थ) रखता हैं, तो इसकी सामाजिक उत्तरदायित्वता सामान महत्व की होनी चाहिये।

7. **व्यवसाय को प्रयास करने दें :–** चूँकि अन्य अन्य सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में असफल हो गयें है तो अब यह समय की माँग है। कि व्यवसाय को प्रयत्न करने का अवसर दिया जाये।
8. **व्यवसाय संसाधन–युक्त होता है :–** व्यवसाय के पास पूँजी का कोष (खजाना) तथा विषेशज्ञता होती है। जिसमें लोक सेवा की अदभुत क्षमता (शक्ति) होती है।
9. **समस्याये लाभ में परिवर्तित हो सकती है :–** यदि समाजिक समस्याओं के समाधान में अनुठी (नवो–मेशी/अभिनव) व्यवसायिक दक्षताओं (कौसल) को प्रयुक्त किया जाये तो परम्परागत व्यवसाय के अर्थो में कुछ प्रयत्व लाभ प्राप्त करने में सहायक हो सकते है।
10. **बचाव (सुरक्षा) इलाज से श्रेष्ठतर हैं :–** यदि समाजिक समस्याओं के समाधान में कोई अतिरिक्त विलम्ब होता है, तो ये समस्याये और विकृष्टम (खराब) ही होगी।
11. **अंशधारको का हित :–** उन्नत सामाजिक वातावरण व्यवसाय को और समृद्ध बनायेगा।

3.12. सामाजिक उत्तरदायित्व की सीमाएँ

व्यवसाय की सामाजिक उत्तरदायित्वता कई सीमाओं, यथा लागत, दक्षता, व्यवहारिकता एवं क्षेत्र में बंधी हुई है। इन सीमाओं के कारण कार्यों का परिणाम–जन–अपेक्षाओं से कम होता है।

लागत :– सामाजिक उत्तरदायित्वों में लागते लगती है, अर्थात् ये लागत–साक्ष्य होते हैं। चाहे एक कम्पनी गाँव गोद लेना चाहते हों, विद्यालय अथवा महाविद्यालयों को दान देना चाहते हैं, चिकित्सालय बनवाना चाहें, उद्यानों का रख–रखाव करना चाहें, अथवा आपदा काल में सहायता (राहत) प्रदान करना चाहें तो इन सब में कुछ न कुछ लागते लगती है।

दक्षता :– सामाजिक उत्तरदायित्व कुशलता (दक्षता) को नकारात्मक (विपरीत) रूप से प्रभावित करता है। कर्मचारियों को उपकृत कर हेतु कम्पनियों को वर्ष–प्रतिवर्ष घाटे में चलने के बावजूद चलाना पड़ता है, फलतः इसकी दक्षता घटती है तथा प्रतिर्स्पधात्मक क्षमता लुप्त हो जाती है।

प्रासंगिकता (औचित्य) :– कई समालोचकों के अनुसार व्यवसाय का कोई सामाजिक दायित्व नहीं होता है उसका सिर्फ एक दायित्व है व्यवसाय को सफलतापूर्वक (लाभदायक ढंग से) चलाना।

सामाजिक उत्तरदायित्व अप्रासंगिक है। फीडमैन के अनुसार'' व्यवसाय का एक एकमात्र समामजिक उत्तरदायित्व होता है अपनी उर्जा एवँ संसाधनों का प्रयोग, जब तक व्यवसाय खेल के नियमों का पालन करते हुयें व्यवसाय जगत में (बाजार) में हैं, अपने लाभ को बढ़ाने वाली क्रियाओं के अभिकल्पना में प्रयोंग करे, धोखाघड़ी के विचार से होकर मुक्त एवँ खुली प्रतिर्स्पधा में संलग्न होना ।''

फीडमैन ने दावा किया कि व्यावसायिक (निगमीय) अधिकारी यह निर्धारित करने की स्थिति में नहीं है, कि, सामाजिक समस्याओं की आकस्मिक एवँ इन समस्याओं पर कितने संसाधनों को नियोजित किया जाये के सापेक्षित सम्बन्ध क्या हैं, उन्होने जोर देकर कहा कि वह प्रबंधक जो व्यवसाय के संसाधनों को व्यक्तिगत रूप से प्रयोग में लाता है, कदाचित समाज कल्याण के नाम पर देश को

गुमराह (दिग्भूमित) करता है। अपने अंशधारियों, ग्राहकों एवँ कर्मचारियों से अनुचित ढंग से कर भुगतान करवाता हैं, संक्षेप में व्यवसाय को कुशलपूर्वक वस्तुओं एवँ सेवाओं का उत्पादन करना चाहिये तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान का विषय व्यक्तिगत एवँ सरकारी अभिकरणों के उपर छोड़ देना चाहिये। प्रायः समाजिक उत्तरदायित्व के कार्य अनुचित (गलत) कारणों से हाथ में लिये जाते है, जो अप्रासंगिकता एवँ अप्रभावशीलता को बढ़ाते है। विचार करे कि क्या हुआ था बृजमोहन खेतान के मामले में , जो कि चाय के बहुत बड़े व्यापारी (उत्पादन) थें । 1990 के आरम्भ में खेतान सीमा सुरक्षा बल (बी0एस0एफ0) के जबर्दस्त दबाव मे थें उनका एक अधिशाषी आँतकवादीयों द्वारा अपहरण कर लिया गया था। और एक मार दिया गया था । बी0एस0एफ0 षाँन्ति की पूर्व शर्त के लिए मोटी (भारी) रकम की माँग की थी। उस समय खेतान ने रू0 22 करोड़ का विद्यालय स्थापित किया था। यह विद्यालय भी खेतान की बी0एस0एफ0 से शाँन्ति खरीदने में सहायता नहीं कर सका।

क्षेत्र एवँ जटिलता :–

समाज की समस्याओं जटिल, अधिक, इतनी गहरी अवस्थित है ,कि समाजिक रूप से संचेतना युक्त कम्पनी द्वारा अथवा समस्त कम्पनियाँ एक साथ मिलकर भी इनको हल नहीं कर सकती हैं,

समस्यायें यथा : वातावरणीय प्रदूशण अम्ल वर्षा, ओजोन परत क्षरण, स्वास्थ्य समस्यायें–एडस, दवाएँ, तथा तम्बाकू सेवन रंग–भेद, लिंग–भेद, प्रजातीय या धार्मिक कटुता (बैर) आदि ललकारते (सम्मुख) है, हालाँकि संचेतन कम्पनियों कर भी सकती है। इनका हल। व्यवसाय की अपनी सीमाएँ होती है, इसे गुणवत्ता युक्त वस्तओं की आपूर्ति उचित मूल्य पर करनी चाहिये, अंशधारियों के लिए लाभ कमाना चाहिये, सरकार को करों का भुगतान करना चाहियें तथा प्रतिर्स्पधा जगत में टिके रहने (बने रहने हेतु) राणनितियाँ नियोजित करनी चाहिये। इनकी नाना प्रकार की समस्याओं के माध्यमों में किस प्रकार व्यवसाय एक और जटिल सम्स्या–सामाजिक उत्तरदायित्वता को हल कर सकता है।

3.13 साराँश

व्यवसाय महज एक आर्थिक ही नहीं वरण एक सामाजिक किया (कार्य) है। यह एक मात्र ऐसी गतिविधि हैं जो समाज एवँ देश (राष्ट्र) के प्रत्येक पक्ष (पहलू) को प्रभावित करती है प्रधानतः (प्रथमतः) व्यवसाय को समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये क्योंकि वास्तविक रूप से यह प्रभावित तथ्य हैं, कि व्यवसाय को समाज के संसाधनों को प्रयोग में लाता हैं। वह धन जो व्यवसाय ऋण के रूप में बैंक से प्राप्त करता है वह समाज से सम्बन्धित (समाज का) होता है। व्यवसाय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से देश के राष्ट्रीय संसाधनों का उपयोग करता है। व्यवसाय के मानवीय संसाधन देश के ही होते है तथा सर्वोपरि व्यवसाय समाज के कारण अस्तित्व में रहता है। इसलिये कोई भी इससे इंकार (मना) नहीं कर सकता कि व्यावसायिक उद्यम समाज के प्रति जवाबदेह (हिसाब देय) है। व्यवसाय के समाजर्थिक दायित्वों से आशय व्यापार को (व्यवसाय को) लाभ पर प्रतिकूल प्रभावकारकों से व्यवसाय के आर्थिक परिणामों को बचाने के उपायों से है। समाज कल्याण व्यवसाय का यह कर्तव्य है कि वे नवीन सामाजिक उत्तरदायित्वों को पहचाने एवं उनका सम्मान करें। संगठित श्रम का दबाव बढ़ता

जता रहा है, जीवन की गुणवत्ता के सम्बन्ध में जनता की जागरूकता बढ़ रही है, तथा समस्त प्रकार के प्रदूषणों को समाप्त करने की आवश्यकता बढ़ी है। व्यवसाय की नैतिकता एवं ईमानदारी सच्चरिता के बारे में संगठनों के व्यवहार (धारणा) पर जनता अपनी राय रखती है। विश्व के कई देशों में उपभोक्तावाद के विकास ने बाजार में उपभोक्ताओं के संरक्षण की माँग को जोर पकड़ाया है।

व्यवसाय के प्रमुख सामाजिक उत्तरदायित्व, संसाधनों का न्यायपूर्ण ढंग से उपयोग करना, इनके निस्तारण के समय इसके दुष्प्रभाव को समाप्त करना, संसाधनों के अपव्यय को रोकन है। घाटे में चलने वाली इकाईयाँ समाज के लिये भार होती है। व्यवसाय को अच्छी गुणवत्ता की वस्तुएँ उपभोक्ताओं को उचित मूलय पर उपलब्ध करानी चाहिये तथा व्यवसाय के उचित व्यवहार सिद्धान्त को अपनाना चाहिये। व्यवसाय अपने संचालन क्षेत्र के विकास हेतु विविध कार्यक्रम किया–वयित कर सकता है। कर्मचारियों में किया गया निवेश उनकी उत्पादकता को बढ़ाता है। कर्मचारी यदि प्रसन्न व संतुष्ट है, उनके बच्चे अच्छी शिक्षा एवं स्वास्थ्य प्राप्त करेंगे। यह सभी उनकी उत्पादकता को बढ़ा देगी तथा औद्योगिक षाँति एवं लागत में कमी भी सम्भव बनायेगी। सामाजिक उतत्रदायित्व जो कि ब्राण्ड लॉयल्टी (निष्ठा) विक्रय एवं लाभ पर प्रत्यक्ष प्रभाव छोड़ता (डालता) है, रणनीतिक लाभ लेने एवं बाजार–अंश (बाजार में हिस्सेदारी) को बढ़ाने हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। आई. टी.सी. ने 'ई–चौपाल' तथा एच.एल. एल. ने इसके लिये 'आपरेशन शक्ति' लागू किया है। यह एक आर्थिक चिट्ठा है, जो यह प्रदर्शित करता है, कि व्यवसाय ने समाज से क्या लिया है तथा समाज को क्या वापिस दिया है।

3.14 शब्दावली

सामाजिक उत्तरदायित्व :– यह एक नीतिगत (नैतिक) विचारधारा है, जो यह बताती है, कि एक संस्था, वह संगठन हो अथवा व्यक्ति, समाज के कल्याण हेतु कार्य करने के दायित्व से बद्ध होता है।

परोपकारिता :– आधुनिक व्यावहारिक पदों में यह जन–कल्याण के लिये निजी पहल (प्रयास) माना जाता है।

हितधारक :– इनमें उन समस्त, व्यक्ति/व्यक्तियों, संगठन, सदस्य अथवा प्रणाली को सम्मिलित किया जा सकता है, जो एक (किसी) संगठन के कार्य/कार्यवाही से प्रभावित हो सकते हैं।

एन.जी. ओ. :– गैर–सरकारी संगठन (जो सामाजिक कार्यों में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग करते है)

उपभोक्तावाद :– उपभोक्ता ही बाजार की धुरी है तथा समस्त व्यापारिक गतिविधियाँ उसी के चारों ओर घूमती हैं।

सामाजिक अनुक्रियाशीलता :– सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदी रवैया।

3.15 बोध प्रश्न

अ रिक्त स्थान की पूर्ति करें :–

1. आधुनिक लोकोपकार के .... चरण हैं।
2. कैरोल के अनुसार व्यवसायिक निष्पादन के दायित्व के .... वर्ग है।

3. ....के अनुसार कम्पनी की सामाजिक प्रतिक्रियात्मकता (प्रतिसंवेदनात्मकता) की तीन अवस्थायें/चरण होते हैं।

ब सत्य/असत्य :—

4. सरकार कम्पनियों पर सामाजिक कार्यों हेतु दबाव डालने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति है।
5. संगठन की सफलता उसके कर्मचारियों पर निर्भर नहीं होती है।
6. लागत, दक्षता, प्रासंगिकता को सामाजिक उत्तरदायित्वों की सीमाओं के रूप में उल्लिखित किया जा सकता है।

3.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) चार (2) चार (3) एकमैन मॉडल

(4) सत्य (5) असत्य (6) सत्य

3.17 स्वपरख प्रश्न

1. सामाजिक उत्तरदायित्व को परिभाषित कीजिए।
2. सामाजिक उत्तरदायित्व के विकास के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।
3. आधुनिक परोपकारिता के विभिन्न चरणों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. विभिन्न सामाजिक उत्तरदायित्वता प्रतिमान का विश्लेषण कीजिए।
5. सामाजिक प्रतिक्रियात्मकता (अनुकिया, शीलता) पर दबाव आरोपित करने वाले बलों को उदाहरण सहित समझाइये।
6. विभिन्न हितधारकों के प्रति संगठन के विविध उत्तरादायित्वों का वर्णन कीजिये।
7. व्यवसाय की सामाजिक उत्तरदायित्वता का विस्तृत वर्णन कीजिये।
8. व्यवसाय की सामाजिक उत्तरदायित्वता के पक्ष में तर्क दीजिए।
9. व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के विरोध में अपने तर्क प्रस्तुत कीजिए।
10. समाजिक उत्तरदायित्व की सीमाओं का वर्णन कीजिये।
11. ''सामाजिक उत्तरदायित्व एक विलासित है जिसे कुछ व्यावसायिक संगठन ही उठा सकते है।'' क्या आप सहमत है अपने उत्तर के समर्थन में तर्क प्रस्तुत कीजिये।
12. क्या सामाजिक उत्तरदायित्व व्यवसायिक संगठन के आर्थिक हितों से टकराता है। सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रयोग संगठन के ध्येय की प्राप्ति किस प्रकार किया जा सकता है।
13. समाजिक उत्तरदायित्व पर कृत व्यय नहीं वरन् एक निवेश है।'' इस कथन पर विमर्श कीजिये।
14. समाजिक उत्तरदायित्व नवीन सिद्धान्त नहीं वरन् दीर्घकालीन इतिहास समाहित करता है। प्रकाश आरोपित कीजिए।
15. आधुनिक परोपकारिता तथा व्यवसाय की सामाजिक उत्तरदायित्वता पर इसके प्रभावों का विश्लेषण कीजिये।

3.18 संदर्भ पुस्तकें

1. B. R. Nayar, “Globalisation and Nationalism”, Sage, New Delhi, 2001
2. D. Nayyar, “Globalisation : What does it Mean for Development”, Konark, New Delhi, 1998
3. P. A. Samuelson et al, “Economics”, Tata McGraw-Hill, New Delhi, 1998

इकाई 4 उपभोक्तावाद एवं व्यवसाय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उभोक्तावाद की परिभाषा
4.2.1 उपभोक्तावाद की उपयोगिता
4.3 उपभोक्ताओं के शोषण
4.4 उपभोक्ता अधिकार
4.5 उपभोक्ता संरक्षण
4.6 उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता
4.7 उपभोक्ता संरक्षण के लिए आवश्यक कदम
4.8 उपभोक्ता संरक्षण के तरीके
4.8.1 आत्म–नियमन और अनुशासन का बढ़ाना
4.8.2 उपभोक्ताओं के स्वैच्छिक संगठन
4.8.2.1 उपभोक्ता संघ या परिषद्
4.8.2.2 उपभोक्ता सहकारी समितियाँ
4.8.3 सुचना और जागरूकता फैलाना
4.8.4 सरकारी कानून
4.8.5 अन्य पद्वतियाँ
4.9 उपभोक्ता संरक्षण अधिकनयम, 1986 (संशोधन के साथ)
4.9.1 उपभोक्ताओं के अधिनियम और अधिकारों के उद्देश्य
4.9.2 उपभोक्ता संरक्षण परिषद्
4.9.3 उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियाँ
4.9.4 उपचारात्मक कार्रवाई
4.9.5 अपील
4.9.6 दंड
4.9.7 अधिनियम के कार्यान्वयन
4.10 ग्रीन उपभोक्ता
4.10.1 ग्रीन उपभोक्तावाद की जड़ें
4.10.2 ग्रीन उपभोक्ता
4.10.3 सामान्य रूप में व्यापार
4.11 सारांश
4.12 शब्दावली
4.13 बोध प्रश्न
4.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.15 स्वपरख प्रश्न
4.16 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- उपभोक्तावाद को परिभाषित कर सकें।
- उपभोक्ता अधिकारों के महत्व को समझ सकें।

- उपभोक्ता संरक्षण के लिए विभिन्न तरीकों का विश्लेषण कर सकें।
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की समीक्षा कर सकें।
- ग्रीन उपभोक्तावाद और नैतिक उपभोग की अवधारणाओं का वर्णन कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

उपभोक्ताओं के संरक्षण के लिए उपभोक्तावाद और विधायी उपायों का विकास व्यवसायों के सामने एक महत्वपूर्ण सामाजिक–राजनीतिक वातावरण है। संयुक्त राज्य अमेरिका में उपभोक्ता आंदोलन की विशिष्ट शुरूआत और विकास हुआ। अधिकांश देशों में उपभोक्ता जागरूकता में वृद्धि हुई है, जो उपभोक्तावाद की वृद्धि और उपभोक्ता संरक्षण की बदली माँग के कारण है। हालाँकि उपभोक्तावाद भारत में अच्छी तरह से विकसित नहीं हुआ है, लेकिन उपभोक्ता मार्गदर्शन संगठन की तरह भारत में कई उपभोक्ता संगठन हैं।

इंडिया (सीजीएसआई), मुंबई और उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केन्द्र (सीईआरसी), अहमदाबाद, जो सराहनीय काम कर रहे हैं, इनमें से कुछ संगठन उत्पाद परीक्षण करने और घटिया गुणवत्ता और मिलावट को उजागर करने में बहुत सक्रिय हैं। अधिक नियामक उपायों या उपलब्ध उपायों के प्रभावी कार्यान्वयन की आवश्यकता इस तरह के परीक्षणों के परिणामों के द्वारा प्रमाणित की गई है। सीजीएसआई द्वारा माँगे जाने वाले खाद्य रंगों के आईएसआई प्रमाणीकरण अब अनिवार्य है। उपभोक्ता संगठन भी उपभोक्ता शिकायतों के निवारण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 1993 से, सीईआरसी द्वारा प्रायोजित उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान सोसाइटी (सीईएस) उपभोक्ता वस्तुओं के तुलनात्मक परीक्षण के अपने घर के प्रयोगशाला में बहुत ही बोल्ड और प्रशंसनीय कार्य कर रही है, और 1998 के बाद से इसकी प्रकाशन INSIGHT - The Consumer पत्रिका हमारे परीक्षण के परिणाम को दूर और पास ले जा रही है। मीडिया परीक्षण निष्कर्षों को प्रकाशित कर रहा है, ये परीक्षण परिणाम विभिन्न कम्पनियों के उत्पादों के मूल्यांकन और तुलना करने के लिए उपभोकताओं को सक्षम करते हैं, इसलिए निर्माता अब संतुष्ट नहीं हो सकते हैं।

भारत में उपभोक्ता आंदोलन धीरे–धीरे बढ़ रहा है, हालाँकि यह बढ़ती उपभोक्ता जागरूकता और बढ़ती भावना स उपभोक्ता का बेरहमी से शोषण हो रहा है। कई उत्पाद गुणवत्ता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आते हैं और कई विक्रेता उपभोक्ताओं की वास्तविक शिकायतों का अनुकूल उत्तर नहीं देते हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि कुछ उपभोक्ताओं द्वारा किए गए कई उत्पादों का परीक्षण व्यवसाय के लिए एक समस्या है। उपभोक्तावाद, वास्तव में, उपभोक्ता उन्मुख व्यवसायियों द्वारा एक अवसर के रूप में माना जाता है, जैसा कि बाद में इस इकाई में वर्णित है।

4.2 उपभोक्ता की परिभाषा

"उपभोक्ता" एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी भी सामान को खरीदता है या मूल्यवान विचार के लिए किसी भी सेवा को रखता है (अस्थगित भुगतान सहित)। शब्द में उस व्यक्ति को शामिल नहीं किया गया है जो पुनर्विक्रय के लिए या किसी व्यावसायिक उद्देश्य के लिए सामान या सेवाओं को प्राप्त करता है। हालाँकि,

जो लोग स्वयं या रोज़गार के माध्यम से अपनी आजीविका अर्जित करने के उद्देश्य से सामानों या सेवाओं का लाभ उठाते हैं उन्हें 'उपभोक्ता' माना जाता है। उपभोक्तावाद दो अर्थों के साथ एक शब्द है; विक्रेताओं के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं के अधिकारों और शक्तियों को बढ़ावा देने के लिए एक आंदोलन; एक शक्तिशाली विचारधारा जिसमें आजीविका के बाहर भौतिक वस्तुओं का पीछा सामाजिक आचरण को आकार देता है। उपभोक्तावाद उस समाज का वर्णन करता है जिसमें लोग परिभाषित करते हैं नोटों से परे भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने और प्रदर्शित करने के द्वारा उनकी पहचान उन्हें निर्वाह की आवश्यकता है। उपभोक्तावाद के पूर्ण उभरने के रूप में आया आर्थिक परिवर्तनों ने सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के साथ बातचीत कर निम्न निष्कर्ष निकाले :

1. धर्म के घटते प्रभाव।
2. औद्योगिक क्रान्ति।

जैसा कि सामान्यतः समझाा जाता है कि उपभोक्तावाद उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा के लिए डिजाइन किए गए सरकारी, व्यवसायिक और स्वतंत्र संगठनों की विस्तृत श्रृंखलाओं को दर्शाता है। उपभोक्तावाद एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ग्राहक अपने सभी संगठित या असंगठित प्रयासों और गतिविधियों की सहायता से असंतोष और हताशा के लिए निदान, पुनर्गठन और उपाय चाहते हैं। यह वास्तव में, एक सामाजिक आंदोलन है जो माल के उत्पादकों और सेवाओं के प्रदाताओं के सम्बन्ध में उपाभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा करने की माँग करता है। वास्तव में उपभोक्तावाद आज एक सर्वव्यापी शब्द है, जिसका आशय लोगों के लिए उनके पैसे के बेहतर मूल्य की खोज से अधिक कुछ नहीं।

विभिन्न अधिकारियों ने उपभोक्तावाद शब्द को अलग–अलग तरह से परिभाषित किया है। आइए उपभोक्तावाद की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं पर विचार करें।

क्रेवन और हिल्स 'उपभोक्तावाद' शब्द को निम्नानुसार परिभाषित करते हैं :

"उपभोक्तावाद, पर्यावरण पर कानूनी, नैतिक और आर्थिक दबावों का इस्तेमाल करके उपभोक्ताओं की सहायता और सुरक्षा के लिए तैयार किए गए वातावरण में एक सामाजिक शक्ति है।"

श्रीमती वर्जीनिया के0 नाउर कहते हैं कि उपभोक्तावाद को केवल "पुरानी चेतावनी के लेखक" या "क्रेता सावधान रहना" की तुलना में "विक्रेता को सावधान रहें" के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

उपभोक्तावाद शोषण के खिलाफ एक लड़ाई है। यह उनके हितों की सुरक्षा के लिए उपभोक्ताओं के सामूहिक प्रयास हैं। यह विक्रेताओं के खिलाफ अपने अधिकारों का पता लगाने का एक साधन है। व्यवसाय को अधिक ईमानदार, कुशल और जिम्मेदार बनाने के लिए यह एक सामाजिक शक्ति है। यह उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए आवश्यक कानूनी उपायों को अपनाने के लिए सरकार पर दबाव भी देता है। यह मूलतः एक विरोध आंदोलन है, यह आम तौर पर सार्वजनिक और स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठनों द्वारा शुरू किया गया एक गैर–आधिकारिक आंदोलन है।

फिलिप कोटलर उपभोतावाद को "एक सामाजिक आंदोलन के रूप में परिभाषित करता है जो विक्रेताओं के सम्बन्ध में खरीदारों के अधिकारों और

शक्तियाँ बढ़ाने की माँग करता है।" बॉयड और एलेन राज्य, हालाँकि अक्सर एक शब्द के रूप में दुर्व्यवहार करते हैं, उपभोक्तावाद को सार्वजनिक और निजी दोनों संगठनों की उन गतिविधियों के समर्पण के रूप में सबसे अच्छा परिभाषित किया जा सकता है, जो कि लोगों को अपने अधिकारों पर उपभोक्ताओं के रूप में पीड़ित करने के तरीकों से बचाने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं।

हिन्दुस्तान की 44वीं वार्षिक आम बैठक में दिए गए अपने भाषण में 1977 में लेवल लिमिटेड, श्री टी0 थॉमस के चेयरमैन ने सही तरीके से बताया:

"उत्पादक को उत्पाद डिजाइन करने, वितरित करने, वितरित करने, विज्ञापन करने और कीमत देने का अधिकार है, लेकिन उपभोक्ता को केवल इसे खरीदने की शक्ति की नहीं है। एक यह तर्क दे सकता है कि निर्माता कई अधिकारों के बावजूद अधिक जोखिम चलाता है क्योंकि वीटो शक्ति उपभोक्ता के साथ बनी हुई है। हॉलाकि, उपभोक्ता अक्सर यह मानते हैं कि उनके पास वीटो की शक्ति है, लेकिन वह पूरी तरह से अपने सर्वश्रेष्ठ हितों में उस शक्ति का इस्तेमाल करने के लिए पूरी तरह सुसज्जित नहीं है। यह स्थिति सूचना के अभाव, बहुत अपचनीय सूचना या एक या कई प्रतियोगी उत्पादकों से गलत सूचना का प्रभाव हो सकती है। उपभोक्ता का सामना करने वाली यह समस्या 'उपभोक्तावाद' के कारण हुई है यह ध्यान देने योग्य है कि उपभोक्तावाद, जैसे कि कई अन्य सामाजिक आंदोलनों, जैंसे स्वतंत्रता आंदोलन, नागरिक अधिकार आंदोलन आदि सामाजिक संघर्ष का नतीजा है और इसलिए इसे दूर नहीं किया जा सकता है। जब तक उपभोक्ता का सामना हो रहा है, तब तक यह हमारे साथ रहेगा।"

उपभोक्तावाद ने अपने हितों की रक्षा के लिए उपभोक्ताओं के सामूहिक प्रयास के रूप में व्याख्या की, यह सार्वजनिक क्षेत्र की समेत व्यापार की असफलता की अभिव्यक्ति है, और सरकार उपभोक्ता के वैध अधिकारों की गारंटी सुनिश्चित करने के लिए है।

4.2.1 उपभोक्तावाद की उपयोगिता

उपभोक्ता के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कानूनों के लिए उत्तरदायी कारकों को संक्षेप करना बेहतर होगा। ये कारक निम्नानुसार हैं :

- तेजी से बढ़ती हुई वस्तुओं और सेवाओं की विविधताएँ जो आधुनिक तकनीक उपलब्ध कराती हैं;
- उत्पादन और वितरण प्रणाली का बढ़ता आकार और जटिलता;
- विज्ञापन और अन्य प्रकार के उत्पादन में मार्केटिंग और बिक्री प्रथाओं में उच्च स्तर के परिष्कार;
- जन विपणन विधियों के परिणामस्वरूप खरीदार और विक्रेता के व्यकितगत रिश्ते को हटाने; तथा
- उपभोक्ताओं वृद्धि की गतिशीलता।

अच्छी तरह से संगठित और गतिशील उपभोगवाद निम्नलिखित परिणामों का उत्पादन करने की उम्मीद की जा सकती है:

1. प्रोड्यूसर्स और सेलर्स उपभोक्ता को दी गई अनुमति नहीं देंगे। जब उपभोक्ता अपने अधिकारों की रक्षा के लिए काफी मजबूत होते हैं, तो

व्यवसाय को अनुचित व्यापार प्रथाओं से दूर रखने के लिए मजबूर किया जाएगा।

2. उपभोक्तावाद व्यवसाय के लिए प्रतिक्रिया प्रदान करेगा। इससे उत्पादकों को उपभोक्ता शिकायतों, जरूरतों और चाहने को समझने में सक्षम होना होगा। इससे उपभोक्तावाद की प्रकृति के आधार पर, विपणन अवधारणा या सामाजिक विपणन अवधारणा के अधिक प्रभावी कार्यान्वयन में सहायता मिलेगी।
3. डिस्ट्रीब्यूशन मोर्चे पर खामियों को कम करने के लिए प्रोड्यूसर्स उपभोक्ताओं के समर्थन में शामिल हो पाएँगे। कई बार व्यापारियों द्वारा होर्डिंग और काली विपणन द्वारा आपूर्ति की स्थिति को और भी बदतर बना दिया जाता है। इसके अलावा, कई विक्रेताओं की कीमत पर शुल्क लगाने की प्रवृत्ति होती है जो एक या अन्य कारण देकर वास्तविक से अधिक होती है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि उपभोक्ता और निर्माता को बेईमान व्यापारियों से छुटकारा पाने के लिए सहयोग नहीं करना चाहिए।
4. उपर्युक्त अंक इंगित् करते हैं कि उपभोक्तावाद ईमानदार और गतिशील कम्पनियों के लिए एक अवसर है।
5. उपभोक्तावाद उपभोक्ता हितों के प्रति सरकार को और अधिक उत्तरदायी बना देगा, इसे आवश्यक, वैधानिक उपाय करने के लिए तत्काल और उपभोक्ता अधिकारी की सुरक्षा के लिए आवश्यक संस्थागत व्यवस्थाएँ करेंगी।

4.3 उपभोक्ताओं का शोषण

हालाँकि, उपभोक्ताओं का बड़ी संख्या में प्रतिबंधात्मक और अनुचित व्यापार प्रथाओं द्वारा शोषण किया जाता है। ऐसी स्थिति विकसित हुई है जिसमें जनता उत्पादों के झूठे दावों के शिकार हो गई है, जो बड़े उत्साह के साथ विज्ञापित है। व्यावहारिक विज्ञान बड़े पैमान पर विपणन के लिए क्रूर रूप से लागू होता है, उपभोक्ताओं को उनके दिमाग के कमजोर बिंदुओं और नरम कोनों को उत्तेजित करके उनका लाभ उठाते हैं। गलत या भ्रामक विज्ञापन काफी सामान्य हैं कई बार विज्ञापन जानबूझकर केवल आधी सत्यता देते हैं ताकि वास्तविकता की तुलना में एक अलग छाप दे सकें। इस प्रकार, विज्ञापन भ्रामक हो सकते हैं क्योंकि कहा जाने वाला कथन नहीं कहा गया है, या क्योंकि विज्ञापनों को गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया है या गलत तरीके से, भ्रामक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। स्थिति इस तरह है कि इस बारे में गलत बयानों एक उत्पाद की गुणवत्ता या दवा की क्षमता का अनुमान किया जा सकता है। अधिक जोखिम के बिना जैसा कि कम्पनियाँ और एमआरटीपी अधिनियमों, जिन्हें लोकप्रिय रूप से सम्कर समिति के रूप में माना जाता है, पर उच्च–स्तरीय विशेषज्ञ समिति बताती है कि डिवाइस खरीदारों को विश्वास करने में लुभाने के लिए उपयोग किया जाता है कि वे कुछ के लिए कुछ प्राप्त कर रहे हैं। कीमतें आम तौर पर कम और कटौती के रूप में विज्ञापित की जा सकती हैं, जब कि वास्तव में माल विक्रेताओं की नियमित कीमतों पर बेचा जा सकता है। इस, प्रकार एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं के अलावा जो प्रतिस्पर्धा को सीमित करने और बाजार की खामियों को सामान्य नुकसान पहुँचाने के प्रभाव में है, उपभोक्ता का शोषण

अनुचित व्यापार प्रथाओं के जरिए है जो ग्राहकों को गुमराह करने या धोखा देकर व्यापक हो गया है और यह ऐसी स्थिति है जिसने उपभोक्तावाद के विकास के लिए काफी हद तक नेतृत्व किया है।

4.4 उपभोक्ता अधिकार

उन्नत देशों में उपभोक्ता जाहिर है, भारत जैसे देशों के मुकाबले उनके अधिकारों के प्रति ज्यादा जागरूक हैं। 1962 में राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी ने और 1965 में राष्ट्रपति जॉनसन ने उपभोक्ता अधिकारों पर जोर दिया और यू0एस0ए0 और अन्य देशों में उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया। महत्वपूर्ण उपभोक्ता अधिकारों में शामिल हैं :

1. अनुचित व्यापार प्रथाओं द्वारा शोषण के विरूद्ध अधिकार।
2. सामान और सेवाओं से स्वास्थ्य और सुरक्षा के संरक्षण का अधिकार उपभोक्ताओं को खरीदना या मुफ्त प्रदान किया जाता है।
3. गुणवत्ता और प्रदर्शन मानकों, उत्पाद की सामग्री, संचालन सम्बन्धी आवश्यकताओं, उत्पाद की ताजगी, संभावित प्रतिकूल दुष्प्रभाव और उत्पाद या सेवा से सम्बन्धित अन्य प्रासंगिक तथ्यों के बारे में सूचित करने का अधिकार।
4. शिकायत करने के अधिकार अगर कोई शिकायत या सुझाव हैं।
5. वास्तविक शिकायतों को निपटा पाने का अधिकार।
6. प्रस्तावों की एक किस्म से सर्वश्रेष्ठ चुनने का अधिकार।
7. एक भौतिक वातावरण का अधिकार जो कि जीवन की गुणवत्ता को सुरक्षित रखेगी और बढ़ाएगा।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 निम्नलिखित अधिकारों का उल्लेख करता है:

1. **सुरक्षा के अधिकार :**

   माल और सेवाओं के विपणन के विरूद्ध सुरक्षा का अधिकार, जो जीवन और संपत्ति के लिए खतरनाक है।

2. **सूचना का अधिकार :**

   मामला हो सकता है कि सामान, सेवाओं की गुणवत्ता, मात्रा, क्षमता, शुद्धता, मानक और मूल्य के बारे में सूचित करने का अधिकार है, ताकि उपभोक्ता को अनुचित व्यापार पद्वतियों से बचाया जा सके।

3. **चुनने का अधिकार :**

   जहाँ भी संभव हो, आश्वासन देने का अधिकार, प्रतिस्पर्धी कीमतों पर विभिन्न प्रकार के सामानों और सेवाओं तक पहुँच।

4. **सुनाए जाने का अधिकार :**

   सुनने का अधिकार और आश्वासन दिया जाए कि उपभोक्ता के हित उचित मंच पर उचित विचार प्राप्त करेंगे।

5. **निवारण का अधिकार :**

   अनुचित व्यापार व्यवहार या प्रतिबंधित व्यापार व्यवहार या उपभोक्ताओं से बेईमान शोषण से निपटने का अधिकार।

6. **उपभोक्ता शिक्षा अधिकार :**

उपभोक्ता निर्णय को प्रभावित करने वाले कारकों को प्रभावित करने के लिए, कार्रवाई करने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त करने का अधिकार।

7. **स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार :**
भौतिक वातावरण का अधिकार जो जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाएगा। इसमें पर्यावरणीय खतरों से सुरक्षा शामिल है, जिस पर व्यक्ति का कोई नियंत्रण नहीं है। यह वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को बचाने और सुधारने की आवश्यकता को स्वीकार करता है।

8. **मूलभूत आवश्यकताओं के लिए अधिकार :**
बुनियादी जरूरतों का अधिकार, मूल सामान और सेवाओं को सुनिश्चित करता है जो कि जीवित रहने की गारंटी देता है। इसमें सभ्य जीवन का नेतृत्व करने के लिए पर्याप्त भोजन, कपड़े, आश्रय, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और स्वच्छता शमिल है।

4.5 उपभोक्ता संरक्षण

प्रभावी उपभोक्ता संरक्षण के लिए तीन पार्टियों व्यवसाय, सरकार और उपभोक्ताओं के लिए एक व्यावहारिक प्रतिक्रिया आवश्यक है।

सबसे पहले व्यापार, जो कि उत्पादकों और वितरण चैनलों के सभी तत्वों को शामिल करता है, को उपभोक्ता अधिकारों के सम्बन्ध में भुगतान करना पड़ता है। निर्माता की दक्षता सुनिश्चित करने के लिए एक अपरिहार्य जिम्मेदार है, उत्पादन और उत्पादन की गुणवत्ता। उसे प्रलोभन का भी विरोध करना चाहिए एक विक्रेता के बाजार में अत्यधिक कीमतों को चार्ज करने के लिए कई बार, इस आपूर्ति पक्ष पर खामियाँ, जैसे होर्डिंग और काले–मार्केटिंग, बेरहमी से उपभोक्ता को छूट। इसलिए, एक सामाजिक रूप से जिम्मेदार निर्माता यह देखना चाहिए कि जो भी उत्पादित किया गया है वह अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचता है समय और उचित मूल्य पर।

दूसरे, सरकार को असहाय के बचाव में आने की जरूरत है, उपभोक्ता उसे गुमराह, बेबकूफ, धोखाधड़ी से छुटकारा पाने के लिए आवश्यक है। यहाँ कमजोर वर्गों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उपभोक्ता संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र दिशानिर्देश बताता है कि "यह उपभोक्ता सुरक्षा में सरकारी भूमिका महत्वपूर्ण है और अभिव्यक्ति पाई जाती है नीति बनाने, कानून और संस्थागत विकास के माध्यम से। उपभोक्ता संरक्षण कानून, शारीरिक सुरक्षा, पदोन्नति और उपभोक्ताओं के आर्थिक हितों की सुरक्षा, सुरक्षा के लिए मानकों और माल और सेवाओं की गुणवत्ता, वितरण सुविधा, निवारण और शिक्षा और सूचना कार्यक्रम लागू करने के लिए सरकारी मशीनरी आवश्यक है।" दिशानिर्देश प्रोत्साहित करते हैं एक मजबूत उपभोक्ता को विकसित करने, उसे मजबूत करने या बनाए रखने के लिए सरकारें सुरक्षा नीति बनाती है। ऐसा करने में, प्रत्येक सरकार को अपनी प्राथमिकताओं को निर्धारित करना चाहिए, अपने आर्थिक और सामाजिक के अनुसार उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए परिस्थितियों और इसकी जनसंख्या की आवश्यकताओं की प्राथमिकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। यूएन दिशानिर्देश सरकारों को स्थापित करने के लिए भी कहता है । आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं के

लिए वितरण सुविधाओं का सुझाव दिया गया है कि जहाँ उपयुक्त हो, सरकार विचार करे :

(अ) कुशल वितरण सुनिश्चित करने के लिए नीतियों को अपनाना या बनाए रखना। उपभोक्ताओं को माल और सेवाएँ; जहाँ उचित, विशिष्ट नीतियाँ आवश्यक वस्तुओं के वितरण को सुनिश्चित करने के लिए विचार किया जाना चाहिए और सेवाओं जहाँ यह वितरण खतरे में है, जैसा कि मामला हो सकता है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी नीतियों के लिए सहायता शामिल हो सकती है। पर्याप्त भंडार का निर्माण और ग्रामीण केन्द्रों में सुविधाओं को बनाए रखना, प्रोत्साहन उपभोक्ता स्वयं सहायता और शर्तों के बेहतर नियंत्रण के लिए जिसके तहत ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यक वस्तुओं और सेवाएँ प्रदान की जाती हैं; और

(ब) उपभोक्ता सहकारी समितियों और सम्बन्धित की स्थापना को प्रोत्साहित करना, व्यापार गतिविधियों, साथ ही साथ विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में उनके बारे में जानकारी।

इसके अलावा, दिशानिर्देशों के मुताबिक, सरकारें औपचारिक या अनौपचारिक प्रक्रियाओं से निपटने के लिए उपभोक्ताओं को या सक्षम बनाने के लिए, उचित, प्रासंगिक संगठनों के लिए कानूनी और/या प्रशासनिक उपायों को स्थापित या बनाए रखना चाहिए जो तेज, निष्पक्ष, सस्ती और सुलभ हैं। इस तरह की प्रक्रियाओं को कम आय वाले उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के विशेष खाते को लेना चाहिए। सरकारों को सभी उद्यमों को एक निष्पक्ष, शीघ्र और अनौपचारिक तरीके से उपभोक्ता विवादों को हल करने और सलाहकार सेवाओं और अनौपचारिक शिकायत प्रक्रियाओं सहित स्वैच्छिक तंत्र स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जो उपभोक्ताओं को सहायता प्रदान कर सकते हैं। उपलब्ध निदान और अन्य विवाद–समाधान प्रक्रियाओं पर जानकारी उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराई जानी चाहिए। निजी लाभ का उद्देश्य सामाजिक रूप से अवांछनीय व्यापार प्रथाओं द्वारा आय को अधिकतम करने के लिए व्यापार का प्रयास करता है; और सरकार के हस्तक्षेप के लिए यह कॉल उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए वैधानिक कार्रवाई काफी आम हो गई है। यूनाइटेड किंगडम में, उदाहरण के लिए, व्यापार विवरण अधिनियम, 1968, वस्तुओं या सेवाओं के गुमराह करने के वर्णन या मूल्य में कटौती के भ्रामक प्रतिनिधित्व का उपयोग करने पर प्रतिबंध लगाता है। कई देशों में, उपभोक्ता कानून के प्रावधान में शामिल हैं, जो किसी प्रभावित पार्टी को उस व्यक्ति के हाथ में नुकसान या क्षति के लिए मुआवजे के लिए उपाय करने में सक्षम बनाते हैं जो निषिद्ध प्रथाओं में शामिल हैं। यह शर्मन एक्ट और यू0एस0ए0 के क्लेटन एक्ट का सत्य है; स्विट्जरलैंड के संघीय अधिनियम, स्पेन की प्रतिस्पर्धा के खिलाफ अधिनियम, निजी एकाधिकार के प्रति निषेध और जापान के फेयर ट्रेड के रखरखाव, ऑस्ट्रेलिया के व्यापार व्यवहार अधिनियम, कानाडा की संयुक्त जाँच अधिनियम, आदि से सम्बन्धित अधिनियम।

कुछ देशों में, वैधानिक निकायों को विज्ञापनों में किए गए दावों को साबित करने के लिए विज्ञापनदाता की आवश्यकता के लिए सशक्त हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के संघीय व्यापार आयोग (एफटीसी) सकारातमक प्रकटीकरण की तलाश कर सकता है अर्थात्, यदि विज्ञापन में जानकारी को एफटीसी द्वारा अपर्याप्त माना जाता है, तो आयोग की किसी कम्पनी को उसके

विज्ञापन या उसके उत्पाद या सेवा की कुछ सीमाएँ प्रकट करने की आवश्यकता हो सकती है ताकि उपभोक्ता अपनी नकारात्मक, और साथ ही साथ, सकारात्मक गुण एफटीसी को विज्ञापनदाताओं को आयोग के डेटा की माँग पर एक उत्पाद की सुरक्षा, प्रदर्शन, गुणवत्ता या कीमत के लिए बैक–अप विज्ञापन दावों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता भी हो सकती है। यह ठोसता का इरादा उपभोक्ताओं की मदद करने के लिए है उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारी के आधार पर अधिक तर्कसंगत विकल्प ऑटोमोबाइल, उपकरण, साबुन और डिटर्जेंट, टेलीविजन सेट, दंत चिकित्सक, सुनवाई एड्स और सभी अति–काउंटर दवाओं सहित कई उद्योग समूहों के सदस्यों को उनके नामित विज्ञापन दावों के समर्थन में दसतावेज को प्रदान करने का आदेश दिया गया है। अनुकूलतम विज्ञापन आवश्यकताएँ बहुत से FTC सहमति आदेशों का एक हिस्सा रही हैं। सुधारात्मक विज्ञापन सिद्धान्त इस विचार पर आधारित होते हैं कि विज्ञापनदाताओं द्वारा गलत जानकारी पहले ही भेजी गई है, और इस तरह की जानकारी के प्रभाव को दूर करने के लिए सुधारात्मक विज्ञापन की आवश्यकता है।

तीसरा, उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों का जिक्र करने और आनंद लेने के साधन के रूप में उपभोक्तावाद स्वीकार करना चाहिए। उपभोक्तावाद को व्यवसाय बनाने में सफल होना चाहिए और सरकार उपभोक्ताओं के अधिकारों के प्रति अधिकर उत्तरदायी होगी।

पीटर ड्रकर ने टिप्पणी की है कि "उपभोक्तावाद, कुछ विपणन अवधारणा के लिए शर्म की बात है," जिसका अर्थ है कि अवधारणा व्यापक रूप से कार्यान्वित नहीं है। उपभोक्तावाद न केवल विपणन की अवधारणा को व्यापक रूप से लागू करने के लिए व्यापार की असफलता को दर्शाता है, लेकिन व्यापार नीतियों को सामाजिक दृष्टिकोण देने की भी आवश्यकता है ताकि लम्बे समय से समाज कल्याण को बढ़ावा दिया जा सके, जैसा कि फिलिप कोटलर कहते हैं, "उपभोक्तावाद एक संशोधित विपणन अवधारणा के लिए एक स्पष्ट आवाज़ है", इसलिए मूल विपणन अवधारणा को सामाजिक विपणन अवधारणा को शामिल करने के लिए व्यापक किया जाना चाहिए।

"सामाजिक विपणन अवधारणा ग्राहकों की सुतुष्टि और दीर्घकालिक उपभोक्ता कल्याण को लक्षित करने के उद्देश्य से एकीकृत विपणन द्वारा समर्थित ग्राहक अभिविन्यास के लिए कॉल करता है, जो लम्बे समय तक लाभदायक मात्रा प्राप्त करने की कुंजी है।"

कोटल के मुताबिक, "लंबे समय से उपभोक्ता कल्याण के अलावा कारोबारी को अपने उत्पाद और बाजार की योजना में सामाजिक और पारिस्थितिक विचार शामिल करने के लिए कहा गया है। उन्हें अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए न केवल यह करने को कहा गया है बल्कि यह भी कि वह ऐसा करने में विफल होकर निर्माता के रूप में अपने लम्बे समय तक रुचियों को नुकसान पहुँचा सकता है।" इस प्रकार, उपभोक्तावाद का संदेश विपणन के लिए एक असफलता नहीं है, बल्कि अगले चरण को इंगित करता है। प्रबुद्ध विपणन के विकास में जैसे बिक्री की अवधारणा ने कहा कि बिक्री महत्वपूर्ण थी, और मूल विपणन अवधारणा ने कहा कि उपभोक्ता संतुष्टि भी महत्वपूर्ण थी, सामाजिक विपणन की अवधारणा यह कहले के लिए उभरा है कि लम्बे समय तक उपभोक्ता

कल्याण भी महत्वपूर्ण है। इसलिए, उन्हें लगता है कि उपभोक्तावाद स्थायी, लाभकारी, समर्थक विपणन और अंततः लाभदायक होगा। "उपभोक्तावाद उपभोक्ताओं की ऊर्जा जुटाता है, व्यापारियों और सरकारी नेताओं ने कई जटिल नोटों के समाधान की तलाश की, तकनीकी रूप से उन्नत समाज की समस्याओं में से एक उपभोक्ता इच्छाओं को कुशलतापूर्वक सेवा देने और अपने लम्बे समय तक चलने वाले हितों की सेवा करने में अंतर है। विपणक के लिए, यह कहता है क उत्पाद और विपणन प्रथाओं को मिलना चाहिए जो उपभोक्ता के लिए अल्पकाल और दीर्घकाल मूल्यों को जोड़ती है। यह कहता है कि एक सामाजिक विपणन मूल विपणन अवधारणा पर एक अग्रिम है और उपभोक्ता सद्भावना और लाभ में बढ़ोतरी के लिए आधार है।"

उपभोक्ता संरक्षण में गैर–सरकारी संगठन (एनजीओ) या स्वैच्छिक संगठनों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि उपभोक्ता संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र निदेशालय के दिशानिर्देशों में से एक में स्वतंत्र उपभोक्ता समूहों के विकास की सुविधा है, जिनके निर्णय लेने वाली प्रक्रियाओं में उनके विचारों को प्रभावित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। दिशानिर्देश यह बताते हैं कि उपभोक्ता संगठनों को प्रतिकूल व्यवहारों, जैसे खाद्य पदार्थों की मिलावट, विपणन और सेवा धोखाधड़ी में गलत या भ्रामक दावों की निगरानी के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। पर्याप्त उपभोक्ता संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए सरकारों द्वारा व्यापार और उपभोक्ता समूहों को विपणन और अन्य व्यावसायिक प्रथाओं के कोड तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उपभोक्ता समूहों की शिक्षा और सूचना कार्यक्रम चलाने में भी भूमिका निभानी है, खासकर कम आय वाले आबादी के लिए। एक मजबूत उपभोक्ता आंदोलन के विकास को बढ़ावा देना और उपभोक्ताओं के रूप में अपनी भूमिका में लोगों के लिए बढ़ती सुरक्षा उपभोक्ताओं के अंतर्राष्ट्रीय कार्य का मुख्य लक्ष्य है। इसके लिए, यह विकासशील देशों में नवगठित उपभोक्ता समूहों की सहायता करता है। उपभोक्ताओं को इंटरनेशनल स्वतंत्रता की गारंटी सख्त सदस्यता नियमों द्वारा दी जाती है जिन संगठनों में शामिल होना गैर–लाभ–निर्माण और गैर–वाणिज्यिक होना चाहिए और उपभोक्ता के हित में विशेष रूप से कार्य करना चाहिए।

4.6 उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता

भारत देश की पूरी लम्बाई और चौड़ाई में फैले उपभोक्ता असंगठित हैं। उनमें से कई अशिक्षित, गरीब और पिछड़े हैं। इसके विपरीत, निर्माता अपेक्षाकृत अधिक संगठित है। उनके निपटान में उनके पास भारी संसाधन हैं और उपभोक्ताओं को कई तरीकों से धोखा दे सकते हैं और उनका फायदा उठा सकते हैं। प्रतियोगिता को कम करने के लिए, उनकी बाजार हिस्सेदारी में वृद्धि और अपने मुनाफे को अधिकतम करने के लिए, वे कभी–कभी, अपने उत्पादों की बिक्री को बढ़ाने के लिए संदिग्ध तरीकों को अपनाने के लिए किसी भी तरीके से उत्पादक और व्यापारी उपभोक्ताओं को धोखा दे सकते हैं? निम्नलिखित सबसे लोकप्रिय हैं:

- कीमतें उत्पादन की लागत से निर्धारित स्तरों से अधिक उच्च स्तर पर तय की जा सकती हैं।

- विक्रेता पहले कीमतों में वृद्धि कर सकते हैं और फिर उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए छूट की पेशकश कर सकते हैं।
- उपभोक्ताओं को सही वजन या माल की मात्रा नहीं दिया जाना।
- विज्ञापन माल की गुणवत्ता के बारे में झूठे दावे कर सकते हैं।
- विज्ञापन अधूरी जानकारी प्रदान कर सकता है, जो उत्पाद के उपयोग से जुड़े जोखिमों को न प्रकट करता है।

पिछले तीन–चार दशकों में भारत में कीमतों में बढ़ोतरी हुई है। स्वाभाविक रूप से उन्होंने उपभोक्ताओं को प्रभावित किया है, खासकर उन गरीब वर्गों या निचले मध्यम आय समूहों से जो बेहद प्रतिकूल हैं। कई कारण कीमतों को आगे बढ़ाने के लिए जिम्मेदार हैं। हाँलाकि, यह देखा गया है कि कई मामलों में उत्पादकों ने जानबूझकर उत्पादन को प्रतिबंधित करने के लिए कीमतें बढ़ाने के लिए अपने बीच कार्टेल बनाकर और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं को अपनाया। कुछ मामलों में उपभोक्ता को भुगतान करने के लिए कहा जाने वाला मूल्य से उत्पादन की लागत का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आमतौर पर उन दवाओं के मामले में होता है, जिनकी कीमतें आम तौर पर उत्पादन की उनकी लागत से अधिक होती है। एक और अभ्यास जो उपभोक्ताओं को धोखा देने के लिए तेजी से लोकप्रिय हो रहा है, वह कीमतों पर भारी छूट का प्रस्ताव है। व्यापारी अक्सर कीमतें बढ़ाते हैं और फिर छूट की पेशकश करते हैं।

प्रायः विज्ञापन उपभोक्ताओं को धोखा देने के लिए उत्पादकों द्वारा उपयोग किया जाता है। विज्ञापन का वास्तविक उद्देश्य उपभोक्ता को विभिन्न उत्पादों के बारे में सूचित करना है। इस हद तक, यह उपयोगी है। हाँलाकि, इसके कई बीमार प्रभाव हैं, दो सबसे महत्वपूर्ण हैं:

1. विज्ञापन की लागत को बिक्री की लागत में जोड़ा जाता है और इससे कीमतें बढ़ जाती हैं।
2. यह भ्रामक हो सकता है और उपभोक्ताओं को भ्रमित कर सकता है।

कम्पनियाँ काई वैज्ञानिक आधार के साथ गुणों का दावा कर सकती हैं और वे उपभोक्ताओं को अपने उत्पादों के उपयोग से जुड़े जोखिमों का खुलासा न करके अंधेरे में रख सकते हैं। विश्व के अनुसार, विज्ञापन अब 435 अरब डॉलर का व्यापार है। लेकिन यह वार्षिक वैश्विक व्यय का एक रूढ़िवादी अनुमान है यदि विपणन के सभी प्रकार शामिल हैं, तो आँकड़ा $1 ट्रिलियन के करीब पहुँच जाता है वास्तव में, 1959 से वैश्विक विज्ञापन में सात गुना वृद्धि हुई है, जो कि विश्व अर्थव्यवस्था की तुलना में तीसरी तेजी है। विज्ञापन व्यय में वृद्धि विशेष रूप से एशिया और लेटिन अमेरिका के देशों में तेजी से 1980 के दशक और 1990 के दशक के मध्य हुई है। पिछले 10 वर्षों में इस क्षेत्र के व्यक्तिगत देशों ने शानदार विज्ञापन विकास दिखाया है– चीन के लिए 1,000% से अधिक, इंडोनेशिया के लिए 600%, मलेशिया और थाईलैंड के लिए 300% से अधिक, और भारत, गणराज्य कोरिया और फिलीपींस के लिए 200%। जीडीपी स्तर के मुकाबले, विकासशील देशी में विज्ञापन व्यय विशेष रूप से उच्च हैं हाल ही में भारत में सबसे बुरा खतरा छिपा हुआ है जो कि मिलावट का व्यापक अभ्यास है। आपूर्ति श्रृंखला में कई बिन्दुओं पर निजी व्यापार द्वारा व्यवहार किया जाता है। कृषि

वस्तुओं में मिलावट व्यापक है। छोटे कंकड़, गेहूँ, ज्वार, बाजरा और मैज में मिश्रित होते हैं। मक्खन रंग का वनस्पति, धूल के साथ मिर्च पाउडर, रेत, पीले मिट्टी, धूल आदि के साथ मसाले के साथ मिश्रित होता है। सबसे खराब अपराधी नकली दवाओं के निर्माता और डीलर हैं, क्योंकि वे लोगों के जीवन के साथ कहर लेते हैं।

4.7 उपभोक्ता संरक्षण के लिए आवश्यक कदम

उपरोक्त कारकों के कारण, उपभोक्ताओ के प्रति सुरक्षा की माँग करने वाले वर्षों में एक मजबूत उनमत बनाया है। उपभोक्ताओं को सुरक्षा के लिए व्यवसाय और सरकार द्वारा उपभोक्ताओं के लिम्नलिखित अधिकारों की पहचान की आवश्यकता है।

1. सुरक्षा का अधिकार, उपभोक्ताओं को स्वास्थ्य और स्वास्थ्य के प्रति जीवन के संरक्षण का अधिकार होना चाहिए जो स्वास्थ्य और जीवन के लिए खतरनाक है।
2. सूचित करने का अधिकार, उपभोक्ताओं को उन सामानों के बारे में उचित जानकारी दी जानी चाहिए जो वे खरीदना चाहते हैं। उन्हें गलत और भ्रामक विज्ञापन से संरक्षित किया जाना चाहिए।
3. चुनने का अधिकार, उपभोक्ताओं को अधिकार दिए जाने चाहिए कि वे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से चुनें। यह उन्हें अपनी पसंद के सामान का चयन करने का अवसर देगा। इसके अलावा, प्रतिस्पर्धा के कारण, चार्ज किए जाने वाले मूल्य उचित होंगे।
4. सुनाई किये जाने का अधिकार, सरकार द्वारा उपभोक्ताओं को एक "सहानुभूतिपूर्ण कान" दिया जाना चाहिए। उनकी शिकायतें और शिकायतों को ठीक से देखा जाना चाहिए।
5. निवारण का अधिकार, यह उपभोक्ताओं की शिकायतों को सुनने के लिए पर्याप्त नहीं है। जितनी जल्दी हो सके इन शिकायतों पर कार्रवाई करना आवश्यक है। इस उद्देश्य के लिए एक उपयुक्त निवारण मशीनरी अस्तित्व में होना चाहिए।

मानव विकास रिपोर्ट, 1998 के अनुसार उपभोक्ता अधिकारों का इनके माध्यम से बचाव किया जाना चाहिए :

1. उपभोक्ता स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए कड़े मानकों।
2. उत्पादों और उनके पर्यावरण और सामाजिक प्रभाव की सामग्री और उचित उपयोग के बारे में उत्पाद लेबलिंग।
3. संभावित स्वास्थ्य के खतरों के बारे में जानकारी और जागरूकता अभियान, जैसे कि धूम्रपान और शिशुओं के लिए भोजन के सूत्र का अनुचित उपयोग।

4.8 उपभोक्ता संरक्षण के तरीके

उपभोक्ता संरक्षण के लिए सबसे महत्वपूर्ण तरीके इस प्रकार हैं :

1. विनिर्माण और व्यापारिक समुदाय द्वारा खुद पर स्वयं–विनियमन और अनुशासन लागू करना।
2. उपभोक्ताओं का स्वैच्छिक संगठनों द्वारा अपने हितों की रक्षा करना।

3. विभिन्न उत्पादों के बारे में जानकारी और जागरूकता फैलाना।
4. व्यापारियों और निर्माताओं द्वारा किए गए अप्रियता को रोकने के लिए सरकार के कानून।

4.8.1 आत्म–नियमन और अनुशासन का बढाना

निर्माताओं और व्यापारियों द्वारा स्वयं पर नियंत्रण और अनुशासन लागू करना उपभोक्ता संरक्षण का एक बहुत ही वांछनीय लेकिन कम से कम व्यवहार्य तरीका है। केवल कुछ उत्पादक और व्यापारी स्वयं पर स्वयं–अनुशासन लागू करने के लिए सहमत होंगे। अधिकांश अन्य लोग इसमें भाग नहीं लेंगे।

तथ्य यह है कि कई बेईमान व्यापारी इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनाने के साधनों की परवाह किए बिना मुनाफा कमाने के एकमात्र इरादे से काम कर रहे हैं। कैसे वे स्वयं से विनियमित करने के लिए सहमत होने की उम्मीद कर सकते हैं? हाल के वर्षों में इस सम्बन्ध में काफी सफलता के साथ अपनाया गया एक नया दृष्टिकोण कुछ महत्वपूर्ण सूचनाओं का 'प्रचार' करना है और फिर व्यवसायों को इस जानकारी के पालन के अपने 'स्तर' की रिपोर्ट करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, कुछ देशों में, सरकारें औद्योगिक प्रदूषक के बारे में जानकारी का प्रचार करती हैं। यह प्रदूषण पीढ़ी के बारे में जानकारी के उत्पादन को प्रोत्साहित करता है, दोनों व्यवहार परिवर्तन के लिए प्रोत्साहन के स्रोत और बाद के विनियम के लिए एक बेंचमार्क के रूप में। एक अच्छी तरह से ज्ञात उदाहरण अमेरिकी विषाक्त रिलीज इन्वेंटरी है, जिसने व्यवसायों को उन जहरीले सामग्रियों की रिपोर्ट करने की आवश्यकता है जो वे पर्यावरण में डालते हैं। कई कम्पनियाँ उनकी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए प्रदूषण को कम करने के द्वारा जवाब देती हैं।

4.8.2 उपभोक्ताओं के स्वैच्छिक संगठन

उपभोक्ता संगठन वह संगठन है जो उपभोक्ताओं द्वारा अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए तैयार किए गए हैं और सरकारों और संस्थानों के साथ उचित समन्वय के माध्यम से उपभोक्ता कल्याण को बढ़ाने के लिए उनकी जिम्मेदारियों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए उपभोक्ताओं द्वारा तैयार किए गए हैं। वे अलग–अलग नामों के तहत काम कर रहे होंगे। वे उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के लिए बहुत ही एकजुट, आक्रामक और प्रभावशाली है।

एक उपभोक्ता संगठन की जिम्मेदारियाँ कई हैं :

1. उपभोक्ताओं के अधिकारों और कर्तव्यो पर जागरूकता सहित उपभोक्ता शिक्षा प्रदान करना।
2. उपभोक्ताओं से सम्बन्धित जानकारी साझा और विनिमय करने के लिए।
3. उपभोक्ता संरक्षण और हितों से सम्बन्धित सभी गतिविधियों के सहयोग और सहयोग को बढ़ावा देने के लिए।
4. अनुसन्धान और उत्पाद परीक्षण करने के लिए।
5. हर उपभोक्ता के लिए भोजन, आवास, स्वास्थ्य देखभाल और स्वच्छ वातावरण जैसे मूलभूत आवश्यकताओं को सुनिश्चित करने के लिए।
6. अपनी शिकायतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए उपभोक्ताओं के बीच आत्मविश्वास की भावना विकसित करना।

7. उपभोक्ताओं को शिक्षित करने के लिए, अपने स्वयं के निर्णय लेने के लिए, गंभीर रूप से सोचने के लिए और खतरनाक रूझानों और प्रथाओं का विरोध करने के लिए ताकत हासिल करने के लिए।
8. अपनी समस्याओं को सुलझाने में मदद के लिए समुदायों के साथ काम करना।
9. शिकायतों के मामलों में परामर्श और मार्गदर्शन प्रदान करना।
10. सार्वजनिक हित के कार्यक्रमों को व्यवस्थित करने के लिए।

कई देशों में, विकसित और विकासशील भी, उपभोक्ताओं ने स्वैच्छिक आधार पर खुद को संगठित किया है। संगठन अक्सर उपभोक्ता संघों या परिषदों की स्थापना, या उपभोक्ता सहकारी संगठनों के आयोजन के द्वारा प्राप्त किया जाता है। भारत के उपभोक्ताओं के संगठनों के विकास का एक समृद्ध इतिहास है। निम्नलिखित कुछ उपभोक्ता समूहों और संगठनों को विभिन्न वर्षों के दौरान स्थापित किया गया है :

1. यात्रियों और ट्रैफिक रिलीफ एसोसिएशन (1915)
2. भारतीय महिला संघ (1917)
3. इंडियन एसोसिएशन ऑफ कन्ज्यूमर (1956)
4. गायत्री चैरिटेबल ट्रस्ट (1960)
5. ज्योति संग ग्राहक सुरक्षा विभाग (1962)
6. बॉम्बे सिविल ट्रस्ट (1963)
7. कंज्यूमर गाइडेंस सोसाइटी ऑफ इंडिया (1966)
8. कर्नाटक उपभोक्ता सेवा सोसायटी (1970)
9. विसाका उपभोक्ता परिषद् (1973)
10. अखिल भारतीय ग्राम पंचायत (1974)
11. उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केन्द्र (1978)
12. ग्राम पंचायत (1979)
13. कंज्यूमर फोरम (1980)
14. कंज्यूमर यूनिटी एंड ट्रस्ट सोसाइटी (1984)
15. कॉनामेर एक्शन ग्रुप (1985)
16. एसएमएन उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (1986)
17. बंबई टेलीफोन यूजर एसोसिएशन (1989)
18. भारतीय उपभोक्ता संगठनों के परिसंघ (1991)
19. उपभोक्ता समन्वय परिषद् (1992)

4.8.2.1 उपभोक्ता संघ या परिषद्

उपभोक्ता संघों या उपभोक्ता परिषदों का गठन कई विकसित देशों और कुछ विकासशील देशों में हुआ है जो उपभोक्ताओं के अधिकारों की सुरक्षा पर नजर रखता है। भारत में, राष्ट्रीय उपभोक्ता सेवा (एनसीएस) नामक एक न्यूक्लियस उपभोक्ता संगठन की स्थापना 1963 में हुई थी। मुख्य उद्देश्य बाजार की खुफिया जानकारी इकट्ठा करना, उपभोक्ताओं की जानकारी के लिए बुलेटिन प्रकाशित करना, बढ़ती कीमतों के रुझानों का अध्ययन करना और गैरकानूनी गतिविधियों के खिलाफ गतिविधियों का आयोजन करना था। दिल्ली में एनसीएस से सम्बद्ध कुछ कौंसिल और उपभोक्ता संघ स्थापित किए गए थे। 1964 में दिल्ली

में एक अन्य उपभोक्ता संगठन दिल्ली में मूल्य रियेज प्रतिरोध आंदोलन (पीआरआरएम) स्थापित किया गया था। यह बढ़ती हुई कीमतों से बचाने के लिए बैठक आयोजित करता है। 1996 में सब्जी, फली, अंडे आदि की बिक्री के लिए खुली हवा की दुकानें भी बनाई गई। मुंबई में एक कंज्यूमर गाइडेंस सोसाइटी की स्थापना हुई थी। यह उपभोक्ताओं के अधिकारों और हितों को बढ़ावा देने और उनकी सुरक्षा के लिए स्थापित एक स्वैच्छिक संगठन था। यह उपभोक्ताओं के लिए जानकारी और मार्गदर्शन प्रदान करता है, व्यापारियों द्वारा माल के मिलावट के खिलाफ अभियान और उपभोक्ता वस्तुओं के परीक्षण के परिणाम प्रकाशित करता है। एचडी शौरी द्वारा स्थापित एक उपभोक्ता संगठन 'कॉमन कॉज' और दिल्ली स्थित, उपभोक्ताओं को शिक्षित करने और अपने अधिकारों की सुरक्षा के क्षेत्र में भी सेवा कर रही है। 1968 में दिल्ली में एक राष्ट्रीय उपभोक्ता परिषद् की स्थापना हुई थी।

4.8.2.2 उपभोक्ता सहकारी समितियाँ

एक उपभोक्ता सहकारी, सामान्य अच्छे की उपलब्धि के लिए गठित व्यक्तियों का स्वैच्छिक संगठन है। भारत में, किसी विशेष स्थान, वर्ग या व्यवसाय से सम्बन्धित कोई भी दस या अधिक व्यक्ति एक सहकारी समाज बनाने के लिए एक साथ जा सकते हैं। वे पंजीकरण के लिए सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार को आवेदन कर सकते हैं। उपभोक्ता सहकारी समितियों के कुछ फायदे इस प्रकार हैं :

1. चूँकि कई व्यक्ति उपभोक्ता सहकारी बनाने के लिए एक साथ आते हैं, इसलिए उनकी सौदेबाजी की शक्ति बढ़ जाती है।
2. चूँकि थोक में खरीद की जाती है, इसलिए ये आम तौर पर कम कीमत पर होते हैं।
3. उपभोक्ताओं को आश्वस्त और मानक गुणवत्ता वाले सामान का आश्वासन दिया जाता है।
4. समाज द्वारा उचित वजन और उपायों का इस्तेमाल किया जाता है इसलिए उपभोक्ता को इस खाते पर 'धोखा' से बचाया जाता है।
5. हमारे देश में उपभोक्ता सहकारी समितियों के प्रदर्शन से उचित वस्तुओं को उचित रूप, उचित कीमतों में बाँटने का कार्य किया है।

एक नीति के रूप में, भारत सरकार सहकारी समितियों को मजबूत करने की जरूरत पर बल दे रही है, ताकि यह संगठन को शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली में प्रमुख भूमिका निभा सके। देश में उपभोक्ता सहकारी संरचना राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ लिमिटेड (एनसीसीएफ) के पास चार स्तर हैं। राज्य सहकारी उपभोक्ता संगठन एनसीसीएफ से संबद्ध हैं। केन्द्रीय/थोक स्तर पर, 800 उपभोक्ता सहकारी भंडार हैं। प्राथमिक स्तर पर, 21,903 प्राथमिक स्टोर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में, लगभग 44,418 गाँव स्तर प्राथमिक कृषि क्रेडिट सोसायटी और वपणन सोसाइटी अपने सामान्य व्यवसाय के साथ उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण का काम कर रहे हैं। शहरी और अर्ध–शहरी इलाकों मे उपभोक्ता सहकारी समितियाँ उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लगभग 37.226 रिटेल आउटलेट संचालित कर रही हैं। एनसीसीएफ उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण के उपक्रम के अलावा, रिटेलिंग

गतिविधियों में लगे उपभोक्ता सहकारी समितियों को मजबूत बनाने के लिए एक परामर्श और प्रचारक सेल भी हैं। एनसीसीएफ की नई दिल्ली में अपने मुख्यालय के साथ देश के विभिन्न हिस्सों में स्थित 34 शाखाएँ/उप शाखाएँ हैं। एनसीसीएफ की मदद से सरकार ने जुलाई, 2000 में सर्वप्रिया नामक एक योजना का शुभारंभ किया। इस योजना में उपभोक्ताओं को उचित खरीदारी और उपभोक्ता सहकारी समितियों के माध्यम से दैनिक उपयोग के 11 चयनित वस्तुओं के वितरण की परिकल्पना की गई है। 2006–07 के दौरान एनसीसीएफ की बिक्री का कारोबार 411 करोड़ है।

4.8.3 सूचना और जागरूकता फैलाना

वैश्वीकरण–व्यापार, निवेश और वित्तीय बाजारों का एकीकरण, ने उपभोक्ता बाजार को भी एकीकृत किया है विश्वीकरण नए उत्पादों की निरंतर धारा ला रहा है, जो अज्ञात स्थितियों में बहुत दूर का उत्पादन करता है। ऐसी परिस्थितियों में, विभिन्न उत्पादों के बारे में जानकारी और जागरूकता आवश्यक हो जाती है। दुर्भाग्य से, दुनिया भर के अधिकांश देशों में आज उपलब्ध उत्पाद की जानकारी का प्रमुख स्रोत वाणिज्यिक विज्ञापन है। अनचेक किए जाने पर, वाणिज्यिक विज्ञापन भ्रामक हो सकते हैं क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को किसी विशिष्ट उत्पाद का उपयोग करने के लिए 'लुभाने' के लिए होता है और उन्हें जोखिमों के बारे में सूचित या उन्हें शिक्षित नहीं करना है या उस उत्पाद के उपयोग से जुड़े खतरों के सम्बन्ध में । इस प्रकार, जबकि विज्ञापन अभियान तेज हो गए हैं, सूचना अभियान अभी तक पीछे हैं (विशेषकर विकासशील देशों में) यह इस तथ्य के कारण है कि वाणिज्यिक विज्ञापनों पर भारी व्यय होने पर, सूचना अभियानों के संसाधन हमेशा गंभीरता से सीमित होते हैं।

4.8.4 सरकारी कानून

अधिकांश देशों की सरकारों ने उपभोक्ता अधिकारों की सुरक्षा के लिए विभिन्न कानूनों को अपनाया है। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश और अमेरिकी सरकारों ने कई कानूनों को लागू किया है,, जिन्होंने दूसरे देशों के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में सेवा की है। इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ब्रिटिश कानून इस प्रकार हैं :

1. माल की बिक्री अधिनियम, 1893,
2. खाद्य और औषधि अधिनियम, 1955,
3. वजन और माप अधिनियम, 1963,
4. व्यापारिक टिकट अधिनियम, 1964,
5. फेयर ट्रेडिंग अधिनियम, 1973 आदि।

भारत सरकार ने उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कई अधिनियम भी पारित किए हैं। इनमें निर्माण (ग्रेडिंग और विपणन) अधिनियम, 1937; आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955; भार और माप अधिनियम, 1958; खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954; ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट, 1940; फल उत्पाद आदेश 1955; ब्लैक मार्केटिंग की रोकथाम और आवश्यक वस्तु अधिनियम की आपूर्ति का रखरखाव ; ड्रग्स एंड मैजिक मार्क अधिनियम; माल की भारतीय बिक्री अधिनियम; खतरनाक औषध अधिनियम; प्रतीक और नाम (अनुचित प्रयोग की रोकथाम) अधिनियम; पैकेज किए गए कमोडिटिज (विनियमन) आदेश, 1975; व्यापार और माल मार्क अधिनियम; एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार

अधिनियम, 1969 आदि। उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कानून उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 है, जिसके लिए हम अगले अनुभाग में बदलते हैं।

4.8.5 अन्य पद्धतियाँ

'अन्य कदम' के तहत हम (i) राष्ट्रीय पुरस्कारों के सम्मेलन, (ii) प्रचार उपायों, (iii) उपभोक्ता कल्याणकारी फंड और (iv) भारतीय मानक ब्यूरो पर विचार करेंगे।

(i) राष्ट्रीय पुरस्कार : उपभोक्ता संगठनों, महिलाओं और युवाओं को उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में, भारत सरकार के नागरिक आपूर्ति, उपभोक्ता मामले और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए तीन राष्ट्रीय पुरस्कारों की स्थापना की है जिसमें उपभोक्ता संरक्षण, राष्ट्रीय महिला पुरस्कार और राष्ट्रीय युवा पुरस्कार उपभोक्ता संरक्षण पर हर साल दिया जाता है।

(ii) प्रचार उपाय : पंद्रहवी मार्च को दुनिया भर में "विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस"रूप मे मनाया जाता है । यह दिन है विभिन्न माध्यमों के माध्यम से उपभोक्ता जागरूकता फैलाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। भारत में होर्डिंग, बैनर, बस पैनल आदि का प्रदर्शन। दूरदर्शन और आकाशवाणी भी नियमित रूप से कार्यक्रमों पर प्रसारित करते हैं उपभोक्ता संरक्षण और ब्रोशर और पुस्तिकाएँ (जैसे 'मुख्य उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम', 1986 की विशेषताएँ, 'अधिकार उपभोक्ता', 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम और आप', 'सहायता व्यभिचार रोकें', 'उपभोक्ता संरक्षण और वजन और उपाय', 'उपभोक्ता संगठन की निर्देशिका', आदि हैं) प्रकाशित किया। इसके अलावा, 24 दिसंबर को घोषित किया गया है 'राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस'।

(iii) उपभोक्ता कल्याणकारी निधि : भारत सरकार ने उपभोक्ता कल्याण कोष (सीडब्ल्यूएफ) 1992 में इस उद्देश्य के साथ बनाया ताकि यह कल्याण की रक्षा और बढ़ावा देने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करें ।

उपभोक्ताओं, उपभोक्ता जागरूकता का विकास और मजबूत विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में देश में उपभोक्ता आंदोलन के तहत राजस्व विभाग द्वारा स्थापित निधि एक्साइज एंड साल्ट एक्ट, 1994, का संचालन मंत्रालय के द्वारा किया जाता है। उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण सीडब्ल्यूएफ के तहत योजनाएँ शामिल थीं :

(i) जागृति शिविर योजना (शूरू की गई जून 2001 में);

(ii) जिला उपभोक्ता सूचना की स्थापना चरणबद्ध तरीके से केन्द्र;

(iii) स्कूलों और कॉलेजों में उपभोक्ता क्लबों की स्थापना; और

(iv) अनुसंधान की भागीदारी को बढ़ावा देना उपभोक्ता संरक्षण में संस्थाओं/विश्वविद्यालय/महाविद्यालय आदि कल्याण। जागृति शिविर योजना के वित्तपोषण के समापन के साथ और विभाग के जिला उपभोक्ता सूचना केन्द्र उपभोक्ता मामले, राज्य सरकारें अब अपने उपभोक्ता कल्याण कोष बनाने के लिए प्रभावित हो रही हैं।

(iv) **भारतीय मानक ब्यूरो** : भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) भारत का राष्ट्रीय मानक निकाय है, बीआईएस के मुख्य कार्यों में मानकों की तैयारी और क्रियान्वयन

शामिल है, प्रमाणन योजनाओं का संचालन अलग–अलग वस्तुओं के लिए दोनों खाद्य उत्पादों से लेकर इलेक्ट्रॉनिक्स तक यह योजना है। प्रकृति में मूल रूप से स्वैच्छिक हालाँकि, इसे ध्यान में रखते हुए सुरक्षा और कुछ उत्पादों के बड़े पैमाने पर उपभोग, यह किया गया है एलपीजी सिलेंडर, खाद्य रंग, नोट्स जैसे 68 वस्तुओं के लिए अनिवार्य बनाया पैक किए गए पेयजल आदि।

(v) ग्यारहवीं योजना में उपभोक्ता जागरूकता योजना : 11वीं योजना के लिए कुल 4,009 करोड़ की राशि के उपभोक्ता जागरूकता योजना को 24 जनवरी, 2008 को सरकार द्वारा मंजूरी दे दी गई है। उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक करने के लिए बहु–मीडिया प्रचार अभियान चलाया गया। पिछले तीन वर्षों में किए गए प्रचार अभियान के परिणामस्वरूप नारा 'जागों ग्राहक जागों ' अब घर का नाम बन गया है। ग्यारहवीं योजना में उपभोक्ता जागरूकता पर बढ़ोतरी के माध्यम से, सरकार ने आम आदमी को एक उपभोक्ता के रूप में अपने अधिकारों को सूचित करने का प्रयास किया है। उपभोक्ता जागरूकता योजना के भाग के रूप में, ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्री को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है।

4.9 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (अनुमोदन के साथ)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अधिनियमन उपभौक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए उठाए गए सबसे महत्वपूर्ण कदमों में से एक था। इसे कई देशों के उपभोक्ता संरक्षण अधिनियमों के तीव्रता से अध्ययन करने और उपभोक्ताओं, व्यापारियों और उद्योगपतियों के प्रतिनिधियों के साथ गहन विचार–विमर्श के बाद तैयार किया गया था। अधिनियम के सभी प्रावधान 1 जुलाई, 1987 से प्रभावी हो गए। 1991 और 1993 में इस अधिनियम को पूरी तरह से संशोधन किया गया। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम को अधिक कार्यात्मक और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए, दिसंबर 2002 में व्यापक संशोधन किया गया और 15 मार्च, 2003 से इसे लागूं किया गया। एक अगली कड़ी के रूप में, उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 में भी संशोधन किया गया और कानून के प्रावधानों को प्रभावित करने के लिए तैयार उपभोक्ता संरक्षण विनियम, 2005 तैयार किया गया ।

4.9.1 उपभोक्ताओं के अधिनियम और अधिकारों के उद्देश्य

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य "उपभोक्ताओं के हितों के बेहतर संरक्षण और उपभोक्ता परिषदों और अन्य प्राधिकारियों की स्थापना के लिए उपभोक्ताओं के विवादों के निपटारे के लिए और उसके साथ जुड़े मामलों के लिए प्रावधान करने के उद्देश्य के लिए प्रदान करना है।" यह अधिनियम सभी वस्तुओं और सेवाओं पर लागू होता है विशेषकर केन्द्र सरकार द्वारा छूट दी जाती है। यह सभी क्षेत्रों को शामिल करता है चाहे निजी, सार्वजनिक या सहकारी अधिनियम के प्रावधानों में प्रतिपूर्ति कर रहे हैं।

अधिनियम की धारा 6 (अध्याय II) निम्नलिखित के अधिकारों को शामिल करता है। उपभोक्ताओं को:

(अ) माल के विपणन के खिलाफ संरक्षित करने का अधिकार और सेवाओं जो जीवन और संपत्ति के लिए खतरनाक है;

(ब) गुणवत्ता, मात्रा, सामर्थ्य, शुद्धता, मानक और माल या सेवाओं की कीमत, ताकि अनुचित व्यापार प्रथाओं के खिलाफ उपभोक्ता की रक्षा की जा सके।

(स) जहाँ भी संभव हो, का आश्वासन दिया जाने का अधिकार, विभिन्न प्रकार की एक्सेस माल और सेवाएँ प्रतिस्पर्धी कीमतों पर;

(द) सुना जा सकता है और उपभोक्ताओं के हितों का आश्वासन दिया जाने का अधिकार उचित मंच पर उचित विचार प्राप्त होगा;

(ई) अनुचित व्यापार पद्वतियों के खिलाफ निवारण की तलाश करने का अधिकार तथा

(फ) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

4.9.2 उपभोक्ता संरक्षण परिषद्

यह अधिनियम सम्बन्धित राज्य सरकारों द्वारा केन्द्रीय सरकार और राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषदों द्वारा केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना के लिए प्रदान करता है। केन्द्रीय परिषद् निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनती है, अर्थात् (अ) केन्द्र सरकार में उपभोक्ता मामलों के मंत्री प्रभारी, जो अध्यक्ष होंगे और (ब) ऐसे अन्य अधिकारी या गैर–सरकारी सदस्य होंगे जो इस तरह के हितों का प्रतिनिधित्व निर्धारित करते हैं। केन्द्रीय परिषद् के अनुसार और जब आवश्यक हो, लेकिन हर साल परिषद् की कम से कम एक बैठक आयोजित की जाएगी। केन्द्रीय परषिद् की वस्तुओं को उपर्युक्त उपभोक्ताओं के अधिकारों को बढ़ावा देना और उनकी रक्षा करना है (धारा 6 के खण्ड (ए) से (एफ))

राज्य परिषद्, राज्य सरकार द्वारा स्थापित किया जाएगा और निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे:
(अ) राज्य सरकार में उपभोक्ता मामलों के प्रभारी मंत्री, जो अध्यक्ष होंगे, और (ब) ऐसे अन्य अधिकारी या गैर–राज्य सरकार द्वारा ऐसे हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले आधिकारिक सदस्यों के अनुसार निर्धारित किया जा सकता है। राज्य परिषद् के रूप में और जब आवश्यक हो, लेकिन हर साल कम से कम दो बैठक ओयोजित नहीं की जाएगी। प्रत्येक राज्य परिषद् की वस्तुओं को धारा 6 के खण्ड (ए) से (एफ) में निर्धारित उपभोक्ताओं के राज्य अधिकारों के भीतर प्रचार और संरक्षण करना होगा।

4.9.3 उपभोक्ता विवाद निवारण एजेन्सियाँ

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 9, जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर एक तीन स्तरीय उपभोक्ता विवाद निवारण प्रणाली की स्थापना के लिए प्रदान करता है। तीन निवारण एजेंसियाँ इस प्रकार हैं:

1. जिला स्तर पर उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम जिसे 'जिला फोरम' कहा जाता है।
2. राज्य स्तर पर उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग 'राज्य आयोग' के रूप में जाना जाता है।
3. केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित एक 'राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग।'

अधिनियम की धारा 10 जिला फोरम की संरचना से सम्बन्धित है, धारा 16 को राष्ट्रीय आयोग की संरचना के साथ, राज्य आयोग और धारा 20 की संरचना के साथ।

धारा 11 जिला मंच के अधिकार क्षेत्र से सम्बन्धित है। इस धारा के अनुसार, इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, जिला फोरम के पास शिकायतों का निपटारा करने का क्षेत्राधिकार होगा जहाँ माल या सेवाओं का मुआवजा यदि कोई हो, दावा किया जाए जो बीस लाख रूपये से अधिक नहीं होगा। धारा 12 के अनुसार, किसी भी सामान या सेवाओं के सम्बन्ध में शिकायत एक जिला फोरम के साथ दायर की जा सकती है।

1. ऐसे उपभोक्ता जिनके लिए ऐसे सामान या सेवाएँ बेची जाती हैं;
2. किसी भी मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ (सवाल में उपभोक्ता उस संघ के सदस्य है या नहीं);
3. एक या अधिक उपभोक्ताओं, जहाँ कई उपभोक्ता हैं जो समान रूचि रखते हैं; या
4. केन्द्र सरकार या राज्य सरकार अपनी व्यक्तिगत क्षमता व्यक्तिगत क्षमता में या आम तौर पर उपभोक्ताओं के हितों के प्रतिनिधि के रूप में ।

धारा 17 राज्य आयोग के अधिकार क्षेत्र से सम्बन्धित है। इस धारा के अनुसार, अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, राज्य आयोग के पास शिकायतों का निपटारा करने का क्षेत्राधिकार होगा, जहाँ माल या सेवाओं का मुआवजा, यदि कोई हो, दावा किया गया है कि 20 लाख से अधिक है लेकिन 1 करोड़ से कम।

धारा 21 राष्ट्रीय आयोग के क्षेत्राधिकार से सम्बन्धित है। इस धारा के अनुसार, अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, राष्ट्रीय आयोग के पास शिकायतों का मनोरंजन करने का क्षेत्राधिकार होगा, जहाँ माल या सेवाओं का मुआवजा, यदि कोई हो, दावा किया जाता है तो 1 करोड़ से अधिक का दावा किया जाता है।

4.9.4 उपचारात्मक कार्रवाई

यदि उपभोक्ता निवारण एजेंसियों में से कोई भी संतुष्ट है कि माल शिकायत में उल्लिखित किसी भी दोष से पीड़ित शिकायत करता है या सेवाओं के बारे में शिकायत में निहित आरोपों में से कोई भी साबित हो जाता है, तो वह विपरीत पक्ष को आदेश जारी करेगा, निम्नलिखित चीजों में से एक या अधिक करें :–

1. प्रश्न में माल से उचित प्रयोगशाला द्वारा उठाए गए दोष को दूर करने के लिए;
2. ऐसे सामान के नए सामान वाले सामान को बदलने के लिए जो कि किसी दोष से मुक्त होगा;
3. शिकायतकर्ता को वापस किये जाने के लिए, शिकायतकर्ता द्वारा अदा किए गए शुल्क;
4. उपभोक्ता द्वारा किसी भी नुकसान या चोट के लिए उपभोक्ता को क्षतिपूर्ति के रूप में ऐसी राशि का भुगतान करने के लिए, जो विपरीत पक्ष की लापरवाही के कारण हो;
5. प्रश्नों में सेवाओं में माल या सेवाओं में दोषों को दूर करने के लिए;

6. अनुचित व्यापार व्यवहार या प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं को बंद करने या उन्हें नहीं दोहराने के लिए;
7. खतरनाक वस्तुओं को सुरक्षित नहीं रखने के लिए;
8. खतरनाक सामान को बिक्री के लिए पेश किए जाने से वापस लेने के लिए;
9. दलों के लिए पर्याप्त लागत प्रदान करने के लिए।

4.9.5 अपील

धारा 15 के अनुसार, जिला फोरम द्वारा किए गए आदेश से पीड़ित किसी भी व्यक्ति को इस आदेश के खिलाफ राज्य आयोग के आदेश की तिथि से 30 दिनों की अवधि के भीतर इस तरह के फार्म और तरीके से अपील करना चाहिए जो निर्धारित किया गया हो। राज्य आयोग के आदेश से पीड़ित कोई भी व्यक्ति 30 दिन (धारा 19) के भीतर राष्ट्रीय आयोग को इस तरह के आदेश के खिलाफ अपील कर सकता है। अगर किसी व्यक्ति का राष्ट्रीय आयोग द्वारा किए गए आदेश से पीड़ित किया जाता है, तो वह आदेश की तिथि (धारा 23) से 30 दिनों की अवधि के भीतर सुप्रीम कोर्ट को इस तरह के आदेश के खिलाफ अपील कर सकता है। (सभी मामलों में, 30 दिनों की समाप्ति के बाद भी अपील पर विचार किया जा सकता है यदि प्राधिकारी (निवारण एजेंसी) इस बात की से संतुष्ट है कि उस अवधि के भीतर फाइल न करने का पर्याप्त कारण था।)

4.9.6 दंड

धारा 27 दंड के मुद्दे से सम्बन्धित है, जहाँ एक व्यापारी या शिकायतकर्ता विफल रहता है या निवारण एजेन्सी द्वारा किए गए किसी भी आदेश का अनुपालन नहीं करता है उसके खिलाफ कारावास का दंड किया जाएगा, जिसके अनुसार कम से कम एक महीने, लेकिन जो कि एक साल तक बढ़ सकता है, इसके साथ ही कम से कम 2,000.00 रू0 का जर्माना होगा, लेकिन यह बढ़ाकर 10,000.00 रू0 हो सकता है या दोनों के साथ।

4.9.7 अधिनियम के कार्यान्वयन

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के संदर्भ में, उपभोक्ता निवारण एजेन्सियाँ दोषपूर्ण वस्तुओं के खिलाफ उपभोक्ता शिकायतों की कमी करने के लिए सरल, रास्ता और समयबद्ध न्याय प्रदान करने के लिए जिला स्तर (600), राज्य स्तरीय (35) और राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किए गए हैं, व्यापारियों या किसी भी व्यक्ति द्वारा अपनाई गई अनुचित/व्यापार पद्वतियों सहित सेवाओं के लिए जिले में राज्य को अतिरिक्त जिला फोरम स्थापित करने का अधिकार दिया गया है। राज्य, राज्य आयोग के अतिरिक्त बेंच भी स्थापित कर सकते हैं और सर्किट बेंच रखने के लिए स्थानों को भी सूचित कर सकते हैं। केन्द्रीय सरकार ने नई दिल्ली में 1988 में राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की। इस अधिनियम ने अतिरिक्त बेंच बनाने के लिए राष्ट्रीय स्तर के अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति और राष्ट्रीय आयोग द्वारा सर्किट बेंचों के शीर्षकों के लिए भी उपभोक्ताओं के दरवाजे पर न्याय लाने के लिए नियुक्ति की शक्ति प्रदान की है। वर्तमान में, राष्ट्रीय आयोग में 3 बेंच काम कर रहे हैं। भारत सरकार भी नोडल विभाग के रूप में कार्य विशेष रूप से उपभोक्ता शिकायतों के निवारण सहित उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ ही माल और सेवाओं, आदि के मानकों को बढ़ावा देने के लिए वर्ष

1997 में उपभोक्ता मामलों का एक अलग विभाग बनाया। सामान्य जनता की सहूलियत तथा ज्ञान के लिए केन्द्र सरकार ने हाल ही में सभी राज्य/संघ शासित प्रदेशों को पूर्ण सचिव के साथ एक अलग विभाग स्थापित करने के लिए अनुरोध किया है। उपभोक्ता संरक्षण कार्यक्रम की रक्षा के लिए विशेष ध्यान दिया गया है और उपभोक्ताओं के कल्याण को बढ़ावा दिया गया।

4.10 ग्रीन उपभोक्ता

ग्रीन उपभोक्तावाद, उपभोक्ता व्यवहार और मॉडल के सभी रूपों को संदर्भित करता है जो कि लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए अच्छे हैं। हरे रंग की खपत में संसाधनों की बचत, कम प्रदूषण, पर्यावरण के अनुकूल उत्पादों की खरीद, पुनः प्रयोज्य वस्तुओं, वर्गीकृत संग्रहण और अपशिष्ट पदार्थों के रीसाइक्लिंग और पारिस्थितिक संतुलन की रक्षा को बनाए रखने के लिए एक पर्यावरण अनुकूल जीवन शैली है।

ग्रीन उपभोक्तावाद को या तो एक उच्च लोकतांत्रिक रणनीति के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो ग्रह या शोषक विपणन बेचने के लिए, आप किसके साथ बात कर रहे हैं पर निर्भर करता है। ग्रह को बचाने के लिए एक रणनीति के रूप में यह औद्योगिक देशों में उपभोक्ताओं के द्रव्यमान का सामना कर रहा है। उपभोक्ता माँग को पर्यावरण प्रिय बनाने के लिए अब इसे हमें फिर से बाहर निकालना होगा, उपभोक्ताओं को खुद को प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में सूचित करना होगा और फिर, उत्पाद लेबलिंग के माध्यम से क्रॉस–चेक किया जा रहा है तथा उपभोग स्वादों के अनुरूप हरे रंग की जीवन शैली के साथ–साथ पर्यावरण की दृष्टि से सौम्य उत्पादों का उपभोग हेतु चयन करना होगा।

विचार यह है कि जब पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के बारे में जागरूकता समुदाय की चेतना में काफी गहराई से प्रवेश करती है तो बड़े पैमाने पर बाजार की क्रय शक्ति सभी निर्माताओं को अपने उत्पादों और उनकी विनिर्माण प्रक्रियाओं को हरे रंगों पर लागू करेगी, उपभोक्ताओं का झुकाव यदि सभी योजना के मुताबिक है तो केवल वह कम्पनियाँ ही सफल हो पायेंगी जो हरे रंग की माँग के अनुरूप होंगी। पर्यावरणवाद के लिए यह दृष्टिकोण हमारे मौजूदा मुख्यधारा की संस्कृति के अनुरूप है। इससे अधिकतर लोगों को अपने क्रेडिट कार्ड के साथ मतदान के माध्यम से निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी की अनुमति मिलती है।

ग्रीन उपभोक्तावाद पर विचार के अन्य बिंदु, उपभोक्ताओं के बड़े पैमाने पर विज्ञापन देखकर दुर्व्यवहार है जो अत्यधिक नैतिकता के लिए अपील करता है, लेकिन पर्यावरण सम्बन्धी मामलों पर दुखी जानकारी देता है।

4.10.1 ग्रीन उपभोक्तावाद की जड़ें

हरे रंग के खरीददार, जाहिर है, एक लंबे समय के लिए पास रहे हैं, लेकिन हाल तक वे केवल कुछ ही थे। आधुनिक हरे रंग की उपभोक्ता आंदोलन का जन्म आमतौर पर नव समय से जारी ब्रांडटेललैंड रिपोर्ट में वैश्विक पारिस्थितिक संकट के बारे में जागरूकता पैदा करने के साथ हुआ 1987 में द बॉडी शॉप नामक एक ब्रितानी कम्पनी ने ब्रिटेन की "कम्पनी ऑफ द ईयर" बिजनेस एंटरप्राइज अवार्ड्स जीता। बॉडी शॅप "क्रूरता से मुक्त, कम से कम पैक, प्रकृति के लिए एक आउटलेट के रूप में" हरी उपभोक्तावाद की लहर पर उच्च सवारी थी। यह सालाना 20 नए आउटलेट्स की दर से विस्तार कर रहा था और

इसकी असाधारण सफलता ने कई लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए ग्रीन अर्थशास्त्र और हरे रंग की उपभोक्ता दोनों को लोकप्रिय मार्गदर्शकों को जल्दी से इकट्ठा करने में मदद की। उपभोक्ताओं द्वारा ग्रीन भेदभाव उसके बाद ग्रह को बचाने के लिए व्यावसायिक संस्कृति की योजना के एक आवश्यक घटक के रूप में जल्दी से स्थापित किया गया।

4.10.2 ग्रीन उपभोक्ता

हरे रंग के संदेह से पहले अपने स्वयं के लेखों के साथ इस बाजार के उत्साह का जवाब देना शुरू हो गया था। उनमें से कुछ पर्यावरण की समस्या पर ध्यान केन्द्रित करते थे जो खपत में किसी भी वृद्धि से आगे बढ़ेगा, चाहे वृद्धि हरा हो या न हो। दुविधा खपत की है, प्रश्न का उत्तरः हम वर्तमान दर पर माल का उपभोग करना जारी रख सकते हैं, भले ही हम पर्यावरण की दृष्टि से स्वीकार्य उत्पादों को आगे बढ़ाएं और आसन्न पर्यावरणीय संकट को दूर करने की उम्मीद करें। भगोड़ा औद्योगिक विकास ग्रह पर जहर का काम कर रहा है और खपत इसकी चालन शक्ति है।

इस "अच्छे प्रयास की कोशिश कर रहे हैं लेकिन यह काम नहीं करेगा" के पीछे, 1989 के हरे रंग की शॉपींग गाइड लेखों के लिए एक पत्रकारिता का जवाब था, 'संदेहवाद की तरह अधिक महत्वपूर्ण स्कूल', 'हरे रंग की खबरदार ' था। ये जवाबी तर्क लेखों ने पहले साल के हरे रंग की खरीददारी उत्साह की एक दर्पण छवि प्रस्तुत किया। लेकिन इस बार वे उपभोक्ता उत्पादों को सूचीबद्ध कर रहे थे जिन्हें झूठे रूप से ग्रीन होने के रूप में बढ़ावा दिया गया था। एक प्रभावशाली लेख ने उपभोक्ता को हरे रंग की खरीद करने के लिए चार दोष दिए। पहला खतरा 'बिट–कम–ट्रैप' था यह सबसे अच्छा सीएफसी मुफ्त एयरोसोल द्वारा सचित्र है, जिसे पर्यावरण के अनुकूल विपणन किया गया है, लेकिन टिप्पणियाँ जो स्वास्थ्य को खतरा या जार रखने के लिए अन्य गैसों में शामिल हो सकती हैं ओजोन परत को नुकसान पहुँचाए यह अपने पूर्ववर्ती से थोड़ा कम हानिकारक है, अनलेडेड पेट्रोल एक और उदाहरण है। बेंजीन है उत्सर्जित, जो एक ज्ञात कैसरजन है दूसरा खतरा 'ग्रीन छवि गेम' के रूप में पहचाना गया था एक बयान मार्केटिंग एक्जीक्यूटिव्स पर निर्देशित किया गया था जिसका सुझाव था कि "उत्पाद ध्वनि के रूप में अगर वे पर्यावरण के लिए अच्छे हैं, जनसंख्या के एक तिहाई अतिरिक्त बिक्री आकर्षित करता है।"

4.10.3 सामान्य रूप में व्यापार

1991 तक हरियाली उपभोक्ता क्रान्ति खत्म हो रही थी। उस वर्ष के सितंबर में गुड वीकेंड में एक लेख पेश किया गया था, "सिर्फ एक साल में ज्वार के साथ महान हरी जमीन की सूजन फैल गई है।" दुकानों में अभी भी 'हरी' उत्पाद हैं, लेकिन कई ग्राहक केवल सतही ही हैं।

रेखांकन के परिणाम दिखाए गए थे जो स्ट्रिंग–बैग जीवनशैली साबित हुए थे जो कठिन और लघु थे। नवम्बर 1989 और सितम्बर 1990 के बीच, जैसे प्रश्नों पर प्रतिज्ञान, "क्या आप बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक्स के लिए और अधिक भुगतान करेंगे" और "क्या आप पर्यावरण के अनुकूल दोस्ताना उत्पाद खरीद लेंगे", लगभग आधा था ऐसा लगता है कि मंदी के साथ मिलकर हरे रंग के फैशन के विचलन ने व्यापार को वापस सामान्य कर दिया था। यह उस परिद्श्य को दोबारा लिखने

का समया था जिसमें निरंतर हरी उपभोक्ता निर्माताओं के लिए पर्यावरणीय शर्तों को निर्देशित करने जा रहे थे। ये अब विज्ञापनदाताओं को अपनी शिल्प का उपयोग बाजार के खण्ड के लिए करना है। पर्यावरण के मामलों के बारे में बेईमान उपभोक्ता चिंताओं का बेरहमी से फायदा उठातें हैं। कारों के लिए हाल ही में किए गए कुछ विज्ञापन ऐसे अच्छे उदाहरण है कि कुछ कार निर्माता अब पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों के साथ अपने ब्रांड की पहचान करना पसंद करते हैं। रणनीति नई कार खरीदार प्रतिरोध का सामना करना है, जो उपभोक्ता अपराध में जड़ें हो सकती है, पर्यावरण की जिम्मेदारी की अपील के साथ। एक SAAB विज्ञापन में कैप्शन के साथ निकास पाइप की एक तस्वीर है, "फ्रेश एयर का सृजन।" विज्ञापन का पाठ दावा करता है कि "हमारी कारें वास्तव में हवा को साफ करती हैं" यह कहने पर चला जाता है कि परीक्षणों से पता चला है कि सैब के निकास गैसों में वास्तव में लंदन के ट्रैफिक में आसपास के हवा की तुलना में कम हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन ऑक्साइड होता है।

हरी उपभोक्तावाद के लिए जन उत्साह का चरम स्पष्ट रूप से पारित हो गया है। बाजार को अब बहुमत में विभाजित किया जा रहा है जो हरे रंग की विपणन और एक अल्पसंख्यक का विरोध करते हैं जो इस पर प्रतिक्रिया देते हैं। अगर यह मामला है तो पर्यावरण संकट को हल करने के लिए एक विधि के रूप में सफल होने के लिए हरी उपभोक्तावाद के लिए बहुत कम संभावना है। इस योजना ने मूल रूप से जन उपभोक्ता बाजार के लिए माँग की है ताकि पर्यावरण की दृष्टि से ध्वनि लाइनों के साथ निर्माण का पूरा पुनर्गठन हो। उपभोक्ताओं का एक अल्पसंख्यक समूह इस अपेक्षा को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते।

4.11 सारांश

उपभोक्तावाद एक ऐसा आंदोलन है जो उपभोक्ताओं को सूचित करता है और उन्हें व्यापारिक कदाचारों से बचाता है। यह आंदोलन नीच और खतरनाक व्यापारिक वस्तुओं, अनुचित व्यावसायिक व्यवहार और गलत या भ्रामक विज्ञापनों पर केन्द्रित है। व्यापरियों द्वारा गलत तरीके से प्रचलित व्यवहार कृत्रिम कमीयाँ बनाई जाती हैं; कीमतें अनुचित रूप से बढ़ा दी जाती हैं; मिलावट का अभ्यास बेरहमी से किया जाता है; कम–मापन और कम–वनज बड़े पैमान पर होते हैं; पैसा अग्रिम में स्वीकार किया जाता है, एक निर्दिष्ट समय के भीतर सवाल में उत्पाद की डिलीवरी का वादा करता है लेकिन शायद ही कभी सम्मानित और अन्य बिक्री सेवाओं में ज्यादातर एक निष्टाावान वचन हैं, विज्ञापन और लेबल का दुरूपयोग किया जाता है और वे सेक्स, झूठे दावों और आधे सत्य से भरे हुए हैं। व्यापारियों को अपनी नैतिक जिम्मेदारी का एहसास होना चाहिए और उन प्रथाओं में शामिल होने से बचें जो उपभोक्ताओं के लिए हानिकारक हैं। उपभोक्ता हितों की रक्षा के लिए सरकारी विनियम आवश्यक हो जाता है, सरकार ने उचित रूप से कई कानून पारित किए हैं और जारी किए गए नोटिफिकेशन और आदेशों को व्यापारियों को गुस्से में शामिल करने से रोकने के आदेश दिए हैं। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986, नवीनतम है, केन्द्र सरकार द्वारा अधिनियमित किए गए हैं यह कानून जो अनुचित व्यापार व्यवहार, असंतोषजनक सेवाओं और दोषपूर्ण सामान के सम्बन्ध में प्रभावी सुरक्षा प्रदान करता है । अधिनियम जिला, राज्य मध्य

स्तरों के विशेष मंचों को स्थापित करने के लिए विशेष रूप से उपभोक्ता शिकायतों और मुद्दों के निवारण हेतु मार्ग प्रदान करता है। पीड़ित उपभोक्ता के लिए मुआवजे अधिनियम हैं सार्वजनिक उपक्रम जो पिछले विधानों से बाहर रखा गया था, के अतिरिक्त कानूनों को लागू करने के लिए, सरकार ने अन्य मापों को लिया है। बिन्दु कार्यक्रम के एक आइटम के रूप में सुरक्षा एक उपभोक्ता सलाहकार राज्य सरकारों सहित एजेंसियों द्वारा परिषद् की स्थापना की गई है। मीडिया विषय को कवरेज दे रहा है और आकाशवाणी और दूरदर्शन के लोक समासानी संसद और जनवाणी जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। सरकार के अलावा, उपभोक्ता को खुद पर जोर देना चाहिए। उपभोक्तावाद की उत्पत्ति विभिन्न उपभोक्ता आंदोलन में ऊपर आ गया है । देश के विभिन्न हिस्सों और आज के दिन, 237 उपभोक्ता संगठन उपभोक्ता संरक्षण के लिए काम कर रहे हैं। उपभोक्ता अब भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है।

4.12 शब्दावली

उपभोक्ता : उपभोक्ता को किसी ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है जो पुनर्विक्रय या उत्पादन और निर्माण में इस्तेमाल करने के बजाय प्रत्यक्ष उपयोग या स्वामित्व के लिए सामान या सेवाएँ प्राप्त करता है।

उपभोक्तावाद : यह एक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था है जो कि अधिक से अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं की खरीद को प्रोत्साहित करती है।

शोषण : इसका अर्थ किसी अनुचित या क्रूर तरीके से है।

उपभोक्ता संरक्षण : इसमें उपभोक्ता के अधिकार के साथ–साथ उचित व्यापार प्रतियोगिता और बाजार में सच्चाई की जानकारी के प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए डिजाइन किए गए कानून और संगठन शामिल हैं।

ग्रीन उपभोक्तावाद : यह नैतिक उत्पादों में 'सकारात्मक खरीद' के माध्यम से प्रचलित उपभोक्ता सक्रियता का एक प्रकार है, या 'नैतिक बहिष्कार', यह नकारात्मक क्रय और कम्पनी आधारित क्रय है।

4.13 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान भरें

1. .... शब्द में उस व्यक्ति को शामिल नहीं किया गया है जो पुनर्विक्रय के लिए या किसी व्यावसायिक उद्देश्य के लिए सामान या सेवाओं को प्राप्त करता है।
2. ...., उपभोक्ताओं को उन सामानों के बारे में उचित जानकारी दी जानी चाहिए जो वे खरीदना चाहते हैं।
3. उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कानून उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, ...है ।
4. ...., उपभोक्ता व्यवहार और मॉडल के सभी रूपों को संदर्भित करता है जो कि लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए अच्छे हैं।

4.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. "उपभोक्ता" 2. सूचित करने का अधिकार 3. 1986 4. ग्रीन उपभोक्तावाद

4.15 स्वपरख प्रश्न

1. उपभोक्तावाद को परिभाषित करें।
2. उपभोक्तावाद की विभिन्न उपयोगिताएँ समझाएँ।
3. उपभोक्ता का अलग–अलग तरीकों से शोषण कैसे किया जाता है, इसके बारे में जानकारी दें।
4. महत्वपूर्ण उपभोक्ता अधिकारों को सूचीबद्ध करें।
5. उपभोक्ता अधिकार आंदोलन को मजबूत बनाने में सरकारी निकायों, अंतर्राष्ट्रीय निकायों और स्वैच्छिक सहायता संघ प्रदान द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता की व्याख्या करें।
6. उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता समझाओ।
7. उपभोक्ता संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण तरीकों की व्याख्या करें।
8. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की विभिन्न विशेषताओं को संक्षेप में बताएं।
9. ग्रीन उपभोक्तावाद की अवधारणा को स्पष्ट करें।
10. तीन स्तरीय उपभोक्ता विवाद निवारण मंच के कार्यप्रणाली व सरंचना का वर्णन करें?
11. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 उपभोक्ताओं के हितो की रक्षा कैसे करता है?
12. उपभोक्ता सुरक्षा आधुनिक समय में क्यों जरूरी है?
13. विभिन्न दृष्टिकोणों से उपभोक्ता संरक्षण के संबंध में सरकार की भूमिका क्या हो सकती है । स्पष्ट कीजिए।
14. उत्पादकों और विक्रेता उपभोक्ताओं का शोषण कैसे करते हैं? स्पष्ट कीजिए।
15. देश में उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए उपलब्ध मुख्य उपायों का वर्णन कीजिए ।

4.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. B. R. Nayar, “Globalisation and Nationalism”, Sage, New Delhi, 2001
2. D. Nayyar, “Globalisation : What does it Mean for Development”, Konark, New Delhi, 1998
3. P. A. Samuelson et al, “Economics”, Tata McGraw-Hill, New Delhi, 1998

इकाई 5 समष्टि वातावरण एवं वृद्धि अथशास्त्र के आधुनिक सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 समष्टि अर्थशास्त्र वातावरण का स्वभाव
5.3 समष्टि अर्थशास्त्र की विशेषताएं
5.4 समष्टि आर्थिक चर
5.5 स्थैतिक या प्रवैगिक विश्लेषण के रूप में समष्टिभावी अर्थशास्त्र
5.6 समष्टि अर्थशास्त्र में संतुलन की अवधारणा
5.7 कार्य विधिक चिन्ताएं
5.8 समष्टि अर्थशास्त्र के कार्यक्षेत्र
5.8.1 व्यष्टि से समष्टि अर्थशास्त्र रूपान्तरण
5.9 समकालीन समष्टि अर्थशास्त्र
5.9.1 मौद्रिकवादी
5.9.2 नव शास्त्रीय उपागम
5.93 पूर्ति पक्ष अर्थशास्त्र
5.10 आर्थिक वृद्धि के आधुनिक सिद्धान्त
5.11 हेरॉड–डोमर मॉडल
5.12 डोमर मॉडल
5.13 हेरॉड मॉडल
5.14 आर्थिक वृद्धि का केल्डार मॉडल
5.15 वृद्धि का नव शास्त्रीय मॉडल
5.16 सोलो का मॉडल
5.17 सारांश
5.18 शब्दावली
5.19 बोध प्रश्न
5.20 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.21 स्वपरख प्रश्न
5.22 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- समष्टि आर्थिक वातावरण के स्वभाव की व्याख्या कर सकें ।
- समष्टि अर्थशास्त्र के कार्यक्षेत्र का वर्णन कर सकें।
- समकालीन समष्टि आर्थिक जगत की व्याख्या कर सकें ।
- आर्थिक वृद्धि के आधुनिक सिद्धान्त का वर्णन कर सकें।

5.1 प्रस्तावना

परंपरावादी अर्थशास्त्री जैसे जे. बी. क्लार्क, पीगू, एवं वालरस ये विश्वास करते थे कि पूर्ति अपनी मांग स्वयं सृजित करती है; और कहते थे कि यदि (n-1) बाजार संतुलन में हैं, तब n$^{\text{वां}}$ बाजार को भी संतुलन में होना होगा। अतः, यह

संभव नहीं है कि अर्थव्यवस्था में कोई सामान्य अतिरिक्त उत्पादन हो और कोई बेरोजगारी हो। वे इस प्रवृति को भी पूरा करते हैं कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के संतुलन पर होती है और यदि कोई अस्थाई असंतुलन हो, तो वह लोचशील मजदूरी, कीमत एवं व्याज दर के मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा, स्वतः हीं संतुलन स्थान की ओर खिसक जाती है। लेकिन 1930 के महामन्दी के दौरान जो दूनियां ने देखा, इसकी कभी पहले कल्पना भी नहीं की गई थी। बाजार में वस्तुओं की भरमार था, लेकिन वहां व्यवसाय समापन के कारण मांग में कमी थी, उद्योग बंद हो रहे थे, फलतः बेरोजगारी पैदा हुई थी, इसके परिणामस्वरूप, आगे कोई उत्पादन नहीं हो रही थी, कुल अव्यवस्थाओं के कारण आय में कोई वृद्धि नहीं हो रही थी। तभी केन्जीयन क्रान्ति हुई, जिन्होनें 1936 में अपने किताब 'General theory of Employment, Interest and Money' में सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनका सिद्धान्त महामन्दी के अनुभव पर आधारित हैं और उन्होंने सारांशित किया कि बेरोजगारी प्रत्येक अर्थव्यवस्था में पाया जा सकता है तथा बेरोजगारी का मुख्य कारण समग्र मांग में कमी हैं, इसलिए बेरोजगारी को समग्र मांग में वृद्धि करके हीं रोका जा सकता है। समग्र मांग को प्रेरित करने के लिए, केन्ज के अनुसार निवेश मुख्य भूमिका निभा सकती है। केन्ज यह भी कहते हैं कि बड़े पैमाने पर बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए सरकार को हस्तक्षेप करना आवश्यक होता है। समष्टि अर्थव्यवस्था का उपागम सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर आधारित होती हैं और इसे समुच्चय अर्थव्यवस्था भी कहते हैं। इस संदर्भ में कुरीहारा कहते हैं, 'अर्थव्यवस्था के समस्त जटिल अर्न्तसंबंधों से यह अधिक व्यवहारिक लाभ दिखता है जो पूरे अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है और बड़े समग्र कि ओर केन्द्रित करते हैं।'

वृद्धि सिद्धान्त का उदेश्य हैं कि आर्थिक वृद्धि का वर्णन, व्याख्या एवं पूर्वानुमान करना, अर्थात, राष्ट्रीय आय के वृद्धि दर एवं दिये गये समय पर अन्य समष्टि आर्थिक कारकों की व्याख्या करना। वास्तविक जीवन में, वृद्धि को मापना एक कठिन कार्य हैं और इसे सांख्यिकी अभ्यास में बदल जाता है। लेकिन, समष्टि अर्थशास्त्र के अनुसार, स्टॉक एवं प्रवाह के विभिन्न संयोगों एवं उसके नियंत्रण को कुछ हद तक वांछित दिशा तथा वृद्धि की मात्रा को बल देता है। चरों के बीच संबंध जिसके कारण आर्थिक वृद्धि होती हैं और इसे बनाये रखते हैं तथा विभिन्न समष्टी अर्थशास्त्रीयों ने जिन वृद्धि मॉडलों का अध्ययन करेंगें अलग–अलग विश्लेषण किया गया है। ये मॉडल हमें महत्वपूर्ण समष्टि चरों को मझने में सहायक होते हैं जो अर्थव्यवस्था के वृद्धि को निर्धारित करने में क्रान्तिक भूमिका निभाता है, जो वृद्धि को बनाये रखता है, साथ हीं यह बताता है कि स्थाई वृद्धि क्या है एवं वृद्धि की सीमा क्या है। कुछ ऐसे भी मॉडल होतें हैं जो वास्तव में राष्ट्रीय आय में दिखता है, चक्रीय प्रारूप को अनुमान भी करता है।

5.2 समष्टि अर्थशास्त्र वातावरण का स्वभाव

समष्टि अर्थशास्त्र समग्र मात्रा से संबंधित है जैसे कुल निवेश, कुल उपभोग, सामान्य कीमत स्तर, राष्ट्रीय आय, कुल उत्पाद, कुल बचतें, समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति। शापिरो के शब्दों में, ''समष्टि अर्थशास्त्र, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यत्मक तथ्यों का वर्णन करता है।'' गार्डर अक्ले के अनुसार, ''समष्टि अर्थशास्त्र ऐसे चरों से संबंधित हैं जैसे एक अर्थव्यवस्था के उत्पाद की समग्र मात्रा, इसके संसाधनों को जिस मात्रा तक कार्य में लगाया जाय, जो राष्ट्रीय आय के आकार

एवं सामान्य कीमत के अनुसार होते हैं।'' अतः समष्टि अर्थशास्त्र को समग्र अर्थशास्त्र भी कहते हैं। 'मैक्रा' शब्द की उत्पति ग्रीक शब्द के 'माक्रोस' से हुई जिसका अर्थ अधिक या बड़ा होता हैं। इसलिए समष्टि अर्थशास्त्र का संबंध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के अध्ययन से हैं। फेलनर ने भी इसे ''समष्टि अर्थशास्त्र या समग्र अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत इकाईयों के समग्र अध्ययन से है।'' के रूप में रखा है। समष्टि अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम रेगनर फ्रिस्च ने 1933 ई. में पहली बार व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र को दो अलग भाग के रूप में किया था। यद्यपि समष्टि अर्थशास्त्र का उदभव सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दी के मर्कन्टिलिस्ट प्रथम के आर्थिक समस्याओं के कार्य प्रद्धिति उपागम से हुआ है। वे अर्थव्यवस्था के समस्त व्यवस्था से संबंध रखते थे। मालथस, सिस्मोंदी एवं मार्क्स ने भी समस्याओं के उपागम को समष्टि आर्थिक ढंग से किया है। फिशर, वासरस एवं विकसेल ने भी समष्टि अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वालरस ने सामान्य संतुलन विश्लेषण उपागम दिया है, लेकिन मुख्य श्रेय जे. एम. केन्ज को जाता है जिन्होंने समष्टि अर्थशास्त्र को, विश्व के सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को मन्दी से बाहर निकालकर, पूनर्जीवित करने के लिए हल बताया। इसे मन्दी अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है। अक्ले के शब्दों में ''समष्टि अर्थशास्त्र, वृहत आर्थिक घटनाओं की व्याख्या करता है, यह आर्थिक जीवन के समस्त आयामों से संबंधित है।'' यह वन के उस चरित्र या लक्षण का अध्ययन करता है जो उसके वृक्षों से स्वतंत्र है जिनसे बना है। एम. एच. स्पेंसर कहते हैं कि समष्टि अर्थशास्त्र, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या बृहत खण्ड से संबंधित रखता है। समष्टि अर्थशास्त्र में हम बेरोजगारी के स्तर, मुद्रा स्फीति के दर, राष्ट्र के कुल आय एवं अर्थव्यवस्था का कोई बड़े महत्व के बिन्दू जैसे समस्यओं पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। समष्टि अर्थशास्त्र को आय, उत्पाद एवं रोजगार के सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है।

5.3 समष्टी अर्थशास्त्र की विशेषताएं

अर्थशास्त्र, वाणिज्य एवं प्रबंधन के क्षेत्र में अध्ययन के रूप में समष्टिभावी अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण लक्षण निम्नलिखित हैः

1. **समष्टिभावी अर्थशास्त्र के अल्पकालिन लक्षणः** समष्टि भावी अर्थशास्त्र के अल्पकालीन लक्षण को निम्न ढंग से व्यक्त किया जा सकता हैः
   - (i) लघु अवधि में, श्रम की मात्रा एवं गुणवता, पूंजी की मात्रा, वर्तमान तकनीक, प्रतिगयोगिता की सीमा, एकाधिकारी की कोटि, लोगों की रूचि, व्यापक सामाजिक संरंचना, आदि, स्थिर रहते हैं और उनमें कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता है।
   - (ii) यद्यपि रोजगार में वृद्धि उपभोग एवं निवेश दोनो में वृद्धि करके किया जा सकाता है, इसके अलावा व्यष्टिभावी अर्थव्यवस्था में, रोजगार के स्तर को बढ़ाने के लिए उपभोग व्यय में वृद्धि के वजाय निवेश में वृद्धि पर ज्यादा बल दिया जाता है।
   - (iii) अल्पकाल में राष्ट्रीय उत्पाद या समग्र पूर्ति को स्थिर मानते हैं।
2. **पूरे अर्थव्यवस्था का अध्ययनः** समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण, पूरे अर्थव्यवस्था का अध्ययन है। ये मुख्य रूप से राष्ट्रीय आय या राष्ट्रीय

उत्पाद, समग्र उपभोग, समग्र निवेश, प्रभावी मांग, कीमत स्तर, रोजगार स्तर (संसाधनों एंव श्रमशक्ति का) से संबंधित है।

3. **समष्टिभावी अर्थशास्त्र व्यवस्थित एवं विस्तृत भाग का चिन्तन है:** समष्टिभावी अर्थशास्त्र सभी शर्तों या स्थितियों का विस्तृत अध्ययन है। यह स्फीति, अवस्फीति, तेजी या मन्दी, पूर्ण रोजगार या अल्परोजगार आदि सभी स्थितियों का अध्ययन करता है।

4. **समष्टीभावी अर्थषास्त्र पूंजीवादी या नव उद्धारवादी सुधार के लिए अनुकूल हाता है:** समष्टीभावी अर्थशास्त्र का उद्देश्य पूंजीवाद का सुधार करना हैं और इसको नष्ट करना नहीं। यह निश्चयपूर्वक कहता हैं पूंजीवाद प्रायः प्रथम विश्व युद्ध के समय था, आज के परिवर्तित विश्व जगत में इसका कोई स्थान नहीं है। समष्टिभावी अर्थशास्त्र के विभिन्न नियम, पूंजीवाद के विभिन्न लक्षणों पर आधारित है जैसे निजि सम्पति, चयन की स्वतंत्रता, लाभ उद्देश्य एवं कीमत तंत्र आदि।

5. **समष्टीभावी अर्थशास्त्र मौद्रिक अर्थशास्त्र का एक रूप है:** परंपरावादी अर्थशास्त्री अपने विश्लेषण में मौद्रिक कारकों के बजाय वास्तविक पर ज्यादा जोर देते थे, क्योंकि उनके विचार में मुद्रा का मुख्य कार्य केवल विनिमय का माध्यम के रूप में है।

6. **समष्टिभावी अर्थषास्त्र मुख्य रूप से संस्थागत है:** दूसरा समष्टिभावी अर्थशास्त्र का लक्षण है कि ये स्वभाव में संस्थागत, बचत, निवेश, मुद्रा की पूर्ति एवं मनोविज्ञान तथा बचत की प्रवृति को प्रभावित करने वाले संस्थागत कारक हैं।

7. **राज्य हस्तक्षेप का महत्वः** समष्टिभावी अर्थशास्त्र राज्य के हस्तक्षेप पर ज्यादा जोर देता है। निजि निवेश, सार्वजनिक व्यय को वांछित स्तर तक बेहतर करने में कोई कमी होती हैं तब सरकारी व्यय, मांग को उत्प्रेरित करने का मुख्य यंत्र है।

8. **निवेष का निर्णायक भूमिकाः** व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र में, निवेश को मुख्य जिम्मेवारी दी गई हैं। निवेश का अर्थ हैं आय सृजन के लिए वस्तुओं के स्टॉक एवं नये पूंजीगत सम्पति में वृद्धि करना है।

9. **उपभोग की भूमिकाः** उपभोग व्यय एवं उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम का समष्टिभावी अर्थशास्त्र में बहुत महत्व है। रोजगार के निर्धारण में उपभोग की भूमिका निवेश एवं उत्पादन के महत्व से कम नहीं है। अधिक उत्पादन अधिक रोजगार सृजन को प्रदर्शित करता है।

10. **राष्ट्रीय आय की भूमिकाः** समष्टिभावी अर्थशास्त्र राष्ट्रीय आय के अध्ययन को बड़ा महत्व देता है। यह निवेश, रोजगार, बचत, उपभोग आदि के अध्ययन के लिए आवश्यक सांख्यिकीय आंकड़ो के उपलब्धता के साथ अनुकूल महौल तैयार करता है।

5.4 समष्टीभावी आर्थिक चर

'चर' शब्द के अर्थ को समझने के लिए, हमे निम्नलिखित अन्तर को स्पष्ट करना होगाः

- सिद्धान्त में चर एवं उनका स्वभाव।

- वास्तविक एवं सांकेतिक चर।
- चर एवं समग्र।

मुख्य समष्टिभावी आर्थिक चर जिन्हें विभिन्न समष्टिभावी आर्थिक मॉडलों में परिभाषित किया हैं वे उपभोग, निवेश, सरकारी व्यय, करारोपण, व्यापार संतुलन, मुद्रा पूर्ति, व्याज दर, कीमत स्तर, राजगार स्तर, मजदूरी दर एवं अन्य हैं। ये चरे स्टॉक एंव प्रवाह के रूप में पाये जाते हैं। एक स्टॉक चर वह चर हैं जिसका अर्थ केवल किसी समय विन्दू (उदाहरण के लिए, किसी समय विन्दू में एक टंकी में पानी की मात्रा, या किसी एक क्षण में आपके जेब में कितनी मुद्रा है।) पर हो। स्टॉक चर का उदाहरण समष्टिभावी अर्थशास्त्र में, अर्थव्यवस्था में मुद्रा का स्टॉक, या किसी समय बिन्दु पर एक देश की जनसख्यां, या पूंजी का स्टॉक। प्रवाह चर वे चर हैं जो चर में परिवर्तन के दर का प्रदर्शित करता है (उदाहरण के लिए, पानी टंकी में पानी का स्तर इस बात पर निर्भर करेगा कि कितने प्रवाह से अन्दर जा रहा है और कितना प्रवाह से बाहर पानी निकल रहा है। ये दोनों प्रवाह हीं निर्धारित करेगें कि निवल पानी का स्टॉक या टंकी में पानी का स्तर। यदि अन्तर्वाह, बाहिर्वाह से अधिक है, तब स्तर या स्टॉक में वृद्धि होगी। यदि बाहिर्वाह अन्तर्वाह से अधिक है तब स्तर या स्टॉक में कमी होगी—यहीं दो प्रवाह हीं स्टॉक का निर्धारित करेगें। और जल के अन्तर्वाह या बाहिर्वाह को मिनट या घण्टे में मापा जा सकता है)। इसी तरीके से, प्रवाह चरों को समय अवधि में व्यक्त किया जा सकता है। यदि आपकी आय (मुद्रा का प्रवाह जो आप प्रति दिन या प्रति सप्ताह या प्रति माह अर्जित करते हैं) बढ़ती हैं, तब इसे एक दिन या एक माह या एक वर्ष के अन्त (स्टॉक) में निबल बैंक शेष के रूप में निर्धारित किया जा सकता है या कितनी मुद्रा आपके (स्टॉक) जेब में हैं। बाद में इससे भी प्रभावित होगा कि आपने एक दिन में कितना व्यय (प्रवाह) किया है और कितनी मुद्रा आपने अपने जेब में एक दिन (प्रवाह) में रखी है। एक स्टॉक चर बहुत सारे प्रवाह चरों पर निर्भर हो सकते हैं और एक प्रवाह चर एक से अधिक स्टॉक चर को प्रभावित कर सकते हैं। प्रवाह को एक समय अवधि के बिना अर्थपूर्ण तरीके से व्यक्त नहीं कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रति वर्ष आय, प्रति तिमाई बचत आदि। निवेश व्यय एक प्रवाह चर है जबकि पूंजी स्टॉक एक स्टॉक चर है।

चर के सांकेतिक स्तर माप को वर्तमान शब्दों में व्यक्त करते हैं जबकि चर के वास्तविक स्तर माप को सामायोजि करके संबंधित चरों के रूप में व्यक्त करते हैं। उदाहरण, 100 रूपये सभी समय बिन्दुओं पर एक हीं होगें। लेकिन, यदि पिछले साल इस राशि से आप 5 आइस क्रीम खरीद सकते थे लेकिन अभी आप केवल 3 हीं आइसक्रीम खरीद सकते हैं, तब हम कहेगें कि 100 रूपये की वास्तविक मुल्य घट गई है। मुद्रा स्थिति पर विचार करते हैं (इन वर्षों में कीमत में कीमत में वृद्धि इस प्रकार हुई कि कोई व्यक्ति 10000 रूपये प्रति माह पहले अर्जित करता था उस समय वह बेहतर स्थिति में था बजाय कि कोई व्यक्ति आज 15000 रूपये प्रति माह अर्जित करता है क्योंकि व्यक्ति कि वास्तविक आय मुद्रा स्फीति के कारण घट गई है। सांकेतिक रूप में 15000 रूपये प्रति माह, 10000 रूपये प्रति माह से अधिक हैं, लेकिन कुछ वर्ष पहले यह सही हो सकता था, 10000 रूपये से जो सामान पहले लाया जा सकता था आज के दिन में उतना हीं सामान 15000 रूपये में मिलता है)। यह भी सत्य हो सकता है कि चर के

वास्तविक स्तर में इन वर्षों में कोई परिवर्तन हो लेकिन सांकेतिक मूल्य में परिवर्तन हुआ हो। श्रमिकों की सांकेतिक मजदूरी बढ़ी हो परन्तु उनकी वास्तविक मजदूरी मुद्रा स्फीति जैसे अन्य कारकों के कारण घटी या कम हुई हो (एक श्रमिक जो आजकल, 400 रूपये प्रति दिन अर्जित है वह इससे बुरा हाल में है कि पांच वर्ष पहले वह मात्र 200 रूपये प्रति दिन अर्जित करता था–यहां केवल सांकेतिक मजदूरी बढ़ी है और वास्तविक मजदूरी घटी है)। और आगे, श्रमिक को हो सकता है कि मुद्रा भ्रम हुआ होः मजदूर इस भ्रम में अनन्दित है कि जिस अनुपात में उसका मौद्रिक मजदूरी बढ़ी हैं उसी अनुपात में उनकी सांकेतिक मजदूरी में भी वृद्धि हुई है। इसी प्रकार, जिस अनुपात में वास्तविक मजदूरी घटी है उसी अनुपात में मौद्रिक मजदूरी में कमी हुई है। इस प्रकार, श्रमिक कीमत स्तर में परिवर्तन के प्रभाव को नजर अंदाज कर देगा।

अन्तर करने की तीसरी रेखा, चरों के सिद्धान्त एवं व्यवहारिक संकल्पनाओं में अन्तर से संबंधित है। उदाहरण के लिए, एक समष्टीभावी आर्थिक मॉडल, सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) का प्रयोग एक चर के रूप कर सकता है। लेकिन, जो आंकड़े आपको कार्यालयी स्त्रोतों से प्राप्त होती है वह चर का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है। यह अन्तर संकल्पना, विधि एवं स्त्रोतों के त्रुटि के अव्यवहारिक होने के कारण परिलक्षित होती है। जब वास्तव में (आंकड़ों का संकलन), जो चाहते हैं, उसे मापा जाय तो GNP का चर मूल्य वहीं हैं जो सिद्धान्त में है। इस तरह, 'चरों' के लिए उपलब्ध आंकड़े सही निष्पादन नहीं कर सकता या मॉडल में विशेष रूप से विवरण अनुसार संबंध प्रदर्शित करता है–सही चर के स्थान पर हम केवल प्रतिनिधि समग्र का हीं प्रयोग करते है। ये समस्याएं उन्नत सांख्यिकी के प्रयोग द्वारा लम्बाई के साथ एवं जब व्यवहारिक रूपान्तर का सैद्धान्तिक मॉडल के साथ अर्थमितिक तकनीक का प्रयोग करके हल किया जाता है।

5.5 स्थैतिक या प्रवैगिक विश्लेषण के रूप में समष्टिभावी अर्थशास्त्र

एक समष्टिभावी आर्थिक व्यवस्था, संतुलन में तब कही जाती है जब यह समय के साथ स्थिति बनाये रखते हैं। यहां तक जब इसमें कोई विध्न हो (धक्का या झटका के द्वारा), तब इसमें यह प्रवृति हो कि कुछ समय बाद उसी अवस्था में पुनः वापस आ जाएगी। स्थैतिक विश्लेषण में संतुलन स्थिर होती है और इसे तुरंत प्राप्त किया जा सकता है। समय परिवर्तन के साथ सम्मिलित चरों के बीच संबंध में कोई परिवर्तन नहीं होते हैं। स्थैति मॉडल उन शक्तियों का जांच करता है यदि संतुलन की स्थिति को बनाये रखना हो या पुर्नस्थापित करना हो। स्थैतिक मॉडल में, समय का कोई आयाम नहीं होता है। वे परिवर्तन के प्रक्रिया का वर्णन नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार, तुलनात्मक स्थैतिक अवधारणा अर्थात् दो स्थैतिक सतुंलन अवस्थाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना है। दोनों में हीं स्थैतिक विश्लेषण एवं तुलनात्मक विश्लेषण का प्रयोग केन्ज के द्वारा की गई है, संतुलन की बिन्दु का कोई उचित गणना नियम नहीं है कि कम नये स्थिति पर पहुंचती थी और इसे पहुंचने में कितना समय लगेगा। स्थैतिक या तुलनात्मक विश्लेषण को निम्नलिखित चित्रों 5.1a एवं 5.1b के द्वारा वर्णन किया गया हैः

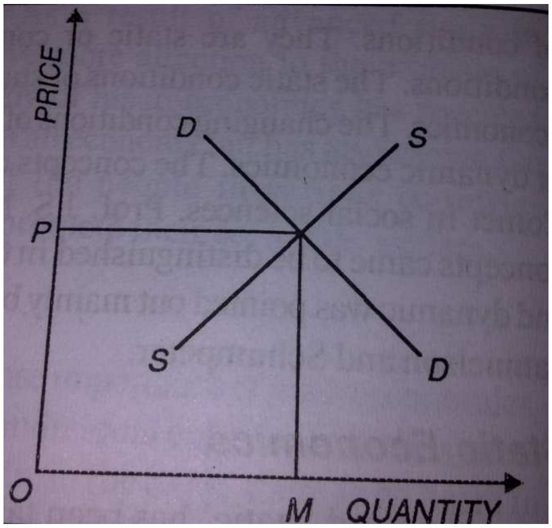

चित्र **5.1a:** स्थैतिक विश्लेषण

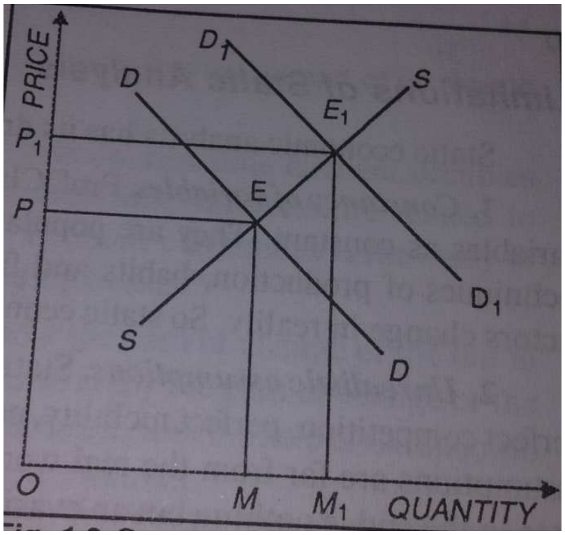

चित्र **5.1b:** तुलनात्मक विश्लेषण

चित्र 5.1a में विन्दू E संतुलन की स्थिति को प्रदर्शित करता है, जहां बाजार की अनुकूल स्थिति में मांग एवं पूर्ति की रेखाएं एक दूसरे को काटती है। चित्र 5.1b में विन्दू E से E_1 चर D में परिवर्तन को प्रदर्शित करता है जो मॉडल को तब तक प्रभावित करेगा जब कि नई संतुलन विन्दू E_1 तक पहुंच न जाए। विन्दू E से E_1, दो तुलनीय संतुलन स्थिति है।

जब अर्थव्यवस्था संतुलन कि स्थिति से गुजरती है तब स्थैतिक मॉडल या तुलनात्मक स्थैतिक मॉडल का अनुप्रयोग किया जा सकता है, लेकिन समस्या पैदा तब होगी जब अर्थव्यवस्था स्थावर या निश्चल की स्थिति में न हो, यह असंतुलन की अवस्था होती है, अर्थात्, व्यवस्था में आसानी से वापस होकर पूरानी स्थिति को प्राप्त नहीं करती हैं लेकिन समय के साथ पूर्ण रूप से अलग पथ को अपना लेगी। तब प्रवैगिक की भूमिका पर ज्यादा जोर दिया जाता है। समष्टीभावी अर्थशास्त्र में प्रवैगिक मॉडल का व्यापक उपयोग है; प्रवैगिक मॉडल में समय तत्व के भूमिका का बहुत महत्व है। इसे अवधि या श्रेणी या अनुक्रम विश्लेष कहते हैं।

यह समय पश्चत्ता को सम्मिलित करता है। उदाहरण के लिए, हम साधारण का आय निर्धारण का विश्लेषण करते हैं और इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि आय का संतुलन इस और इस विन्दू में 1960 ई. में है। यह स्थैतिक एवं तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषणा को सम्मिलित करेगा। प्रवैगिक सिद्धान्त, या मॉडल विभिन्न समय अवधियों में चरों के बीच संबंध से बनता है। प्रवैगिक मॉडल में चरों को डेटेड कहा जाता है। ये मॉडल चरों के बीच उनके संबंध को एक संतुलन या असंतुलन की एक स्थिति से दूसरे संतुलन कि स्थिति तक गतिमान, या परिवर्तन को प्रदर्शित कर सकते हैं। विलोमशः, जब सभी चरों को सिद्धान्तों में सम्मिलित किया जाय तो एक हीं समय अवधि को (या, आमतौर पर, मॉडल की अवधारणा को बिना समय तत्व के), को प्रदर्शित करते हैं, ऐसे संबंधों की व्यवस्था हीं स्थैतिक है।

5.6 समष्टिभावी अर्थशास्त्र में संतुलन की अवधारणा

व्यवस्था में क्रियात्मक बलों को स्थिर करने की पद्धति हीं संतुलन हैं, जो दो बिपरीत बलों के बीच संतुलन को बनाये रखता है, यह विश्राम का अंन्तिम स्थिति होता है जहां चरों में परिवर्तन होने की प्रवृति नही होती तबतक, जबतक कि इस संतुलन कि स्थिति को कोई छेड़े या परेशान या विधन न डाले। यह आवश्यक नहीं है कि वह लाभदायी की अवस्था हीं हो। आर्थिक सतुंलन का आशय ये नहीं कि वह गतिविहिन स्थिति है जिसमें कोई क्रिया नहीं होती है। यहां तक असंतुलन की स्थिति में, दिशा के बोध के लिए अवधारण उपयोगी है जिसमें व्यवस्था में गति हो रहीं है।

हम लोगों ने दो प्रकार के चरों का निरीक्षण कियाः स्टॉक एवं प्रवाह तथा वे एक दूसरे को निर्धारित कर सकते हैं। यहां तक कि प्रवाह संतुलन भी स्टॉक असंतुलन पैदा कर सकता है। पानी टंकी वाले उदाहरण में, यदि बाहिर्वाह से अर्न्तवाह अधिक हो, तब प्रवाह संतुलन (स्थिर दर से अर्न्तवाह एवं बाहिर्वाह) स्टॉक असंतुलन को जन्म देती है (टंकी में पाने के स्तर का बढ़ना या घटना)। यदि हमें अर्न्तवाह एवं बाहिर्वाह के दर का ज्ञान हो तब हम टंकी में पानी के स्तर की दिशा को जान सकते हैं कि ये बढ़ेगी या कम होगी। स्टॉक असंतुलन, प्रवाह संतुतन के साथ संगति हो सकती है।

संतुलन का वर्णन निम्न रूप में किया जा सकता हैः

- ❖ आंशिक संतुलन
- ❖ सामान्य संतुलन
- ❖ दीर्घकालीन या अल्पकालीन संतुलन

संतुलन के संकल्पना को समझने के लिए, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों हीं प्रभाव को समझना आवश्यक है। अल्पकालीन संतुलन तब पाया जाता है जब कुछ तत्वों को स्थिर, जबकि कुछ तत्वों को परिवर्तन किया जाता है। उदाहरण के लिए, मांग एवं पूर्ति विश्लेषण, हम कहते हैं कि मांग के नियम जिसमें संतुलन इंगित करता है कि कीमत के साथ मांगी गई मात्रा में परिवर्तन होता है, 'यदि अन्य बातें समान या स्थिर रहें'। दीर्घकाल में, अन्य चीजें भी परिवर्तित किये जा सकते हैं, ऐसे में संतुलन कि स्थिति अल्पाकालीन संतुलन से स्वभाव में भिन्न

होगी। पुनः, पानी के टंकी का उदाहरण लेते हैं, प्रवाह संतुलन आवश्यक रूप से एक अल्पकालीन संतुलन की अवधारणा है जबकि स्टॉक संतुलन एक दीर्घकालीन संतुलन की संकल्पना है (जब अर्न्तवाह एवं बाहिर्वाह दोनों को एक साथ बन्द किया जाय तो सदा के लिए पानी का स्तर स्थिर हो जायेगी)।

समष्टिभावी आर्थिक संतुलन विश्लेषण में, हम समष्टिभावी समग्र के बीच संतुलन का अध्ययन मॉडल के द्वारा उनके अर्न्तसंबंधो को किस तरह से स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है उसके अनुसार करते हैं। जे. एम. केन्ज ने अल्पकालीन संतुलन विश्लेषण का प्रयोग किया है जिसमें उसने अल्परोजगार संतुलन एवं अति पूर्णरोजगार के अवधारणा का वर्णन किया है। इसलिए उसने संकल्पना दी है कि अर्थव्यवस्था आवश्यक रूप से पूर्ण रोजगार की स्थिति में नहीं हो सकती है जैसा कि पंरपरावादी अर्थशास्त्रीयों ने कहा है। यह स्थिति हो सकती है कि बेरोजगारी हो जिसमें अल्परोजगार संतुलन हो सकती है या अति पूर्णरोजगार कि स्थिति भी हो सकती है जो इंगित करती है कि कुछ प्राकृतिक संसाधनों का अर्थव्यवस्था में अत्याधिक प्रयोग किया जाता हो। इसे अल्पकाल में 'आंशिक संतुलन' के रूप में समझा जा सकता है। वह कहते हैं कि सामान्यतया अर्थव्यवस्था में अल्पकालीन स्थिति होती हैं क्योंकि दीर्घकाल में हम मर सकते हैं और दफनाए जा सकते हैं।

परंम्परावादी अर्थशास्त्र में, वालरस के संतुलन के लिए आवश्यक है कि पूरे फर्म एवं उद्योगों में श्रम कि समीान्त मूल्य उत्पाद या मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी। यह केवल दीर्घकालीन सामान्य संतुलन, पूर्ण रोजगार के साथ की स्थिति में हो सकती है। ''सामान्य संतुलन'' तब स्थापित होती है जब अर्थव्यवस्था के समस्त बाजारों में एक साथ संतुलन कि स्थिति पाई जाती हो।

जब उत्पादकता अपकिरण वास्तविक अर्थव्यवस्था में व्यापक तौर से अवलोकन किया जाता है, वहां वस्तुओं की सूचियों में अनियोजित तरीके से परिवर्तन होगें। यह एक महत्वपूर्ण परिणाम है, चूंकि फर्में वस्तुओं की सूचियों में अनियोजित परिवर्तन का अनुभव करती है, क्योंकि नियोजित व्यय उत्पाद के बराबर नहीं है, अर्थव्यवस्था तब तक संतुलन में नहीं होगी जबतक वे अपने व्यवाहार में इन अनियोजित परिवर्तनों से नहीं बचते हैं। यदि फर्में अपने व्यवहार में परिवर्तन करती हैं, फिर भी अर्थव्यवस्था संतुलन की स्थिति में नहीं हो सकती हैं, क्योंकि यह विश्राम कि स्थिति है जहां कार्य में कोई भी शक्तियां परिवर्तित नहीं होती है। अर्थशास्त्र में, अर्थव्यवस्था के संतुलन में होने का भाव तब होगा जब नियोजित व्यय उत्पाद या आय के बराबर हो जो समष्टीभावी आर्थिक विश्लेषण का केन्द बिन्दु है। (पानी टंकी के उदाहरण में, हम पानी के अन्तर्वाह एवं बाहिर्वाह के दर को इस तरह से समायोजित कर सकते हैं कि पानी वांछित स्तर पर हीं स्थिर रहे अर्थात प्रवाह एवं स्टॉक दोनों हीं संतुलन के स्थिति में होगी)। पूर्ण रोजगार के लिए हमें प्रवाह एवं स्टॉक दोनों का हीं संतुलन में होना आवश्यक है।

एक साधारण उदाहरण को लेते हैंः $Y = C + I + G + NX$

समष्टिभावी अर्थशास्त्र के संबंध में यह एक आधारभूत समीकरण है। यदि निवेश वस्तु सूची में अनियोजित परिवर्तन करता है, तब यह समीकरण एक एकात्मता है। यह एक संतुलन कि स्थिति हो सकती हैं जब ($C + I + G + NX$) एक नियोजित व्यय को संघटित करेगी और जब यह अर्थव्यवस्था में आय या

उत्पाद (Y) के स्तर के बराबर हो। यह व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र के भाव के सदृश्य है कि एक बाजार संतुलन में है जब मांग (नियोजित व्यय), पूर्ति (पूर्ति) के बराबर हो। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, अतः, समष्टिभावी अर्थशास्त्र विश्लेषण के लिए मांग एवं पूर्ति ढांचे का प्रयोग करती है।

असंतुलन को विश्राम के स्थिति में नहीं होने के रूप में परिभाषित किया जाता है, या वह बिन्दु जिस पर संतुलन की स्थिति प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त मॉडल में असंतुलन की स्थिति हो सकती है जब वस्तु सूचियों में अनियोजित परिवर्तन बार–बार होती रहे।

5.7 कार्य विधिक चिन्ताएं

समष्टिभावी अर्थशास्त्र कार्य विधिक प्रकार का अध्ययन से सौदा करता है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि कौन सी विधि या तकनीक का निर्माण या प्रयोग किया जाय, सिद्धान्त किसी भी व्यक्ति द्वारा बनाया जा सकता है परन्तु एक उचित परिकल्पनाएं बनाये जाने चाहिए, सिद्धान्त की मान्यताओं की चर्चा की जानी चाहिए, मान्यताएं संबंद्धित होने चाहिए। वे अवास्तविक या प्रतिबंधित भी नहीं होने चाहिए। इसे सुस्पष्ट रूप से विहित होना चाहिए। मूल्य निर्णय जो सिद्धान्त का महत्वपूर्ण निर्धारक है सुस्पष्ट तरीके से उल्लेखित किया जाना चाहिए।

सकारात्मक अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र के लिए एक उपागम हैं कि व्यवस्था या तंत्र के क्रियात्मक एवं व्यावहार को समझ को बिना निर्णय लिये तलाश किया जाता है। यह बताता है कि क्या विद्यमान है और वह कैसे कार्य करता है।

प्रासमिक अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का एक उपागम है जो आर्थिक व्यवहार के परिणाम का विश्लेषण करता है, वह अच्छा है या बुरा, इसका मूल्यांकन करता है, एवं उसके लिए क्या संभावित कदम होगा, उसका वर्णन करता है। इसे नीति अर्थशास्त्र भी कहते हैं।

विधिः वर्णनात्मक अर्थशास्त्र जो संमकों को संकलित करता ताकि परिघटनाओं एवं तथ्यों का वर्णन करे।

आर्थिक सिद्धान्त एक कथन या कारण तथा प्रभाव, क्रिया एवं प्रतिक्रिया के बारे में संबंधित कथनों का समूच्च है।

मॉडल सिद्धान्त का एक औपचारिक कथन है, सामान्यतया एक गणितीय कथन है जो दो या दो से अधिक चरों के बीच अनुमानित संबंध को प्रदर्शित करता है।

चर अवलोकन से अवलकन तक समय समय मे होने वाले वाले परिवर्तन के माप कहा जा सकता है।

अन्य बातें समान या अन्य सभी बराबर एक यंत्र हैं जिसका प्रयोग दो चरों के बीच संबंधों के विश्लेषण के लिए किया जाता है जब अन्य चरों के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसका उद्देश्य चीजों को सरल करना है। अन्य बातें समान हैं का प्रयोग अमूर्त प्रक्रिया का एक भाग है। आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण में, यह संकल्पना हमारे रूचि वाले संबंधों पर सत्यता के संकेन्द्रण को सरल बनाता है।

मॉडल को शब्द, ग्राफ एवं समीकरण में: दो या दो से अधिक मात्रात्मक चरों के बीच संबंधों को व्यक्त या प्रदर्शित करने का सबसे प्रचलित विधि द्विवीमीय समतल पर ग्राफ के द्वारा प्रदर्शित करना है।

चिन्ता एवं छिपी हुई कठिनाईः पोस्ट हॉक मिथ्या तर्क, प्राप्टर के फलस्वरूप पोस्ट हॉकः का शाब्दिक अर्थ ''इसके बाद (समय के रूप में), क्योंकि इसके फलस्वरूप'' है। किसी कारण के बारे में चिन्तन में प्रायः ये गलतियां होती है। यदि B से पहले A के घटित होने का अर्थ नहीं हैं कि A का B कारण है।

मिथ्या तर्क की संरचनाः यह मानना व विश्वास करना कि किसी एक भाग के सत्य होने से पूरा भाग सत्य हो एक गलत धारणा है।

अनुभवजन्य अर्थशास्त्रः संमक का संकंलन एवं इसका प्रयोग आर्थिक सिद्धांत को सिद्ध या सत्यापित करने के लिए परिकल्पनाओं का जांच की जाती है।

आर्थिक नीतिः: आर्थिक परिणाम को देखने की मानदंड है।

1. **कार्य क्षमता या कौशलः** अर्थशास्त्र में, आवंटन की क्षमता या कौशल का होना। एक क्षमतावान या कौशल अर्थव्यवस्था में उन वस्तुओं को उत्पादन किया जाना चाहिए, जो संभावित कम लागत पर जनसामान्य या लोगों के रूचि या इच्छा अनुसार हो।
2. **साम्य या निष्पक्षताः** अर्थशास्त्र के सभी घटकों या अभिकरणों के साथ निष्पक्ष या समान व्यवहार या लाभ पहुंचाना।
3. **वृद्धिः** राष्ट्रीय उत्पाद या आय में इस प्रकार की उन्नति या वृद्धि हो कि अर्थव्यवस्था में समृद्धि का सृजन एवं वास्तविक आय में उन्नति हो।
4. **स्थायित्व या स्थिरताः** एक स्थिति जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय उत्पाद या आय में वृद्धि स्थिरता के साथ हो और मुद्रा स्फीति में वृद्धि धीमी गति से तथा सभी संसाधनों को पूर्ण रोजगार का अवसर प्राप्त हो।

सामान्य कार्य विधिक मुद्दे प्राकृतिक विज्ञान और अन्य सामाजिक विज्ञान में सामान्यताएं एवं अन्तर करता है, विशेष रूप सेः

- अर्थशास्त्र की परिभाषा।
- इसके कार्य विधिक द्वारा परिभाषित अर्थशास्त्र के कार्यक्षेत्र।
- आर्थिक सिद्धांत के आधारभूत सिद्धांत एवं संक्रियात्मक महत्व।
- अर्थशास्त्र में व्यक्तिनिष्ट बनाम् समष्टि कार्य विधिक।
- किसी तथ्य या घटना के अनुमान या वर्णन करने के लिए प्रयुक्त सरलीकृत मान्यताओं जैसे तर्कसंगत चयन एवं लाभ अधिकतमीकरण की भूमिका।
- सिद्धांत का वर्णनात्मक/धनात्मक, नियमानुसार/प्रमाणिक एवं अनुप्रयोग।
- अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक स्थिति एवं विस्तारित प्रक्षेत्र।
- अर्थमिति के अभ्यास या अनुभव तथा प्रगति से संबंधित नाजुक व क्रान्तिक मुद्दें।
- अनुभवजन्य एवं दर्शन उपागम का संतुलन।
- परीक्षण का अर्थशास्त्र में भूमिका।
- अर्थशास्त्र में गणित एवं गणितीय अर्थशास्त्र की भूमिका।
- सामरिक अर्थशास्त्र में सिद्धांत, अवलोकन, अनुप्रयोग एवं कार्य विधिक में संबंध।

5.8 समष्टि अर्थशास्त्र का कार्यक्षेत्र

अर्थशास्त्र के कार्य व्यवस्था को समझने के लिए समष्टि अर्थशास्त्र को समझना अनिवार्य है। जैसा कि टिंगर्बेगन यह ''समष्टि अर्थशास्त्र की अवधारणा, समझने योग्य एवं पारदर्शी के उन्मूलन कियाओं में सहायक होता है।'' कहते हैं। यह आर्थिक नीतियों के निर्माण में, अर्थव्यवस्था के मौद्रिक स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करने में, आर्थिक वृद्धि को विश्लेषण, व्यापार चक्र के अध्ययन, सामान्य बेरोजगार के प्रभाव का अध्ययन एवं व्यक्तिगत इकाई के व्यवहार को समझने में सहायता प्रदान करता है।

समष्टि अर्थशास्त्र के कार्य क्षेत्र बहुत व्यापाक व विस्तृत हैं लेकिन समष्टि अर्थशास्त्र में सम्मिलित होने वाले महत्वपूर्ण प्रकरणों को निम्न चार्ट के द्वारा प्रदर्शित किया गया है:

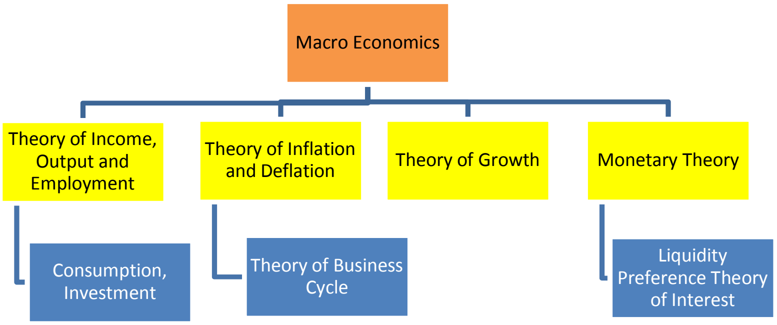

5.8.1 व्यष्टि से समष्टि अर्थशास्त्र रूपान्तरण

एडम स्मिथ, रिकार्ड एवं माल्थस जैसे व्यापारिक, फिज्योक्रैट एवं पंरम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने समुदाय के कुल आय के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रीत किया एवं एक समय अवधि के बाद आर्थिक तंत्र कैसा व्यवहार करता है। विश्व की बड़ी आर्थिक महामन्दी (1929–32) का परिणाम हुआ कि बड़े पैमाने पर बेरोजगारी बढ़ी जो समग्र चिन्ता का कारण बनी और केन्ज के सामान्य सिद्धांत का जन्म हुआ। जे. एम. केन्ज समष्टि अर्थशास्त्र के सबसे प्रमुख वकील हुए।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अल्प विकसित व विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के अनुरोध पर वालरस, विकसेल, फिशर जैस अर्थशास्त्रियों ने समष्टि अर्थशास्त्र के विकास से संबंधित अपने विचारों का योगदान दिया। आधुनिक अर्थशास्त्र के निश्चित शाखाएं जिन्हें समष्टि अर्थशास्त्र के शाखा के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे लोक वित, बैंकिंग, अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार आदि।

1. सन् 1971 के नोवेल पुरूस्कार विजेता साइमन् कुजनेट्स ने 1920 एवं 1930 के बीच राष्ट्रीय आय लेखांकन का ढांचा तैयार किया जो बचत, निवेश एवं उपभोग आदि के निर्धारण के लिए आधार प्रदान किया।
2. केन्ज के सामान्य सिद्धांत ने समष्टी अर्थशास्त्र के लिए महाधिकार पत्र विकसित किया। इस सिद्धांत में उन्होंने दिखाया है कि कैसा पूरे अर्थव्यवस्था संतुलन को स्थापित कर सकती है।

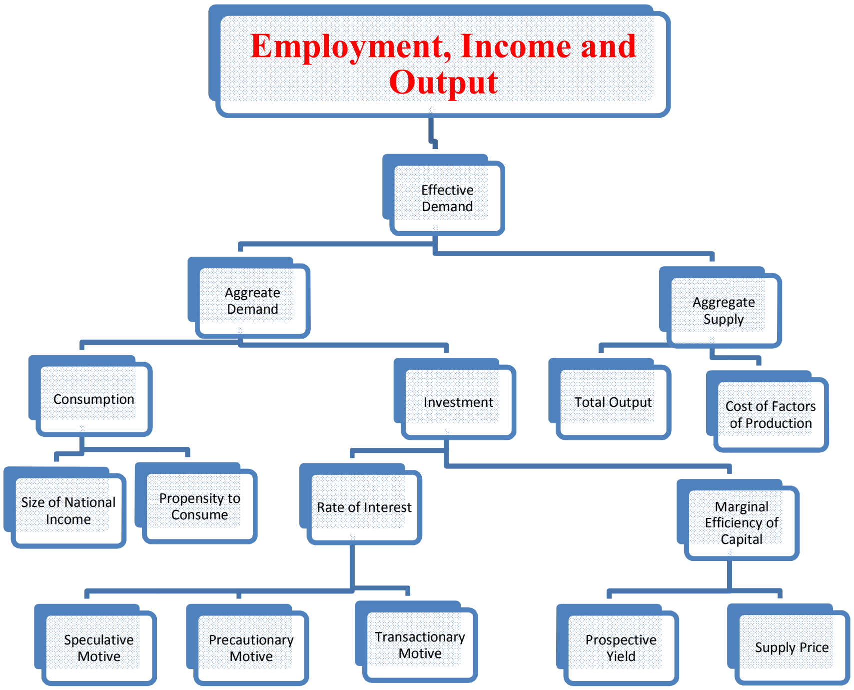

केन्ज का मॉडल या प्रारूप

3. अन्तिम लेकिन छोटा या कम नहीं, समष्टी अर्थशास्त्र में गणितीय तकनीकों का अनुप्रयोग ने वृद्धि एवं उच्चावचन के प्रवैगिक अनुवर्तिक मॉडल को जन्म दिया है।

4. केन्ज के आर्थिक सिद्धांत की तार्किक प्रारम्भिक बिन्दु प्रभावी मांग है जो केन्ज के सामान्य सिद्धान्त का एक उपकरण है। डिलार्ड के अनुसार, यहां प्रभावी शब्द का प्रयोग उस बिन्दु को निर्दिष्ट करने के लिए करते हैं जहां समग्र मांग, समग्र पूर्ति वक्र को काटती हैं। प्रभावी मांग आवश्यक रूप से समग्र मांग पर निर्भर करती है जो एक तरह से उपभोग मांग एवं निवेश मांग (AD = C+I) के रूप में संघटित है। आगे उपभोग, राष्ट्रीय आय के आकार एवं उपभोग की प्रवृति पर निर्भर करती है। दूसरी तरफ निवेश मांग ब्याज की दर एवं पूंजी के सीमान्त उत्पादकता (MEC), पर निर्भर करती है, आगे व्याज की दर तरलता अधिमान एवं MEC भावी उत्पादन या आय तथा पूर्ति कीमत पर निर्भर करती है।

5.9 समकालिन समष्टि अर्थशास्त्र

केन्ज के समष्टि अर्थशास्त्र उपागम के विरूद्ध सन् 1965 ई. तीन महत्वपूर्ण क्रान्ति हुई है जो जेम्स टोबिन के निम्नांकित तरीके से वर्णन की गई है:

1. मिल्टन फ्रीडमैन द्वारा प्रतिपाति मौद्रिकवाद
2. रॉबर्ट, लुकास एवं मुथ द्वारा स्थापित नव मौद्रिकवादी नव शास्त्रीय उपागम
3. पूर्ति पक्ष अर्थशास्त्र

5.9.1 मौद्रिकवाद

केन्जवादी अर्थशास्त्र के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में प्रोफेशर मिल्टन फ्रिडमैन एवं उनसे संबंधित मुद्रा के शिकागों विद्यालय से उभर के आई, उन्होंने

इस बात पर बल दिया कि मुद्रा वह रणनीतिक कारक हैं जो राष्ट्रीय उत्पाद के स्तर एवं आय दोनों को हीं निर्धारित करता है। फ्रिडमैन का सिद्धांत दो कारकों पर निर्भर करते हैं जो निम्नांकित सूचीबद्व हैंः

1. फ्रीडमैंन के अनुसार, उत्पाद या आय और रोजगार दोनों हीं मुद्रा की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है, अतः वह कहते हैं कि उनमें करों एवं सरकारी व्यय के द्वारा परिवर्तन करने या लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।
2. मुद्रा के स्टॉक में परिवर्तन के लिए मुख्य रूप से आर्थिक उच्चावचन उतरदायी होते हैं, अतः यह केन्द्रीय बैंक की जिम्मेवारी है कि मुद्रा के पूर्ति में वृद्धि को नियंत्रित करे एवं इसके दर को स्थिर बनाये रखे।

ये नव–शास्त्रीय या नव–परंपरावादी उपागम का उदय मुद्रा स्फीति के कारण हुआ, तुलनात्मक स्थैतिक संतुलन पर आधारित केन्ज की सिद्धान्त राज्य सरकार के व्यय में वृहत विस्तार एक प्राकृतिक परिणाम है यद्यपि इस सिद्धान्त का बहुत महत्वपूर्ण सम्बन्ध आर. एफ. हेरॉड, डॉमर, हैनसन एवं रॉबिन्सन जैस अर्थशास्त्रियों से है। केन्ज के विश्लेषण में उन लोगों ने प्रवैगिक ढांचे को प्रवीष्ट किया जो अर्थव्यवस्था के दोनों हिं स्थितियों, संतुलन एवं असंतुलन के विश्लेषण में सहायक सिद्ध हुए।

डेविड लेडसमर के अनुसार, मौद्रिकवादियों को चार घटकों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

1. समष्टि अर्थशास्त्र विश्लेषण में 'मात्रात्मक सिद्धांत' उपागम के दो भिन्न अर्थः
   (क) मिल्टन फ्रीडमैन (1956) द्वारा मुद्रा के मांग के सिद्धांत के वर्णन के लिए प्रयोग किया गया था, एवं
   (ख) घोर परंपरावादी विचार कि मुद्रा के मात्रा में उच्चावचन होने का मुख्य कारण लोगों के मौद्रिक या मुद्रा आय में उच्चावचन का होना है।
2. मौद्रिक आय उच्चावचन का विभाजन का विश्लेषण कीमत स्तर एवं वास्तविक आय के बीच में एक प्रत्याशित सवंर्धित फिलीप वक्र जिसकी संरचना दीर्घकालीन महत्वपूर्ण आर्थिक चरों के बीच विपरीत संबंध के निमय को खारिज करता है।

   भुगतान–संतुलन एवं विनिमय दर सिद्धान्त का मौद्रिक उपागम।

   (क) मौद्रिक या राजकोषी, एवं मजदूरी तथा कीमत नियंत्रण के स्थिरीकरण नीति के के विरोध वाले कारक और (ख) दीर्घकालीन मौद्रिक नीति समर्थन ''नियम'' या कम से कम पूर्व निरीक्षित 'लक्ष्य', ब्याज दर को तय करने के बजाय कुछ मौद्रिक व्यवहार के रूप को ठीक करना।

मौद्रिकवादी की समीक्षा

केन्द्रीय बैंकों का मुद्रा के मात्रा को नियंत्रित करने में असफल होने के फलस्वरूप हीं आर्थिक महामन्दी का जन्म हुआ। केन्द्रीय बैंक ने हीं मुद्रा के मात्रा में अधिक कमी की अनुमति देती है। समष्टि आर्थिक समस्याओं के अधिकतर समस्याएं, केन्द्रीय बैंक के मुद्रा की मात्रा के नियंत्रण के प्रयोग के द्वारा समाधान किया जा सकता है।

5.9.2 नव–शास्त्रीय उपागम

मुलभूत रूप से केन्जीयन मॉडल के मुद्रा स्फीति एवं मुद्रा अवस्फीति को सहीं तरीके से सिद्ध कर पाने के कारण नव–परंपरावादीयो का उदय होता है। नव–शास्त्रीय उपागम को सर्वप्रथम प्रोफेसर मुथ ने 1961 में व्यवस्थित किया, उसने अपने लेख में नव–शास्त्रीय अर्थशास्त्र के मूल विचारों का वर्णन कियाः

1. तर्कसंगत प्रत्याशित सिद्धान्त,
2. बाजार समाशोधन के सिद्धान्त

तर्कसंगत प्रत्याशित सिद्धान्त, इस तथ्य पर आधारित है कि लोग विवेकशील होते हैं एवं वे किसी क्रिया का सही व उचित पूर्वानुमान करते हैं एवं उनके अनुसार हीं व्यवहार करते हैं। तर्कसंगत प्रत्याशित सिद्धान्त के वकालत करने वाले मानते हैं कि इस व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती हैं। बाजार समाशोधन सिद्धान्त नव–शास्त्रीय अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण प्रस्तावना है। यह वालरस के सामान्य संतुलन विचार एवं हाल के क्षमतावान बाजार सिद्धान्त का संयोग व संगम है। एक कौशलयुक्त या क्षमतावान बाजार सभी संबंधित सिद्धान्तों को समाहित करता है और इसके बाजार में प्रत्येक वस्तु के बेहतर बिक्री के लिए समाशोधन कीमत को स्थापित करता हैं। अतंतः सभी वस्तुएं अपने संतुलन कीमत पर हीं खरीदी एवं बेची जाती है।

नवशास्त्रीय स्व–सामायोजन तंत्रः आवश्यक एवं प्रर्याप्त शर्तें एवं स्थितियां।

- जब S (बचत) में वृद्धि हो, तब ब्याज दर गिरती है, I (निवेंश) में तब तक बढेगी जब तक किः

  $S = I @ Y_r$ (पूर्ण रोजगार स्तर की आय)

पूर्णतया लोचशील मजदूरी, कीमत एवं ब्याज दर स्व–सामायोजन तंत्र के अंग हैं और यहीं श्रम को सम्मिलित करते हुए, सभी संसाधनों के पूर्ण उपयोग के प्रवृति का निर्धारण करते हैं।

- पूर्णतया लोचशील मजदूरी एक आवश्यक शर्त या स्थिति हो सकती है लेकिन यह पूर्ण रोजगार के लिए यह प्रर्याप्त शर्त नहीं है। ब्याज दर को भी निश्चित रूप से लोचशील होना चाहिए।
- इसे कहने का दूसरा तरीकाः सभी बाजार, साधन बाजार सहित, सभी बाजारों को निश्चित रूप से पूर्ण प्रतियोगी होन चाहिए।

5.9.3 पूर्ति पक्ष अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्री पुनः अपने पुराने परंपरावादी उपागम एवं पूर्ति पक्ष के तरफ रूख करते हैं जिसका आधारस्तंभ 'से' का बाजार नियम है। इसके लिए, उन्होंने केन्ज के मुद्रा स्फीति एवं अवस्फीति को दोषी ठहराया। उनके कहने का अर्थ है कि आवश्यकता से अधिक सरकारी हस्तक्षेप से मुद्रा की पूर्ति में अत्याधिक वृद्धि होती है जिसका परिणाम वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्राओं के पूर्ति में कमी के रूप में परिलक्षित होता है। वे हस्तांतरण भुगतान को भी दोषी मानते हैं उनके विचार में यह अर्थव्यवस्था के लिए एक अनुत्पादक तत्व है। पूर्ति पक्ष अर्थशास्त्री मुख्यरूप से मानते हैं कि मुद्रा का सृजन, वस्तुओं एवं सेवाओं क उत्पादन के अनुसार हो, इसलिए उत्पादन को बढ़ाना ज्यादा आवश्यक है। पूर्ति पक्ष अर्थशास्त्रियों के विचार इस प्रकार प्रतीत होता है कि दोनों केन्ज एवं मौद्रिकीवादी मांग प्रबंधन के एक हीं बिन्दु के दो बदरंग (मलिन) पक्ष को प्रस्तुत करता है। इसके आंकलन में मांग पक्ष,

राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति दोनों के द्वारा एक साथ बेरोजगारी एवं तीव्र मुद्रा स्फीति में वृद्धि लाते हैं। यहां तक संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रसीडेंट रेगन ने 1980 के दशक में पूर्ति पक्ष के अर्थशास्त्रियों के विचार का समर्थन किया जो मानते थे कि करों को कम किया जाना चाहिए क्योंकि यह अधिक उत्पादन के प्रोत्साहन को कम करता है और अन्त में उत्पादन हतोत्साहित होता है।

पूर्ति पक्ष अर्थशास्त्र की समीक्षा

- केन्ज के समष्टि आर्थिक नीतियां मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी को नियंत्रित नहीं कर पाई ऐसा प्रतीत होता है।
- नीतियां वस्तुओं एवं सेवाओं के पूर्ति के प्रेरक तत्व को निरादार करके, आर्थिक वृद्धि के दर को कम कर देती है।
- पूर्ति पक्ष के वकालत करने वाले कहते हैं कि नीतियां इस प्रकार हो कि वे उत्पादक को प्रोत्साहित करें।
- ंपूर्ति पक्षधर मौद्रिकवादिता को कीमत स्थिरता के लिए समर्थन करते हैं।

केन्जीयन बनाम् पूर्ति–पक्षकर अर्थशास्त्र

- **मांग प्रबंधन नीतियांः** राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियां समग्र व्यय को परिवर्तन करना चाहता है–ये कन्जीयन अर्थशास्त्र के मुख्य नुस्खे हैं।
- **पूर्ति–पक्षकर नीतियांः** राजकोषीय, मौद्रिक एवं अन्य नीतियां तथा नियम में परिवर्तन को मुख्य लक्ष्य वास्तविक आय में भी वृद्धि करना है– ये पूर्ति पक्षकर अर्थशास्त्रियों के नुस्खे हैं।

पूर्ति पक्ष अर्थशास्त्र के सामान्य ज्ञान

- यदि वास्तविक आय में वृद्धि हो रहा है, तब परिभाषा के अनुसार आर्थिक वृद्धि भी पाई जायेगी।
- वास्तविक आय में वृद्धि, अर्थव्यवस्था में लोगों के द्वारा काम के मांग के वजह से बेरोजगारी को कम करती है।
- अन्त में, मुद्रा के मात्रा के समीकरण प्रदर्शित करते हैं कि में वृद्धि मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करती है।

पूर्ति पक्षकर नीतियों के दो वर्ग

1. वास्तविक आय को बढ़ाने वाली कर नीति की रूपरेखा।
2. कौशल नीति की रूपरेखा स्वतंत्र उद्यम एवं निजी सम्पति अधिकार को बढ़ाने तथा सरकारी कौशल को और सुधार व बढ़ाना।

5.10 आर्थिक वृद्धि के आधुनिक सिद्धान्त

समष्टि आर्थिक नीतियों का एक सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य है कि अर्थव्यवस्था में तीब्र आर्थिक वृद्धि को प्राप्त करना। जी.एम. मीयर ने आर्थिक वृद्धि को परिभाषित किया है, ''वे प्रक्रियाएं जिससे एक देश के प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में एक लम्बें समय अवधि में वृद्धि हो।'' इसलिए आर्थिक वृद्धि को देश में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के मात्रा में वृद्धि के रूप में मापा जाता है। सामान्यतया आर्थिक वृद्धि के चार प्रमूख स्त्रोत हैं जिन्हें निम्नलिखित रूप से दिया गया हैः

❖ मानव संसाधन (श्रम की पूर्ति, प्रेरित करना, शिक्षा इत्यादि)।

- ❖ प्राकृतिक संसाधन (भूमि, ईंधन, खनिज, वातावरण गुणवता इत्यादि)।
- ❖ पूंजी निर्माण (सड़क, मशीन, कारखाना इत्यादि)।
- ❖ तकनीकी ज्ञान (इंजिनियरिंग, विज्ञान, प्रबंधन, उद्यमशीलता आदि)।

आर्थिक वृद्धि से संबंधित विभिन्न मॉडलों का निर्माण अर्थशास्त्रियों के द्वारा किया गया है। इन मॉडलों का विश्लेषण नीचे किया गया है:

5.11 हेरॉड–डोमर मॉडल

आर.एफ. हेरॉड एवं ई. डोमर ने आर्थिक जॉर्नल के अपने लेख में आर्थिक वृद्धि के मॉडल को प्रकाशित करते हुए वृद्धि मॉडल को बनाने वाले पहले अर्थशास्त्री बने। दोनों हीं अर्थव्यवस्था के सुचारू रूप से क्रियान्वन के लिए आय में वृद्धि की दर की आवश्यकता के खोज में बहुत रूचि रखते थे। उनका कार्य मुख्य रूप से निवेश के मुख्य भूमिका एवं आर्थिक वृद्धि के प्रक्रिया में इसके दोहरे चरित्र का अध्ययन करना था। प्रथम, निवेश आय सृजित करती हैं और दूसरा पूंजी स्टॉक में वृद्धि करते हुए अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षमता का सृजना करती है। प्रथम भूमिका मांग प्रभाव कहलाता है एवं बाद की भूमिका पूर्ति प्रभाव कहलाता है। हेरॉड एवं डोमर के अनुसार जैसे–जैसे लम्बे समय के लिए निवेश होते जायेगें वास्तविक उत्पाद एवं आय लगातार विस्तार होती रहेगी।

मॉडल की मान्यताएं

1. राज्य का हस्तक्षेप संभव नहीं।
2. प्रारम्भ में आय पूर्ण रोजगार के स्तर पर रहती है।
3. बचत एवं निवेश वर्तमान या प्रचलित वर्ष की आय से संबंधित है।
4. बचत की सीमान्त प्रवृति स्थिर रहती है।
5. ब्याज दर में कोई परिवर्तन नहीं होती है।
6. यह एक बन्द अर्थव्यवस्था है जिसमें कोई विदेशी व्यापार नहीं होता है।
7. सामान्य कीमत सदैव स्थिर परिवर्तित नहीं होती है अर्थात स्थिर रहती है।
8. स्थिर एवं चलन पूंजी एक साथ ढेर लगाई जाती है।
9. केवल एक प्रकार के उत्पाद हीं पाये जाते हैं।
10. पूंजी स्टॉक के अनुपात को स्थिर माना जाता है।
11. पूंजीगत वस्तुओं में किसी प्रकार का मूल्य ह्रास या घिसावट नहीं होता है।
12. निवेश एवं उत्पादकता क्षमता के सृजन में कोई समय पश्चत्ता या सामायोजन नहीं होता है।

5.12 डोमर मॉडल

डोमर ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न के इर्द गिर्द मॉडल बनाया, ''आय में वृद्धि के बराबर उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होने के लिए किस दर से निवेश को वृद्धि होना चाहिए।'' उसने अपने प्रश्न का उतर स्वयं एक समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति के बीच निवेश के द्वारा गढ़ाई या जालसाजी संबंध स्थापित करके किया है।

समग्र पूर्ति एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि

अर्थव्यवस्था में डोमर मॉडल के पूर्ति पक्ष का वर्णन निम्नलिखित संबंध के माध्यम से किया जा सकता है:

$$Ys = \sigma K$$

इसका अर्थ है कि आय की पूर्ति (Ys), उत्पादन क्षमता (σ) एवं वास्तविक पूंजी के मात्रा (K) पर निर्भर करती है। यदि पूंजी की उत्पादन क्षमता में कोई वृद्धि होती है तो वह अर्थव्यवस्था के पूर्ति में वृद्धि होती है।

समग्र मांग

निवेश का मांग पक्ष के प्रभाव को निम्नांकित तरीके से व्याख्या किया जा सकता है:

$$\bar{Y}d = I/a.\ I$$

यह समीकरण स्पष्ट करता है कि गुणक के प्रक्रिया द्वारा जिसका मूल्य समीकरण 1/a में के रूप दिया गया है, मांग प्रभाव का स्तर (Yd), निवेश के स्तर से सीधे जुड़ा हुआ है और दूसरी ओर प्रभावी मांग का स्तर बचत की सीमान्त प्रवृति से विपरीत रूप से संबंधित है। दीर्घकालीन संतुलन की शर्तों को पूरा करने के लिए Yd एवं Ys को बराबर होना चाहिए।

$$Yd = Ys$$
$$I/a = \sigma K$$
$$I = a\,\sigma K$$

यह संबंध सूचित करता है कि स्थाई वृद्धि संभव है जब निवेश, बचत आय अनुपात के उत्पाद, पूंजी स्टॉक एवं पूंजी उत्पादकता के बराबर हो। कुरीहारा के शब्दों में, ''उत्पादन क्षमता में वृद्धि, वास्तविक पूंजी में वृद्धि से संभव होता है जिसका सूम्मेलन निवेश में वृद्धि के कारण प्रभावी मांग में भी वृद्धि बराबर होना चाहिए, यदि एक वृद्धिगत अर्थव्यवस्था को पूंजी स्टॉक के साथ विस्तार को बनाये रखना है।''

असंतुलन का विश्लेषण

यह दो शर्तों के अधीनश्त से अभिभावी होती है:

1. $\Delta I/I$ or $\Delta Y/Y > a\sigma$
2. $\Delta I/I$ or $\Delta Y/Y < a\sigma$

प्रथम स्थिति में दीर्घकालीन मुद्रा स्फीतिक अन्तराल प्रकट होगी क्योंकि आय के उच्च वृद्धि दर के कारण लोगों की क्रय शक्ति में वृद्धि होगी जो मुद्रा स्फीति को जन्म देगी। दूसरी स्थिति में निवेश, उत्पादन क्षमता के पीछे–पीछे चलती है जिसका परिणाम अधिक उत्पादन के रूप में होगा एवं मांग में कमी होने के कारण निरपेक्ष गतिहीनता की स्थिति पैदा होगी।

5.13 हेरॉड मॉडल

यह मॉडल निम्नांकित तीन प्रमुख मुद्दों पर केन्द्रीत है जिसका वर्णन किया जा रहा है:

1. एक अर्थव्यवस्था के लिए स्थिर पूंजी उत्पाद/आय अनुपात एवं स्थिर बचत आय अनुपात के साथ किस प्रकार से स्थाई वृद्धि को प्राप्त किया जा सकता है?
2. किस प्रकार स्थाई वृद्धि दर को सदैव पूरा किया जा सकता है?

3. अर्थव्यवस्था के वृद्धि दर को किस प्रकार प्राकृतिक कारक किसी सीमा तक नियंत्रित रखेती है।

इन मुद्दों की विवेचना हेतु उसने वृद्धि के निम्नलिखित तीन अवधारणाओं प्रस्तुत किया हैः

1. वास्तविक वृद्धि दर (G)
2. वांछित वृद्धि दर (Gw)
3. प्राकृतिक वृद्धि दर (Gn)

अर्थव्यवस्था में वास्तविक वृद्धि दर, वास्तविक बचत एवं निवेश के द्वारा निर्धारित होती है। इसे कुल आय के सापेक्ष, आय में परिवर्तन अर्थात् $\Delta Y/Y = G$ के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हेराड के अनुसार, स्थाई वृद्धि दर को प्राप्त करने के लिए निश्चित रूप से पूर्व पोस्ट बचत को पूर्व पोस्ट निवेश के बराबर होना चाहिए। उस स्थिति में वास्तविक वृद्धि दर बचत आय अनुपात एवं पूंजी आय/उत्पाद अनुपात के द्वारा निर्धारित होता है, जिसे स्थिर माना गया है अर्थात् $GC = S$। जहां, G वास्तविक वृद्धि दर एंव C पूंजी आय/उत्पाद अनुपात तथा S बचत आय अनुपात को प्रदर्शित करते हैं। वांछित वृद्धि दर को पूर्ण क्षमता वृद्धि दर के नाम से भी जानते हैं। यह पूंजी स्टॉक के पूर्ण उपयोगिता के लिए आवश्यक आय वृद्धि की दर है जिसे Gw से प्रदर्शित या संकेतिक किया जाता है। Gw का निर्धारण पूंजी आय अनुपात के द्वारा निर्धारित किया जाता है और इसके संबंध को निम्न रूप से प्रदर्शित किया जा सकता हैः

$$GwCr = S$$

जहां, Cr पूंजी आय अनुपात एवं S बचत आय अनुपात है।

हेरॉड के अनुसार, स्थाई वृद्धि दर को प्राप्त करने के लिए, वास्तविक वृद्धि दर एवं वांछित वृद्धि दर को निश्चित रूप से बराबर होना चाहिए अर्थात् $G = Gw = C = Cr$।

वृद्धि की अस्थिरता या अस्थाई

हेरॉड ने उन शर्तों का अध्ययन किया है जिसमें Gw एवं G बराबर नहीं होते हैं अर्थात्,

1. If $G > Gw$
   $C < Cr$
2. If $G < Gw$
   $C > Cr$

यदि G से Gw अधिक है, तब आय की वृद्धि दर, उत्पाद की वृद्धि दर से अधिक होती है और पूर्ति की मात्रा से मांग की मात्रा अधिक होगी जो मुद्रा स्फीति को जन्म देगी। दूसरी तरफ, यदि $G < Gw$, आय की वृद्धि दर, उत्पाद की वृद्धि दर से कम होगी जिसके कारण मांग में अभाव की स्थिति होगी औ अर्थव्यवस्था अवस्फीति की स्थिति में पहुंच जायेगी।

Gn प्राकृतिक वृद्धि दर है और वो प्राकृतिक कारक जैसे श्रम, पूंजीगत औंजार, तकनीकी ज्ञान आदि, के द्वारा प्रभावित होती है। ये कारक हीं उत्पाद के विस्तार के सीमा को नियंत्रित करती है। यह निर्धारित सीमा पूर्ण रोजगार की

अन्तिम सीमा कहलाती है। इसलिए प्राकृतिक वृद्धि दर अधिकतम वृद्धि दर है जिसे एक अर्थव्यवस्था अपने उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनो का प्रयोग करके प्राप्त कर सकती है। इस संबंध को Gn Cr = या नहीं ≠S के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। इसकी चर्चा चित्र 5.2a एवं चित्र 5.2b के द्वारा विस्तार से नीचे की गई हैः

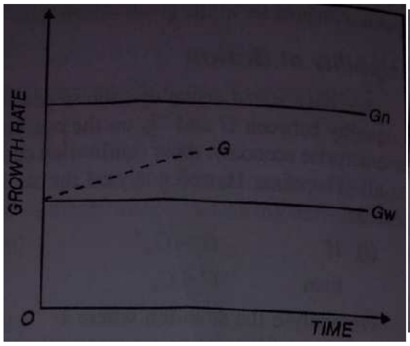

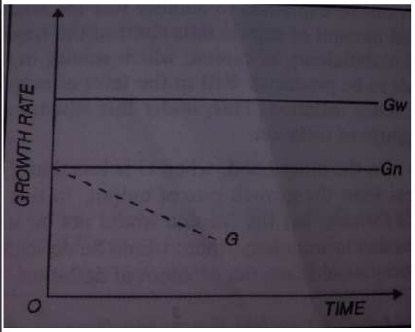

चित्र 5.2a चित्र 5.2b

डॉमर के मॉडल एवं हेरॉड के मॉडल की तुलना

डॉमर के मॉडल	हेरॉड के मॉडल
$\sigma = \Delta Y/I$ or $\Delta I/I = a\sigma$	$Gc = S$ $G = \Delta Y/Y$
$a = \Delta S/\Delta Y$ or $\Delta I/I = \Delta Y/I \times \Delta S/\Delta Y$ $\Delta I/I = \Delta S/I$ $\Delta I = \Delta S$	$\Delta Y/Y \times I/\Delta Y = S/Y$ $C = 1/\Delta Y$ $= 1/Y = S/Y$ $s = S/Y$ $I = S$

हेरॉड–डॉमर मॉडल की अलोचना

इस मॉडल की आलोचना निम्नलिखित आधार पर की जा सकती हैः

1. पूंजीगत उत्पाद अनुपात एवं बचत की प्रवृति को स्थिर माना गया है जबकि वास्तविक जगत में ऐसा नहीं होता है और दीर्घकाल में इनमें परितवर्तन होता है।
2. व्याज दर स्थिर नहीं हो सकते हैं और इनमें परिवर्तन निवेश में भी परिवर्तन लाते हैं।
3. हेरॉड–डॉमर मॉडल सरकार या राज्य का निवेश में भूमिका को अस्वीकार करता है।
4. यह उद्यमशीलता की क्षमता के प्रभाव को अस्वीकार करता है जोकि अर्थव्यवस्था में वांछित वृद्धि दर को निर्धारित करता है।

5.14 केल्डोर का आर्थिक वृद्धि मॉडल

केल्डोर ने अपने लेख, 'ए मॉडल ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ' का प्रकाशन आर्थिक जर्नल में किया, उनका प्रयास था कि पूंजी संचय के लिए तकनीकी प्रगति का उत्पतिग्रम्य से संबंधित ढांचा प्रदान करें।

केल्डोर मॉडल की मान्यताएं

1. यह इस मान्यता पर आधारित है कि तकनीकि प्रगति, पूंजी संचय के दर पर निर्भर करती है।
2. वह अपने मॉडल को केन्ज के पूर्ण रोजगार के मान्यताओं पर आधारित है जिसके अन्तर्गत अल्प काल में समग्र पूर्ति अपरिवर्तित या बेलोचदार होती है।
3. आय के अन्तर्गत लाभ एवं मजदूरी को सम्मिलित किया जाता है।
4. लाभ का अंश निवेश का फलन है।
5. इस मॉडल में मौद्रिक नीतियां निष्क्रिय रहती है।
6. तकनीक का चयन की मान्यता पूंजी संचय के परिवर्तन के साथ होती है।

यह मॉडल दो सोपानों के अधीन कार्य करता है

1. स्थिर कार्यशील जनसंख्या।
2. जनसंख्या में विस्तार।

स्थिर कार्यशील जनसंख्या

केल्डोर ने अपने मॉडक के क्रियान्वन के लिए तीन फलनों का प्रस्ताव रखा है:

1. बचत फलन
2. निवेश फलन
3. तकनीकि प्रगति फलन

1. बचत फलन:

$$St = aPt + \beta (Yt-Pt) \quad 1 > a > \beta \geq 0 \qquad (i)$$

समीकरण (i) में St बचत को धोतित करता है जिसके प्रचलित या वर्तमान समय t में लाभ Pt एवं मजदूरी $(Yt-Pt)$ इसके अंश या भाग हैं। a एवं β का मान 0 से 1 के बीच है।

2. निवेश फलन:

$$K_t = aY_{t-1} + \beta (Pt - 1/K_t -1) Y_{t-1} \qquad (ii)$$

$$I_t = K_{t-1} - K_t$$

$$A > 0, \beta < 0$$

समीकरण (ii) बताता है कि t समय पर पूंजी (K_t), a, पिछले वर्ष के उत्पाद Y_{t-1} का गुणांक है और गुणांक β लाभ की दर $(Pt - 1/K_t -1)$ एवं पिछले वर्ष के उत्पाद Y_{t-1} का गुणनफल है।

3. तकनीकि प्रगति:

$$Y_{t+1} - Y_t = a'' + \beta'' I_t / K_t \qquad (iii)$$

$a>0$ एवं $1 > \beta''>0$

यह प्रदर्शित करता है कि आय की वृद्धि दर, वृद्धिगत निवल निवेश दर है जिसे निवेश एवं पूंजी के स्टॉक के अनुपात (I_t/K_t) के रूप में व्यक्त किया जाता है।

t समय अवधि में, प्रति व्यक्ति पूंजी β” का गुणा का तकनीकि प्रगति के गुणांक का जोड़ अर्थात् a.

ये फलन प्रकल्पित होते हैं जो मॉडल के अनुसार दिये होते हैं, अब हम दिये गये एक समय बिन्दु, $t = 1$ से आगे बढ़ते हैं और एवं मौजूदा पूंजी का स्टॉक Y_0 एव K_0 के पूर्व आय एवं पूर्व पूंजी के उत्तराधिकार के रूप में स्थापित है। Y_t दिया गया आय है जो श्रम शक्ति एवं पूंजी स्टॉक K_t के द्वारा उत्पादित की गई है।

तकनीकि प्रगति समीकरण (iii) प्रदर्शित करता है कि t अवधि के आगे आय की वृद्धि एवं पूंजी तथा अर्थव्यवस्था स्थाई वृद्धि दर के अल्प अवधि के संतुलन से दीर्घ अवधि संतुलन की ओर प्रतिस्थापित हो जाती है। लाभ का स्तर S_t एवं I_t में समानता लाती है। स्थाई संतुलन के पथ को प्राप्त करने के लिए आवश्यक शर्त को निश्चित रूप से पूरा किया जाना चाहिए, अर्थात

$$a - \beta > \beta' Y_t/K_t \qquad \text{(iv)}$$

इसका अर्थ है कि बचत की वृद्धि दर, निवेश की वृद्धि दर से निश्चित रूप से अधिक होना चाहिए। स्थाई संतुलन के पथ को प्राप्त करने के लिए प्रर्याप्त शर्त को निश्चित रूप से पूरा किया जाना चाहिए, जो इस प्रकार हैः

$$P_t \leq Y_t - w \qquad \text{(v)}$$

$$P_t/Y_t \geq m \qquad \text{(vi)}$$

समीकरण (v) हमें बताता है कि लाभ, आय से मजदूरी घटाने पर अधिक नहीं होना चाहिए इसे एक प्रतिबंध के रूप में दिया गया है एवं समीकरण (vi) हमें बताता है कि लाभ की दर, लाभ के न्यूनतम मार्जिन से अधिक होना चाहिए। स्थाई संतुलन के पाथ को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था को निश्चित रूप से गतिवाद को पूरा करना चाहिए एवं इसे निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त किया जा सकता हैः

$$G = a''/1-\beta'' \qquad \text{(vii)}$$

वृद्धि दर तकनीकि प्रगति फलन से निर्धारित किया जा सकता है जैसा कि समीकरण (vii) में दिया गया है। इसका वर्णन निम्नांकित चित्र 5.3 से किया जा सकता हैः

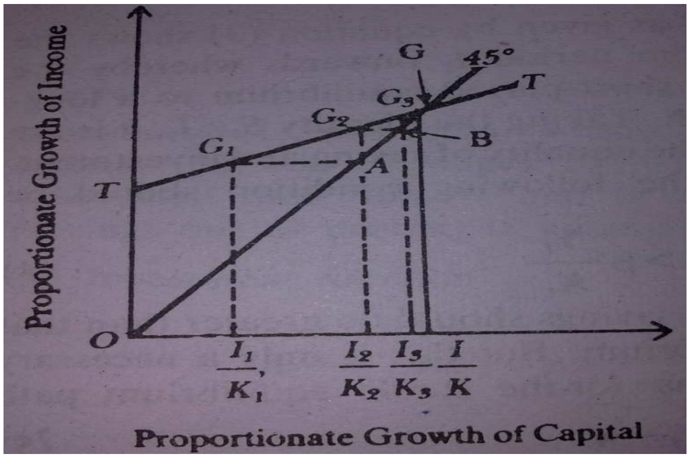

चित्र 5.3 तकनीकि प्रगति फलन एवं वृद्धि दर

G तकनीकि प्रगति फलन का परिणाम है। TT' एवं 45^0 डिग्री की रेखा स्थाई वृद्धि को प्रदर्शित करता है, जहां आय की वृद्धि दर, पूंजी के वृद्धि दर के समानुपातिक रूप से, एक दूसरे के बराबर है। चित्र 5.3 में, $G_1 > I_1/K_1$ अर्थात् उत्पादन में वृद्धि पूंजी में वृद्धि दर से अधिक है, अब विन्दू $I_2/K_2 = G_1$ A पर करने के लिए निवेश में वृद्धि होगी लेकिन यह उत्पादन में वृद्धि अवधि t_2 पर G_2 एवं अनुवर्तिक रूप से उत्पादन में वृद्धि में तब तक होगी जब तक कि G तक पहुंच न जाय।

जनसंख्या में विस्तार

अब केल्डार ने जनसंख्या में वृद्धि एवं आय में वृद्धि को विचार करते हैं। केल्डार ने अपने मॉडल को माल्थस के जनसंख्या वृद्धि विचार को लिया है, वह मानते हैः

(क) **किसी उपजाउपन या प्रजनन क्षमता दर हेतुः** जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि दर एक न्यूनतम निश्चित स्तर पर से अधिक नहीं हो सकती है। फिर भी आय में वृद्धि होती रहती है।

(ख) जनसंख्य की वृद्धि दर मध्यम रूप से बढ़ेगी जो अधिकतम स्तर तक पहुंचने से पहले के कुछ अन्तराल के बाद आय के वृद्धि दर के फलन के रूप में होगी।

उपरोक्त मान्यता के साथ केल्डोर का जनसंख्या वृद्धि से आय वृद्धि के संबंध को निम्नांकित तरीके से वर्णन किया जा सकता हैः

$I_t = g_t \; (g_t \geq \lambda)$

$I_t = \lambda \; (g_t \geq \lambda)$

यहां, $I_t =$ जनसंख्या की वृद्धि दर, $g_t =$ आय की प्रतिशत वृद्धि दर, $\lambda =$ जनसंख्या वृद्धि की अधिकतम दर। g_t में λ से अधिक होगी तब I_t भी λ से अधिक होगी, आय एवं जनसंख्या दोनों में वृद्धि तब तक होगी, जब तक जनसंख्या वृद्धि दर λ तक नहीं पहुंच जाती है। इनके बीच संबंध को निम्नलिखित चित्र 5.4 के द्वार निम्नांकित तरीके से किया गया हैः

चित्र 5.4 में OY अक्ष जनसंख्या के अनुपातिक वृद्धि दर की माप है एवं OX अक्ष आय के अनुपातिक वृद्धि दर के माप को प्रदर्शित करता है। चित्र 5.4 में OY, आय की वृद्धि पाथ को प्रदर्शित करता है एवं P λ वक्र जनसंख्या की वृद्धि दर को चित्रित करता है। यह आय के वृद्धि दर, जनसंख्या के वृद्धि दर को भी तब तक बढ़ायेगी जब तक कि λ रेखा क्षेतिज न हो जाय। यहां, चित्र 5.4 में, E विन्दू पर आय की वृद्धि दर जनसंख्या के वृद्धि दर से अधिक के स्थिति को प्रदर्शित करती है। यद्यपि, दीर्घकाल में जनसंख्या अपने अधिकतम दर से वृद्धि होती है जिसे चित्र 5.4 में बिन्दी वाले रेखाओं से प्रदर्शित किया गया है।

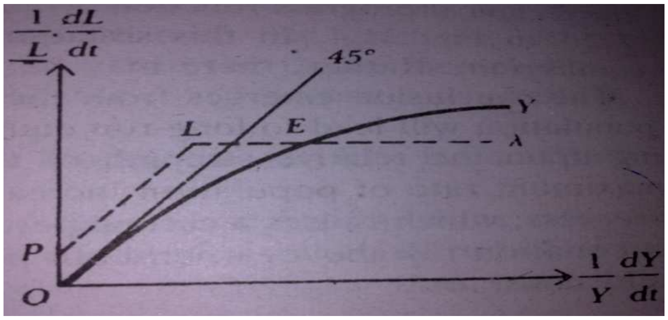

चित्र 5.4 तकनीकि प्रगमि एवं कार्यशील जनसंख्या का विस्तार

दीर्घकाल में जनसंख्या वृद्धि, दीर्घकालीन आय वृद्धि में संतुलन को प्राप्त करेंगी जो निम्नलिखित दो कारकों पर निर्भर करती हैः

1. जनसंख्या की अधिकतम वृद्धि दर
2. तकनीकि प्रगति की दर।

मॉडल की आलोचना

1. यह मॉडल अर्थव्यवस्था के वृद्धि दर का वर्णन करने में असफल रहा है।
2. आर्थिक व्यवस्था या तंत्र के स्थायित्व या अस्थायित्व के वर्णन करने या किसी कारण को भी उद्धृत नहीं किया है।

5.15 नवशास्त्रीय वृद्धि मॉडल

नव–शास्त्रीय मॉडल, स्थिर पूंजीगत उत्पाद के आधाभूत मान्यताओं को चुनौती दिया और वे वृद्धि दर के विभिन्न दिशाओं से जुड़े चाकू के धार वाली संतुलन से बचाने का का प्रयास किया। जे. ई. मीड, आर. एम. सोला, स्वॉन, टॉबिन को नव–शास्त्रीय अर्थशास्त्री कहते हैं। यहां सोला एवं मीड के आधारभूत मॉडल की जायेगी।

मीड का मॉडल

जे. ई. मीड ने नव परंपरावादी के आर्थिक वृद्धि मॉडल को अपने किताब 'ए नियो–कलासिकल थ्योरी ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ' में प्रस्तुत किया, वह कहते हैं कि श्रम शक्ति की आपूर्ति या जनसंख्या वृद्धि की दर, अर्थव्यवस्था के वृद्धि के प्रमुख कारक हैं। इसलिए उन्होंने जनसंख्या वृद्धि एवं आय वृद्धि के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास किया है। वह अर्थव्यवस्थ के वृद्धि के लिए तीन कारणों का जिक्र किया है जो निम्नलिखित हैः

1. पूंजी के स्टॉक में बढ़ोतरी होती है क्योंकि वर्तमान आय के बाहर से शुद्ध बचत की जाती है।
2. कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि होती है।
3. तकनीकि उन्नति या प्रगति के कारण, दिये गय संसाधानो के प्रयोग के द्वारा अधिक से अधिक आय/उत्पादन की जाती है।

मीड़ के मॉडल की मान्यताएं

1. कोई अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार नहीं सम्पादित होती है।
2. उत्पादन की स्थिर पैमाने के प्रतिफल नियम लागू होती है।
3. कोई राज्य या सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता है।
4. अर्थव्यवस्था में केवल दो वस्तुएं हीं उत्पाादित की जाती हैं अर्थात उपभोक्ता वस्तुएं एवं पूंजीगत वस्तुएं।

5. पूंजी के रूप में केवल मशीन यंत्र का हीं प्रयोग किया जाता है।
6. प्रत्येक वर्ष मशीन के कुछ विशेष भाग में मूल्य ह्रास होता है।
7. श्रम का पूंजी के साथ अनुपात परिवर्तित होती है।

वृद्धि की शर्तें

मीड के अनुसार, एक अर्थव्यवस्था में उत्पादित किये जाने वाले आय व उत्पाद, उत्पादन के चार साधनों या कारकों अर्थात् भूमि, श्रम, प्राकृतिक संसाधन एवं तकनीकि उन्नति पर निर्भर करता है। इन्हें उत्पादन फलन के रूप में निम्नलिखित तरीके से प्रदर्शित किया जा सकता हैः

$$Q = f(K, L, N, T)$$

जहां, Q उत्पाद को प्रदर्शित करता है, K मशीन के स्टॉक को प्रदर्शित करता है, L श्रम एवं N प्राकृतिक संसाधनों को प्रदर्शित करता है तथा तकनीक को प्रदर्शित करता है। पूंजी के स्टॉक उत्पाद में वृद्धि करने के लिए पूंजी के संचय को आवश्यक रूप से वृद्धि करना पड़ेगा। पूंजी स्टॉक में वृद्धि को ΔK से प्रदर्शित किया जाता है और आगे यह आय या उत्पाद में वृद्धि $V\Delta K$ के अनुसार होगी, जहां V मशीन की सीमान्त शुद्ध भौतिक उत्पाद है। पूनः में वृद्धि हो सकती है क्योंकि में भी वृद्धि हो रही है। यदि जनसंख्या में वृद्धि को ΔL से इंगित किया जाता है तब कुल आय में वृद्धि $W \Delta K$ है जहां W श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद को प्रदर्शित करता है। तकनीकि परिवर्तन को $\Delta \bar{Y}$ से सूचित किया जाता है। यदि भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन सदैव स्थिर रहे तब आय या उत्पाद के वृद्धि का योग है जिसे समीकरण के द्वारा नीचे प्रदर्शित किया गया हैः

$$\Delta Q = V \Delta K + W \Delta L + \Delta \bar{Y}$$

उत्पाद वृद्धि के अनुपातिक दर को निम्न रूप से प्रदर्शित किया गया हैः

$$\Delta Q/Q = VK/Q \,.\, \Delta K/K + WL/Q \,.\, \Delta L/L + \Delta \bar{Y}/Q$$

जहां, $\Delta Q/Q$ आय की वार्षिक वृद्धि दर है, $\Delta K/K$ मशीन के स्टॉक के वार्षिक अनुपातिक वृद्धि दर को प्रदर्शित करते हैं, $\Delta L/L$ श्रम के वार्षिक अनुपातिक वृद्धि दर को प्रदर्शित करते हैं एवं $\Delta \bar{Y}/Q$ आय की वृद्धि दर और उसके बाद तकनीकि प्रगति के द्वारा प्रदर्शित करते हैं। VK/Q निवल लाभ के अंश को प्रदर्शित करते हैं जबकि WL/Q मजदूरी के अंश को आदि को प्रदर्शित करते है।

आर्थिक वृद्धि दर में विचरण या विभिन्नता

प्रोफेसर मीड ने उन कारकों का अध्ययन किया जो आर्थिक वृद्धि में वृद्धि या कमी लाते हैं। वो कहते हैं कि प्रति व्यक्ति आय (y-1) में परिवर्तन, V, S और Y में परिवर्तन पर निर्भर करता है, जहां V पूंजी की सीमान्त उत्पादकता एवं S बचत को प्रदर्शित करता है। यदि l और r सदैव अपरिवर्तित रहते हैं लेकिन S में वृद्धि, प्रति व्यक्ति पूंजी (Y-1) में वृद्धि होगी और V में कमी होगी। इस प्रकार VS में कमी होगी। यदि पूंजी का प्रतिस्थापन किसी अन्य उत्पादन के साधन से किया जाय तब इस कमी में कुछ धीमापन आ सकता है। यदि तकनीक में सुधार की जा सकती है या r में परिवर्तन होती है, तब पूंजी की MPP भी बढ़ेगी एवं प्रतिव्यक्ति

वास्तविक वृद्धि दर को प्रभावित करेगी और जिसके फलस्वरूप बचत के मात्रा में भी वृद्धि होगी। इसलिए हम इससे मान सकते हैं कि उच्च तकनीकी प्रगति (r),, पूंजी (V), की उच्च उत्पादकता, भारी निवेश तंत्र के कारण प्रारंभिक बचत निम्न होगी, लेकिन आय जैसे–जैसे बढ़ेगी बचत भी बढ़ेगी। आय के वृद्धि दर में तकनीकि प्रगति के प्रभाव को के द्वारा निम्नांकित चित्र 5.5 से प्रदर्शित किया गया है।

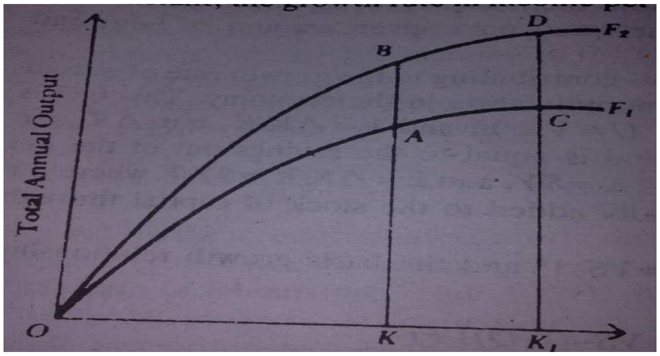

चित्र 5.5 कुल राष्ट्रीय आय में तकनीकि प्रगति के प्रभाव

OX अक्ष में कुल स्टॉक के मशीनरी के माप को प्रदर्शित की गई है और OY अक्ष में कुल/समग्र वार्षिक उत्पाद के माप को प्रदर्शित किया गया है। OF_1 वक्र दिये गये मशीनरी एवं तकनीकि प्रगति के स्थिति के सहायता से प्रथम वर्ष उत्पाद की मात्रा है। प्रथम वर्ष में OA पूंजी की मात्रा एवं AB उत्पाद को प्रदर्शित करते हैं। अब पूंजी की मात्रा बढ़कर OH हो जाती है, तब GH उत्पादित की जाने वाली उत्पाद की नई स्तर होगी, इस बिन्दु पर वक्र G की ढाल B से कम होगी, MP की मशीनरी कम होगी। अब दूसरे वर्ष में जब तकनीकि प्रगति सम्पादित होती है, नई वक्र OF_2 प्राप्त होगी जो वक्र OF_1 के उपर होगी, यह बतलाती है कि उच्च तकनीकि स्तर के साथ उच्च उत्पाद उत्पादित की जा सकती है।

स्थाई वृद्धि के शर्तें

प्रोफेसर मीड ने स्थाई वृद्धि के शर्तों का जिक्र किया है वे निम्नलिखित हैः

1. विभिन्न उत्पादन के साधनों के बीच सभी प्रतिस्थापन की लोच इकाई के बराबर होती है।
2. सभी साधनों के लिए तकनीकि प्रगति में तटस्थता पाई जाती है और राष्ट्रीय आय के सभी लाभ, मजदूरी तथा लगान से बचत का अनुपात स्थिर है। इसलिए कुल बचत, लाभ (u), मजदूरी (w),एवं लगान (Z), से की गई बचतों का योग होगी।

$$S = Suv + SwQ+SgZ$$

प्रोफेसर मीड कहते हैं कि उत्पाद की वृद्धि दर आधारभूत समीकरण में दिया गया हैः

$$Q = uK+Yl+r$$

जहां, u, Y, l एवं r स्थिर है। इसलिए Q, K पर आश्रित है। K पूंजी स्टॉक के वृद्धि दर है जिसे से निर्धारित या प्राप्त किया जा सकता है, बचत द्वारा वार्षिक पूंजी स्टॉक के योग के मात्रा को प्रदर्शित करता है। इसलिए अर्थव्यवस्था में संतुलन की स्थिति अंततः पूंजी के संचय के दर पर निर्भर करती है।

मीड के द्वारा वर्णित यह पूंजी स्टॉक का विलक्षण एवं क्रान्तिक वृद्धि दर है जो आय की वृद्वि दर एवं पूंजी स्टॉक के वृद्वि दर में एकरूपता व समानता स्थापित करता है। इन दो स्थितियों में से अर्थात् पूंजी स्टॉक की उच्च या निम्न, की क्रान्तिक स्टॉक उत्पाद एवं पूंजी स्टॉक में समानता या एकरूपता नहीं लाएगी। पूंजी स्टॉक की क्रान्तिक वृद्धि दर Yl+r/l-u, के बराबर होती है, तब आय की वृद्धि दर भी Ql+r/1-u के बराबर होगी तब संतुलन शर्तें पूरी होती है।

$$Q = uk + Yl + r$$

$$a = ua + Yl + r$$

$$a - ua = Yl + r$$

$$a (1-u) = Yl + r$$

$$a = Yl + r/1-u$$

इसे निम्नलिखित चित्र 5.6 से प्रदर्शित किया गया हैः

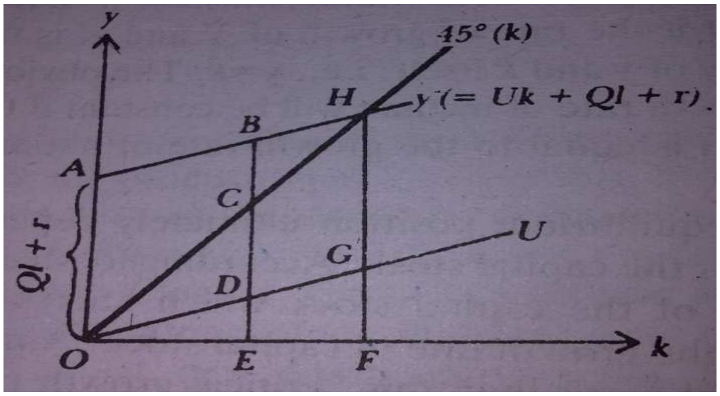

चित्र 5.6ः आदर्श स्थाई आर्थिक वृद्धि

पूंजी स्टॉक की वृद्धि दर के माप को OX अक्ष से एवं राष्ट्रीय आय के वृद्धि दर के माप को OY अक्ष से प्रदर्शित किया गया है। AY वक्र कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि को बतलाता है औ 45 डिग्री रेखा पूंजी स्टॉक (K), को प्रदर्शित करता है, रेखा u पूंजी के MPP माप है। प्रारंभ में, पूंजी की वृद्धि दर OE एवं राष्ट्रीय आय को BE, जैसा कि प्रदर्शित किया गया है, लेकिन BE, BD + DE के बराबर है। BE = Ql + r एवं DE पूंजी का MPP है। यहां BE, पूंजी स्टॉक CE से अधिक है, इसलिए K वक्र, F बिन्दु तक बढ़ेगी, जहां ये AQ वक्र को विन्दू H पर प्रतिच्छेदित करेगी। यह स्थाई वृद्धि की शर्त तथा अवस्था है जहां पूंजी की वृद्धि दर, आय की वृद्धि दर के बराबर होती है।

5.16 सोलो का मॉडल

सोलो ने अपने मॉडल को अपने किताब ''A Contribution to the Theory of Economic Growth'' में दिया है। उन्होंने श्रम एवं पूंजी को उत्पाद/आय उत्पादन में एक दूसरे का प्रतिस्थापन आगत माना है।

सोला मॉडल की मान्यताएं

1. स्थिर पैमाने की प्रतिफल पाई जाती है।
2. उत्पादन के साधनों अर्थात् श्रम एवं पूंजी को उनके सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है।
3. कीमत एवं मजदूरी दोनों हीं परिवर्तनशील या लोचशील है।
4. बचत अनुपात स्थिर है।
5. श्रम एवं पूंजी एक दूसरे के प्रतिस्थापन है।
6. तटस्थ तकनीकि प्रगति की स्थिति पाई जाती है।
7. केवल एक वस्तु का उत्पादन किया जाता है।

सोलो कहते हैं कि परिवर्तन तकनीकि गुणांक के अधीनश्त पूंजी–श्रम के अनुपात में स्वयं संतुलन स्थापित करने की प्रवृति पाई जाती है। सोलो के विश्लेषण में संतुलन पाथ के ओर अभिमुख होती है। सोलो अर्थव्यवस्था में एक वस्तु को लेते हैं और यहीं पूरी उत्पाद/आय को प्रदर्शित करती है। इसका वार्षिक उत्पादन की दर $Y(t)$, वास्तविक आय को प्रदर्शित करता है, कुछ भाग को बचत की जाती है एवं कुछ को निवेश किया जाता है। बचत की दर को $sY(t)$ से प्रदर्शित किया जाता है। $K(t)$ पूंजी का स्टॉक है, इसलिए निवल निवेश, पूंजी स्टॉक में वृद्धि की दर है अर्थात् dK/dt या K ।

सोलो मॉडल के प्रमूख एकात्मता निम्नलिखित हैः

$$K^* = sY \qquad \text{(i)}$$

पूंजी स्टॉक आय का फलन है,

$$Y = F(K^*,L) \qquad \text{(ii)}$$

श्रम एवं पूंजी के द्वारा उत्पादित आय या उत्पाद स्थिर पैमाने के प्रतिफल को प्रदर्शित करता है। समीकरण को (ii) एक में रखने पर हम एक व्यूत्पन्न कर सकते हैं

$$K^* = SF\ (K.L) \qquad \text{(iii)}$$

यहां L श्रम शक्ति है, श्रम शक्ति में वृद्धि n के सापेक्ष होती है, चूंकि जनसंख्या बर्हिजात रूप से बढ़ती है, इसलिए हम समीकरण (iv) की व्यूत्पति कर सकते हैंः

$$L(t) = L_{oe}{}^{nt} \qquad \text{(iv)}$$

Lt श्रम की पूर्ति है, n सोलो के द्वारा प्राकृतिक वृद्धि दर है। समीकरण (iv) को श्रम की आपूर्ति कहा जा सकता हैं। सीमान्त उत्पाद, श्रम की मजदूरी दर का निर्धारण कर सकती है। समीकरण का दाहिना पक्ष अवधि 0 से t तक, श्रम के मिश्रित वृद्धि दर को प्रदर्शित करता है।

अब समीकरण (iv) को (iii) में रखने पर,

$$K = SF\ (K\ .\ L_{oe}{}^{nt}\ ) \qquad \text{(v)}$$

समीकरण (v), पूंजी संचय का काल/समय पथ है जिसे निश्चित रूप से पूर्ण रोजगार के स्तर का पालन किया जाना चाहिए।

संभावित वृद्धि के प्रतिमान

प्रोफेसर सोलो ने स्थाई वृद्धि के स्थिति के साथ किसी भी श्रम शक्ति के वृद्धि दर के लिए आगम पूंजीगत संचय के संगत पाथ को ज्ञात करने लिए एक आधारभूत समीकरण का परिचय दिया है जिसका वर्णन निम्नलिखित समीकरण (vi) में की गई हैः

$$r = SF(r, 1) - nr \qquad \text{(vi)}$$

समीकरण (vi) में n श्रम शक्ति के परिवर्तन का सापेक्षिक, r पूंजी का श्रम के लिए अनुपात है। SF(r,1) प्रति श्रमिक आगम के फलन को प्रति श्रमिक पूंजी के फलन के रूप में प्रदर्शित करता है। यह बताता है कि पूंजी श्रम अनुपात में परिवर्तन की दर (r), पूंजी SF(r,1) एवं श्रम (nr) में वृद्धि का अन्तर है, इसे निम्नांकित ग्राफ के चित्र 5.7 से व्यक्त किया गया हैः

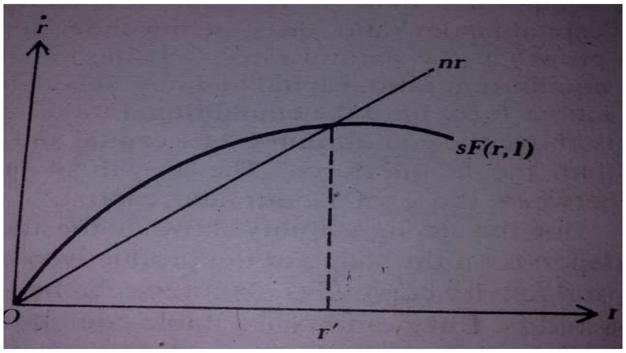

चित्र 5.7 सोलो द्वारा प्रद्धत आधारभूत समीकरण पर आधारित संभावित संवृद्धि प्रतिमान

चित्र 5.7 में मूल बिन्दु से खींची गई किरण, (nr) का फलन है। दूसरी वक्र फलन SF (r, 1), पूंजी के ह्रासमान सीमान्त उत्पादकता को प्रदर्शित करता है। प्रतिच्छेदन विन्दू nr = SF(r,1) और r = 0 तब, r = r′ प्रदर्शित करते हैं। स्थिर पूंजी श्रम विन्दू पर एवं पूंजी स्टॉक में निश्चित रूप से उस दर से विस्तार होगा जिस दर से श्रम शक्ति अर्थात् n। वे स्थिर पैमाने के प्रतिफल को मानते हैं एवं वास्तविक आगम में भी समान सापेक्षिक दर n, से वृद्धि होगी तथा प्रति श्रमिक आगम r′ पर स्थिर होगी। यहां संतुलित/बराबर वृद्धि संतुलन होगी। यदि r, r′ के दायीं ओर अवस्थित हो तब भिन्न दिशाओं वाली होगी एवं संतुलित वृद्धि दर को विकसित करने का प्रयास करेगी जो स्थाई संतुलन r का पालन करती है।

5.17 सारांश

समष्टि अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के क्रियाओं का सौदा या व्याख्या करता है। यह नीति निर्माण के लिए उपयोगी यंत्र है विशेषकर अर्थव्यवस्था में वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए, मुद्रा स्फीति से लड़ाई, भुगतान शेष को ठीक करने के लिए भी। समष्टी अर्थशास्त्र के अपने यंत्र एवं उपकरण होते हैं जैसे

मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति। अर्थव्यवस्था में वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न अर्थशास्त्रियों के द्वारा बहुत सारे वृद्धि मॉडलों को प्रस्तुत किया गया है। हेरॉड–डोमर मॉडल, वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए निवेश की भूमिका महत्वपूर्ण बताया है। सोलो एवं मीड ने भी अपने वृद्धि मॉडल दिये जो वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए नितीयों के प्रारूप तैयार करने में सहायक होता है। लेकिन वे परिवर्तनशील पूंजीगत उत्पाद अनुपात माना है जबकि, हेरॉड–डोमर स्थिर पूंजी उत्पाद अनुपात का सुझाव देते हैं।

5.18 शब्दावली

समष्टि अर्थशास्त्रः यह समग्र मात्रा से संबंधित है जैसे कुल निवेश, कुल उपभोग, सामान्य कीमत स्तर, राष्ट्रीय आय, कुल उत्पाद, कुल बचतें, समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति।

5.19 बोध प्रश्न

(A) खाली स्थानों को भरें

1. वालरस ने ————————————— संतुलन विशेषण की अवधारणा को प्रस्तुत किया।
2. पूंजी —————————— चर है।
3. हेरॉड–डोमर ने समष्टि आर्थशास्त्र में ———————————— घटक को प्रस्तुत किया है।
4. केन्जीयन उपागम को ———————————— स्थैतिक उपागम कहते हैं।
5. समष्टी अर्थशास्त्र को ———————————— अर्थशास्त्र भी कहते हैं।

(B) सत्य या असत्य

1. आर्थिक वृद्धि के चार प्रमुख स्त्रोत है।
2. हेरॉड–डोमर मॉडल पूंजी कारक को आर्थिक वृद्धि का क्रान्तिक कारक होने की बात करता है।
3. वास्तविक वृद्धि दर को पूर्ण कौशल/क्षमता वृद्धि दर कहते हैं।
4. सोलो ने पूंजी के लिए श्रम की प्रतिस्थापना को प्रस्तुत किया है।
5. हेरॉड–डोमर के मॉडल को चाकू धार संतुलन के नाम से भी जानते हैं।

5.20 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. सामान्य, 2. स्टॉक, 3. प्रवैगिक, 4. तुलनात्मक, 5. समग्रहित

(B) 1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5. सत्य

5.21 स्वपरख प्रश्न

1. वांछित वृद्धि की दर से वास्तविक वृद्धि दर एवं प्राकृतिक वृद्धि दर से वांछित वृद्धि दर के प्रस्थान के परिणामों का पुनरीक्षण करें।
2. सोलो के मॉडल का आलोचनात्मक परीक्षण करें।
3. मीड के नव–परंपरावादी वृद्धि मॉडल में भूमिका या योगदान की चर्चा करें।

5.22 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Ackley Gardner Macroeconomics
2. Glahe F R Macroeconomics

*****

इकाई 6 समग्र मांग एवं पूर्ति

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति मॉडल की अवधारणा
6.3 प्रभावी मांग एवं प्रभावी पूर्ति की अवधारणा
6.4 समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति मॉडल की समीक्षा
6.5 समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक
6.6 व्यापार चक्र विश्लेषण एवं समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति मॉडल का अनुप्रयोग
6.7 समग्र मांग/समग्र पूर्ति मॉडल का उपयोग
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 बोध प्रश्न
6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.12 स्वपरख प्रश्न
6.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति मॉडल की अवधारणा की व्याख्या कर सकें।
- समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति मॉडल के घटकों की व्याख्या कर सकें।
- समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कर सकें।
- समग्र मांग/समग्र पूर्ति मॉडल का व्यापार चक्र में अनुप्रयोगों का वर्णन कर सकें।
- स्फीति एवं अवस्फीति से लड़ाई में समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति की भूमिका की व्याख्या कर सकें।

6.1 प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमेरिका में बेरोजगारी की दर 1929 के 3.2% से बंढ़कर 1933 में 25.2% हो गई। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में लगभग 30% की गिरावट आई। इंगलैण्ड में भी इसी तरह का परिदृश्य देखा गया और बेरोजगारी की दर लगभग 11% की थी। अधिकांश लैटिन अमेरिकी देश तथा यूरोपीय देश महान मंदी से प्रभावित हुए, जिसने अर्थशास्त्रियों के बीच विवाद को जन्म दिया कि क्या परंपरावादी दृष्टिकोण मंदी के दौर की अर्थव्यवस्थाओं की समस्या का समाधान करने में सक्षम है। जिसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक था। केन्ज ने भी इस विवाद में हिस्सा लिया और उन्होंने मंदी की समस्या का समाधान करने के लिए अपना सिद्धान्त दिया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बेरोजगारी और अन्य परिणामों का कारण प्रभावी मांग की कमी है। प्रथम स्पष्ट दृष्टिकोण केन्ज के द्वारा प्रस्तुत किया गया, जिन्होंने समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति को प्रभावी मांग का महत्वपूर्ण घटक बताया। इस कारण उन्हें समष्टि अर्थशास्त्र का निर्धारक कहा

जाता है और उनका मॉडल, समग्र पूर्ति तथा समग्र मांग सिद्धान्त के नाम से जाना जाती है।

6.2 समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति मॉडल की अवधारणा

समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति का सिद्धान्त वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (स्फीति समायोजित सकल घरेलू उत्पाद) तथा मुद्रा स्फीति के स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या करने में बहुत उपयोगी है। मूलतः सिद्धान्त व्यष्टि अर्थशास्त्र की मांग और पूर्ति की अवधारणा पर आधारित है परन्तु इस मॉडल में समग्रता की विचार महत्वपूर्ण है। इसलिए जोर समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति वक्रों पर अधिक दिया गया है जोकि बाजार के सभी व्यक्तिगत मांग और पूर्ति वक्रों का योग हैं। यहां ह एक से अधिक प्राचल का प्रयोग करेंगें तथा दो सन्तुलन की स्थितियों की तुलना, तुलनात्मक स्थैतिक दृष्टिकोण से करेंगें।

समग्र पूर्ति/समग्र मांग मॉडल का परिचय

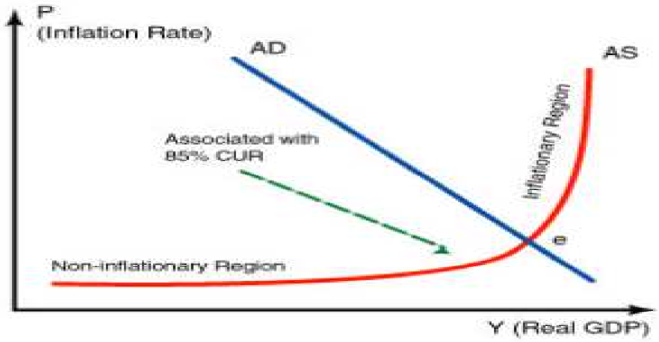

चित्र 6.1: समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति मॉडल

समग्र मांग और समग्र पूर्ति सिद्धान्त वस्तुतः अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन से सम्बन्धित है। इस मॉडल में व्यष्टि अर्थशास्त्र के आधार का प्रयोग किया गया है और यह मूलतः अर्थव्यवस्था के व्यष्टि संघटकों का समग्र है। चित्र 6.1 में X अक्ष पर वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद तथा Y अक्ष पर स्फीति दर को प्रदर्शित किया गया है। परोक्ष रूप से मूल्य अवस्फीतिक का प्रयोग मौद्रिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद से वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करने के लिए किया गया है। वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद का निर्धारण समग्र मांग और समग्र पर्ति के अन्तःक्रिया से सन्तुलन स्तर 'e' पर होता है। इस संतुलन स्तर पर राष्ट्रीय स्फीति दर का भी निर्धारण होता है। समग्र मांग का ऋणात्मक ढ़ाल यह बताता है कि क्रेता अधिक वस्तुओं का क्रय कम कीमतों पर ही कर सकेगा। समग्र मांग के चार घटक हैं जो कि उपभोग, निवेश, सार्वजनिक व्यय तथा शुद्ध निर्यात है। समग्र पूर्ति वक्र लम्बें समय तक समतल है। उसके बाद तीव्र गति से उपर की ओर मुड़ जाता है उपर उठते हुए यह सन्तुलन बिन्दु से गुजरता है। समग्र पूर्ति का समतल भाग गैर–स्फीति क्षेत्र है जबकि उर्ध्वाधर भाग स्फिति वक्र क्षेत्र है। समग्र पूर्ति वक्र का तीव्र घुमाव को, 'क्षमता उपयोग की दर' कहा जा सकता है, जो कि घरेलू उत्पादकों द्वारा क्षमता उपयोग की दर की माप है। यदि कोई उद्योग अपनी क्षमता के शत प्रतिशत या 100% पर कार्य कर रहा है तो इसका अर्थ है कि सभी उत्पादक, सभी उपलब्ध परिसम्पतियों का प्रयोग किया जा रहा है। जब

अर्थव्यवस्था में स्फीति के लक्षण दिखाई देने लगते हैं तो क्षमता उपयोग की दर 85% के उपर होगी जो कि औसत से अधिक हैं। इसका तात्पर्य है कि उद्योग गम्भीर अवरोधों का समाना कर रहा है, जैसे– श्रम की कमी, कच्चे माल की कमी जिससे उनकी लागतें बढ़ती है और कई बार उन्हें श्रमिकों को अधिक भुगतान करना पडता है।

6.3 प्रभावी मांग और प्रभावी पूर्ति की अवधारणा

केन्ज ने रोजगार के विभिन्न स्तरों पर वस्तुओं एवं सेवाओं की कुल मांग को प्रदर्शित करने के लिए प्रभावी मांग की अवधारणा का प्रयोग किया है। केन्ज के शब्दों में ''समग्र मांग के जिस स्तर पर समग्र पूर्ति उसके बराबर होगी या समग्र पूर्ति वक्र, समग्र मांग वक्र को जिस बिन्दु पर काटता है वह बिन्दु हीं प्रभावी मागं का स्तर होगा।'' इस प्रकार रोजगार के स्तर का निर्धारण प्रभावी मांग से होता है जो कि समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति से निर्धारित होता हे। केन्ज के विश्लेषण के अनुसार सन्तुलन पूर्णरोजगार के स्तर से कम पर, उसके बराबर था उससे अधिक पर भी हो सकता है। इस सिद्धान्त के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैः

1. उपभोग पर निर्भर करता है न कि व्याज दर पर।
2. बचत आदत के अनुसार तथा परम्परा एवं सामाजिक मूल्यों के कारण भी होती हैं।
3. निवेश व्याज दर के सथ हीं साहसी का भविष्य के प्रति प्रत्याशाओं पर भी निर्भर करता है।
4. आधुनिक अर्थव्यवस्था में प्रतिष्ठानों एवं संस्थानों में प्रायः देखा जा सकता है कि मूल्य तथा मजदूरी पूर्णतः लोचशील न हों।
5. इनका समग्र परिणाम वस्तु और श्रम बाजार में हो सकता है जो कि बाजार के असन्तुलन, बेरोजगारी तथा समग्र मांग पर समग्र पूर्ति के अतिरेक के रूप में हो सकता है।
6. मौद्रिक अर्थव्यवस्था मूलभूत रूप से वस्तु विनिमय प्रणाली से भिन्न है। पंरपरावादी द्वैत सत्य नहीं हो सकता।
7. समग्र मांग = समग्र पूर्ति हीं संतुलन नहीं है, यह एक विद्यमान अवस्था मात्र है।
8. लाभदायक रूप से उतपादन के विस्तार पर सीमा होती है। यदि 'से' का सिद्धान्त लागू होता तो पूर्ण रोजगार में कोई बाधा नहीं होती, उत्पादन का विस्तार तब तक होता है जब तक अतिरिक्त श्रम समाप्त नही हो जाता है। इस प्रकार, यह 'से' के सिद्धान्त का खण्डन है।

इस सिद्धान्त के विश्लेषण का विस्तार बाद में हिक्स–हैन्सन मॉडल (IS-LM मॉडल तथा समग्र पूर्ति एवं समग्र मांग) और सैमुएलसन (त्वरक सिद्धान्त) और केन्ज के बाद (श्राफा, रॉबिन्सन, पैसिनेटी आदि) तथा न्यू–केन्जीयन (फिशर, टेलर, हॉविट आदि) के द्वारा किया गया है।

समग्र मांग कीमत

सपीरों के अनुसार रोजगार की निश्चित मात्रा से प्राप्त उत्पादन के लिए समग्र मांग मूल्य, मुद्रा की वह मात्रा है जो उस उत्पाद के विक्रय से प्राप्त होने की आशा है, जब श्रम का प्रयोग किया गया हो। इसका अर्थ है कि निश्चित

रोजगार की मात्रा से प्राप्त उत्पादन विक्रय से प्राप्त होने वाली आय समग्र मांग है। कीन्स के अनुसार समग्र मांग फलन रोजगार के स्तर तथा रोजगार से प्रत्याशित आय पर निर्भर करता है। सारणी 6क समग्र मांग अनुसूचित प्रदर्शित करता है:

रोजगार का स्तर (N) (लाख में)	समग्र मांग अनुसूची (D) (करोड़ रूपये में)
20	230
30	240
40	250
50	260
60	270
70	280
80	290

उपरोक्त अनुसूची के आधार पर समग्र मांग वक्र खींची जा सकती है।

समग्र पूर्ति कीमत

समग्र पूर्ति कीमत में रोजगार के प्रत्येक स्तर पर उत्पादन की मौद्रिक लागत है जिसमें साहसी का सामान्य लाभ आवश्यक रूप से शामिल होगा। समग्र मांग मूल्य/कीमत से तात्पर्य, रोजगार के किसी स्तर से प्राप्त उत्पादन के विक्रय से प्राप्त आय है। रोजगार के विभिन्न स्तर से सम्बन्धित समग्र पूर्ति मूल्य को प्रदर्शित करने वाली सारणी को समग्र पूर्ति अनुसूची या समग्र पूर्ति फलन कहते हैं। प्रो. डिलार्ड के शब्दों में 'समग्र पूर्ति फलन विभिन्न रोजगार की मात्राओं से प्रत्याशित न्यूनतम आय की मात्राओं की अनुसूची है।' नीचे दी गई सारणी 6 ब समग्र पूर्ति अनुसूची को प्रदर्शित करती है।

सारणी 6बः समग्र पूर्ति अनुसूची

रोजगार का स्तर (N) (लाख में)	समग्र पूर्ति अनुसूची (S) (करोड़ रूपये में)
20	215
30	230
40	245
50	260
60	275
70	290
80	305

सारणी 6 ब से पता चलता है कि समग्र पूर्ति मूल्य रोजगार के स्तर के साथ बढ़ता जाता है। केन्ज के अनुसार समग्र पूर्ति फलन रोजगार के स्तर का बढ़ता हुआ फलन है। समग्र पूर्ति फलन का ढाल बायें से दायें धनात्मक होगा क्योंकि, जैसे–2 प्रत्याशित आय बढ़ती है रोजगार का ढाल भी बढ़ता है।

प्रभावी मांग का निर्धारण

प्रभावी मांग वह बिन्दु है जहां साहसी उसकी प्राप्ति की प्रत्याशा/आशा करता है जो उसे प्राप्त होनी चाहिए और उसका लाभ भी अधिकतम हो। यह बिन्दु समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति का प्रतिच्छेदन विन्दू होगा। नीचे दी गई सारणी 6 स समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति अनुसूची के माध्यम से प्रभावी मांग का निर्धारण प्रस्तुत करती है।

सारणी 6सः समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति अनुसूची से प्रभावी मांग का निर्धारण

रोजगार का स्तर (N) (लाख में)	समग्र पूर्ति अनुसूची (D) (करोड़ रूपये में)	समग्र पूर्ति अनुसूची (S) (करोड़ रूपये में)
20	230	215
30	240	230
40	250	245
50	260	260 (प्रभावी मांग)
60	270	275
70	280	290
80	290	305

सारणी 6स में प्रभावी मांग को चिन्हित् किया गया है। दो वक्र 50 लाख रोजगार के स्तर पर एक–दूसरे को काटते हैं जो कि प्रभावी मांग तथा संतुलन का विन्दू होगा।

इसे निम्न चित्र 6.2 मे प्रदर्शित किया जा सकता हैः

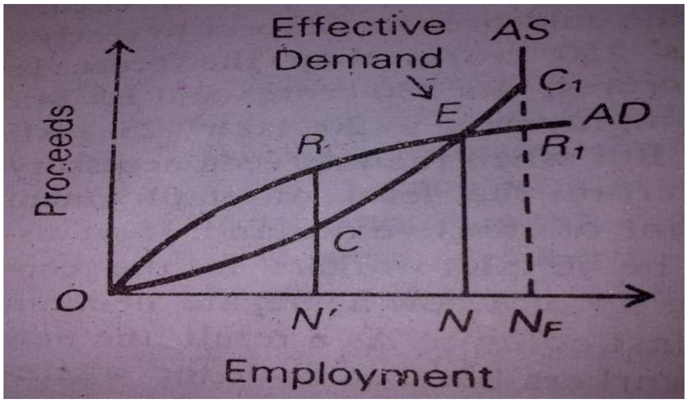

चित्र 6.2 के X अक्ष पर रोजगार तथा Y अक्ष पर आय प्रदर्शित किया गया है। AD और क्रमशः समग्र मांग और AS समग्र पूर्ति वक्र है जो बिन्दु E पर एक–दूसरे को काटते हैं जिस पर रोजगार का स्तर ON है। इस विन्दू के बाद के बाद साहसी के बाद साहसी के लिए रोजगार में वृद्धि करना लाभदायक नहीं होगा क्योंकि लागतें, आय की अपेक्षा तेजी से बढ़ेगी और उसे हानि होगी, इस बिन्दु के पहले की स्थिति अल्प–रोजगारीय संतुलन की स्थिति है जहां अर्थव्यवस्था के संसाधनों का पूर्ण दोहन नहीं हुआ है। बिन्दु E प्रभावी मांग के साथ संन्तुलन का बिन्दू हैं।

समग्र मांग और समग्र मूल्य के घटक

केन्ज ने इस बात पर बल दिया कि समग्र मांग एक बन्द अर्थव्यवस्था में उपभोग व्यय, निवेश व्यय, तथा सरकारी व्यय का परिणाम है जबकि खुली अर्थव्यवस्था में निवल निर्यात भी इसका महत्वपूर्ण घटक है।

$$AD = C + I + G + X - Z$$

समग्र मांग के घटकों की विवेचना नीचे की गई है:

1. **उपभोगः** उपभोग दो कारकों पर निर्भर करता है; राष्ट्रीय आय का आकार एवं उपभोग की प्रवृति पर। उपभोग आय का फलन है। और कीन्स का महत्वपूर्ण योगदान उनकी उपभोग फलन की अवधारणा है जो उपभोग और आय में प्रत्यक्ष सबंन्ध बताता है। कीन्स का उपभोग फलन का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त यह कहता है कि ''किसी समुदाय विशेष को मनोविज्ञान ऐसा होता है कि जब कभी समग्र आय बढ़ती है, समग्र उपभोग भी बढ़ता है, परन्तु आय से कम।'' आय में हुई वृद्धि को दो भागों में बांटा जा सकता है जो कि उपभोग और निवेश है।

   $$C = f(Y)$$

2. **निवेशः** निवेश समग्र मां को प्रभावित करने का महत्वपूर्ण कारक है। निवेश ब्याज दर तथा पूंजी की सीमांत दक्षता पर निर्भर करता है। निवेश पूंजी की सीमान्त दक्षता से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है जबकि ब्याज दर से इसका सम्बन्ध विपरीत रूप से है। कीन्स के अनुसार निवेशक पिछली घटनाओं के आधार पर प्रत्याशायें बनाता है या निर्णय करता है, वह यह मानता है कि पिछली घटनायें भविष्य में पुनः होंगी और उन परिस्थितियों में अन्य निवेशक कैसा व्यवहार करेंगें।

   $$I = f(MEC, r)$$

3. **सरकारी व्ययः** सरकारी व्यय समग्र मांग का महत्वपूर्ण घटक है। यह स्वायत्त व्यय के रूप में जाना जाता है तथा आय से प्रभावित नहीं होता। यह नीति निर्धारकों द्वारा तय किया जाता है और सामान्यतः सरकार लोगों की सेवा करती है और अपने खर्च से जन कल्याण को बढ़ाती है। इस कारण से यह बर्हिजात चर है।

4. **निवल निर्यातः** निवल निर्यात कुल निर्यात एवं कुल आयात (X-Z) के बीच का अन्तर होता है। निर्यात का मूल्य जितना हीं अधिक होगा मांग उतनी हीं अधिक होगी और इसके विपरीत निर्यात कम होगा तो मांग कम होगी।

समग्र पूर्ति के घटक

समग्र पूर्ति दो कारकों से निर्धारित होती है:

1. उत्पादन के साधन एवं
2. साधन लागत

1. उत्पादन के साधन

उत्पादन के मुख्यतः चार साधन है; भूमि, श्रम, पूंजी, और साहसी जो अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन में योगदान करते हैं। समग्र पूर्ति सभी साधनों द्वारा किये जाने वाले योगदान का योग है।

2. **साधन लागत**

उत्पादन के साधनों के द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के बदले उन्हें, उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार प्रतिफल प्राप्त होता है। जो कि लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ के रूप में होता है जिसे साधन लागत कहा जाता है।

समग्र मांग वक्र की व्युत्पत्ति

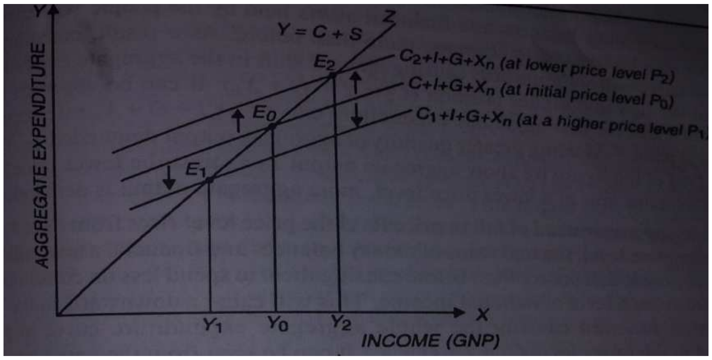

चित्र 6.3अ

कीन्सीयन समग्र मांग वक्र राष्ट्रीय आय के विभिन्न स्तरों पर भावी समग्र व्यय प्रदर्शित करता है और समग्र मांग वक्र विभिन्न कीमत स्तर पर समग्र व्यय को भी प्रदर्शित करता है। कीमत स्तर में परिवर्तन से वास्तविक शेष प्रभाव के परिणाम स्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग में परिवर्तन होता है। मांग में परिवर्तन ब्याज दर तथा विदेशी व्यापार के प्रभाव से भी होता है। इसकी व्याख्या निम्न चित्र 6.3अ एवं 6.3ब में की गई हैः

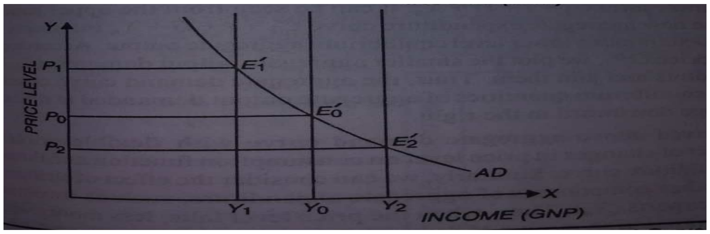

चित्र 6.3ब

चित्र 6.3 अ में संतुलन में राष्ट्रीय आय और राष्ट्रीय उत्पाद के निर्धारण को प्रस्तुत किया गया है। कीमत स्तर P_0 पर समग्र मांग 45^0 अशं कोण के रेखा को बिन्दू E_0 पर काटती है जिस पर सन्तुलन में उत्पादन का स्तर Y_0 है। अब यदि कीमतें गिरती है और लोगों की वास्तविक क्रय शक्ति बढ़ेगी जिस कारण उपभोग वक्र उपर खिसक जायेगा और समग्र मांग वक्र (AD) उच्चतर स्तर पर विवर्तित हो जायेगा जैसे चित्र 6.3अ में दिखाया गया है। यदि कीमतें P_0 से बढ़कर P_1 हो जाये, तब लोगों की क्रय शक्ति घटेगी, परिणाम स्वरूप समग्र मांग वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जायेगा जैसे चित्र में दिखाया गया है। कीमतों में परिवर्तन के प्रभाव से समग्र व्यय में होने वाले परिवर्तनों से हम समग्र मांग वक्र प्राप्त किया है।

समग्र मांग वक्र में परिवर्तन या खिसकना

समग्र मांग वक्र में परिवर्तन मूल्य के अतिरिक्त अन्य कारकों में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है जैसे, सार्वजनिक व्यय, करारोपण, निवेश आदि। मान लिजिए सरकारी खर्च में ΔG की वृद्धि होती है तो जैसा कि निम्न चित्र में दिखाया गया है, समग्र मांग उपर की ओर परिवर्तित होगा। चित्र में कीमत स्तर P

पर स्थिर है, समग्र मांग उपर की ओर विवर्तित हो जाता है और 45^0 कोण वाले रेखा को सन्तुलन उत्पादन Y_2 के स्तर पर काटता है। यह उपर की ओर विवर्तन सरकारी व्यय में वृद्धि के कारण होता है।

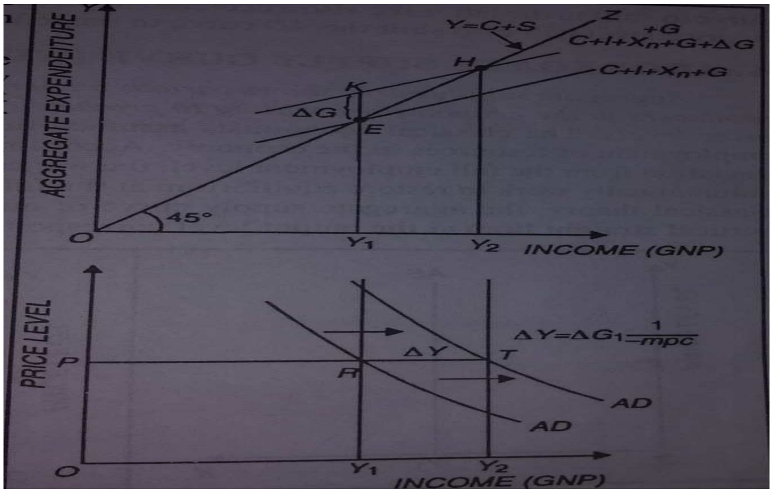

चित्र 6.4

समग्र पूर्ति

समग्र पूर्ति वक्र उत्पादन की उन विभिन्न मात्राओं को प्रदर्शित करता है जो कि उत्पादक विभिन्न कीमतों पर उत्पादन कने तथा बेचने के लिए तैयार है। कीन्सीयन समग्र पूर्ति वक्र एक सीमा तक क्षैतिज समतल वक्र होगा, एक निश्चित सीमा के बाद यह उर्ध्वाधन वक्र के रूप में होगा जैसा कि चित्र 6.5 में दिखाया गया है। जब अर्थव्यवस्था मंदी में है, उत्पादन को लागतों में बिना अधिक वृद्धि के हीं बढ़ाया जा सकता है। इस कारण समग्र पूर्ति वक्र लगभग समतल होगा। बाद में पूंजी की स्थिर मात्रा के साथ उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण समग्र पूर्ति वक्र का ढ़ाल धनात्मक हो जाता है। जब फर्म पूर्ण क्षमता उत्पादन को प्राप्त करती है, सीमान्त लागत बढ़ने लगती है, पूर्ण रोजगारीय सन्तुलन विन्दू के बाद समग्र पूर्ति फलन उर्ध्वाधर सीधी रेखा के रूप में हो जाता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है:

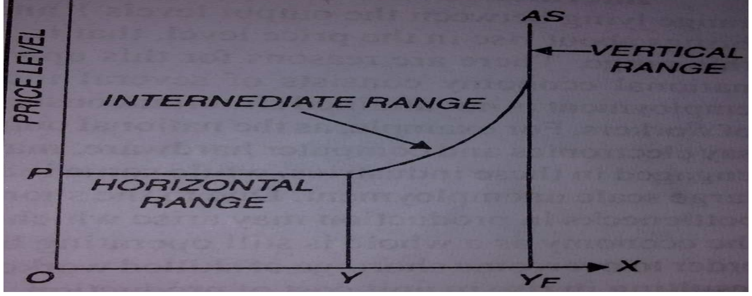

6.5 समग्र पूर्ति वक्र

समग्र पूर्ति वक्र में परिवर्तन या विवर्तन

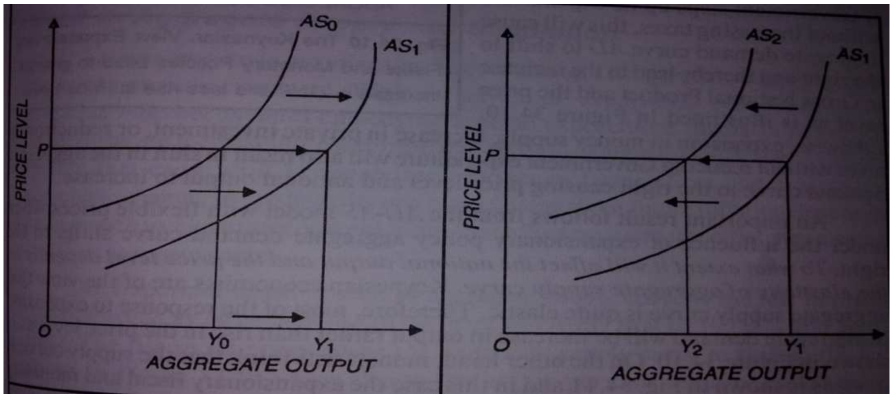

चित्र 6.6

समग्र पूर्ति वक्र में विवर्तन कीमत के अतिरिक्त अन्य कारकों से होता है। यदि तकनीकि प्रगति के कारण अर्थव्यवस्था में पूंजी स्टॉक में वृद्धि होती है, तो साधनों की कीमतें नीचे गिरेंगी और समग्र पूर्ति वक्र दाहिनी ओर परिवर्तित होगी जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। इसके विपरीत, कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि या पूर्ति वक्र के बायें खिसकने से समग्र पूर्ति वक्र बायीं ओर विवर्तित होगा।

6.4 समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति मॉडल की समीक्षा

हम देख चुके हैं कि कैसे समग्र मांग तथा पूर्ति बिना पूर्णरोजगार के सन्तुलन का निर्धारण कर सकते हैं। तथा कीन्सीयन प्रारूप में समग्र मांग और समग्र पूर्ति का निर्धारण कैसे होता है। इस मॉडल के आगे विकास होने से यह पता चलता है कि लोचदार ब्याज दर तथा मूल्य यंत्र से कैसे वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार में सन्तुलन स्थापित हो सकता है।

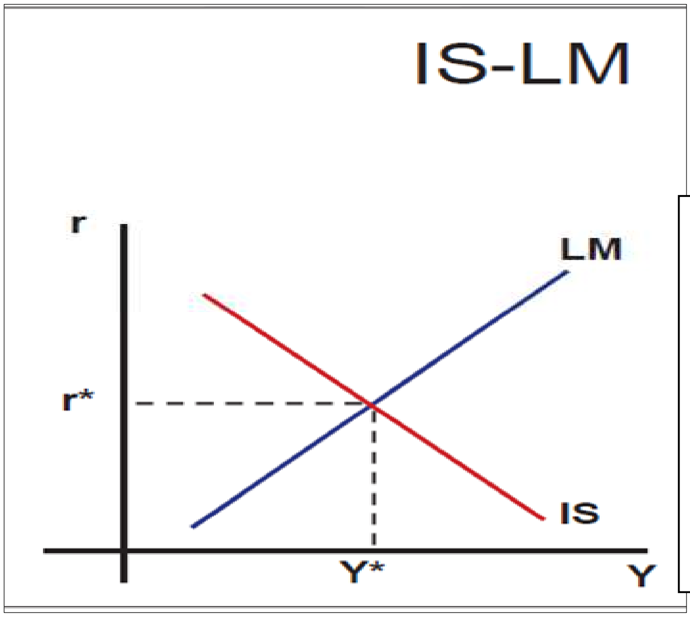

- उल्लेखनीय है कि वास्तविक क्षेत्र तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों का सामाधान साथ–साथ ही होगी।
- वास्तविक क्षेत्र पर मुद्रा क्षेत्र का प्रभाव पड़ता है।
- अर्थव्यवस्था में द्वैतवाद की स्थिति नहीं है।

चित्र 6.4.1

IS वक्र उन विन्दूओं को प्रदर्शित करता है जिस पर वस्तु बाजार सन्तुलन में है। LM वक्र उन विन्दुओं को प्रदर्शित करता है जिन पर मूद्रा बाजार सन्तुलन में है।

IS वक्र ब्याज दर तथा आय के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिन पर वस्तु बाजार सन्तुलन में है। निवेश और ब्याज दर के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध पाया जाता है।

LM वक्र ब्याज दर तथा आय के उन संयोगों को प्रदर्शित करता हे जिन पर मुद्रा बाजार सन्तुलन में है। ब्याज दर वास्तव में मुद्रा की अवसर लागत है, दूसरे शब्दों में यह तरलता त्याग का प्रतिफल है।

IS और LM वक्र के प्रतिच्छेदन का प्रत्येक विन्दू समग्र मांग वक्र के विन्दू को प्रदर्शित करता है जो मूल्य और उत्पादन के बीच खींचा जा सकता है।

समग्र मांग (Agreegate Demand) वक्र

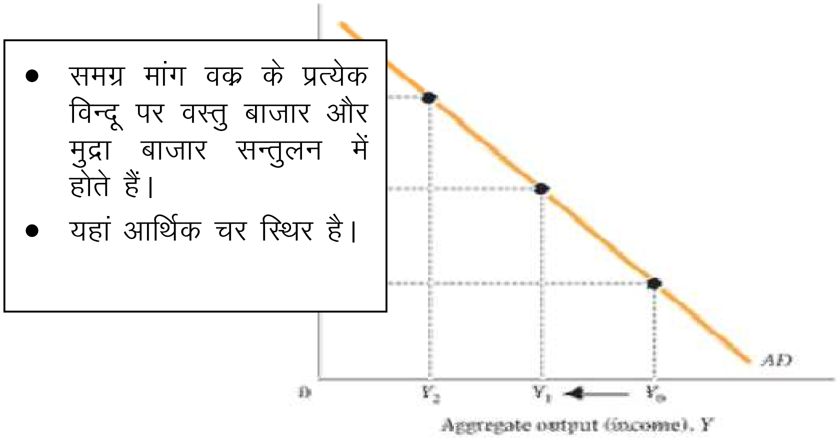

समग्र मांग वक्र व्यष्टि मांग या बाजार मांग वक्र की अपेक्षा अधिक जटिल है। समग्र मांग वक्र, बाजार मांग वक्र नहीं है और न ही यह सभी बाजारों के मांग वक्रों का योग है। समग्र मांग वक्र क्या प्रदर्शित करता है इसे समझने के लिए हमें वस्तु बाजार एवं मुद्रा बाजार की अर्न्तक्रिया को समझना होगा (IS-LM मॉडल)। समग्र मांग वक्र के ऋणात्मक ढ़ाल के कई कारण हैः

उपभोग से संबंधितः कीमत स्तर में वृद्धि से मुद्रा की मांग बढ़ती है, जिससे ब्याज दर बढ़ती है जिसके फलस्वरूप उपभोग में कमी होती है (इसी प्रकार नियोजित निवेश भी)। जिसके परिणाम स्वरूप समग्र उत्पाद (आय) में कमी होती है। उपभोग में प्रारम्भिक कमी (ब्याज दर में वृद्धि से होने के कारण) से समग्र उत्पादन में कमी होती है।

वास्तविक धन या वास्तविक शेष प्रभावः कीमत स्तर में परिवर्तन से धन के वास्तविक मूल्य में परिवर्तन हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप उपभोग में भी परिवर्तन होता है।

समग्र मांग वक्र आर्थिक नीतियों में परिवर्तन से भी परिवर्तित हो सकता है। समग्र मांग वक्र में परिवर्तन के कुछ कारण निम्नलिखित हैः

- मूद्रा पूर्ति में वृद्धि से (M_s) समग्र मांग वक्र दाहिनी ओर विवर्तित हो जाता है।
- विवर्तन का मुख्य कारण यह है कि मुद्रा पूर्ति बढ़ने से ब्याज दर कम हो जाती है जिससे नियोजित निवेश तथा नियोजित समग्र व्यय बढ़ जाता है। अंतिम रूप से प्रत्याशित कीमतों पर उत्पादन में वृद्धि होगी।

- सरकारी व्यय (G) में वृद्धि या करारोपण (T) में कमी के कारण भी समग्र मांग वक्र दाहिनी ओर विवर्तित होता है। G में होन वाली वृद्धि से नियोजित व्यय में वृद्धि होती है जिससे प्रत्येक सम्भावित कीमतों पर उत्पादन में वृद्धि होती है। T में होने वाली कमी के कारण उपभोग में वृद्धि होती है। उपभोग अधिक होने से प्रत्याशित व्यय भी बढ़ता है, जिससे प्रत्येक सम्भावित कीमतों पर उत्पादन में वृद्धि होती है।

समग्र पूर्ति वक्र का ढ़ाल धनात्मक होता है जो कि दीर्घ काल में कीमतों के सापेक्ष बेलोच हो जाता है।

अल्पकाल में, तकनीकि प्रगति जैसे कारणों से समग्र पूर्ति फलन दाहिनी ओर विवर्तित हो सकता है। दूसरी ओर कच्चे तेल की कीमतों में अत्यधिक वृद्धि जैसे कारणों से यह बायीं ओर विवर्तित हो सकता है।

- अल्पकाल में मुद्रा की मात्रा तटस्थ नहीं होती है,

— मुद्रा पूर्ति में वृद्धि से कीमतो मे तुरन्त वृद्धि होना आवश्यक नहीं हैं।

— कीमतें अनिश्चितता, मीन्यू (व्यंजन सूची) लागतों एवं दीर्घकालीन प्रसंबिदा के कारण कठोर होती है।

- मान लीजिये उत्पादन का मूल्य पूरी अर्थव्यवस्था में बढ़ता है।

— मजदूरी तथा आगतों की संविदा तुरन्त उंची कीमतों पर समायोजित नहीं होती है।

— प्रति इकाई लाभ में वृद्धि होती है जिससे उत्पादन बढ़ता है।

— अन्ततः जीवन यापन की लागतों में वृद्धि से सभी संविदायें उंची कीमतों पर समायोजित होगी जिससे बढ़ा हुआ लाभ समाप्त हो जायेगा और उत्पादन पुनः पूर्ववत् स्थिति में लौट जायेगा।

- दीर्घ काल में मुद्रा तटस्थ होती है।

— मुद्रा पूर्ति में कोई भी परिवर्तन कीमतों में सामान अनुपातिक परिवर्तन लायेगा।

— मुद्रा पूर्ति में वृद्धि अर्थव्यवस्था के उत्पादन को दीर्घकाल में प्रभावित नहीं करेगी।

- दीर्घ काल में उत्पादन पूर्णतः अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता पर निर्भर करता है।
- वास्तविक चरों में परिवर्तन ही संभावित उत्पादन को प्रभावित कर सकता है।

— कीमतों का कोई प्रभाव वास्तविक उत्पादन पर नहीं पड़ता।

- दीर्घकाल में सभी साधनों का दक्षता पूर्ण प्रयोग होगा और बेरोजगारी प्राकृतिक दर के बराबर होगी।

अल्पकाल में सन्तुलन का निर्धारण समग्र मांग तथा अल्पकालीन समग्र पूर्ति (SRAS) के प्रतिच्छेदन बिन्दू पर होता है। उच्चतर कीमत (P^H) पर पूर्ति अतिरेक तथा निम्नतर कीमत स्तर P^L पर पूर्ति में कमी होगी। कीमत में सामायोजित होने की प्रवृति होगी तथा यह संतुलन स्तर P^* पर लौटने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करेगी। निम्नतर कीमत की स्थिति में उत्पादन पर अत्यधिक रोजगार की स्थिति प्रदर्शित

है। उपभोक्ता के आत्मविश्वास में कमी का विपरीत प्रभाव हो सकता है जिसका प्रभाव बेरोजगारी होगी।

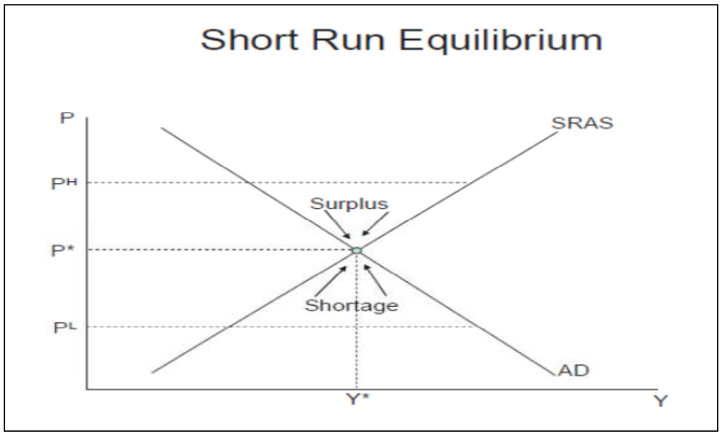

दीर्घकाल में समग्र पूर्ति (SRAS) वक्र मूल्य बेलोच होगा तथा कीमत (P^*) एवं उत्पादन (Y^P) होगा।
अन्ततः **विस्तृत चित्र** को देखते हुए हम अपने मॉडल के विश्लेषण के सभी कारकों, प्रभावी मांग, समग्र मांग, तथा समग्र पूर्ति को सरांश रूप में प्रस्तुत करते हैं। आगे के भाग में AD-AS मॉडल का गहन विवेचन किया गया है।

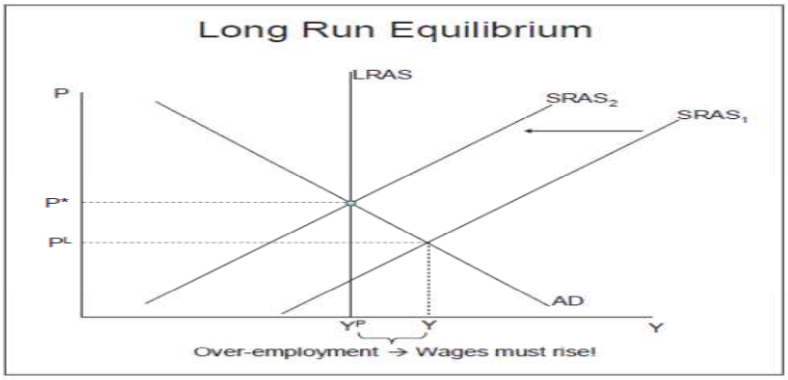

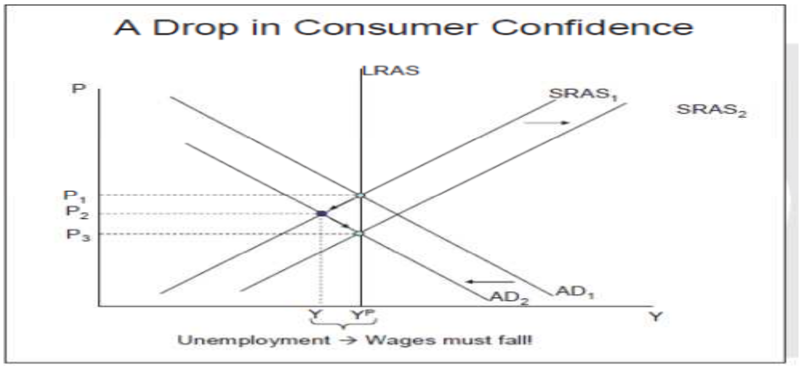

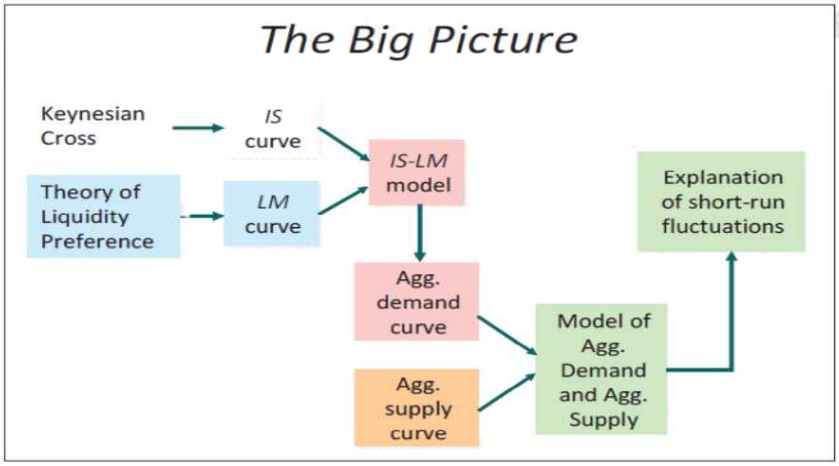

6.5 समग्र मांग और समग्र पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक

AD-AS मॉडल में, मांग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले चरों में परिवर्तन होने के कारण सन्तुलन में भी परिवर्तनत होता है। जैसे बहुत से चर हैं जिनके कारण समग्र मांग और समग्र पूर्ति में परिवर्तन होता है। समग्र मांग को दाहिनी और विवर्तित करने वाले कारकों में धन, जनसंख्या, आय, साख आपूर्ति, सरकारी व्यय, निवेश प्रत्याशायें, और ब्याज दर में परितर्वतन आदि शमिल किये जा सकते हैं। इसी प्रकार समग्र पूर्ति भी कई चरों के काण परिवर्तित होती है। इनमें से कुछ चर पूर्ति वक्र से धनात्मक रूप से जुड़े हैं तो कुछ ऋणात्मक रूप से सम्बन्धित है। समग्र पूर्ति वक्र को दाहिनी ओर विवर्तित करने वाले चरों में स्वायत्त निवेश, उत्पादकता, और साख उपलब्धता, लाभ के प्रति प्रत्याशायें आदि शामिल हैं। और समग्र पूर्ति वक्र को बायें परिवर्तित करने वाले कारकों में कुछ महत्वपूर्ण कारणों की ब्याख्या निम्नलिखित हैः

करारोपण और सरकारी मांग व्यय

कर जनता के द्वारा सरकार को किया जाने वाला अनिवार्य भुगतान है। यह लोगों की व्यय योग्य आय में कमी कर देती है और इस प्रकार समग्र मांग पर विपरीत प्रभाव डालता है। सरकारी मांग या व्यय सरकार द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का क्रय है और सरकार द्वारा लोगों को किया जाने वाला हस्तान्तरण भुगतान। सरकारी व्यय समग्र मांग को बढ़ाते हैं और करारोपण मांग को कम करते हैं साथ हीं करारोपण समग्र पूर्ति में भी कमी लाते हैं।

धन और प्रत्याशाएं

धन की मात्रा और भविष्य में धन की प्रत्याशाएं तथा समग्र मांग में मजबूत सम्बन्ध है। यदि राष्ट्र में धन अधिक है तो राष्ट्र की क्रय शक्ति भी अधिक होगी। धन के मात्रकों में उपभोक्ता की बचत, म्युचुअल फंड, घरेलू अंशधारिता और परिसम्मतियां, और भविष्यक में अधिक धन प्राप्ति की प्रत्याशायें आदि का समग्र मांग पर सकारात्मक प्रभाव होगा।

लागतें

लागतों में वृद्धि जिसके अन्तर्गत कच्चे माल की लागतें, यातायात लागत, श्रम लागत, शक्ति लागत और व्यापार कर आदि शामिल हैं के कारण समग्र पूर्ति वक्र बायीं ओर विवर्तित होगा। लागतों में वृद्धि का समग्र पूर्ति वक्र पर प्रभाव की व्याख्या निम्न चित्र में की गई हैः

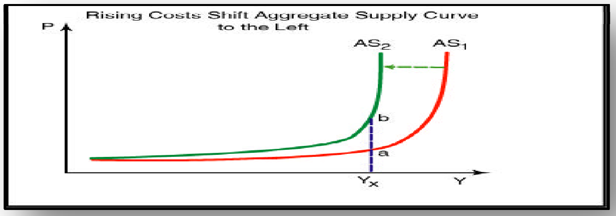

चित्र 6.7

चित्र 6.7 में समग्र पूर्ति वक्र AS_1 से AS_2 बायीं ओर विवर्तित हो गया है। इसका तात्पर्य है कि उत्पादन अब केवल Y_x उत्पादन हीं बेचना चाहेगा, वह उंची लागतों के कारण होने वाली हानि से बचने का प्रयास करेगा। दूसरी ओर कीमतों में वृद्धि करने में असफल रहने पर कुछ उत्पादक उद्योग छोड़कर बाहर चले जायेगें।

उत्पादकता

उत्पादकता से आशय उन सब से हैं जिससे दिये गये संसाधनों से उत्पादन स्तर में वृद्धि हो। श्रम उत्पादकता में वृद्धि होती हैं जब उतने हीं या उससे कम श्रमिकों से अधिक उत्पादन प्राप्त होता हैं। एक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में उत्पादकता का सम्बन्ध तकनीकि तथा नवप्रर्वतन से है। शोध एवं विकास तथा उत्तम इंजिनीयरिंग का अनुप्रयोग, नई तकनीकि के अनुशीलन से उत्पादकता बढ़ती है। दूर संचार तथा आधूनिक कार्यशाला उपकरण, उच्च गति क्षमता के संगणक आदि के विकास ने सेवा क्षेत्र की उत्पादकता में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उत्पादकता में वृद्धि से समग्र पूर्ति वक्र दाहिनी ओर विवर्तित होगा। इसका अर्थ यह है कि तकनीकि में सुधार उच्च शोध एवं विकास स्तर उत्पादकता को बढ़ायेगा और साथ हीं जीवन स्तर में वृद्धि लायेगा तथा समग्र पूर्ति वक्र दाहिनी ओर विवर्तित होगा जैसा कि निम्न चित्र में प्रदर्शित हैः

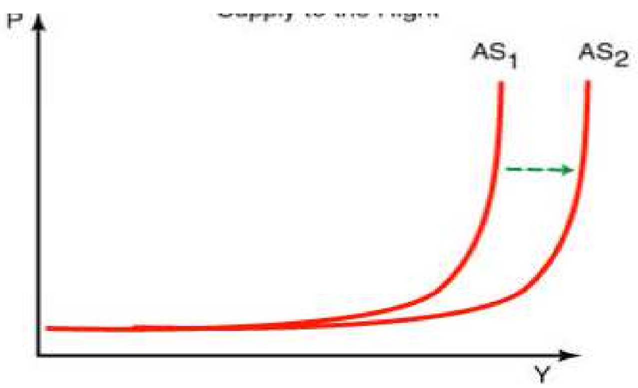

चित्र 6.8 उत्पादकता में वृद्धि के कारण समग्र पूर्ति वक्र का बायीं ओर विवर्तन

उत्पादकता लाभ के साथ मजदूरी में वृद्धि

उत्पादकता लाभ मजदूरी वृद्धि की अपेक्षा अधिक है तो समग्र पूर्ति वक्र दाहिनी ओर विवर्तित होगा जैसा कि निम्न चित्र में दिखाया गया है। इसका तात्पर्य है कि आर्थिक वृद्धि ही रही है और श्रमिकों की उच्च आय और जीवन स्तर की प्रत्याशायें पूर्ति संवृद्धि की प्राप्ति संसाधनों के अधिक उत्पादन से हो सकती हैं परन्तु पूर्ववत निवेश का स्तर उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है इसलिए वे मजबूत रूप से सम्बन्धित है।

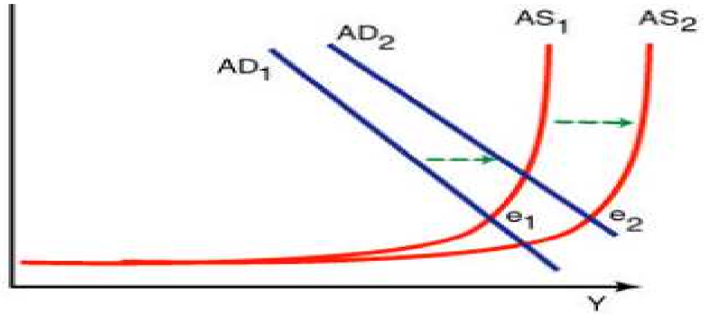

चित्र 6.9 उत्पादकता लाभ के साथ मजदूरी वृद्धि

प्रत्याशाओं की भूमिका और समग्र पूर्ति वक्र

ब्याज दर की प्रत्याशा का समग्र पूर्ति वक्र पर अस्पष्ट प्रभाव पड़ता है। परन्तु प्रत्याशाओं का व्यवसाय पर प्रभाव व्यवसाय के प्रकार पर निर्भर करता है। स्फीति की प्रत्याशा में बड़ी मात्रा में स्टॉक होते हुए भी श्रम लागतों में वृद्धि की आशा हाने पर व्यवसाय के विस्तार में कमी होगी। पूंजीगत वस्तुओं के निर्माण के व्यवसाय में निम्न ब्याज दर से ऋण के माध्यम से विस्तार की प्रवृति हो सकती है।

6.6 व्यापार चक्र विश्लेषण तथा समग्र मांग और समग्र पूर्ति सिद्धान्त का अनुप्रयोग

समग्र मांग और समग्र पूर्ति मॉडल कई प्रासंगिक प्रश्नों के लिए अर्न्तदृष्टि प्रदान करता है जैसे कि व्यापार चक्र केसे उपस्थित होते हैं, अथवा समग्र मांग में वृद्धि से अर्थव्यवस्था में संवृद्धि या स्फीति होगी और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है कि उपभोक्ता की नकारात्मक प्रत्याशायें व्यापार चक्र या मंदी की ओर प्रेरित करेगी अथवा अर्थव्यवस्था में निराशा जनक वातावरण का जन्म होगा। इस खण्ड में निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्नों का विश्लेषण लिया गया है:

1. व्यापार चक्र
2. मांग में वृद्धि का संवृद्धि या स्फीति पर प्रभाव
3. उपभोक्ता की निराशाजनक प्रत्याशाओं का व्यापार चक्र पर प्रभाव।

1. व्यापार चक्र

इसका प्रदर्शन समय के साथ समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति दोनों वक्रों में विवर्तन के कारण संतुलन में होने वाले परिवर्तन के रूप में किया जा सकता है। समष्टि आर्थिक प्रवैगिक में समग्र मांग वक्र समग्र पूर्ति वक्र की अपेक्षा अधिक अस्थिर होता है। चित्र 6.10 में विस्तार तथा अवमंदन प्रदर्शित किया गया है।

विस्तार पथ को सन्तुलन के बायें से दायें की ओर चलने के रूप में प्रदर्शित किया गया है जिसका अर्थ वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि है। जबकि दायें से बायें की ओर गति से सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कमी प्रदर्शित है जिसका अर्थ अर्थव्यवस्था में मंदी है। सन्तुलन में उपर की ओर गति का अर्थ मुद्रा स्फीति में वृद्धि है जबकि नीचे की ओर की गति मुद्रा स्फीति में कमी प्रदर्शित करती है।

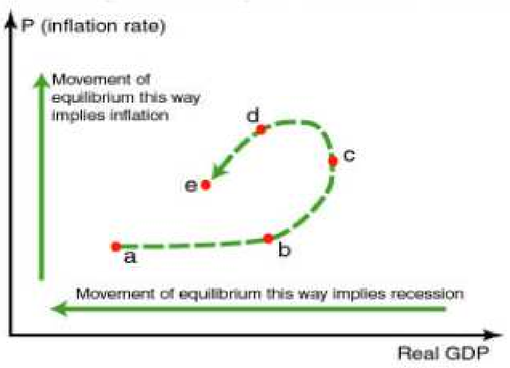

चित्र 6.10 समग्र मांग एव समग्र पूर्ति मॉडल और व्यापार चक्र

उपरोक्त चित्र 6.10 में विन्दू 'e' अधिकतम वास्तविक संवृद्धि का बिन्दू हैं और इस बिन्दू पर व्यापार चक्र अपने उच्चतम अवस्था में है। चित्र में बिन्दू 'a' पुर्नउद्धार की अवस्था का धोतक है। 'a' से 'b' तक की गति पुर्नद्धार की अनुकूल अवस्था है जिसमें मर्यादित स्फीति के साथ वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होती है। 'a' से 'b' की यह गति समग्र मांग में विवर्तन और कुछ समग्र पूर्ति में विवर्तन के कारण होती है। बिन्दू 'b' से 'c' तक की गति विलम्बित विस्तारशील अवस्था है जिसमें उच्च स्फीति दर के साथ वास्तविक उत्पादन के कम वृद्धि होती है। बिन्दू 'c' से 'd' तक गति स्फीति में कमी को सूचित करती है यह मंदी की स्थिति का प्रतीक है। इस प्रकार प्रत्येक व्यापार चक्र में पहले सन्तुलन विस्तार की अवस्था में बायें से दायें गति करता है तथा संकुचन की अवस्था में दायें से बायें गति करता है।

2. संवृद्धि या स्फीति पर मांग में होने वाली वृद्धि का प्रभाव

समग्र मांग, समग्र पूर्ति की अपेक्षा अधिक अस्थिर होती है और इसका व्यापार चक्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समग्र मांग वक्र सरकारी व्यय के कारण दायें ओर खिसक सकता है अथवा करों में कमी के कारण भी तथा साख उपलब्धता में वृद्धि विस्तारवादी मौद्रिक नीति, ब्याज दरों में कमी आदि के कारण समग्र मांग दायें की ओर खिसक सकती है। मान लिजिय सरकार विस्तारवादी मौद्रिक नीति अपनाती है तो साख और मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होगी तथा ब्याज दरों में कमी आयेगी। यह समग्र मांग वक्र को दायीं ओर विवर्तित करेगा। सैद्धान्ति रूप से हम कह सकते हैं कि मूद्रा आपूर्ति में वृद्धि से स्फीति का जन्म होगा। चित्र 6.11 विस्तारक मौद्रिक नीति तथा मुद्रा पूर्ति का मुद्रा स्फीति के साथ सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। सामान्यतः ऐसी मौद्रिक नीति का प्रयोग मंदी के समय किया जाता है जिससे गैर–स्फीतिक वास्तविक संवृद्धि होती है। समग्र मांग वक्र समग्र पूर्ति वक्र के गैर–स्फीतिक भाग में विवर्तित होगा इसलिए मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न

नहीं होगी। वास्तविक संसार में क्षमता उपयोग की दर प्रारम्भ में कम होगी, बेरोजगारी की दर अधिक होती है और अर्थव्यवस्था में संसाधन अधिक उपलब्ध होगें। संसाधनों की अतिरिक्त क्षमता के साथ उत्पादक उस अतिरिक्त क्षमता का प्रयोग कर विक्रय बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार स्फीतिक दबाव उत्पन्न नहीं होगा जैसा कि निम्न चित्र 6.11 में प्रदर्शित है।

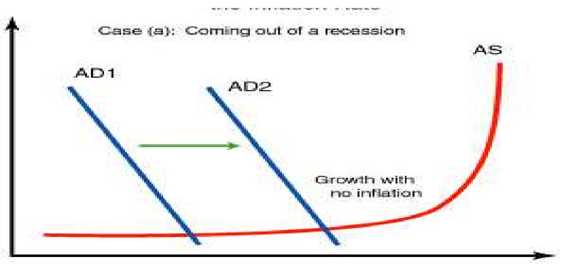

चित्र 6.11

चित्र 6.12 में, विस्तारक मुद्रा नीति के परिणाम स्वरूप स्फीति का जन्म होगा क्योंकि अतिरिक्त क्षमता समाप्त हो चुकी है। संसाधनों का पूर्ण दोहन हो चुका है इसलिए श्रम प्रतिबन्ध तथा संसाधनों का प्रतिबन्ध उत्पन्न होगा और अर्थव्यवस्था समग्र पूर्ति के स्फीतिक भाग मे प्रवेश करेगी। अधिक मुद्रा पूर्ति के कारण मांग आधिक्य से उच्च मुद्रा स्फीति होगी। समग्र पूर्ति के स्फीतिक भाग का अर्थ है कि वास्तविक अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति एक समस्या होगी और अत्यधिक मुद्रा स्फीति की आशा की जायेगी और यह कुछ महीने लगातार जारी रह सकती है तथा समग्र मांग को प्रेरित कर समग्र पूर्ति को भी प्रभावित कर सकती है।

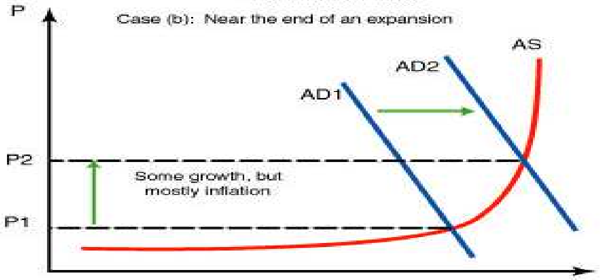

चित्र 6.12 समग्र मांग में वृद्धि के बहाव का स्फीति पर प्रभाव

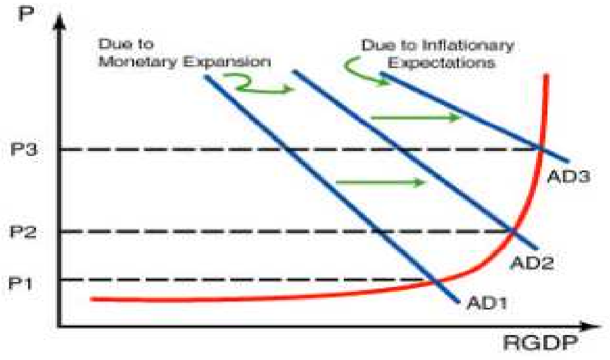

चित्र 6.13 स्फीतिक प्रत्याशा का द्वितीयक प्रभाव

निम्नलिखित चित्र 6.13 में, समग्र मांग वक्र मुद्रा पूर्ति में वृद्धि के कारण AD_1 से AD_2 हो जाता है जिससे प्रारम्भिक रूप से स्फीति का जन्म होता है। इससे स्फीति दर P_1 से बढ़कर P_2 हो जाती है। तब द्वितीयक प्रभाव के रूप में स्फीति की प्रत्याशा का जन्म होगा इससे समग्र मांग वक्र AD_2 से AD_3 को विवर्तित हो जायेगा जिससे सम्बन्धित मुल्य P_2 से P_3 होगा जो स्फीति की प्रत्याशा का परिणाम है। प्रत्याशित स्फीति का द्वितीयक प्रभाव अनुकूलनीय स्फीति प्रत्याशा मॉडल पर आधारित है। जिसका आशय है कि अनुकूलनीय प्रत्याशायें अनुभव पर आधारित होती है और स्फीति से सीखने के बजाय नई स्फीति की आशा समग्र मांगं को विवर्तित करेगी और इन प्रत्याशाओं के कारण स्फीतिक अवस्था में आर्थिक प्रवैगिकी जटिल होगी। ये प्रत्याशायें मकड़—जाल सिद्धान्त तक ले जाती है।

3. उपभोक्ता की नकारात्मक प्रत्याषाओं का व्यापार चक्र पर प्रभाव

प्रतयाशायें व्यापार चक्र की क्रियाशीलता को महत्पवूर्ण रूप से प्रभावित करती है। वे मंदी को अधिक बुरा बना सकती है अथवा धीमा गहन बना सकती है जो इस बात पर निर्भर करता है कि प्रत्याशायें कैसी है अथवा वे किस प्रकार बनायी गई है। वे एक चक्रिय प्रवृत्ति को जन्म दे सकती है तथ चक्रों के समयावधि को प्रभावित कर सकती है।

उपभोक्ता अपने हाल के अनभवों के आधार पर प्रत्याशाओं का निर्माण करते हैं। इसे अभिव्यंजनावादी दृष्टिकोंण भी कहा जाता है। कई बार प्रत्याशाओं के निर्माण में उपभोक्ता गलत भी हो सकता है। अनुकूलित प्रत्याशा के सिद्धान्त के अनुसार यदि उपभोक्ता एक समय में अधिक संवृद्धि दर का अनुभव करे तो वह भविष्य में और अधिक संवृद्धि की आशा करेगा। इसका अर्थ है कि उन्होंने स्थिति को अनुकूलित कर लिया है परन्तु वास्तव में यह घटित नहीं भी हो सकता है और इससे निराशा का भी जन्म हो सकता है। चित्र 6.14 यह दिखाता है कि उपभोक्ता को हाल के वर्षों में आय में वृद्धि प्राप्त हुई और वे इस आधार पर निकट भविष्य में संवृद्धि की आशा करते हैं। इसे बिन्दू A से B तक गति के रूप में t_0 समय से t_1 तक प्रदर्शित किया गया है। अब वे इसी दर से आय की वृद्धि की आशा करते हैं जो कि t_2 समय के CE स्तर तक को प्रदर्शित करता है। लेकिन वास्तव में आय में वृद्धि की दर पूर्व की वर्षों की तुलना में कम है और वास्तविक आय का स्तर CA हीं है जैसा कि चित्र 6.14 में दिखाया गया है। तब उपभोक्ता की आशायें निराशा में बदल जाती है और ये चक्रों के उच्चावचन के रू‍ में सामने आती है। चित्र 6.14 दिखाता है कि उपभोक्ता की प्रत्याशायें कमजोर है वे पूर्व के वर्षों से म आय वृद्धि की आशा करते हैं और दूसरी ओर यदि आय बढ़ने लगती है तो वे इसे अस्थाई लाभ मानते हैं।

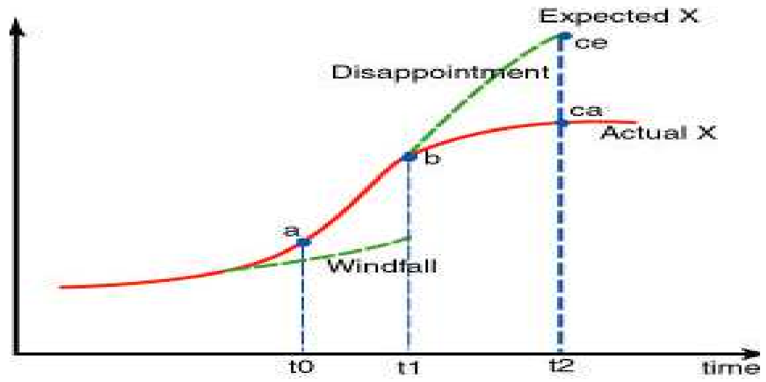

चित्र 6.14 अल्पकालीन प्रवृति पर आधारित अनुकूलनीय प्रत्याशायें

समग्र पूर्ति/समग्र मांग मॉडल की मुद्रा स्फीति और अवस्फीति के लड़ाई में भूमिका

मुद्रा स्फीति

समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति में विवर्तन अथवा दोनों में एक साथ ही परिवर्तत से कीमतों में स्थिर तथा प्रर्याप्त वृद्धि की प्रक्रिया मुद्रा स्फीति कहलाती है। वास्तव में स्फीति की प्रक्रिया में मांग तथा लागत दोनों तत्वों का प्रभाव होता है तथा ये दोनों शक्तियां पारस्परिक निर्भरता से साथ–साथ कार्य करती है। इन दोनों के बीच एक सन्तुलन होना चाहिए।

अवस्फीति

अवस्फीति दो विपरीत प्रतिभाषों का मिश्रण हैं। स्टैग का अर्थ गतिहीनता से है और फलेशन का अर्थ स्फीति से है। इसे मुद्रा स्फीति युक्त मंदी भी कहा जता है जिसमें अर्थव्यवस्था में स्फीति के साथ–साथ बेरोजगारी भी व्याप्त होती है। इन दो विपरीत प्रतिभाषों के मिश्रण को ही स्टैगफलेशन या अवस्फीति का नाम दिया गया है। फ्रीडमैन फेल के मॉडल के अनुसार विस्तारक मौद्रिक नीति उच्च स्फीति की कीमत पर रोजगार तभी बढ़ा सकती है जब यदि श्रमिक ठीक–ठीक मुद्रा स्फीति की प्रत्याशा न करें। सामान्यतः उच्च मुद्रा स्फीति और बेरोजगारी का सम्बन्ध कई कारणों से समग्र मांग में कमी से है। उनमें से कुछ कारण निम्नलिखित हैः

- समग्र मांग में कमी श्रमिक आपूर्ति की सीमाओं के कारण है जिसके कारण कानून के द्वारा न्यूनतम मजदूरी में वृद्धि, श्रम संघों द्वारा मजदूरी वृद्धि, कर की दरों में वृद्धिजो कार्य करने की इच्छा में कमी या प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।
- अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि से समग्र पूर्ति विपरीत रूप से प्रभावित हो सकती है। अप्रत्यक्ष करों की उच्च दरों से लागत तथा कीमत दोनों में वृद्धि होती है तथा उत्पादन एवं रोजगार में कमी आती है।
- समग्र पूर्ति बाहय् कारणों से भी विपरीत रूप से प्रभावित हो सकती है जैसे अनिवार्य वस्तुओं की कीमतों में अन्तर्राष्ट्रीय वृद्धि जिससे घरेलू

उत्पादन लागत में वृद्धि होगी और कीमतों में वृद्धि के साथ हीं उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

- मौद्रिकवादियों के अनुसार मौद्रिक मजदूरी में वृद्धि से उत्पादन लागत में वृद्धि होती है और यह मौद्रिक मजदूरी में वृद्धि वास्तविक कीमत स्तर में वृद्धि के कारण नहीं होती है बल्कि कीमतों में वृद्धि की प्रत्याशा में परिवर्तन के कारण होती है।

चित्र 6.15 में समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति मॉडल से अवस्फीति/स्टैगफलेशन का विश्लेषण किया गया है।

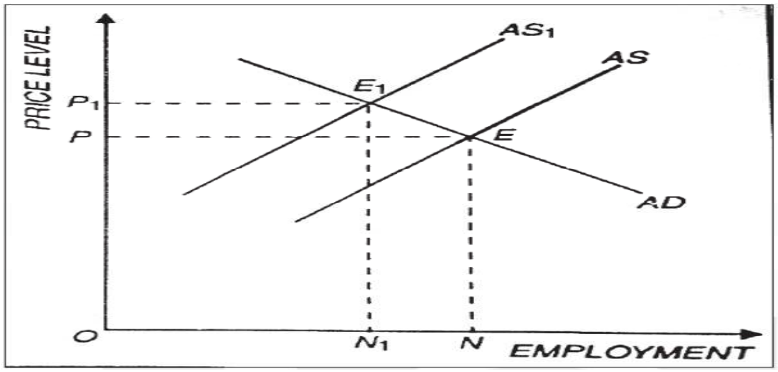

चित्र 6.15

प्रारम्भिक रूप से अर्थव्यवस्था बिन्दू E पर सन्तुलन की स्थिति में हैं जहां AD वक्र, AS वक्र को प्रतिच्छेदित करता है और रोजगार का स्तर ON एवं कीमत स्तर OP है। अब समग्र पूर्ति वक्र AS से उपर की ओर विवर्तित होकर AS_1 हो जाता है जो लागतों में वृद्धि अथवा अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि के कारण होता है। समग्र पूर्ति घट जाती है और अर्थव्यवस्था नये सन्तुलन स्तर E_1 को प्राप्त करती है जहां AD वक्र AS_1 वक्र को काटता है परिणाम स्वरूप रोजगार का स्तर गिरकर ON से ON_1 हो जाता है तथा कीमत स्तर OP से OP_1 बढ़कर हो जाता है। यह एक विरोधाभाषी परिस्थिति है जिसमें मुद्रा स्फीति में वृद्धि के साथ बेरोजगारी बढ़ती है।

6.7 समग्र मांग/समग्र पूर्ति (AD/AS) मॉडल का उपयोग

लोचशील कीमतों के साथ AD/AS मॉडल बताता है कि विस्तारवादी नीतियों के फलस्वरूप समग्र मांग वक्र दाहिनी ओर विवर्तित होगा तथा कीमतों और उत्पादन को प्रभावित करेगा। कीन्सीयन दृष्टिकोण के अनुसार, विस्तारवादी राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों से GNP में अधिक वृद्धि होगी तथा कीमतों में कम वृद्धि होगी। AD/AS मॉडल व्यापार चक्रों की व्याख्या करने में महत्वपूर्ण है। बाजार प्रणाली की अस्थिरिता व बाजार की अपूर्णता की व्याख्या में भी उपयोगी है। AD/AS मॉडल स्टैगफलेशन की अवधारणा तथा इसके कारणों की व्याख्या में भी उपयोगी है। मुलतः AD/AS मॉडल अर्थव्यवस्था के असन्तुलन का अध्ययन करने और किस प्रकार से पुनः सन्तुलन को प्राप्त किया जा सकता है, आदि की व्याख्या में महत्वपूर्ण हैं।

6.8 सारांश

समग्र मांग तथ समग्र पूर्ति मॉडल सर्वप्रथम कीन्स के द्वारा जनरल थियरी (सामान्य सिद्धान्त) में दिया गया है। उन्होंने कहा कि समग्र मांग और समग्र पूर्ति के द्वारा प्रभावी मांग का निर्धारण होता है। अर्थव्यस्था या अल्परोजगारीय स्थिति में हो सकती हैं या पूर्णरोजगार से उपर की स्थिति में। इसलिए पुनः पूर्णरोजगारीय सन्तुलन की स्थापना के लिए मांग एवं पूर्ति की शक्तियों से स्वयं समायोजन नहीं होगा। उन्होंने मुख्यतः मंदी की स्थिति में सरकारी निवेश की भूमिका पर बल दिया। उन्होंने मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति पर बल दिया। बाद में हिक्स–हैन्सन के विश्लेषण से आर्थिक नीतियों के परिवर्तन का अल्पकालीन सन्तुलन पर प्रभावों की व्याख्या IS-LM मॉडल से की गई और इसका समन्वय AS/AD मॉडल से करना सम्भव हुआ। समष्टिभावी अर्थशास्त्रियों का मानना है कि AS/AD मॉडल स्टैगफलेशन को समझने में महत्वपूर्ण यंत्र है। यद्यपि राशियों की समग्रता की अवधारणा का प्रयोग वालरस के सामान्य सन्तुलन में बाजार निकासी का विश्लेषण करने में किया गया था परन्तु इस मॉडल को वैज्ञानिक दृष्टिकोण हैरॉड–डोमर तथ नव–कलासिकल अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रदान किया गया जो असन्तुलन की समस्या का समाधान करने के लिए स्थिर संवृद्धि पथ का निर्धारण करने का प्रयास कर रहे थे।

6.9 शब्दावली

समग्र मांग और समग्र पूर्ति सि़द्धान्तः यह सि़द्धान्त वस्तुतः अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन से सम्बन्धित है।

प्रभावी मांगः समग्र मांग के जिस स्तर पर समग्र पूर्ति उसके बराबर होगी या समग्र पूर्ति वक्र, समग्र मांग वक्र को जिस बिन्दु पर काटता है वह बिन्दु हीं प्रभावी मागं का स्तर होगा।''

6.10 बोध प्रश्न

(A) खाली स्थानों को भरें

1. प्रथम औपचारिक समष्टि भावी आर्थिक मॉडल को समग्र पूर्ति ————————— मॉडल के नाम से जानते हैं।
2. AD/AS मॉडल विभिन्न ——————————— मॉडलों का संकंलन/समग्र/योग हैं।
3. AD/AS मॉडल को ———————— स्थैतिक मॉडल भी कहते हैं।
4. प्रभावी मांग वह बिन्दु है जहां समग्र मांग वक्र ——————— वक्र को प्रतिच्छेदित करता है।
5. समग्र मांग के महत्वपूर्ण घटक निवेश, उपभोग, ————————— एवं ————————— है।

(B) सत्य या असत्य

1. करारोपण समग्र मांग को प्रतिकूल प्रभावित करता है।
2. लागत में वृद्धि समग्र पूर्ति से धनात्मक रूप से संबंधित है।
3. धन एवं धन की प्रत्याशाएं मांग के लिए धनात्मक संकेतक है।
4. उत्पादकता में वृद्धि पूर्ति वक्र को दाहिनी ओर विवर्तित करता है।

5. AD/AS मॉडल व्यापार चक्र के वर्णन में बहुत उपयोगी यंत्र हैं।

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. समग्र मांग, 2. व्यष्टि भावी अर्थशास्त्र, 3. तुलनात्मक, 4. समग्र पूर्ति, 5. सरकारी व्यय, निवल निर्यात।

(B) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. सत्य।

6.12 स्वपरख प्रश्न

1. AD/AS मॉडल की विस्तृत चर्चा करें।
2. व्यापार चक्र के वर्णन के लिए AD/AS मॉडल के भूमिका की चर्चा करें।
3. स्टैगफलेशन के अवधारणा को AD/AS मॉडल के संदर्भ में वर्णन करें।

6.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Ahuja H L (2001) Macroeconomic Theory and Policy, Chand & Co. Ltd, New Delhi.
2. Ackley Gardner Macroeconomics
3. Glahe F R Macroeconomics

*****

इकाई 7 मुद्रा स्फीति

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 मुद्रा स्फीति का अर्थ
7.3 मुद्रा स्फीति के प्रकार
7.4 वास्तविक मुद्रा स्फीति के कीन्सीयन अवधारणा
7.5 स्फीतिक अन्तराल की अवधाराणाएं
7.6 मुद्रा स्फीति के सिद्धान्त
7.7 मुद्रा स्फीति का कीमत वृद्धि मॉडल
7.8 स्टैगफलेशन की अवधारणा
7.9 मुद्रा स्फीति से संबंधित अन्य अवधाराणाएं
7.10 मुद्रा स्फीति के कारण एवं नियंत्रण
7.11 मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के उपाय
7.12 मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी
7.13 सारांश
7.14 शब्दावली
7.15 बोध प्रश्न
7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.17 स्वपरख प्रश्न
7.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- मुद्रा स्फीति का अर्थ समझ सकें।
- मुद्रा स्फीति के प्रकार का वर्णन कर सकें।
- स्फीतिक अन्तराल का अर्थव्यवस्था में प्रभाव कों जान सकें।
- मुद्रा स्फीति के सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें।
- स्टैगफलेशन की अवधारणा का वर्णन कर सकें।
- मुद्रा स्फीति के कारण एवं नियंत्रण की व्याख्या कर सकें।
- बेरोजगारी एवं मुद्रा स्फीति के बीच में अन्तःक्रिया को समझ सकें।

7.1 प्रस्तावना

मुद्रा स्फीति से आशय कीमतों में लगातार प्रर्याप्त वृद्धि होना है। यह मूलतः एक मौद्रिक प्रतिभास है जो विश्व के विभिन्न देशों को भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रभावित कर रहा है। मुद्रा स्फीति का उच्च स्तर उत्पादकता एवं दक्षता को विपरीत रूप से प्रभावित करता है। मुद्रा स्फीति के कारणों में मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि, लागतों में वृद्धि तथा लाभ में वृद्धि आदि शामिल हैं। सरकार मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न मौद्रिक तथा राजकोषीय साधनों का सहारा ले रहीं है, जैसेः नकद आरक्षित अनुपात में परिवर्तन, मंहगी मुद्रा नीति, और भुगतान सन्तुलन को ठीक करना। इस इकाई में हमने स्फीति के विभिन्न पहलुओं का विवेचना किया है जैसे, मुद्रा स्फीति का अर्थ, स्फीति से सम्बन्धित अन्य शब्द,

स्फीति के प्रकार, सिद्धान्त और मुद्रा स्फीति के कारण और सरकार द्वारा इसे नियंत्रित करने के उपाय।

7.2 मुद्रा स्फीति का अर्थ

मुद्रा स्फीति की स्पष्ट एवं संक्षिप्त परिभाषा देना बहुत कठिन है। विभिन्न लेखकों ने स्फीति को अपने–अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। सर्वप्रथम इस शब्द को नियो–क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने परिभाषित किया है। उनका इससे आशय मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के परिणाम स्वरूप कीमतों में तेजी से वृद्धि होना था। उनके अनुसार मुद्रा स्फीति मौद्रिक नियंत्रण की कमी से होन वाली विनाशकारी बीमारी है जिसका परिणाम व्यापार को कमजोर करना, बाजार में अफरा–तफरी कि स्थिति उत्पन्न करना और वित्तीय सर्तकता तथा स्थिरता की बर्बादी करना है। इस कथन का समर्थन आर. जे. बेल तथा पीटर डायल ने 1969 में किया। प्रो. क्राउथर के अनुसार, 'मुद्रा स्फीति एक ऐसी स्थिति ह। जिसमें मुद्रा का मुल्य गिरता है और कीमतें बढ़ती हैं।' और कोलबर्ट इसे ऐसी प्रक्रिया के रूप में जोर देतें हैं कि ''जहां अत्याधिक मुद्रा कुछ थोड़ी वस्तुओं का पीछा करती है।'' फ्रीडमैन के अनुसार ''मुद्रा स्फीति मूलतः एक मौद्रिक घटना हे और यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कीमतें लगातार तेजी से बढ़ती है।'' गार्डनर एकले इस सामान्य कीमत स्तर में या औसत कीमतो में लगातार प्रर्याप्त वृद्धि होना मानते हैं। सपीरो भी इसे सामान्य कीमत स्तर में तीव्र वृद्धि मानते हैं। इमाइल जेम्स का बिचार है कि ''मुद्रा स्फीति स्वतः शाश्वत और अनुत्क्रमणीय रूप से कीमतों में वृद्धि है जिसका कारण आपूर्ति की क्षमता पर मांग की अधिकता है।'' जॉन मिनार्ड कीन्स के अनुसार मुद्रा स्फीति केवल तब होगी जब मुद्रा परिणाम में वृद्धि के बाद भी उत्पादक उत्पादन न बढ़ाये और इसे पूर्णतः लागतों में होने वाली वृद्धि के बराबर होगा। इसे हीं उपयुक्त रूप से वास्तव में मुद्रा स्फीति कहा जा सकता है।

इन परिभाषाओं से हम मुद्रा स्फीति के विष में दो महत्वपूर्ण बातें सामने रख सकते हैं:

1. मुद्रा स्फीति एक ऐसी स्थिति है जब कीमतों में लगातार वृद्धि हो,
2. कीमतों में प्रर्याप्त मात्रा में वृद्धि हो,
3. सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि मुद्रा स्फीति वह स्थिति है जब कीमतें लगातार, स्थायी तथा सतत् रूप से वृद्धि हो।

7.3 मुद्रा स्फीति के प्रकार

कीमतों में सतत् वृद्धि विभिन्न मात्रा में हो सकती है। मुद्रा स्फीति के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैः

1. रेंगती मुद्रा स्फीति

जब कीमतों में वृद्धि बहुत कम हो या 3% से भी कम दर से कीमतों की वृद्धि को रेंगती मुद्रा स्फीति कहते हैं। ऐसी स्फीति संवृद्धि के लिए आवश्यक है।

2. चलती मुद्रा स्फीति

चलती मुद्रा स्फीति में कीमतें प्रर्याप्त रूप से बढ़ती है सामान्यतः कीमतों में 7% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि को चलती मुद्रा स्फीति कह सकते हैं। यद्यपि ऐसी स्फीति अर्थव्यवस्था के लिए बुरी नहीं हैं परन्तु यह सरकार के लिए चेतावनी का काम करती है।

3. दोड़ती मुद्रा स्फीति

इस प्रकार की मुद्रा स्फीति में कीमतें 10%–20% सालाना बढ़ना प्रारम्भ कर देती है। ऐसी मुद्रा स्फीति अर्थव्यवस्था को विपरीत रूप से प्रभावित करती है। विशेष रूप से मध्यम वर्ग तथा गरीब लोग इससे अधिक प्रभावित होते हैं। इसे अश्व स्फीति भी कहा जा सकता है क्योंकि अश्व तेज दौड़ता है। इसके नियंत्रण के लिए मौद्रिक तथा राजकोषीय उपायों की आवश्यकता होती है अन्यथा यह अर्थव्यवस्थ के लिए घातक होती है।

4. अत्याधिक मुद्रा स्फीति

जब कीमतें बहुत तेजी से बढ़ती है और यह दो या तीन अंकों की दर से बढ़ रही हो तो इसे उच्च मुद्रा स्फीति या अत्याधिक स्फीति कहते हैं। इस प्रकार की मुद्रा स्फीति में दर 2% से 100% प्रतिवर्ष तक होती है। इस प्रकार की मुद्रा स्फीति नियंत्रण से बाहर होती है और युद्ध जैसी स्थिति में दिखाई पड़ती है। इससे मौद्रिक प्रणाली का विध्वंस हो जाता है और मुद्रा की क्रय शक्ति में लगातार गिरावट आती है।

विभिन्न परिस्थितियों में मुद्रा स्फीति को निम्न चित्र 7.1 से प्रदर्शित किया गया है।

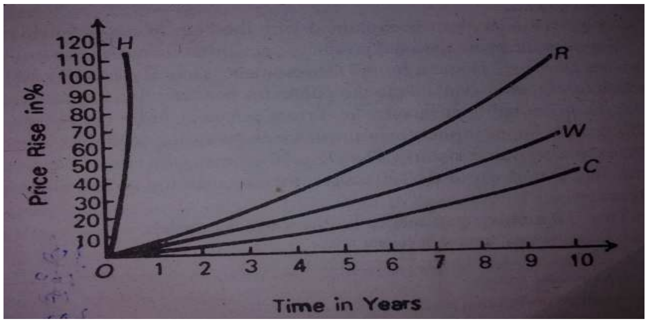

चित्र 7.1

7.4 वास्तविक मुद्रा स्फीति के कीन्सीयन अवधारणा

कीन्स का विचार है की वास्तविक रूप में स्फीति पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के बाद आती है और यह अतिरिक्त प्रभावी मांग के कारण उत्पन्न होती है। उनके अनुसार, ''जब तक अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी है, रोजगार में उसी अनुपात में परिवर्तन होता है जैसे मुद्रा की मात्रा में और जब पूर्ण रोजगार होता है तो कीमतो में उसी अनुपात में परिवर्तन होता है जितना मुद्रा की मात्र में।'' वे इस बात से इनकार नहीं करते हैं कि पूर्ण रोजगार के पहले भी कीमतों में वृद्धि हो सकती है ओर वे इसे संस्फीति (Reflation) या अर्द्ध–स्फीति कहते हैं। कीन्स के अनुसार पूर्णरोजगार हीं वह बिन्दु है जहां से वास्तविक निवेश शुरू होता है। जैसा चित्र 7. 2 में दिखाया गया हैः

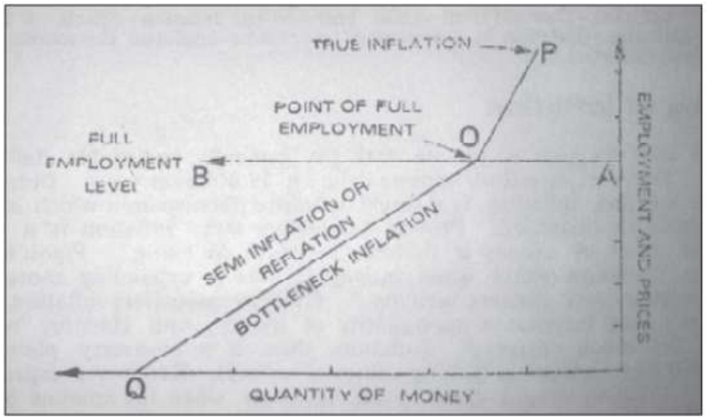

चित्र 7.2

जैसा कि चित्र 7.2 में दिखाया गया है, कीमतें बिन्दू O से पहले हीं बढ़ना प्रारम्भ कर देती है परन्तु इसे वास्तविक मुद्रा स्फीति नहीं कहा जा सकता है। वास्तविक स्फीति बिन्दू O के बाद O से P तक है जो पूर्ण रोजगार के बाद आती है।

7.5 स्फीतिक अन्तराल की अवधारणा

स्फीतिक अन्तराल की अवधारणा जे. एम. कीन्स द्वारा, सन 1940 ई. में उनकी प्रकाशित पुस्तक 'हाउ टू पे फॉर वॉर' में प्रस्तुत एवं विकसित की गई। स्फीतिक अन्तराल अर्थव्यवस्था की जैसी स्थिति है जब प्रभावी मांग और प्रत्याशित व्यय आधार कीमतों पर उत्पाद के स्तर से अधिक हों। प्रो. लिप्से के अनुसार, ''स्फीतिक अन्तराल पूर्णरोजगारीय आय के स्तर पर समग्र व्यय की वह मात्रा है जो समग्र उत्पाद से अधिक है।'' कीन्स इसे पूर्ण रोजगार स्तर पर आय से अधिक व्यय के रूप में प्रस्तुत करते हैं। पूर्ण–रोजगार स्तर पर समग्र मांग की समग्र पूर्ति से अधिक होने पर वास्तविक उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है क्योंकि पूर्णरोजगार पहले ही प्राप्त हो चुका होता है। अतिरिक्त मांग कीमतों में तब तक वृद्धि लायेगी जब तक कि सरकार मौद्रिक व राजकोषीय उपाय न करें।

स्फीतिक अन्तराल

स्फीतिक अन्तराल की ब्याख्या नीचे दिये गये उदाहरण की सहायता से की जा सकती है:

मान लीजिए स्फीति के पहले सकल राष्ट्रीय उत्पाद 300 करोड़ रूपये का है। इसमें 100 करोड़ रूपये सरकार के द्वारा खर्च किया जाता है और 200 करोड़ रूपये उपभोग के लिए बचता है। अब मान लीजिय आगे सकल राष्ट्रीय उत्पाद 350 करोड़ रूपये का होगा, क्योंकि सरकार 100 करोड़ रूपये कर वसूल करेगी, इसलिए उपभोग के लिए शेष 250 करोड़ रू. होगा। इसलिए उपलब्ध आय, उपलब्ध उत्पादन से अधिक है जो कि 250 करोड़ रू. आय और 200 करोड़ रू. का उत्पादन है। 50 करोड़ रू. का अन्तर हीं अतिरिक्त मुद्रा की मात्रा है जो कि स्फीतिक अन्तराल कही जायेगी। इसे निम्न प्रकार से और सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है:

मदें **रूपये**

(करोड़ में)

1.	सकल राष्ट्रीय उत्पाद (चालू कीमतों पर)	350
2.	कर	100
3.	व्यय योग्य आय (1–2)	250
4.	स्फीति कीमतों से पहले सकल राष्ट्रीय उत्पाद	300
5.	सरकारी व्यय	100
6.	उपभोग के लिए उपलब्ध उत्पादन (4–5)	200
7.	स्फीतिक अन्तराल (3–6)	50

स्फीतिक अन्तराल को चित्र 7.3 के माध्यम से निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है:

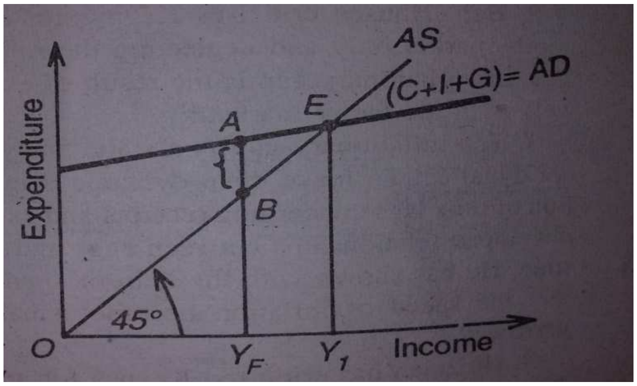

चित्र 7.3

चित्र 7.3 में Y_F पूर्ण रोजगार का स्तर है, AD समग्र मांग वक्र है जिसके घटक उपभोग, निवेश तथा सरकारी व्यय है अर्थात् C+I+G। यह समग्र पूर्ति (AS) रेखा 45^0 कोटि कोण, को E पर काटती है, OY_1 आय स्तर पर पूर्ण रोजगार स्तर से उंचा है। इसलिए समग्र मांग की AB मात्रा जो समग्र पूर्ति से अधिक है वह स्फीतिक अन्तराल होगी। AD/AS मॉडल में स्फीतिक अन्तराल को निम्न चित्र में देखा जा सकता है:

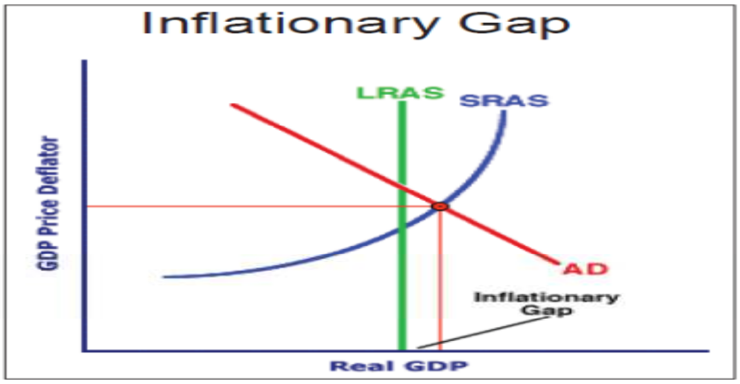

स्फीतिक अन्तराल को बचतों में वृद्धि करके समग्र मांग में कमी कर समाप्त किया जा सकता है परन्तु यह अवस्फीतिक प्रवृतियों को उत्पन्न कर सकता है। स्फीतिक अन्तराल को करों में वृद्धि तथा व्यय में कमी करके भी कम किया जा सकता है।

स्फीतिक अन्तराल की अवधारणा की फ्रीडमैन, कूपमैन तथा हैन्सन द्वारा आलोचना की गई। मूलतः यह एक प्रवाह की अवधारणा है और यह केवल वस्तु बाजार तक हीं सीमित है और यह एक स्थैतिक विश्लेषण है। होल्जमैन ने गुणक तकनीकि से स्फीतिक अन्तराल क व्याख्या करने के लिए कीन्स की आलोचना की है।

7.6 मुद्रा स्फीति के सिद्धान्त

मुद्रा स्फीति पर बहुत से आर्थिक साहित्य एवं मौद्रिक सिद्धान्त उपलब्ध है परन्तु कोई भी ऐसा सिद्धान्त नहीं हैं जो विश्व क विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं पर मुद्रा स्फीति के प्रभावों की ब्याख्या करने में समर्थ हो। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से हीं मुद्रा स्फीति के कारणों की खोज के लिए वाद–विवाद जारी है। मुख्यतः स्फीति के पांच प्रमुख सिद्धान्त हैं:

1. मांग जन्य या स्फीति का मौद्रिकीवादी दृष्टिकोण
2. लागत जन्य सिद्धान्त
3. संरचनात्मक मुद्रा स्फीति
4. क्षेत्रीय या मांग परिवर्तन स्फीति
5. लागत तथा मांग जन्य मिश्रित स्फीति

1. मुद्रा स्फीति का मौद्रिकवादी दृष्टिकोण या मांग जन्य स्फीति

मांग जन्य स्फीति का कारण उपलब्ध वस्तुओं की आपूर्ति से अधिक मांग का होना। यह तब उपस्थित होती है जब मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के परिणाम स्वरूप समग्र मांग वर्तमान मूल्य पर उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं की अपेक्षा तेजी से बढ़ती है। यह अत्याधिक मुद्रा द्वारा कुछ वस्तुओं पीछा करने की स्थिति है। फ्रीडमैन, हॉट्रे, गोल्डेन, वाईजर, हैन्सन जो मुद्रा स्फीति का मौद्रिक प्रतिभास मानते हैं, वे इ धारणा का प्रबल समर्थन करते हैं कि मुद्रा स्फीति का कारण अतिरिक्त मुद्रा आपूर्ति है। अतिरिक्त मुद्रा आपूर्ति के परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था में कुछ उत्पादन के अतिरिक्त मांग होगी परणिाम स्वरूप कीमतें बढ़ेंगी और ब्याज दर में कमी आयेगी तथा निवेश व्यय में वृद्धि होगी। चूंकि मुद्रा स्फीति मांग आधिक्य के कारण है, इसलिए यह समग्र मांग में कमी लोने वाली मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के द्वारा हीं नियंत्रित की जा सकती है।

आगे, मांग जन्य स्फीति से सम्बन्धित तीन उपागम हैं:

(क) स्फीति का मौद्रिक सिद्धान्त
(ख) स्फीति का कीन्सीयन सिद्धान्त
(ग) स्फीति का बेन्ट–हैन्सन मॉडल

(क) मांग जन्य स्फीति का मौद्रिक सिद्धान्त

मौद्रिकवादियों का विश्वास है कि अतिरिक्त मुद्रा आपूर्ति ही मुद्रा स्फीति का प्रमुख कारण है। वे मुद्रा स्फीति को मूलतः एक मौद्रिक घटना मानते हैं। उन्होंने फिशर द्वारा दिये गये मुद्रा के क्लासिकल सिद्धान्त पर अपना सिद्धान्त निर्मित किया। फिशर का समीकरण $MV=PT$ के रूप में व्यक्त किया जाता है, जहां M मुद्रा की पूर्ति, V मुद्रा की चलन और P सामान्य कीमत स्तर तथा T वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय या उपलब्ध वास्तविक उत्पादन है। फिशर के समीकरण के अनुसार V और T स्थिर है तथा कीमत स्तर मुद्रा की मात्रा से प्रत्यक्ष रूप से और समानुपातिक रूप से परिवर्तित होता है। क्लासिकल दृष्टिकोण

में समग्र पूर्ति स्थिर है और अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर है, परिणाम स्वरूप जब मुद्रा पूर्ति बढ़ती है यह अतिरिक्त मांग सृंजित करती है परन्तु पूर्ण रोजगार के कारण समग्र पूर्ति नहीं बढत्र सकती। इस कारण कीमतें बढ़ती है और कीमतों की लगातार वृद्धि की स्थिति को हीं वास्तविक मुद्रा स्फीति कहते हैं।

फ्रीडमैन का विचार हे कि मुद्रा स्फीति हमेशा और प्रत्येक जगह एक मौद्रिक प्रतिभास है जो कुल उत्पादन की अपेक्षा मुद्रा की मात्रा में अधिक तेजी से वृद्धि होने के कारण उत्पन्न होती है। वे इस बात पर जोर देते हैं कि मुद्रा स्फीति मांग में वृद्धि के कारण है जो कि लोगों को वस्तुओं तथा सेवाओं पर खर्च करने के लिए उपलब्ध मुद्रा की मात्रा में वृद्धि का परिणाम है, परिणाम स्वरूप कीमतों में वृद्धि की प्रवृति होती है। जब अर्थव्यवस्था में मौद्रिक विस्तार होता है, लोगों को बैंक साख के द्वारा अधिक मुद्रा उपलब्ध होती है, लोगों की मौद्रिक आय में वृद्धि होती है और यह तुरन्त वस्तुओं की मांग में वृद्धि लायेगी जो कि श्रम की मांग में वृद्धि लायेगी। अब श्रमिक अधिक मजदूरी की मांग करेंगें, फलस्वरूप साधनों की कीमतों में वृद्धि होगी, लाभ की मात्रा में कमी आयेगी तथा कीमतों में वृद्धि होगी। शुरूआत में कीमत वृद्धि कम और सामान्य होगी तथा लोग बाद में उसमें कमी की आशा करेंगें। परिणाम स्वरूप लोग अपनी संचित मुद्रा को सामायोजित करने का प्रयास करते हैं और कीमतें मुद्रा पूर्ति के अपेक्षा अधिक अनुपात में बढ़ना प्रारम्भ कर देती है। मुद्रा परिणाम सिद्धान्त को नीचे दिये चित्र 7.4'अ' तथा चित्र 7.4'ब' के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

चित्र 7.4'अ' एवं चित्र 7.4 'ब' में मांग और पूर्ति की शक्तियों से निर्धारित कीमत स्तर P है। सन्तुलन स्तर E पर पूर्णरोजगार पर Y_F आय का स्तर है जिस पर ब्याज दर R है। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के साथ LM वक्र दाहिनी ओर विवर्तित होगा और IS वक्र नये सन्तुलन विन्दू E_1 पर प्रतिच्छेदित करता है परिणाम स्वरूप ब्याज दर गिरकर R_1 हो जायेगी। चूंकि समग्र पूर्ति स्थिर है इसलिए IS वक्र में कोई परिवर्तन नहीं होगा। समग्र मांग बढ़कर D से D_1 हो जायेगी और यह अतिरिक्त मांग E_1 संतुलन स्तर पर प्रदर्शित है और इस कारण कीमतें बढ़कर P से P_1 हो जायेगी जैसा कि निम्नांकित चित्र 7.5 'ब' में दिखाया गया है। कीमतें मुद्रा के वास्तविक मूल्य के ठीक समान अनुपात में होगी।

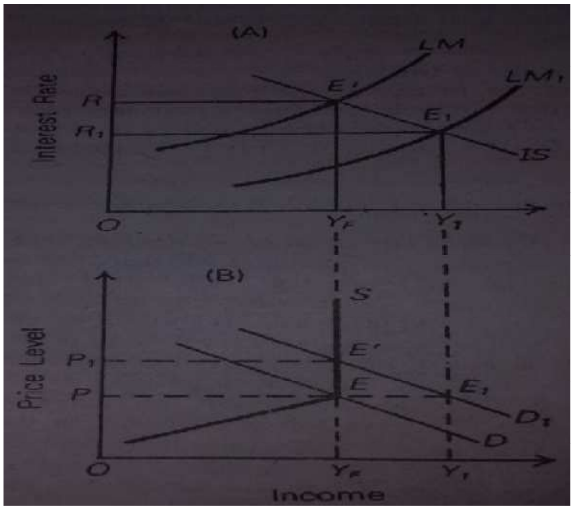

चित्र 7.4 'अ' एवं चित्र 7.4 'ब'

(ख) कीन्स का मांगजन्य स्फीति का सिद्धान्त

कीन्स का सिद्धान्त स्फीतिक अन्तराल की अवधारणा पर आधारित है। कीन्स के अनुसार मांगजन्य स्फीति का कारण समग्र मांग की अधिकता है। यह मांग उपभोक्ता, व्यावसायिक तथा सरकार जैसे विभिन्न स्त्रोतों द्वारा की जाती है। समग्र मांग उपभोग मांग, निवेश मांग तथा सरकारी व्यय का योग है। जब पूर्णरोजगार स्तर पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति से अधिक होती है तो स्फीतिक अन्तराल उत्पन्न होता हैं। स्फीतिक अन्तराल जितना हीं अधिक होगा मुद्रा स्फीति उतना हीं अधिक होगी। कीन्स के अनुसार मुद्रा स्फीति तभी होती है जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर को प्राप्त कर ले। पूर्ण रोजगारीय सन्तुलन के पहले यदि मुद्रा की मात्रा बढ़ती है तो ब्याज दर में कमी आयेगी जिसका अर्थ निवेश में वृद्धि है। बदले में बढ़ी हुई समग्र मांग के साथ उत्पादन स्तर पर उसका सकारात्मक प्रभाव होगा जब तक कि अर्थव्यवस्था पूर्णरोजगार स्तर को प्राप्त न कर ले। एक बार पूर्णरोजगारीय संन्तुलन के प्राप्त हो जाने के बाद मांग अधिक्य कीमतों में स्थायी वृद्धि लायेगा। कीन्सीयन मॉडल नीचे दिये गये चित्र 7.5 'अ' एवं 7.5 'ब' में प्रदर्शित हैः

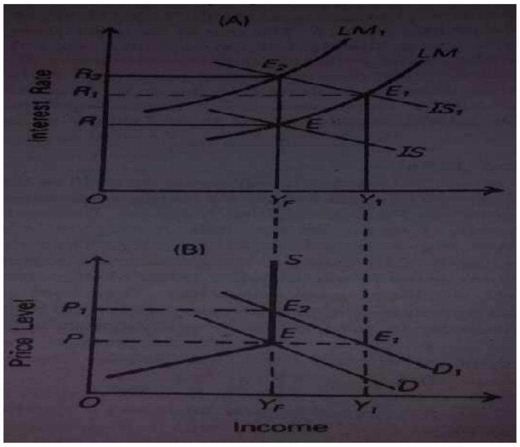

चित्र 7.5 'अ' एवं चित्र 7.5 'ब'

माना कि अर्थव्यवस्था बिन्दु E पर सन्तुलन में है जिस पर LM वक्र एवं IS वक्र को काटता है और ब्याज की दर R पर पूर्ण रोजगार का स्तर Y_F है। चित्र 7.5 'ब' में देखा जा सकता है कि D वक्र, S वक्र को बिन्दु E पर काट रहा है और इस स्तर पर मूल्य P निर्धारित होता है। अब सरकारी व्यय में वृद्धि होती है जो IS वक्र को विवर्तित करके IS_1 कर देती है और नया सन्तुलन विन्दू E_1 पर निर्धारित होगा जहां आय और ब्याज दर दोनों में वृद्धि होती है जो मांग में D से D_1 की वृद्धि को प्रदर्शित करता है। मांग की यह वृद्धि कीमतों में P से P_1 की वृद्धि लायेगी। एक नया संतुलन उच्च ब्याज दर R_2 पर स्थापित होगा, यद्यपि पूर्णरोजगार का स्तर Y_F हीं है।

(ग) बेन्ट–हैन्सन का अतिरिक्त मांग मॉडल

बेन्ट हैन्सन अतिरिक्त मांग के प्रवैगिक मॉडल के जनक हैं जिसमें उन्होंने वस्तु बाजार तथा साधन बाजार के लिए दो अलग–अलग कीमत स्तर का निर्धारण किया है।

सिद्धान्त की मान्यताएं:

1. वस्तु तथा साधन दोनों बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता है,
2. कीमतें समान व स्थिर होंगी,
3. एक परिवर्तनीय साधन केवल एक वस्तु का उत्पादन करेगा,
4. उत्पादन का स्तर स्थिर है।

हैन्सन मॉडल को नीचे दिये गये चित्र 7.6 से ब्याख्या की जा सकती है:

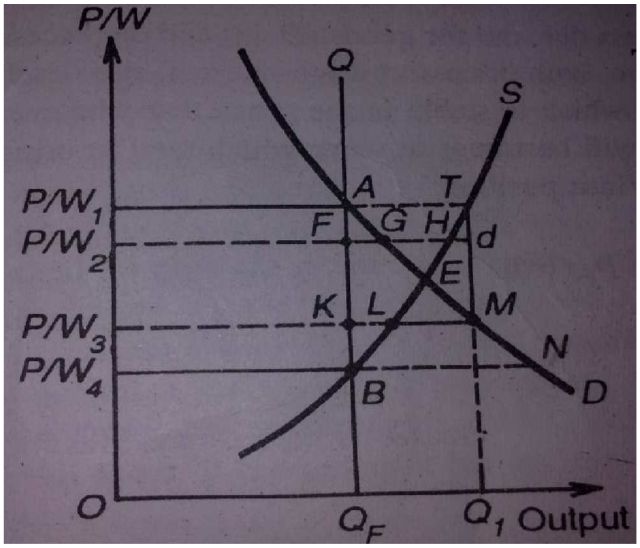

चित्र 7.6

चित्र में OX अक्ष पर उत्पादन तथा OY अक्ष पर कीमत–मजदूरी अनुपात प्रदर्शित है। S पूर्ति वक्र हे जो P/W अनुपात से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है और D मांग वक्र है जो P/W से विपरीत रूप से संबंधित है। OY अक्ष के समानान्तर रेखा Q_F पूर्ण रोजगार स्तर पर उत्पादन करती है। D और Q के बीच का अन्तर स्फीतिक अन्तराल है जो वस्तु बाजार में है, इसी प्रकार, Q और S के बीच का अन्तर साधन बाजार के स्फीतिक अन्तराल है। दोनों वक्र E विन्दू पर एक दूसरे को काटते हैं जो की पूर्ण रोजगार स्तर के दाहिनी ओर हैं यह बताता हे कि वस्तु तथा साधन बाजार में धनात्मक अन्तर है जो कि वास्तव में सम्भव नहीं हैं। यह केवल तभी घटित हो सकता है यदि स्फीति के लिए मौद्रिक दबाव हो और यह तभी हो सकता है तब P/W, P/W_2 से P/W_4 के बीच हो। हैन्सन नक अपनी व्याख्या के लिए दो समीकरणों का प्रयोग किया हैः

$dp/dt = f(D-Q)$ (i)

$dw/dt = F(S-Q)$ (ii)

dp/dt कीमतों में परिवर्तन तथ dw/dt मजदूरी में परिवर्तन की मा करता हैं। यदि D-Q बराबर हो शून्य के अर्थात् $dp/dt = 0$ और बराबर हो शून्य के अर्थात् $dw/dt = 0$, तो यह स्थैतिक संतुलन की अवस्था को प्रदर्शित करता है। यदि दोनों में अन्तर धनात्मक है तो मूल्य तथा मजदूरी में धनात्मक प्रवृत्ति परिलक्षित होगी। इसका अर्थ है कि यदि वस्तुओं की अतिरिक्त मांग तथा साधनों की अतिरिक्त मांग धनात्मक है तो इसका कीमतों और मजदूरी पर साथ–साथ धनात्मक प्रभाव होगा।

मौद्रिकवादी मॉडल में, मुद्रा स्फीति की दर वास्तविक आय में वृद्धि दर का परिणाम है साथ हीं यह वास्तविक शेष की आय–मांग लोच और स्फीतिक प्रवृत्तियों से

सम्बन्धित प्रत्याशाओं के परिणाम तथा मुद्रा स्टॉक में समय–पश्चात होने वाला परिवर्तन से भी सम्बन्धित है। मुद्रा स्टॉक में वृद्धि की दर को बर्हिजात मान लिया गया है। मॉडल का प्रदर्शन निम्नवत् है:

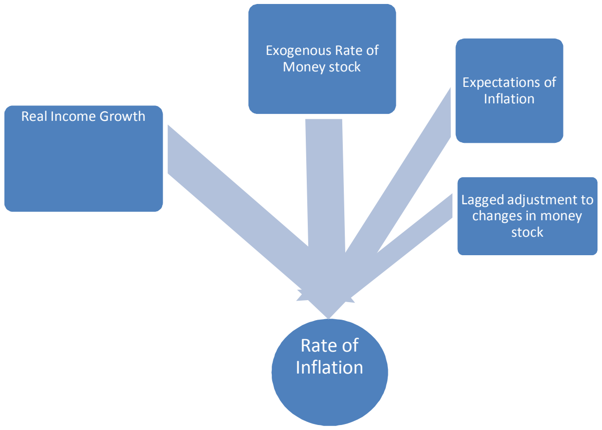

मानक मौद्रिकवादी मॉडल

वोगल ने 1974 में संरचनात्मक रूप में स्फीति की प्रत्याशा शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि अल्पविकसित देशों के लिए प्रत्याशाओं का अध्ययन करते समय हमें संरचनात्मक चरों का भी प्रयोग करना चाहिए।

मौद्रिकवादियों के अनुसार मुद्रा स्फीति का प्रमुख कारण, मुद्रा पूर्ति में वृद्धि, सरकारी व्यय में वृद्धि और घाटे की वित व्यवस्था है।

2. लागत जन्य स्फीति का सिद्धान्त

मुद्रा स्फीति जिसके कारण लागतों में वृद्धि हो उसे लागत जन्य या लागत–प्रेरित स्फीति कहते हैं। इसे एक सिद्धान्त के रूप में 1960 के बाद 70 के दशक में प्रस्तुत किया गया है। यह पाया गया है कि विकसित देशों में मांग में कमी के कारण उत्पादन घट रहा था, लेकिन कीमतें बढ़ रही थी, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया कि मुद्रा स्फीति लागतों में वृद्धि तथा उत्पादन और रोजगारर में कमी के फलस्वरूप भी हो सकती है। ए. एस. कम्पागगाना के शब्दों में ''लागत–प्रेरित स्फीति लागतों में वृद्धि का परिणाम है, इसकी विशेषता समग्र मांग में कमी, बेरोजगार संसाधन तथा अतिरिक्त उत्पादन क्षमता है।'' जे. सी. रैनलर्ट यह मानते है कि, ''लागत–प्रेरित स्फीति के सिद्धान्त का आधार यह है कि व्यवसायी तथा श्रमिक दोनों के संगठित समूह उनके उत्पादों या सेवाओं के लिए पहले से उच्चतर कीमत तय करते हैं जो कि वे पूर्ण प्रतियोगी मूल्य पर प्राप्त कर रहे होते हैं।''

रिचर्ड क्वान्ट और विलियम ट्रफ ने 1959 ई. में उनकी कृति ''न्यू इन्फलेशन'' में यह व्यक्त किया कि मजदूर संघों के दबाव के कारण मजदूरी में वृद्धि मुद्रा स्फीति का कारण है। मजदूरी की यह वृद्धि आगतों की लागत में वृद्धि करती है और परिणाम स्वरूप रहन–सहन के लागत सूचकांक में वृद्धि होती है। लागत जन्य स्फीति के दो रूप हैं:

1. मजदूरी वृद्धि एवं
2. लाभ वृद्धि।

लागत प्रेरित स्फीति को नीचे दिये गये चित्र 7.7 की सहायता से स्पष्ट की जा सकती है:

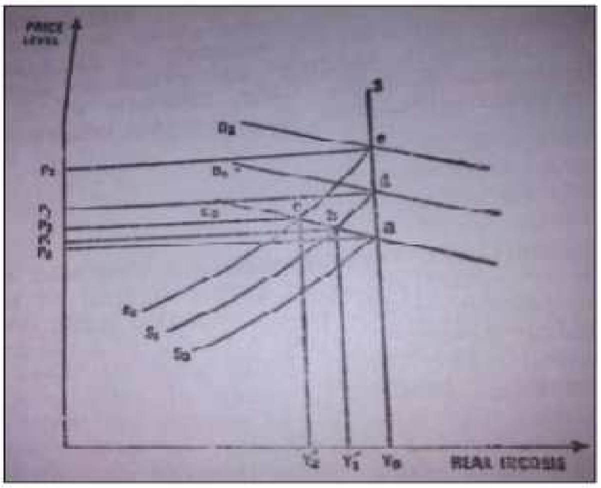

चित्र 7.7

चित्र 7.7 में स्पष्ट है कि पूर्ति वक्र S_0, से S_1 उपर की ओर खिशक जाता है तथा अन्त में S_2 हो जाता है। SoS मूल पूर्ति वक्र है। और D_O मूल मांग वक्र है। श्रम संघों के दबाव के कारण मजदूरी बढ़ जाती है। परिणाम स्वरूप पूर्ति वक्र SoS से S_1oS_1 हो जाता है और कीमतें बढ़कर P_0 से P_1 तथा इसी प्रकार आगे भी हो जाता है। इससे सम्बन्धित उत्पादन में गिरावट होती है और यह Y_0 से Y_1 और इसी प्रकार आगे भी होगा। इस प्रकार कीमतों में वृद्धि के साथ बेरोजगारी भी बढ़ी है। मौद्रिक मजदूरी में प्रत्येक वृद्धि के साथ बेरोजगारी भी बढ़ी है। मौद्रिक मजदूरी प्रत्येक वृद्धि निम्नतर उत्पादन, उच्चतर कीमत और फलस्वरूप बेरोजगारी की ओर ले जायेगी।

3. मुद्रा स्फीति का संरचात्मक सिद्धान्त

अल्पविकसित देशों के लिए कई लैटिन अमेरिकी अर्थशास्त्रियों मिर्डल, स्टेंस्टेन आदि के द्वारा अलग–अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया, जिन्होंने इस बात पर बल दिया कि अल्पविकसित देशों में बाजार की अपूर्णता तथा बहुत सी जड़ता ब्याप्त होती है। मुख्य सीमाओं में इन देशों में अवसंरचना का अवरोध विदेशी विनिमय का अवरोध बजट संसाधन अन्तराल तथा खाद्यान्न की कमी आदि हैं।

स्फीति के संरचनात्मक मॉडल की व्याख्या निम्न चार्ट के माध्यम से की जा सकती है:

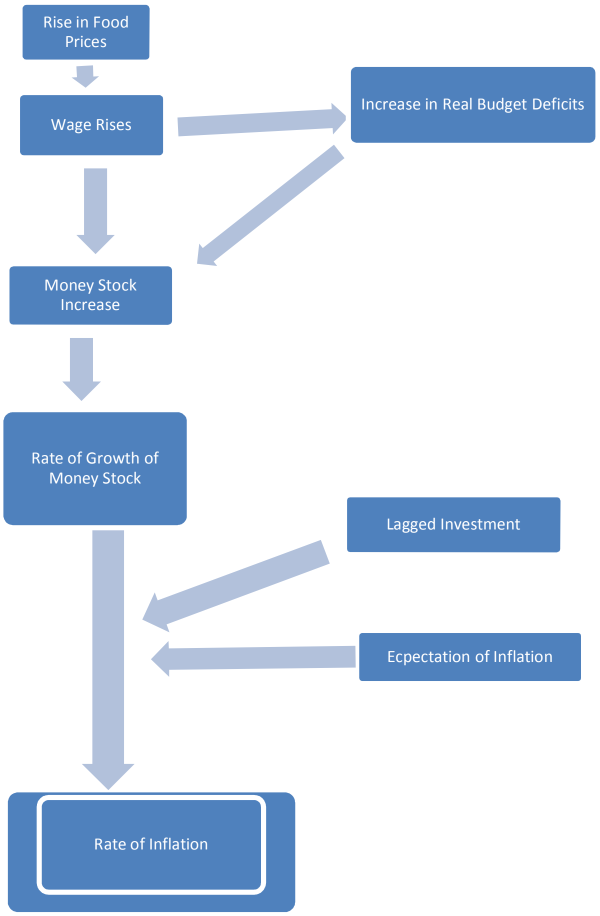

इसलिए संरचनात्मक स्फीति के सिद्धान्त के प्रमुख तीन कारणों को निम्न रूप से रेखांकित किया जा सकता है:

1. कृषि वस्तुओं का मूल्य
2. सामान्य मूल्य स्तर
3. मजदूरी

जैसे कृषि वस्तुओं की मांग बढ़ती है उनका मूल्य भी बढ़ता है क्योंकि त्रुटिपूर्ण भूमि काश्तकारी प्रणाली के कारण कृषि वस्तुओं की पूर्ति नहीं बढ़ सकती, भंडारण तथा वितरण सुविधाओं का अभाव, बुरा मानसून आदि इसके अन्य कारण हैं। खाद्य उत्पादों के मूल्य में वृद्धि के साथ हीं श्रमिक मजदूरी में वृद्धि के लिए दबाव डालेंगे और यह पुनः कीमतों और मांग में वृद्धि लायेगी, जैसा कि नीचे दिये गये चित्र 7.8 में प्रदर्शित है:

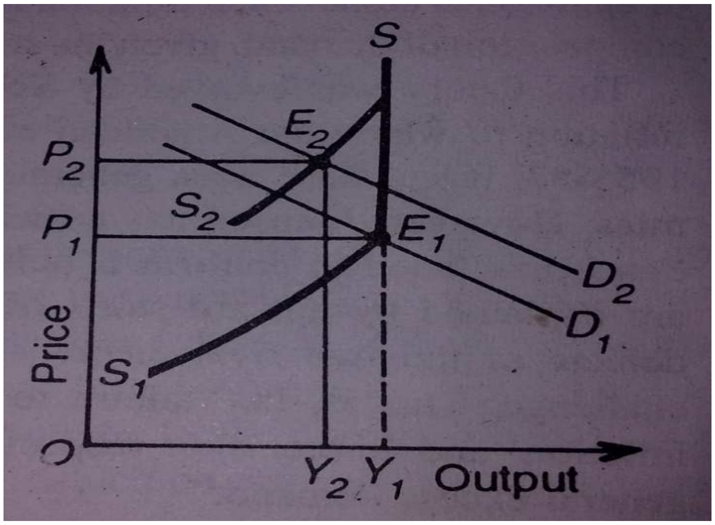

चित्र 7.8

चित्र से कीमतों पर मजदूरी में वृद्धि का प्रभाव देखा जा सकता है। मजदूरी में वृद्धि के कारण समग्र मांग बढ़कर D_1 से D_2 हो जाती है। लेकिन पूर्ति वक्र बायीं ओर खिशक कर S_1 से S_2 हो जाती है क्योंकि अपूर्णता और जड़ता के कारण उत्पादन में वृद्धि नहीं हो सकती है। इस कारण बिन्दू E_1 के बाद पूर्ति वक्र स्थिर हो गया है। नया पूर्ति वक्र, D_2 मांग वक्र को E_2 विन्दू पर काट रहा है जहां कीमतें बढ़ रही है परन्तु उत्पादन पूर्व सन्तुलन स्तर से कम है।

अल्पविकसित देशों में संरचनात्मक स्फीति के प्रमुख कारणों में, आयात प्रतिस्थापकों की उच्च लागत, निर्यात वृद्धि की निम्न दर, विदेशी विनिमय में मंद वृद्धि, मुद्रा का अवमूल्यन, तथा व्यापार की शर्तों में गिरावट आदि हैं। अन्य महत्वपूर्ण कारक इन देशों में त्रुटिपूर्ण कर प्रणाली है।

4. क्षेत्रीय मांग परिवर्तन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन चार्ल्स शुल्ज द्वारा किया गया, जिन्होंने यह व्यक्त किया कि मुद्रा स्फीति समग्र मांग के घटकों में परिवर्तन का परिणाम हैं। यह सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों में मजदूरी तथा कीमत मांग में परिवर्तन के फलस्वरूप उपर की ओर लोचशील होती है परन्तु जब मांग घटती है तो नीचे की ओर लोचशील नहीं होती। इस प्रकार यह सिद्धान्त मांग के घटकों पर बल देता है। मान लीजिए कुछ उद्योगों के उत्पादों की मांग प्रर्याप्त रूप से बढ़ जाती है और अन्य उद्योगों की मांग उतनी हीं मात्रा में कम हो जाती हैं। इस कारण समग्र मांग स्थिर रहती है। विस्तार वाले उद्योगों में श्रम की मांग बढ़ती है और इससे उनमें मजदूरी भी बढ़ती है कीमतें उपर की ओर बढ़ती हैं। परन्तु उद्योगों में मजदूरी गिरती नहीं है जब मांग कम हो रहीं होती है क्योंकि मजदूरी में कमी के प्रति जड़ता या स्थिरता होती है। इस प्रकार कुल मांग बढ़ जायेगी।

5. लागत प्रेरित तथा मांग प्रेरित मिश्रित स्फीति

मिश्रित स्फीति लागत–प्रेरित तथा मांग–प्रेरित दोनों कारकों से सम्बन्धित है। यह मूलतः अतिरिक्त मांग और बढ़ती लागतों का संयोग है जिससे अर्थव्यवस्था में स्फीति होती है, इसीलिए इसे मिश्रित मुद्रा स्फीति कहा जाता है। दोनों दृष्टिकोण एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक है। कई बार लागत प्रेरित कारक मांग कारकों के साथ मिलकर अर्थव्यवस्था मुद्रा स्फीति को उत्पन्न करते हैं।

7.7 मुद्रा स्फीति का कीमत वृद्धि मॉडल

कीमत वृद्धि मॉडल सिद्धान्त गार्डनर एकले द्वारा दिया गया और बाद में इसका विकास हॉजमैन तथा ड्यूजनबरी द्वारा स्वतंत्र रूप से अलग–अलग किया गया। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि मजदूरी तथा कीमतें दोनों प्रशासित होती हैं तथा मजदूरों एवं व्यवसायी फर्मों के द्वारा तय की जाती है। वस्तुओं के दाम तय करते समय फर्में कच्चे माल तथा श्रम लागतों में अपना लाभ जोड़ देती है। मजदूरी का निर्धारण निर्वाह लागतों तथ कीमत वृद्धि के आधार पर होता है। इस प्रकार कीमतों में वृद्धि के अन्तर्गत सभी लागतें तथा लाभ दोनों शामिल होते हैं। एकले कहते है कि ''मुद्रा स्फीति या तो स्वायत्त रूप से व्यावसायिक कीमतों में वृद्धि या श्रम कीमतों में वृद्धि से प्रारम्भ हो सकती है।'' एकले ने स्फीति की सर्जित श्रृंखला का विचार दिया, जिसका अर्थ है कि फर्म तथा श्रमिक दोनों कीमतें उस अनुपात में तय करते हैं जिस अनुपात में वे स्वयं कीमतों का भुगतान करते हैं। मुद्रा स्फीति इसलिए होती है क्योंकि यदि एक फर्म कीमतें बढ़ती है तो अन्य फर्मों की लागतें बढ़ जाती है और यह प्रक्रिया ही लगातार चलती रहती है। दूसरी ओर यदि उपभोक्ताओं को वस्तुएं उच्च मूल्य पर खरीदनी पड़ती है तो उनकी निर्वाह लागतें बढ़ जाती है जिससे वे उंची मजदूरी की मांग करते हैं, यह परिस्थिति एक जाल की भांति होती है और इसका हल तभी किया जा सकता है जब श्रमिकों की उत्पादकता और दक्षता बढ़ायी जा सके। लेकिन यदि दोनों पक्ष उत्पादकता का 100 प्रतिशत लाभ लेना चाहे तो परिणाम और भयानक होगा और मुद्रा स्फीति में अत्याधिक वृद्धि होगी। इस प्रकार की मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए एकले ने राष्ट्रीय मजदूरी तथा कीमत आयोग द्वारा मजदूरी तथा कीमतों के निर्देशन का सुझाव दिया।

7.8 स्टैगफलेशन की अवधारणा

यह स्थिति अधिकांशतः विकसित देशों जैसे यू.एस.ए. तथा यू.के. से सम्बन्धित है। हाल के वर्षों में इन देशों में स्फीति के साथ हीं बेरोजगारी में वृद्धि तथा उत्पादन में गिरावट देखी गई है। जो कि आर्थिक गतिहीनता तथा मुद्रा स्फीति का समन्वित रूप है। पी. ए. सैमूएलसन के अनुसार, ''स्टैगफलेशन में मजदूरी तथा कीमतें बढ़ती हैं तथा साथ–हीं–साथ लोगों को रोजगार नहीं मिलता है और फर्मों ग्राहकों को नहीं प्राप्त कर पाती जिनके लिए उनके प्लॉन्ट उत्पादन कर सकें।'' पेंगुइन अर्थशास्त्र के शब्दकोष के अनुसार, ''स्टैगफलेशन अर्थव्यवस्था की ऐसी स्थिति है जिसमें आर्थिक क्रिया–कलाप घट रहे हो तथा मजदूरी एवं कीमतें लगातार बढ़ती हों।''

स्टैगफलेशन को मंदी–युक्त स्फीति के नाम से भी जाना जाता है। स्टैगफलेशन के कारणों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के कई विचार हैं। अर्थशास्त्रियों का पहला समूह मानता है कि यह परिस्थितियों के संयोग का परिणाम हैं, जिसमें सरकार की

मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति की विशेष नीतियां शामिल हैं। दूसरा समूह यह मानता है कि यह मुद्रा स्फीति की प्रत्याशाओं में धीरे–धीरे होने वाले परिवर्तन का परिणाम है।

इंग्लैण्ड के पूर्व प्रधानमंत्री ने 1977 में स्वीकार किया था कि सामान्यतः यह समझा जाता है कि मंदी से बाहर निकलने के लिए आप अपने अनूसार खर्च कर सकते हो, करों में कमी करके तथा सरकारी व्यय को बढ़ा के रोजगार को बढ़ाया जा सकता है। मैं स्वयं स्पष्ट रूप से कहता हूं कि यह अर्थव्यवस्था में निःक्षेप तथा स्फीति के रूप में कार्य किया। और प्रत्येक समय सामान्य बेरोजगारी स्तर में वृद्धि हुई। उच्च स्फीति के बाद उच्च बेरोजगारी हीं पिछले 20 वर्षों का इतिहास रही है।''

हैबरलर के शब्दों में ''मुद्रा स्फीति के साथ बेरोजगारी का संयोग बहुत संवेदनशील मामला है, यदि हम स्फीति से न लड़े तो मंदी को बढ़ाते हैं।''

7.9 मुद्रा स्फीति से सम्बन्धित अन्य अवधारणायें

अपस्फीति

मुद्रा अपस्फीति वह स्थिति है जिसमें कीमतें गिरती हैं तथा रोजगार और उत्पादन में कमी होती है। प्रो. पॉल इंजिंग के अनुसार ''यह असन्तुलन की स्थिति हैं जिसमें आर्थिक शक्तियों का संकुचन होता है अथवा यह कीमत स्तर में कमी का परिणाम है।'' मुद्रा अपस्फीति प्रभावी मांग में कमी का परिणाम है।

संस्फीति

यह जानबूझकर कीमतों में वृद्धि के माध्यम से अर्थव्यवस्था को मंदी से निकालने के लिए की जाती है। प्रो कोल के अनुसार, ''मंदी से छुटकारा पाने के लिए जानबुझकर की जाने वाली स्फीति हीं संस्फीति है।''

मुद्रा प्रत्यावस्फीति

यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा रोजगार के स्तर को बिना प्रभावित किये कीमतों में कमी लायी जाती है।

मुद्रा स्फीति, अवस्फीति, संस्फीति तथा प्रत्यावस्फीति की अवधारणाओं को नीचे दिये गये चित्र 7.9 से स्पष्ट किया जा सकता हैः

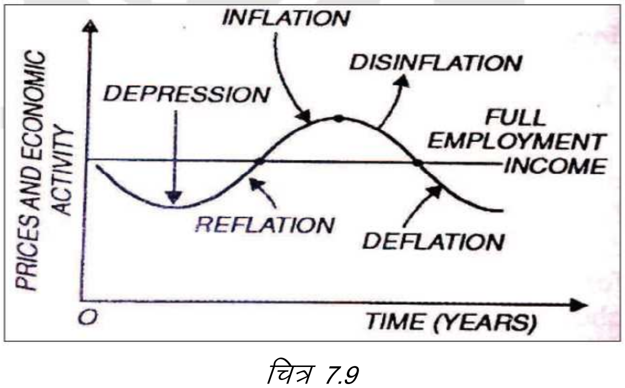

चित्र 7.9

7.10 मुद्रा स्फीति के कारण एवं नियंत्रण

मुद्रा स्फीति अर्थव्यवस्था पर हानिकारक प्रभाव डालती है। स्फीति के सामान्य कारणों में, अतिरिक्त मांग, लागतों में वृद्धि और लाभ में वृद्धि शामिल हैं।

मांग पक्षीय कारण

1. व्यय में वृद्धि
2. सस्ती मुद्रा नीति
3. काला धन
4. घाटे की वित व्यवस्था
5. सरकारी व्यय में वृद्धि
6. लोगों की आय में वृद्धि
7. मुद्रा पूर्ति में वृद्धि
8. निजी क्षेत्र का विस्तार
9. सार्वजनिक ऋण का भुगतान

पूर्ति पक्षीय कारण

1. कच्चे माल की कमी
2. मौसम और मानसून की अनिश्चितता
3. प्राकृतिक संकट एवं आपदायें
4. कृत्रिम दुर्लभता
5. अन्तर्राष्ट्रीय कारण
6. एक पक्षीय उत्पादन
7. निर्यात में वृद्धि

7.11 मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के उपाय

सरकार द्वारा मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न उपाय निम्नलिखित हैः

1. **मौद्रिक उपायः** निम्नलिखित तीन उपाय मौद्रिक नीति के अन्तर्गत आते हैः

सरकार द्वारा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए किये जाने वाले मौद्रिक उपाय

2. **राजकोषीय उपायः** सरकार द्वारा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित राजकोषीय उपाय किये जाते हैः

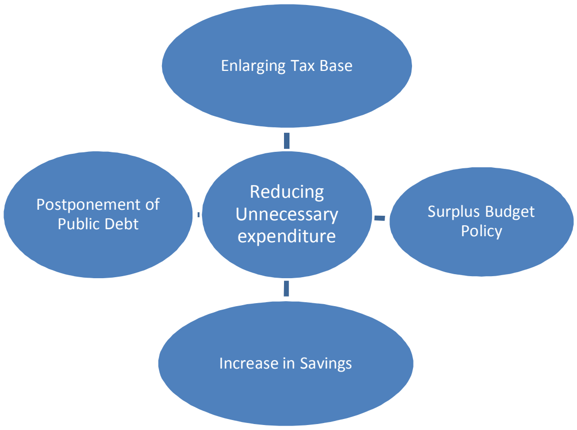

मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए सरकार द्वारा अपनाये गये उपाय

3. **सामान्य उपायः** सरकार द्वारा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए किये जाने वाले सामान्य उपाय निम्नलिखित हैः

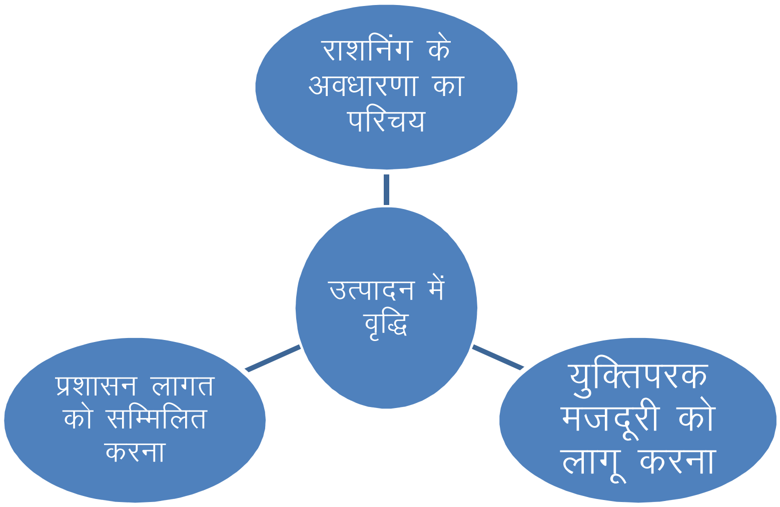

मुद्रा स्फीति के सामान्य उपाय

7.12 मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी

ए. डब्लू फिलिप्स ने 1958 में मुद्रा स्फीति और बेरोजगारी के बीच एक अनुभव जन्य सम्बन्ध प्रस्तुत किया जिसे सामान्यतः फिलिप्स वक्र परिकल्पना के रूप में जाना जाता है। उन्होंने इंगलैण्ड के सम्बन्ध में 1861 से 1957 के बीच आंकड़ों का विश्लेषण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि मौद्रिक मजदूरी में परिवर्तन की दर (w) तथा बेरोजगारी मे परिवर्तन की दर (u) के बीच बिपरीत और गैर–रैखिक सम्बन्ध रहा है। जब बेरोजगारी कम हे तो मौद्रिक मजदूरी बढ़ती है और इसके विपरीत स्थिति में बेरोजगारी अधिक रहीं तो मौद्रिक मजदूरी भी कम रही। इसे निम्नलिखित चित्र 7.10 से स्पष्ट किया जा सकता हैः

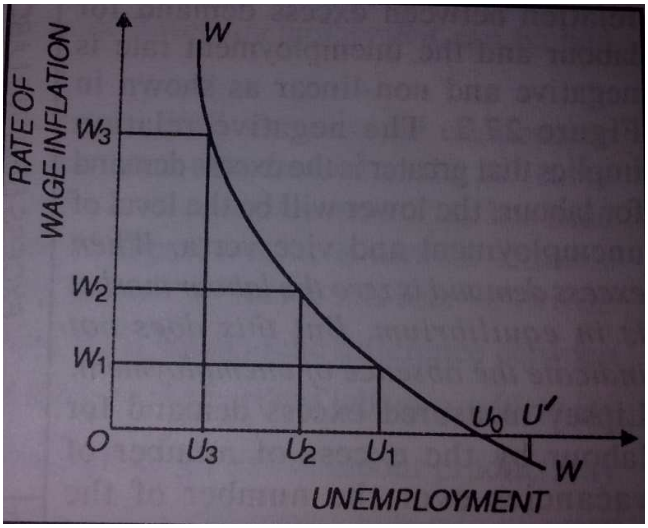

चित्र 7.10

फिलिप्स वक्र मूल विन्दू की ओर उन्नतोदर होता है तथा मुद्रा स्फीति आर बेरोजगारी के बीच विपरीत सम्बन्ध बताता है। OW_3 मजदूरी दर पर जो कि उच्च स्तर पर है बेरोजगारी न्यूनतम OU_3 पर है। यदि बेरोजगारी बढ़कर U_1 हो जाती है, तब मजदूरी की स्फीति कम हो जायेगी। ऋणात्मक मजदूरी स्फीति के लिए बेरोजगारी दर अत्यधिक उच्च होना चाहिए। WW वक्र यह दिखाता है कि जब मजदूरी दर उंची है तो बेरोजगारी कम हे और इसके विपरीत स्थिति में विपरीत सम्बन्ध है।

लिप्से मानते हैं कि मजदूरी वृद्धि तथा बेरोजगारी के बीच विपरीत समबन्ध की जांच दो सम्बन्धों के आधार पर की जा सकती हैः

1. अतिरिक्त श्रम की मांग और बेरोजगारी के बीच विपरीत और गैर–रैखिक सम्बन्ध पाया जाता है।
2. मौद्रिक मजदूरी दर और श्रम की अतिरिक्त मांग के बीच धनात्मक सम्बन्ध।

लिप्से के समीकरण को निमन प्रकार से लिखा जा सकता हैः

$$W = f(D-S/S)$$

जहां, W मजदूरी में स्फीति, जो अतिरिक्त श्रम की मांग में अनुपातिक परिवर्तन का बढ़ता हुआ फलन है। D और S क्रमशः मांग और पूर्ति फलन हैं। लिप्से ने फिलिप्स के मजदूरी स्फीति के स्थान पर अतिरिक्त मांग का प्रयोग किया है जैसा कि निम्न चित्र 7.11 में दिखाया गया हैः

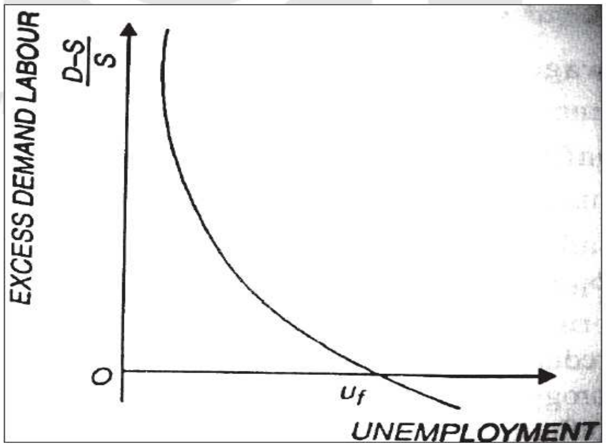

चित्र 7.1

मिल्टन फ्रीडमैन द्वारा दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र का व्युत्पन्न

फ्रीडमैन और फेल्प्स ने दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र प्रस्तुत किया और यह सिद्ध किया कि दीर्घकाल में मुद्रा स्फीति तथा बेरोजगारी में कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिए दीर्घकाल में वास्तविक तथा प्रत्याशित स्फीति दरों में कोई भिन्नता नहीं होगी। इसलिए फिलिप्स वक्र उर्ध्वाधर रेखा के रूप में हो जाता है। उनकी परिकल्पना को अनुकरणीय परिकल्पना के रूप में भी जाना जाता है। फ्रीडमैन ने प्राकृतिक बेरोजगारी की अवधारणा का प्रयोग किया जिस दर पर स्फीति में न तो बढ़ने की प्रकृति होती है और न हीं घटने की। इस स्तर पर वास्तविक स्फीति दर में प्रत्याशित स्फीति के बराबर होने की प्रवृत्ति होती है। इस नीचे दिये गये चित्र 7.12 से स्पष्ट किया जा सकता हैः

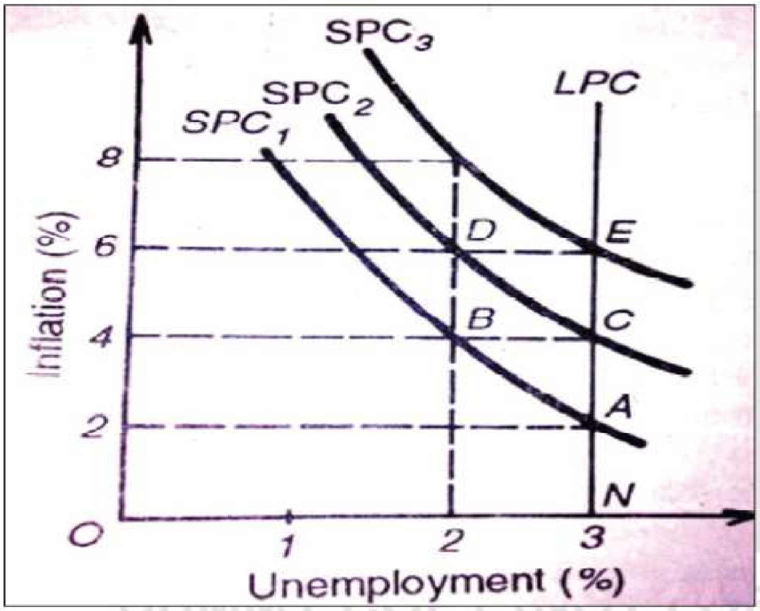

चित्र 7.12

प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था 2% की स्फीति दर पर है और प्राकृतिक रूप से बेरोजगारी की दर 3% है, अब यदि लोग भविष्य में भी स्फीति 2% के स्तर पर रहने की आशा करते हैं तथा सरकारी बेरोजगारी को घटाकर 3% से 2% पर करने के लिए विस्तारक मौद्रिक नीति का प्रयोग करती है तो इससे मांग बढ़ेगें और स्फीति बढ़कर 4% हो जायेगी। अब वास्तविक स्फीति दर प्रत्याशित स्फीति दर से अधिक है। अर्थव्यवस्था बिन्दु A से B पर पहुंचेगी तथा SPC_1 से SPC_2 पर क्योंकि श्रमिक केवल 2% की स्फीति दर की आशा कर रहे थे और उन्होंने इसकी अनुसार मजदूरी स्थिर की थी। जब वे अनुभव करते हैं कि वास्तविक स्फीति अधिक है तो वे अधिक मजदूरी की मांग करते हैं। और इसके परिणाम स्वरूप बेरोजगारी पुनः बढ़कर 2% से 3% हो जायेगी। यदि सरकार ने 2% की बेरोजगारी को स्थिर रखने का निर्णय लिया हो तो उसे उच्च स्फीति दर को स्वीकार करना पड़ेगा। अब 2% की बेरोजगारी दर के लिए SPC_2 वक्र विन्दू O पर पहुंचता है परन्तु वहां पर वास्तविक स्फीति दर 6% है जो कि प्रत्याशित 4% से अधिक है। पुनः जब उन्हें पता चलता है कि स्फीति में अन्तर है तो वे पुनः उच्चतर मजदूरी की मांग करेंगें, उत्पादन लागत में वृद्धि होगी तथा अल्पकालीन फिलिप्स वक्र विवर्तित होकर SPC_2 से SPC_3 हो जायेगा तथा बेरोजगारी पुनः बिन्दू E पर 3% के स्तर पर कायम हो जायेगी। यदि A, B और E को मिला दिया जाये तो हमें OY अक्ष के समानान्तर ही दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र प्राप्त होगा सि पर बेरोजगारी दर 3% है। इस प्रकार दीर्घकाल में मुद्रा स्फीति तथा बेरोजगारी में कोई सम्बन्ध नहीं होगा तथा फिलिप्स वक्र उर्ध्वाधर रेखा के रूप में होगा।

7.13 सारांश

मुद्रा स्फीति से तात्पर्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि से है। स्फीति के प्रमुख कारण, अतिरिक्त मांग, लागतों तथा लाभ में वृद्धि होना है। स्फीति के कारणों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री द्वारा कई सिद्धान्त दिये गये हैं। सभी प्रमुख सिद्धान्त मांग प्रेरित तथा लागत प्रेरित कारकों पर निर्भर हैं। लेकिन अल्पविकसित देशों के लिए संरचनात्मक सिद्धान्त बाजार की अपूर्णता, आर्थिक प्रणाली की जड़ता, आयात–निर्यात में असंतुलन आदि कारकों पर स्फीति निर्धारण के लिए जोर देता है। स्फीति का मिश्रित सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि मांग तथा पूर्ति दोनों कारक संयुक्त रूप से अर्थव्यवस्था में स्फीतिक दबाव के लिए उत्तरदायी है। एक दूसरी अवधारणा स्टैगफलेशन की है जो कि विकसित देशों से सम्बन्धित है और जिसका अर्थ उत्पादन में गतिहीनत के साथ कीमतों में वृद्धि होना है। मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए सरकार द्वारा मौद्रिक, राजकोषीय तथा सामान्य उपायों के अन्तर्गत कई सारे कदम उठाये जाते हैं। फिलिप्स ने सुझाव दिया कि हमें स्फीति तथा बेरोजगारी में सन्तुलन निकालना होगा जबकि फ्रीडमैन कहते हैं कि दीर्घकाल में दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होगा तथा कोई भी सन्तुलन सम्भव नहीं होगा।

7.14 शब्दावली

मुद्रा स्फीतिः मुद्रा स्फीति से आशय कीमतों में लगातार प्रर्याप्त वृद्धि होना है।

रेंगती मुद्रा स्फीतिः जब कीमतों में वृद्धि बहुत कम हो या 3% से भी कम दर से कीमतों की वृद्धि को रेंगती मुद्रा स्फीति कहते हैं।

स्टैगफलेशनः यह अर्थव्यवस्था की ऐसी स्थिति है जिसमें आर्थिक क्रिया–कलाप घट रहे हो तथा मजदूरी एवं कीमतें लगातार बढ़ती हों।''

मुद्रा अपस्फीतिः वह स्थिति है जिसमें कीमतें गिरती हैं तथा रोजगार और उत्पादन में कमी होती है।

7.15 बोध प्रश्न

(A) रिक्त स्थानों को भरें

1. जब कीमत में वृद्धि दो अंक या तीन अंक की दर से हो तब इसे ––––––– स्फीति के नाम से जानते हैं।
2. मुद्रा स्फीति वह स्थिति है जिसमें मुद्रा का मूल्य गिरती है अर्थात् ––––––– बढ़ता है।
3. अधिक मुद्रा द्वारा ––––––– वस्तुओं का पीछा करना।
4. स्फीतिक अन्तराल की अवधारणा को ––––––––––– द्वारा प्रतिपादित किया गया है।
5. लिप्से के अनुसार स्फीतिक अन्तराल वह मात्रा है जिससे पूर्ण रोजगार के आय स्तर पर –––––––––, समग्र आगम से अधिक होता है।

(B) सत्य या असत्य

1. अपस्फीति को कीमत में वृद्धि तथा उत्पाद व आगम के स्तर में कमी के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।
2. स्टैगफलेशन को मंदी की स्फीति के नाम से भी जानते हैं।
3. मुद्रा स्फीति का संरचनात्मक सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में विभिन्न प्रकार के बाजार में अपूर्णता एवं जड़ता होती है जो मुद्रा स्फीति के महत्वपूर्ण कारण हैं।
4. मौद्रिकवादी अर्थशास्त्री मानते हैं कि मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हीं मुद्रा स्फीति का प्रमुख कारण है।
5. शुद्ध मुद्रा स्फीति, पूर्ण रोजगार के संतुलन स्तर पर पहुंचने के उपरान्त हीं पाई जा सकती है।

7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. कुदती स्फीति, 2. कीमत, 3. कुछ, 4. जे.एम. कीन्स, 5. समग्र व्यय

(B) 1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. सत्य।

7.17 स्वपरख प्रश्न

1. बेन्ट हैन्सन के अतिरिक्त मांग मुद्रा स्फीति मॉडल की व्याख्या करें।
2. मुद्रा स्फीति के क्या कारण हैं और इसको नियंत्रित करने के लिए सरकार द्वारा क्या उपाय किये जाते हैं?
3. फिलिप्स वक्र परिकल्पना की चर्चा करें एवं उससे सम्बन्धित विभिन्न विचारों पर प्रकाश डालें।

4. लागत जन्य मुद्रा स्फीति का आलोचनात्मक पुनरीक्षण करें।

7.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Ahuja, H.L. (2001): "Macroeconomics Theory and Policy", S. Chand & Company Ltd., New Delhi.
2. Gupta S B (1997) Monetary Economics – Institutions, Theory and Policy. S Chand & Co Ltd., New Delhi.
3. Gupta S B (1979) Monetary Planning for India. Oxford University Press, Delhi.
4. Misra, S.K. and Puri,V.K. (2006): "Price Trends and Inflation", in 'Indian Economy', Himalaya Publishing House, Mumbai.
5. Mithani, D.M. (May 1993): "Shades of inflationary price spiral in India: need for price stability", in "Dynamics of Monetary-Fiscal Policy An Indian perspective", Himalaya Publishing House.

*****

इकाई 8 बेरोजगारी

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 बेरोजगारी का अर्थ
8.3 बेरोजगारी के प्रकार
8.4 बेरोजगारी के सिद्धान्त
8.4.1 बेरोजगारी के क्लासिकल सिद्धान्त
8.4.2 बेरोजगारी का कीन्सीयन सिद्धान्त
8.4.3 बेरोजगारी का मार्क्सवादी सिद्धान्त
8.5 बेरोजगारी के प्रभाव
8.6 बेरोजगारी के माप
8.7 बेरोजगारी की प्राकृतिक दर
8.8 बेरोजगारी को नियंत्रित करने के उपाय
8.9 भारतीय परिदृश्य
8.10 सारांश
8.11 शब्दावली
8.12 बोध प्रश्न
8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.14 स्वपरख प्रश्न
8.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- बेरोजगारी का अर्थ एवं प्रकार की व्याख्या कर सकें।
- बेरोजगारी का सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें।
- बेरोजगारी के प्रभाव को समझ सकें।
- बेरोजगारी के माप की व्याख्या कर सकें।
- बेरोजगारी को नियंत्रण करने के उपायों का वर्णन कर सकें।
- बेरोजगारी से संबंधित ऐतिहासिक पहलू को समझ सकें।

8.1 प्रस्तावना

बेरोजगारी को किसी व्यक्ति के काम करने की इच्छा के बावजूद उन्हें रोजगार नहीं उपलब्ध होना हीं बेरोजगारी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, बेरोजगारी तब पाई जाती है जब लोग बिना काम के होते हैं और पिछले चार सप्ताह से वे काम के तलाश में हैं। बेरोजगारी दूनिया के अधिकांश देशों में प्रमुख समस्या रही है। मंदी के दौरान यह अधिक जटिल हो जाती है। हाल के अमेरिकी सब–प्राईम संकट, यूरेपीय संकट और ग्रीस की अफरातफरी से दूनिया में बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार हुए थे। बेरोजगारी के कारण, परिणाम और निदान, समाज में विशेष रूप से अर्थशास्त्रियों में चिन्ता एवं विवाद का विषय रहा है। अर्थशास्त्रियों द्वारा बेरोजगारी की समस्या के हल के लिए बड़ी संख्या में अध्ययन किया गया है। क्लासिकल एवं

नियो–क्लासिकल अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि बाजार–शक्तियां स्वयं बेरोजगारी का हल कर सकती है। दूसरी ओर कीन्सीयन अर्थशास्त्री मानते हैं कि बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीय है और इसके हल के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। मार्क्सवादियों का विचार है कि बेरोजगारी का कारण पूंजीवाद है। अतः इसके निदान के लिए पूंजीवाद की समाप्ति आवश्यक है। बेरोजगारी के तुलनात्मक सिद्धान्तों के साथ हीं कुछ विशिष्ट सिद्धान्त भी है जो विशिष्ट कोटि की बेरोजगारी का अध्ययन करते हैं। अध्ययन सामग्री की इस इकाई में, हमलोगों ने बेरोजगारी की परिभाषा, उसके प्रकार, बेरोजगारी के सिद्धान्त आदि को समाविष्ट किया है। जो देश में बेरोजगारी की समस्या को कम करने में सहायक हो सकता है।

8.2 बेरोजगारी का अर्थ

बड़ी संख्या में शोधार्थियों ने बेरोजगारी को अपने–2 ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। **गिलिन और गिलिन** के अनुसार, ''बेरोजगारी वह स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति जो सामान्य रूप से कार्य करने के योग्य है और उसकी इच्छा रखते हैं तथा अपनी और परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए पारिश्रमिक पर निर्भर है, लाभप्रद रोजगार प्राप्त करने में असफल रहता है।''

कार्ल पिब्रेन के अनुसार, ''बेरोजगारी श्रम बाजार की वह दशा है जिसमें श्रम शक्ति की आपूर्ति उपलब्ध अवसरों से अधिक है।''

फेयर चाईल्ड के शब्दों में, ''बेरोजगारी सामान्य मजदूरी तथा अन्य शर्तों पर लाभप्रद रोजगार से अनैच्छिक रूप से और बलकृत अलगाव है।''

सर्जेन्ट फलोरेंष कहते हैं, ''बेरोजगारी को कार्य करने योग्य व्यक्तियों की अतिरिक्त आपूर्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

8.3 बेरोजगारी के प्रकार

बेरोजगारी एक सार्वभौमिक समस्या है तथा अर्थशास्त्रियों ने बेरोजगारी को कई वर्गों में वर्गीकृत किया है। जैसेः– चक्रीय बेरोजगारी, घर्षणजनित बेरोजगारी, संरचनात्मक बेरोजगारी और क्लासिकल बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी, कठोर बेरोजगारी, छिपी हुई बेरोजगारी, अवरोधात्मक बेरोजगारी, विकासात्मक और संक्षेपणात्मक बेरोजगारी। बेरोजगारी के कुछ मुख्य प्रकारों की व्याख्या निम्नलिखित हैः

1. संरचनात्मक बेरोजगारी

संरचनात्मक बेरोजगारी वह है जब काम के योग्य और उसकी इच्छा रखने वालों के लिए प्रर्याप्त रोजगार सृजन के लिए उत्पादक क्षमता का अभाव होता है। भारत में बेरोजगारी मुख्यतः संरचनात्मक प्रकृति की है, यहां उत्पादक क्षमता आवश्यकता से काफी कम है और उत्पादक क्षमता में वृद्धि की दर भी कम हे। दूसरी ओर त्वरित जनसंख्या वृद्धि के कारण श्रमशक्ति में तीव्र दर से वृद्धि हो रही है। इस प्रकार, यद्यपि रोजगार बढ़ रहा है परन्तु रोजगार अवसरों की धीमी वृद्धि दर के कारण बेरोजगार व्यक्तियों की निरपेक्ष संख्या वर्ष–दर–वर्ष बढ़ रही है।

2. प्रच्छन्न बेरोजगारी

इस प्रकार की बेरोजगारी भारत में बड़े पैमाने पर व्याप्त है। यह देश में कृषि तथा लघु उद्योगों में पाई जाती है। इसका अर्थ उत्पादन कार्य में आवश्यकता से अधिक व्यक्तियों का संलग्न होना है। उदाहरण के लिए मान लीजिए भूमि का कोई टूकड़ा किसी व्यक्ति द्वारा कृषि के लिए प्रयोग किया जाता है। इस व्यक्ति के दो पुत्र हैं, कुछ समय बाद ये बड़े होगें और उसी खेत में काम पर लग जायेगें। पहले एक व्यक्ति हीं वह कार्य कर रहा था और अब तीन व्यक्ति उसी काम को कर रहे हैं। प्रच्छन्न या छिपी बेरोजगारी की उसी काम की अधिक लोगों में बंटवारे के रूप में समझा जा सकता है। इस स्थिति में यदि उस काम से कुछ लोगों को हटा दिया जाये तो भी उस कार्य को शेष लोगों द्वारा निर्बाध रूप से किया जाता रहेगा। इसका अर्थ है कि ये लोग उत्पादन के उसी स्तर को बनाये रखने के लिए वहां पर आवश्यक नहीं है। इनका उस उतपान में योगदान शून्य है। अध्ययन में यह पाया गया है कि भारत में कृषि फर्मों मे अधिक श्रमिक वास्तव में कार्य मे बाधा खड़ी करते हैं इसलिए उत्पादन में कमी होती है।

3. चक्रीय बेरोजगारी

इस प्रकार के बेरोजगारी का कारण व्यापार चक्र हैं। व्यापार चक्रों के कारण वस्तुओं की मांग में उतार–चढ़ाव होते रहते हैं। जिसम समय मांग कम होती है तो उत्पादन भी कम होता है जिससे बेरोजगारी होती है। मंदी की सामान्य दशा में व्यापक बेरोजगारी व्याप्त होती है तथा चक्रीय बेरोजगारी लगभग सभी उद्योगों को प्रभावित करती है जिसकी तीव्रता भिन्न–भिन्न उद्योगों में अलग–अलग होती है। जैसा कि हाल सब–प्राइम संकट में वायुयान उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुआ जबकि अन्य घरेलू उद्योगों पर उतना बड़ा प्रभाव नहीं हुआ।

4. मौसमी बेरोजगारी

कुछ वस्तुओं की मांग मौसम से सम्बन्धित होती है। उदाहरण के लिए होजरी वस्तुओं की मांग जाड़ों में तथा आईस्क्रीम की मांग गर्मियों में अधिक होती है। मांग का यह मौसमी स्वरूप भी बेरोजगारी का कारण होता है। भारत में लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी रूप में कृषि पर निर्भर है जोकि एक मौसमी कार्य है। किसान तथा कृषि मजदूर बुआई तथा कटाई के मौसम में व्यस्त होते हैं, जबकि वर्ष के बाकी समय वे लगभग बेरोजगार होते हैं।

5. अल्प रोजगार

अल्परोजगार या अपूर्णरोजगार का अर्थ है कि एक व्यक्ति यदि अपनी क्षमता से कम काम कर रहा है तो वह अल्प रोजगार में है। उदाहरण के लिए यदि एक इंजीनियर उपयुक्त रोजगार न पाने पर यदि स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ करता है तो अपूर्ण रोजगार या अल्परोजगार में कहलायेगा। स्पष्ट रूप से वह कार्य कर रहा होगा, और उत्पादन में योगदान कर रहा होगा, लेकिन वास्तव में वह अपनी क्षमता के अनुसार या पूर्ण क्षमता में काम नहीं कर रहा है। इसलिए वह पूर्ण रोजगार में नहीं होगा। भारत में ऐसी बेरोजगारी व्यापक रूप से देखी जाती है। इस प्रकार की विसंगति का कारण शैक्षिक संस्थानों द्वारा प्रदान की गई कुशलता तथा ज्ञान और उद्योगों द्वारा वांछित ज्ञान व कौशल में विसंगति के कारण होती है। जिसका प्रभाव होता है कि एक ओर जहां लोगों को काम नहीं मिलता वहीं दूसरी ओर उद्योगों को कुशल श्रम नही मिल पाता है।

6. खुली बेरोजगारी

यह एक जैसी स्थिति है जब कार्य के योग्य तथा इच्छा रखने वाले व्यक्ति तो हैं परन्तु उनके लिए कार्य उपलब्ध नहीं है। खुली रोजगारी को हीं बेरोजगारी के नाम से भी जानते हैं। खुली बेरोजगारी, प्रच्छन्न बेरोजगारी तथा अपूर्ण रोजगार से भिन्न है। पहले प्रकार में बेरोजगार व्यक्ति जहां पूर्णतः निष्क्रिय होता है, बाद के दोंनों प्रकार की बेरोजगारी में वह कार्य करते हुए प्रतीत होते हैं।

7. ऐच्छिक बेरोजगारी

ऐच्छिक बेरोजगारी वह है जिसमें बेरोजगार व्यक्ति स्वेच्छा से काम नहीं करना चाहता है। ऐच्छिक बेरोजगारी का सम्बन्ध व्यक्ति के अपने निर्णय से है। इस प्रकार की बेरोजगारी का कारण कर्मचारियों का नियोजकों से संघर्ष और इस्तीफा, किसी स्थाई आय के स्त्रोत होन पर अनुपस्थिति, हड़ताल आदि हो सकते हैं। एक कामगार तब भी कार्य छोड़ सकता है जबकि नियोजक द्वारा प्रस्ताति पारिश्रमिक उसके द्वारा वांछित पारिश्रमिक से कम हो ऐसे में वह या ता उंची मजदूरी की मांग करेगा या काम ही नही करना चाहेगा।

8. अनैच्छिक बेरोजगारी

यह बेरोजगारी तब होती है जब रोजगार की संख्या योग्य और प्रशिक्षित श्रमिकों की संख्या से कम हो। इस प्रकार की बेरोजगारी का कारण अर्थव्यवस्था की सामाजिक आर्थिक वातावरण है। स्पष्टतः ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कार्य उपलब्ध न हो। अल्पविकसित तथा विकासशील देशों में अधिकांशतः ऐसी हीं बेरोजगारी होती है। चक्रीय बेरोजगारी, संरचनात्मक बेरोजगारी और क्लासिकल बेरोजगारी अधिकाशंतः प्रकृति में अनैच्छिक बेरोजगारी ही है।

8.4 बेरोजगारी के सिद्धान्त

अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित बेरोजगारी के विभिन्न सिद्धान्त, बेरोजगारी के कारण, बेरोजगारी के प्रभाव, बेरोजगारी की समस्या के निदान हेतु आवश्यक प्रयासों की व्याख्या करते हैं, इन सिद्धान्तों का वर्णन नीचे किया गया हैः

8.4.1 बेरोजगारी के क्लासिकल सिद्धान्त

क्लासिकल सिद्धान्त शब्द का प्रयोग रिकार्डो, एडम स्मिथ एवं नियो–क्लासिकल अर्थशास्त्री जैसे मार्शल एवं पीगू के विचारों को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार, पूर्ण रोजगार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के एक सामान्य लक्षण होते हैं। क्लासिकल सिद्धान्त सेज के बाजार नियम पर आधारित है जोकि मजदूरी, ब्याज की दर एवं कीमत में लोचशीलता या लचीलेपन की मान्यता/कल्पना पर आधारित है। यदि अर्थव्यवस्था में अपूर्ण रोजगार है, तो यह अल्पकाल के लिए हीं होगी, क्योंकि बेरोजगारी कि स्थिति के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था की मांग एवं पूर्ति जैसी शक्तियां इस प्रकार से परिवर्तित होगी कि बेरोजगारी समाप्त हो जायेगी। बेरोजगारी की स्थिति में, श्रमिकों की मांग उनकी पूर्ति से कम होती है। अल्प मांग के कारण श्रमिकों की मौद्रिक मजदूरी में गिरावट या कमी होगी और परिणाम स्वरू‌प श्रम की मांग बढ़ेगी और इस प्रकार बेरोजगारी समाप्त होगी तथा पूर्णरोजगार की स्थिति पुनः स्थापित हो जायेगी।

पूर्णरोजगार एक स्थिति है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति जो रोजगार चाहता है, कार्य कर रहा होता है, सिवाय उनके जो घर्षणात्मक एवं संरचनात्मक रूप स बेरोजगार हैं। वार्ड के अनुसार, ''पूर्णरोजगार रोजगार का वह स्तर है जिस पर सामान्य बेरोजगारी है।'' इसलिए पूर्ण रोजगार की स्थिति में भी कुछ प्रकार की

बेरोजगारी पाई जायेगी जैसे– घर्षणात्मक बेरोजगारी, संरचनात्मक बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी, और तकनीकि जनित बेरोजगारी।

क्लासिकल सिद्धान्त की मान्ययतायें:

1. स्वतंत्र अर्थव्यवस्था
2. पूर्ण प्रतियोगिता
3. बन्द अर्थव्यवस्था
4. मुद्रा ही एकमात्र विनिमय का माध्यम है
5. विवेकपूर्ण व्यक्ति
6. मुद्रा ओर वास्तविक मजदूरी मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध
7. बचत और निवेश में समानता ।

बेरोजगारी के क्लासिकल सिद्धान्त की ब्याख्या

क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार, रोजगार का निर्धारण उत्पादन फलन तथा श्रम की मांग व पूर्ति की शक्तियों के सन्तुलन से निर्धारित होता है। उत्पादन फलन उत्पादन के कारकों और उत्पादन की मात्रा के बीच सम्बन्ध व्यक्त करता है।

$$P = f(L, K, N, T)$$

अल्पकाल में, (K) उत्पादन तकनीक (T) और (L) स्थिर होते हैं। फलतः उत्पादन की मात्रा श्रम के रोजगार स्तर (N) पर निर्भर करती है।

$$P = f(N)$$

इसलिए उत्पादन, रोजगार का फलन है। किसी अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर श्रम की मांग और पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है।

श्रम की मांग

श्रम की मांग तबतक की जाती है जबतक सीमान्त आय उत्पादन मजदूरी के बराबर न हो जाये अर्थात्:

$$W = MRP = P \times MPP$$

श्रम की पूर्ति

यह दी गई मजदूरी दर पर काम करने के इच्छुक श्रमिकों की संख्या व्यक्त करती है। रोजगार के स्तर का निर्धारण वहां होता है जहां श्रम की मांग और पूर्ति वक्र एक–दूसरे को काटते हैं जैसे, नीचे दिये गये चित्र 8.1 में दिखाया गया है:

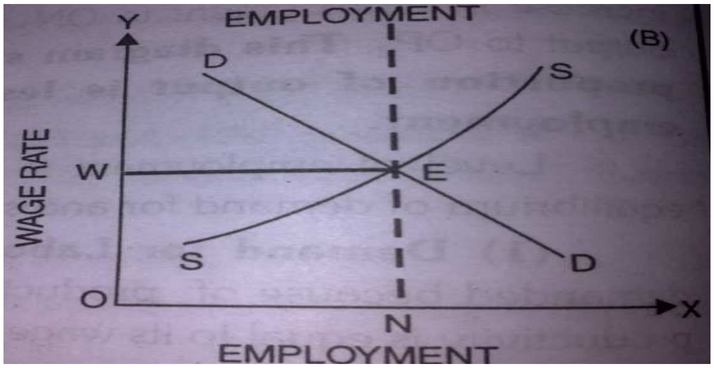

चित्र 8.1

चित्र 8.1 में ON रोजगार का स्तर निर्धारित होता है जो सन्तुलन विन्दु E पर है जहां मांग वक्र DD_1 तथा SS_1 पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते है। तथा मजदूरी दर OW है।

अल्पकाल में कुछ कारणों से बेरोजगारी की स्थिति हो सकती है, लेकिन बाजार की समायोजन शक्तियां पुनः पूर्णरोजगार स्थापित कर देती है। इस प्रकार क्लासिकल सिद्धान्त दो तथ्यों पर आधारित है, पहला, मजदूरी, ब्याज तथा कीमतों की लोचशीलता और दूसरा 'से' का बाजार सिद्धान्त।

मजदूरी की लोचषीलता

मजदूरी दर का निर्धारण श्रम की मांग और पूर्ति की शक्तियों के आधार पर होता है।

ND =f(W/P) घटता हुआ फलन।

NS = f(W/P) बढ़ता हुआ फलन।

ND=NS सन्तुलन स्तर, जहां सन्तुलन मजदूरी दर निर्धारित होती है।

प्रो. पीगू का विचार है कि यदि बेरोजगारी की स्थिति में कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं किया जाय, तो मौद्रिक मजदूरी स्वतः इस सीमा तक घट जायेगी कि पूर्ण रोजगार स्तर पूनः कायम हो जाये। पीगू ने इसे निम्नलिखित समीकरण से स्पष्ट किया:

N = QY/W

जहां N, रोजगार का स्तर, W मौद्रिक मजदूरी दर है और QY राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो मजदूरी के रूप में भुगतान किया जाता है।

क्लासिकल रोजगार का सिद्धान्त निम्नचित्र 8.2 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है:

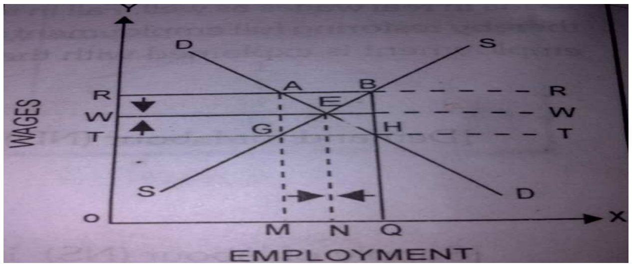

चित्र 8.2

रोजगार का स्तर X–अक्ष पर तथा मजदूरी दर को Y–अक्ष पर मापा गया है। DD और SS क्रमशः श्रम की मांग और पूर्ति वक्र है। विन्दु E जो कि DD और SS वक्र का कटान विन्दु है, पर श्रम की मांग, श्रम की पूर्ति के बराबर है। जिस पर रोजगार का स्तर ON है। अब मजदूरी दर OW से बढ़कर OR हो जाती है, तब रोजगार की मात्रा कम होगी क्योंकि मजदूरी मांग वक्र को विन्दु A पर काटती है। यह असन्तुलन की स्थिति होगी, क्योंकि श्रम की पूर्ति, श्रम के मां से अधिक है जिस कारण OQ-OM = MQ के बराबर अनैच्छिक बेरोजगारी होगी। बेरोजगारी श्रमिक कम मजदूरी पर कार्य के इचछु होगें, इसलिए मजदूरी OR से घटकर OW हो जायेगी और इस प्रकार पुनः पूर्णरोजगार की स्थिति प्राप्त हो जायेगी।

'से' का बाजार सिद्धान्त

जे. बी. से ने एक बाजार सिद्धान्त दिया जा यह कहता है कि पूर्ति अपनी मांग स्वयं सृजित करती है। से का सिद्धान्त उस स्थिति में सत्य सिद्ध होता है जब बचत निवेश के बराबर हो। बचत तथा निवेश के बीच सन्तुलन के लिए वे ब्याज दर को लोचदार मानते है।

$I = f(1/r)$

निवेश ब्याज दर का विपरीत फलन है।

$S = f(r)$

बचत ब्याज दर का प्रत्यक्ष फलन है।

$S=I$ अर्थात्, बचत, निवेश के बराबर है।

यदि अस्थायी रूप से बचत से कम निवेश होने पर बेरोजगारी है तो इसका मतलब है कि समग्र मांग समग्र पूर्ति से कम है। इससे ब्याज दर में कमी आयेगी और बचत भी कम होगी और निम्न ब्याज दर निवेश को प्रोत्साहित करेगी। इस प्रकार बचत पुनः एक बार निवेश के बराबर होगी और पूर्ण रोजगार की स्थिति पुनः प्राप्त हो जायेगी।

8.4.2 बेरोजगारी का कीन्सीयन सिद्धान्त

जे. एम. कीन्स ने बेरोजगारी का सिद्धान्त दिया। कीन्स ने कहा कि पूर्ण रोजगार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषता नही है, प्रत्येक अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी हो सकती है। बेरोजगारी का प्रमुख कारण समग्र पूर्ति की तुलना में समग्र मांग का कम होना है।

कीन्स के सिद्धान्त की मान्यताएं

1. अल्पकालीन विश्लेषण पर आधारित;
2. बन्द अर्थ्व्यवस्था;
3. पूर्ण प्रतियोगिता;
4. श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है;
5. श्रमिक को मुद्रा भ्रम होता है;
6. मुद्रा विनिमय का माध्यम तथा मूल्य का संचय करती है;
7. अपूर्ण रोजगारीय सन्तुलन
8. ब्याजदर एक मौद्रिक घटना है।

कीन्स के सिद्धान्त की व्याख्या

कीन्स के सिद्धान्त के अनुसार अल्पकाल में राष्ट्रीय आय रोजगार के स्तर पर निर्भर करती है क्योंकि उत्पादन के अन्य साधन स्थिर रहते है। रोजगार का स्तर प्रभावी मांग द्वारा निर्धारित होता है। प्रभावी मांग समग्र मांग के उस उस स्तर से है जिस पर समग्र पूर्ति इसके बराबर है। कीन्स के अनुसार, ''रोजगार का स्तर समग्र मांग फलन तथा समग्र पूर्ति फलन के कटान बिन्दु से निर्धारित होता है। अल्पकाल में समग्र पूर्ति स्थिर रहती है और रोजगार का स्तर सम्र मांग में वृद्धि से बढ़ाया जा सकता है। समग्र मांग दो प्रकार की होती है, उपभोग मांग एवं निवेश मांग। कीन्स ने निवेश मांग पर ही पूर्ण रोजगार उद्देश्य के लिए अधिक जोर दिया। कीन्स का रोजगार सिद्धान्त निम्न चि 8.3 से स्पष्ट किया जा सकता हैः

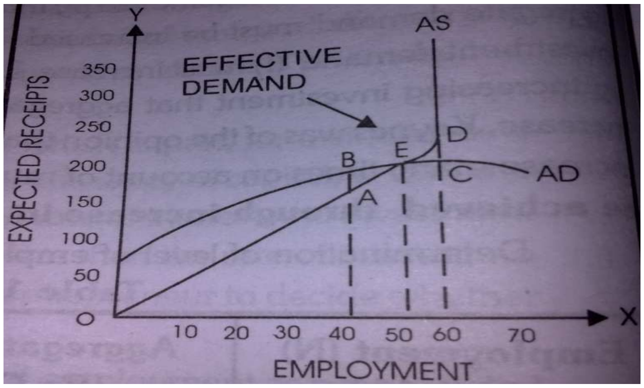

चित्र 8.3

चित्र 8.3 में AS समग्र पूर्ति फलन वक्र है और AD समग्र मांग वक्र है। विन्दु E सन्तुल का बिन्दु है जिस पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर है। जिस पर 50 लाख लोग रोजगार में है। यदि रोजगार का स्तर घट जाय तो समग्र मांग समग्र पूर्ति से AB के बराबर अधिक होगी। समग्र मांग समग्र पूर्ति से अधिक होगी तो उत्पादक तब तक अधिक उत्पादन करेंगे जब तक की दोनों में सन्तुलन नहीं हो जाता। इसी प्रकार से विपरीत स्थिति में उत्पादन में कमी होगी।

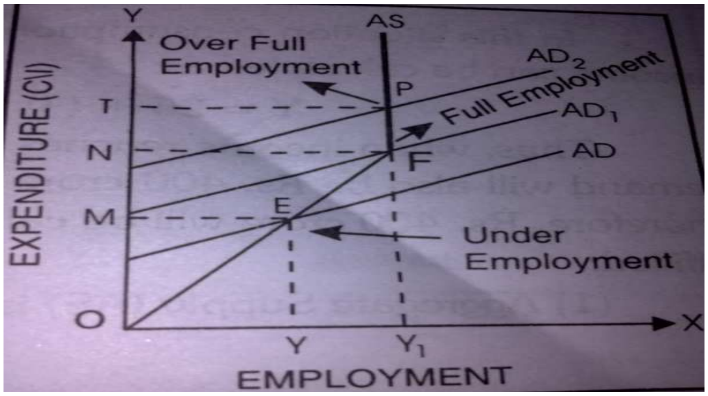

चित्र 8.4

चित्र 8.4 में X–अक्ष पर रोजगार तथा Y–अक्ष पर व्यय प्रस्तुत किया गया है। चित्र में यह देखा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था बिन्दु E पर सन्तुलन में है जहां समग्र मांग वक्र समग्र पूर्ति वक्र को काटता है जिस पर रोजगार का स्तर OY है।

लेकिन YY_1 के बराबर लोग अभी भी बेरोजगार हैं। इसलिए यह अपूर्ण रोजगारीय सन्तुलन है। इसलिए निवेश में वृद्धि होगी और समग्र मांग में वृद्धि होगी जिससे समग्र मांग वक्र उपर की ओर विवर्तित होगा और समग्र पूर्ति वक्र को बिन्दु F पर काटेगा जो कि नया सन्तुलन बिन्दु है जिस पर रोजगार का स्तर OY_1 है। यह पूर्ण रोजगारीय सन्तुलन है। यदि इस बिन्दु के बाद समग्र मांग में और वृद्धि हो और यह AD_2 हो जाये तो यह समग्र पूर्ति वक्र को बिन्दु P पर काटेगा जो कि नया सन्तुलन बिन्दु होगा और यह पूर्ण रोजगार से अधिक पर सन्तुलन बिन्दु कहा जायेगा। ऐसी स्थिति में उत्पादन में वृद्धि नहीं होगी न ही रोजगार बढ़ेगा क्योंकि अर्थव्यवस्था पहले हीं बिन्दु F पर पूर्णरोजगार स्तर को प्राप्त कर चुकी होगी। इसलिए केवल स्फीतिक प्रभाव उत्पन्न होगा।

8.4.3 बेरोजगारी का मार्क्सवादी सिद्धान्त

कार्ल मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी प्रणाली में बेरोजगारी अनिवार्य रूप से होगी और व्यापक बेरोजगारी के संकट को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। मार्क्स ने पूंजीवादी प्रणाली का विश्लेषण 1867 में प्रकाशित किया। यद्यपि पूंजीवाद के समर्थक अर्थशास्त्रियों द्वारा मार्क्स के सिद्धान्त की कटु आलोचना की गई, परन्तु उनका सिद्धान्त 1930 ई. की महान आर्थिक मंदी के समय कार्यकारी समूहों के द्वारा मान्यता प्राप्त किया। उस समय मार्क्स के विचार की मान्यता का प्रमुख कारण बेरोजगारी के समाधान का उनका दृष्टिकोण था। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि कैसे बेरोजगारी उत्पन्न होती है और क्यों यह पूंजीवाद का अनिवार्य अंग है। मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी प्रणाली में कामगारों को दो समूहों, रोजगार तथा बेरोजगार में बांटा जा सकता है, जिसमें 'श्रम की आरक्षित सेना' उत्पन्न होती है जो मजदूरी में कमी का दबाव डालती है। श्रम की 'आरक्षित सेना रोजगार' के लिए आपस में प्रतिस्पर्द्धा करती है। जिससे मजदूरी में कमी होती है। कम मजदूरी से पूंजीवादी प्रणाली को फायदा होता है। परन्तु श्रमिकों को इसका लाभ नहीं मिलता है। पूंजीवादी प्राणाली श्रम की न्यून मांग और बेरोजगारी बनाये रखती है, तथा बाजार को इसी प्रकार समायोजित करती है। पूंजीपतियों के लाभ को बढ़ाने के लिए श्रमिकों की दयनीय दशा बनाये रखती है। मार्क्स क अनुसार बेरोजगारी के स्थाई समाधान के लिए पूंजीवादी प्रणाली की समाप्ति तथा समाजवादी या साम्यवादी आर्थिक प्रणाली की आवश्यकता है। समकालीन मार्क्सवादियों के अनुसार बेरोजगारी का अस्तित्व हीं पूंजीवाद के द्वारा पूर्णरोजगार की स्थापना के लिए उसकी असफलता का प्रमाण है।

8.5 बेरोजगारी के प्रभाव

लगभग प्रत्येक देशों द्वारा इस समस्या का सामना किया जाता रहा है। कुछ देशों में गम्भीर समस्या है तो कुछ में यह थोड़ी कम जटिल समस्या है। विकसित देशों में जैस, अमेरिका, इंगलैण्ड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, जर्मनी, इटली आदि में भी यह समस्या है जबकि हमारे देश में यह अधिक स्पष्ट तथा गम्भीर है। समय के साथ यह और कठिन होती गई है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था तथा उसके सामाजिक विकास के लिए चिंताजनक हो गई है। यह हमारी निर्धनता, पिछड़ापन, अपराध तथा जन–असंतोष के प्रमुख कारणों में से एक है। भारत, दूनिया में चीन के बाद श्रमश्रक्ति तथा जनसंख्या में दूसरा बड़ा देश है। परन्तु बेरोजगारी के

कारण लोगों को समुचित रोजगार उपलब्ध नहीं है। वे असक्रिय रहने को मजबूर हैं। व्यापक बेरोजगारी किसी देश के सामाजिक–आर्थिक वातावरण के लिए खतरा है। बेरोजगारी से जुड़ी हुई की समस्याएं निम्नलिखित हैः

1. अपराधों में वृद्धि;
2. रहन–सहन का निम्न स्तर;
3. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों से होने वाले सरकारी आय में कमी;
4. निर्धनता की तीब्र समस्या;
5. उच्च बेरोजगारी वाले देशों में उच्च परिवारिक विघटन।

8.6 बेरोजगारी के माप

अधिकारिक तैर पर बेरोजगार लोग ऐसे लोग हैं जो उपलब्ध रोजगार में प्रचलित मजदूरी दर पर कार्य करने के लिए इच्छुक हैं, लेकिन काम के लिए सक्रिय स्त्रोत के बावजूद काम नहीं मिल पाता है। आमतौर पर दो विधि देश में बेरोजगारी की दर को मापने के लिए प्रयोग की जाती है–श्रम शक्ति के भागीदारी की दर और दूसरा बेरोजगारी दर। इन दोनों विधियों के अलावा तेल निर्यातक देशों के संगठन/OECD और अन्र्तराष्ट्रीय एजेसिंयों ने बेरोजगारी के माप के लिए कुछ तरीकों को भी प्रामाणिक बनाया है। कुछ आधारभूत विधियां जिनका प्रयोग गरीबी को मापने के लिए किया जाता है, वे निम्नलिखित हैः

बेरोजगारी दरः यह बेरोजगार श्रमिकों और कुल श्रम शक्ति का अनुपात होता है। कुल श्रम शक्ति में रोजगार और बेरोजगार दोनों श्रमिकों को शामिल किया जाता है।

बेरोजगारी दर $= \dfrac{Unempoyed\ Worker}{Total\ Labour\ Fource}$

दूसरी विधि जो कि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की दर को मापने के लिए प्रयोग की जाती है, श्रम शक्ति भागीदारी की दर है। श्रमशक्ति आयु की जनसंख्या का अनुपात इंगित करती है जो कि कार्य करने के लिए तैयार है और कार्यर करने में सक्षमह` और सक्रिय रूप से रोजगार की मांग करते हैं। इसको श्रम शक्ति (कुल नागरिक श्रम शक्ति) में कुल जनसंख्या (कुल गैर संस्थागत नगरीय जनसंख्यां) से भाग करके प्राप्त किया जाता है। अधिकारिक तौर पर एक व्यक्ति बेरोजगार है, यदि वह श्रम शक्ति में है लेकिन उसके पास रोजगार नहीं है। इसलिए बेरोजगी की गणना करने के कम में, हमे यह समझना आवश्यक है कि कैसे श्रम शक्ति को मापा जाता है–

सूत्र

श्रम शक्ति के भागीदारी की दर की आधिकारिक गणना इस सूत्र द्वारा दिया गया है–

श्रम शक्ति भागीदारी दर =

$$\frac{Civilian\ Labour\ force}{Total\ non\ institutionalized\ civilian\ Population} \times 100$$

जबकि यह 'अधिकारिक' श्रम शक्ति की भागीदारी की दर सबसे आम भागीदारी दर है। अन्य विविधताओं की समय–समय पर बाधा जाता है। यह भागीदारी दर, नगरीय श्रम शक्ति का देश की कुल जनसंख्या से अनुपात है–

जबकि, बेरोजगारी की दर, उन श्रमिकों की संख्या जो कार्य करने के योग्य है लेकिन नौकरी में नहीं है और कुल व्यक्तियों की संख्या जो रोजगार के योग्य है के बीच सम्बन्ध को मापती है। दूसरी तरफ श्रम शक्ति भागीदारी दर, कुल जनसंख्या में कुल योग्य कार्यशील जनसंख्या के बीच के अनुपात के सम्बन्ध को मापती है।

अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संघ के शब्दों में, बेरोजगार श्रमिक वे हैं, जो कि वर्तमान समय में कार्य नही कर रहे हैं, लेकिन वे कार्य करने के इच्छुक एवं योग्य हैं, भुगतान के लिए, वर्तमान में कर्ा के लिए उपलब्ध हैं, सक्रिय रूप से कार्य की तलाश में हैं।

बेरोजगारी की दर की गणना करने के लिए अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संघ ने 4 विभिन्न विधियों का वर्णन करते हैंः

- श्रम शक्ति प्रतिदर्श सर्वेक्षण, बेरोजगारी दर की गणना करने की एक महत्वपूर्ण पसन्द की जाने वाली विधि है क्योंकि यह बहुत हीं तुलनीय परिणाम देता है और विभिन्न समूहों के समुदायों जैसे जाति एवं लिंग आदि के अनुसार बेरोजगारी के गणना करने के योग्य बनाता है। यह विधि अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर तुलना के लिए प्रयोग की जा सकती है।
- अधिकारिक अनुमान का निर्धारण एक या अधिक सूचनाओं के समूहों द्वारा होता है। श्रम सर्वेक्षण के पक्ष में इस विधि में गिरावट आयी है।
- सामाजिक बीमा सांख्यिकी जैसे बेरोजगारी लाभ, कुल श्रमिक बल का प्रतिनिधित्व करने वाले बीमाकर्ताओं की संख्या और उन लोगों की संख्या के आधार पर गणना की जाती है, जिनके बीमाकर्ता लाभ उठाते हैं। व्यक्ति के काम पाने से पहले लाभ के समाप्त होने के कारण इस विधि की काफी आलोचना हुई है।
- सांख्यिकी रोजगार कार्यालय कम से कम प्रभावी होने का कारण है कि वे केवल बेरोजगार लोगों की मासिक संख्या शामिल करते हैं जो रोजगार कार्यालय में प्रवेश करते हैं। यह विधि उन बेरोजगारों को भी शामिल करती हे जो कि आई.एल.ओ की परिभाषा के अनुसार बेरोजगार हैं।

बेरोजगारी का प्राथमिक मापक, U_3, देश के बीच तुलना के लिए अनमति प्रदान करता है। बेरोजगारी भिन्न–भिन्न देशों और अलग–अलग समयावधि में भिन्न–भिन्न है। उदाहरण के तौर पर 1990 और 2000 के दशक के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका में यूरोपीय संघ के काई देशों की तुलना में बेरोजगारी का स्तर कम था, जिसमें इटली एवं फ्रांस जैसे देशों के तुलना में यूनाईटेड किंगडम तथा डेनमार्क बेहतर प्रदर्शन करते हैं के सार्थक आन्तरिक विचरण को मापता हैं। जैसे कि, बड़ी आर्थिक घटनायें जैसे विश्व की आर्थिक मन्दी भी उसी प्रकार के बेरोजगारी को जन्म देती है।

संयुक्त राज्य का श्रम सांख्यिकी कार्यालय

श्रम सांख्यिकी ब्यूरो 15 वर्ष से अधिक आयु के बेरोजगारी को मापता है। यह दो भिन्न प्रकार के श्रम सर्वेक्षण का प्रयोग करता है जो कि संयुक्त राज्य

अमेरिका जनगणना ब्यूरो और/या श्रम आंकड़ों के ब्यूरो हैं और 6 भिन्न–भिन्न प्रकार की बेरोजगारी की माप करता है, U_1 से U_6 और बेरोजगारी के विभिन्न पहलुओं को मापता हैः

- U_1 : 15 सप्ताह या उससे अधिक बेरोजगार श्रमशक्ति का प्रतिशत है।
- U_2 : श्रमशक्ति का वो प्रतिशत जो कि अपनी नौकरी खो चुके हों या अपने अस्थाई कार्य को पूरा कर चुकें हों।
- U_3 : ILO की परिभाषा के अनुसार अधिकारिक बेरोजगारी दर तब घटित होती है तब लोग बिना नौकरी के है और पिछले 4 सप्ताह से सक्रिय रूप से नौकरी की तलाश में हों।
- U_4 : U_3 + हतोत्साहित श्रमिक, या हतोत्साहित श्रमिक में उन बेरोजगार श्रमिकों को शामिल किया जाता है जो कि कार्य की तालाश बन्द कर दिये है क्योंकि उसके लिए इस आर्थिक दश ामें कोई भी कार्य उपलब्ध नहीं है।
- U_5 : U_4 + सीमान्त संलग्न श्रमिक या जो कार्य करने के इच्छुक है और उसके योग्य भी है लेकिन हाल में कार्य की तलाश में नहीं हैं।
- U_6 : U_5 + अंशकालिक श्रमिक जो पूरा समय कार्य करना चाहत हैं, लेकिन आर्थिक परिस्थितियों के कारण वे ऐसा नहीं कर सकते हैं।

8.7 बेरोजगारी की प्राकृतिक दर

यह बेरोजगारी का औसत दर होता है। अर्थव्यवस्था में वास्तविक बेरोजगारी दर इसी के इर्द–गिर्द होते हैं। मंदी काल में, वास्तविक बेरोजगारी प्राकृतिक बेरोजगारी दर से बढ़कर अधिक होती है। दूसरी तरफ, अर्थव्यवस्था के तेजी के स्थिति में वास्तविक बेरोजगारी दर, प्राकृतिक वृद्धि दर से कम होती है। प्राकृतिक बेरोजगारी दर घर्षनात्मक बेरोजगारी एवं संरचनात्मक बेरोजगारी के संयोग के कारण होते हैं। घर्षनत्मक बेरोजगारी तब उत्पन्न होती है जब को नया श्रमिक या कोई दूसरा श्रमिक नई काम ढूंढने के लिए समय लेता है। प्रायः इस प्रकार की बेरोजगारी वहां भी देखी जा सकती है जब श्रमिक नई काम ढूंढता है और उसके समक्ष आने वाली कार्य को छोड़ देता है यदि वह उसके इच्छा या उसके लायक न हो। ऐसे अच्छे कार्य या नौकरी ढूंढने के लिए लगने वाले समय हीं घर्षणात्मक बेरोजगारी उत्पन्न होने का कारण होता है। घर्षणात्मक बेरोजगारी एक अल्पकालिक घटना है। संरचनात्मक बेरोजगारी इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि किसी कार्य या श्रम शक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान तकनीकि आदि के अविष्कार के कारण विस्थापन के वजह से होता है। वे श्रमिक जो छः महीने या उससे अधिक समय तक कार्य ढूंढने में समस्यायें होती हैं क्योंकि कुशलता की कमी, संरचनात्मक वर्ग में कमी के कारण बेरोजगार रह जाते हैं, संरचनात्मक बेरोजगार कहलाते हैं।

8.8 बेरोजगारी को नियंत्रित करने के उपाय

शिक्षा प्रणाली का पुनरीक्षण

शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार से तैयार किया जाना चाहिए जो उद्योगों के आवश्यकता अनुसार ज्ञानशील, कौशलयुक्त एवं अभिवृति वाले कार्य शक्ति के

सृजन करने में सहायक हो सके। हमारे देश में प्रचलित शिक्षा पद्धति सदियों पुरानी है और यह अपनी जिन्दगी समाप्त कर चुकी है। हमारे डॉक्टर और इन्जीनियर पेशेवर शिक्षा को प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में धन खर्च करते हैं और उसके बाद सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए बहुत दौड़ते हैं। वर्तमान की अवश्यकताओं को देखते हुए हमारी शिक्षा प्रणाली में बदलाव आवश्यक हो गया है। यह बेरोजगारी की समस्या को हल करने में काफी लम्बी राह होगी।

उद्योग के विकास के लिए प्रोत्साहन

युवाओं को रोजगार देने का मुख्य स्त्रोत उद्योग होते हैं। उद्योगों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए।

विशेष रोजगार योजनायें

यदि देश में गम्भीर बेरोजगारी की समस्या आ रही हो तब सरकार की यह जिम्मेवारी होती है कि रोजगार के विशेष अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए। रोजगार योजनाओं के जरिये इन अवसरों का सृजन किया जा सकता है। भारत में सरकार द्वारा मनरेगा योजना के माध्यम से युवाओं को 100 दिन को अनिवार्य रोजगार प्रदान करने का कार्य किया जा रहा है।

कृषि पद्धति का विकास

भारतीय अर्थव्यवस्था एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है, भारतीय जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कृषि से सम्बन्धित गतिविधियों में संलिप्त रोजगाररत है। कृषि तमनीकों और पद्धतियों का आधुनिकीकरण जैसे– सिंचाई सुविधाओं को विकास, अच्छे बीज, आधूनिक कृषि उपकरण, कृषकों का परामर्श की सेवायें आदि कृषि से आय में सुधार कर सकते हें और इसलिए बेरोजगारी की समस्या को हल करने में मदद कर सकती है।

उपरोक्त उपायों के अलावा ग्रामीण और कुटीर उद्योगों का पुनर्गठन और यातायात तथा संचार साधनों का विकास देश में रोजगार परिदृश्य के सुधार में सहायक हो सकते हैं।

8.9 भारतीय परिदृश्य

रोजगार की वर्तमान में उपस्थिति तस्वीर भविष्य में इसके सुधार के लिए भी मार्गदर्शन करेगी। वर्तमान रोजगार परिदृश्य के कुछ पहलु निम्नवत हैः

- वर्ष 1999–2000 में सकल श्रम शक्ति का 7.3% बेरोजगार था। निरपेक्ष रूप से बेरोजगार लोगों की संख्या 265.8 लाख थी। चूंकि उपरोक्त अनुमान चालू दैनिक स्थिति पर आधारित हैं इस लिए बेरोजगारों की संख्या में वे लोग भी है जो अपूर्ण रोजगार या अल्प रोजगार में थे। लेकिन इसमें वे शामिल नहीं हे जो बहुत हीं कम आय तथा उत्पादकता स्तर पर काम कर रहे हैं।
- रोजगार में लगे हुए लोगों में गरीबों का अनुपात उतना हीं उंचा है जितना की कुल जनसंख्या में, जो यह बताता है कि बड़ी संख्या में लोग जीवन निर्वाह स्तर के योग्य रोजगार में ही लगे हैं।
- कुल रोजगार का 8% भाग हीं संगठित क्षेत्र में थे। 90% से अधिक लोग अनौपचारिक क्षेत्र में लगे थे जो कि ज्यादातर किसी भी सामाजिक सुरक्षा

तथा अन्य लाभ से बाहर था तथा सीमित संस्थागत सुविधाओं के कारण बहुत सी अन्य प्रकार की कठिनाई में था।

- विद्यमान श्रम शक्ति का शैक्षणिक तथा कौशल का स्वरूप बहुत निम्न स्तर का है।

श्रम की पूर्ति

जनसंख्या की आयु संरचनाः आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या का आकार उसकी आयु संरचना के आधार पर निर्धारित किया जाता है। जनसंख्या वृद्धि दर वर्तमान (1991–2000) 1.95% वार्षिक से 2020 तक घटकर 1.25% हो जायेगी। वर्तमान समय में कार्यकारी आयु वर्ग की जनसंख्या वृद्धि लगभग 2.4% है जो कि कुल जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक है और यह कई वर्षों तक जारी रहेगी। जनसंख्या वृद्धि दर तथा कार्यकारी समूह (15–59 वर्ष) की वृद्धि दर 2030 तक समरूप हो जायेगी।

चूंकि सभी आयु समूहों की श्रम शक्ति में भागीदारी समान नही है इस लिए श्रम शक्ति का आकार आयु संरचना से प्रभावित होता है।

श्रमशक्ति की भागीदारीः वर्ष 1993–94 से 1999–2000 के बीच श्रम शक्ति में भागीदारी की कमी देखी गई है। विभिन्न आयु समूहों में श्रम शक्ति की भागीदारी ज्यादातर दीर्घकालीन प्रवृति प्रदर्शित करती है या उनमें बहुत कम परिवर्तन होता है। दीर्घकाल में पुरूष एवं महिला श्रमशक्ति के भागीदारी में कमी रही। उच्च प्रतिव्यक्ति आय वाले राज्यो में पुरूष एवं महिला LFPR अनुपात उंचा है। योजना आयोग के हाल के अध्ययन में पाया गया कि अगले 10 वर्षों में श्रम शक्ति की वृद्धि दर 1.8% वार्षिक रहेगी, बाद के 10 वर्षों में यह दर 1.5% से 1.6% तक होगी। इसका आशय यह है कि श्रम शक्ति में वार्षिक वृद्धि लगभग 70 लाख होगी।

श्रम शक्ति का कौषलः श्रमिक की आय अर्थात् इनका मजदूरी स्तर उसकी उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। दोनों हीं तकनीके अर्थात पूंजीगत अधारित एवं श्रमिकों की कौशल स्तर हीं श्रमिक की उत्पादकता को निर्धारित करते हैं। भारत में श्रमिकों की शैक्षणिक स्तर काफी निम्न हैं। लगभग 44.0% श्रमिक 1999 से 2000 में अशिक्षित थे और 22.7% केवल प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षित थे। यदि हम आधूनिक अर्थव्यवस्था में कार्य करने के लिये माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा को न्यूनतमक रूप से निर्धारित करें तो केवल 33.2% श्रमिक ही उस स्तर तक शिक्षित थे। यह प्रतिशत शहरी श्रमिकों में उंचा 57.4% था, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह केवल 25.4% हीं था।

उपरोक्त आंकड़े केवल सामान्य शिक्षा की चर्चा करते हैं जो कि बााजर योग्य कौशल से भिन्न है। जहां आधुनिक अर्थव्यवस्था में कुछ कार्य जैसे कार्यालय लिपिक आदि के लिए विशेष स्तर तक की अकादमिक शिक्षा के अतिरिक्त किसी कौशल की आवश्यकता नहीं है, वहीं कई क्षेत्रों में कार्य करने के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता है। भारत में श्रमिकों का व्यवसायिक कौशल अन्य देशों की तुलना में बहुत निम्न है। श्रम शक्ति का युवा समूह (20–24 वर्ष) जो कि व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त है। भारत में केवल 5 प्रतिशत है जबकि औद्योगिक देशों

में यह बहुत उंचा लगभग 60–80 प्रतिशत के बीच श्रमिकों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है। विकासशील देशों में यह प्रतिशत विकसित देशों की तुलना में बहुत की कम है, परन्तु फिर भी वे भारत से आगे है। उदाहरण के लिए मैक्सिकों में 28 प्रतिशत तथ पेरू में 17 प्रतिशत है।

ये आंकड़े बताते हैं कि हमारे शक्ति की शिक्षा और कौशल स्तर तेजी से विकसित होते हुए देशों की अपेक्षा कम है। हमारी शिक्षा प्रणाली मुख्यतः सैद्धान्तिक शिक्षण की ओर अधिक झुकाव के पीछे यह धारणा है कि सरकारी नौकरी के लिए अकादमिक उपाधि अनिवार्य है। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें नौकरी की सुरक्षा तथा वेतनमान बाजार वेतन से अधिक उंचा है। शुद्ध निष्कर्ष यह है कि शिक्षा प्रणाली में व्यवसायिक प्रशिक्षण की उपेक्षा की है तथा बाजार योग्य कौशल प्राप्त करने के लिए छात्रों में जागरूकता उत्पन्न करने में भी लापरवाही की गयी है।

श्रमिक के मांग

भविष्य के लम्बे समय के लिए रोजगार के अवसर को बनाये रखने के लिए अतिरिक्त वार्षिक श्रम शक्ति के पूर्ति की वृद्धि को रणनीतियां बनाते समय अवश्य हीं ध्यान में रखना चाहिए। प्रत्येक वर्ष 10 मिलियन रोजगार के अवसर सृजन करने हेतु बनी एक विशेष समूह के रिपोर्ट के अनुसार यह आवश्यक है कि यथा संभव श्रम की पूर्ति एवं मांग के बीच सन्तुलन को प्राप्त किया जाय, भले ही अल्प काल का परिदृश्य हो। श्रम की मांग यदि सामान्य तौर पर हो और कार्य उपलब्ध हो तो सार्थक परिणाम देगें। तथापि, बड़ी चिन्ता है कि वर्तमान आय एवं उत्पादकता स्तर में वृद्धि एवं वे जो श्रम शक्ति दिये गये परिदृश्य अवधि को दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में समायोजित किया जाय। ऐसा बहुत सारे प्रयासों के रूपों में किया जा सकता है, वे मुख्य रूप से निम्नलिखित हैः

- संरचनात्मक अर्थव्यवस्था
- औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र
- श्रम कानून
- श्रम प्रवसन के प्रारूप।

8.10 सारांश

कार्य करने के लिये योग्य इच्छुक व्यक्तियों के लिये कार्य के उपलब्ध न होने के रूप में बेरोजगारी को परिभाषित किया जा सकता है। बेरोजगारी के कई वर्ग हैं जैसे चक्रीय बेरोजगारी, संरचनात्मक बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी इत्यादि। देश में बेरोजगारी की समस्या, कारण, प्रभाव एवं इसके हस्तक्षेप से सम्बन्धि बहुत सारे रोजगार के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। बेरोजगारी के दर का मापन शुरू से विश्व में विवाद का एक मुददा रहा है। विभिन्न देशों में अलग–अलग विधियां बेरोजगारी के दर को मापने हेतु प्रयोग करते हैं। अतः, विभिन्न देशों में प्रयोग किये गये बेरोजगारी दर के माप को तुलनीय रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता है। कीन्स मानते हैं कि बेरोजगारी एक चक्रीय समस्या है जिसका समाधान सरकारी हस्तक्षेप से किया जा सकता है।

8.11 शब्दावली

बेरोजगारीः श्रम बाजार की वह दशा है जिसमें श्रम शक्ति की आपूर्ति उपलब्ध अवसरों से अधिक है।

अल्परोजगारः अल्परोजगार या अपूर्णरोजगार का अर्थ है कि एक व्यक्ति यदि अपनी क्षमता से कम काम कर रहा है तो वह अल्प रोजगार में है।

खुली बेरोजगारीः यह एक जैसी स्थिति है जब कार्य के योग्य तथा इच्छा रखने वाले व्यक्ति तो हैं परन्तु उनके लिए कार्य उपलब्ध नहीं है।

8.12 बोध प्रश्न

(A) खाली स्थानों को भरें

1. ————————— पाया जाता है जब रोजगार की संख्या प्रशिक्षित एवं योग्य श्रमिकों की संख्या से कम हो।
2. —————————— का अर्थ है कि एक व्यक्ति को अपने योग्यता के स्तर से कम क्षमता पर कार्य करना पड़ता है अर्थात् एक इंजिनियर एक उपयुक्त नौकरी या कार्य पाने में असमर्थ होने के कारण स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ करता है।
3. ——————— प्रकार की बेरोजगारी व्यापार चक्र या व्यवसाय चक्र के कारण उत्पन्न होती है।
4. **सर्जेन्ट फलोरेंस** कहते हैं ''बेरोजगारी को कार्य करने योग्य व्यक्तियों की ————————— के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''
5. ————————— बेरोजगारी को एक हीं कार्य को बांटना कहा जा सकता है अर्थात् वर्तमान कार्य को अधिक श्रमिकों द्वारा बांटना है।

(B)

1. कीन्स के अनुसार समग्र मांग के दो प्रकार होते हैं अर्थात् उपभोग मांग एवं निवेश मांग।
2. बेरोजगार श्रमिकों के अर्न्तगत उन श्रमिको को भी सम्मिलित करते हैं जो कार्य के लिए हतोत्साहित होते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में उनके योग्यता अनुकूल कार्य नहीं मिल सकता है।
3. कार्यालयीय **बेरोजगारी दर** आई. एल. ओ. के परिभाषा के अनुसार जब व्यक्ति बिना काम के हो और वे लोग पिछले दो हफते से लगातार कार्य की खोज करते हैं परन्तु उन्हें काम नहीं मिलता है।
4. श्रमशक्ति भागीदारी दर इंगित करता है कि जनसंख्या में उपलब्ध ''कार्यशील आयु'' जो काम करने की इच्छा रखते हैं तथा काम करने के योग्य हैं एवं या तो रोजगार में लगे हों या फिर सक्रिय रूप से रोजगार प्राप्त करना चाहते हैं।
5. श्रम की आरक्षित सेना की अवधारणा मार्क्स के बेरोजगार सिद्धान्त से सम्बन्धित है।

8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. अनैच्छिक बेरोजगारी, 2. प्रच्छन्न बेरोजगारी, 3. चक्रीय, 4. अतिरिक्त आपूर्ति, 5. छिपी ।

(B) 1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, एवं 5. सत्य।

8.14 स्वपरख प्रश्न

1. बेरोजगारी को परिभाषित करें। बेरोजगारी को मापने के लिए प्रयोग किय जाने वाले विधियों की चर्चा करें।
2. मार्क्स एवं कीन्स के बेरोजगारी के सिद्धान्तों के बीच तुलना करें तथा अन्तर स्पष्ट करें।
3. श्रम मानक कार्यलय द्वारा दिये गये बेरोजगारी के माप की विधियों की चर्चा करें।
4. बेरोजंगारी क्या है? बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारों की चर्चा करें।

8.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Alam, M. and S.N. Mishra (1998). 'Structural Reforms and Employment Issues in India: A Case of Industrial Labor', *Indian Journal of Labour Economics,* 41(2): 71–92.
2. Dandekar, V.M. (1996). *Indian Economy 1947–92: Population Poverty and Employment,* New Delhi, Sage Publications.
3. Desai, S. and M.B. Das (2004). 'Is Employment Driving India's Growth Surge?', *Economic and Political Weekly,* 39: 345–51.
4. Ghose, Ajit K. (2004). 'The Employment Challenge in India', *Economic and Political Weekly,* 39(48): 5106–16.
5. Imai, K. (2003). *The Employment Guarantee Scheme as a Social Safety Net—Poverty Dynamics and Poverty Alleviation,* Department of Economics Working Paper Series, No. 149. Oxford, Oxford University.
6. National Sample Survey Organisation [NSSO]. (2005a). *Employment and Unemployment Situation in India.* Report 515 (Part 1). Government of India, New Delhi.
7. National Sample Survey Organisation [NSSO]. (2006a). *Employment and Unemployment Situation in India, 2004–05 (Part-I),* New Delhi, Government of India.

*****

इकाई 9 भारत मे आर्थिक नियोजन

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 आर्थिक नियोजन

9.2.1 नियोजन प्रकिया के लक्षण/विशेषताएं

9.3 आर्थिक नियोजन का तर्काधार

9.4 नियोजन नीति

9.5 योजना आयोग और पंचवर्षीय योजनाये

9.5.1 1989–91 की समयावधि

9.5.2 बारहवी पंचवर्षीय योजना

9.6 भारत मे आर्थिक नियोजन की उपलब्धिया

9.6.1 उद्योगों का विकास

9.6.2 आर्थिक मूलभूत सुविधाओं का विकास

9.6.3 सामाजिक संरचना का विकास

9.6.4 रोजगार

9.6.5 आधुनिकीकरण

9.6.6 आत्मनिर्भरता

9.7 सांराश

9.8 शब्दावली

9.9 बोध प्रश्न

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.11 स्वपरख प्रश्न

9.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- आर्थिक नियोजन का अर्थ तथा विशेषताओ का वर्णन कर सकें।
- नियोजन तथा आर्थिक नियोजन प्रक्रिया को समझ सकें।
- विभिन्न पंचवषीय योजनाओ को विस्तृत रुप से अध्ययन कर सकें।
- भारत मे आर्थिक नियोजन की उपलब्धियो को जान सकें।
- भारत मे आर्थिक नियोजन का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

आर्थिक साहित्य में विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में आर्थिक नियोजन को विभिन्न तरीकों द्वारा प्रयोग किया गया है जिससे इसे समझने में संसय की स्थिति पैदा हो गयी है। आज लोग मुश्किल से आर्थिक नियोजन के किसी एक पहलू पर सहमत होंगे। इसलिए जब आर्थिक नियोजन की बात की जाती है तो यह समझना मुश्किल हो जाता है किस संदर्भ/पहलू की बात की जा रही है जब तक कि किसी आर्थिक प्रणाली की प्रकृति का स्पष्ट उल्लेख न हो।

9.2 आर्थिक नियोजन (Economic Planning)

आर्थिक नियोजन का अर्थ उस आर्थिक प्रणाली के अस्तित्व से है जिसमें प्रत्येक उत्पादन इकाई केवल उन उत्पादन स्त्रोतों का उपयोग करती है जो उन्हें आवंटित होते हैं तथा अपने उत्पादन को केन्द्रीय अधिकारी के निर्देशानुसार वितरित करती है। आर्थिक नियोजन का यह पहलू समाजवादी देशों द्वारा कई बार सामूहिक आर्थिक नियोजन के रूप में अपनाया गया है। दूसरे संदर्भ में आर्थिक नियोजन किसी भी सार्वजनिक या निजी इकाई/उपक्रम का लक्ष्य कम निर्धारित करने से भी लिया जा सकता है। इस तरह की नीति कभी–कभी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में भी अपनायी जाती है, सरकार के पास सामान्यतः अर्थव्यवस्था का पूरा आँकलन नहीं होता है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए लक्ष्य निर्धारित करना तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों को स्त्रोतों का आवंटन करना। भारत ने इस संदर्भ में आर्थिक नियोजन को अपनाया। चतुर्थ तथा अंतिम संदर्भ में, आर्थिक नियोजन का तात्पर्य ऐसी प्रणाली से है जिसमें सरकार द्वारा निजी क्षेत्र के लिए कुछ लक्ष्य निर्धारित कर उनको प्राप्त करने के लिए बाध्य किया जाता है। आर्थिक नियोजन की इस प्रणाली द्वारा विभिन्न नियमावली बनायी जाती है जो निजी क्षेत्र की गतिविधियों को नियोजित करती हैं।

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत योजनायें बनायी गयी तथा इनका क्रियान्यवयन किया गया। मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषता है कि यहाँ निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र. एक साथ चलन में होते हैं। निजी क्षेत्र मुश्किल से चार प्रकार की उत्पादन गतिविधियों के साथ समझौता करता हैः

1. कृषि/खेती और हस्तशिल्प (Handicraft)
2. व्यक्ति तथा पारिवारिक स्वामित्व वाली छोटे पैमाने के व्यापारिक व्यवसाय तथा उद्योग।
3. उद्योग, व्यापार, परिवहन तथा कृषि में मध्यम पैमाने के व्यापारिक उपक्रम।
4. देशी तथा विदेशी आजारों के लिए उत्पादन करने वाले बड़े उपक्रम, खदान (mining) कम्पनियाँ तथा बागान (plantation)

सार्वजनिक क्षेत्र सामान्यतः इनमें से कुछ में ही कार्य करता है। कोई भी आर्थिक नियोजन के दो प्रमुख अंगों को पहचान सकता हैः

(अ) सरकार देशी/घरेलू स्त्रोतों को संचालित करती है और इस बात का पुनः निरीक्षण करती है कि निजी क्षेत्र के उत्पादन गतविधियों में किस स्त्रोतों के प्रयोग की आशा है। इस मकसद से या इसके आधार पर आधारभूत सुविधाओं का विकास खासकर रेल नेटवर्क, हाइड्रोइलेक्ट्रिक बिजली तथा सिंचायी प्रणाली को प्राथमिकता दी जाती है।

(ब) भारी/बड़े/आधारभूत उद्योग जिनमें अत्यधिक वित्त की आवश्यकता होती है तथा जिनका कार्य प्रारम्भ करने की अवधि (gestation period) लम्बी अवधि होती है, को स्थापित करने के लिए सरकार का प्रत्यक्ष दखल तथा पहल आवश्यक होती है। सरकार कुछ ऐसी आर्थिक नीतियों को भी अपनाती है (जैसे कर प्रणाली/नीति, औद्योगिक लाइसेन्सिंग नीति, कीमतें और ब्याज दर) जो एक तरफ निजी क्षेत्र की गतिविधियों को बढ़ावा देती हैं तथा दूसरी तरफ ऐसी नियंत्रक प्रणालियों को अपनाया जाता है जिससे सरकार के सामाजिक उद्देश्यों

तथा निजी व्यवसायियों तथा व्यापारियों के व्यवहार में सामन्जस्य स्थापित किया जा सके।

भारत में नियोजन की उपरोक्त विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि देश में आर्थिक नियोजन मुक्त बाजार व्यवस्था का विकल्प नहीं खोज पायी। वास्तव में मुक्त बाजार व्यवस्था तथा आर्थिक नियोजन एक दूसरे के सहयोगी हैं।

9.2.1 नियोजन प्रक्रिया की विशेषतायें

नियोजन चरण के तीन मूल मॉडल हैं:

- समग्र/समन्वित विकास मॉडल (Aggregate Growth Model)
- परियोजना मूल्यांकन तथा लागत लाभ विश्लेषण (Project Evaluation and Cost-Benifit Analysis)

नियोजन के विफल होने के कारण :

- नियोजन तथा इसके क्रियान्वयन में कमी
- अप्रयाप्त तथा अविश्वसनीय आँकड़े।
- अनुमान के विपरीत आर्थिक व्यवधान
- संस्थानिक कमजोरियाँ।
- राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी।

9.3 आर्थिक नियोजन का तर्काधार (The Rationale for Economic Planning)

आर्थिक नियोजन भारत में विभिन्न कारणों से एक विकास उपकरण के रूप में अपनाया गया। इनमें से मुख्य निम्न कारण हैं :

- बाजार तंत्र का फेल होना
- संसाधनों का संचालन तथा आवंटन
- विदेशी सहायता
- मनोवैज्ञानिक प्रभाव

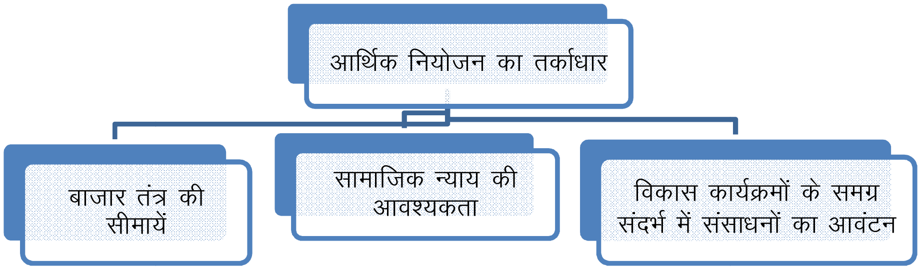

बाजार तंत्र की सीमायें (Limitations of the market mechanism) :–

कुशलता तथा समानता प्राप्त करने में बाजार तंत्र की सीमाओं के कारण बार–बार आर्थिक नियोजन की आवश्यकता महसूस की गयी। समाजवादियों के बीच यह प्रबल धारणा है कि बाजार तंत्र वर्किंग क्लास के विपरीत भेदभाव करता है इसलिए जब वह सरकार में होते हैं तो वह उत्पादन संसाधनों पर निजी स्वामित्व करने का प्रयास करते हैं और इसलिए बाजार तंत्र को नियोजन अधिकारी संस्था का अधीनस्थ बना देते हैं। विकसित अर्थव्यवस्था में कोई विश्वास

नहीं करता है कि बाजार तंत्र पूर्ण रोजगार पर आर्थिक गतिविधियों को सम्पन्न करेगा। अक्सर इन देशों में प्रभावी माँग की अप्रयाप्तता विभिन्न महत्वपूर्ण गतिविधियों में अवरोध का कारण बनता है तथा इसका समाधान सरकार द्वारा मध्यस्थता कर की जाती है चाहे वह निजी क्षेत्र में विनियोग गतिविधियों से हो या फिर कुछ परियोजनाओं का सरकारी क्षेत्र में प्रारम्भ करने से हो। निजी क्षेत्र में निवेशकर्ताओं को प्रोत्साहित करने के लिए बौद्धिक तथा राजकोषीय परिमाणों पर अधिक निर्भरता होती है।

भारत में आर्थिक नियोजन की आवश्यकता मुख्यतः इसके आर्थिक पिछड़ेपन (Economic backwardness) के कारण महसूस हुई। यह संज्ञान लिया गया कि आर्थिक विकास जो इंग्लैण्ड, यू0एस0ए0 तथा जापान द्वारा अपनाया गया वह हमारे लिए उचित नहीं है क्योंकि यह पूर्णतया बाजार तंत्र पर निर्भर था। देश को यह आशा भी नहीं थी कि वह उस स्थिति से बाहर भी निकल सकता है। लेकिन समाजवादी देशों के रास्ते में एक उम्मीद विकास की नजर आती थी। इसलिए देश ने आर्थिक नियोजन के संदर्भ में सोवियत यूनियन के अनुभव से लाभ उठाना चाहा।

सामाजिक न्याय की आवश्यकता (**Need for the Social Justice**) :–

तीसरी दुनिया के दूसरे देशों की तरह भारत ने भी सोचा था कि आर्थिक संवृद्धि से गरीबी की समस्या अपने आप हल हो जायेगी। तथापि पिछले अनुभवों ने यह स्पष्ट कर दिया कि मुक्त उद्यम प्रणाली के अन्तर्गत आर्थिक संवृद्धि के लाभ रिस–रिस कर नीचे नहीं पहुँच पाते हैं। वस्तुतः बाजार की शक्तियाँ इस तरह से कार्य करती हैं कि आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण हो जाता है और संवृद्धि की यह प्रक्रिया उन लोगों को छोड़कर आगे बढ़ जाती है जिन्हें संवृद्धि से सबसे अधिक लाभ होना चाहिए। अतः इस देश में गरीबी निवारण कार्यक्रम को विकास नियोजन कार्यक्रम में मुख्य स्थान देने की आवश्यकता महसूस की गयी। भारत के लिए अपने बेरोजगारी की समस्या से लड़ना और भी मुश्किल हो जायेगा क्योंकि यह स्वतंत्र बाजार क्षेत्र पर निर्भर करती है। इसके साथ ही भारत में श्रम बाजार में कई अप्रवीणताओं का शिकार है तथा इसके अलावा कृषि में मौसमी गतिविधियाँ, जमीन पर जनसंख्या दबाव और श्रम स्थानान्तरण अवसरों का अभाव ऐसे प्रमुख कारण हैं जिसकी वजह से बेरोजगारी की समस्या से लड़ना और भी मुश्किल हो गया है। इसलिए भारत के लिए आवश्यक है कि वह सामाजिक न्याय की समस्या के समाधान के लिए एक वैज्ञानिक पद्वति को अपनायें।

विकास कार्यक्रमों के समग्र संदर्भ में संसाधनों का आवंटन (**Resource Allocation in the Overall Development Profile**) :–

भारत के पास संसाधनों का अभाव है इसलिए यह आवश्यक है कि साधनों का आवंटन न्यायपूर्ण हो। इस देश में विनियोग परियोजनायें सम्पूर्णतया निजी लाभ के लिए नहीं चुनी जानी चाहिए। अगर इस प्रकार की अनुमति प्रदान की जाती है तो बड़ी मात्रा का विनियोग सामाजिक रूप से निम्न प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में होना होगा। प्रतिस्पर्धा बाजार व्यवस्था विनियोग एक ऐसी प्रणाली के पक्ष में होगी जो कभी भी देश के दीर्घकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति के समानान्तर नहीं होगी। विकासशील देशों में, विकास परियोजनाओं का चयन नीति लाभ की बजाय सामाजिक लाभ पर निर्भर होना चाहिए। इसलिए उचित सामाजिक लाभ तथा

न्यून/दुर्लभ संसाधनों का उचित उपयोग हेतु अर्थव्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप अतिआवश्यक है।

जब से भारत में आर्थिक नियोजन अपनाया जाने लगा है तब से केवल बाजार तंत्र पर निर्भर रहने के अतिरिक्त अर्थव्यवस्था के विभिन्न गतिविधियों के समाधान के लिए विभिन्न कुशल प्रणालियों का भी विकास हुआ है इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम आर्थिक नियोजन को इस देश में पूर्णतया अपनायें। इसलिए हम अर्थशास्त्रियों द्वारा महत्वपूर्ण समझे जाने वाले आर्थिक नियोजन के प्रयोगात्मक पहलू को समझने को प्रस्ताव देते हैं।

9.4 नियोजन नीति (Planning Policy)

भारत में नियोजन संस्था को योजना आयोग (Planning Commission) के नाम से जाना जाता है। आयोग का मुख्य कार्य आर्थिक योजनाओं का निर्माण है।

एक योजना का एक सोचा समझा प्रयास है कि किस तरह से देश के संसाधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। इसके कुछ सामान्य उद्देश्यों/लक्ष्यो में संवृद्धि, आधुनिकीकरण, पूर्णरोजगार, स्वनिर्भरता तथा समानता को सम्मिलित किया जाता है लेकिन सभी योजनाओं में इन सभी बिन्दुओं को बराबर का महत्व नहीं दिया जाता है। प्रत्येक योजना के कुछ विशिष्ट उद्देश्य होते हैं, जैसे कृषि का विकास या सुधार। उदाहरण के तौर पर हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना का विशिष्ठ उद्देश्य था राज्य की कृषि का सुधार तथा दूसरी योजना का उद्देश्य था उद्योगों का सुधार/विकास।

भारत सरकार के अध्यादेश द्वारा मार्च 1950 में योजना आयोग (Planning Commission) की स्थापना की गयी। यह राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) के अधीन कार्य करता है। यह पंचवर्षीय योजनाओं के लिए सलाह तथा इसके क्रियान्वयन का भी कार्य करता है। भारत का आर्थिक विकास पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन तथा नियंत्रण पर निर्भर करता है तथा यह कार्य योजना आयोग द्वारा किया जाता है। योजना आयोग में निम्नांकित पदाधिकारी सम्मिलित होते हैं :

- अध्यक्ष– भारत के प्रधानमंत्री
- उपाध्यक्ष– एक केन्द्रीय कैबिनेट मंत्री
- पूर्णकालिक सदस्य तथा सदस्य
- उपाध्यक्ष तथा पूर्णकालिक सदस्य आयोग में सामूहिक तौर पर योजनाओं के निर्माण के लिए विचार विमर्श करते हैं।

योजना आयोग के उद्देश्य (Objectives of Planning Commission)

- जनता के जीवन स्तर के त्वरित उत्थान को प्रोत्साहन देना।
- देश के संसाधनों का कुशल एवं उचित उपयोग करना।
- उत्पादन को बढ़ावा और सभी को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।

योजना आयोग के कार्यों को संक्षिप्त रूप से निम्नवत समझा जा सकता है :–

- देश के सभी प्रकार के संसाधनों के मूल्यांकन की जिम्मेदारी।
- न्यून संसाधनों को बढ़ाना।

- संसाधनों की उपयोग की प्राथमिकता का निर्धारण तथा इनके उत्तम उपयोग का खाका तैयार करना।

सरकारी खर्च का सरकारी प्राप्तियों से ज्यादा होना :–

- मजदूरी, वेतन, पेन्शन तथा अन्य इस्टेब्लिशमेन्ट खर्चों के कारण।
- 90–93% आवश्यक खर्चे।

परियोजनाओं/कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए प्रयाप्त कोषों का प्राप्त न होना : संज्ञान में निम्नांकित कारण आये :–

- 10% BE नार्थ इस्ट के लिए आवश्यक है।
- 8.2% BE ट्राइबल क्षेत्रों के लिए आवश्यक।
- 20% BE एस0सी0 तथा एस0टीए तथा जेन्डर बजटिंग के लिए आवश्यक।

आर्थिक नियोजन प्रक्रिया (Process of Economic Planning)

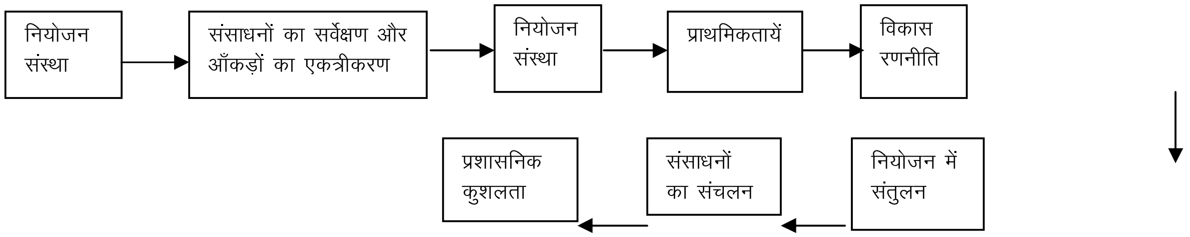

1. संसाधनों का सर्वेक्षण और आँकड़ों का एकत्रीकरण (Survey of Resources and Collection of Data) :–

सर्वेक्षण तथा आवश्यक आँकड़ों का एकत्रीकरण दोनों ही किसी भी आर्थिक नियोजन के अतिआवश्यक आवश्यकतायें हैं। किसी भी योजना का आकार संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है इसलिए नियोजन संस्था को योजना का निर्माण करने से पूर्व माननीय तथा पूँजी/अमानवीय संसाधनों की उपलब्धता तथा मूल्य अवश्य पता होना चाहिए।

2. नियोजन उद्देश्य (Planning Objectives) :–

आर्थिक नियोजन के कुछ उद्देश्य होते हैं इन उद्देश्यों को बार–बार निर्धारित किया जाता है तथा इन्हें प्राप्त करने के बारे में पूर्णतया योजना बनायी जाती है। कोफिंग और एमस के अनुसर, इस देश में दीर्घकालिक उद्देश्य का उल्लेख विभिन्न योजना प्रपत्रों में किया जाता है तथा सामान्यतः यह मुख्य उद्देश्य हैः

- आर्थिक संवृद्धि
- स्वनिर्भरता/आत्मनिर्भरता
- आय असमानताओं में कमी
- गरीबी निराकरण/उन्मूलन

3. प्राथमिकतायें (Priorities) :–

प्रत्येक आर्थिक नियोजन में सार्वजनिक विनियोग के लिए प्राथमिकताओं के प्रावधान किये जाते हैं। कोई भी देश अपनी अर्थव्यवस्था के विभिन्न विभागों की

विनियोग आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता है। हम सब जानते हैं कि बढ़ने/विकास करने वाली अर्थव्यवस्था में आधारभूत सुविधायें विकसित होनी चाहिए। मुख्यतौर पर मशीन बनाने वाली उद्योग स्थापित किये जाने चाहिए, कृषि का विकास होना चाहिए जिससे खाने की वस्तुओं की पूर्ति में कोई बाधा उत्पन्न न करे। इसी तरह से कोई भी देश शिक्षा तथा स्वस्थ्य सुविधाओं के विस्तार के लिए अन्त तक इन्तजार नहीं कर सकता। इसलिए भारत ने इनके समाधान के लिए निजीकरण को अपनी योजनाओं में एक रास्ते की तरह शामिल किया है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो संसाधनों का प्रबन्धन परिणामदायी नहीं होगा तथा इसका प्रभाव सम्पूर्ण व्यवस्था पर पड़ेगा।

4. विकास स्तर (**Development Strategy**) :–

विस्तृत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक नियोजन के विकास स्तर पर रणनीतियों को सम्मिलित होना आवश्यक है। रणनीति के अभाव में योजना अपनी दिशा से भटक सकती है जिससे उद्देश्यों की प्राप्ति हमेशा संदेहास्पद रहेगी।

5. नियोजन का संतुलन (**Balancing in the Plan**) :–

भारत में नियोजनकर्ता योजनाओं में दो तरह के सन्तुलन बनाने का प्रयास करते हैं। प्रथम है मौद्रिक या वित्तीय संतुलन जिसमें निचले स्तर पर नियोजित खर्च/व्यय डिस्पोसल वित्तीय आय के बराबर हो। हाल के वर्षों में नियोजनकर्ता इसमें कुशलता से लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाये जिससे भुगतान सन्तुलन की समस्या उत्पन्न हुई। द्वितीय है विभागीय संतुलन जिसमें माँग व पूर्ति में अन्तर विभागीय निरन्तरता बनी रहे।

6. संसाधनों का संचालन (**Resource Mobilization**) :–

भारतीय योजनायें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र से विनियोग प्रोत्साहित करने के उद्देश्यों से बनायी जाती हैं। जहाँ तक निजी क्षेत्र की बात है वहाँ संसाधन जुटाने की बड़ी जिम्मेदारी निजी क्षेत्र की उत्पादन उपक्रमों पर होती है यह इकाईयाँ अपनी अंश निर्गमन से अंश पूँजी प्राप्त करते हैं या फिर बैंकों से या अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेते हैं। इस सारी प्रक्रिया में सरकार की भूमिका सहायक के रूप में ही होता है क्योंकि यह सिर्फ बचतों को विनियोगों के रूप में संचालन में सहायता करता है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए कोषों की व्यवस्था देशी तथा बाह्य दोनों स्त्रोतों से की जाती है।

7. प्रशासनिक कुशलता (**Administrative Efficiency**) :–

क्योंकि सरकारी तंत्र द्वारा किसी भी योजना का क्रियान्यवयन किया जाता है इसलिए इसकी सफलता सरकारी तंत्र की कुशलता पर निर्भर करती है। भारत में प्रशासनिक व्यवस्था कुशल है लेकिन भ्रष्टाचार भी है जो योजना के विभिन्न स्तरों पर नाकाम होने का कारण बन सकता है। किसी भी योजना की सफलता के लिए आवश्यक है कि किसी भी परियोजना की प्रशासनिक क्षेत्र द्वारा एक अच्छी/सुदृढ़ उपयोगिता रिपोर्ट तैयार की जानी चाहिए तथा इसकी कमियों को सामने लाने के साथ–साथ इनके समाधान के उपायों का सुझाव देना चाहिए।

भारतीय अर्थव्यवस्था ने स्वतंत्रता के पश्चात आधारभूत संरचनाओं का एक लम्बा रास्ता तय किया है तथा आर्थिक सुधारों में विशेष रूप से 1991 के पश्चात ऊँची संवृद्धि दर प्राप्त की है। आज भारतीय अर्थव्यवस्था नौवीं सबसे बड़ी

अर्थव्यवस्था है। नॉमिनल सकल घरेलू उत्पाद के सम्बन्ध में चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। पी0पी0पी0 (PPP) के संदर्भ में जिसकी प्रति व्यक्ति आय (Per capita Income) रु0 54527 है।

हालाकि ऊँची सम्वृद्धि दर का महत्व निम्न के संदर्भ में देखा जाना चाहिए जैसे मानव विकास , सामाजिक–आर्थिक इण्डिकेटर, गरीबी, असमानता, यह भारतीय अर्थव्यवस्था में विरोधाभाष को प्रदर्शित करता है। इन सबसे निपटारा पाने के लिए आवश्यक है कि एक विस्तृत विचार/वेतन के साथ सुधारात्मक नियोजन किया जाय तथा इसके उद्देश्यों की प्राप्ति समय बाध्य हो।

9.5 योजना आयोग और पंचवर्षीय योजनायें

केन्द्रीय केबिनेट के अध्यादेश के द्वारा योजना आयोग की स्थापना मार्च 1950 में की गयी। प्रधानमंत्री, वित्त विशेषज्ञ, केबिनेट मंत्री तथा अन्य पूर्णकालिक सदस्य योजना आयोग के सदस्य होते हैं। योजना आयोग के कार्य निम्नवत हैं :

- देश की मानवीय तथा अमानवीय पूँजी का अनुमान लगाना। योजनाओं का निर्माण/तैयार करना जिससे मानवीय तथा अमानवीय संसाधनों का बेहतर तथा संतुलित उपयोग किया जा सके।
- योजनाओं के विभिन्न स्तरों का निर्धारण करना और प्राथमिकताओं के आधार पर संसाधनों के आवंटन का प्रस्ताव देना।
- सरकार के सलाहकारी संस्था के रूप में कार्य करना।

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951–56 (First Five Year Plan 1951-56) :–

प्रथम पंचवर्षीय योजना में इसके त्वरित उद्देश्यों के रूप में रिफ्यूजीज़ का पुनर्व्यवस्था और तीव्र कृषि सुधारों को रखा गया। तीव्र का आशय यहाँ पर खाद्यान्नों के संदर्भ में आत्मनिर्भरता तथा मुद्रा स्फीति को रोकना था। इस योजना का उद्देश्य विनियोगों को राष्ट्रीय आय के 5% से 7% तक ले जान था। प्रथम योजना हारोड–डोमर (Harrod-Domar model) माडल पर आधारित थी। प्रथम योजना के मुख्य बिंदु थे :

1. 8 दिसम्बर 1951 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, जवाहरलाल नेहरू ने प्रथम पंचवर्षीय योजना को संसद में पेश/प्रस्तुत किया।
2. प्रथम पंचवर्षीय योजना देश की अर्थव्यवस्था को गरीबी के चक्र से बाहर निकालने का बड़ा प्रयास था।
3. इस योजना में कृषि (डैम तथा सिंचाई क्षेत्र में विनियोग सहित) को महत्वपूर्ण दर्जा दिया गया। विभाजन के कारण कृषि क्षेत्र को काफी नुकसान पहुँचा तथा इसको ध्यान देने की इस समय अति आवश्यकता थी।
4. योजना का कुल बजट 206.8 बिलियन रूपये (26.6 बिलियन USD, 1950 की विनिमय दरों के अनुसार) था जो सात वृहद क्षेत्रों में विभाजित था जैसे सिंचाई तथा ऊर्जा (27.2%), कृषि तथा सामुदायिक विकास (17.4%) परिवहन तथा संचार (24%), उद्योग (8.4%), सामाजिक सेवा (16.64%), जमीनी पुनर्निमाण/उत्थान (4.1%) तथा (2.5%)
5. वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद को 2.1% संवृद्धि दर का उद्देश्य/लक्ष्य था लेकिन इस योजना में यह संवृद्धि दर 3.6% थी।

6. प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान शुद्ध घरेलू उत्पाद 15% से ऊपर हुआ।
7. इस बीच मानसून अच्छा था तथा फसलों से प्राप्त आय भी अधिक थी जिससे विनिमय संचय में वृद्धि हुई तथा प्रति व्यक्ति आय 8% से बढ़ी।
8. तीव्र जनसंख्या वृद्धि से राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति आय से अधिक थी।
9. भाखरा डैम तथा हीराकुण्ड डैम के साथ–साथ विभिन्न अन्य सिंचाई के परियोजनाओं की पहल इसी दौर में हुयी।
10. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत सरकार के साथ मिलकर बच्चों के स्वास्थ्य पर कार्य किया तथा बच्चा मृत्यु दर को कम किया गया जिससे अप्रत्यक्ष रूप में जनसंख्या वुद्धि को जन्म दिया।
11. प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत 1956 में, 5 इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ टैक्नॉलाजी (IIT's) को प्रारम्भ किया गया।
12. देश में उच्च शिक्षा की कोषों की व्यवस्था तथा उच्च शिक्षा के विकास तथा विनियोग के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grant Commission) की स्थापना की गयी।
13. पाँच स्टील उद्योगों/उपक्रमों को लगाने के लिए समझौते किये गये, हालाकि इन उपक्रमों को अस्तित्व में दूसरी पंचवर्षीय योजना के मध्य में लाया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना 1956–61 (Second Five Year Plan 1956-61) :–

द्वितीय पंचवर्षीय योजना को विकास पद्वति को बढ़ावा देते हुए समाजवादी पद्वति पर समाज गठन का था। इस योजना के अन्तर्गत विशेष ध्यान तीव्र औद्योगिकरण पर दिया गया जिसमें आधारभूत उद्योगों की स्थापना मुख्य थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना मवालानोविस मॉडल (Mabalanobis Model) पर आधारित थी। जिसके मुख्य बिन्दु थे :

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना का फोकस औद्योगीकरण पर था खासकर भारी तथा आधारभूत उद्योग।
2. सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के साथ घरेलू औद्योगिक उत्पाद को प्रोत्साहन मिला।
3. मवालानोविस मॉडल के आधार पर, भारतीय स्टेटीशियन प्रशान्ता चन्द्र मवालानोविस ने 1953 में एक आर्थिक विकास मॉडल तैयार किया।
4. इस योजना को बंद अर्थव्यवस्था समझा गया जिसमें केवल पूँजी उत्पाद के आयात का ही व्यापार पर बल दिया गया।
5. हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर परियोजनायें तथा पाँच स्टील उपक्रम भिलायी, दुर्गापुर और राउरकेला में स्थापित किये गये।
6. कोयले का उत्पादन बढ़ा।
7. उत्तर पूर्व (North East) में कुछ और रेल लाइनों को जोड़ा गया।
8. माननीय जे0 बाबा के अध्यक्षता में सन् 1957 में परमाणु ऊर्जा आयोग (Atomic Energy Commission) की स्थापना की गयी।
9. रिसर्च संस्थान के रूप में "टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फन्डामेन्टल रिसर्च" की स्थापना की गयी।
10. सन् 1957 में प्रतिभा खोज अभियान (Talent Search Compaign) तथा स्कॉलरशिप कार्यक्रम चलाया गया जिसका उद्‌देश्य न्यूक्लियर ऊर्जा के

क्षेत्र में कार्य करने के लिए जवान तथा प्रतिभावान छात्रों की खोज करना था।

तृतीय पंचवर्षीय योजना 1961–66 (Third Five Year Plan 1961-66) :–

तृतीय पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को विकास की राह पर आगे बढ़ाना था। इसका मुख्य लक्ष्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था। इस योजना में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता के लिए कृषि को महत्वपूर्ण दर्जा दिया गया इसके साथ ही इस योजना का लक्ष्य कृषि उत्पादन को स्वयं तथा निर्यात हेतु बढ़ाना था।
भारत की चीन के साथ 1962 तथा पाकिस्तान के साथ 1965 में लड़ाई हुई। तृतीय पंचवर्षीय योजना का यह दुर्भाग्य था इसके साथ ही भारत ने सन् 1965–66 में विभिन्न जगहों पर सूखों का सामना किया। तृतीय पंचवर्षीय योजना का केन्द्र रहा :

1. तृतीय पंचवर्षीय योजना का ध्यान कृषि पर था जिसमें चावल का उत्पादन बढ़ाना मुख्य था।
2. भारत–चीन की लड़ाई से मुद्रा स्फीति बढ़ गयी तथा प्राथमिकता मूल्यों/कीमतों में स्थिरता लाना हो गया।
3. डैम का निर्माण चालू रहा।
4. विभिन्न सीमेन्ट तथ खाद उपक्रमों का निर्माण हुआ।
5. पंजाब ने गेहूँ का बहुतायात में उत्पादन किया।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत प्राथमिक स्कूल खोले गये।
7. पंचायत चुनाव प्रारम्भ हुए तथा राज्यों को विकास की अधिक जिम्मेदारियाँ प्रदान की गयी।
8. राज्य बिजली बोर्ड तथा राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्डों की स्थापना की गयी।
9. राज्य सड़क परिवहन निगम की स्थापना की गयी तथा स्थानीय सड़कों के निर्माण की जिम्मेदारी राज्यों को सौंपी गयी।

तीन वार्षिक योजनायें (1966–69) (Three Annual Plans 1966-69) :–

दो सालों का सूखा (Drought), दो देशों के साथ लड़ाई तथा रूपये की कीमतों मे कमी के कारण 1966 में तैयार किये गये चौथे पंचवर्षीय योजना के प्रारूप को रोकना पड़ा। इसकी जगह पर तीन वार्षिक योजनायें (1066–69) इस दौरान लागू की गयी।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना 1967–74 (Fourth Five Year Plan 1967-74) :–

चौथी पंचवर्षीय योजना में दो मुख्य उद्देश्य इसके सम्मुख निश्चित किये गये, इनमें "स्थिरता के साथ संवृद्धि" तथा "आत्म निर्भरता" की प्राप्ति था। चौथी योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आय में 5.5% की वृद्धि का और 'न्याय के साथ संवृद्धि' के अतिरिक्त गरीबी हटाओ का था। इस योजना के मुख्य बिन्दु थे :

1. इन्दिरा गाँधी की सरकार ने 14 मुख्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया और हरित क्रान्ति ने कृषि को प्रोत्साहित किया।
2. इसके अतिरिक्त पूर्वी पाकिस्तान (आज का बांगलादेश) की हालत भारत पाकिस्तान के 1971 की लड़ाई के कारण नाजुक थी जिससे बांगलादेश

लिबरेशन बार अस्तित्व में आयी। औद्योगिक विकास के लिए उपलब्ध कोषों को लड़ाई से समाधान के लिए प्रयोग किया गया।

3. भारत न 1974 में जमीन के नीचे अपने न्यूक्लियर प्रयोगों को अंजाम दिया। यह भारत पर यूनाइटेड स्टेट द्वारा बंगाल की खाड़ी में अपनी सातवीं फ्लीट को भेजने का दबाव था जिसका उद्देश्य भारत को पाकिस्तान के विरूद्ध युद्ध करने से रोकना तथा लड़ाई को और अधिक विस्तृत करना था।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना 1974–79 (Fifth Five Year Plan 1974-79) :–

पाँचवी पंचवर्षीय योजना के द्वारा आय का बेहतर वितरण तथा घरेलू बचत की दर में वृद्धि कर "गरीबी उन्मूलन" तथा "आत्मनिर्भरता" दो मुख्य उद्देश्य थे। यह योजना जनता पार्टी की सरकार द्वारा मार्च 78 से पहले ही रोक दी गयी थी। इस योजना के मुख्य बिन्दु थे:–

1. इस योजना का मुख्य ध्यान रोजगार, गरीबी उन्मूलन तथा न्याय पर केन्द्रित था।
2. इस योजना में उपरोक्त के अतिरिक्त कृषि उत्पादन तथा रक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था।
3. 1975 में बिजली आपूर्ति अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय सरकार बिजली पैदा करने तथा इसके वितरण क्षेत्र में आसानी से प्रवेश कर सकती थी।
4. 1978 में नयी चुनी गयी मोरारजी देसायी की सरकार ने योजना को निरस्त कर दिया।

छठी पंचवर्षीय योजना 1980–85 (Sixth Five Year Plan 1980-85) :–

यहाँ दो छठी पंचवर्षीय योजनायें थीं। छठी पंचवर्षीय योजना में जनता सरकार का ध्यान कृषि तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में रोजगार को बढ़ाने, परिवारों (Households) तथा छोटे उद्योगों जो उपयोग हेतु उपभेक्ता वस्तुओं का उत्पादन कर रहे थे को प्रोत्साहन और समाज के निचले भाग की न्यूनतम आय को निश्चित करने पर केन्द्रित था। जब छठी योजना को लागू करना था उस वक्त योजनाकारों ने पहली सरकार की सोच को नकार दिया और संवृद्धि के नेहरूवियन मॉडल को वापस लाया गया। इसके मुख्य बिन्दु निम्नवत थे :–

1. जब राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री चुना गया तब जवान प्रधानमंत्री का ध्यान मुख्य रूप से औद्योगिक विकास पर था इसमें भी विशेषतः सूचना तकनीक पर।
2. भारत में पहली बार "भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्रणली" को लाया गया और इसके अन्तर्गत विभिन्न सड़कों को चौड़ा किया गया।
3. पर्यटन का विस्तार किया गया।
4. छठी पंचवर्षीय योजना आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत थी। कीमत नियंत्रण को खत्म कर दिया गया तथा राशन की दुकानों को बन्द कर दिया गया। इससे खाने की वस्तुओं के दाम/कीमत बढ़ने के साथ–साथ रहन–सहन लागत (cost of living) भी बढ़ने लगी।
5. अतिजनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए परिवार नियोजन को विस्तार दिया गया। अधिक संवृद्ध क्षेत्रों में लोगों ने परिवार नियोजन को अपनाया तथा

अन्य क्षेत्रों में यह नहीं अपनाया गया तथा इन क्षेत्रों में अधिक जन्म दर चलती रही।

सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985–90 (**Seventh Five Year Plan 19985-90**) :–

सातवीं पंचवर्षीय योजना ने ऐसी नीतियाँ तथा कार्यक्रमों के साथ काम करना प्रारम्भ किया जिनका उद्‌देश्य खाद्यान्न उत्पादन की गति को बढ़ाना, रोजगार अवसरों को बढ़ाना तथा उत्पादकता में वृद्धि था। इस योजना का लक्ष्य 5% संवृद्धि दर प्राप्त करना था परन्तु इस योजना द्वारा 6% संवृद्धि दर प्राप्त की गयी। इसके मुख्य बिन्दु थे :

1. सातवीं योजना द्वारा कांग्रेस पार्टी की सरकार में वापसी हुई।
2. इस योजना का ध्यान तकनीकी सुधार से औद्योगिक उत्पादन क्षमता बढ़ाना था।
3. सातवीं योजना के मुख्य क्षेत्र जिन पर विशेष ध्यान दिया गया सामाजिक न्याय (Social Justice), समाज के कमजोर वर्ग पर निर्दयता (oppresion) को समाप्त करना, आधुनिक तकनीक का उपयोग, कृषि विकास, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति, छोटे तथा बड़े पैमाने के किसानों की उत्पादकता को बढ़ाना तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वतंत्र अर्थव्यवस्था बनाना चाहते थे।
4. 15 वर्षों से एक निरन्तर वृद्धि दर प्राप्त करने के इन्तजार में, सातवीं पंचवर्षीय योजना में सन् 2000 तक इसे प्राप्त करने पर तथा इसके आवश्यक तत्वों पर ध्यान केन्द्रित किया।
5. इस योजना में श्रमिकों की वृद्धि 39 मिलियन तथा 4% प्रतिवर्ष की दर से रोजगार में वृद्धि की उम्मीद थी।
6. आशातीत कुछ उपलब्धियाँ इस योजना की निम्नवत हैं :

- भुगतान शेष (Balance of Payment) अनुमानित :
  निर्यात रू0 33 हजार करोड़, आयात (–) रू0 54 हजार करोड़, व्यापार सुतुलन –रू0 21 हजार करोड़।
- व्यापारी माल निर्यात (Merchandise Export) (अनुमानित – रू0 60,653 करोड़)
- व्यापारी माल (Merchandise) आयात (अनुमानित) : रू0 95,437 करोड़
- भुगतान शेष का अनुमान : निर्यात–रू0 69.7 हजार करोड़, आयात– (–) 95.4 हजार करोड़, व्यापार संतुलन : (–) रू0 34.7 हजार करोड़

9.5.1 1989–1991 की समयावधि (Period between 1989-91) :–

1. 1989–91 तक भारत में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण था इसलिए कोई पंचवर्षीय योजना इस दौरान लागू नहीं की गयी। 1990–92 तक केवल वार्षिक योजनायें लागू की गयी।
2. 1991 में भारत के सामने विदेशी विनिमय संचय का संकट था इस वर्ष यह संचय मात्र एक बिलियन यू0एस0 डॉलर का बचा था इसलिए सरकार ने दबाव में समाजवादी अर्थव्यवस्था में सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ की।
3. पी0वी0 नरसिम्हा राव (28 जून 1991–23 दिसम्बर 2004) स्वतंत्र भारत के 12वें प्रधानमंत्री तथा कांग्रेस पार्टी के मुखिया जिन्हें भारतीय अर्थव्यवस्था

में सुधारों का जनक भी कहा जाता है, ने मुख्य रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था के परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ की और विभिन्न ऐसी घटनाओं का जन्म हुआ जिनका प्रभाव राष्ट्रीय सुरक्षा पर देखा गया।

4. लगभग इसी समय डॉ0 मनमोहन सिंह भारतीय मुक्त बाजार व्यवस्था में सुधारों की प्रक्रिया प्रारम्भ की तथा लगभग दिवालिया होने की स्थिति पर पहुँचे राष्ट्र को फिर से स्वावलम्बी बनाया। यह समय निजीकरण तथा उदारीकरण की भारत में आरम्भ का समय था।

आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992–97 (Eight Five Year Plan 1992-97) :–

केन्द्र में राजनीतिक उतार–चढ़ाव की वजह से आठवीं पंचवर्षीय योजना को दो वर्ष का विलम्ब हुआ और इसको उस समय लागू किया गया जब भारत की भुगतान शेष की स्थिति अत्यन्त दुखद थी तथा 1990–91 में मुद्रास्फीती की दर भी काफी ऊँची थी। बुरी आर्थिक स्थिति से निपटने के लिए इस योजना में कुछ कड़े निर्णय लिये गये। इसका प्रभाव था कि अर्थव्यवस्था में तेजी से संवृद्धि की गति बढ़ी तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों में संवृद्धि देखी गयी यह थे :

(i) तीव्र आर्थिक विकास

(ii) कृषि एवं सहायक क्रियायें तथा निर्माण क्षेत्र में आयी संवृद्धि

(iii) आयात–निर्यात में वृद्धि, व्यापार में सुधार तथा करन्ट एकाउन्ट डेफिसिट में सुधार

आठवीं पंचवर्षीय योजना की मुख्य विशेषता थी की अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू उत्पाद की दर 6.8% थी जो लक्ष्य 5.6% से अधिक थी। इस योजना के मुख्य बिन्दु निम्नवत हैं :

1. उद्योगों का आधुनिकरण आठवीं पंवर्षीय योजना की मुख्य विशेषता थी।
2. इस योजना के अन्तर्गत ही भारतीय अर्थव्यवस्था को विभिन्न नियंत्रणों से मुक्त करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिसका उद्देश्य करन्ट एकाउन्ट तथा भुगतान शेष की स्थितियों में सुधार करना था।
3. 1 जनवरी 1995 को भारत 'विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation)' का सदस्य बना। यह योजना आर्थिक विकास की 'राव एवं मनमोहन मॉडल' के नाम से पुकारी जाने लगी।
4. इस योजना के मुख्य उद्देश्य थे जनसंख्या वृद्धि की स्थिरता, गरीबी को कम करना, रोजगार उत्पन्न करना, आधारभूत सेवाओं को मजबूत करना, संस्थानों का निर्माण, मानव संसाधनों का विकास, पंचायत राज, नगरपालिकायें, गैर सरकारी संगठन की सम्मिलित करना और विकेन्द्रीकरण तथा जनता की प्रतिभागिता।
5. 26.6% के खाँके के साथ ऊर्जा क्षेत्र का प्राथमिकता प्रदान की गयी।
6. औसत वार्षिक संवृद्धि दर 6.7% रही जहाँ लक्ष्य 5.6% प्राप्त करने का था।

नौवी पंचवर्षीय योजना 1997–2002 (Ninth Five Year Plan 1997-2002) :–

नौवी योजना को राज्य नीति (State Policy) को ध्यान में रखकर बनाया गया जिसका उद्देश्य जीवन स्तर सुधार, उत्पादक रोजगार का सृजन, क्षेत्रीय सन्तुलन और आत्पतिर्भरता था।

1. भारत की नौवी पंचवर्षीय योजना का मुख्य आकर्षण था कि यह तीव्र औद्योगीकरण, मानवीय विकास, पूर्ण रोजगार, गरीबी उन्मूलन और देशी संसाधनों पर आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में अग्रसर था।
2. नौवी पंचवर्षीय योजना का निर्माण भारत की स्वतंत्रता के स्वर्ण जयन्ती के रूप में भी किया गया।
3. नौवी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न थे :–
   - कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता देना और ग्रामीण विकास पर ध्यान देना।
   - आवश्यक रोजगार अवसर पैदा करना और गरीबी उन्मूलन को प्रोत्साहित करना।
   - अर्थव्यवस्था की संवृद्धि गति को तेज करने के लिए मूल्यों/कीमतों में स्थिरता लाना।
   - खाद्यान्न तथा पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना।
   - सभी के लिए शिक्षा पर आधारभूत निवेश करना, स्वच्छ पीने का पानी, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा, परिवहन तथा ऊर्जा के क्षेत्र पर विशेष ध्यान देना।
   - तीव्र जनसंख्या वृद्धि पर नियत्रण करना।
   - महिला शशक्तिकरण जैसे सामाजिक सरोकार के विभिन्न विषयों को प्रोत्साहित करना।
   - निजी निवेश को बढ़ाने के लिए उदार बाजार व्यवस्था।
4. नौवी पंचवर्षीय योजना में वृद्धि दर 5.35% रही जहाँ लक्ष्य 6.5% प्राप्त करने का था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना 2002–07 (**Tenth Five Year Plan 2002-07**)

बढ़ती बेरोजगारी तथा श्रमिकों की तीव्र वृद्धि ने नीतियों के केन्द्र को परिवर्तन की आवश्यकता थी। इसलिए दसवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि, सिंचाई, सूचना तकनीकी, संचार तथा अन्य क्षेत्रों को रोजगार परक बनाने के साथ लगभग 50% रोजगार उत्पन्न करने का लक्ष्य था। योजना में गरीबी को सामाजिक अस्वीकार्यता के चरम पर बताया गया। योजना में यह भी प्रथम बार हुआ कि राज्यों की वृद्धि पर तथा अन्य लक्ष्यों को राज्यों से सलाहकार निर्धारित तथा प्राप्त करने के प्रयास किये गये।

1. दसवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य थे :–

- 2007 तक गरीबी में 5% की कमी।
- बढ़ी हुई श्रमिकों की संख्या तक लाभदायक तथा उच्च कोटि का रोजगार प्रदान करना।
- 2007 तक शिक्षा तथा मजदूरी दर में लिंग भेद को 50% तक कम करना।
- दसवीं पंचवर्षीय योजना में साक्षरता दर को 75% तक बढ़ाना।
- 2001 से 2011 के बीच जनसंख्या वृद्धि दर को 16.2% तक कम करना।
- 2007 तक 25% तथा 2012 तक 33% जंगल तथा पौधारोपण को बढ़ाना।

- सभी गाँवों में योजना अवधि में स्वच्छ तथा सुरक्षित पीने का पानी उपलब्ध कराना।
- 2007 तक सभी प्रदूषित नदियों की सफाई करना।

2. इस योजना अवधि में आर्थिक संवृद्धि पर फिर तेज हुई तथा 2006 तक 8% से आगे निकल गयी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना 2007–12 (Eleventh Five Year Plan 2007-12)

दशवीं पंचवर्षीय योजना में न्यूनतम कृषि संवृद्धि (2.1%) तथा 2004 में निर्धारित किये गये उद्देश्य "नेशनल कॉमन प्रोग्राम" के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा कृषि पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से इस योजना का निर्माण हुआ। इसलिए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य "तीव्र तथा समग्र संवृद्धि" था। इस योजना का लक्ष्य औसत 10% संवृद्धि प्राप्त करना था। इस योजना के मध्य में आँकलन लगाया कि औसत वार्षिक घरेलू सकल उत्पाद वृद्धि दर 8.2% रहेगी। इस योजना में समग्रता पर ध्यान देते हुए शिक्षा, स्वास्थ्य, एस0सी0, एस0टी0 तथा माइनोरिटीज़ ध्यान दिया गया हालांकि इसमें सफलता उम्मीद जितनी नहीं मिली। अनिश्चित वैश्विक आर्थिक वातावरण (Uncertain Global Economic Environment) के कारण सूचना तकनीकी पर विशिष्ठ ध्यान दिया गया। इस योजना के निम्नांकित मुख्य उद्देश्य थे :–

1. **आय एवं गरीबी**

- सकल घरेलू उत्पाद की दर को 8 से 10% तक बढ़ाना तथा 12वीं पंचवर्षीय योजना में 10% वृद्धि दर को कायम रखना ताकि 2016–17 तक प्रति व्यक्ति आय को दुगना किया जा सके।
- कृषि सकल घरेलू उत्पाद की दर को चार प्रतिशत तक बढ़ाना।
- 70 मिलियन रोजगार अवसरों को उत्पन्न करना।
- शिक्षित बेरोजगारी को 5% तक कम करना।
- अकुशल श्रमिकों के मजदूरी में 20% तक बढ़ोत्तरी करना।
- उपभोग गरीबी दर को 10% तक कम करना।

2. **शिक्षा**

- 2003–04 में 52.2% से 2011–12 में 20% तक प्रारम्भिक शिक्षा में बच्चों के छोड़ने (Drop Out) की दर का लक्ष्य प्राप्त करना।
- प्रारम्भिक स्तर पर स्कूलों में शिक्षा के न्यूनतम स्तर का विकास करना तथा इसको बनाये रखना और शिक्षा में निरन्तर परीक्षण तथा नियंत्रण से इसकी भुगतान सुनिश्चित करना।
- 7 वर्ष या इससे अधिक आयु वर्ग के लिए साक्षरता दर (Literacy Rate) 85% तक बढ़ाना।
- साक्षरता में 10% अंको से लिंग भेद में कम करना।
- योजना अवधि के खत्म होने तक उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली जनसंख्या में वर्तमान 10% से 15% तक की वृद्धि।

3. **स्वास्थ्य ;**

- बाल मृत्यु दर मे 28 अंकों की कमी तथा मातृ मृत्यु दर 1000 जन्म पर केवल 1 का लक्ष्य।
- कुल उपजाऊ/उत्पादकता (Fertility) दर को 2.1 तक कम करना।
- 2009 तक सभी को स्वच्छ तथा सुरक्षित पीने का पानी उपलब्ध कराना।
- 0 से 3 वर्ष के बच्चों मे कुपोषण को इसके वर्तमान दर से आधा तक कम करना।
- महिलाओं तथा लड़कियों में योजना के खत्म होने तक एनीमिया (Anaemia) को 50% तक कम करना।

4. **महिलायें एवं बच्चे**

- 2011–12 तक लिंग अनुपात 0–6 वर्ष के वर्ग का 935 तथा 2010–17 तक 950 तक बढ़ाना।
- सरकार की सभी योजनाओं का 33% प्रत्यक्ष लाभ महिलाओं तथा लड़कियों को मिलना सुरक्षित करना।
- काम करने (Work) की मजदूरी के बिना सभी बच्चे अपने बचपन का आनन्द ले सकें, यह सुनिश्चित करना।

5. **आधारभूत क्षेत्र**

- 2009 तक सभी गाँवों और बी0पी0एल0 को बिजली देना तथा 24 घंटे बिजली मुहैया कराना।
- 2009 तक पहाड़ों में 500 से अधिक तथा अन्य 1000 की जनसंख्या से अधिक के क्षेत्रों में ऑल वैदर रोड से जोड़ना तथा 2015 तक सभी को यह लाभ प्रदान करना।
- 2007 तक प्रत्येक गाँव को टेलीफोन से जोड़ना और 2017 तक प्रत्येक गाँव को ब्राड बैन्ड कनैक्टिविटि से जोड़ना।
- 2016–17 तक सभी गरीबों को रहने के लिए मकानों की व्यवस्था करना।

6. **पर्यावरण**

- जंगल तथा वृक्षारोपण को 5% तक बढ़ाया।
- 2011–12 तक विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के मानकानुसार सभी बड़े शहरों में वायु की गुणवत्ता प्राप्त करना।
- 2011–12 तक शहरों द्वारा बर्बा (waste) पानी को साफ नदियों के पानी में मिलाना।
- 2016–17 तक ऊर्जा के क्षेत्र में 20% तक बढ़ाना।

9.5.2 बारहवीं पंचवर्षीय योजना 2012–17 (Twelfth Five Year Plan 2012-17)

सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर को 8% तक प्राप्त करना इसका मूल उद्देश्य है। कृषि तथा कृषि क्षेत्र में राजगार अवसरों को पैदा करना समग्र विकास के लिए आवश्यक है। 12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए मुख्य विभागीय चुनौतियों में ऊर्जा, पानी तथा पर्यावरण को बताया गया।

9.6 भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ (Achievements of Ecnomic Planning in India)

(i) राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी (Increase in National Income)

राष्ट्रीय आय में वृद्धि एक इसारा है, भारत में आर्थिक नियोजन की उपल्बधता का, ब्रिटिश काल में भारत की राष्ट्रीय आय 0.5% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही थी लेकिन आर्थिक नियोजनकाल में यह वृद्धि दर 4.1% था हालाकि यह दर उम्मीद से कम थी फिर भी यह वृद्धि दर महत्वपूर्ण थी जिसके द्वारा आर्थिक स्थिरिकरण का चक्र खत्म हुआ।

2003–04, 2004–05 में कुल संवृद्धि दर 8.2% थी। 2006–07 में घरेलू सकल उत्पाद की वृद्धि दर 9.2% थी। राष्ट्रीय आय में यह वृद्धि भारत में आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण तथा लाभदायक थी।

(ii) प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (Increase in Per Capita Income) स्वतंत्रता से पूर्व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर लगभग शून्य थी लेकिन नियोजनकाल में यह दर 2% प्रतिवर्ष रही। पहली योजना में यह 1.8%, दूसरी में 2.1% तथा तीसरी योजना में यह कम होकर केवल 0.2% रही। जबकि तीन वार्षिक योजनाओं के दौरान यह दर बढ़कर फिर 1.5% हो गयी। चौथी योजना में यह कम होकर 1% रही लेकिन पाँचवी योजना में फिर बढ़कर 2.7% हो गयी। छटी तथा सातवीं योजना में यह क्रमशः 3.2% तथा 3.6% रही। आठवीं योजना में यह बढ़कर 4.5% हुई लेकिन नौवी योजना में फिर 3.3% रही। दसवीं योजना में यह 6.1% तक बढ़ी इसलिए भारत में आर्थिक नियोजन यह इशारा करता है कि यह एक अच्छी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ब्रिटिश काल की भी विभिन्न कमियों को दूर किया जा सकता है।

(iii) **पूँजी निर्माण की गति में वृद्धि (Increase in rate of Capital formation)** किसी भी देश के आर्थिक विकास में पूँजी निर्माण एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पंचवर्षीय योजनाकाल के दौरान पूँजी निर्माण की गति भी बढ़ी है। पूँजी निर्माण की गति बचत तथा निवेश की दर पर निर्भर करता है। 1950–51 में बचन दर राष्ट्रीय आय की 5.5% थी तथा पहली पंचवर्षीय योजना के अंत तक यह बढ़कर 11.2% हो गयी।

बचत की दर चौथी तथा पाँचवी योजना में क्रमशः 13.8% तथा 22.5% रही। सातवीं योजना में यह 21.7% थी और आठवीं योजना में यह 25.6%। 2005 से 2007 में यह बढ़कर 34.8% हो गयी थी। प्रथम, द्वितय, तृतीय तथा चौथी योजनाओं में निवेश की दर क्रमशः 10%, 12.7%, 13.9% और 14.5% थी। यह बढ़कर 16.5% पाँचवी योजना में हुई। सातवीं योजना में पूँजी निर्माण की दर 24.1% थी और आठवीं योजना में 26%। लेकिन नौवीं योजनाकाल (2001–02) में पूँजी निर्माण दर घटकर 24.2% रह गयी और बचत दर 23.5%। दसवीं योजना के अन्तिम वर्ष में (2006–07) पूँजी निर्माण की दर 36% थी।

(iv) कृषि तथा हरित क्रान्ति में संस्थागत सुधार (Institutional Reforms in Agriculture and Green Revolution) कृषि विकास के लिए सहयोग दो तरीकों से किया जाता है पहला कृषि में भूमि सुधारों को अपनाया जाना चाहिए। दूसरा 1966 से कृषि के क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तनों पर जोर दिया गया। इन दोनों तरीकों को अपनाया गया और 1951–52 में यह हरित क्रान्ति के रूप में सामने आया। 2006–07 में खाद्यान्नों का उत्पादन 550 लाख टन था तथा खाद्यान्न उत्पादन

2161 लाख टन बढ़ा, गन्ने का उत्पादन 1950–51 में 69 लाख टन था यह 2006–07 में बढ़कर 3453 लाख टन हो गया। 1950–51 में रूई और जूट की पैदावार क्रमशः 50 लाख टन तथा 25 लाख टन थी। योजना का उद्देश्य 2.1% प्रतिवर्ष की वृद्धि का था लेकिन यह लगभग सभी योजनाकालों में 3.7% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी। नौवी योजना में संवृद्धि पर बढ़कर 5.5% प्रतिवर्ष तथा दसवीं योजना में 7.8% प्रतिवर्ष थी। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में संवृद्धि दर 8% प्रतिवर्ष निश्चित की गयी।

राष्ट्रीय आय में वृद्धि वास्तव में योजनाकाल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। योजनाकाल के पहले दशक में (1950–51 से 1960–61 तक) राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर औसत 3.8% प्रतिवर्ष थी। लेकिन दूसरे दशक में 1960–61 से 1970–71 यह बढ़कर 3.3% हो गयी। यही क्रम अगले दशक 1970–71 से 1980–81 में रहा। 1980–81 से 2002–03 तक यह दर बढ़कर 5.9% हो गयी। वास्तव में 1950–51 से 2005 के मध्य, भारत की राष्ट्रीय आय औसतन 4.4% रही। 2004–05 और 2005–06 में यह संवृद्धि दर (1999–2000 के मूल्यों पर) क्रमशः 5.7% तथा 7.4% थी।

2006 और 2007 में उत्पादन क्रमशः 227 लाख तथा 103 लाख वेल्स पहुँच गया। 1950–51 में सिंचाई का क्षेत्र केवल 226 लाख हेक्टेयर था तथा 2003–04 में यह बढ़कर 768 लाख हेक्टेयर हो गया। कृषि उत्पादन योजनाकाल में बेहतरीन तरीके से बढ़ा। बेहतर खाद, बेहतर बीज, कृषि करने के बेहतर तरीकों से प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ने लगा। 1954 में खाद्यान्न (दालों सहित) उपलब्धता केवल 360 ग्राम प्रति दिन थी। वर्ष 2006 में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न (दालों सहित) उपलब्धता 422.4 ग्राम प्रति दिन हो गयी। योजनाकाल में कृषि उत्पादन में वृद्धि दर औसतन 2.8% प्रतिवर्ष रही। 1950–51 में कृषि संवृद्धि दर 5.6% थी यह 2006–07 में घटकर 4% रह गयी।

9.6.1 उद्योगों का विकास (Development of Industries)

योजनाकाल के दौरान औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर लगभग 6.9% प्रतिवर्ष रही। योजनाओं क कारण भारत के औद्योगिक क्षेत्र में काफी विकास किया।

9.6.2 आर्थिक मूलभूत सुविधाओं का विकास (Development of Economic Infrastructure)

योजनाकाल में आर्थिक आधारभूत सुविधाओं का अच्छा विकास हुआ। इस अवधि के दौरान रेल लाइनों का विस्तार कुल 63221 किलोमीटर हुआ इसमे 17900 किलोमीटर बिजली से चलने वाले टैक बनाये गये। सडकों की लम्बाई 157000 किलोमीटर से बढ़कर 33,00,000 किलोमीटर हो गयी। 1950–51 में रेल द्वारा सामान केवल 7.3 करोड़ टन उठाया जाता था यह ढुलान 2005–06 में बढ़कर 51 करोड़ टन हो गया। समुद्री जहाजों द्वारा कारोबार 1950–51 में 3.9 लाख जी0 आर0टी0 था जो 2005–06 तक 77 लाख जी0आर0टी0 हो गया।

1950–51 में बिजली उत्पादन 2300 मेगावाट था जो 2005–06 मे बढ़कर 1,45,600 मेगावाट हुआ।

9.6.3 सामाजिक संरचना का विकास (Development of Social Structure)

योजनाकाल के दौरान, देश की सामाजिक सेवायें जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परविार नियोजन और मेडिकल सेवाओं आदि के क्षेत्र में भी प्रशसनीय विकास हुआ। 1951 में मृत्यु दर 27% थी यह 2006 में घटकर 7.5 प्रति हजार हो गयी। औसत आयु 1951 में 32 वर्ष थी जो 2006–07 में बढ़कर 65.4 वर्ष हो गयी। मलेरिया जैसी विभिन्न भयावह बीमारियों का खत्म किया गया। पूरे देश में रिसर्च तथा लेबोरेट्रीज का एक बेहतर नेटवर्क स्थापित हुआ। शिक्षा सुविधाओं का विस्तार किया गया। 1951 के मुकाबले स्कूल जाने वाले छात्रों में तीन गुना तथा कॉलेज जाने वाले छात्रों में पाँच गुना वृद्धि हुई। इन्जीनियरिंग कॉलेजों मे स्नातक में प्रतिवर्ष प्रवेश 1750 में 7,100 से 1,33,000 हो गये। अस्पतालों, बिस्तरों, डॉक्टरो, नर्सों, दवायियों, परिवार नियोजन क्लीनिकों तथा अन्य चिकित्सा सुविधाओं में बेहतरीन सुधार तथा बढ़ोत्तरी हुई। अस्पतालों तथा डिस्पेन्सरीज की संख्या 32,156 तक पहुँच गयी। आज यहाँ देश में 900 व्यक्ति पर एक डॉक्टर हैं।

9.6.4 रोजगार (Employment)

पहली योजना में 70 लाख लोगों को रोजगार दिया गया। यह अनुमान था कि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक लगभग 40.3 करोड़ लोगों को रोजगार दिया जायेगा।

9.6.5 आधुनिकीकरण (Modernization)

योजनाकाल के दौरान आधारभूत तथा संस्थागत परिवर्तनों को अपनाया जाना इस बात का पूरा संकेत है कि देश आधुनीकीकरण को अपनाते हुए नेतृत्व कर रहा है।

9.6.6 आत्मनिर्भरता (Self Reliance)

देश ने योजनाकाल में आत्पनिर्भरता के लक्ष्य की प्राप्ति में भी सफलता प्राप्त की है। 2005–06 में कुल अधिकृत विदेशी सहायता 18,938 करोड़ रूपये थी और इसमें से उपयोग में 18858 करोड़ रूपये लायी गयी। 2006–07 में कुल अधिकृत विदेशी सहायता 31,790 करोड़ रूपये थी जिसमें से केवल 19,419 करोड़ रूपये उपयोग में लायी गयी।

9.6 सारांश

आर्थिक नियोजन से तात्पर्य आर्थिक विकास के उद्देश्यों को एक निश्चित समयावधि में, देश के साधनों को ध्यान में रखकर प्राप्त करना है। इसमें कोई शक नहीं कि भारत ने योजनाकाल में बेहतरीन तरीके से विभिन्न सेक्टर्स में विकास किया है। देश औद्योगिकरण, ऊर्जा, बहुआगामी परियोजनायें और कृषि उत्पादन में विकास प्राप्त करने में सफल रहा। भारत में योजनाओं के मुख्य उद्देश्य जीवन स्तर को बढ़ाना, औद्योगीकरण, कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भरता और आय व पूँजी की असमानता को दूर करना रहा है।

9.7 शब्दावली

आर्थिक नियोजन (Economic Planning) आर्थिक नियोजन का अर्थ उस आर्थिक प्रणाली के अस्तित्व से है जिसमें प्रत्येक उत्पादन इकाई केवल उन उत्पादन स्त्रोतों का उपयोग करती है जो उन्हें आवंटित होते हैं तथा अपने उत्पादन को केन्द्रीय अधिकारी के निर्देशानुसार वितरित करती है।

नियोजन नीति (Planning Policy) एक योजना का एक सोचा समझा प्रयास है कि किस तरह से देश के संसाधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। इसके कुछ सामान्य उद्देश्यों/लक्ष्यो में संवृद्धि, आधुनिकीकरण, पूर्णरोजगार, स्वनिर्भरता तथा समानता को सम्मिलित किया जाता है लेकिन सभी योजनाओं में इन सभी बिन्दुओं को बराबर का महत्व नहीं दिया जाता है।

योजना आयोग और पंचवर्षीय योजनायें (Planning Commission and the Five Year Plan) केन्द्रीय केबिनेट के अध्यादेश के द्वारा योजना आयोग की स्थापना मार्च 1950 में की गयी। योजना आयोग देश की मानवीय तथा अमानवीय पूँजी का अनुमान लगाना। योजनाओं का निर्माण/तैयार करना व सरकार के सलाहकारी संस्था के रूप में कार्य करती है।

सामाजिक संरचना का विकास (Development of Social Structure) योजनाकाल के दौरान, देश की सामाजिक सेवायें जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परविार नियोजन और मेडिकल सेवाओं आदि के क्षेत्र में भी प्रशसनीय विकास हुआ।

9.8 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. .... का अर्थ उस आर्थिक प्रणाली के अस्तित्व से है जिसमें प्रत्येक उत्पादन इकाई केवल उन उत्पादन स्त्रोतों का उपयोग करती है जो उन्हें आवंटित होते हैं तथा अपने उत्पादन को केन्द्रीय अधिकारी के निर्देशानुसार वितरित करती है।
2. भारत में आर्थिक नियोजन की आवश्यकता मुख्यतः इसके .... के कारण महसूस हुई।
3. भारत में नियोजन संस्था को .... के नाम से जाना जाता है।
4. केन्द्रीय केबिनेट के अध्यादेश के द्वारा योजना आयोग की स्थापना मार्च .... में की गयी।
5. पाँचवी पंचवर्षीय योजना के द्वारा आय का बेहतर .... की दर में वृद्धि कर "गरीबी उन्मूलन" तथा "आत्मनिर्भरता" दो मुख्य उद्‌देश्य थे।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आर्थिक नियोजन 2. आर्थिक पिछड़ेपन 3. योजना आयोग 4. 1950
5. वितरण तथा घरेलू बचत

9.10 स्वपरख प्रश्न

1. आर्थिक नियोजन क्या है ?
2. भारत मे योजना कौन बनाता है?
3. नियोजन के मुख्य उददेश्य क्या है?
4. आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया तथा इसके पीछे क्या तर्क है ?
5. व्यापक विकास नियोजन को परिभाषित कीजिए।
6. भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास दर को बढाने मे आर्थिक नियोजन किस हद तक सफल रहा ।

9.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Chanderashekhar, C.P., Aspects of Growth and Structural Change in Indian Economy, Economic and Political Weekly, Special Number, Nov., 1998.
2. Das, Gupta, Ajit K., Agriculture and Economic Development in India, New Delhi, Associated Publishing House, 1993.
3. Government of india, economic survey (annual)
4. Desai, Ashok, V., Technology Absorption in Indian Industry, New Delhi, Wiley wstern,1998.
5. Indian Economic Review (Delhi school of economics).
6. Indian Economic Journal (Indian economic association)
7. Khatehkate, Deen, National Economic Policy in India, in Salvatore, Dominik, ed. Hand book of Comparative Economic Policies, Vol.,1, National Economic Policies, Greenwood press, pp.231-75,1991.
8. Rajkumar, Sen and Biswajit, Chetterjee,Indian Economy Agenda for the 21st Century, Deep and Deep Publication, New, Delhi,2002.
9. A.N. Agrawal, Indian Economy, Problems Of Development And Planning, Wiley Eastern Limited, New, Delhi,2002
10. Planning Commission, Government Five Year Plan.
11. Bhalla, G.S ed., Economic Liberalization and Indian Agriculture, Institution for Studies in Industrial Development, New Delhi 1994.
12. Lall, Sanjaya, technology Development and Export Performance in LDCs: Leading Engineering and Chemical Firms in India, Review of World Economics, Vol. 122(1), pp.80-1996.

इकाई 10 नई आर्थिक नीति (New Economic Policy)

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 नई आर्थिक नीति का अर्थ
10.3 नई आर्थिक नीति कें मुख्य भाग
10.4 नई आर्थिक नीति की आवश्यकता
10.5 भारत की आर्थिक नीति की विशेषतायें
10.6 नई आर्थिक नीति के अंग
10.7 नई आर्थिक नीति की उपलब्धियॉ एंव कमियां
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 बोध प्रश्न
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.12 स्वपरख प्रश्न
10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- नई आर्थिक नीति की परिभाषा की व्याख्या कर सकें।
- नई आर्थिक नीति के विभिन्न भागो कों समझ सकें।
- नई आर्थिक नीति के अंगो के बारे मे अवगत हो सकें।
- नई आर्थिक नीति की आवश्यकता एंव महत्व कों समझ सकें।
- नई आर्थिक नीति की उपलब्धियॉ तथा कमियो की व्याख्या कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

1991 में नयी आर्थिक नीति लागू की गयी। 1991 से पूर्व सार्वजनिक क्षेत्र को अर्थव्यवस्था के विकास में एक महत्वपूर्ण रोल दिया गया था। निजी क्षेत्र पर कठोर नियंत्रण रखा गया था। लेकिन यह महसूस किया जाने लगा कि लालफीताशाही, ओवरस्टाफिंग तथा पहल करने के अभाव के कारण सार्वजनिक क्षेत्र अकुशल होने लगा था। 1991 में विभिन्न अवसरो पर सार्वजनिक क्षेत्र की बुरी कार्यशैली के कारण भारत के सामने विभिन्न मुश्किल आर्थिक संकट आये। विदेशी विनिमय संचय इतना कम हो गया था कि हम दो सप्ताह के आयात के वित्त की व्यवस्था इससे नहीं कर सकते थे। नये ऋण उपलब्ध नही थे तथा अनिवासी अपने निवेश को वापस ले जा रहे थे। वैश्विक आर्थिक वातावरण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में अविश्वास का माहोल था। अर्थव्यवस्था को इन संकटों से वापस लाने तथा तीव्र व स्थिर/निरन्तर आर्थिक विकास की राह पर लौटाने के लिए आवश्यक था कि एक नयी आर्थिक नीति अपनायी जाय।

जुलाई 1991 में सरकार ने अर्थव्यवस्था को इन संकटों से उबारने के लिये विभिन्न आर्थिक उपाय अपनाये, इसके साथ ही इसका उद्देश्य एक सकारात्मक तथा निरन्तर आर्थिक सम्वृद्धि भी था। इस नीति के मुख्य बिन्दु थेः

1– नियंत्रित अर्थव्यवस्था को उदार अर्थव्यवस्था से प्रतिस्थापित करना जैसे

नियंत्रण में कमी तथा उदारता को प्रोत्साहित करना।

2— निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करना।

3— विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को बढावा देना।

4— बेहतर तकनीक को लागू करना।

5— कृषि में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन।

6— व्यापार नीति, मौद्रिक नीति तथा राजकोषीय नीति में गम्भीर परिवर्तनों को लागू करना।

7— राजकोषीय घाटे को नियंत्रण में रखना।

इस तरह के सभी नये तरीकों को नयी आर्थिक नीति कहा गया। इसलिए नयी आर्थिक नीति से तात्पर्य जुलाई 1991 के पश्चात् उन सभी आर्थिक तरीकों/प्रयासों को अपनाने से है जिनका उद्देश्य उत्पादकता बढ़ाना, और अर्थव्यवस्था की कुशलता को नियंत्रण की जगह प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण पैदा कर प्राप्त करना था।

10.2 नयी आर्थिक नीति का अर्थ

सी0रंगराजन, निवर्तमान गवर्नर, भारतीय स्टेट बैंक— के अनुसार ''1991 से विभिन्न प्रकार के नीतिगत माप तथा बदलाव लागू किये गये यह सब आर्थिक नीति में सम्मिलित है। नयी आर्थिक नीति का उद्देश्य प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण तैयार कर अर्थव्यवस्था उत्पादकता तथा कुशलता में सुधार लाना है।'' नयी आर्थिक नीति का विशेष ध्यान उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण पर था। नियंत्रण की जगह उदारीकरण ने ले ली जिसकी वजह से नये औद्योगिक इकाइयों लगायी गयी तथा पुरानी इकाईयों का विस्तार किया गया। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में निजी क्षेत्र को विशेष महत्व दिया गया। वह क्षेत्र जो पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे उन्हें निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया। विदेशी पूँजी निवेश तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को भी आवश्यकतानुसार उदार बनाया गया।

इसलिए नयी आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य प्रतिस्पर्धा तथा कुशलता को बढावा देना था। निजीकरण, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण प्रतिस्पर्धा को बढावा देगें तथा नई तकनीक का उपयोग कुशलता को बढायेगा। प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण तथा कुशलता को प्रोत्साहन यह दोनों नयी आर्थिक नीति के मूल स्तम्भ थे।

10.3 नयी आर्थिक नीति के मुख्य भाग

नयी आर्थिक नीति के मुख्य भाग निम्नवत् हैं:

(अ) **ढाँचागत नीतिया (Structural Policies)**:—

यह नीतियां अर्थव्यवस्था की पूर्ति के पहलू को मजबूत करती हैं। उद्योगों में कुशलता को प्रोत्साहित करना तथा व्यापार व निवेश की अधिक अवसर पैदा करना इनमें मुख्य रूप से सम्मिलित हैः

1— औद्योगिक नीति—निजीकरण, उदारीकरण, और वैश्वीकरण।

2— विदेश व्यापार नीति।

3— विदेशी निवेश नीति।

(ब) **स्थिरता सम्बन्धी नीतियाँ (Stabalization Policies)**:—

स्थिरता सम्बन्धी नीतियां अर्थव्यवस्था के माँग पक्ष को मजबूत करती है। इसमें सम्मिलित हैं—

1– मौद्रिक नीति।
2– राजकोषीय नीति।

ढांचागत तथा स्थिरता सम्बन्धी सुधार तभी सफल हो सकते हैं जब इन दोनों को एक साथ प्रयोग में लाया जाय तथा इनमें बेहतर समन्वय स्थापित हो क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ढांचागत सुधारों के कुछ तरीके निम्नवत् है–

1– उदारीकरण
2– निजीकरण
3– वैश्वीकरण

उदारीकरण का तात्पर्य मुक्त तथा प्रतिस्पर्धात्मक बाजार अर्थव्यवस्था से है। इसमें प्रतिबन्धात्मक काल से उदारीकरण की तरफ बदलाव होता है। निजीकरण से तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से जिसमें जहां निजी क्षेत्र को उन भागों में काम करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं जो पहले पूरी तरह से सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित थे। यह सब औद्योगिक आरक्षण खत्म कर, अनुमति प्रदान कर, तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों से सरकारी स्वामित्व हटाकर प्राप्त किया जाता है। वैश्वीकरण से तात्पर्य भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण से हैं । इसका तात्पर्य भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश हेतु खोलने, स्थिरीकरण के लिये राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों में बदलाव करने से है।

10.4. नयी आर्थिक नीति की आवश्यकता

निम्नांकित कारणों से नयी आर्थिक नीति की आवश्यकता महसूस की गयी।

(अ) राजकोषीय घाटे की परम्परा को धीमा करना

(ब) प्रतिकूल भुगतान शेष की समस्या का समाधान करना।

(स) 1990–91 में खाडी के देशों में संकट गहराने से कच्चे तेल की कीमतें आसमान छूने लगी तथा इस वजह से भारत का भुगतान शेष जो पहले से ही प्रतिकूल था पर संकट और गहरा हो गया। इससे देश की मुद्रा स्फीति तथा विदेशी विनिमय दर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडा।

(द) निर्यातों को प्रोत्साहित करने तथा आयातों पर न्यायिक नियंत्रण से विदेशी विनिमय संचय (Foreign Exchange Reserve) को बढाना। इसकी सहायता के लिये विदेशियों तथा अनिवासियों को अच्छी विनियोग वातावरण तैयार करना आवश्यक था।

(य) विदेशों में तेल तथा वित्तीय संकट पडने से इसने भारतीय अर्थव्यवस्था को आर्थि स्थिति और भी खराब कर दी थी तथा इसके साथ ही विकास की रफ्तार पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा था। इसलिये भी सरकार को नयी आर्थिक नीति की आवश्यकता महसूस हुई।

(ल) सार्वजनिक क्षेत्र की बुरी उपलब्धता लम्बी अवधि तक रहने के कारण तथा सरकार का एक अच्छी रकम इन उपक्रमों को बनाये रखने में विनियोग होने के कारण भी एक नयी आर्थिक नीति की आवश्यकता पड़ी। इसका उद्देश्य अधिक अवसर निजी क्षेत्र को दिये जाना था। जिससे मोजूदा उपक्रम कुशल बन सकें तथा सरकार के धन को अन्य विकास कार्यो में विनियोग किया जा सकें

उपरोक्त मजबूर करने वाले कारणों की वजह से सरकार के लिये नयी आर्थिक नीति आवश्यक हो गयी। इसका उद्देश्य कुशलता, देशी व विदेशी नयी पूँजी निवेश, से आर्थिक सम्वृद्धि दर तेज करना था।

10.5 नयी आर्थिक नीति की विशेषतायें

नयी आर्थिक नीति की विशेषतायें निम्नवत् हैः–

1. **उदारीकरण (Liberalization) :–**

नयी आर्थिक नीति की लक्षण है कि यह स्वामियों/उद्योगपतियों को ऐसे अवसर प्रदान करती है कि वह कोई भी नयी उद्योगिक इकाई, व्यापार तथा व्यवसाय प्रारम्भ कर सकें उद्योगपतियों को नये कार्यो के लिये अनुमति या पूर्वानुमति लेना आवश्यक नहीं था। इनके लिये सिर्फ इतना आवश्यक था कि अपने पसन्द के कार्यो के लिये निर्धारित सरकारी नियमों, कानूनों का पालन करना।

केस दर केस किसी प्रस्ताव के आंकलन की प्रक्रिया को खत्म कर दिया गया था। इसके साथ ही निवेशकों को व्यवसाय मे आने के लिये अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं थी। निवेशकों तथा उद्योगपतियों के सहायक के रूप में देश मं पूँजी बाजार मुक्त, खुला तथा बेहतर नियत्रित बनाया गया।

नये कम्पनियों का निर्माण तथा अंश पूंजी का निर्गमन अब बेहतर तरीके से नियत्रित तथा संचालित किया जाने लगा। अगर किसी उपक्रम को पूंजीगत उपकरणों को विदेशों से आयात करना है तो अब इसकी पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं थी तथा इसके लिये बहुत सरलता से विदेशी पूंजी की उपलब्धता होती थीं उदारीकरण के क्षेत्र अनुमति व्यवसाय, विदेशी निवेश विदेशी तकनीक, मर्जर, एक्वेजिशन एवं टेकओवर इत्यादि हैं।

उदारीकरण की मुख्य विशेषतायें निम्नांकित हैं:

(अ) औद्योगिक अनुमति को खत्म करना

उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी के लिये अनुमति प्रथा को खत्म कर दिया गया। इन 18 उद्योगों में रक्षा तथा रणनीतिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, खतरनाक कैमिकल, पर्यावरणीय क्षेत्र के उद्यमों को जो कि छोटे पैमाने के उद्योगों के लिये आरक्षित थे रखा गया। इसके साथ ही पाँच उद्योगों के एक छोटे ग्रुप को छोड़कर औद्योगिक अनुमति खत्म कर दिया गया।

(ब) छोटे पैमाने के उद्योगों की वस्तुओं का आरक्षण से छूट

यद्यपि आरम्भ में सरकार ने छोटे पैमाने की उद्योगों की वस्तुओं को आरक्षण देने का निर्णय लिया लेकिन बाद में धीरे–धीरे यह आरक्षण खत्म कर दिया गया । उदाहरण के तौर पर 2003–04 के बजट में केन्द्रीय वित्त मंत्री ने 75 वस्तुओं को आरक्षण के श्रेणी से बाहर निकाला। इसमें लेवोरेडी कैमिकल, चमडा तथा चमडे की वस्तुयें, प्लास्टिक उत्पाद, कैमिकल तथा कैमिकल उत्पाद और कागज उत्पाद सम्मिलित थे।

2005–06 के बजट में वित्त मंत्री ने 108 मदों को आरक्षण से बाहर रखा इनमें से 30 मदें बुनकर उद्योग से सम्बन्धित थी। इससे पहले सरकार ने रेडीमेड कपड़ों को आरक्षण से बाहर किया था। अन्य शब्दों मं कहें तो छोटे पैमाने के उद्योगों को भी देशी तथा विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करना था।

(स) एम0आर0टी0पी0 प्रतिबन्धों को वापस लेना

निवेश प्रस्ताव की जांच कि यह एम0आर0टी0पी0 प्रावधानों का उल्लंघन न करे को वापस ले लिया गया। इससे बड़े उद्योग घरानों को उद्यमों के विस्तार, नये उद्यमों की स्थापना, मर्जर, एक्वेजिशन, अमलगानेशन इत्यादि के लिये मुक्त कर दिया, इसके साथ ही इनको निदेशकों की नियुक्ति के लिये भी मुक्त कर दिया गया। इस सब ने वर्तमान उद्यमों के विस्तार और नये उद्यमों की स्थापना के लिये एक उदार वातावरण तैयार किया।

2. निजीकरण का विस्तार (Extension Of Privalization):–

विस्तृत तौर पर नीतिकरण का तात्पर्य अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र को अधिक महत्व देने से है। कई सालों तक अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की भागीदारी नहीं बढ़ सकी। संकीर्ण रूप में निजीकरण का निम्न अर्थ है:

(अ) कुल अराष्ट्रीयकरण (Total Denationalization):–

इसका अर्थ है सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का पूर्ण स्वामित्व निजी क्षेत्र के हाथों में आना। कुल अराष्ट्रीयकरण के कुछ उदाहरण हैं। आल्विन निसान–आन्ध्रां– प्रदेश की एक सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई का स्वामित्व महिन्द्रा को दे दिया गया, मंगलोर कैमिकल एण्ड फर्टीलाइजर्स–कर्नाटक की एक सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई 4B ग्रुप को सोप दिया गया, और महाराष्ट्रा स्कूटर्स को बजाज ओटो (इण्डिया) को सौंप दिया गया था।

(ब) संयुक्त उधम (Joint Venture):–

इससे आशय है कि किसी उधम में स्वामित्व की भागीदारी निजी तथा सार्वजनिक दोनो क्षेत्रों की होना उदाहरणार्थ 25 से 50 प्रतिशत स्वामित्व निजि क्षेत्र का हो तथा इतना ही या इससे ज्यादा सार्वजनिक क्षेत्र का। यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार का उघम है तथा इस संदर्भ मे सरकार की नीति क्या है। तीन प्रकार के प्रस्ताव आगे आये:

(1) 26 प्रतिशत स्वामित्व निजी क्षेत्र के हाथ में (बैंक, पारस्परिक कोष, निगम इत्यादि) वर्कर्स को भी 5 प्रतिशत स्वामित्व दिया जा सकता है। हालाकि इस तरह के निवेश में विशेषाधिकार निजी क्षेत्र के विपरीत सार्वजनिक क्षेत्र के हाथ में रहेगा।

(2) सरकार अपने पास 51 प्रतिशत स्वामित्व रखेगी तथा 49 प्रतिशत निजी हाथों में देगी। उधम का मूल विशेषता परिवर्तित नहीं होगी तथा यह सार्वजनिक क्षेत्र में माना जायेगा। इससे निजी क्षेत्र को निवेश के लिये एक बड़ा हिस्सा प्राप्त हुआ।

(3) 74 प्रतिशत अंश निजी क्षेत्र के हाथों में और 26 प्रतिशत सरकार के पास लेकिन इसमें विशेषाधिकार (Veto Power) सरकार के पास रहेगा।

इन तीन प्रकार के सयुक्त उधमों में निजी क्षेत्र को विभिन्न प्रतिशत का स्वामित्व प्राप्त था। स्वामित्व हस्तान्तरण के पीछे मूल मकसद था कि यह संयुक्त उधम सम्पत्ति की उत्पादकता को बढा सके तथा अपने आप को एक लाभदायक उधम में बदल पायें।

नयी आर्थिक नीति के एक अन्य विशेषता है निजी क्षेत्र के महत्व का विस्तार आज अधिकाधिक आर्थिक क्रियाओं का संचालन निजी क्षेत्र द्वारा किया जा

रहा है। निजीकरण की आँधी में 17 उद्योग। जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित थे उनमें से 11 उद्योगों को निजी क्षेत्र के हाथों में दे दिया गया है।

सरकार ने कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के उधमों का स्वामित्व इनकी अंश पूँजी को बेचकर निजी क्षेत्र को दे दिया। अब सरकार ने निवेश प्रक्रिया में विदेशी निजी निवेशकों को भी आमन्त्रित किया। आर्थिक नीति द्वारा निजी क्षेत्र को लगातार प्राथमिकता पर रखा गया। निम्नांकित बिन्दुओं से निजी क्षेत्र के विस्तार का पता चलता है:

(1) सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित 17 उद्योगों में से अब केवल 6 रह गये थे। निजी क्षेत्र द्वारा अब लोहा, स्टील, ऊर्जा, वायु परिवहन के क्षेत्र मे भी अपने संयंत्र लगाये जा सकते हैं।

(2) छठी योजना के अन्त तक, कुल निवेश/विनियोग में सार्वजनिक क्षेत्र का अंश निजी क्षेत्र से अधिक होता था लेकिन आठवीं योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र के अंश को 45 प्रतिशत तक कम करने की इच्छा व्यक्त की गयी। इसलिये आठवीं योजना में निजी क्षेत्र का कुल निवेश अंश 55 प्रतिशत तक हुआ।

(3) सार्वजनिक क्षेत्र के उधमों के अंशों को जनता तथा वर्कर्स को बेचा गया इसके पीछे उद्देश्य था कि निजी व्यक्तियों की सहभागिता को बढाया जाय।

(4) निजी क्षेत्र में औद्योगिक निवेश का एक बड़ा भाग के लिये ''राष्ट्रीय औद्योगिक वित्त संस्थान'' द्वारा वित्तीय सुविधा दी गयी। यह संस्थान ऋण देते समय अपने 'परिवर्तनीय' अधिकार का प्रयोग करते हैं। इससे तात्पर्य है कि आज ऋण के रूप मे दी गयी वित्तीय सुविधा भविष्य में अंश पूंजी के रूप में परिवर्तित की जा सकती है।

इसलिये निजी फर्म हमेशा से परिवर्तनीयता की आंशका में कार्य करती हैं। नयी औद्योगिक नीति के अनुसार वित्तीय संस्थान परिवर्तनीयता पर ज्यादा जोर नहीं डालेंगे। निजीकरण के महत्व के विस्तार के साथ कुशलता तथा उत्पादकता मे वृद्धि किसी भी सम्भावना का प्राप्त किया जा सकता है।

3. अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण (Globalization Of Economy):–

वैश्वीकरण से तात्पर्य वस्तुओं, सेवाओं, तकनीक, पूँजी और मानवीय पूँजी के प्रवाह मे बाधा बने बिना विश्व की समस्त अर्थ– व्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया है। इसमें चार भाग निम्नवत् हैः–

(1) कस्टम ड्रयूटी एवं मात्रा सम्बन्धी प्रतिबन्ध जैसे व्यापार बाधाओं को कम करना ताकि विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का मुक्त प्रवाह किया जा सके।

(2) ऐसा वातावरण तैयार करना जिससे विभिन्न देशों के बीच मुक्त पूँजी प्रवाह हो सके।

(3) तकनीक के मुक्त प्रवाह के लिये वातावरण तैयार करना।

(4) ऐसा वातावरण तैयार करना जिसमें विभिन्न देशों के बीच तथा मानवीय पूंजी का मुक्त प्रवाह को सके।

वैश्वीकरण के पक्षधर खासकर विकसित देशों से वैश्वीकरण का महत्व केवल तीन बिन्दुओं क सीमित समझते हैं जैसे वस्तुओं तथा सेवाओं का मुक्त

प्रवाह, तकनीक का मुक्त प्रवाह और पूंजी का मुक्त प्रवाह। वह जोर देते है कि वैश्वीकरण पर बहस केवल इन तीन बिन्दुओं तक सीमित रहनी चाहियें जबकि विकासशील देशों के अधिकतर अर्थशास्त्री इस परिभाषा को अधूरी मानते हैं।

नयी आर्थिक नीति ने अर्थव्यवस्था को बहीर्मुखी बनाया। आज इसकी गतिविधियों का प्रशासन देशी बाजार तथा विदेशी बाजार दोनो द्वारा किया जाता है। इसका आशय है स्वदेशी बाजार का विश्व बाजार मे मिल जाना या एक हो जाना। यह सब सरकार द्वारा विभिन्न आर्थिक प्रमापों तथा संकेतकों के अपनाने से सम्भव हुआ जैसे 1991 में रूपये का अवमूल्यन आज रूपया पूरी तरह से चालू खाते के भुगतान शेष के अनुसार परिवर्तनीय है। इसके साथ ही विभिन्न उत्पादों के आयात हेतु अनुमति लेने से छूट देना। आयात पर लगने वाली कस्टम ड्रयूटी मे कमी करना यह इसलिये भी जरूरी था कि अन्य देशों की भांति ही यहा भी कस्टम ड्रयूटी लगायी जाय। वैश्वीकरण का संक्षेप में तात्पर्य हैः

(1) देश से और देश में वस्तुओं तथा सेवाओं के मुक्त प्रवाह के लिये व्यापार अवरोधों मे कमी।

(2) निवेश के रूप में विदेशी पूंजी का मुक्त प्रवाह तथा इसके लिये अनुकूल वातावरण तैयार करना।

(3) तकनीक का मुक्त प्रवाह।

4. बाजार मित्र राज्य **(Market Friendly State)**—

राज्य का एक महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह कुछ बाजार मुक्त क्षेत्रों का चयन करे और बाजार अर्थव्यवस्था के मधुर कार्यप्रणाली सुनिश्चित करे। पहले से तुलना की जाय तो कुछ चयनित उद्यमों का स्वामित्व निजी क्षेत्र के हाथों में दे दिया गया। स्वामी के रूप में इसकी गतिविधियां दो तरह की गतिविधियों तक सीमित रखी गयी। एक प्रकार की गतिविधियां वह हैं जो आर्थिक क्रियाकलापों के लिये अति आवश्यक है तथा दूसरी तरह की गतिविधियां समाज सेवा से सम्बन्धित है जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि।

हालांकि यह महत्वपूर्ण है कि राज्य बाजारों की स्मूथ कार्यप्रणाली को सुनिश्चित करें। इसके लिये राज्य को बाजारों में स्थायित्व/स्थिरता लानी होगी। राज्य बाजारों के फेल होने पर हस्तक्षेप करेगा।

5. आधुनिकीकरण **(Modernization)**:—

नयी आर्थिक नीति ने तकनीक के आधुनिकीकरण को काफी महत्व दिया। इसका उद्देश्य उद्योगों की सम्वृद्धि को बढाना था। भारत में तकनीक के आयात के लिये सरकार ने निर्णय लिया कि सभी विदेशी कोलेबोरेशन का पास कर दिया। निजी क्षेत्र को यह स्वतंत्रता दे दी कि वह अपने आप इन कोलेवोरेशन की परिस्थितियों को निश्चित कर सकें। इसके साथ ही सरकार ने टेक्स छूट देकर निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित किया कि वह अपना रिसर्च तथा डेवलेपमेन्ट केन्द्र खोलें। इस बात के भी प्रयास किये गये कि निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार इकाईयों को भी फिर मजबूत बनाया जा सके।

10.6 नयी आर्थिक नीति के अंग (Components of New Economic Policy)

नयी आर्थिक नीति 1991 के मुख्य अंग निम्नवत् हैः

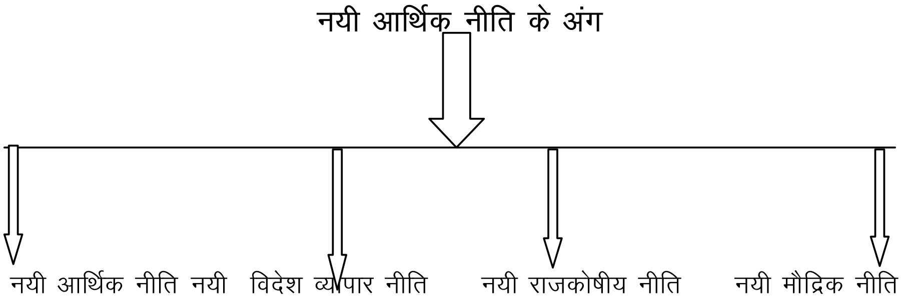

1. **नयी औद्योगिक नीति (New Industrial Policy)**:–

24 जुलाई 1991 को सरकार ने 1980 के दशक में लिये गये उदारीकरण के फैसलो के अनुरूप नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की। इसने पहले की नीतियों से बिल्कुल अलग पहल प्रारम्भ की। इसके मुख्य उद्देश्य थेः

(1) भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अनावश्यक तानाशाही नियंत्रण से मुक्त करना।

(2) भारतीय अर्थव्यवस्था के एकीकरण को ध्यान में रखकर उदारीकरण को अमल में लाना।

(3) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रतिबन्ध मुक्त करना तथा देशी व्यवसायियों को एम0आर0टी0पी0 एक्ट के प्रतिबन्धों से मुक्त करना।

(4) ऐसे सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों क उद्धार करना जिनकी आय की दर काफी नीची थी या जो दो साल से अधिक लगातार हानि सहन कर रहे थे।

औद्योगिक नीति के यह सभी सुधार के कारण भारत सरकार ने निम्नांकित क्षेत्रों में नीतिगत बदलाव की पहल प्रारम्भ की :

(1) औद्योगिक अनुमति (2) विदेशी निवेश, (3) विदेशी तकनीक, (4) सार्वजनिक क्षेत्र की नीति, (5) एम0आर0टी0पी0 अधिनियम।

औद्योगिक अनुमति :– कुछ क्षेत्रों को छोड़कर जैसे रक्षा और रणनीति, सामाजिक कारण और पर्यावरण अन्य सभी क्षेत्रों में किसी भी मात्रा के निवेश पर अनुमति प्रकिया/प्रणाली को खत्म कर दिया गया।

विदेशी निवेशः– उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में जहां निवेश की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है वहां विदेशी निवेश को आमन्त्रित करन के लिये यह निर्णय लिया गया कि इन उद्योगों में 51 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति दी जायेगी।

विदेशी तकनीक :– प्राथमिकता वाले क्षेत्र में सरकार के फैसलों के अनुसार विदेशी तकनीक के आयात पर लगे प्रतिबन्धों को खत्म किया गया।

सार्वजनिक क्षेत्र की नीतिः– 1991 के औद्योगिक नीति के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के लिये भविष्य में निम्न प्राथमिक क्षेत्र रहेंगेः

(1) आवश्यक आधारभूत क्षेत्र, वस्तु एवं सेवायें।

(2) तेल तथा मिनरल के संसाधनों को खोजना तथा उपयोग

(3) तकनीक सुधार और लम्बे समय में आर्थिक विकास के लिये आवश्यक निर्माण क्षेत्र में बैकिंग सुविधायें।

एकाधिकार अधिनियम से छूटः– एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार गतिविधि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ऐसी सभी कम्पनियां जिसकी सम्पत्तियां 100

करोड़ से अधिक है। इनको एम0आर0टी0पी0 उपक्रम घोषित किया जाय और इन उपक्रमों पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जा सकते है। आज ऐसी कम्पनियां जिनको इस अधिनियम के अधीन कार्य करना है। विभिन्न प्रकार की छूट एवं रियायतें दी जा रही हैं। इन कम्पनियों के सन्दर्भ में पहले जो पूंजी निवेश की सीमा निश्चित थी उसे अब खत्म कर दिया गया है। इसके परिणाम स्वरूप यहां अब नयी उपक्रमों की स्थापना तथा अस्तित्व वाले उपक्रमों के विस्तार, अमलगामेशन तथा टेकओवर के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं हैं वर्ष 2002 में एम0आर0टी0पी0 अधिनियम को खत्म कर दिया गया और इसकी जगह एक उदार प्रतिस्पर्धा अधिनियम पास किया गया। इसलिये नयी औद्योगिक नीति अधिक उदार थी इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रशासनिक तथा कानूनी नियंत्रण से मुक्त करना था। इस नीति के परिणाम स्वरूप यह आशा है कि भारतीय औद्योगिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी तथा मूलभूत बदलाव आयेंगे।

2. **नयी विदेश व्यापार नीति (New Foreign Trade Policy):–**

नयी विदेश व्यापार नीति का उद्देश्य विदेशी व्यापार को विभिन्न प्रतिबन्धों से मुक्त करना ताकि वह प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में बेहतर तरीके से सम्पन्न किया जा सके। नयी आर्थिक नीति की एक विशेषता थी वैश्वीकरण जिसका मतलब है अर्थव्यवस्था का विश्व के साथ खुलना। वैश्वीकरण का अर्थ है अर्थव्यवस्था का अन्य देशों की अर्थव्यवस्था के साथ अन्तरक्रियायें, यह मुख्य रूप से उत्पादन, व्यापार तथा वित्त के क्षेत्र में होता है। सामान्य शब्दों में इसका अर्थ विदेशी निवेश तथा विदेशी व्यापार को प्रतिबन्धों से मुक्तकर प्रोत्साहित करना है। नयी आर्थिक नीति ने अर्थव्यवस्था के खुलेपन के लिये निम्न प्रावधान किये हैः

(1) 1991 की नयी आर्थिक नीति से पहले, विदेशी पूजीपति भारत में सिर्फ 40% तक समता पूंजी का निवेश कर सकते थे तथा यह निवेश सरकार की अनुमति के पश्चात् ही होता था। अब कुछ निश्चित उद्योगों में विदेशी 100% तक अंशपूंजी क निवेश कर सकते हैं और इनकी अनुमति अब सामान्य है।

(2) विनिमय दर की अन्तर्राष्ट्रीय समायोजन के लिये भारत सरकार ने जुलाई 1991 मे रूपये का 20 प्रतिशत अवमूल्यन किया। अवमूल्यन से रूपये की वाहय मूल्य अन्य देशों की मुद्रा के मुकाबले काफी कम हो जाता है। अवमूल्यन का उद्देश्य निर्यात का प्रोत्साहन, आयात नियंत्रण और विदेशी पूंजी के अन्तःप्रवाह को बढाना था। अब भारतीय रूपया विदेशी मुद्रा में पूर्णरूप से परिवर्तनीय है।

(3) नयी विदेश व्यापार नीति 5 वर्षो के लिये (1992–97) घोषित थी। इस नीति की मुख्य विशेषता उदारीकरण था। इस नीति के अन्तर्गत विदेशी व्यापार पर सभी नियंत्रण तथा प्रतिबन्ध हटा लिये गये। खुली प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन दिया गया और इसको सहायता देने के लिये औद्योगिक इकाईयों तथा निर्यात घरानों को प्रयाप्त सुविधायें दी गयी। कुछ वस्तुओं को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं को मुक्त रूप से आयात–निर्यात किया जा सकता है। इस नीति की एक और विशेषता थी कि प्रशासनिक नियंत्रण को भी अत्यन्त कम कर दिया गया था। आयात–निय्रात नीति 2004–09 भी एक उदार नीति थी।

4– कस्टम ड्रयूटी तथा टेरिफ भी धीरे–धीरे कम किया गया इसका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने के लिये सुविधा देना था।

5– अर्थव्यवस्था के बहिर्मुखी होने से विदेशी निवेश तथा विदेशी तकनीक को प्रोत्साहन मिलेगा।

6– भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के लिये बहुत कदम उठाये गये। निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया तथा विश्व व्यापार में भारत का अंश वदाने का भी कार्य किया गया।

3. नई राजकोषीय नीति (New Fiscal Policy):–

राजकोषीय नीति का सम्बन्ध सरकार की आय और खर्चो से है। इसको सरकार की बजट नीति के रूप में भी जाना जाता है। यह कर प्रणाली, सरकारी खर्च, घाटे का वित्त तथा सार्वजनिक ऋण से सम्बन्ध रखता है। इसमें सरकारी खर्चों तथा सरकारी आय का प्रबन्ध कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये किया जाता है। यह उद्देश्य तीव्र आर्थिक विकास, पूंजी निर्माण दर में वृद्धि गरीबी उन्मूलन, क्षेत्रीय असंन्तुलन की समाप्ति आदि हो सकते हैं। नयी आर्थिक नीति में राजकोषीय नीति से सम्बन्धित निम्नांकित प्रावधान किये गयेः

(1) कर दर में कमी (2) अनियोजित खर्चों में कमी (3) छूट में कमी (4)वाहय ऋणों/उधार पर निर्भरता में कमी (5) घाटे के वित्त को हतोत्साहित करना (6) कर प्रणाली का सरलीकरण एवं युक्तिकरण।

4. नई मौद्रिक नीति (New Monetary Policy):–

मौद्रिक नीति का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था में पूंजी की पूर्ति तथा ब्याज दरों से है। यह नीति भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बनायी तथा कियान्वित की जाती है। मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्य कीमतों में स्थिरता तथा उधार की पर्याप्त उपलब्धता प्राप्त करना है। नयी आर्थिक नीति में मौद्रिक नीति से सम्बन्धित निम्नांकित प्रावधान किये गये :

(1) अर्थव्यवस्था को पर्याप्त उधार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बैंक दर वैधानिक तरलता अनुपात नकद संचय अनुपात की दरों में कमी करना। लेकिन हाल में नकद संचय अनुपात को मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के उद्देश्य से बढाया गया।

(2) ब्याज दर को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक लाने के लिये इसमें कमी करना।

(3) उत्पादक ऋणों की उपलब्धता हेतु अनुत्पादक ऋणों में कमी करना।

(4) बैकिंग व्यवस्था को प्रतिस्पर्धात्मक बनाना तथा इस उद्देश्य से वाणिज्यिक बैंको को कुछ अन्य अधिकार दिये गये जैसे जमा तथा ऋण की ब्याज दरों का स्वयं निर्धारण।

(5) बैकों की लेखांकन प्रणाली में सुधार के लिये, सभी बैकों द्वारा एक समान लेखांकन प्रणाली अपनायी जानी थी जिससे बैकों के उधार लेने तथा ऋण देने के कार्यो के आकलन में सरलता रहे। स्थिति विवरण सुनियोजित तरीके से बनायी जानी चाहिये जो बैंक की वास्तविक आर्थिक स्थिति को प्रकट करे।

10.7 नई आर्थिक नीति की उपलब्धियां एवं कमियाँ

पिछले 17 वर्षो से नई आर्थिक नीति लागू है इन सत्रत वर्षो में विभिन्न क्षेत्रों में नई आर्थिक नीति के लागू होने के पश्चात् बदलाव आये तथा 1991 से पूर्व इनकी क्या स्थिति थी यह निम्नवत् दर्शाया गया हैः

मुख्य आर्थिक संकेतकों में वार्षिक प्रतिशत बदलाव

वर्ष	सकल राष्ट्रीय उत्पाद दर	कृषि सम्वृद्धि दर	औद्योगिक सम्वृद्धि दर	मुद्रा स्फीति
1990—91	4.7	3	8.3	12
2000—01	4.4	(—) 5.8	5.0	4.9
2001—02	5.6	(—) 5.9	2.7	1.6
2002—03	4.2	(—) 13.6	5.8	3.4
2003—04	8.5	9.6	7.0	5.5
2004—05	6.9	1.1	7.5	6.4
2005—06	9.4	6.0	9.5	4.1
2006—07	9.6	2.7	10.0	5.4
2007—08	8.7	2.6	9.4	6.7

स्त्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण 5, 2007—2008 ।

इस आकलन से ज्ञात होता है कि नई आर्थिक नीति सभी क्षेत्रों में सफल रही हैं।

उपलब्धियाँ (Achievements):—

(1) नई आर्थिक नीति के लागू होने से पिछले कई वर्षों से हमारी देश की राष्ट्रीय आय बढ रही है तथा यह लगभग 8 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि कर रही है।

(2) नयी आर्थिक नीति का मुख्य उद्‌देश्य उदार औद्योगिक नीति, निजीकरण तथा वैश्वीकरण को अपनाने से औद्योगिक उत्पादन सम्वृद्धि दर को बढाना था और इस नीति से औद्योगिक उत्पादन बढा। साल 2007—08 में औद्योगिक उत्पादन में 9.4 प्रतिशत वृद्धि हुई।

(3) मूल्य स्तर को नीचे लाने में नयी आर्थिक नीति सफल रही है। 1990—91 में मूल्यों/कीमतों में वृद्धि दर 12 प्रतिशत थी लेकिन 2007—08 में यह कम होकर 6.7 प्रतिशत रह गयी। इसलिये नयी आर्थिक नीति मुद्रा स्फीति नियंत्रण में कुछ हद तक सफल रही।

(4) नयी आर्थिक नीति के लागू होन से भारत का निर्यात बेहतरीन तरीके से बढा है। वर्ष 2006—07 में निर्यात सम्वृद्धि दर 22.6 प्रतिशत रही।

(5) विदेशी मुद्रा संचय पर नई आर्थिक नीति का काफी अनुकूल प्रभाव पडा। 1990—91 में यह अपने निचले स्तर रू0 4588 करोड़ था तथा वर्ष 2008, अप्रैल में यह 311.9 विलियन यू0एस0 डालर पर पहुंच गया। इसलिये नई आर्थिक नीति के लागू होने से विदेशी मुदा संचय गुणात्मक रूप से बढा।

(6) नई आर्थिक नीति के उदार होने से विदेशी पूंजी निवेश में अत्यन्त वृद्धि हुई। वर्ष 2006—07 में, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 19,531 मिलियन यू0एस0डालर प्राप्त हुआ था। बेशक, नई आर्थिक नीति विदेशी पूंजी निवेश को आकर्षित करने में सफल रही है।

(7) नयी आर्थिक नीति के लागू होने से राजकोषीय घाटा कम हुआ। वर्ष 1990—91 में राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 6.5 प्रतिशत था तथा वर्ष 2007—08 में यह सकल घरेलू उत्पाद का 3.2 प्रतिशत था।

कमियाँ (Short Comings):—

(1) नई आर्थिक नीति गरीबी की समस्या के समाधान मे असफल रही जो आर्थिक विकास के लिये एक मुख्य समस्या है।

(2) नई आर्थिक नीति से देश के कृषि क्षेत्र को कोई महत्वपूर्ण लाभ नहीं हुआ।

(3) आर्थिक नीति से आयात में उदारीकरण हुआ

(4) नई आर्थिक नीति में बहुदेशी कम्पनियों द्वारा निवेश पर विशेष महत्व दिया गया जबकि इन कम्पनियों ने अधिकार तकनीक प्रधान प्रणाली का प्रयोग उत्पादन के लिये किया, इसलिये इन कम्पनियों द्वारा भारत में निवेश करने का लाभ रोजगार उत्पन्न करने में नहीं हुआ।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नई आर्थिक नीति ने कुछ क्षेत्रों में खासी सफलता प्राप्त की जैसे विदेशी क्षेत्र का प्रोत्साहन, मूल्य स्तर में कमी, इत्यादि। लेकिन कुछ अन्य क्षेत्रों जैसे गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन, इत्यादि में यह असफल रही है।

10.8 सारांश

नई आर्थिक नीति का तात्पर्य उत्पादकता दर में वृद्धि, कुशलता में वृद्धि तथा प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण के निर्माण के उद्‌देश्य से जुलाई 1991 मे लिये गये विभिन्न नीतिगत फैसले तथा बदलावों से है। वैश्वीकरण, निजीकरण तथा उदारीकरण प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण तैयार करने में सहयक होंगे। यह प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण कुशलता में वृद्धि करेगा। नयी औद्योगिक नीति, नई विदेश व्यापार नीति, नई राजकोषीय नीति तथा नई मौद्रिक नीति, नई आर्थिक नीति के मुख्य अंग हैं। यह अंग भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास मे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे। नई आर्थिक नीति विभिन्न क्षेत्रों में अपने उद्‌देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही लेकिन कुछ क्षेत्रों जैसे गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन मे इसे सफलता प्राप्त नहीं हुई।

10.9 शब्दावली

आर्थिक नीति (Economic Policy)- सी0रंगराजन, निवर्तमान गवर्नर, भारतीय स्टेट बैंक– के अनुसार ''1991 से विभिन्न प्रकार के नीतिगत माप तथा बदलाव लागू किये गये यह सब आर्थिक नीति में सम्मिलित है। नयी आर्थिक नीति का उद्‌देश्य प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण तैयार कर अर्थव्यवस्था उत्पादकता तथा कुशलता में सुधार लाना है।'' नयी आर्थिक नीति का विशेष ध्यान उदारीकरण, नीजिकरण तथा वैश्वीकरण पर था।

उदारीकरण (Liberalization)- नयी आर्थिक नीति की लक्षण है कि यह स्वामियों/उद्योगपतियों को ऐसे अवसर प्रदान करती है कि वह कोई भी नयी उद्योगिक इकाई, व्यापार तथा व्यवसाय प्रारम्भ कर सकें उद्योगपतियों को नये कार्यो के लिये अनुमति या पूर्वानुमति लेना आवश्यक नहीं था।

राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)- राजकोषीय नीति का सम्बन्ध सरकार की आय और खर्चो से है। इसको सरकार की बजट नीति के रूप में भी जाना जाता है। यह कर प्रणाली, सरकारी खर्च, घाटे का वित्त तथा सार्वजनिक ऋण से सम्बन्ध रखता है। इसमें सरकारी खर्चों तथा सरकारी आय का प्रबन्ध कुछ निश्चित उद्‌देश्यों की प्राप्ति के लिये किया जाता है।

मौद्रिक नीति (Monetary Policy)- मौद्रिक नीति का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था में पूंजी की पूर्ति तथा ब्याज दरों से है। यह नीति भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बनायी तथा क्रियान्वित की जाती है। मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्य कीमतों में स्थिरता तथा उधार की पर्याप्त उपलब्धता प्राप्त करना है।

ढांचागत नीतियाँ (Structural Policies) - यह नीतियां अर्थव्यवस्था की पूर्ति के पहलू को मजबूत करती हैं। उद्योगों में कुशलता को प्रोत्साहित करना तथा व्यापार व निवेश की अधिक अवसर पैदा करना इनमें मुख्य रूप से सम्मिलित हैः 1– औद्योगिक नीति–निजीकरण, उदारीकरण, और वैश्वीकरण, 2– विदेश व्यापार नीति, 3– विदेशी निवेश नीति।

स्थायीकरण नीतिया (Stabilizection Policies)- स्थिरता सम्बन्धी नीतियां अर्थव्यवस्था के माँग पक्ष को मजबूत करती है। इसमें सम्मिलित हैं–1– मौद्रिक नीति, 2– राजकोषीय नीति।

बाजार मित्र राज्य (Market Friendly State)– राज्य का एक महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह कुछ बाजार मुक्त क्षेत्रों का चयन करे और बाजार अर्थव्यवस्था के मधुर कार्यप्रणाली सुनिश्चित करे। पहले से तुलना की जाय तो कुछ चयनित उद्यमों का स्वामित्व निजी क्षेत्र के हाथों में दे दिया गया।

आधुनिकीकरण (Modernization)ः– नयी आर्थिक नीति ने तकनीक के आधुनिकीकरण को काफी महत्व दिया। इसका उद्देश्य उद्योगों की सम्वृद्धि (Growth) को बढाना था। भारत में तकनीक के आयात के लिये सरकार ने निर्णय लिया कि सभी विदेशी कोलेबोरेशन का पास कर दिया।

10.10 बोध प्रश्न

1. .... में नयी आर्थिक नीति लागू की गयी।
2. नयी आर्थिक नीति का विशेष ध्यान..., निजीकरण तथा वैश्वीकरण पर था।
3. .... से तात्पर्य वस्तुओं, सेवाओं, तकनीक, पूँजी और मानवीय पूँजी के प्रवाह मे बाधा बने बिना विश्व की समस्त अर्थ–व्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया है।
4. राजकोषीय नीति का सम्बन्ध ....की आय और खर्चो से है।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1991, 2. उदारीकरण 3. वैश्वीकरण 4. सरकार

10.12 स्वपरख प्रश्न

1. नई आर्थिक नीति से आप क्या समझते हो इसकी मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
2. नई आर्थिक नीति के पक्ष तथा विपक्ष मे तर्क दें।
3. नई आर्थिक नीति क्या है भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभावों की विवेचना कीजिए।
4. नई आर्थिक नीति का आलोचनात्मक आंकलन कीजिए ।
5. नई आर्थिक नीति के अंगो कों समझाइये ।

6. औद्योगिक अनुमति नीति (Industrial Licencing) ओर विदेशी निवेश की व्याख्या कीजिए।
7. नई आर्थिक नीति के लाभ एंव हानियों को समझाइए।

10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Chanderashekhar, C.P., Aspects of Growth and Structural Change in Indian Economy, Economic and Political Weekly, Special Number, Nov., 1998.
2. Das, Gupta, Ajit K., Agriculture and Economic Development in India, New Delhi, Associated Publishing House, 1993.
3. Government of india, economic survey (annual)
4. Desai, Ashok, V., Technology Absorption in Indian Industry, New Delhi, Wiley Eastern,1998.
5. Indian Economic Review (Delhi school of economics).
6. Indian Economic Journal (Indian economic association)
7. Khatehkate, Deen, National Economic Policy in India, Salvetor, Demonic, ed. Hand book of Comparative Economic Policies, Vol.,1, National Economic Policies, Greenwood press, pp.231-75,1991.
8. Rajkumar, Sen and Biswajit, Chetterjee,Indian Economy Agenda for the 21st Century, Deep and Deep Publication, New, Delhi,2002.
9. A.N. Agrawal, Indian Economy, Problems Of Development And Planning, Wiley Eastern Limited, New, Delhi,2002
10. Planning Commission, Government Five Year Plan.
11. Bhalla, G.S ed., Economic Liberalization and Indian Agriculture, Institution for Studies in Industrial Development, New Delhi 1994.
12. Lall, Sanjaya, technology Development and Export Performance in LDCs: Leading Engineering and Chemical Firms in India, Review of World Economics, Vol. 122(1), pp.80-1996

इकाई 11 भारत मे आर्थिक सुधार भाग –1

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 आर्थिक सुधार –प्रथम चरण
11.3 आर्थिक सुधार –प्रथम चरण की विशेषताएं
11.4 आर्थिक सुधार का माप– प्रथम चरण
11.5 आर्थिक सुधारों में नयी आर्थिक नीति 1985 का योगदान
11.6 आर्थिक सुधारों की कमियॉ
11.7 आर्थिक सुधार का तर्काधार
11.8 सांराश
11.9 शब्दावली
11.10 बोध प्रश्न
11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.12 स्वपरख प्रश्न
11.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- आथिक सुधारो कों समझ सकें।
- आथिक सुधारो के प्रथम चरण की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें।
- आथिक सुधारो के प्रथम चरण की विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- आथिक सुधारो के प्रथम चरण के विभिन्न प्रमापो को समझ सकें।
- आथिक सुधारो के भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास मे योगदान के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकें।

11.1 प्रस्तावना

1960 तथा 1970 के दशक में भारत के निर्माण क्षेत्र के अधिकतर उद्योगों को अनुमति की आवश्यकता थी तथा क्षमता नियंत्रण के दायरे में रखा जाता था। खासकर निम्नांकित मजबूरियां या रूकावटें थी जिनकी वजह से इस क्षेत्र की निर्माण क्षेत्र में कार्यों के चयन पर प्रभाव पड़ा :–

1. 18 उद्योगों में अधिकतर बाजार भाग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित था जिसमें निर्माण कार्य उद्योगों में लोहा और स्टील (Iron and Steel), भारी प्लान्ट एवं मशीनरी, टेलकॉम उपकरण और पेट्रोलियम थे। लेकिन हर उद्योग में कोई अपवाद होता है जैसे स्टील के क्षेत्र में 'टाटा स्टील'।
2. कुछ उद्योग छोटे पैमाने के क्षेत्र में ही आरक्षित थे जैसे मैकेनिकल इन्जिनियरिंग, कैमिकल प्रोडक्टस और ओटो एन्सीलेरीज। कुछ उत्पादों का उत्पादन भी छोटे पैमाने के उद्योगों के लिए प्रति बन्धित था इन उत्पादों में कपड़े (Garments), जूते तथा खिलौने थे।
3. अधिकतर क्षेत्र अनुमति प्राप्त करने तथा प्रतिबन्धित क्षमता के दायरे में थे।
4. एकाधिकार और प्रतिबन्धात्मक व्यापार गतिविधि अधिनियम 1969 (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act 1969) द्वारा बड़े

औद्योगिक घरानों द्वारा किये जाने वाले निवेश को उत्पादन की अनुमति देने से पहले आपत्तियाँ आमंत्रित कर तथा जनता दरबार लगाकर जाँचा गया।

5. विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम (Foreign Exchange Regulation Act) 1973 द्वारा ऐसी कम्पनियों के अतिरिक्त हो मूल गतिविधियों में कार्य कर रही हैं या जटिल तकनीक का प्रयोग कर रहे थे या कुछ निर्यात वादों को पूरा करने में कार्य कर रहे थे। सभी कम्पनियों को कुछ अन्य आपत्तियों/रोकों के अलावा विदेशी पूँजी समता अंश में निवेश 4070 से कम रखा गया।
6. पूँजीगत वस्तु (capital goods) तथा तकनीक पर अत्यधिक आयात कर (import tariff) लगाये गये जिससे कम्पनियों तथा फर्मों को देश में ही रिसर्च तथा डेवलपमेन्ट पर ध्यान देना पड़े तथा समकालीन तकनीक का विकास किया जा सके। इसका उद्देश्य पूँजीगत वस्तुओं के आयात का हतोत्साहित करना भी था।
7. कानूनी प्रक्रिया
8. श्रम कानून
9. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर प्रतिबन्ध

1980 के अन्त तथा 1990 के दशक में विश्व अर्थव्यवस्था ने यादगार तथा नाटकीय परिवर्तनों को अनुभव किया। इससे पहले आर्थिक सुधार कभी भी इतने व्यापक नहीं थे जितने आज हैं। आर्थिक सुधारों को इस गति से लागू किया गया कि इसने पूरे पूर्वी यूरोप पर अपनी गहरी छाप छोड़ी तथा यह विकासशील देशों जैसे भारत, वियतनाम, पेक, मोरक्को, क्यूबा के लिए भी अहं का विषय बन गया। यह सभी देश धीरे–धीरे पुरानी आर्थिक विचारधाराओं का खण्डन कर रहे हैं, अपने आर्थिक विकास को समय–समय पर आँकते हैं और अपने राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियों में सुधार की महत्वाकांक्षा रखते हैं।

आर्थिक सुधारों द्वारा अर्थव्यवस्था में तेज तथा स्थिर विकास गति के कारण विश्व के बहुत देश आर्थिक सुधारों के पक्ष में हैं। भारत में भी सभी राजनीतिक पार्टियों में सहमति बन गयी है कि वर्तमान में विश्व आर्थिक स्थिति को देखते हुए अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुधारों को अपनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। इसलिए प्रत्येक राजनीतिक पार्टी आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को गति देने के लिए इच्छा व्यक्त कर रहे हैं क्योंकि इसी की वजह से सकल घरेलू उत्पाद में उच्च वृद्धि दर, आाधारभूत उद्योगों में निवेश का बढ़ाना, भारत के बड़े औद्योगिक घरानों तथा अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों को निवेश के लिए प्रेरित किया जा सकता है। यहाँ एक मजबूत सोच है कि आम व्यक्ति के जीवन स्तर को तब तक बेहतर नहीं बनाया जा सकता है जब तक संवृद्धि दर न बढ़े और देश जब तक सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर 7 से 8 प्रतिशत लगभग एक से दो दशक तक न प्राप्त करे। बेशक देश को आर्थिक सुधारों के आंकलन के तरीकों को भी परिभाषित करना होगा।

आर्थिक सुधार (Economic Reforms)

'आर्थिक सुधार' शब्द व्यापक रूप से इशारा करता है कि आवश्यक ढांचागत (structural) समायोजन विस्तृत पैमाने पर किया जाना चाहिए और इसके

साथ ही राजकोषीय घाटे को भी कम किया जाना चाहिए। दूसरा, इस तरह के समायोजन के लिए आवश्यक है कि बाजार व्यवस्था में इस तरह से ढांचागत परिवर्तन किये जायें कि अर्थव्यवस्था अधिक कुशल तथा लोचपूर्ण हो और इसमें दोनों देशी तथा बाहरी संसाधनों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सके। उसके लिए आवश्यकता है कि धीरे–धीरे आयात निर्यात पर प्रतिबन्ध खत्म किये जायें।

विश्व बैंक के शोध से जैसा प्रतीत हुआ है तीन बिन्दु बिलकुल स्पष्ट है।

प्रथम, बाह्य सहायता (External Assistance)– यह किसी विशेष परियोजना के संदर्भ में या सम्पूर्ण रूप से हो सकती है। जहाँ सुधारों की गति धीमी है वहाँ भुगतान शेष (Balance of Payment) का संकट उद्देश्यों की पूर्ति में प्रभावी है।

दूसरा, आर्थिक सुधारों का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि निवेश तथा संस्थान ढांचागत समायोजन में किस तरह भाग ले रहे हैं। इसलिए सुधार प्रक्रिया अपने आप प्रयाप्त नहीं है लेकिन आवश्यक है कि आर्थिक ऐजेन्ट तथा निजी क्षेत्र इसमें अपनी प्रतिभागिता सुनिश्चित करें। यह निवेश को बढ़ाने और संस्थान निर्माण, गरीबी उन्मूलन में सहायक होने और पर्यावरण को नुकसान न पहुँचाने वाली उत्पादन कार्यक्रमों के लिए आवश्यक है। इसके साथ ही यहाँ सरकार द्वारा लिए जाने वाले निर्णय तथ क्रियायें भी आवश्यक हैं।

तीसरा, आर्थिक सुधारों की सफलता देश के आर्थिक सुधार कार्यक्रमों से सम्वहता पर निर्भर करती है तथा ढांचागत आर्थिक सुधारों के लिए आम सहमति की भी आवश्यकता होती है। इसलिए सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि जनता की भावनायें आर्थिक सुधारों के पक्ष में होनी चाहिए।

11.2 आर्थिक सुधार –प्रथम चरण (Economic Reforms- First Phase)

विश्व के विभिन्न देशों में उत्पादन, संरचना तथा बाजार की प्रकृति/प्रवृत्ति में बदलाव के साथ भारत ने भी इन सब बदलावों के प्रति अपनी जवाबदेही प्रारम्भ की क्योंकि आर्थिक प्रक्रियाओं का तेजी से वैश्वीकरण हो रहा था। आर्थिक सुधारों के पहला चरण का जन्म 1985 में हुआ जब राजीव गाँधी ने देश के प्रधानमंत्री का पद सम्भाला। इसके तुरन्त बाद राजीव गाँधी जी ने नयी आर्थिक नीति की घोषणा की जहाँ उन्होने उत्पादकता में सुधार, नयी तकनीक के भरपूर उपयोग/उपभोग, क्षमता का पूर्ण उपयोग और निजी क्षेत्र के बड़े तथा महत्वपूर्ण भूमिका पर विशेष ध्यान दिया।

निजी क्षेत्र को महत्वपूर्ण तथा अधिक स्थान देने के लिए कई तरह की पहल प्रारम्भ की गयी जिसमें नीतिगत बदलाव भी सम्मिलित थे जैसे औद्योगिकरण से सम्बन्धित अनुमति नीति में बदलाव, तकनीकी सुधार, नियंत्रण तथा प्रतिबन्धों का उन्मूलन, विदेशी समता पूँजी, राजकोषीय नीति, युक्तिपूर्ण (Rationalization) तथा सरल प्रशासनिक प्रक्रिया तथा आयात–निर्यात नीति। यह सब नीतिगत बदलाव सिर्फ एक इरादे से किये गये कि निजी क्षेत्र के निवेश के लिए तथा इसे बड़े पैमाने पर प्रोत्साहित करने के लिए एक बेहतर वातावरण तैयार किया जा सके जो बदले में अर्थव्यवस्था के विकास की गति को तेज करने के साथ–साथ अर्थव्यवस्था के आधूनिकीकरण का रास्ता साफ हो सके।

11.3 आर्थिक सुधार की मुख्य विशेषतायें – प्रथम चरण

1991 से पूर्व भारत में अपनाये गये आर्थिक सुधार तथा अर्थव्यवस्था के विकास के लिए प्रयोग में लायी गयी आर्थिक नीति, पुरानी आर्थिक नीति कहलायी गयी। राजीव गाँधी की कांग्रेस सरकार (1985–89) द्वारा अपनाये गये आर्थिक सुधारों के तीन मुख्य उद्‌देश्य थे–

1. भारतीय उद्योगों के आधुनिकीकरण तथा निर्यात को प्रोत्साहित करने के उद्‌देश्य से पूँजीगत वस्तुओं के आयात पर आयात कर कम करना।
2. संवृद्धि को प्रात्साहित करने के लिए कर प्रणाली को युक्तीपूर्ण बनाना।
3. निजी क्षेत्र के उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण में उदारता लाना।

इस नीति के निम्न विशेषतायें थीं :

1. निजी अर्थव्यवस्था :–

स्वतंत्रता के पश्चात आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक रणनीति की तरह प्रयोग किया गया। इस रणनीति में सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्र मिलकर कार्य करते हैं जिसमें धीरे–धीरे निजी क्षेत्र का महत्व बढ़ता है।

2. सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व :–

पुरानी आर्थिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व दिया गया था। आर्थिक तथा सामाजिक आधारभूत क्षेत्र के विकास की जिम्मेदारी इसी सार्वजनिक क्षेत्र की थी। निजी क्षेत्र पर कई तरह की प्रतिबन्ध लगाये गये थे। आर्थिक अधिकारों का निजी क्षेत्र में केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए एकाधिकार एवं प्रतिबन्धित व्यापार गतिविधि अधिनियम 1969 बनाया गया। औद्योगीकरण अनुमति (Industrial Licencing) एवं कुछ विशेष उपक्रमों की किसी विशेष क्षेत्र में आरक्षण मुख्य विशेषतायें थी पुरानी आर्थिक नीति की।

3. विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाव :–

प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए कई तरीके अपनाये गये थे जैसे विदेशी वस्तुओं पर अधिक आयात कर तथा आयात की मात्रा का प्रतिबन्धित होना।

4. निर्यात को बढ़ावा तथा आयात का प्रतिस्थापन :–

निर्यात को आगे बढ़ाने के लिए निर्यातकों को रियायत तथा कर में छूट जैसी अन्य सुविधायें प्रदान की गयी थी। विभिन्न प्रकार के उत्पादों के लिए 'आयात प्रतिस्थापन' पर अत्यधिक ध्यान दिया गया।

5. विदेशी पूँजी पर प्रतिबन्ध :–

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment) पर कई तरह के प्रतिबन्ध लगाये गये थे। विदेशी पूँजी पर नियंत्रण रखने के उद्‌देश्य से विदेशी विनियम नियामक अधिनियम बनाया गया था। इसलिए विदेशी कम्पनियों को भारत में निवेश के लिए हतोत्साहित किया गया।

6. स्थिर विनिमय दर :–

स्थिर विनियम दर नीति अपनायी गयी थी। इस नीति के अन्तर्गत रूपये की विनिमय दर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित/निश्चित की

जाती है। सभी निर्यातकों को उनके द्वारा कमायी गयी विदेशी पूँजी एक वर्ष निर्धारित विनिमय दर पर रिजर्व बैंक में जमा करनी पड़ती थी। इसी तरह आयातक जिनको विदेशी पूँजी की आवश्यकता है इसी तरह उन्हें यह पूँजी भारतीय रिजर्व बैंक से एक स्थिर विनिमय दर पर खरीदनी पड़ती थी। यहाँ इस तरह के कई अन्य प्रतिबन्ध भी विदेशी विनिमय और पूँजी पर लगाये गये थे।

7. **राजकोषीय नीति :–**

1991 से पहले सरकार द्वारा अल्पविकसित (under developed) क्षेत्र के खर्चों के निरन्तर बढ़ने के कारण, राजकोषीय घाटा निरन्तर बढ़ रहा था। राजकोषीय नीति का अर्थ सरकार की नीति के अनुसार आय और व्यय से है। सरकार के खर्चों को पूरा करने के लिए नये कर लागू किये गये तथा वर्तमान में करों की दरें बढ़ायी गयी। इसके साथ ही सार्वजनिक ऋण तथा वाह्य ऋण नीति भी अपनायी गयी थी।

11.4 आर्थिक सुधारों का माप – प्रथम चरण

सुधारों की नयी आर्थिक नीति ने अनुमति देने की अनावश्यक प्रतिबन्ध को खत्म करने, एम0आर0टी0पी0 कम्पनियों को अनुमति न देने और उत्पादन के अनुसाशित कीमतों पर जोर दिया। इन सब के लिए सरकार ने कई तरह के मापों को निम्नवत लागू किया :

सीमेन्ट – सीमेन्ट पर कोई नियंत्रण नहीं था और बहुत सी निजी क्षेत्र के उपक्रमों को अतिरिक्त क्षमता के उत्पादन की अनुमति प्रदान किये गये।

चीनी – खुले बाजार में चीनी की बिक्री की मात्रा को और बढ़ाया गया।

सम्पत्ति सीमा – बड़े व्यवसायिक संस्थानों से सम्पत्ति सीमा को 20 करोड़ से बढ़ाकर 100 करोड़ कर दिया गया था।

ब्रॉड बेन्डिंग – दो पहिया वाहनों के उत्पादन में विविधता लाने के उद्देश्य से ब्रॉड बेन्डिंग योजना लागू की गयी थी बाद में 25 अन्य उत्पादों पर लागू किया गया जैसे चार पहिया वाहन, कैमिकल्स, पेट्रोकैमिकल्स, फार्मेसीटीकल्स, टाईप राइटर इत्यादि।

दवा – सभी प्रकार की दवाओं को पूरी तरह से दोबारा अनुमति (Re-licenced) दी गयी थी तथा 27 उद्योगों को एम0आर0टी0पी0 अधिनियम की परिधि से बाहर रखा गया था।

बुनाई उद्योग – नई बुनाई नीति लागू की गयी तथा इस नीति के अनुसार पावरलूम तथा हेन्डलूम क्षेत्र को अलग–अलग किया गया। इसी प्रणाली पर अनुमति देने के उद्देश्य से प्राकृतिक तथा सिन्थेटिक फाईबर को अलग–अलग किया।

इलेक्ट्रॉनिक – इलेक्ट्रॉनिक उद्योग को एम0आर0टी0पी0 के प्रतिबनधों से उदारता दी गयी थी। इस क्षेत्र में फेरा (FERA) कम्पनियों के आने पर उन पर भी उदारता दिखायी गयी।

व्यापार – आसानी से आयात किये जाने, निर्यात किये जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि और तकनीकी सुधारों को सहायता प्रदान करने के लिए 1985 में आयात–निर्यात नीति लागू की गयी थी।

लम्बी अवधि की राजकोषीय नीति (Long Term Fiscal Policy) – सातवीं पंचवर्षीय योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए 1985 मे एल0टी0एफ0पी0 (LTFP), मनी टर्म फिस्कल पॉलिसी लागू की गयी थी।

11.5 आर्थिक सुधारों में नयी आर्थिक नीति 1985 का योगदान

1. **राष्ट्रीय आय का बढ़ना (increase in National Income)** – 1985 में आर्थिक सुधारों के लागू होने से हमारी राष्ट्रीय आय बढ़ी। 1980–81 से 2002–03 तक यह बेहतरीन दर से बढ़ी। वास्तव में 1981–91 के दौरान यह 5.6% थी और 1981–2001 के दौरान स्थिर कीमतों के सापेक्ष राष्ट्रीय आय औसतन 4.4% की दर से बढ़ी थी।
2. **औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि (Increase in Industrial Production)** – आर्थिक सुधारों का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक उत्पादन की गति को तेज करना था। आर्थिक सुधारों के दौरान औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर 9.5% थी। 1981–85 में औद्योगिक संवृद्धि दर 6.4% प्रतिवर्ष था जो सातवीं योजना के दौरान 8.5% प्रतिवर्ष तथा 1990–91 में कम होकर 8.3% प्रतिवर्ष हो गया।

   1981–85 में पूँजीगत वस्तुओं उद्योगों की संवृद्धि दर में खासा उछाल देखा गया जो 6.2% प्रतिवर्ष था तथा 1985–90 के बीच बढ़कर 14.8% प्रतिवर्ष तथा 1990–01 में 17.4% प्रतिवर्ष हो गया।

   1981–85 के दौरान उपभोक्ता वस्तुओं (Consumer Goods) उद्योग में संवृद्धि दर 5.1% प्रतिवर्ष जो 1985–90 में बढ़कर 7.3% था। लेकिन मूल वस्तुओं (Basic Goods) के उद्योग की संवृद्धि दर 1980–85 में 8.7% प्रतिवर्ष से घटकर 1985–90 में 7.4% रह गयी।

   इण्टरमीडियेट वस्तु उद्योग (Intermediate Goods Industries) की संवृद्धि दर में उतार–चढ़ाव रहे। 1980–85 में इस उद्योग की संवृद्धि दर 6% थी जो 1985–90 में बढ़कर 6.4% हो गयी। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर जो 1979–80 में (–1.6%) प्रतिवर्ष थी उसमें 1980 के दशक में बेहतरीन सुधार हुआ।

11.6 आर्थिक सुधारों की कमियाँ (Short Comings of Economic Reforms)

नयी आर्थिक सुधारों के प्रथम चरण से निम्नलिखित कमियाँ उजागर होती हैं –

1. **राजकोषीय असन्तुलन :–**

1991 से पहले सरकार द्वारा अविकसित क्षेत्र के खर्चे की वजह से राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit) काफी बढ़ गया था। 1981–82 में यह धारा सकल घरेलू उत्पाद का 5.4% था जो 1991–92 तक बढ़कर 8.4% हो गया। राजकोषीय घाटे का सामना करने के लिए सरकार की कई तरह के ऋण लेन पड़े तथा इन पर ब्याज चुकाना पड़ा। इसलिए राजकोषीय घाटे के बढ़ने के कारण सरकार द्वारा लिये गए सार्वजनिक ऋण बढ़े तथा इन पर ब्याज की देनदारियाँ भी। 1980–81 में सरकार द्वारा किये गये कुल खर्चों का 10% के ब्याज चुकाने के लिए उपयोग किया गया तथा 1991 तक यह बढ़कर केन्द्रीय सरकार के कुल खर्चों का 36.4% हो गया। अन्तरारष्ट्रीय संस्थान जैसे विश्व बैंक एवं अन्तराष्ट्रीय

मुद्रा कोष का भारत की राजकोषीय स्थिति से विश्वास खत्म हो गया। इसलिए अब सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि राजकोषीय घाटे को कम करने/नियंत्रित करने के लिए कुछ विशेष प्रयास किये गये।

यह चरण भयानक आर्थिक स्थिति के साथ प्रारम्भ हुआ जिसकी विशेषतायें नीची आर्थिक संवृद्धि उच्च मुद्रा स्फीति दर और आयात किये जाने वाले कच्चे तेल के दामों में वृद्धि के कारण भुगतान शेष का निरन्तर कम होना था। सरकार कर बढ़ाने की प्रक्रिया से इस राजकोषीय घाटे का सामना करना चाहती थी। नये कर प्रणाली दीर्घकालीन योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए लागू की गयी। अनिवासियों को भारत में विदेशी पूँजी के प्रवाह को प्रोत्साहित करने के लिए कर में छूट देने के प्रावधानों को भी अमल में लाया गया जिससे भुगतान शेष की समस्या का सामना किया जा सके। आयात में वृद्धि, सरकारी आय में वृद्धि और देशी उद्योगों को संरक्षण देने के लिए कस्टम ड्यूटी (Custom Duty), भी बढ़ायी गयी। 1985 में सरकार ने भारत के लिए लम्बी अवधि की राजकोषीय नीति की घोषणा की जिसमें सरकार ने देश की राजकोषीय स्थिति में गिरावट पर चिन्ता जतायी तथा इसको मुख्य चुनौती बताया इसके साथ ही इससे निपटने के लिए या इसके समाधान के लिए विशेष लक्ष्य निश्चित किये गये। इसमें संवृद्धि के लिए कर नीति में बदलाव तथा योजनाओं की सफलता के लिए समान वितरण के संकेत दिये गये।

उत्पादन के क्षेत्र में कर के रूप बिगाड़ने वाले प्रभावों को कम करने, कर का त्वरित भार कम करने तथा इसे धीरे–धीरे बढ़ाने के उद्देश्य से सरकार ने 1986 में एक सुधरी हुई वेल्यू एडेड कर प्रणाली (Value Added Tax System) लागू किया गया। कस्टम ड्यूटी में सुधारों को लागू किया गया जिसमें आयात पर मात्रा सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाने की बजाय करों पर निर्भरता पर जोर दिया गया जिससे देश को अधिक आय प्राप्त होनी थी। यह चरण वास्तव में कर सुधारों का प्रभाव उत्पन्न करने वाला चरण था लेकिन यह चरण नीति निर्माताओं के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना भी आवश्यक था :–

(अ) कर नीति के आर्थिक प्रभावों में यह सुनिश्चित करना होगा कि संसाधनों का आवंटन बेहतर हो तथा परिणाम स्वरूप आर्थिक संवृद्धि बढ़े।

(ब) कर नीति या कर संरचना को बनाने से पहले या दौरान इसके प्रशासनिक क्रियान्वयन तथा कर प्रशासन व करदाताओं के व्यवहारिक पहलू को देखा जाना चाहिए।

2. भुगतान शेष की मृदु स्थिति :–

1991 में भुगतान शेष की स्थिति अत्यधिक अनिश्चित थी। 1980–81 में चालू खाते का घाटा कुल 27 मिलियन डॉलर, सकल घरेलू उत्पाद का 1.35% था जो 1985–86 में बढ़कर 4.9 बिलियन डॉलर और सकल घरेलू उत्पाद का 2.5% एवं 1990–91 में 9.7 बिलियन डॉलर, सकल घरेलू उत्पाद का 3.69% हो गया। इस लगातार बढ़ रहे घाटे का सामना करने के लिए विदेशों से ऋण लेना जरूरी हो गया जिसके कारण 1980–81 में भारत के बाह्य ऋण/देनदारियाँ सकल घरेलू उत्पाद की 12% थी जो 1990–91 के अन्त तक बढ़कर 23% हो गयी। बाह्य देनदारियों के निरन्तर बढ़ने से सरकार पर इनकी सेवाओं का बोझ भी निरन्तर बढ़ रहा था 1980–81 में यह चालू खाते की प्राप्तियों का 10% और

निर्यात से आय का 15% था जो 1990–91 में यह निर्यात से आय का 22% हो गया। यह भार 1991 में अपने चरम पर था जब खाड़ी का संकट (Gulf Crisis) उत्पन्न हुआ। 1991 के मध्य जनवरी में भुगतान शेष की स्थिति आपदा/विपत्ति के मुखाने पर खड़ी थी और दोबारा 90 के दशक के अन्त में विदेशी विनिमय संचय की स्थिति इतनी खराब थी कि इससे 10 दिन के आयात को भी वित्तीय सहायता नहीं दी जा सकती थी।

3. **खाड़ी का संकट :–**

सन् 1990–91 में खाड़ी के देशों के बीच उत्पन्न हुई समस्या से कच्चे तेल की कीमतें तीव्रता से बढ़ी इसलिए भारत को बड़ी मात्रा में कच्चे तेल के आयात के लिए भुगतान करना पड़ा। भारत की पहले से ही बिगड़ी हुई भुगतान शेष की स्थिति को इस खाड़ी समस्या ने और गहरा कर दिया, इससे भुगतान शेष घाटा और बढ़ गया।

4. **विदेशी विनिमय संचय में गिरावट :–**

1990–91 में भारत का विदेशी विनिमय संचय इतना कम हो गया था कि उससे महत्वपूर्ण बिलों का भुगतान केवल 10 दिनों के लिए भी नहीं हो सकता था। स्थिति 1990–91 में इतनी गहरी हो गयी कि सरकार ने देश का सोना अवाश्यक विदेशी विनिमय प्राप्त करने के लिए गिरवी (Mortage) रखा। इस स्थिति में सरकार एक नामी आर्थिक नीति के बारे में सोचन के लिए मजबूर थी।

5. **मूल्य वृद्धि :–**

औसत वार्षिक मुद्रा स्फीति दर 1990–91 में बढ़कर 10.3% हो गयी। 1990–91 में लगातार तीन वर्षों तक अच्छे मानसून के बावजूद खाद्यान्नों की कीमत काफी हद तक बढ़ी। मुद्रास्फीति की तीव्र दर के कारण देश की आर्थिक स्थिति और भी मुश्किल में आ गयी। इसलिए सरकार ने एक नयी आर्थिक नीति पर विचार किया।

6. **सार्वजनिक क्षेत्र की खराब कार्यशैली :–**

1951 में जहाँ भारत में केवल पाँच उपक्रम सार्वजनिक क्षेत्र में थे वहीं 1990–91 में इनकी संख्या बढ़कर 246 हो गयी थी। कई हजार करोड़ रूपये का निवेश इन उपक्रमों पर किया जा चुका था। प्रारम्भिक दिनों में इनकी कार्यशैली सन्तोषजनक थी लेकिन इसके बाद कई उपक्रम बड़े–बड़े हानि के साथ बचे हुऐ थे। खराब कार्यशैली के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के दायित्व काफी बढ़ गये थे। इस स्थिति से उबरने के लिए नयी आर्थिक नीति की आवश्यकता थी जिसमें निजी क्षेत्र को महत्व दिया जा सके।

11.7 आर्थिक सुधारों का तर्काधार (Rationale of Economic Reforms)

आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था के ढाँचागत समायोजन के लिए तथा अर्थव्यवस्था की कमजोरियों तथा कमियों से उबरने के लिए आर्थिक सुधारों को लागू किया गया। आर्थिक सुधार के पक्षधरों ने भारतीय अर्थव्यवस्था में ढाँचागत समायोजनों पर खासा ध्यान देने की जरूरत बतायी। आर्थिक सुधारों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये गये :–

- भारत में मजदूरी तय करने का उत्पादकता से कोई सम्बन्ध नहीं है लेकिन युक्ति कहती है कि मजदूरी का निर्धारण श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता

के अनुसार होनी चाहिए। भारत में श्रमिकों के दोहरे विशेषतायें हैं संगठित श्रमिक सुरक्षा तथा ऊँची मजदूरी दोनों का लाभ ले रहा है वहीं असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों को शोषण किया जा रहा है। इस संदर्भ में आर्थिक सुधारों द्वारा, बाजार क्षेत्र द्वारा विभिन्न उपक्रमों को या तो उत्पादकता बढ़ानी होगी या उपक्रम बन्द करने होंगे।

- ऊँची ओवरहेड लागत, कच्चे माल की बर्बादी, गलत कीमत नीतियाँ, कार्यशैली की कमी तथा श्रमिकों का यूनियन/संघों के साथ होने सहित विभिन्न कारणों से भारत में सार्वजनिक क्षेत्र धीमी उत्पादकता की समस्या से जूझ रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों को इन सब समस्याओं से उबारने के लिए आर्थिक सुधारों को एक महत्वपूर्ण रोल निभाना पड़ेगा।
- रक्षा के क्षेत्र में खर्च, छूट, ब्याज भुगतान सहित अन्य कुछ क्षेत्रों में भुगतान के कारण भारत पर एक बड़ा बोझ अनियोजित खर्च (Non Plan Expenditure) का है। आर्थिक सुधारों के कारण एक प्रयास खाद्यान्न, निर्यात, खाद तथा उच्च शिक्षा में दी जाने वाली रियायतों (Subsidies) को कम करने के माध्यम से इस बोझ को कम करना पड़ेगा।
- आर्थिक सुधारों के माध्यम से देश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का प्रवाह बढ़ेगा जिस से देश नयी तकनीकी का प्रयोग करने तथा उत्पादकता बढ़ाने में समर्थ होगा।
- जैसे कि भारत घरेलू ऋण/उधार तथा घाटे के वित्त (Deficit Financing) पर निर्भर थी इससे देश पर एक बड़े ऋण का बोझ तथा बढ़ती मुद्रास्फीति की समस्या थी। आर्थिक सुधारों के द्वारा इस दोहरी समस्या से लड़ने का प्रयास किया गया।
- भारत लगातार अपने बजट में राजकोषीय घाटे को अनुभव कर रहा था जिसका परिणाम मुद्रास्फीति के रूप में सामने आया। आर्थिक सुधारों के माध्यम से इस समस्या के समाधान के उपायों पर कार्य किया गया।
- आर्थिक सुधारों ने औद्योगिक क्षेत्र को सरकार के अनावश्यक तथा अनिश्चित नियंत्रण से बचाया।
- आर्थिक सुधारों के प्रयत्नों से देश की सम्पूर्ण कर प्रणाली को सरल तथा युक्तिपूर्ण बनाया गया।

11.8 सांराश

आर्थिक सुधारों के माध्यम से अनुमति देने के क्षेत्र में अनावश्यक प्रतिबन्धों को खत्म किया गया, एन0आर0टी0पी0 कम्पनियों का औद्योगिक अनुमति देना प्रारम्भ किया गया; और सार्वजनिक क्षेत्र की उत्पादकता तथा कीमतों का समायोजन किया गया। इस संदर्भ में सरकार द्वारा विभिन्न तरीके अपनाये गये। आर्थिक सुधारों से तात्पर्य उन सभी तरीकों के प्रयोग से है जिसके कारण किसी अर्थव्यवस्था और अधिक कुशल, प्रतिस्पर्धी तथा विकसित किया जा सके। आर्थिक सुधारों का मुख्य लाभ निजी क्षेत्र को उत्पादकता बढ़ाने, आधुनिक तकनीक का प्रयोग करने और क्षमता का पूर्ण उपयोग करने के कारण हुआ। निजी क्षेत्र को अधिक महत्व देने के उद्देश्य से आर्थिक सुधारों में बहुत से नीतिगत बदलावों को भी अपनाया गया जिसमें अनुमति प्रदान करना, तकनीक सुधार, नियंत्रण खत्म

करना विदेशी समता पूँजी पर प्रतिबन्ध खत्म करना, विदेश प्रत्यक्ष निवेश, राजकोषीय तथा प्रशासनिक प्रक्रियाओं का सरलीकरण आयात–निर्यात नियंत्रण/कानून आदि मुख्य थे। आर्थिक सुधारों के प्रथम चरण के कई फायदे तथा नुकसान/कमियाँ रहीं। इसी कारण सरकार के लिए नयी आर्थिक नीति को लागू करना आवश्यक हुआ। इसके उद्देश्य थे कि आर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर को वृद्धि, ढाँचागत बदलाव करना तथा विदेशी पूँजी को आकर्षित करना ।

11.9 शब्दावली

आर्थिक सुधार (Economic Reforms) :– आर्थिक सुधार से तात्पर्य अर्थव्यवस्था में व्यापक रूप से ढाँचागत बदलाव करने से है।

आर्थिक सुधारों की विशेषतायें (Features of Economic Reforms) :–निजी अर्थव्यवस्था, सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व, निर्यात को प्रोत्साहन तथा आयात का प्रतिस्थापन, विदेशी पूँजी से सुरक्षा, विदेशी पूँजी पर प्रतिबन्ध, विनिमय के निश्चित दर।

आर्थिक सुधार के माप (Measures of Economic Reforms) :–इस संदर्भ में सरकार ने कई तरीके अपनायें जिसमें सीमेन्ट, चीनी, सम्पत्ति सीमा, ब्राडबेंडिंग, दवा, बुनाई क्षेत्र, इलैक्ट्रानिक तथा व्यापार सम्मिलित हैं।

आर्थिक सुधारों का तर्काधार (Rational of Economic Reforms) :–मजदूरी, उत्पादकता, अनियोजित खर्चे, पूँजी आकर्षित करने की आवश्यकता, अनावश्यक नियंत्रण तथा प्रतिबन्धों की कमी, सरल तथा युक्तिपूर्ण कर प्रणाली की आवश्यकता आदि के कारण आर्थिक सुधारों को लागू करना अति आवश्यक हुआ।

निजी अर्थव्यवस्था (Private Economy) :–स्वतंत्रता के पश्चात आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक रणनीति की तरह प्रयोग किया गया। इस रणनीति में सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्र मिलकर कार्य करते हैं जिसमें धीरे–धीरे निजी क्षेत्र का महत्व बढ़ता है।

खाड़ी का संकट (The Gulf Crisis) :– सन् 1990–91 में खाड़ी के देशों के बीच उत्पन्न हुई समस्या से कच्चे तेल की कीमतें तीव्रता से बढ़ी इसलिए भारत को बड़ी मात्रा में कच्चे तेल के आयात के लिए भुगतान करना पड़ा।

स्थिर विनिमय दर (Fixed Rate of Exchange) :–स्थिर विनियम दर नीति अपनायी गयी थी। इस नीति के अन्तर्गत रूपये की विनिमय दर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित/निश्चित की जाती है। सभी निर्यातकों को उनके द्वारा कमायी गयी विदेशी पूँजी एक वर्ष निर्धारित विनिमय दर पर रिजर्व बैंक में जमा करनी पड़ती थी।

11.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. ....उद्योगों में अधिकतर बाजार भाग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित था ।
2. आर्थिक अधिकारों का निजी क्षेत्र में केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए .... बनाया गया।

3. स्थिर विनिमय दर नीति अपनायी गयी थी। इस नीति के अन्तर्गत रूपये की विनिमय दर .... द्वारा निर्धारित/निश्चित की जाती है।
4. 1990–91 में भारत का .... इतना कम हो गया था कि उससे महत्वपूर्ण बिलों का भुगतान केवल 10 दिनों के लिए भी नहीं हो सकता था।

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 18 2. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धित व्यापार गतिविधि अधिनियम 1969
3. भारतीय रिजर्व बैंक 4. विदेशी विनिमय संचय

11.12 स्वपरख प्रश्न

1 आर्थिक सुधार के प्रथम चरण से आप से आप क्या समझते है।
2 आर्थिक सुधार की विशेषताओ को बताइये।
3 नीजि अर्थव्यवस्था तथा स्थिर विनिमय दर की व्याख्या कीजिए।
4 राजकोषीय नीति को समझाइये।
5 प्रथम–चरण के आर्थिक सुधारो को गिनाइये।
6 आर्थिक सुधार –प्रथम चरण का आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
7 आर्थिक सुधारो के तर्काधार की व्याख्या कीजिए।

11.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Chanderashekhar, C.P., Aspects of Growth and Structural Change in Indian Economy, Economic and Political Weekly, Special Number, Nov., 1998.
2. Das, Gupta, Ajit K., Agriculture and Economic Development in India, New Delhi, Associated Publishing House, 1993.
3. Government of india, economic survey (annual).
4. Desai, Ashok, V., Technology Absorption in Indian Industry, New Delhi, Wiley Eastern, 1998.
5. Indian Economic Review (Delhi school of economics).
6. Indian Economic Journal (Indian economic association).
7. Khatehkate, Deen, National Economic Policy in India, Salvetor, Demonic, ed. Hand book of Comparative Economic Policies, Vol. 1, National Economic Policies, Greenwood press, pp. 231-75, 1991.
8. Rajkumar, Sen and Biswajit, Chetterjee,Indian Economy Agenda for the 21st Century, Deep and Deep Publication, New, Delhi, 2002.
9. A.N. Agrawal, Indian Economy, Problems Of Development And Planning, Wiley Eastern Limited, New, Delhi, 2002
10. Planning Commission, Government Five Year Plan.
11. Bhalla, G.S ed., Economic Liberalization and Indian Agriculture, Institution for Studies in Industrial Development, New Delhi 1994.
12. Lall, Sanjaya, technology Development and Export Performance in LDCs: Leading Engineering and Chemical Firms in India, Review of World Economics, Vol. 122(1), pp. 80, 1996.

इकाई 12 भारत मे आर्थिक सुधार –II

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 आर्थिक सुधार–II उद्देश्य
12.3 आर्थिक सुधार – II की मुख्य विशेषताए
12.4 आर्थिक सुधार – II के नीतिगत प्रमाप
12.5 भारतीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक सुधारो में पर्दशन
12.6 आर्थिक सुधारो के पक्ष मे तर्क
12.7 आर्थिक सुधारो के विपक्ष मे तर्क
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 बोध प्रश्न
12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.12 स्वपरख प्रश्न
12.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- आर्थिक सुधार एंव इसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- आर्थिक सुधार की विशेषताओं को जान सकें।
- आर्थिक सुधार के द्वितीय चरण के नीतिगत प्रमापों को समझ सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर आर्थिक सुधारों के प्रभावों को समझ सकें।
- आर्थिक सुधारों के पक्ष एंव विपक्ष के तर्कों कों जान सकें।

12.1 प्रस्तावना

1980 में भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण का एक मध्यम मार्ग अपनाया गया लेकिन इससे गहराई ब्यापकता तथा स्वविकसित जैसे विशेषताओं का आभाश था। इस दशक के अन्त तक भारतीय अर्थव्यवस्था एक गहरे संकट से ग्रस्त हो गई जिससे कई बृहद आर्थिक संकट सम्मिलित थे इसने प्रारम्भ में विदेशी विनिमय संकट को तन्म दिया तथा इसके बाद कर्ज तथा ब्याज के भुगतान की समस्या को इस संकट के समाधान के लिए भारत विश्व बैंक तथा अर्न्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से बडे कर्ज लेने पहुचा तथा विश्व बैंक तथा अर्न्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने ऋण देने की अनुमति के साथ भारत पर विभिन्न प्रकार की शर्ते भी लगा दी अब भारत असमंजस की स्थिति में था तथा भारत ने विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की शर्तो को मान लिया तथा इसके साथ ही पूरी अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के कार्य प्रारम्भ हुऐ तथा इसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में आधारभूत बदलाव अर्थव्यवस्था में स्थायीकरण के कार्यक्रमों द्वारा किया जाना सम्मिलित था इस विचार के साथ भारत ने सन् 1991 जुलाई में नई आर्थिक नीति लागू करने की पहल की।

1980 में अर्थव्यवस्था की सम्वृद्धि की गति बढाने के लिए सिर्फ नीतिगत फैसलों पर दोवारा विचार किया गया था तथा आधे अधूरे तौर पर आर्थिक सुधारों

को लागू किया गया था । पूर्वी एशिया के कई देशों द्वारा बेहतरीन प्रदर्शन करने के बाद यह विचार आया कि भारत की अर्थव्यवस्था को दोवारा से खोजने की जरूरत है भारतीय आर्थिक प्रणाली निजी क्षेत्र पर बृहद सरकारी नियंत्रण कीमत नियंत्रण ऊची कर दरें आयात पर संख्यात्मक नियंत्रण तथा प्रतिबन्धित विदेशी निवेश जैसी विशेषताओं से पूर्ण थी इस प्रणाली से कार्यो को आवश्यकतानुसार करना मुश्किल था तथा इसमे बदलाव की आवश्यकता थी नियंत्रण प्रणाली को 1980 में पूर्ण रूप से नही बदला गया था यह अस्तित्व में था लेकिन उदारता से चलाया जा रहा था । 1980 में इस प्रक्रिया ने अच्छे परिणाम दिये और अर्थशास्त्रीयों ने भी माना की अधिक ब्यापक तथा सुनियोजित बदलावों की आवश्यकता थी इसलिए अब उदारीकरण को लागू करने की सिफारिश होने लगी इनमें से बहुत सी सिफारिशों को 1990 में लागू किया गया

1990 में आर्थिक सुधारों को लागू करते ही 1991 में भारत ने गम्भीर भुगतान शेष संकट का अनुभव किया नये प्रशासन ने आर्थिक सुधारों का ब्यापक रूपरेखा तैयार की जिसमें निम्नवत तथ्यों को सम्मिलित किया गया ।

- पहले से सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभावी भूमिका को खत्म करना और नीति क्षेत्र की भूमिका को महत्व देकर आर्थिक विकाश के इंजन के रूप में प्रोत्साहित करना।
- कुशलता बढाने के लिए प्रतिस्पार्धात्मक वातावरण तथा बाजार क्षेत्र पर अधिक निर्भरता।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विदेशी निवेश तथा विदेशी तकनीक के लिए अर्थव्यवस्था को खोलना ।

आर्थिक सुधारों की अवधि के पहली आधी अवधि (1992–97) में वार्षिक घरेलु (GDP)में ओसतन 6.7 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ बेहतरीन संकेत दिये लेकिन इसी अवधि के संकेत दूसरे आधे काल में (1998–03) में यह विकास गति कम होकर 5.7 प्रतिशत हो गयी।

प्रथम चरण के आर्थिक सुधार क्षेत्रों में आशातीत/उम्मीदानुसार परिणाम प्राप्त नही कर पाये थे खासकर व्यापार शेष खाता निरंतर बढता रहा इसलिए औसत व्यापार शेष घाटा जो छठी पंचवर्षीय योजना में रू.5935 करोड था सातवी पंचवर्षीय योजना में अचानक बढकर रू 10,841 करोड हो गया । इस बजट से देश को एक गम्भीर भुगतान शेष संकट का सामना करना पडा । इस समस्या से बचने के लिए भारत ने विश्व बैंक तथा अर्न्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से 7 विलियन डालर का कर्ज लिया इस कर्ज की अनुमति के साथ ही इन सस्थानों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए देश पर विभिन्न शर्ते लगा दी तथा तत्कालीन वित्त मंत्री ने अर्न्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष के निदेशक को विश्वास दिलाया कि भारत सूश्म आर्थिक उददेश्य निश्चित करेगा तथा इसके साथ ही अर्थव्यवस्था में आधारभूत बदलावों के लिए नीतिगत प्रमापों का प्रयोग किया जायेगा।

आन्तरिक एंव बाहरी विश्वास को जीतने के लिए भारत सरकार ने 1991–92 में अच्छी संख्या में अर्थव्यवस्था में स्थायीकरण/स्थिरिकरण तरीकों का प्रयोग किया । इन तरीकों में ब्याज दरें बढाकर एक मजबूत मौद्रिक नीति 22 प्रतिशत से रूपये के विदेशी विनिमय समायोजन उदारीकरण, विदेशी व्यापार नीति

का सरलीकरण, राजकोषीय घाटे में कमी और अन्य सुधार थे जिनका मुख्य उद्‌देश्य अर्थव्यवस्था की समृद्धि दर बढाना था।

12.2 आर्थिक सुधार II के उद्‌देश्य

आर्थिक सुधारों के मुख्य आर्थिक उद्‌देश्य निम्नवत है :

(अ) 1991–92 में 3% से 3.5 प्रतिशत तक आर्थिक समृद्धि दर प्राप्त करना और 1992–93 में 4 प्रतिशत की दर।

(ब) 1991–92 में वार्षिक मुद्रास्फीति की दर 9 प्रतिशत तक कम करना तथा 1992–93 में 6 प्रतिशत तक।

(स) आलोचनात्मक खतरनाक भुगतान शेष संकट से मुक्ति पाना तथा 2.2 विलियन डालर का विदेशी विनिमय संचय बनाना।

(द) 1990–91 में बजट में चालू खाते के घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 2.5 प्रतिशत से कम करना तथा 1991–93 में 2 प्रतिशत से।

12.3 आर्थिक सुधार –II की मुख्य विशेषतायें

- **ढांचागत आर्थिक सुधार (Structural Economic Reforms):**

1991 से आर्थिक सुधारों में ढांचागत आर्थिक सुधार क्षेत्रानुसार थे। ढांचागत आर्थिक सुधारों के लिए विभिन्न क्षेत्रों को ध्यान से चुना जाता था तथा इन चुने हुऐ क्षेत्रों मे ढांचागत सुधारों की व्यापकता को समयानुसार बढाया जाता था।

1991 में जो मुख्य ढांचागत आर्थिक सुधार अपनाये गये वह मुख्यतः निम्नांकित क्षेत्रों में थे जैसे ब्यापार नीति वाह्य क्षेत्र, औद्योगिक नीति, आधारभूत क्षेत्र सम्बन्धित नीतियॉ, निजीकरण नीतियॉ, वित्तीय क्षेत्र और भारतीय निवेश को आकर्षित करने वाली नीतियॉ सभी क्षेत्रों में आर्थिक सुधारों पर जोर दिया गया तथा इससे भारतीय अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतिस्पर्धा के लिए खोली गयी विनिमय दर नियंत्रण खत्म कर दिया विदेशी पूजी तक पहॅुच उदार हुई और यह भी सुनिश्चित किया जाने लगा की विदेशी निवेश को केवल इसलिए दण्ड न मिले की वह सिर्फ केवल विदेशी है ।

आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषता उदारीकरण निजीकरण तथा वैश्वीकरण है 1991 से भारत सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक सुधारों का प्रयोग अर्थव्यवस्था को आर्थिक संकट से निकालने तथा विकाश को गति देने के लिए किया ।

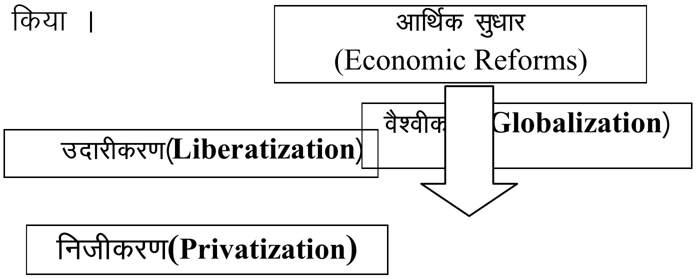

- **उदारीकरण (Liberatization):**

उदारीकरण –आर्थिक सुधारों के कारण धीरे–धीरे उदारीकरण का एक उदाहरण वाह्य उदारीकरण है लगभग 1970 के अन्त में भारत शख्त आयात नियंत्रण तथा ऊंची दर के आयात निर्यात शुल्क के कारण अधिमूल्यांकन विनिमय दर संकट से गुजरा । यहॉ इस बात पर सहमति थी कि आयात से संख्यात्मक नियंत्रण खत्म

किया जाना चाहिए इसके अतिरिक्त शुल्क (आयात) समयानुसार कम किया जाना चाहिए और विनिमय दर का अवमूल्यन होना चाहिए जिससे देशी उत्पादन को प्रोत्साहन मिले ।

1990 के आर्थिक सुधारों से एक सुनियोजित वदलाव तथा एक अच्छी गति से खोजा गया। 1991 में स्थिर विनिमय दर का 25 प्रतिशत अवमूल्यन दो सफल किस्तों में किया गया क्योंकि अब आयात नियंत्रण को उदार कर दिया गया था। इसलिए यह युक्ति संगत था कि एक ऐसी प्रणाली को लागू किया जाय जो अधिक लचीली विनिमय दर प्राप्त करें यह दो स्तरों पर किया गया। 1992 में दोहरी विनिमय दर प्रणाली लागू की गयी एक लचीली स्थिर दर जिस पर निर्यात को सेवाओं का भुगतान करने में सहायता करता था और एक परिवर्तित दर जिस पर अन्य क्रिया कलाप किये जाते थे। इस दर का निर्धारण विदेशी विनिमय की मॉग और पूर्ति द्वारा निर्धारण किया जाता था । 1993 में दोहरी विनिमय दर प्रणाली का स्थान एकल विनिमय दर प्रणाली ने ले लिया जो पूरी तरह से बाजार ताकतों द्वारा निधारित होती थी ।

अनुमति प्रणाली को खत्म करने में यह पहले तथा तेजी से मध्यस्थ तथा पॅूजीगत वस्तुओं पर लागू किया गया । लेकिन उपभोक्ता वस्तुओं पर यह निगम लागू रहा इस दौरान एक अहम कदम आयात निर्यात शुल्क को कम करने के लिए भी उठाया गया ।

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था को सरकार के प्रत्यक्ष तथा वास्तविक निमंत्रण से मुक्ती 1991 से पूर्व सरकार ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर विभिन्न तरह के नियंत्रण लागू किये हुए थे जैसे औद्योगिक अनुमति कीमत नियंत्रण बडे उद्योगपतियों द्वारा बडे निवेस का पंजीकरण इत्यादि । बाद में सरकार ने यह अनुभव किया कि इन नियंत्रणों द्वारा अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड रहा है । यह उद्योगपतियों का नामे उद्योग लगाने के लिए साहस को कर रहे है । इन नियंत्रणों ने भ्रष्टाचार देरी तथा अकुशलता जैसी बीमारियों को जन्म दिया जिससे अर्थव्यवस्था की आर्थिक विकास गति धीमी हुई इससे आर्थिक प्रणाली की तेज तथा ऊॅची लागत सामने आयी आर्थिक सुधारों ने अर्थव्यवस्था पर लगाये गये इन नियंत्रणों को कम करने का साध्य किया।

उदारीकरण के लिए अपनाये गये तरीके (Measures Taken For Liberalization) :

1. औद्योगिक अनुमति तथा पंजीकरण को खत्म करना ।
2. एम0 आर0 टी0 पी0 अधिनियम को उदार बनाना ।
3. विस्तार तथा उत्पादन में स्वतंत्रता।
4. छोटे पैमाने के उद्योगों की निवेश सीमा को वदाना।
5. पूंजीगत वस्तुओं के आयात की स्वतंत्रता।
6. तकनीक आयात की स्वतंत्रता।
7. ब्याज दरों का मुक्त निर्धारण।
8. कर सुधार (Tax Returns)

- **निजीकरण (Privatization):**

मूल प्रश्न है कि निजीकरण के साथ कितनी दूर जाना है पूर्वी यूरोप में निजीकरण राजनीतिक आकर्षण है क्योंकि यह ढाचागत बदलाव का भाग है जिसे

सामान्यतः सहयोग प्राप्त है । भारत में निजीकरण के लिए जनता का सीमित सहयोग है। यह सामने आया कि कुछ सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनिया जो लगातार हानि पर चल रही है सरकारी बजट का महत्वपूर्ण हिस्सा ले जा रही है । यहां एक इच्छा जाहिर की गयी कि इन हानि उठाने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों का निजीकरण कर देना चाहिए क्योंकि निजी उद्योगपति बेहतर काम कर सकता है और ऐसे क्षेत्रों का नीजि क्षेत्र में दिया जाना चाहिए जिससे रणनितिक स्वार्थ सिद्ध हो सके । होटल व्यवसाय तथा उपभोक्ता वस्तुओं के व्यवसाय के लिए निजी क्षेत्र ज्यादा सुविधाजनक था ।

1990 में भी एक सीमित रुप में इस प्रक्रिया को अपनाया गया जिसे सराहा गया। इस बात की आवश्यकता गम्भीर रुप से तब हुई जब बजट में से साधनों को बढाने की जरुरत पडी और यह केवल सार्वजनिक उपक्रमों के अल्पयंख्यकों के अशों को बेचकर किया गया था। हालांकि प्राथमिक उद्देश्य सरकारी आगम को बढाना था । लेकिन ऐसा भी विश्वास था कि निजी अशधारियों को लाकर सार्वजनिक उपक्रम का प्रबन्धन एक व्यापारिक सोच से आगे बढ सकता है।

आर्थिक सुधारों के सन्दर्भ में निजीकरण का तात्पर्य है कि निजी क्षेत्र द्वारा अधिक से अधिक ऐसे उद्योंगों का निर्माण करना स्थापना करना जो पहले से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे। निजीकरण सामान्य रुप में एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे निजी क्षेत्र का स्वामित्व तथा क्रियाकलाप सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में होने लगे, बढनें लगे। सार्वजनिक क्षेत्र की अकुशलता के कारण निजीकरण की आवश्यकता महसूस हुई। सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकतर उपक्रम हानि में चल रहे थे। इसके पीछे एक मुख्य कारण था कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रबन्धकों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं थी।

पहले दो निजीकरण जिसमें प्रबन्धन में बदलाव सम्मिलित था 1999/2000 में सम्पन्न हुआ और काफी विवाद को जन्म दिया। कम्पनी के कारीगर यह कहकर कि निजीकरण गैर कानूनी है मामले को न्यायालय तक ले गये, बहुत गैर सरकारी संस्थान भी सरकार के निजीकरण के फैसले का विरोध कर रहे थे इसके साथ विभिन्न अन्य संस्थान तथा लोग शामिल थे। लेकिन जब सिद्वान्त बनाया गया और कुछ उपक्रमों को निजी किया गया, तब सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ पेट्रोलियम क्षेत्र के उपक्रमों को निजी हाथों में सौंपने पर उपक्रम में आन्तरिक विरोध झेला।

दूसरे दौर के सुधारों की लागू करने में कुछ खास तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ा जो अपेक्षाकृत जटिल थी। यह भारत में तब दिखाई दिया जब आधारभूत क्षेत्र में निजीकरण को अनुमति दी गयी जैसे बिजली उत्पादन और वितरण, टैलीकम्यूनिकेशन, और सड़कें। 1990 इस बात का गवाह है कि भारत के आधारभूत क्षेत्र में एक लम्बी खाई थी तथा इस खाई को मात्र सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में निवश कर नही भरा जा सकता था। आधारभूत सेवायें पारम्परिक तौर से सरकारी स्वामित्व वाले पूर्तिकर्ता द्वारा दी जाती थी जिसमें काफी कम फीस ली जाती थी। इसलिए यह आवश्यक संसधान नहीं जुटा पाते थे। सरकार की राजकोषीय स्थिति ऐसी नही थी कि वह संसाधनों की कमी को पूरा कर सके इसलिए नीतिगत बदलाव आवश्यक थे ।

निजीकरण के लिए अपनाये गये प्रमाप (Measures Adopted for Privatization):

सरकार द्वारा निजीकरण के लिए निम्नांकित तरीके अपनाये गये–

1. सार्वजनिक क्षेत्र का सकुचन
2. वर्तमान सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश
3. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के अंशों की विक्री।

- **वैश्वीकरण (Globalization) :–**

वैश्वीकरण का अर्थ व्यापार एव पूंजी के मुक्त प्रवाह, मानवीय पूंजी का मुक्त प्रवाह की शर्तो के साथ एक देश की अर्थव्यवस्था का अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ एकीकरण अन्तर क्रियाओं से है। वैश्वीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध खुलेपन को बढावा देने, बढ रही आर्थिक अन्तर निर्भरता और विश्व अर्थव्यवस्था में व्यापक आर्थिक एकीकरण से है।

व्यवसाय एवं अर्थशास्त्र में विपणन विशेषज्ञ थिवोडोर लेविट (Thedore Levitt) ने पहली बार 1983 में वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग किया अपने लेख मे जिसका शीर्षक था "The Globalization of Markets" वैश्वीकरण ने अच्छी मात्रा में मुद्रा उपयोग में लायी है तथा इसमें विभिन्न स्टेकहोल्डर्स भी सम्मिलित है। यह हो चुका है तथा निरन्तर विश्व की अर्थव्यवस्था को आकार देने वाली एक प्रभावी ताकत रहेगा। इसका अस्त्तिव और महत्व काफी बदल गया है। एक सामान्य नीतिगत बदलाव जिसमें अधिक निर्भरता बाजार ताकतों पर है समकालीन वैश्वीकरण का एक मूल आधार है। धीरे–धीरे 1980 के अन्त काल में विश्व अर्थव्यवस्था में यादगार परावर्तन देखा गया, इसकी विशेषतायें बहुआयामी व्यापार में तीव्र वृद्धि, विश्व विनत प्रवाह (जिसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सम्मिलित है) थी, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के लम्बी अवधी की सम्वृद्वि दर बहुआयामी व्यापार से लगभग दो गुनी थी जो वापिस विश्व सकल घरेलु उत्पाद के वृद्धि दर की दो गुनी है, वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में बहुआगामी व्यापार तथा वित्तीय सेवाओं का क्षेत्र इतना विकसित तथा व्यापक रुप से वैश्विक स्थर पर एकीकृत है जिसका पहले कभी नहीं था, वैश्वीकरण की विशेषतायें निम्नवत हैं :–

- आधुनिक कन्टेनराइजेशन तथा सस्ती वायु सेवाओं (अन्तराष्ट्रीय स्तर पर) के कारण अन्तराष्ट्रीय व्यापार में परिवहन लागत लगातार कम हुई है।
- विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में तीव्र वृद्धि के साथ, ट्रान्सनेशनल उपक्रमों की गतिविधियों में बेहतरीन वृद्धि हुई है।
- वैश्वीकरण के जबाब मे सभी आकार की कम्पनियों के व्यवहार और उत्पादन संगठन में नारकीय बदलाव आया है। व्यापार के विल्कुल नये तरीके, तथा उत्पादन नेटवर्क इत्यादि।
- सूचना संचार तकनीक का नयापन वैश्वीकरण को चलाने वाला एक नया ड्राईवर है जो जिम्मेदार है विश्व अर्थव्यवस्था में जारी बदलाव का।
- वेल्यू चैन और सपलाई चैन प्रबन्धन मे नारकीय सुधार ने न केवल निर्माण प्रक्रियाओं को बदला है बल्कि इसके कारण उत्पादन लागतों में भी कमी आयी है।

- समकालीन वैश्वीकरण में वस्तुओं तथा सेवाओं की किस्मों में भी विस्तार हुआ है जो व्यापार के काबिल है।
- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जाने की सभी औद्योगिक व्यवसायिक घरानों में होड़ लगी है और राजनीतिक व्यवधान के कारण अब व्यापार के क्षेत्र में कोई व्यवधान नही है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं:.

- विदेशी निवेश की समता सीमा को बढ़ाना।
- भारतीय रुपये की अल्प परिवर्तनीयता (Partial convertibility)
- लम्बी अवधि की व्यापार नीति।
- आयात शुल्क में कमी।

12.4 आर्थिक सुधार – II के नीतिगत प्रमाप

निम्नलिखित मुख्य क्षेत्र ने जहॉ द्वितीय चरण के आर्थिक सुधारों को लागू किया गयाः

1. राजकोषीय नीति में सुधार (Fiscal Policy Reforms):

आर्थिक सुधारों मे क्रमों के आकलन से एक निष्कर्ष निकाला गया कि राजकोषीय स्थायित्व आर्थिक सुधारों की सफलता की पूर्व शर्त है भारतीय आर्थिक सुधारों का निर्माण बिल्कुल इसी सोच के साथ किया गया और इन कार्यक्रमों में राजकोषीय स्थायित्व को प्राथमिकता पर रखा गया श्वासक सुधारों के प्रारम्भिक चरण में जहां चालू खाते का धारा चरम पर था तथा मुद्रास्फीति दोहरे अंक पर थी।

80 के दशक से केन्द्र सरकार राजकोषीय घारा निरन्तर व्यापक होता रही और 1990–91 मे अपने चरम पर सकल घरेलु उत्पाद के 8.4 प्रतिशत पर पहुंच गया। राज्य सरकारों के धारे को जोड़ दिया जाय तो यह सरकारी राजकोषीय धारा 10 प्रतिशत था जो किसी भी दशा में उचित नहीं था। केन्द्र सरकार के राजकोषीय धारे में कमी आवश्यक थी ताकि सुधारों को लागू किया जा सके। सुधारों की प्रथम वर्ष में राजकोषीय धारे में अच्छी कमी देखने में आयी 1990–91 में धारा सकल घरेलु उत्पाद का 8.4 प्रतिशत था वह 1991–92 में 5.9 प्रतिशत तथा 92–93 मे कम होकर 5.7 प्रतिशत था। पहले दो सालों में प्राप्त की गयी राजकोषीय धारे में कमी सुनियोजित सुधारों के कारण हुई जिन्होने हमेशा के लिए राजकोषीय स्थिति को मजबूत किया। इसमें उदाहरण के तौर पर 1991–92 में निर्यात छूट रियायत को खत्म करना, 1992–93 में खाद पर रियायत का पुनरीकरण था। अन्य महत्वपूर्ण बदलावों में यह घोषणा थी कि सार्वजनिक क्षेत्र के हानि पर चलने वाले उपक्रमों के केन्द्र सरकार के बजट में कोई सहायता/ ऋण नही दिया जाएगा। राजकोषीय स्थिति के पहले दो सालों के सुधार/वृद्धि को विकास खर्चो में कटौती/प्रतिबन्ध लगाकर भी प्राप्त किया गया जिसमें सामाजिक तथा आर्थिक आधारभूत क्षेत्र के खर्चे सम्मिलित थे। इन सीमाओं के बाबजूद राजकोषीय स्थिति को मजबूत करने में पहले दो वर्षो मे जो सफलता मिली वह बेहतरीन थी जिसमें राजकोषीय घाटे को सकल उत्पाद के 2.7 प्रतिशत तक कम

किया गया। इन संदर्भ मे पहले दो सालों में सुधारों का प्रबन्धन उम्मीद के अनुसार हुआ।

राजकोषीय स्थिति को मजबूत करने की यह प्रक्रिया सुधारों के तीसरे वर्ष भी चलती रही थी जिसमें राजकोषीय घाटे को सकल घरेलु उत्पाद के 4.6 प्रतिशत तक कम करने की आशा थी। लेकिन तीसरे साल इस लक्ष्य में कुछ उतार चढाव आये अैर 1993–94 मे राजकोषीय घाटा सकल घरेलु उत्पाद का 4.3 प्रतिशत रहा। उतार–चढाव का एक हिस्सा (सकल घरेलु उत्पाद का लगभग 1 प्रतिशत) कर आगम में कमी के कारण था यदि इसकी तुलना बजट से की जाय। आयात शुल्क(Custom Duty) कर में खासी कमी करने तथा ढांचागत बदलावों में आयात पर उदारता बरतने के बाबजूद आयात अपेक्षाओं से बेहद कम रहा था परिणाम स्वरुप आयात शुल्क से प्राप्त आय बजट की तुलना में अत्यन्त कम रही। एक्साइज शुल्क से आय भी उम्मीद से काफी कम रही क्योकि औद्योगिक उत्पादन उतनी तेजी से नहीं हो पाया जितनी आशा थी। बांकी उतार–चढ़ाव (सकल घरेलु उत्पाद का लगभग 1.7 प्रतिशत) सरकारी खर्चो के लक्ष्यों से अधिक होने के कारण हुआ था। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के खाद्यान्नों की कीमत ये समायोजन में हुई देरी के कारण सरकार को ज्यादा खाद्यान्न कीमत रियायत देनी पड़ी जो अपेक्षा से अधिक थी और विकास के लिए किये गये खर्चे भी लक्ष्यों से काफी अधिक थे इसमें से कुछ इसलिए हुआ क्योकि इस समय राज्य के विकास के लिए बड़ी मात्रा में संसाधनों का प्रवाह सहायता के रुप हुआ। कुछ हद तक अत्यधिक खर्चो के कारण दबाब बढा, जो राजकोषीय स्थिति मजबूत होने के दो सालो तक बढा और इससे पीछा छुड़ाना मुश्किल था।

यह भी सत्य है कि 1993–94 मे जो अत्यधिक खर्च के कारण स्थिति थी वह 1994–95 मे कुछ हद तक सहनीय हो गयी क्योकि अर्थव्यवस्था संसाधनों के अल्प उपयोग से जूझ रही थी तथा समता का पूर्ण उपयोग नही हो रहा था। सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश, विशेषकर राज्यों द्वारा, को राजकोषीय कारणों से वापस ले लिया गया इसके साथ ही निजी क्षेत्र के निवेशों को भी एक सीमा तक रोका गया। क्योंकि निगमों द्वारा अपने निवेश योजनाओं को एक नये तथा प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण के अनुसार पुनसमायोजित किया जा रहा था। 1993–94 मे उम्मीद के विपरीत राजकोषीय घाटे का बढ़ जाना बेशक एक कारण था जिसके बारे में घ्यान देना था, विभिन्न विकाससील देशों का अनुभव अनेक उदाहरण पेश करता है। जिसमें सुधारों के तरीकों को समय से पहले ही राजकोषीय स्थितियों के कारण वापस ले लिया गया था। सरकार को इस समस्या का आभास था और उसने यह संकेत भी दिया कि 1993–94 में राजकोषीय स्थिति को मजबूत करने की प्रक्रिया से भटकाव एक कामचलाऊ रास्ता था और 1994–95 में पुरानी प्रक्रिया पर फिर लौटेगें। इसके अनुसार 1994–95 में राजकोषीय घाटे का लक्ष्य सकल घरेलु उत्पाद के 690 का था, जो 1993–94 की वास्तविक स्थिति के मुकाबले महत्वपूर्ण एवं सुधारात्मक थी।

1994–95 के बजट में एक और महत्वपूर्ण की पहल की घोषणा हुई कि सरकारी घाटे के मुद्रीकरण के विस्तार पर पूर्व निर्धारित सीमा होगी जो पहले नही होती थी जिससे सरकार रिजर्व बैंक से बिना किसी सीमा के उधार ले सकेगी। अब यह प्रस्ताव दिया गया कि रिजर्व बैंक से सरकार द्वारा लिये गये ऋण/उधार

की एक सीमा होगी जिस सीमा तक रिजर्व बैंक बाजार में ट्रेजरी बिलों को बेच सकेगा या नीलाम कर सकेगा।

सरकार ने विभिन्न राजकोषीय तरीके राजकोषीय घाटे को 1990–91 में सकल घरेलु उत्पादन के 8.4 प्रतिशत से 1996–97 में 5% और 2006–07 मे 3.7% तक कम करने के लिए अपनाये। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने सार्वजनिक खर्चो पर विभिन्न नियंत्रण लगाये और अपने कर से आय तथा अन्य आय को बढाने के लिए विभिन्न तरह से पहल की। अन्य तरीकों में राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा राजकोषीय मसलों पर अनुशासन का पालन करना, रियायतों में कमी, अधिक कुशल खर्च प्रणाली विकसित करना, राज्य सरकारों को राज्य उपक्रमों की उपयोगिता बढाने के लिए प्रोत्साहित करना, विशेषकर राज्य बिजली बोर्ड व राज्य परिवहन निगम, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से बजट में दिये जाने वाली सहायता खत्म करना और इनकी लाभदायकता तथा कुशलता बढ़ाना।

2. **मौद्रिक नीति सुधार (Monetary Policy Reforms):–**

मुद्रास्फीति के दबाब को कम करने और भुगतान शेष की स्थिति को सुधारने के लिए सरकार ने एक प्रतिबन्धित मौद्रिक नीति लागू की।

मौद्रिक नीति से हमारा तात्पर्य ऐसी नीति से जिसका सीधा सम्बन्ध मुद्रा की पूर्ति से है। मौद्रिक नीति से सम्बन्धित मुद्दे हैंः नीति के उद्देश्य व लक्ष्य, मौद्रिक नियंत्रण के उपकरण, इसकी कुशलता, क्रियान्यवयन, नीति के मध्यकालीन लक्ष्य इत्यादि। भारत के मौद्रिक नीति प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही ''नियंत्रित विस्तार (Controlled Expansion)'' की थी। यह एक ऐसी नीति थी जिसके द्वारा आर्थिक विकास के लिए वित्त तथा कीमत स्थिरता को प्राथमिकता दी। इसलिए रिजर्व बैंक ने मुद्रा के विस्तार तथा उधार में सहायता कर अर्थव्यवस्था को बढ़ाने में तथा मौद्रिक तथा अन्य नियंत्रण से मुद्रास्फीति को रोकने मे सहायक की।

आर्थिक सुधार, जिनसे अर्थव्यवस्था पर लम्बे समय के लिए प्रभाव पड़ने के उम्मीद थी, में राजकोषीय मौद्रिक, वित्तीय, औद्योगिक और आयात निर्यात नीति सुधार सम्मिलित थे। मौद्रिक तथा उधार नीति में सुधारों का लक्ष्य मौद्रिक विस्तार को कम करना और इसके द्वारा मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना था। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की पहल नरसिम्हम कमेटी की सिपारिशों के आधार पर की गई। वैधानिक तरलता अनुपात में कमी, नगद संचय अनुपात में कमी (CRR) और बैंकों की जमाओ पर व्याज दर निर्धारित करने में लचीलापन का अधिकार देने से आर्थिक सुधारों के प्रथम चरण की शुरुआत हुई थी। मुद्रा बाजार देश में मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन में मदद करते हैं। कुछ विशेष महत्वपूर्ण कारकों के कारण भारत में मुद्रा बाजार का विकास हुआ। प्रथम, इसने धीरे–धीरे नगद संचय अनुपात को मौद्रिक नीति के हथियार के रुप मे (CRR) को महत्वहीन बनाने की अनुमति दी, दूसरा, अप्रत्यक्ष मौद्रिक नियंत्रण के लिए उपकरणों का विकास जैसे बैंक दर, और लिम्विडिटी एडजस्टमेन्ट फेसिलिटि (Liquidity adjustment Facility), तृतीय, मुद्रा में विकास तथा विदेशी विनिमय बाजार द्वारा अक्सर मौद्रिक नीति का आकार निश्चित होता है। इसलिए आर्थिक सुधारों के बाद के समय में अर्थव्यवस्था नये कार्यक्रमों व नीतियों के साथ चलते हुए अपना पुनर्गठन करती है।

3. **कीमित नीति सुधार (Pricing Policy Reforms):–**

रियायतों (Subsidies) के लिए बजट में किये जाने वाले प्रावधानों ये कमी करने और एक अधिक लचीली कीमत तंत्र को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सरकार ने विभिन्न वस्तुओं पर प्रशासनिक कीमतों को बढाने और बाजार तंत्र के अनुसार कीमत निर्धारण के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को स्वतंत्रता देने का कार्य किया।

कीमत नीति के मुख्य क्षेत्र निम्नवत थेः—

- कृषि उत्पाद के लिए न्यूनतम सपोर्ट कीमत बनाये रखना।
- सस्ते खाद्यान्न के रुप में गरीबों के लिए खाद्यान्न सुरक्षा देना और सार्वजनिक प्रणाली की दुकानों द्वारा अन्य आवश्यक वस्तुऐं मुहैया कराना।
- खाद्यान्न तथा आवश्यक वस्तुओं के लिए धीरे—धीरे मुक्त बाजार व्यवस्थानुसार कीमत निर्धारण की अनुमति प्रदान करना।
- सीमेन्ट, स्टील तथा पूंजीगत वस्तुओं जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र पर कम नियंत्रण रखना तथा धीरे—धीरे इसे नियंत्रण से मुक्त करना।
- दवाओं की कीमतों पर सख्त नियंत्रण।
- दूर संचार के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करना।

देर से ही सही लेकिन पेट्रोलियम उत्पादों के लिए मुक्त बाजार कीमत निर्धारण व्यवस्था पर नीति लागू की गयी जिसमें उपक्रमों को यह अनुमति थी कि वह बिना सरकारी हस्तक्षेप के अपनी कीमतों का निर्धारण करसकते हैं।

नये कार्यकाल में, ओ0एम0सी0, इम्पोर्ट पेरिटी प्राइसिंग फोरमुल्ला के आधार पर तथा पेट्रोलियम सेक्टर रेगुलेटर की देखरेख में फुटकर कीमत निर्धारण के लिए मुक्त किया गया। घरेलु रिफाइनिंग और फुटकर क्षेत्र भी निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया। इसका उद्देश्य भारत में फुटकर क्षेत्र में महत्वपूर्ण निजी क्षेत्र की भागीदारी सुनिश्चित करना था जैसे रिलायन्स, एल0पी0जी0 तथा मिट्टी का तेल का खाना बनाने के ईधन के रुप में महत्वपूर्ण होने के कारण तथा भारत के गरीब वर्ग की सहायता करने के उद्देश्य से सरकारी बजट में रियायतों के प्रावधान को नये सिरे से किया गया हालांकि यह 2005 और 2007 तक खत्म होना था (लेकिन यह अभी भी समाप्त/खत्म नही हो पायी है)। नयी कीमत नीति काल में यह उम्मीद थी कि पेट्रोलियम उत्पादों के फुटकर कीमतों में उतार चढाव आयेगा।

4. **वाह्य नीति सुधार (External Policy Reforms):—**

सरकार द्वारा भुगतान शेष घाटे को 1991—92 में सकल घरेलु उत्पाद का 2.1% और 1992—93 में सकल घरेलु उत्पाद के 2% तक कम करने के उद्देश्य से स्थायीकरण (Stabilization) और आयात कम्प्रेशन कार्यक्रम लागू किया। निम्नांकित बिन्दु भारत द्वारा विदेशी विनिमय प्रबन्ध का इतिहास दर्शाते हैं:

- 1947 (जब भारत अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य बना) — रुपये तथा पाउंड से संबध ₹1=1s, 6d 28 अक्टूबर, 1945 की दर।
- 18 सितम्बर 1949: पाउंड का अवमूल्यन हुआ तथा रुपये ने पाउण्ड के बराबर दर प्राप्त की।
- 6 जून 1966: डालर का अवमूल्यन किया गया, ₹ 4.76 = $1, अवमूल्यन के बाद, ₹ 7.50 = $1 (57.5%).

- 18 नवम्बर, 1967: यू0 के0 ने पाउण्ड का अवमूल्यन किया तथा भारत ने अवमूल्यन नही किया।
- अगस्त 1971: रुपये को सोने तथा डालर से पूरित किया। यह दौर अन्तराष्ट्रीय वित्तीय संकट का था।
- 18 दिसम्बर 1971: डालर का अवमूल्यन किया गया।
- 20 दिसम्बर 1971: रुपये को पाउण्ड स्टरलिंग के साथ आँका गया।
- 1971—79: भारत की आयात प्रतिस्थापन नीति के कारण रुपया अधिमूल्यन का शिकार हुआ ।
- 23 जून 1972: भारत ने पाउण्ड के साथ स्थिर विनिमय दर बनायी रखी।
- 1975: भारत ने रुपये को मुद्रा टोकरी (मुख्य व्यापारिक साझेदारी की) से समबन्ध किया। यद्यपि इस टोकरी मे समय समय पर बदलाव हुऐ लेकिन यह सम्बन्ध 1991के अवमूल्यन तक बना रहा।
- जुलाई 1991: रुपये का 18—19 प्रतिशत तक अवमूल्यन किया गया।
- मार्च 1992: दोहरी विनिमय दर उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्धन प्रणाली अस्तित्व मे आयी।
- मार्च 1993: एक ही विनिमय दर लागू हुई, $1= Rs. 31.37
- 1993—94: रुपये को व्यापार के लिए विनिमय हेतु मुक्त किया गया लेकिन निवेश के लिए नहीं।

5. **औद्योगिक नीति सुधार (Industrial Policy Reforms):—**

भारत सरकार ने अपने औद्योगिक क्षेत्र में आवश्यक सुधार करने के उद्देश्य से 24 जुलाई 1991 को नई औद्योगिक नीति अपनाई। इस नीति लिये गये विभिन्न तरीकों में निम्न सम्मिलित हैं:—(अ) 18 उद्योगों को जिनमें रक्षा, रणनीति, और पर्यावरण सम्मिलित थे अन्य सभी उद्योगों के लिए अनुमति प्रणाली को खत्म करना (ब) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का आरक्षण 17 उद्योगों से कम कर 8 उद्योगों तक सीमित रखना तथा निजी क्षेत्र के लिए निवेश के रास्ते खोलना (स) एम0आर0टी0पी0 कम्पनियों के निवेश के लिए प्रवेश से पहले की जॉच खत्म करना (द) लोकेशन नीति में उदारीकरण (य) स्वदेशी को प्रोत्साहन देने वाली नीतियों को बढ़ावा देने वाले निर्माण कार्यक्रमों को खत्म करना।

6. **विदेश निवेश नीति सुधार (Foreign Investment Policy Reforms)**

1991 के नई औद्योगिक नीति में विदेशी तकनीक, विपणन विशेषज्ञता तथा आधुनिक प्रबन्ध तकनीक के साथ विदेशी निवेश के प्रवाह को बढाया गया। इसके अनुसार 34 प्राथमिकता वाले उद्योगों की पहचान कर इनमें 51 प्रतिशत तक बिना अनुमति लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी दी गयी। विदेशी तकनीक समझोतों के संदर्भ में प्राथमिकता वाले क्षेत्र में देशी विक्रि के 5 प्रंतिशत तक, निर्यात आय के 8 प्रतिशत तक या अधिकतम 1 करोड़ तक स्वअनुमति को लागू किया गया। भारतीय वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से विदेशी व्यापारिक कम्पनियों को निर्यात गतिविधियों में 51 प्रतिशत तक विदेशी समता पूंजी निवेश की अनुमति प्रदान की गयी।

7. **सार्वजनिक क्षेत्र नीति सुधार (Public Sector Policy Reforms):–** सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकतर उपक्रमों द्वारा दिखाये जा रहे हानि को ध्यान में रखते हुए सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र में सुधारों के लिए विभिन्न तरीके अपनाने का निर्णय लिया। इन नीतिगत तरीकों में (अ) सार्वजनिक क्षेत्र के आरक्षण को 17 उद्योगो से घटाकर 8 उद्योगो तक किया गया (ब) सार्वजनिक क्षेत्र के सामाजिक क्षेत्र में किये गये ऐसे निवेशों का पुनर्राक्षण करना जो इतने महत्वपूर्ण नही थे तथा जहा निजी क्षेत्र का उपयोग अधिक लाभदायक हो सकता था (स) ऐसे उपक्रम जो लगातार लाभ प्राप्त कर रहे थे उन्हें एम0ओ0डी0 के माध्यम से अधिक स्वायत्तता प्रदान करना (द) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की बजट द्वारा दी जाने वाली सहायता में कमी करना (य) सार्वजनिक क्षेत्र के चयनित उपक्रमों के अशों का भाग बेचकर तथा निजी क्षेत्र को आमन्त्रित कर प्रतिस्पर्घात्मक वातावरण तैयार करना (र) सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों के औद्योगिक एवं वित्तीय पुनगर्ठन (Industrial and Financial Reconstruction):– को युक्तिपूर्ण बनाने के लिए सरकार ने इस क्षेत्र में आरक्षण घटाकर केवल आठ उद्योगों तक सीमित रखा। सरकार ने विदेशी कम्पनियों के साथ संयुक्त उपक्रमों को भी अनुमति प्रदान की । सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के 20 प्रतिशत समता अंशों में निवेश को निजी क्षेत्र के चयनित उपक्रमों मे निवेश करने का निर्णय लिया। इसके अनुसार 1991–92 और 1992–93 में क्रमशः रुपये 3038 और 1866 करोड़ रुपया सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश (Disinvestment) किया गया। 1993 –94 में सरकार ने 229 करोड़ रुपया संचालित किया जबकि इसका लक्ष्य 3500 करोड़ रुपया था और 1994.95 में सरकार का लक्ष्य सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों का विनिवेश कर 4000 करोड़ रुपया लाना था तथा इसे 5237 हजार करोड़ रुपया प्राप्त हुआ, एक राष्ट्रीय नवीनीकरण ओस (National Renewal Furd) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य वर्कस को परीक्षण, पुनः नियुक्ति रोजगार तथा स्वेच्छ से लिए गए सेवानिवृति के लाभ प्रदान करना था।

8. **व्यापार नीति सुधार (Trade Policy Reforms):–**

वैश्वीकरण के संदर्भ में और भारत की अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अन्तर सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए अत्याधिक नियत्रण को कम करना तथा देशी उपक्रमों को अत्यधिक सुरक्षा का कम करना आवश्यक था। यह समय था एक मजबूत निर्यात क्षेत्र के विकास तथा कीमत आधारित प्रणाली के दौर का। इसका मुख्य उद्देश्य था धीरे–धीरे अनुमति प्रथा को खत्म करना, सख्यात्मक/भावात्मक प्रविपन्घों को कम करना। खत्म करना (विशेषकर पूजीगत वस्तुओं व कच्चे माल का आयात पर) ताकि इन वस्तुओं के लिए धीरे–धीरे सामान्य अनुमति से काम चल सके। नई नीति मे ऐसे प्रावधानों को सम्मिलित किया गया जिससे कुछ क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार खत्म हो सके विशेषकर अधिकतर निर्यात वस्तुओं के संदर्भ में और कुछ आयात वस्तुओं के संदर्भ में थी। इसलिए सरकार ने 1992–97 व 1997–2002 में आने वाले पॉच वर्षो के लिए किया और 13 अप्रैल 1998 को सरकार ने आयात–निर्यात ने फिर सुधार किये तथा इसके साथ ही सरकार ने वर्ष 2000–01 और 2001–2002 में अपनी वार्षिक आयात–निर्यात नीति की घोषणा की। 31 मार्च 2002 को सरकार ने नयी आयात निर्यात नीति की घोषणा की

जिसका कार्यकाल 2002–07 था और इसका उद्देश्य 2007 तक विश्व निर्यात का 1% भाग अंश प्राप्त करना था।

9. **समाजिक नीति सुधार (Social Policy Reforms):–**

सामाजिक नीति का तात्पर्य किसी एक नीति से नही बल्कि नीतियों के एक जाल/समूह से है जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रुप से अर्थव्यवस्था के विकास से होता है। इसमें आर्थिक गतिविधियों की सामाजिक व्यवस्था/स्थिति पर नजर रखने वाले संस्थान, कार्यक्रम तथा नीतियां सम्मिलित हैं। विस्तृत रुप से इसमें पूंजी तथा श्रम के सामाजिक सम्बन्धों को भी सम्मिलित किया जाता है। विकासशील देशों मे इसे विकास परियोजनाओं के प्रबन्धन के लिए पूंजी तथा श्रम के सामाजिक सम्बन्धों के रुप में समझा जाता है। लेकिन बीसबी शताब्दी के अन्त के पास इसे ऐसी परियोजनाओं के रुप में परिभाषित किया गया जिनका उद्देश्य आर्थिक विकास तथा सरकारी एजेन्सियों के माध्यम से नागरिकों का भौतिक कल्याण करना था। बहुत से विकासशील देशों जिसमें भारत भी सम्मिलित है यह परियोजना अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में पूर्णतः सफल नही हो पायी। गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समायोजन प्रक्रिया के तहत सरकार ने प्राथमिकता शिक्षा, ग्रामीणों के पीने के पानी की पूर्ति, छोटे तथा सीमान्त किसानों की सहायता, अनूसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लिए कल्याण कार्यक्रमों के लिए एक बड़ी राशि के आवहन का निर्णय लिया। महिलाओं व बच्चों के कल्याण कार्यक्रम और राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (National Social Assistance Programme) के तहत मकानों का निर्माण, वृद्धा अवस्था पेंशन, मातृत्व लाभ, सामूहिक बीमा के रुप में भी सरकार ने गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले नागरिकों के लिए कार्यक्रम चलाये।

12.5 भारतीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक सुधारो में पर्दशन

31 मार्च 2013 को आर्थिक आर्थिक सुधारों द्वारा 22 वर्ष पूरे कर लिये गये। सुधारों के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की उपलब्धियां निम्नवत हैं:

1. **स्कल घरेलु उत्पाद में सम्वृद्धि (Growth of GDP):–**

1990–91 में सकल घरेलु उत्पाद मे फेक्टर लागत पर वार्षिक वृद्धि 5.3 प्रतिशत थी जो 2000–01 मे कम होकर 4.4 प्रतिशत और 2006–07 ये फिर बढकर 9.6 प्रतिशत हो गयी। इसी काल में कृषि क्षेत्र में वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत, 0. 0 प्रतिशत और 4 प्रतिशत थी, औद्योगिक सम्वृद्धि दर 6.7 प्रतिशत, 6.8 प्रतिशत और 11.5 प्रंतिशत, तथा सेवाओं के क्षेत्र में 7.7 प्रतिशत, 5.7 प्रतिशत और 11.2 प्रतिशत क्रमशः रही थी। हाल के वर्षो में, 2008–09 में अन्तराष्ट्रीय वित्तीय संकट के कारण मन्दी के बाबजूद भारतीय अर्थव्यवस्था ने राजकोषीय तथा मौद्रिक प्रेरकों के प्रति मजबूती से जबाब दिया और 2009–10 व 2010–11 में क्रमशः 8.6 प्रतिशत तथा 9.3 प्रतिशत सम्वृद्धि दर प्राप्त की। हालांकि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियां पायी गयी, तथा भारतीय रिजर्व बैंक ने मार्च 2010 में दरों का बढाया। बढी हुई दरों तथा नीतिगत अवरोधों से निवेश पर विपरीत प्रभाव पड़ा और आने वाले अगले दे वर्षो में 2011–12, 2012–13 में सम्वृद्धि दर धीमी होकर क्रमशः 6.2 प्रतिशत और 5 प्रतिशत थी। इसके बाबजूद 2012–13 मे खत्म होने वाले दशक में फेक्टर लागत पर कम्पाउण्ड सम्वृद्धि दर (CAGR) सकल घरेलु उत्पाद (GDP) की 7.9 % थी।

2. **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment):–**

आर्थिक सुधारों से प्राप्त लाभ/उपलब्धि का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। भारतीय अर्थव्यवस्था ने आर्थिक सुधारों के दौरान निवेश के लिए विश्व को काफी आर्कषित किया तथा इस कारण भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment) तथा विदेशी संस्थागत निवेश (Foreign Institutional Investment) दोनो बढ़े। 2002 के दशक में इन दोनों तरह के निवेश प्रवाह में अच्छी वृद्धि हुई। वित्त मंत्रालय के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में वर्ष 2001–02 में लगभग 4 विलियन यू0एस0 डालर के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आर्कषित किया। इसमें से अधिकतर निवेश ऊर्जा, दूरसंचार जैसे आधारभूत क्षेत्रों में हुआ था।

आर्थिक सुधारों विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में तेजी से वृद्धि तथा विदेशी विनिमय दर का नेतृत्व किया। 1990–91 में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश बढकर 107 मिलयन डालर हुआ जो 2006–07 तक 220.18 मिलियन डालर हो गया था। 1990–91 में भारत मे विदेशी विनिमय संचय (Foreign Exchange Reserve) 11,416 करोड़ था जो 2006–07 में बढकर 8,68,222 करोड रुपये हो गया था। कुल निर्यात के कम होने के कारण भारत के भुगतान शेष पर दबाब पड़ा, कुल पूंजी प्रवाह कम होकर 2012–13 में 40 विलियन डालर रह गया था जो 2011–12 में 43.5 विलियन डालर था। भारत में कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश कम हुआ या घटा लेकिन कुछ पोर्टफोलियो(Portfolio) प्रवाह जिसमें विदेशी संस्थागत निवेश सम्मिलित था बढा, प्रारम्भिक सुझाव के अनुसार तीसरे क्वाटर में 9.9 विलियन डालर के आन्तरिक प्रवाह का अनुमान था जो दूसरे क्वाटर मे केवल 5.8 विलियन डालर था।

3. **रोजगार पर प्रभाव (Impact On Employment):–**

रोजगार के क्षेत्र मे आर्थिक सुधारों के प्रयासों से भी पर्याप्त मात्रा में रोजगार अवसरों का भृजन नही किया जा सका, और दैनिक श्रमिकों की संख्या 1990–91 में 431 हजार थी यह संख्या 2003–04 में कम होकर 7,870 हजार हो गयी थी, यह परिणाम चयनित उद्योगों का था। रोजगार की जो वृद्ध तस्वीर आज है वह भी भविष्य में सुधार करने के संकेत देती है रोजगार की आज के हलात के कुछ बिन्दु निम्नवत हैं:–

- 1999–2000 में 7.32 प्रतिशत श्रमिक बेरोजगार थे। कुल मिलाकर बेरोजगारों की संख्या 16.58 मिलियन थी। इन बेरोजगारों में वह संख्या भी सम्मिलित थी जिनके श्रम समय का पूर्ण उपयोग नही हो रहा था या अल्प उपयोग हो रहा था लेकिन इसमें उन अल्प रोजगारों वाले श्रमिकों को सम्मिलित नही किया गया जो आप और उत्पादकता के निम्न स्तर पर कार्यरत थे। रोजगार वाली जनसंख्या में गरीबों का भाग इतना अधिक था जितना देश की कुल जनसंख्या में था, यह इस बात की तरफ इशारा करता था कि रोजगार भृजन निम्न तथा उच्च –निम्न स्तर पर अधिक था।
- कुल रोजगार का केलव 8 प्रतिशत रोजगार संगठित क्षेत्र में तथा लगभग 90 प्रतिशत से अधिक असंगठित क्षेत्र की गतिविधियों से उत्पन्न हो रहा था इसमें अधिकतर श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा लोगों से बाहर रखा गया था इन्हें सीमित मात्रा में संस्थागत तथा अन्य सहायता मिल पाती थी।

- उपस्थित श्रमिकों की कुशलता तथा शिक्षा का स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का था।

4. **कृषि पर प्रभाव (Impact on Agriculture):–**

आर्थिक सुधार कृपि के क्षेत्र मे भी उम्मीद के अनुरुप सफल नहीं थे बल्कि इस क्षेत्र की विकास दर कम हो रही थी। कृषि के क्षेत्र मे सार्वजनिक निवेश सुधारों के दौर मे कम हो गये खासकर आधारभूत क्षेत्र में जिसमे सिचाई, ऊर्जा, सड़क, बाजार सम्पर्क तथा रिसर्च सम्मिलित थे। खाद में रियायत में कमी ने उत्पादन लागतों को और बढा दिया जिससे छोटे तथा सीमान्त किसानों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसके बाद विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व से कृषि क्षेत्र को विभिन्न नीतिगत बदलावों का सामना करना पड़ा जैसे उत्पादन में आयात शुल्क की कमी, न्यूनतक सर्पोट कीमत का खत्म होना, और कृषि उत्पादों से मात्रात्मक प्रतिबन्धों को खत्म करना।इन सब बदलावों से भारतीय किसान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि अब इन्हें अन्तराष्ट्रीय स्तर के प्रतिस्पर्धा का सामना करना था। इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र की निर्यात नीति के कारण किसानों ने देशी आवश्यकताओं के अनुरुप उत्पादन की बजाय विदेशी बाजारों के लिए उत्पादन प्रारम्भ कर दिया जिससे खाद्यान्न उत्पादन में कमी का संकट सामने था। इससे खाद्यान्नों की कीमत पर प्रभाव पडा और आज वास्तव में ऐसा हो रहा है।

5. **उद्योगों पर प्रभाव (Impact on Industry):–**

सुधारों के दौर में भारतीय उद्योगों नेचयनित औद्योगिक क्षेत्रों और नालेज तथा कौशल केन्द्रित सेवाओं में अच्छी सम्वृद्धि की। इन चयनित औद्योगिक क्षेत्रों ने बाजार प्रतिरूपर्धा, मर्जर, एम्वजिशन, टेक ओवर, तकनीकी तथा प्रबन्धन के क्षेत्र में खुद का पुनर्गठन का अनुभव किया। यह सब अन्तराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में वृद्धि का कारण बना जिसमें खासकर आटो कम्पोनेन्ट, दूरसंचार, सॉफ्टवेयर, फार्मसिटिकल्म, बायोटैक्नोलाजी, रिसर्च और डेवलेपमेन्ट और विशेषज्ञों जैसे डाक्टर्स, वैज्ञानिक, तकनीशियन, नर्स, अध्यापन, मैनेजर्स आदि द्वारा दी जाने वाली सेवाये सम्मिलित थी। इसके कारण भारतीय उपभोक्ताओं को लाभ भी हुआ क्योंकि अव बेहतर किस्म की तथा कम कीमत की वस्तुऐं उपलब्ध थी।

आर्थिक सुधारों ने औद्योगिक क्षेत्र में भी सम्पूर्ण रुप से उत्साहवर्धक परिणाम नही दिये। औद्योगिक सम्वृद्धि कम होने लगी। यह औद्योगिक उत्पादन की माग मे विभिन्न कारणों से होने वाली कमी के कारण हुआ था। यह कारण थे सस्ता आयात, आधारभूत क्षेत्र में अप्रयाप्त निवेश (खासकर ऊर्जा मे) इत्यादि। वैश्वीकरण के कारण विकासशील देश अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित देशों से वस्तुओ तथा पूंजी के प्रवाह हेतू खोलने के लिए मजबूर थे जिससे इन देशों की अपनी उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड रहा था। वैश्वीकरण के कारण वस्तुओं सेवाओं तथा पूंजी के मुक्त प्रवाह से विकासशील देशों के अपने उद्योगों तथा रोजगार अवसरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके बाउजूद भी विकासशील देशों जैसे भारत की पकड़ विभिन्न व्यवधानों (आयात शुल्क के अतिरिक्त)विकसित देशों के बाजारों में नही बन पायी। जैसे वुनकर तथा कपड़ा उद्योग से भारत की ओर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लिये गये थे लेकिन अमेरिका ने इस क्षेत्र मे अपने मात्रात्मक प्रतिबन्धों को, खत्म नही किया जिससे भारत का निर्यात कम हुआ।

6. **विनिवेश पर प्रभाव (Impact on Disinvestment):–**

भारत मे सरकार द्वारा प्रतिवर्ष सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। उदाहरणार्थः 1991–92 का लक्ष्य विनिवेश से 2500 करोड़ रुपये प्राप्त करने का था लेकिन सरकार को 3038 करोड़ रुपये विनिवेश से प्राप्त हुए जो लक्ष्य से अधिक था। वर्ष 2004–05 मे यह लक्ष्य 4000 करोड़ का था लेकिन केवल 2765 करोड़ रुपया प्राप्त हुआ। आलोचकों का विचार है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का मूल्य वास्तविक से कम आंका जाता है और निजी क्षेत्र के हाथों मे इसे बेच दिया जाता है। इससे सरकार को अच्छी मात्रा मे हानि होती है। यह भी कहा गया कि सार्वजनिक क्षेत्र से विनिवेश से प्राप्त धन द्वारा सरकार की सरकारी आगम मे कमी को पूरा किया जायेगा न कि सार्वजनिक क्षेत्र के विकास तथा सामाजिक आधारभूत सेवाओं के विस्तार के लिए इसका प्रयोग किया जायेगा।

7. **राजकोषीय नीति पर प्रभाव (Impact on Fiscal Policy):–**

भारतीय राजकोषीय नीति पर भी आर्थिक सुधारों का उत्साहवर्धक प्रभाव नही पड़ा। आर्थिक सुधारों ने सामाजिक क्षेत्र में सार्वजनिक खर्चो की सीमा निर्धारित कर दी। आर्थिक सुधारों का उद्देश्य अधिक आगम प्राप्त करना और कर दर मे कमी से कर प्राप्ति का बढाना था लेकिन इससे कर आगम में वृद्धि नही हुई।सरकार की सुधार नीतियों जैसे आयात शुल्क मे कमी ने आयात शुल्क से मिलने वाली आय को कम किया। विदेशी निवेशकों को कर प्रोत्साहन दिये गये जिससे विदेशी निवेश को आकर्षित किया जा सके। यह कदम भी करों से होने वाली आय को कम करने वाला ही साबित हुआ। इस सब ने विकास और कल्याण खर्चो पर प्रतिकूल प्रभाव डाला।

आर्थिक सुधार 1991 मे प्रारम्भ किये गये थे। इसके बाद लगभग 23 वर्ष का समय बीत गया इस अवधि में, आर्थिक सुधारों के कई उद्देश्यों को प्राप्त किया गया हालाकि इन सुधारों द्वारा गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार भृजन का उद्देश्य प्राप्त नही किया गया। आर्थिक सुधारों को लागू करने के पीछे का विचार भारतीय समाज में गहरी जडे पसारे असमानता थी लेकिन नई आर्थिक नीति ने इस असमानता को और भी अधिक गहरा कर दिया। इसने आय को बढाया और उपभोग की किस्म को लेकिन सिर्फ समाज के एक वर्ग के लिए। सेवाओं के क्षेत्र में भी सम्वृद्धि केवल कुछ ही क्षेत्रों में केन्द्रित रही जैसे दूरसंचार, सूचना तकनीक, वित्त, मनोरंजन, परिवहन, हस्पताल सेवायें, रियल स्टेट जबकि मूलभूत क्षेत्र जैसे कृषि तथा उद्योगों मे विकास उम्मीदानुसार नही हुआ जो लाखों लोगों को आजीविका देते थें। इसलिए यह आवश्यक था कि इन सुधारों की नीतियों को और बेहतर तथा परिणात्मक बनाया जाना चाहिए था जिससे गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार भृजन में बेहतर परिणाम प्राप्त हो सकें।

12.6 आर्थिक सुधारों के पक्ष में तर्क

1. भारत मे मजदूरी निर्धारण का उत्पादकता से सम्बन्ध नही था तथा भारत में श्रम बाजार दोहरे लक्षणों से सुशोभित था एक और संगठित क्षेत्र के भ्रमिक सुरक्षा तथा ऊची मजदूरी दरों का आनन्द ले रहे थे वही दूसरी तरफ असंगठित क्षेत्र के भ्रमिक शोषित, असुरक्षित तथा गरीबी झेल रहे थे। इसलिए इस संदर्भ में आर्थिक सुधारों की नीतियों में इन स्थितियों को

सुधारने के लिए परिवर्तित करना आवश्यक था, इसलिए आर्थिक सुधारों द्वारा बाजार तंत्र का उपयोग किया गया।

2. आय के नीची दर ऊची ओवरहेड लागत, ओवर स्टाफिंग, कच्चे माल की बर्बादी गलत कीमत निर्धारण और संगठित मजदूरों में कम कार्य सस्कृति के कारण भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम धीमी/नीची उत्पादकता की समस्या झेल रहे थे। सार्वजनिक क्षेत्र के इन उद्यमों की समस्या के समाधान के लिए, आर्थिक सुधारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।
3. रियायत,व्याज भुगतान तथा रक्षा पर अधिक खर्च के कारण देश अत्यधिक अनियोजित खर्चो से जूझ रहा था आर्थिक सुधारों ने रियायतों को कम कर खासकर खाद्यान्न, खाद, निर्यात, उच्चशिक्षा इन अनियोजित खर्चो को कम करने का कार्य किया।
4. मौजूदा आर्थिक सुधारों द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के प्रवाह को बढ़ाने का कार्य किया गया जो देश की आधुनिकीककरण तथा उत्पादकता बढाने का कार्य करेगा।
5. देश घरेलु उधार और राजकोषीय घाटे पर निर्भर था जिससे देश पर ऋण की बोझ बढ रहा था तथा मुद्रास्फीति की दर में भी निरन्तर वृद्धि हो रही थी आर्थिक सुधारों ने सझमदार प्रयास कर देशी उधार तथा राजकोषीय घाटे पर निर्भरता खत्म की।
6. भारत ने निरन्तर अपने बजट में राजकोषीय घाटे का प्रावधान किया जिससे देश पर मुद्रास्फीति का दबाब बना रहा वर्तमान आर्थिक सुधारों ने कुछ तरह के राजकोषीय घाटों को स्थिर रख तथा कम कर मुद्रास्फीति को नियंत्रण में रखने का कार्य किया है।
7. नये आर्थिक सुधारों ने भारतीय औद्योगिक क्षेत्र को अनावश्यक नियमों तथा सरकारी नियंत्रण बचाया है।
8. कर प्रणाली के सरलीकरण तथा मुक्तिपूर्ण बनाने में आर्थिक सुधारों का महत्वपूर्ण योगदान है।
9. आर्थिक सुधारों के लागू होने से विदेशी विनिमय का प्रवाह अधिक कानूनी तरीके से सम्भव हुआ है।

12.7 आर्थिक सुधारों के विपक्ष में तर्क

1. बजट में प्रावधनित राजकोषीय घाटा नियत्रित नही हो सका।
2. रियायतों में कमी से प्रारम्भिक वर्षो में सफलता दिखाई दी लेकिन बाद के वर्षो में यह नहीं प्राप्त हो पायी, सरकार गरीबों के लिए, क्रीमीलेयर के लिए तथा शहरी मध्यम वर्ग के लिए खाद्यान्न रियायत की नयी और बेहतर नीति बनाने में असफल नही।
3. बेरोजगारी की समस्या का समाधान आर्थिक सुधारों द्वारा नहीं किया जा सका। सार्वजनिक क्षेत्र का पहलू था कि आवश्यकता से अधिक रोजगार दिया गया था इसलिए अब छटनी करनी होगी तथा निजी क्षेत्र का पहलू था कि आधुनिकीकरण और उच्च तकनीकी प्रयोग से श्रमिकों की कम आवश्यकता है अर्थात अब या तो स्वेच्छिक सेवानिवृत्ति होगी या निकाल दिया जायेगा।

4. आलोचकों का मानना था कि नई आर्थिक नीति ने विश्व बैंक तथा अन्र्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सामने आत्मसमर्पण कर दिया है और सरकार ने अपनी गरिमा इन सस्थानों से ऋण लेने के लिए दांव पर लगी दी है।
5. यह देखा गया कि भारत में आर्थिक सुधारों के सम्बन्ध में तीन कमजोर कडियाँ थी । प्रथम सरकार सगठित क्षेत्र के श्रमिकों को सुधारों के लागू करने के किसी भी स्तर पर विश्वास में लेने से असफल रही। इसलिए आर्थिक सुधारों को सगठित क्षेत्र के श्रमिकों का सहयोग नही मिला। दूसरा यहा सिर्फ दो क्षेत्र है कृषि तथा आधारभूत सेवायें जो श्रमिकों के साथ मिलकर आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में हमेशा मुश्किलें खड़ी करते रहे। इसलिए सरकार को इन कमजोर कड़ियों को मजबूत करने का कार्य करना चाहिए जिससे श्रमिक, कृषि तथा आधारभूत सेवायें सम्मिलित है ताकि आर्थिक सुधारों का अधिकाधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।

12.8 सारांश

आर्थिक सुधारों से तात्पर्य उन सभी तरीकों से है जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था को कुशल, प्रतिस्पर्धी तथा विकसित बनाना है। इस युनिट में आर्थिक सुधारों के दूसरे चरण के विभिन्न पहलू है। इसमें उद्देश्य, विशेषतायें, अपनाये गये तरीके, अर्थव्यवस्था पर प्रभाव और सुधारों के द्वितीय चरण में भारतीय अर्थव्यवस्था सम्मिलित है। आर्थिक सुधार किसी भी अर्थव्यवस्था में सुधार के व्यायकता से प्रयोगा किये जाते है लेकिन इसका यह अर्थ नही कि सभी आर्थिक निर्णय बाजार तंत्र पर छोड दिये जायें। इस तरह के निर्णयों से समता/समानता के साथ उद्देश्यों की प्राप्ति में अडचन आ सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्राथमिकताओं का निर्धारण कर कुशलता और समानता पर ध्यान केन्द्रित किया जाय।

12.9 महत्वपूर्ण शब्दावली

आर्थिक सुधार : आर्थिक सुधारों में वह सभी प्रमापों को सम्मिलित किया जाता है जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था को कुशल, प्रतिस्पर्धी तथा विकसित बनाना है।

उदारीकरण— इसका तात्पर्य सरकार द्वारा लगाये गये प्रत्यक्ष और वास्तविक नियंत्रणों से अर्थव्यवस्था को मुक्त करना है।

निजीकरण— निजीकरण का अर्थ है कि सामान्य प्रक्रिया मे स्वामित्व निजी क्षेत्र में रहने देना तथा सार्वजनिक क्षेत्र का प्रवन्धन इसे देना।

राजकोषीय सुधार :— राजकोषीय सुधारो का तात्पर्य उत्पादन तथा आर्थिक कल्याण को प्रभावित किये बिना सरकारी आगम मे वृद्धि करना तथा सरकारी खर्चों में कमी करना है। इसका मुख्य उद्देश्य सरकार का राजकोषीय घाटा कम करना है।

वैश्वीकरण:— इसका तात्पर्य व्यापार, पूंजी एवं मानवीय संसाधनों का अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के दोनो तरफ मुक्त प्रवाह से किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्थाओं से अन्तर क्रियाओं करने से है।

वित्तीय सुधार :— इन सुधारों का तात्पर्य मौद्रिक तथा बैंकिग नीतियों में सुधार से है। वित्तीय सुधारों का मुख्य उद्देश्य क्षेत्र को आसानी से कम व्याज दर पर ऋण/उधार उपलब्ध करना है।

कर सुधारः– 1991 से यहां व्यक्तिगत आाम पर करो की दर को निरन्तर कम किया गया है, कर सुधारों में विभिन्न प्रकार के करों को सम्मिलित किया गया जिसका प्रभाव सरकार के साथ–साथ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों मे स्पष्ट देखा गया।

12.10 बोध प्रश्न

1. 1993 में दोहरी विनिमय दर प्रणाली का स्थान एकल विनिमय दर प्रणाली ने ले लिया जो पूरी तरह से .... द्वारा निधारित होती थी ।
2. .... की अकुशलता के कारण निजीकरण की आवश्यकता महसूस हुई।
3. .... का अर्थ व्यापार एव पूंजी के मुक्त प्रवाह, मानवीय पूंजी का मुक्त प्रवाह की शर्तो के साथ एक देश की अर्थव्यवस्था का अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ एकीकरण अन्तर क्रियाओं से है।
4. ....से हमारा तात्पर्य ऐसी नीति से जिसका सीधा सम्बन्ध मुद्रा की पूर्ति से है।

12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बाजार ताकतों 2. सार्वजनिक क्षेत्र 3. वैश्वीकरण 4. मौद्रिक नीति

12.12 स्वपरख प्रश्न

1. जी0डी0पी0 (G D P) तथा एफ0डी0आई0 (F D I) से आप क्या समझते हैं।
2. आर्थिक सुधार का रोजगार, कृषि और उद्योगों पर क्या प्रभाव पडा ?
3. आर्थिक सुधारों के दौर मे भारतीय अर्थव्यवस्था की क्या स्थिति थी ?
4. आर्थिक सुधार-II के पक्ष मे तर्क दें ।
5. आर्थिक सुधार-II के विपक्ष मे तर्क दें ।
6. आर्थिक सुधारो से आप क्या समझते हैं ?
7. भारतीय अर्थव्यवस्था मे उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की भूमिका पर प्रकाश डालें।
8. विभिन्न प्रकार के आर्थिक सुधारों की व्याख्या कीजिए।
9. आर्थिक सुधार-II के उददेश्यों की व्याख्या कीजिए।

12.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Chanderashekhar, C.P., Aspects of Growth and Structural Change in Indian Economy, Economic and Political Weekly, Special Number, Nov., 1998.
2. Das, Gupta, Ajit K., Agriculture and Economic Development in India, New Delhi, Associated Publishing House, 1993.
3. Government of india, economic survey (annual)
4. Desai, Ashok, V., Technology Absorption in Indian Industry, New Delhi, Wiley Eastern,1998.
5. Indian Economic Review (Delhi school of economics).
6. Indian Economic Journal (Indian economic association)

7. Khatehkate, Deen, National Economic Policy in India, Salvetor, Demonic, ed. Hand book of Comparative Economic Policies, Vol.,1, National Economic Policies, Greenwood press, pp.231-75,1991.
8. Rajkumar, Sen and Biswajit, Chetterjee,Indian Economy Agenda for the 21st Century, Deep and Deep Publication, New, Delhi,2002.
9. A.N. Agrawal, Indian Economy, Problems Of Development And Planning, Wiley Eastern Limited, New, Delhi,2002
10. Planning Commission, Government Five Year Plan.
11. Bhalla, G.S ed., Economic Liberalization and Indian Agriculture, Institution for Studies in Industrial Development, New Delhi 1994.
12. Lall, Sanjaya, technology Development and Export Performance in LDCs: Leading Engineering and Chemical Firms in India, Review of World Economics, Vol. 122(1), pp.80-1996.

इकाई 13 औद्योगिक नीति एवं औद्योगिक लाइसेंसिंग

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 औद्योगिक नीति 1948
13.3 औद्योगिक नीति 1956
13.4 औद्योगिक नीति 1977
13.5 औद्योगिक नीति 1980
13.6 औद्योगिक नीति 1991
13.7 औद्योगिक लाइसेंसीकरण
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 बोध प्रश्न
13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.12 स्वपरख प्रश्न
13.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- औद्योगिक नीति की व्याख्या कर सकें।
- विभिन्न औद्योगिक नीतियों के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की व्याख्या कर सकें।
- लेखांकन सूचनाओं का वर्गीकरण कर सकें।
- औद्योगिक लाइसेंसीकरण का वर्णन कर सकें।

13.1 प्रस्तावना

किसी राष्ट्र की औद्योगिक नीति संपोषणीय संवृद्धि के मार्ग को अपनाने के लिए उस राष्ट्र की राजनीतिक एवं आर्थिक इच्छाशक्ति को प्रतिबिम्बित करती है क्योंकि आर्थिक विविधता कृषि से भिन्न क्षेत्रों की संवृद्धि पर निर्भर करती है। विकास के साथ अर्थव्यवस्था में उद्योग के अंश में वृद्धि होती है और यह कृषि के अंश से ऊपर निकलने की प्रवृत्ति रखता है। आर्थिक वातावरण प्रमुखतः औद्योगिक उत्पादन से प्रभावित होता है। औद्योगिक नीति से तात्पर्य उन सभी उद्देश्यों, सिद्धान्तों, नियमों, विनियमों तथा पद्धतियों से है जो कि देश में औद्योगिक विकास, औद्योगिक उपक्रमों की स्थापना व क्रियान्वयन, उद्योगों के स्वामित्व, वृद्धि की दर से सम्बन्धित होते हैं। यह विदेशी पूँजी, श्रम, प्रशुल्क तथा अन्य सम्बन्धित विषयों के बारे में सरकारी नीतियों की भी व्याख्या करती है। यह वृहद, लधु तथा मध्यम उद्योग क्षेत्रों को भी इंगित करता है।

औद्योगिक नीति सरकार तथा व्यापार के मध्य सम्बन्धों तथा उक्त सम्बन्धों के मानदण्डों को इंगित करती है, अतः इसे राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण अभिलेख माना जाता है। यह उद्योगों के सम्वर्द्धन तथा विनियमन के सम्बन्ध में स्पष्ट दिशा निर्देश भी प्रदान करती है। औद्योगिक नीति राष्ट्र के औद्योगिक विकास को आकार, मार्गदर्शन, पोषण, विनियमन तथा नियन्त्रण प्रदान करती है। औद्योगिक नीति कोई अधिनियम नहीं, वरन नियमों तथा विनियमों का समूह है

जिनके पालन की अपेक्षा की जाती है किन्तु इनके उल्लंघन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

औद्योगिक नीति का अर्थ

औद्योगिक नीति वह विवरण–पत्र है जो औद्योगिक विकास में सरकार तथा व्यापार की भूमिका, राष्ट्र के औद्योगीकरण में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के स्थान, वृहद व लघु उद्योगों की तुलनात्मक भूमिका, विदेशी पूँजी की भूमिका आदि को परिभाषित करता है। संक्षेप में, यह एक उद्देश्य पत्रक है जिसे औद्योगिक विकास के क्षेत्र में प्राप्त करना होता है तथा जिन मापकों व प्राविधियों को इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनाना होता है। इस प्रकार औद्योगिक नीति औपचारिक रुप से सार्वजनिक व निजी आर्थिक कारकों की गतिविधियों के सम्पूर्ण क्षेत्र को इंगित करता है। यह औद्योगिक गतिविधियों के विकास तथा स्वरुप को शासित करने के लिए नियमों तथा पद्धतियों को निर्धारित करता है। औद्योगिक नीति न तो स्थिर होती है और न ही अस्थिर। इसे आवश्यकता तथा विकास की दृष्टि से समय समय पर संशोधित, परिवर्तित तथा पुनःलेखित किया जा सकता है।

औद्योगिक नीति के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

- यह देश के औद्योगिक प्रतिष्ठानों का नियमन एवं नियंत्रण करने हेतु सरकार द्वारा बनाये गये नियमों, परिनियमों, सिद्धान्तों, नीतियों तथा प्रणालियों को समाहित करती है।
- यह उद्योगों के विकास हेतु सार्वजनिक, निजी, संयुक्त, निगमित, वृहद, मध्यम एवं लधु स्तरीय क्षेत्रों की भूमिका का वर्णन करती है।
- इसके द्वारा राजकोषीय एवं वित्तीय नीतियों, प्रशुल्क नीति, श्रम नीति आदि को समाविष्ट किया जाता है।
- यह न केवल वाह्य सहायता वरन् सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों के प्रति भी सरकार के रुख को प्रकट करता है।

औद्योगिक नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- उत्पादकता में संपोषणीय संवृद्धि को बनाए रखना।
- लाभप्रद रोजगार को बढावा देना।
- आर्थिक शक्तियों के अनुचित संकेन्द्रण से बचाव करना।
- मानव संसाधन का अनुकूलतम उपयोग करना।
- अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता प्राप्त करना, तथा
- वैश्विक परिदृश्य में भारत को प्रमुख भागीदार एवं शक्ति के रुप में स्थापित करना।

13.2 औद्योगिक नीति 1948

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 के महत्वपूर्ण बिन्दुओं का सार निम्न प्रकार से है–

- भारत सरकार ने देश की आर्थिक समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचारण किया गया है।
- राष्ट्र की आर्थिक दशाओं में सुधार तथा राष्ट्रीय परिसम्पत्तियों के विकास पर विचारण किया गया है।

- उद्योगों में राज्य की भागीदारी सम्बन्धी समस्याओं तथा वे परिस्थितियॉ जिनमें निजी उद्यमों को प्रतिभाग की अनुमति होनी चाहिए, के सम्बन्ध में विचारण किया गया है।
- उपरोक्त आधार पर सरकार द्वारा निर्णय लिया गया है कि अस्त्र व आयुधों का निर्माण, आणविक ऊर्जा का उत्पादन व नियन्त्रण तथा रेलवे यातायात का स्वामित्व व प्रबन्धन पूर्णतः केन्द्र सरकार के एकाधिकार में रहेगा।
- विद्युत उत्पादन एवं वितरण को नियन्त्रित करने हेतु भारत सरकार द्वारा नियमन किया जायेगा। इस उद्योग का प्रमापन द्वारा नियमन किया जायेगा।
- उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को सामान्यतः निजी क्षेत्र के उद्यमों तथा व्यक्तियों व सहकारिता के लिए खुला रखा जायेगा।
- कुछ मूलभूत उद्योग महत्वपूर्ण हैं जिनका नियोजन एवं नियमन राष्ट्र हित में केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाना आवश्यक है।
- कुटीर एवं लघु उद्योगों की राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका है।
- सरकार यह समझती हैं उत्पादन में अधिकतम वृद्धि प्राप्त करने के लक्ष्य को मात्र राज्य व निजी क्षेत्र में उद्योग के विभाजन द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।
- भारत सरकार उद्योग सम्मेलन के इस दृष्टिकोण से सहमत है कि जहॉ विदेशी पॅूजी एवं उद्यम की सहभागिता को विशेषतः औद्योगिक तकनीक व ज्ञान के सम्बन्ध में देश के तीव्र औद्योगीकरण की दृष्टि से स्वीकार किया जाना चाहिए, वहीं यह भी आवश्यक है कि उन दशाओं को भी राष्ट्र हित में सावधानीपूर्वक नियमित किया जाय जिनके अन्तर्गत वे भारतीय उद्योग जगत में सहभाग कर रहे हैं।
- भारत सरकार उन उद्योगों के प्रति अपने प्रत्यक्ष दायित्व से भी पूर्णतः भिज्ञ है जिन्हें राजकीय उद्यम के रुप में पूर्णतः सुरक्षित रखा जाना आवश्यक माना गया है।
- भारत सरकार आशावान है कि औद्योगिक नीति के आधारभूत पहलुओं के सम्बन्ध में अपने इरादों को स्पष्ट करने के बाद समस्त भ्रम दूर हो जाएंगे तथा संयुक्त एवं सघन प्रयास के द्वारा राष्ट्र में औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त होगा।

वर्गीकरण–

- रक्षा एवं रणनीतिक उद्योगों यथा– आयुध एवं आग्नेयास्त्र (गोला बारुद) के निर्माण, आणविक ऊर्जा के उत्पादन व नियन्त्रण तथा रेलवे के स्वामित्व व प्रबन्धन, को पूर्णतः केन्द्र सरकार के एकाधिकार में रहेंगे।
- कोयला, लौह एवं इस्पात, वायुयान निर्माण, जलयान निर्माण आदि मूलभूत एवं महत्वपूर्ण उद्योगों के सम्बन्ध में नई इकाइयों को केवल सरकारी क्षेत्र में ही स्थापित किया जायेगा जबकि पूर्व में स्थापित निजी इकाइयों को

अगले दस वर्षों तक पूर्ववत चलने दिया जायेगा तत्पश्चात उनके राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर निर्णय लिया जायेगा।

- कुछ उद्योगों को निजी क्षेत्र में रहने दिया जायेगा किन्तु इन्हें सरकार के नियमन एवं नियन्त्रण में रखा जाएगा। इन उद्योगों में सम्मिलित हैं– ऑटो मोबाइल्स एवं ट्रेक्टर, चीनी, सीमेन्ट, सूती वस्त्र तथा ऊनी वस्त्र आदि।
- अन्य उद्योगों को निजी क्षेत्र में रखा जायेगा तथा उन पर केवल सामान्य नियन्त्रण रखा जायेगा।

राजकीय उद्यम एवं निजी उद्यम की तुलनात्मक भूमिका

उद्योग नीति में प्रमुख सिद्धान्त यह था कि राज्य को उद्योगों के विकास में प्रगतिशील एवं सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। यह माना गया कि देश की वर्तमान परिस्थितियों में यह उचित नहीं होगा कि राज्य चालू उद्योगों का अधिग्रहण करे अतः यह निर्णय लिया गया कि नई इकाइयों तथा पूर्व से नियन्त्रणाधीन इकाइयों पर ध्यान केन्द्रित किया जाय, निजी क्षेत्र को उचित प्रकार से नियामित एवं निर्देशित किया जाय तथा इसे तत्समय उपस्थित परिस्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जा सके।

उद्योगों का निजी व सार्वजनिक क्षेत्र में आबंटनः

उपरोक्त वर्णित सामान्य सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुए नीति प्रस्तावों में उद्योगों का निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में आबंटन निम्नांकित चार वर्गों के आधार पर किया गया है–

(अ) **रणनीतिक एवं मूलभूत उद्योगः** आयुध एवं आग्नेयास्त्रों के निर्माण, आणविक ऊर्जा के उत्पादन व नियन्त्रण तथा रेल यातायात के स्वामित्व व प्रबन्धन को राज्य के पूर्ण एकाधिकार का क्षेत्र बनाया गया। ये उद्योग पूर्व में भी सरकारी अधिकार में थे।

(ब) **आधारभूत तथा प्रमुख उद्योगः** इसके अन्तर्गत कोयला, लौह एवं इस्पात, वायुयान निर्माण तथा जलयान निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ व वायरलैस उपकरण को सम्मिलित किया गया है। पूर्व से स्थापित इकाइयों को निजी क्षेत्र में दस वर्ष के लिए जारी रखने की अनुमति इस प्रावधान के साथ दी गई कि उनकी प्रास्थिति की समीक्षा की जाएगी तथा आवश्यक होने पर राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर निर्णय लिया जायेगा। नई इकाइयों के सम्बन्ध में यह निर्धारित किया गया कि सरकार इनकी स्थापना के सम्बन्घ में पूर्णतः उत्तरदायी होगे।

(स) **सरकार के द्वारा नियंत्रित एवं नियमित निजी क्षेत्र के उद्योगः** इस श्रेणी में देश के बीस महत्वपूर्ण उद्योगों को रखा गया जिन्हें निजी क्षेत्र में बनाये रखा गया किन्तु जिनकी गतिविधियों का संचालन सरकार के नियंत्रण तथा नियमन में रहेगा। इन उद्योगों के अन्तर्गत भारी रसायन, चीनी, सूती व ऊनी वस्त्र, सीमेंट, कागज, नमक, मशीन उपकरण आदि उद्योगों को सम्मिलित किया गया। उक्त सभी को राष्ट्रहित में महत्वपूर्ण माना गया।

(द) **निजी एवं सहकारिता क्षेत्र के उद्योगः** उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त अन्य सभी उद्योगों को निजी क्षेत्र में रखा गया। इन उद्योगों को व्यक्तिगत

अथवा सहकारी स्तर पर चलाया जा सकता है यद्यपि इन्हें सरकार के सामान्य नियन्त्रण में रखा जायेगा।

उन्नत औद्योगिक सम्बन्धों की ओर कदम–

औद्योगिक सम्मेलन 1948 की संस्तुतियों को दृष्टिगत रखते हुए औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 में देश के औद्योगिक सम्बन्धों में मधुर बनाने की ओर कदम बढ़ाते हुए श्रम को प्रबन्धन से जोड़ने हेतु लाभ में सहभागिता एवं अन्य योजनाओं को स्वीकार किया गया।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 के द्वारा लघु स्तरीय व कुटीर उद्योगों तथा विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में कुछ मार्गनिर्देश जारी किये गये–

लघु स्तरीय एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका–

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 में लघु स्तरीय तथा कुटीर उद्योगों के राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महत्व को उचित सम्मान प्रदान किया गया। यह संकल्पना की गई कि ये उद्योग सहकारी क्षेत्र में संगठित होकर वृहद उद्योगों के साथ एकीककरण तथा समन्वयन करेंगे। यह माना गया कि लघु व कुटीर उद्योगों के विकास के द्वारा ही जन साधारण का विकास सम्भव हो सकता है। लघु स्तरीय व कुटीर उद्योगों का विकास अन्य उद्योगों तथा साथ ही आर्थिक शक्तियों के विकेन्द्रीयकरण में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

विदेशी पूँजी के प्रति व्यवहार–

औद्योगिक संवृद्धि की तीव्र गति प्राप्त करने के लिए औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 में विदेशी पूँजी तथा उद्यमों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया किन्तु विदेशी उद्यमों के प्रवेश को राष्ट्र हित में सावधानीपूर्वक नियमित किये जाने की आवश्यकता अनुभव की गई। यह निर्णय लिया गया कि उद्योगों का व्यापक हित, स्वामित्व तथा प्रभावशाली नियन्त्रण भारतीय हाथों में ही रहेगा। इस प्रकार औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 में मिश्रित अर्थव्यवस्था को प्रस्तावित किया गया। साथ ही, राष्ट्र के औद्योगीकरण में उद्यमिता, प्रोत्साहन, नियमन तथा योजना की आवश्यकता पर भी बल दिया गया।

औद्योगिक नीति के अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु–

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 में अर्थव्यवस्था के औद्योगिक विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका को यद्यपि महत्वपूर्ण माना गया किन्तु स्थानीय अर्थव्यवस्था के हितों के अनुरूप इसका नियमन एवं नियन्त्रण भी आवश्यक माना गया। इसलिए उन उद्योगों में जहॉ विदेशी निवेश होना हो, के स्वामित्व तथा प्रबन्धन में भारतीयों की मुख्य भूमिका को आवश्यक माना गया। प्रस्ताव में प्रबन्धन तथा श्रम के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को महत्वपूर्ण माना गया क्योंकि यह औद्योगिक विकास के लिए अनिवार्य हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्ताव में न्यायपूर्ण श्रम सम्बन्धी परिस्थितियों को रेखांकित किया गया जिसमें श्रमिकों को उचित मजदूरी प्रदान की जायेगी। औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के उद्देश्य से श्रम की प्रबन्धन में सहभागिता पर भी बल दिया गया।

13.3 औद्योगिक नीति, 1956

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 में विभिन्न महत्वपूर्ण नवीन विषयों को महत्व प्रदान किया गया–

- इन प्रस्तावों में उत्पादन में निरन्तर वृद्धि तथा उसके समान वितरण को सुनिश्चित करने की अर्थव्यवस्था पर बल दिया गया तथा बताया कि सरकार को उद्योगों के विकास में निरन्तर सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।
- सरकार को छह मूलभूत उद्योगों के नए उद्यमों की स्थापना का पूर्ण दायित्व उठाना होगा।
- नियोजन संगठित ढंग से प्रारम्भ हो चुका है तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना पूर्ण हो चुकी है। संसद सामाजिक एवं आर्थिक नीति के उद्देश्य के रुप में समाजवादी सामाजिक व्यवस्था को अपना चुकी है।
- दिसम्बर 1954 में संसद द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक नीति के उद्देश्य को समाजवादी सामाजिक व्यवस्था के रुप में स्वीकार करने के बाद इन मूलभूत एवं सामान्य सिद्धान्तों को विशेष बल मिला।
- अन्य नीतियों के समान ही औद्योगिक नीति को भी इन सिद्धान्तों तथा निर्देशों द्वारा संचालित किया जायेगा।
- औद्योगीकरण, विशेषतः भारी उद्योग व मशीन निर्मात्री उद्योगों के विकास के लिए, सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार तथा वृहद व विकासशील सहकारी क्षेत्र को विकसित करने के लिए आर्थिक विकास की दर को बढाना आवश्यक है।
- राष्ट्र के नियोजित व त्वरित विकास तथा समाजवादी समाज की व्यवस्था को अपनाए जाने के लिए यह आवश्यक है कि समस्त मूलभूत एवं रणनीतिक महत्व के उद्योगों अथवा सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा जाये।
- उद्योगों के वर्गीकरण में प्रथम श्रेणी में उन उद्योगों को रखा गया जिनके भावी विकास का पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार का होगा।
- द्वितीय श्रेणी में उन उद्योगों को रखा गया जिसे उत्तरोत्तर सरकार के स्वामित्व में लाया जायेगा।
- निजी क्षेत्र के औद्योगिक प्रतिष्ठानों को अनिवार्यतः देश की सामाजिक व आर्थिक नीतियों के ढॉचे के अनुरुप बनना होगा तथा औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम तथा अन्य सम्बन्धित विधानों के नियन्त्रण व नियमन के अधीन रहना होगा।
- उद्योगों की विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण का यह अर्थ नहीं है कि ये उद्योग एक दूसरे से पूर्णतः पृथक होंगे। निस्सन्देह ये श्रेणियॉ परस्पर अतिक्रमण नहीं करेंगी किन्तु सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के उद्योगों के मध्य पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध बनेगा।
- कुटीर, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों की राष्ट्र के विकास में भूमिका पर विशेष बल दिया जाना एक प्रमुख विषय होगा। सरकार इस प्रकार की नीति को अपनाएगी जिसमें विभेदक कराधान तथा प्रत्यक्ष अनुदान के द्वारा वृहद उद्योगों के उत्पादन की मात्रा को सीमित करते हुए कुटीर, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों को सहयोग प्रदान किया जायेगा।

- जहॉ एक ओर औद्योगीकरण को राष्ट्र की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए लाभदायक बनाने के उपायों को अपनाया जायेगा, वहीं विभिन्न क्षेत्रीय असन्तुलनों को क्रमशः कम करने को भी महत्व प्रदान किया जायेगा।
- सार्वजनिक सेवाओं में प्रबन्धकीय तथा तकनीकी वर्गों को स्थापित किया जायेगा। सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के उद्यमों में वृहद स्तर पर प्रशिक्षण के लिए अप्रेंटिसशिप योजना लागू करना तथा विश्वविद्यालयों व अन्य संस्थानों में व्यवसाय प्रबन्धन सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा।
- श्रमिकों के निवास व कार्य की दशाओं में सुधार तथा उनकी दक्षता में वृद्धि के उपायों को लागू किया जायेगा।
- सार्वजनिक उद्योग व व्यापार की बढ़ती प्रतिभागिता के साथ जिस प्रकार से इन गतिविधियों का संचालन व प्रबन्धन किया जा रहा है, उससे इनका महत्व बढ़ा है। अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण तथा उनका प्रबन्धन व्यापार की आवश्यकताओं के अनुरुप किया जाना है।
- केन्द्र व राज्य सरकार के मध्य उत्तरदायित्वों के विभाजन को विधिक स्वरुप प्रदान किया गया है।

उपरोक्त व्यवस्थाएं औद्योगिक नीति 1956 के लिए अनुकूल थीं। देश ने स्वयं ऐसा संविधान प्रदान किया जिसने कुछ निर्देशक सिद्धान्त प्रदान किये। नियोजन का क्रियान्वयन संगठित रुप से प्रारम्भ किया जा चुका था तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना को पूर्ण किया जा चुका था। संसद द्वारा समाज के समाजवादी प्रारुप को सामाजिक तथा आर्थिक नीति के उद्देश्य के रुप में स्वीकार किया जा चुका था। देश के संसाधन भी बढ़ रहे थे तथा आर्थिक संकेन्द्रण को सन्तुलित करने तथा क्षेत्रीय असन्तुलन दूर करने के द्वारा तीव्र आर्थिक विकास के साधन के रुप में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार का सरकारी अभियान तेजी पकड़ रहा था। इस परिवर्तन तथा विकास ने एक नीति को जन्म दिया तथा 30 अप्रेल 1956 को इसकी घोषणा की।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 में सरकार को औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई। वे उद्योग जिनमें भारी निवेश अपेक्षित हो, के अतिरिक्त मूलभूत तथा रणनीतिक महत्व के उद्योगों तथा जन उपयोग के उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित किया गया।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 में उद्योगों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया। प्रथम श्रेणी में (प्रस्ताव में ए श्रेणी के अन्तर्गत समाहित) 17 उद्योगों को सम्मिलित किया गया जिन्हें पूर्णतः सरकार के नियन्त्रण में रखा गया। इसमें रेलवे, वायु यातायात, आयुध एवं आग्नेयास्त्र, लौह एवं इस्पात तथा आणविक ऊर्जा को सम्मिलित किया गया। द्वितीय श्रेणी में (प्रस्ताव में बी श्रेणी के अन्तर्गत समाहित) 12 उद्योगों को सम्मिलित किया गया जिन्हें क्रमिक रुप से सरकार के स्वामित्व में रखा गया था किन्तु निजी क्षेत्र को सरकारी क्षेत्र के प्रयासों में पूरक के रुप में सहयोग देना होगा। तृतीय श्रेणी में शेष समस्त उद्योगों को रखा गया तथा यह आशा की गई कि निजी क्षेत्र इनका विकास करेगा किन्तु सरकार के लिए भी यह क्षेत्र खुला रहेगा। यह माना गया कि सरकार इन उद्योगों को निजी क्षेत्र में विकसित करने के लिए पंचवर्षीय योजना में वर्णित कार्यक्रमानुसार

राजकोषीय उपाय तथा उचित अवस्थापना सुविधाएं सुनिश्चित करते हुए सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान करेगी। उद्योगों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण करने के उपरान्त भी प्रस्ताव को इतना लचीला बनाया गया कि राष्ट्र हित में आवश्यक समायोजन तथा सुधार किया जा सके।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 का एक अन्य उद्देश्य औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में विकास के द्वारा क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना भी था। इसके लिए उक्त क्षेत्रों के औद्योगिक विकास हेतु उचित अवस्थापना सुविधाओं पर विशेष बल प्रदान किया गया। वृहद स्तरीय रोजगार उपलब्ध कराने को महत्व प्रदान करते हुए औद्योगिक आधार के वृहद विस्तारण तथा आय के पूर्वाधिक समान वितरण के सरकार के निश्चय को ध्यान में रखते हुए प्रस्ताव में लघु एवं कुटीर उद्योगों को सभी प्रकार की सहायता प्रदान करने को स्थान प्रदान किया गया। वस्तुतः ये प्रस्ताव भारत के पॉचवे दशक के उन स्थापित मूल्यों को प्रतिबिम्बित करते थे जो औद्योगिक उत्पादन में आत्म–निर्भरता के विचार पर संकेन्द्रित थे। औद्योगिक नीति 1956 एक ऐसा युगान्तरकारी नीति– अभिलेख बना जो बाद के विभिन्न नीति–अभिलेखों का आधार बना। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **उद्योगों का वर्गीकरणः**

अ. प्रथम श्रेणी में उन उद्योगों को सम्मिलित किया गया जिसके भावी विकास का उत्तरदायित्व पूर्णतः सरकार का होगा।

ब. द्वितीय श्रेणी में उन उद्योगों को सम्मिलित किया गया जिन्हें क्रमिक रुप से सरकार के स्वामित्व में लाया जाना है। अतः इसमें नये उद्यमों की स्थापना सरकार के द्वारा की जायेगी किन्तु निजी क्षेत्र द्वारा भी सरकार के प्रयासों में पूरक भूमिका के निर्वहन की आशा की गई है।

स. तृतीय श्रेणी में अन्य समस्त उद्योगों को सम्मिलित किया जायेगा तथा इनके भावी विकास को सामान्यतः निजी क्षेत्र की पहल तथा उद्यम के लिए छोड़ा जायेगा।

2. **विदेशी पूँजी की भूमिकाः**

औद्योगिक नीति 1956 ने देश के विकास में विदेशी पूँजी के महत्व को मान्यता प्रदान की। विदेशी पूँजी घरेलू बचत का पूरक होती है। यह निवेश के लिए अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराती है तथा भुगतान संतुलन के दबाव को कम करती है इसलिए देश में विदेशी पूँजी के आगमन का स्वागत किया गया है किन्तु नीति में यह स्पष्ट किया गया कि विदेशी पूँजी के इस अन्तर्प्रवाह की इस शर्त के साथ अनुमति दी गई कि सम्बन्धित प्रतिष्ठानों के प्रबन्धन, स्वामित्व तथा नियन्त्रण में बड़ा भाग भारतीयों के पास रहेगा।

3. **श्रम को पुरस्कारः**

औद्योगिक नीति 1956 में विकास के साझेदार के रुप में श्रम के महत्व को स्वीकार किया गया। इसके लिए नीति में मजदूरों को उचित मजदूरी दर तथा उनके कार्य व सेवाओं की दशाओं में सुधार पर बल दिया गया। इसमें उल्लिखित है कि जहॉ तक सम्भव हो श्रमिकों को प्रबन्धन से क्रमिक रुप से जोडा जाना चाहिए जिससे कि वे विकास की प्रक्रिया में उत्साहपूर्वक सम्मिलित हो सकें।

4. **लघु एवं ग्रामीण उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थानः**

लघु तथा ग्रामीण उद्योगों का राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान होता है, अतः सरकार ने कुछ वस्तुओं के उत्पादन को पूर्णतः लघु उद्योगों के लिए आरक्षित कर दिया। लघु उद्योगों को प्रत्यक्ष अनुदान तथा समुचित कर छूट के द्वारा भी प्रोत्साहित किया गया।

13.4 औद्योगिक नीति 1977

औद्योगिक नीति 1977 को निम्न प्रमुख बिन्दुओं की सहायता से समझा जा सकता है:

- सकल घरेलू उत्पाद (जी0डी0पी0) वृद्धि की दर विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अपर्याप्त थी।
- बेरोजगारी में वृद्धि हुई, गॉव व शहर के बीच असमानता बढ़ी तथा वास्तविक निवेश की दर गतिहीन हो गई थी। औद्योगिक रुग्णता की घटनाएं बढ़ गई थीं तथा कुछ बड़े उद्योग इससे बुरी तरह प्रभावित हो गए थें।
- औद्योगिक लागत तथा मूल्यों का ढॉचा विकृत हो गया था तथा वृहद शहरी संकेन्द्रण से बाहर औद्योगिक गतिविधियों का विस्तार काफी धीमा हुआ था।
- नई औद्योगिक नीति पूर्वकाल के अवरोधों को इस प्रकार दूर करना आवश्यक था कि जन आकांक्षाओं को एक समयबद्ध आर्थिक विकास कार्यक्रम के द्वारा पूर्ण किया जा सके।
- हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि तथा उद्योग क्षेत्र के मध्य गहन पारस्परिक प्रभाव को अत्यधिक बल नहीं दिया जा सकता।
- नई औद्योगिक नीति में ग्रामीण क्षेत्रों व कस्बों में विस्तृत रुप से फैले कुटीर व लघु उद्योगों पर प्रमुख रुप से बल दिया गया।
- यद्यपि लघु क्षेत्र के उद्योगों की वर्तमान परिभाषा बनी रहेगी तथापि लघु क्षेत्र के अन्तर्गत अति लघु क्षेत्र (टाइनी सेक्टर) पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।
- सरकार कुटीर व घरेलू उद्योगों के हितों को सुरक्षित करने के लिए विशेष कानून लाने पर विचार करेगी।
- प्रत्येक जनपद में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों की समस्त आवश्यकताओं को हल करने के लिए एक एजेन्सी होगी । इसे जिला उद्योग केन्द्र कहा जायेगा।
- लघु ग्रामीण व कुटीर उद्योगों के सम्वर्द्धन हेतु प्रभावी आर्थिक सहयोग करने के लिए भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई डी बी आई) द्वारा इस क्षेत्र की ऋण आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पृथक से खण्ड स्थापित करने के कदम उठाए गए हैं।
- उपरोक्त क्षेत्र में वस्तुओं के विपणन के साथ उत्पाद के मानकीकरण व गुणवत्ता नियन्त्रण द्वारा इन गतिविधियों को प्राथमिकता आधार पर संचालित किया जायेगा।

- खादी एवं ग्रामोद्योग इन ग्रामीण उद्योगों के विकास हेतु आधुनिक प्रबन्धन तकनीकों को अपनाते हुए विस्तृत योजनाएं तैयार करेगा।
- खादी के माध्यम से हथकरघा क्षेत्र का विकास करते हुए जनता की वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओं को निरन्तर पूर्ण किया जा सकता हैं।
- हमारी सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के लिए उपयुक्त तकनीक का विकास तथा उपयोग नीति का अभिन्न अंग होगा।
- वृहद स्तरीय उद्योगों के लिए भी भारत में एक स्पष्ट भूमिका होगी। वृहद स्तरीय उद्योगों की भूमिका को लघु व ग्रामीण उद्योगों के विस्तृत वितरण तथा कृषि क्षेत्र के सशक्तीकरण के माध्यम से जनता की न्यूनतम आवश्यकता पूर्ण करने के कार्यक्रम से जोड़ा जाएगा।
- बड़े घरानों की वृद्धि उनके द्वारा आन्तरिक रुप से अर्जित संसाधनों तथा सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं व बैंकों से ऋणों के आकार की तुलना में असंगत रहा है। इस प्रक्रिया को उलटना होगा।
- अपनी लाइसेंसिंग नीति में सरकार बडे घरानों की गतिविधियों को राष्ट्र के सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों के अनुरुप नियमित करेगी।
- विभिन्न वर्गों में सार्वजनिक क्षेत्रों की भूमिका का विस्तार किया जायेगा।
- भारत का भावी औद्योगिक विकास यथासम्भव स्थानीय तकनीक पर आधारित होना चाहिए।
- तकनीकी आत्म निर्भरता में वृद्धि करने के क्रम में सरकार तकनीक के विशिष्ट एवं उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में निरन्तर अन्तर्प्रवाह को महत्व प्रदान करेगी। सरकार की प्राथमिकता उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ तकनीक को क्रय करना तथा उसे देश की आवश्यकताओं के लिए अपनाये जाने की होगी।
- समुचित मात्रा में शोध व विकास सुविधाओं की स्थापना किया जाना है जिससे कि आयातित तकनीक को अपनाया व आत्मसात किया जा सके।
- भारत के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक विदेशी तकनीक के निवेश व अर्जन की अनुमति केवल उन शर्तो पर प्रदान की जायेगी जिन्हें भारत सरकार द्वारा देश हित में आवश्यक माना जायेगा।
- भारतीय उद्यमियों द्वारा अनेकों उद्योग स्थानीय सहयोगियों के रुप में अन्य विकासशील देशों के साथ मिलकर संयुक्त उपक्रम के रुप में स्थापित किये गये हैं।
- देश में औद्योगिक विकास की वर्तमान दशा में भारत से पूँजी का अधिक निर्यात न तो उचित है और न ही वांछित। अतः विदेश में संयुक्त उपक्रम मुख्य रुप से मशीन व संयन्त्र, संरचना तथा तकनीकी ज्ञान व प्रबन्धन विशेषज्ञता के रुप में होने चाहिए।
- स्वावलम्बन को देश की औद्योगिक तथा आर्थिक नीतियों में प्रमुख उद्देश्य के रुप में बनाये रखा जाना चाहिए। हमारी विदेशी विनिमय परिस्थितियों में जो परिवर्तन हुए हैं तथा हमने औद्योगिक क्षेत्र में जो प्रगति की है, ने निर्यात कोटा तथा मात्रात्मक प्रतिबन्धों के चयनात्मक वितरण के योग्य बनाया है जबकि हमें प्रशुल्क द्वारा प्रदत्त संरक्षणों को जारी रखना है।

- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी निवेश वाले क्षेत्रों में सरकार निर्यातोन्मुख निर्माणी क्षमता वाले प्रस्तावों पर सकारात्मक रुप से विचार करेगी।
- नई औद्योगिक क्षमता का अनुमोदन करते समय विभिन्न प्रकरणों में अनिवार्य निर्यात दायित्वों को लागू किया गया है ताकि परियोजना के लिए आवश्यक कच्चे माल तथा पूँजीगत वस्तुओं के आयात का भुगतान भावी निर्यातों से किया जा सके।
- सम्पूर्ण राष्ट्र के सन्तुलित क्षेत्रीय विकास के महत्व को सम्बद्धता प्रदान करते हुए सरकार ने यह गम्भीरतापूर्वक जाना है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश का जो भी औद्योगिक विकास हुआ है वह मेट्रोपोलिटन क्षेत्रों तथा महानगरों में केन्द्रित रहा है।
- राज्य सरकारों तथा वित्तीय संस्थाओं से इन क्षेत्रों में नए उद्योगों को सहयोग न देने हेतु अनुरोध किया जायेगा। साथ जो वर्तमान स्थापित बड़े उद्योग भीड़ भरे मेट्रोपोलिटन क्षेत्रों से उद्योग को पिछड़े क्षेत्रों के निर्धारित स्थानों में स्थानान्तरित करना चाहते हों, को सहायता प्रदान करने का भी अनुरोध किया जायेगा।
- मूल्यों में समुचित स्तर तक स्थिरता तथा कृषि एवं औद्योगिक उत्पादों के मूल्यों समानता स्थापित करने के उद्देश्य को लक्षित करते हुए एक मजबूत मूल्य नीति बनाई जाएगी।
- व्यापार पर पारिवारिक नियन्त्रण विशेषतः वृहद उद्योगों में एक कुप्रथा है तथा सरकार की नीति प्रबन्धन मे पेशेवर व्यवहार को लागू करने की होगी।
- दुकान स्तर से वृहद स्तर तक समता में सहयोग तथा श्रम की निर्णयन में सक्रिय प्रतिभागिता से उद्योगों में श्रमिकों के प्रबन्धन में सहभागिता से एक आवश्यक वातावरण उपलब्ध होगा।
- औद्योगिक जगत का गत वर्षों की एक समस्या वृहद एवं लघु उद्योगों की रुग्णता का बढ़ता प्रभाव है। रुग्ण इकाइयॉ जिनका अधिग्रहण किया जा चुका है किन्तु वे अभी भी हानिप्रद बनी हुई हैं, का वित्तीयन सार्वजनिक कोषों से करना पड़ता है। यह प्रवृत्ति निरन्तर जारी नहीं रखी जा सकती। भविष्य में, इकाइयों के प्रबन्धन का अधिग्रहण चयन आधार पर तथा केवल तभी किया जायेगा जबकि उन्हें पुनर्जीवित करने के लिए आवश्यक उपायों का सावधानीपूर्वक परीक्षण कर लिया गया हो।
- सरकार औद्योगिक संस्तुति की प्रक्रिया में आने वाली उन बाधाओं को दूर करने के प्रयासों को जारी रखेगी जो औद्योगिक विकास को गति प्रदान करने में गतिरोध उत्पन्न कर रही हैं।

मार्च 1977 में केन्द्र में कांग्रेस की सरकार के स्थान पर जनता पार्टी सत्तारुढ़ हुई। जनता पार्टी सरकार के अनुसार औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 जो कि दो दशक से भी अधिक समय तक लागू रही, विभिन्न पहलुओं से असफल रही है। अतः जनता पार्टी सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति वक्तव्य की संसद में दिसम्बर 1977 में घोषणा की। जनता पार्टी सरकार का विचार था कि 1956 का

प्रस्ताव लघु उद्योगों के विकास में असफल रहा है। वृहद औद्योगिक उपयोगों को उनके व्यापार का विस्तार सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं की मदद से करने की अनुमति होगी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत में प्रवेश की अनुमति होगी तथा उन्होंने छत्रछाया तथा संरक्षण वाले भारतीय बाजारों का लाभ प्राप्त किया। जनता पार्टी सरकार ने यह माना कि ग्रामीण व शहरी असमानताएं बढ़ गई हैं, बेरोजगारी बढ़ गई है, औद्योगिक रुग्णता का विस्तार हुआ है तथा वास्तविक निवेश की दर अवरुद्ध हो गई है।

दूसरी ओर, इस प्रस्ताव ने लघु, अति लघु तथा कुटीर उद्योग की भूमिका में वृद्धि के साथ औद्योगिक क्षेत्र के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। इसके द्वारा औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों के मध्य गहन मंत्रणा का प्रस्ताव तैयार किया। ऊर्जा के उत्पादन तथा वितरण को उच्चतम प्राथमिकता प्रदान की गई। इसमें लघु क्षेत्र के आरक्षित उद्योगों की सूची को 180 के स्थान पर 500 तक विस्तारित कर दिया गया। लघु उद्योग क्षेत्र में पहली बार अति लघु क्षेत्र (टाइनी सेक्टर) को 50,000 तक आबादी (1971 जनगणना के अनुसार) वाले कस्बों व गॉवों में स्थापित एक लाख तक के मशीन व उपकरण के निवेश वाली इकाइयों के रुप में परिभाषित किया गया। लघु उद्योगों तथा कृषि क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण मूलभूत वस्तुओं, पूॅजीगत वस्तुओं तथा उच्च तकनीक उद्योगों को स्पष्टतः वृहद उद्योगों के रुप में निरुपित किया गया। यह भी उल्लेखित किया गया किया कि जिन विदेशी कम्पनियों ने विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (फेरा) 1973 के प्रावधानों के अन्तर्गत अपनी पूॅजी को 40 प्रतिशत स्तर तक घटा लिया है, को भी भारतीय कम्पनियों के समान ही माना जायेगा। 1977 के नीति प्रस्ताव में उन उद्योगों की एक सूची जारी की गई जिसके अनुसार जिन उद्योगों में देशी तकनीक पूर्व में ही उपलब्ध है, वहॉ विदेशी वित्तीय तथा तकनीकी सहयोग प्राप्त करने की अनुमति नहीं होगी। पूर्णतः विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनियों को केवल उच्च निर्यातोन्मुखी क्षेत्रों अथवा संवेदनशील तकनीक वाले क्षेत्रों में अनुमति होगी। समस्त अनुमोदित विदेशी निवेशों के सम्बन्ध में कम्पनी पूॅजी तथा लाभ, लाभांश, रायल्टी आदि को अपने देश में भेज सकेंगी। इसके अतिरिक्त, सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को सुनिश्चित करने के लिये यह निर्णय लिया गया कि महानगरों (10 लाख से अधिक जनसंख्या) तथा शहरी क्षेत्र के (5 लाख से अधिक जनसंख्या) की सुनिश्चित सीमाओं में नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की अनुमति नहीं दी जायेगी।
इस नीति के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

1. **वृहद स्तरीय उद्योगों की भूमिकाः** औद्योगिक नीति 1977 ने देश के आर्थिक विकास में वृहद उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया तथा इनके कार्यान्वयन के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों को निर्धारित किया–

(क) वृहद एवं लघु उद्योग क्षेत्र के औद्योगिक विकास के लिए संरचना निर्माण हेतु अनिवार्य मूलभूत उद्योग।

(ख) वृहद एवं लघु उद्योगों को मशीनरी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पूॅजीगत वस्तु उद्योग ।

(ग) उच्च तकनीक वाले उद्योग जहॉ उत्पादन अनिवार्यतः वृहद स्तर पर किया जाता है तथा जो कृषि व औद्योगिक विकास में सहायक हों, यथा– खाद, पेट्रो–केमिकल उद्योग आदि।

(घ) अन्य सभी वे उद्योग जो कि उपरोक्त सूची में सम्मिलित नहीं हैं, को पूर्णतः लघु उद्योग के लिए आरक्षित किया गया।

2. **सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की विस्तृत भूमिकाः** राष्ट्र के औद्योगिक विकास में सार्वजनिक उद्योगों की भूमिका तय की गयी। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को न केवल मूलभूत तथा रणनीतिक वस्तुओं के उत्पादन वरन् अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं के लिए भी विश्वस्त माना गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को अनुषंगी (सहायक) उद्योगों के विकास तथा लघु उद्योगों को विशेषज्ञता प्रदान करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जायेगा।

3. **विदेशी पूँजी निवेशः** सरकार ने विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया– 'जिन क्षेत्रों में विदेशी तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, वर्तमान सहयोग को जारी नहीं रखा जायेगा तथा इन क्षेत्रों में कार्यरत विदेशी कम्पनियों को उनके स्वरुप तथा गतिविधियों को राष्ट्रीय विनिमय नियमन अधिनियम (फेरा) के ढॉचे के अन्तर्गत राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के सुनिश्चयन हेतु सुधारना होगा।'

13.5 औद्योगिक नीति 1980

औद्योगिक नीति 1980 की घोषणा वस्तुतः हमारे देश की मूल्य आधारित प्रणाली को प्रतिबिम्बित करती है तथा निर्णायक रुप से रचनात्मक लोचपूर्णता के लाभों को प्रदर्शित करती है।

देश जब सत्तरवें दशक के मध्य में उड़ान भर रहा था, जनता पार्टी व अनुवर्ती सरकारों के शासनकाल के 33 माह में विकास के दोनों ही मार्ग–स्थापित क्षमता के अनुकूलतम उपयोग तथा औद्योगिक विस्तार, अवरुद्ध हो गये। पिछली दो सरकारों में अर्थ व्यवस्था का उड़ान–पथ क्षतिग्रस्त हो गया तथा विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया उलटी दिशा में जाने लगी।

प्रथम लक्ष्य अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने का है जो कि वर्तमान में संरचनात्मक अवरोध तथा प्रदर्शन में अक्षमता के कारण संकुचित हो गया है। औद्योगीकरण आर्थिक विकास की अनिवार्य शर्त है। सरकार आम जनता को वस्तुओं की उचित मूल्य पर उपलब्धता, अधिक रोजगार तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का लाभ प्रदान करते हुए देश के त्वरित एवं संतुलित औद्योगीकरण के लिए प्रतिबद्ध है।

औद्योगीकरण के लाभों का वितरण इस प्रकार से होना चाहिए कि उसमें देश की जनसंख्या का बड़ा भाग, ग्रामीण व नगरीय दोनों, समाहित हो तथा कुछ गिनचुने हाथों में अर्थव्यवस्था का संकेन्द्रण न हो।

1980 के आम चुनावों में कॉग्रेस (आई) ने जनता पार्टी को सत्ता से बाहर कर दिया तथा केन्द्र की सत्ता प्राप्त कर ली। कॉग्रेस (आई) सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति 23 जून 1980 को घोषित की। यह नीति मुख्यतः औद्योगिक नीति 1956 के प्रस्तावों पर आधारित है। औद्योगिक नीति पत्रक 1980 ने घरेलू बाजार में प्रतिस्पर्धा, तकनीकी उच्चीकरण तथा उद्योगों के आधुनिकीकरण के प्रति सहमति व्यक्त की। पत्रक में वर्णित कुछ प्रमुख सामाजिक–आर्थिक उद्देश्य निम्नवत हैं–

(अ) स्थापित क्षमता का अनुकूलतम उपयोग, (आ) उच्चतर उत्पादकता, (इ) उच्चतर रोजगार स्तर, (ई) क्षेत्रीय विषमताओं समाप्त करना, (उ) कृषि आधार का सुदृढीकरण, (ऊ) निर्यातोन्मुखी उद्योगों को प्रोत्साहन, (ए) उच्च मूल्यों तथा निम्न गुणवत्ता से उपभोक्ता को संरक्षण। कार्यात्मक क्षेत्रों यथा– संचालन, वित्त, विपणन

तथा सूचना प्रणाली में प्रबन्धन वर्ग के विकास द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की क्षमताओं को पुनर्जीवित करने के लिए नीतिगत उपाय घोषित किये गये। क्षमताओं के स्वतः विस्तार के लिए पॉच प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर विशेषतः विशिष्ट वर्ग के तथा दीर्घकालीन निर्यात सम्भावनाओं वाले उद्योगों के लिए अनुमत की गई। ऊर्जा के अनुकूलतम उपयोग तथा वैकल्पिक श्रोतों के अवशोषण की औद्योगिक प्रक्रिया तथा तकनीक में संलग्न औद्योगिक इकाइयों को विशेष प्रोत्साहन स्वीकृत किये गये। लघु स्तरीय उद्योगों के विकास को गति देने के क्रम में निवेश की सीमा बढ़ाकर लघु उद्योगों के लिए रु0 20 लाख तथा सहायक इकाइयों के लिए रु0 25 लाख कर दी गई। अति लघु इकाइयो के लिए निवेश की सीमा बढ़ाकर 2 लाख कर दी गई।

औद्योगिक नीति पत्रक 1980 के प्रमुख बिन्दु

1. **सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का पुनरुद्धारः**

औद्योगिक नीति पत्रक 1980 के द्वारा सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों के पुनरुद्धार का प्रस्ताव किया जिससे कि वे रोजगार सृजन तथा वित्तीय अधिशेषों के द्वारा अर्थव्यवस्था की अग्रिम संवृद्धि के लिए उनका योगदान सुनिश्चित कराया जा सके। सरकार ने वित्त, विपणन, संचालन तथा सूचना प्रणाली के क्षेत्र में प्रबन्धन वर्ग के विकास द्वारा इन उद्योगों में प्रबन्धन के सुदृढीकरण के लिए भी प्रस्ताव किया। सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र की घाटे वाली इकाइयों को व्यवस्था की पुनर्संरचना तथा गतिमान एवं सक्षम प्रबन्धन द्वारा पुनरुद्धार किये जाने पर भी बल दिया गया।

2. **निजी क्षेत्र का योगदानः**

यद्यपि पत्रक में यह वर्णित है कि एकाधिकारी प्रवृत्तियों अथवा आर्थिक सत्ता व सम्पदा के कुछ हाथों में संकेन्द्रण से बचा जायेगा तदपि निजी क्षेत्र को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई। नीति पत्रक में प्रस्तावित किया गया कि निजी क्षेत्र को राष्ट्रीय योजनाओं व नीतियों के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों के साथ सामंजस्य बनाने की अनुमति होगी।

13.6 औद्योगिक नीति 1991

भारत सरकार द्वारा नई औद्योगिक नीति की घोषणा 24 जुलाई 1991 को गई। औद्योगिक नीति पत्रक 1991 में उल्लिखित है– ''सरकार उद्यमिता को प्रोत्साहन, शोध एवं विकास में निवेश द्वारा देशी तकनीक के विकास, नवीन तकनीक को अपनाने, नियामक प्रणाली के समापन, पूॅजी बाजार के विकास तथा सामान्य जन के लाभ के लिए प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हेतु मजबूत नीतिगत ढॉचे को जारी रखेगी।'' यह भी जोड़ा गया– ''समुचित प्रोत्साहनों, संस्थाओं तथा संरचनागत निवेष के द्वारा देश के पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विस्तार को सक्रिय प्रोत्साहन प्रदान किया जायेगा।'' औद्योगिक नीति पत्रक 1991 का उद्देश्य उत्पादकता में निरन्तर विकास, लाभदायक रोजगार में वृद्धि तथा मानव संसाधन का अनुकूलतम उपयोग, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा प्राप्त करने तथा विश्व परिदृष्य में भारत को प्रमुख साझेदार एवं प्रतिभागी के रुप में अवतरित करना था। स्पष्ट रुप से नीति का प्रमुख ध्यान भारतीय उद्योग को नौकरशाही के नियन्त्रण से मुक्त कराने पर था। इसने अनेकानेक सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया–

- सामर्थ्य सृजन की बाधाओं को दूर करने तथा उभरती हुई घरेलू एवं वैश्विक सम्भावनाओं को उत्पादकता वृद्धि द्वारा प्राप्त करने के लिए औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली में आवश्यक सुधारों को अनिवार्य माना गया। तदनुसार नीति पत्रक में कतिपय उद्योगों को सुरक्षा व रणनीतिक कारणों, सामाजिक व पर्यावरणीय मुद्दों से छोड़ते हुए अधिकांश उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेंसिंग से मुक्ति को सम्मिलित किया गया। केवल 18 उद्योगों के लिए अनिवार्य लाइसेंसिंग को आवश्यक माना गया। इनमें अन्य के साथ कोयला व लिगनाइट, एल्कोहलिक पेयों के शोधन व पेय निर्माण, सिगार व सिगरेट, दवा व औषधीय पदार्थों, श्वेत पदार्थों तथा हानिकारक रसायनों को सम्मिलित किया गया। लघु स्तरीय उद्योगों को आरक्षित रखा गया। दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में उद्योगों (अनिवार्य लाइसेंसिंग की शर्त वाले उद्योगों के अतिरिक्त) की स्थापना के नियमों को और भी शिथिल किया गया।
- स्थानिक एवं विदेशी निवेश की पूरकता को स्वीकारते हुए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को 1991 की नीति की घोषणा में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई। 51 प्रतिशत तक विदेशी समता वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों को उच्च प्राथमिकता वाले उन उद्योगों में अनुमति प्रदान की गई जिनमें अधिक निवेश तथा उन्नत तकनीक की आवश्यकता हो। 51 प्रतिशत विदेशी समता को उन व्यावसायिक कम्पनियों के लिए भी अनुमति दी गई जो मूलतः निर्यात गतिविधियों में संलग्न हों। इन महत्वपूर्ण उपायों के फलस्वरुप निवेश को बढावा मिलने के साथ ही विदेशी कम्पनियों की उच्च तकनीक तथा विपणन विशेषज्ञता प्राप्त होने की भी आशा की गई थी।
- भारतीय उद्योगों को तकनीकी गतिशीलता प्रदान करने के लिए सरकार ने उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों के लिए स्वतः अनुमोदन प्रदान किया तथा विदेशी तकनीकी विशेषज्ञता प्राप्त करने की प्रक्रिया को आसान बनाया।
- सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की पुनर्संरचना के लिए उनकी निम्न उत्पादकता, अति कर्मचारी संख्या, तकनीकी उन्नयन में कमी तथा लाभ की कम दर को दृष्टिगत रखकर बडे उपाय प्रारम्भ किये गये। संसाधनों को बढ़ाने तथा जनता की सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में अधिक सहभागिता सुनिश्चित करने के क्रम में यह निर्णय लिया गया कि इनकी अंश पूँजी को पारस्परिक निधियों (म्यूच्युअल फण्डस्), वित्तीय संस्थाओं, सामान्य जनता तथा कर्मचारियों को प्रस्तावित कर दी जाये। इसीप्रकार अतिशय रुग्ण सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को पुनर्जीवित एवं पुनर्वासित करने के लिए यह निर्णय लिया गया कि उन्हें औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बी0आई0एफ0आर0) को संदर्भित कर दिया जाये। नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के संचालक मण्डलों को अधिक प्रबन्धकीय स्वायत्तता प्रदान करने प्रावधान किया गया।
- औद्योगिक नीति पत्रक 1991 ने माना कि एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (एम0आर0टी0पी0एक्ट) के माध्यम से बड़ी

कम्पनियों के निवेशन निर्णयों में सरकार का हस्तक्षेप औद्योगिक संवृद्धि के लिए हानिकारक है। इस प्रकार एम0आर0टी0पी0 कम्पनियों के निवेशों की प्रवेश–पूर्व जॉच को समाप्त कर दिया गया। नीति का प्रमुख प्रयास अनुचित तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार को नियन्त्रित करने पर अधिक रखा गया। एकीकरण, संविलयन तथा अधिग्रहण को बाधित करने वाले प्रावधानों को रद्द कर दिया गया।

औद्योगिक नीति 1991 के प्रमुख बिन्दु

1. **औद्योगिक लाइसेंसिंग का समापनः** पूववर्ती औद्योगिक नीतियों में उद्योगों को कड़ी लाइसेंसिंग प्रणाली के अन्तर्गत रखा गया था। यद्यपि कुछ उदारीकरण मानक 1980 के दौरान भी अपनाए गये थे जिनका उद्योगों के विकास में सकारात्मक प्रभाव पड़ा था, फिर भी औद्योगिक विकास बड़ी मात्रा में अवरुद्ध रहा।

   नई औद्योगिक नीति ने अधिकांश उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेंसिंग की प्रणाली को समाप्त कर दिया। इस नीति के अन्तर्गत कतिपय देश की सुरक्षा तथा रणनीति मसलों से सम्बन्धित उद्योग, हानिकारक उद्योग तथा पर्यावरण के क्षरण के लिए उत्तरदायी उद्योगों की एक छोटी सी सूची के अतिरिक्त अन्य उद्योगों की नई इकाइयों की स्थापना तथा स्थापित इकाइयों की क्षमता में समुचित वृद्धि के लिए किसी प्रकार के लाइसेंस की आवश्यकता नहीं रही। बाद में संशोधन के बाद यह सूची छोटी कर दी गई। अब इसमें केवल वे पॉच उद्योग थे जिनके लिए अनिवार्य लाइसेंसिंग की आवश्यकता थी तथा जो स्वास्थ्य सुरक्षा तथा रणनीतिक मसलों से सम्बन्धित थे। इसप्रकार उद्योग लगभग पूर्णतः लाइसेंसिंग के जुड़े हुए समस्त प्रावधानों तथा रुकावटों से मुक्त हो गया।

2. **एम0आर0टी0पी0एक्ट में परिवर्तनः** एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (एम0आर0टी0पी0एक्ट) 1969 के अनुसार समस्त बड़ी कम्पनी तथा बड़े व्यापारिक घरानों (जिनकी कुल सम्पत्ति 1985 के संशोधन अधिनियम के अनुसार रु0 100 करोड़ या अधिक हो) को नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के लिए एम0आर0टी0पी0 कमीशन से अनुमति प्राप्त करनी होती थी क्योंकि इन कम्पनियों को (जिन्हें एम0आर0टी0पी0 कम्पनी कहा जाता था) कुछ चयनित उद्योगों में ही निवेश करने की अनुमति प्राप्त थी। इस प्रकार लाइसेंस प्राप्त करने से पूर्व इन्हें एम0आर0टी0पी0 से भी स्वीकृति लेनी होती थी। यह औद्योगिक विकास की बड़ी बाधा थी क्योंकि वो बड़े व्यावसायिक संस्थान जिनके पास विकास के संसाधन थे, अपनी गतिविधियों को बढ़ाने या विविधता लाने में असमर्थ थे। औद्योगिक नीति 1991 ने एम0आर0टी0पी0 एक्ट के इन प्रावधानों को समाप्त करके इन उद्योगों को नई परियोजना प्रारम्भ करने के लिए अन्य से समानता प्रदान की। संशोधित अधिनियम के अनुसार एम0आर0टी0पी0 कमीशन स्वयं को केवल उन एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों तक सीमित रखेगी जो कि अनुचित हैं तथा उपभोक्ताओं के हितों में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अब बड़े व्यापारिक

घरानों को नई औद्योगिक इकाइयॉ स्थापित करने के लिए किसी प्रकार की अनुमति एम0आर0टी0पी0 कमीशन से लेने की आवश्यकता नहीं थी।

3. **विदेशी निवेशः** प्रारम्भ से ही भारत में विदेशी निवेश को सरकार द्वारा नियमित किया जाता था। इसलिए किसी भी विदेशी निवेश के लिए सरकार की पूर्वानुमति लिया जाना आवश्यक था। इनके कारण अनावश्यक विलम्ब होता था तथा व्यापार के निर्णयन बाधित होते थे। नई औद्योगिक नीति ने उच्च तकनीक तथा उच्च निवेश वाले प्राथमिकता उद्योगों (संलग्नक–III) की एक विशिष्ट सूची तैयार की जिनमें 51 प्रतिशत तक विदेशी समता के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति स्वतः उपलब्ध होगी। संलग्नक–III में प्राथमिकता वाले 34 उद्योगों को सम्मिलित किया गया जैसे– धातु विज्ञान, बॉयलर व स्टीम उत्पादन संयन्त्र, विद्युत उपकरण, दूरसंचार उपकरण, यातायात, औद्योगिक तथा कृषि मशीनरी, औद्योगिक निवेश, रसायन, खाद्य प्रसंस्करण, होटल तथा पर्यटन उद्योग।

13.7 औद्योगिक लाइसेंसीकरण

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 में यह जोर देकर कहा गया था– ''निजी उपक्रमों को औद्योगीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका दी जा सकती है यदि उनका उचित निर्देशन तथा नियमन किया जा सकता हो।'' यह सरकार को इन स्थापित तथा नए उपक्रमों को नियमित तथा नियन्त्रित करने की आवश्यक शक्तियॉ प्रदान करने के लिए था। औद्योगिक (विकास एवं नियमन) बिल संसद में अप्रेल 1949 को प्रस्तुत किया गया जिसे अन्ततः औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1951 के रुप में पारित किया गया।

अधिनियम में समस्त अनुसूचित उपक्रमों को सरकार में विशिष्ट अवधि के लिए अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान रखा गया। समस्त नए उपक्रमों तथा वृहद विस्तार के इच्छुक उपक्रमों को सरकार से लाइसेंस प्राप्त करना था जिससे कि असफल होने की दशा में सरकार आवश्यक जॉच करा सके, जॉचोपरान्त आवश्यक निर्देश जारी कर सके तथा सरकार इन उद्योगों के उपक्रमों के प्रबन्धन को अधिग्रहीत कर सके।

इस अधिनियम में पॉच प्रकार के लाइसेंस का प्रावधान किया गया– (क) नवीन उपक्रम, (ख) वृहद उपक्रम, (ग) नवीन उत्पादों के उत्पादक, (घ) उपक्रम का आंशिक अथवा पूर्णतः स्थान परिवर्तन, तथा (ड.) व्यापार का संचालन।

अधिनियम में लाइसेंसिंग समिति, केन्द्रीय सलाहकार समिति तथा विकास समिति को स्थापित करने का भी प्रावधान किया गया। लाइसेंसिंग समिति का गठन सम्बन्धित मन्त्रालयों तथा योजना आयोग के प्रतिनिधियों के साथ किया गया। यह एक सलाहकारी ढॉचा था जिसने किसी भी आवेदन के सम्बन्ध में आवश्यक जॉचोपरान्त अपनी आख्या सरकार को देनी थी।

उद्योगों के लिए केन्द्रीय सलाहकारी समिति का गठन अधिनियम के प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं तथा उद्योगों के विकास सम्बन्धी मामलों के निराकरण करने के लिए किया गया। केन्द्रीय सलाहकारी समिति की उप समिति लाइसेंसिंग प्रणाली की कार्यों का सामयिक परीक्षण करती है तथा अपनी आख्या केन्द्रीय सलाहकारी समिति को सौंपती है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत जो अन्य संस्थाएं अस्तित्व में आयीं वे थीं उद्योग विशेष के लिए विकास परिषदें। इनमें औद्योगिक उपक्रमों के प्रतिनिधियों, कार्मिकों तथा उपभोक्ताओं को सम्मिलित किया गया। इन परिषदों का मुख्य उद्देश्य निजी तथा सार्वजनिक उद्योगों के मध्य समन्वय बनाना तथा निजी उपक्रमों को विकास की नियोजित पद्धति में सम्मिलित करना था।

लाइसेंसिंग के उद्देश्य

लाइसेंस किसी औद्योगिक उपक्रम के लिए केन्द्र सरकार द्वारा जारी एक लिखित अनुमति है जिसमें नियत स्थान, उत्पादन की जाने वाली वस्तु, उत्पादन क्षमता तथा अन्य सम्बन्धित विवरणों का उल्लेख किया जाता है।

इसमें उस अवधि का भी उल्लेख होता है जिसमें लाइसेंस अपनी क्षमता में लागू रहेगा। लाइसेंसिंग के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

- योजना आधार पर निर्धारित लक्ष्यों के साथ औद्योगिक क्षमता को सीमित करना।
- योजना की प्राथमिकताओं के अनुरुप उद्योगों के निवेश को निर्देशित करना।
- सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को सुनिश्चित करने के लिए औद्योगिक इकाइयों के स्थलों का नियमन।
- एकाधिकार तथा संपदा का संकेन्द्रण दोनों से बचाव।
- वृहद स्तरीय उद्योगों के साथ अनुचित प्रतिस्पर्धा से लघु उद्योगों का बचाना।
- इकाइयों के आर्थिक आकार तथा आधुनिक प्रणालियों को सुनिश्चित करते हुए उद्योगों में तकनीकी तथा आर्थिक सुधार को तीव्र करना।
- नए उद्यमियों को औद्योगिक इकाइयॉ प्रारम्भ करने के लिए प्रोत्साहित करना जिससे कि उद्यमिता का आधार विस्तृत हो सके।

लाइसेंसिंग का प्रमुख उद्देश्य सरकार की औद्योगिक नीति को प्रभावशाली बनाना है। अतः सरकार की औद्योगिक नीति में कोई परिवर्तन लाइसेंसिंग प्रणाली को प्रभावित करता है।

लाइसेंसिंग नीति

लघु उद्योग क्षेत्र के लिए पूर्णतः आरक्षित मदों को छोड़कर अन्य के लिए प्रत्यक्ष औद्योगिक लाइसेंस सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं। लघु उद्योगों की मदों में प्रारम्भ में आवेदकों को उद्देश्य पत्र (लैटर ऑफ इन्टेन्ट– एल0ओ0 आई0) कतिपय शर्तों के साथ जारी किया जाता है जैसे– प्रदूषण निर्बाधन प्राप्त करना। उद्देश्य पत्र में दी गई शर्तों के पूर्ण होने पर अभिरुचि के पत्र को औद्योगिक लाइसेंस में परिवर्तित कर दिया जाता है।

लाइसेंसिंग नीति की आलोचना

लाइसेंसिंग नीति की आलोचना के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं–

1. **जटिल तथा समय क्षय करने वाली प्रक्रिया–** आलोचना के सर्व सामान्य बिन्दु लाइसेंसिंग नीति के काफी जटिल तथा विलम्बित होने का है जिसमें अनेक संस्थाएं तथा सरकार के मंत्रालय सम्मिलित होते हैं जैसे कम्पनी गतिविधियों का मंत्रालय, आर्थिक मामलों का मंत्रालय, विज्ञान व

तकनीकी मंत्रालय आदि। इनमें से प्रत्येक औद्योगिक विकास के किसी विशिष्ट पहलू से सम्बन्धित था। इसके बाद कुछ विशेषज्ञ समितियाँ भी थीं जैसे– डी0जी0टी0डी0। जब बड़े औद्योगिक घराने संलिप्त हो अथवा जब विदेशी तकनीकी और वित्तीय सहयोग का प्रश्न आता हो तो लाइसेंसिंग प्रक्रिया में लगभग एक दर्जन मंत्रालयों को सम्मिलित होना होता था। इन सभी में काफी समय लगता था तथा अनावश्यक विलम्ब होता था।

2. **नियंत्रणों की अधिकता**– सरकार ने अनेकों ऐसे नियन्त्रण लगा दिये थे जिनसे होकर एक परियोजना को स्वीकृति प्राप्त करने के लिए गुजरना होता था, जैसे– पूँजीगत वस्तु समिति, पूँजी निर्गम नियन्त्रक, एम0आर0टी0 पी0 अधिनियम (धारा 21–22), मुख्य आयात–निर्यात नियन्त्रक, आर0बी0आई0 आदि। उद्देश्य पत्र (लैटर ऑफ इण्टेन्ट) प्राप्त करना ही अन्तिम पड़ाव नहीं था, वरन यह तो विभिन्न स्वीकृतियों तथा निदानों की प्रक्रिया का प्रारम्भ था। नियन्त्रणों की इस बहुलता के कारण लाइसेंस तथा स्वीकृतियों की प्राप्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया अपरिहार्यतः विलम्बित तथा कुंठाजनक हो जाती थी।
3. लाइसेंस जारी करना बढ़ी हुई औद्योगिक क्षमता का चित्र प्रस्तुत करता है जो कभी–कभी उन वास्तविक उद्यमियों को दूर कर देता है जो तिथिक्रम में विलम्बित हो गये हों क्योंकि यह लाइसेंसिंग क्षमता को प्रभावशाली समूहों के द्वारा कब्जा कर लेने को तथा अपरिपालित लाइसेंसों पर मजबूती से पकड़ बनाने प्रोत्साहित करता है।
4. सामान्यतः लाइसेंस योजना के अन्तिम वर्ष के लिए निर्धारित लक्ष्य के 10 से 25 प्रतिशत अधिक क्षमता के लिए जारी किये जाते हैं और वह भी प्रायः योजनाकाल के प्रारम्भ में। इसके कारण उपलब्ध विदेशी विनिमय तथा संभावित सहयोगियों पर तथा साथ ही घरेलू आपूर्तिदाताओं पर अत्यधिक मात्रा में निरन्तर दबाव पड़ने लगता है। इसके कारण विदेशी व घरेलू आपूर्तिदाताओं एवं लेनदारों के साथ समझौते दुष्प्रभावित होते हैं तथा जो कि अनेक अवरोधों व विलम्ब का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

13.8 सारांश

औद्योगिक नीति 1948 का लक्ष्य धुंधले तथा अनिश्चित वातावरण को साफ करना था जिससे कि उद्योगों में निवेश करना कोई आकस्मिकता न बन जाये। औद्योगिक नीति (1948) का मूल ध्येय भारत में आर्थिक स्थिरता लाना तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का ढाँचा मजबूत करना था। औद्योगिक नीति 1956 आर्थिक व सामाजिक नीतियों के लक्ष्य के रुप में स्वीकृत समाज के समाजवादी ढाँचे के अन्तर्गत तीव्र औद्योगीकरण की विचारधारा से प्रभावित थी। औद्योगिक नीति विवरण पत्रक 1977 की नीति का प्रारुप जनता पार्टी के द्वारा तैयार किया गया। इसका मूल उद्देश्य औद्योगिक नीति (1956) के अनुपालन में हुई विकृतियों को ठीक करना था। प्रमुख विकृतियाँ थीं: (अ) बेरोजगारी में वृद्धि होना, (ब) गाँवों तथा शहरों के बीच असमानता में वृद्धि होना, तथा (स) वास्तविक निवेश की दर अवरुद्ध होना। औद्योगिक नीति (1980) अपनी आन्तरिक अस्थिरता के लिए आलोचना का शिकार हुई। औद्योगिक नीति (1956) को ध्यान में रखते हुए 1980

की नीति में यह माना गया कि लघु तथा वृहद उद्योगों के हित सदैव परस्पर टकराव नहीं रखते हैं। यह पूर्णतः अतर्कपूर्ण मान्यता है क्योंकि आई0पी0आर0 1956 ने लघु तथा ग्रामीण उद्योगों को (क) वृहद् उद्योगों के उत्पादन की मात्रा में रोक लगाकर, (ख) भिन्नात्मक कराधान, तथा (ग) प्रत्यक्ष अनुदानों के द्वारा समर्थन प्रदान किया था। भारत सरकार ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा 24 जुलाई 1991 को की। औद्योगिक नीति (1991) में कहा गया है कि– ''सरकार उद्यमिता के प्रोत्साहन, शोध एवं विकास में धन निवेश द्वारा देशी तकनीक के विकास, नई तकनीक के प्रवेश, नियामक प्रणाली की समाप्ति, पूँजी बाजार के विकास तथा जन साधारण के लाभ हेतु प्रतिस्पर्धा के विकास को ध्यान में रखकर एक ठोस नीतिगत ढॉचा जारी रखेगी।'' यह भी कहा गया कि– ''औद्योगिकीकरण का देश के पिछड़े क्षेत्रों में विस्तार को उचित प्रेरणाओं, संस्थाओं तथा ढॉचागत निवेश द्वारा प्रोत्साहित किया जायेगा। लाइसेंसिंग नीति समस्त अनुसूचित उपक्रमों का निर्धारित अवधि के लिए सरकार के अधीन अनिवार्य पंजीकरण कराया जाना है। सभी नये उपक्रमों तथा समुचित विस्तार के इच्छुक उपक्रमों को सरकार से लाइसेंस प्राप्त करना होता है। सरकार इनके सम्बन्ध में जॉच करा सकती है तथा आवश्यक निर्देश प्रदान कर सकती है। सरकार इन उद्योगों के प्रबन्धन का अधिग्रहण भी कर सकती है।

13.9 शब्दावली

मिश्रित अर्थव्यवस्थाः एक ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसमें निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व होता है तथा वे आर्थिक विकास में एक दूसरे के पूरक होते हैं।

राष्ट्रीयकरणः निजी क्षेत्र के कम्पनी/उद्योग के स्वामित्व तथा प्रबन्धन का सरकार द्वारा अधिग्रहण करना।

अनुदानः सरकार द्वारा किसी वस्तु के उत्पादन अथवा सेवा को प्रोत्साहित करने के लिए किसी विशिष्ट उद्योग या अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र को सहायता प्रदान करना।

क्षेत्रीय असन्तुलनः विभिन्न क्षेत्रों द्वारा अर्जित विकास के स्तरों में अन्तर।

13.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. .... से तात्पर्य उन सभी उद्‌देश्यों, सिद्धान्तों, नियमों, विनियमों तथा पद्धतियों से है जो कि देश में औद्योगिक विकास, औद्योगिक उपक्रमों की स्थापना व क्रियान्वयन, उद्योगों के स्वामित्व, वृद्धि की दर से सम्बन्धित होते हैं।
2. रक्षा एवं रणनीतिक उद्योगों यथा–आयुध एवं आग्नेयास्त्र (गोला बारुद) के निर्माण, आणविक ऊर्जा के उत्पादन व नियन्त्रण तथा रेलवे के स्वामित्व व प्रबन्धन, को पूर्णतः ....सरकार के एकाधिकार में रहेंगे।
3. .... के अन्तर्गत कोयला, लौह एवं इस्पात, वायुयान निर्माण तथा जलयान निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ व वायरलैस उपकरण को सम्मिलित किया गया है।

4. औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 में उद्योगों को .... श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया।
5. भारत सरकार द्वारा नई औद्योगिक नीति की घोषणा .... को गई।

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. औद्योगिक नीति, 2. केन्द्र, 3. आधारभूत तथा प्रमुख उद्योग,
4. तीन, 5. 24 जुलाई 1991

13.12 स्वपरख प्रश्न

1. औद्योगिक नीति तथा लाइसेंसिंग का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. औद्योगिक नीति 1948 की व्याख्या कीजिए तथा औद्योगिक नीति 1948 की विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।
3. औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 को समझाइए तथा इसकी विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।
4. औद्योगिक नीति 1977 पर एक निबन्ध लिखिए।
5. औद्योगिक नीति 1980 पर एक टिप्पणी लिखिए।
6. औद्योगिक नीति 1991 को विस्तार से समझाइए।
7. औद्योगिक नीति 1991 की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
8. औद्योगिक लाइसेंसिंग का अर्थ तथा इसके विभिन्न उद्देश्य समझाइए।

13.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Aswathappa K. “Essentials of Business Environment”, Himalaya Publication House, Mumbai
2. Francis Cherunilam, “Business Environment”, Himalaya Publication House, Delhi. 20th Edition 2011.
3. Goyal Alok and Goyal Mridula, “Business Envrtonment”, VK(India) Enterprises, Delhi.
4. Jadhav, HV “Business Environment” Himalaya Publication House, Delhi. Ist Edition 2010
5. Neelamegam V. “Business Environment”, Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi, 2nd Edition, 2010.
6. Shukla M.B., “Business Environment Text & Cases”, Taxmann Publication (P) Ltd. Latest Edition 2012, New Delhi.
7. http://vedyadhara.ignou.ac.in/wiki/images/9/9b/MITI-024-B-3-UNIT_11.pdf, dated 28May, 2012

इकाई 14 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम तथा लघु व मध्यम उपक्रम

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में संगठन के प्रकार
14.3 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की भूमिका
14.4 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का मूल्यांकन
14.5 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का संविकास
14.6 लघु एवं मध्यम उपक्रम
14.7 लघु स्तरीय उद्योगों का महत्व
14.8 भारत में लघु स्तरीय उपक्रमों की भूमिका
14.9 लघु स्तरीय उद्योगों की समस्याएं
14.10 सारांश
14.11 शब्दावली
14.12 बोध प्रश्न
14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.14 स्वपरख प्रश्न
14.15 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के संगठन, विकास में भूमिका तथा समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर सकें।
- आय तथा संपदा के पुनर्वितरण को समझ सकें।
- रोजगार के अवसरों की व्याख्या कर सकें।
- संतुलित क्षेत्रीय विकास की व्याख्या कर सकें।
- निजी क्षेत्र के प्रतिष्ठानों की प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए प्रभावी साधनो को जान सकें।

14.1 प्रस्तावना

सन् 1947 से पहले पहले भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का कोई अस्तित्व नहीं था। केवल रेलवे, डाक व तार विभाग, पोर्ट ट्रस्ट, आर्डिनेंस एवं एयरक्राफ्ट फैक्ट्री तथा कुछ राज्य प्रबन्धित उपक्रम यथा– सरकारी नमक फैक्ट्री, कुनैन फैक्ट्री आदि। वस्तुतः औद्योगिक उपक्रमों को सरकारी क्षेत्र द्वारा प्रबन्धित करने की परम्परा 1947 से पूर्व तक अपनी जडें नहीं जमा सकी थी जबकि नियोजन की संकल्पना पर कांग्रेस की सरकारों द्वारा सन् 1931 से ही विचारण किया जा रहा था। अन्ततः, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार औद्योगिक नीति 1956 का अभिन्न अंग बन गया।

स्थापना काल से ही, सेन्ट्रल पब्लिक सेक्टर इन्टरप्राइजेज (सी0पी0एस0ई0) भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ बन गया तथा इसे निम्न अधिदेश के साथ प्रारम्भ किया गया था– (अ) उच्च आर्थिक संवृद्धि के व्यापक आर्थिक उद्देश्यों की

प्राप्ति हेतु कार्य करना, (ब) माल तथा सेवाओं के उत्पादन में आत्म निर्भरता प्राप्त करना, (स) भुगतान सन्तुलन में दीर्घकालिक सन्तुलन प्राप्त करना, तथा (द) मूल्यों में स्थिरता सुनिश्चित करना तथा आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों के लिए उचित मानदण्ड स्थापित करना।

ऐतिहासिक रुप से केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम (सेन्ट्रल पब्लिक सेक्टर इन्टरप्राइजेज– सी0पी0एस0ई0) ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व तथा पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्याप्त महत्व प्राप्त कर लिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम केवल रेलवे, पोस्ट एण्ड़ टेलीग्राफ, पोर्ट ट्रस्ट, ऑर्डिनेंस फैक्ट्री जैसे कुछ निश्चित क्षेत्रों में ही सीमित थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश का आर्थिक पहचान एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था के रुप थी जिसका औद्योगिक आधार कमजोर था, जिसके आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असमानताएं थीं, बचत कम थीं तथा संरचनात्मक सुविधाएं अपर्याप्त थीं। निजी क्षेत्र में पूॅजी की अनुपस्थिति में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को आत्मनिर्भर आर्थिक संवृद्धि की कुंजी माना गया। परिणामस्वरुप, 1948 तथा 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्तावों में केन्द्र सरकार द्वारा आधारभूत क्षेत्र में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना पर विशेष बल दिया गया।

पंचवर्षीय योजनाओं में उठाये गये कदमों के परिणामस्वरुप सी0पी0एस0ई0 की भूमिका भारतीय अर्थव्यवस्था में कई गुना बढ़ गई। इस प्रकार, सी0पी0एस0ई0 जिनकी संख्या प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में 5 थी जिनपर रु0 29 करोड़ की पूॅजी योजित थी, से बढ़कर 31 मार्च 2009 को 246 हो गई जिनमें लगभग रु0 5.3 लाख की पूॅजी योजित थी।

वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों के आगमन के बाद सरकार ने बाजार की शक्तियों के अनुरुप तथा विदेशी निवेश सहित निजी क्षेत्र को वृहद भूमिका प्रदान करते हुए सुनियोजित ढंग से खुली अर्थव्यवस्था की ओर विचलन प्रारम्भ किया। परिणामस्वरुप, केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों को घरेलू निजी क्षेत्र के अतिरिक्त बडी बहुराष्टीय कम्पनियों से भी प्रतिस्पर्धा का सामना करना अपरिहार्य हो गया। प्रतिस्पर्धापूर्ण वातावरण के प्रभाव में सार्वजनिक उपक्रमों ने भी अपनी तकनीक तथा क्षमताओं को उच्चीकृत करने के लिए प्रयास किये जिससे कि वे उदार अर्थव्यवस्था में अपनी सम–स्तरीय प्रतिस्पर्धी कम्पनियों के समान स्तर पर कार्य कर सकें। निरन्तर केन्द्रित प्रयासों के परिणामस्वरुप अनेक सी0पी0एस0ई0 आत्मनिर्भर हो गये हैं तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

परिभाषा

सामान्य शब्दों में सार्वजनिक क्षेत्र का उद्यम वह औद्योगिक, वाणिज्यिक अथवा कोई अन्य आर्थिक गतिविधि है जिसका स्वामित्व व प्रबन्धन केन्द्र अथवा राज्य सरकार अथवा इन दोनों के द्वारा संयुक्त रुप से किया जाता है। अन्तर्राष्टीय सार्वजनिक उद्यम केन्द्र (इन्टरनेशनल सेन्टर फॉर पब्लिक इन्टरप्राइजेज– आई0सी0पी0ई0) यूगोस्लोवाकिया के विशेषज्ञों सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की विषद व्याख्या करते हुए निम्नवत् परिभाषित किया है –

''एक सार्वजनिक उपक्रम वह संगठन है जो कि–

- केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय सरकार के द्वारा 50 प्रतिशत या अधिक स्वामित्व को धारित करता हो।
- सार्वजनिक सरकारों के शीर्ष नियन्त्रण में हो। इसमें उच्चतम प्रबन्घन की नियुक्ति तथा रणनीतिक निर्णयन भी सम्मिलित है।
- किसी विशेष सार्वजनिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए खोले गये हों। ये उद्देश्य बहुविमतीय प्रकृति के हो सकते हैं।
- सार्वजनिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था के अन्तर्गत स्थापित किये जाते हैं।
- व्यापारिक चरित्र की गतिविधियों में संलिप्त हों।
- विनियोग एवं परिणाम के मूल विचार पर आधारित है।
- अपने उत्पाद का वस्तु तथा सेवा के रुप में विपणन करता है।

14.2 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में संगठन के प्रकार

भारत के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में निम्नलिखित तीन स्वरुप प्रयोग किये जाते हैं। ये हैं–

1. विभागीय उपकम, 2. संवैधानिक अथवा सार्वजनिक निगम तथा 3. सरकारी कम्पनी।

1. विभागीय उपकम

इस प्रकार का स्वरुप सामान्यतः उन संगठनों में पाया जाता है कि जहॉ मूलभूत सेवाएं उपलब्ध कराई जानी हों जैसे– रेलवे, डाक सेवाएं, प्रसारण सेवाएं आदि। ये संगठन सरकार के किसी मंत्रालय के अधीन कार्य करते हैं तथा इनका वित्तीयन व नियन्त्रण सरकार के अन्य विभागों के समान ही किया जाता है। ये संगठन उन गतिविधियों में अधिक उपयुक्त माने जाते हैं जिनमें सरकार जनहित में नियन्त्रण किया जाना आवश्यक समझती है। यथा–

1 डाक विभाग
2 रेलवे
3 आल इण्डिया रेडियो
4 दूरदर्शन
5 आयुध फैक्टी

विभागीय उपकमों की विशेषताएं

विभागीय उपकमों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

अ. इनकी स्थापना सरकार द्वारा की जाती है तथा इसका सम्पूर्ण नियन्त्रण सम्बन्धित मन्त्री के अधीन होता है।

ब. ये सरकार का ही अंग होते हैं तथा इन्हें अन्य सरकारी विभागों के समान ही प्रबन्धित किया जाता है।

स. इन्हें सरकारी कोषों से ही वित प्रदान किया जाता है।

द इन्हें बजट, लेखांकन तथा अंकेक्षण के माध्यम से नियन्त्रित किया जाता है।

इ इनकी नीतियों का निर्धारण सरकार द्वारा ही किया जाता है तथा ये संविधान के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

विभागीय उपकमों के लाभ

विभागीय उपक्रमों के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

क. **सामाजिक उद्देश्यों की पूर्तिः** इन उपक्रमों पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होता है। इस रुप में ये सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं। उदाहरणार्थ– दूरस्थ क्षेत्रों में डाक सेवा उपलब्ध कराना, कार्यक्रमों का दृश्य व श्रव्य माध्यम से प्रसारण आदि। इनके द्वारा सामान्य जनता के सामाजिक, आर्थिक तथा बौद्धिक विकास को प्राप्त किया जा सकता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास विभागीय उपक्रमों के माध्यम से किया जाता है।

ख. **संविधान के प्रति उत्तरदायीः** विभागीय उपक्रमों की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में संसद में प्रश्न उठाया जा सकता है तथा सम्बन्धित मन्त्री को अपने उत्तर से सदन को सन्तुष्ट करना होगा। इस प्रकार, विभागीय उपक्रम कोई ऐसा कदम नहीं उठा सकते जो समाज के किसी भी वर्ग के हितों के लिए हानिकारक हो। ये उपक्रम संसद के माध्यम से जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

ग. **आर्थिक गतिविधियों पर नियन्त्रणः** ये उपक्रम सरकार को विशिष्ट आर्थिक गतिविधियों के नियन्त्रण में सहायक होते हैं तथा सामाजिक तथा आर्थिक नीतियों के यन्त्र के रुप में उपयोगी हो सकते हैं।

घ. **सरकारी आय में योगदानः** विभागीय उपक्रमों के समस्त लाभ, यदि हों, सरकार के होते हैं। इससे सरकारी आय में वृद्धि होती है। इसी प्रकार यदि किसी प्रकार का घाटा होता है तो उसकी पूर्ति भी सरकार द्वारा की जाती है।

ड. **कोषों के दुरुपयोग की कम आशंकाः** ये उपक्रम बजटरी लेखांकन के अधीन कार्य करते हैं तथा इन पर अंकेक्षण द्वारा नियन्त्रण किया जाता है, अतः इनमें कोषों के दुरुपयोग की सम्भावना एक बडी सीमा तक कम हो जाती है।

विभागीय उपक्रमों की सीमाएं

विभागीय उपक्रमों की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं–

क. **नौकरशाही का प्रभावः** सरकारी नियन्त्रण में कार्य करने के कारण विभागीय उपक्रमों में उन समस्त बुराइयों का सामना करना पडता है जो कि नौकरशाही की कार्यप्रणाली के कारण आती हैं। उदाहरणस्वरुप– प्रत्येक व्यय के लिए सरकार की अनुमति प्राप्त करनी होती है, कर्मचारियों की नियुक्ति तथा पदोन्नति के मामलों में सरकारी प्रणाली पर आधाारित निर्णयों का पालन किया जाता है तथा अन्य अनेक ऐसे कार्य करने होते हैं। इन समस्त कारणों से निर्णयन में विलम्ब होता है तथा कार्मिकों को शीघ्र पदोन्नति अथवा दण्ड दिया जाना सम्भव नहीं हो पाता है। इन परिस्थितियों में विभागीय उपक्रमों की कार्यप्रणाली में अनेक कठिनाइयॉ उत्पन्न हो जाती हैं।

ख. **अतिशय संसदीय नियन्त्रणः** संसद के अतिशय नियत्रण के कारण विभागीय उपक्रमों को दैनिक गतिविधियों में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता है। संसद में इन उपक्रमों के सम्बन्ध में निरन्तर प्रश्न पूछे जाने के कारण यह परिस्थिति उत्पन्न होती है।

स. **पेशेवर दक्षता का अभावः** विभागीय उपक्रमों को जो प्रशासनिक अधिकारी संचालित करते हैं वे सामान्यतः उक्त कार्य के सम्बन्ध में कोई अनुभव अथवा दक्षता नहीं रखते हैं। अतः इन उपक्रमों का प्रबन्धन पेशेवर ढंग से नहीं होता है जिससे सार्वजनिक कोषों के अपव्यय के सम्बन्ध में नेतृत्व की कमी से जूझते हैं।

द. **लोचशीलता की कमीः** किसी व्यावसायिक उपक्रम की सफलता के लिए लोचशीलता का होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि बदलते समय की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सके। किन्तु विभागीय उपक्रमों में लोचशीलता का अभाव पाया जाता है क्योंकि इसकी नीतियों में त्वरित परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता है।

ड. **अक्षम कार्यप्रणालीः** इन उपक्रमों में अक्षम स्टाफ होने तथा कार्मिकों को उनकी कार्यक्षमता में विकास करने के लिए उचित प्रेरणाओं का अभाव होने के कारण ये उपक्रम अक्षमताओं के शिकार होते हैं।

2. **संवैधानिक निगम**

संवैधानिक निगम वे निगमित निकाय हैं जिनका गठन संसद अथवा राज्य विधान सभा में विशेष अधिनियम के द्वारा किया जाता है। इसकी शक्तियॉ, कार्य तथा प्रबन्धन प्रणाली भी अधिनियम के द्वारा परिभाषित होती हैं। संवैधानिक निगम को सार्वजनिक निगम के रुप में भी जाना जाता है। इसकी पूॅजी पूर्णतः सरकार द्वारा प्रदान की जाती है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं–

1. भारतीय खाद्य निगम (एफ0सी0आई0)
2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई0एफ0सी0आई0)
3. भारतीय जीवन बीमा निगम (एल0आई0सी0आई0)
4. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया (यू0टी0आई0)
5. राज्य व्यापार निगम (एस0टी0सी0)

संवैधानिक निगमों की विशेषताएं

संवैधानिक निगमों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

क. इसका गठन संसद अथवा राज्य विधान परिषद के विशेष अधिनियम के द्वारा किया जाता है।

ख. यह एक स्वायत्त निकाय होता है तथा आन्तरिक प्रबन्धन के सम्बन्ध में यह सरकार के नियन्त्रण से मुक्त होता है तथापि यह संसद तथा राज्य विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी होता है।

ग. इसका स्वतन्त्र वैधानिक अस्तित्व होता है। इसकी पूॅजी पूर्णतः सरकार द्वारा प्रदान की जाती है।

घ. इसका प्रबन्धन निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमें व्यवसाय प्रबन्धन के प्रशिक्षित एवं अनुभवी लोगों को सम्मिलित किया जाता है। निदेशक मण्डल के सदस्यों को सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है।

ड. यह माना जाता है कि ये निगम वित्तीय मामलों में आत्म–निर्भर होंगे तथापि आवश्यक होने पर ये सरकार से ऋण अथवा सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

संवैधानिक निगमों के लाभ

संवैधानिक निगम सार्वजनिक उपक्रमों के लिए संगठन का विशिष्ट प्रकार है। संक्षेप में, इसके लाभों को निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है–

(क) **विशेषज्ञ प्रबन्धनः**

इन निगमों को विभागीय तथा निजी दोनों ही प्रकार के उपक्रमों का लाभ प्राप्त होता है। इन्हें विशेषज्ञ तथा अनुभवी निदेशकों के मार्गदर्शन में व्यापार के सिद्धान्तों के आधार पर संचालित किया जाता है।

(ख) आन्तरिक स्वायत्तताः

इन निगमों के सामान्य प्रबन्धन में सरकार का कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं होता है। इसमें समस्त निर्णय बिना किसी रुकावट के शीघ्रता से लिये जाते हैं।

(ग) संसद के प्रति उत्तरदायीः

संवैधानिक निगम संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इनकी गतिविधियों पर प्रैस तथा जनता की निगाह रहती है। इसलिए इन्हें उच्च दक्षता तथा उत्तरदायित्व की भावना को कायम रखना होता है।

(घ) लोचशीलताः

ये संगठन प्रबन्धन तथा वित्त के मामले में पूर्णतः स्वतन्त्र होते हैं अतः अपने कार्य व्यवहार में इन्हें पर्याप्त लोचशीलता प्राप्त होता है। इसके फलस्वरुप इन्हें उत्तम प्रदर्शन तथा कार्य परिणाम प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(ड.) राष्ट्रीय हितों का सम्वर्द्धनः

संवैधानिक निगम राष्ट्रीय हितों के संरक्षण तथा सम्वर्द्धन को संरक्षित करते हैं। सरकार सम्बन्धित अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत इन संवैधानिक निगमों के सम्बन्ध में नीतिगत दिशा–निर्देश जारी करने हेतु अधिकृत होती है।

(च) कोषों को जुटाना आसानः

सरकार के द्वारा शासित संवैधानिक निकाय होने के कारण ये निगम बाण्डस् के माध्यम से आसानी से धन जुटा लेते हैं।

संवैधानिक निगमों की सीमाएं

संवैधानिक निगमों के लाभों का अध्ययन करने के बाद हमें इनकी सीमाओं को भी जानना होगा। संवैधानिक निगमों की मुख्यतः निम्न सीमाएं प्रदर्शित होती हैं:

(क) सरकारी हस्तक्षेपः

यह सत्य है कि संवैधानिक निगमों का सबसे बड़ा लाभ इनकी स्वतन्त्रता तथा लोचशीलता है किन्तु यह केवल कागजी लाभ ही सिद्ध हुआ है। वस्तुतः अधिकांश मामलों में इन पर सरकारी हस्तक्षेप का आधिक्य ही पाया गया है।

(ख) जड़ताः

संवैधानिक निगमों के कार्यों तथा अधिकारों में संशोधन संसद के द्वारा ही किया जा सकताहै। इसके कारण निगमों को व्यापार की बदलती हुई परिस्थितियों का सामना करने तथा साहसिक निर्णय लेने में अनेक बाधाएं उत्पन्न होती हैं।

(ग) वाणिज्यिक दृष्टिकोण की अनदेखीः

संवैधानिक निगमों को प्रायः कम स्पर्धा का सामना करना पड़ता है तथा इन्हें उच्च क्षमता को प्रदर्शित करने के लिए प्रेरणा कम होती है। इसलिए ये अपने कार्यों का प्रबन्धन करने में वाणिज्यिक सिद्धान्तों की अवहेलना का शिकार हो जाते हैं।

3. सरकारी कम्पनी

सरकारी कम्पनी से आशय उस कम्पनी से है जिसकी प्रदत्त पूॅजी का 51 प्रतिशत अथवा अधिक भाग सरकार द्वारा धारित होता है। इसका पंजीकरण कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत किया जाता है तथा उक्त अधिनियम से ही शासित

होती है। सरकार के स्वामित्व वाली अधिकांश व्यापारिक इकाइयॉ इसी वर्ग में आती हैं।

उदाहरणः

1. हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड (एच0एम0टी0)
2. स्टील अथोरिटी आफ इण्डिया लिमिटेड
3. हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड

सरकारी कम्पनी की मुख्य विशेषताएं

सरकारी कम्पनियों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(क) ये कम्पनी अधिनियम 1956 के अन्तर्गत पंजीकृत होती हैं।

(ख) इसका स्वतन्त्र वैधानिक अस्तित्व होता है। यह मुकदमा कर सकती है, इस पर मुकदमा किया जा सकता है तथा यह अपने नाम पर सम्पत्ति अर्जित कर सकती है।

(ग) सरकारी कम्पनियों की वार्षिक आख्या को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(घ) इसकी पूॅजी पूर्णतः अथवा अंशतः सरकार द्वारा प्रदान की जाती है। अंशतः स्वामित्व वाली सरकारी कम्पनी में पूॅजी सरकार तथा निजी निवेशकों द्वारा लगाई जाती है किन्तु ऐसे मामलों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा न्यूनतम 51 प्रतिशत अंश होना आवश्यक है।

(ड.) इनका प्रबन्धन निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है। निजी क्षेत्र की सहभागिता को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा समस्त अथवा अधिकांश निदेशकों की नियुक्ति की जाती है।

(च) इनकी लेखांकन तथा अंकेक्षण की पद्धति निजी उपक्रमों के समान होती हैं। इसके अंकेक्षक सरकार द्वारा नियुक्त सनदी लेखाकार (चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट) होते हैं।

(छ) इसके कर्मचारी सरकारी कर्मचारी नहीं होते। इसकी कार्मिक नीतियॉ इसके अन्तर्नियमों द्वारा नियमित होती हैं।

सरकारी कम्पनियों के लाभ

सार्वजनिक उपक्रमों के विशिष्ट प्रकार के रुप में सरकारी कम्पनियों के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

(क) स्थापना की आसान प्रक्रियाः

अन्य सार्वजनिक उपक्रमों की तुलना में सरकारी कम्पनी की स्थापना सरल होती है क्योंकि इसके लिए संसद अथवा राज्य विधान परिषद में कोई अधिनियम पारित नहीं करना होता है। इसकी स्थापना कम्पनी अधिनियम की प्रक्रिया को अपनाते हुए सरलता से की जा सकती है।

(ख) व्यापार सिद्धान्तों पर आधारित कुशल कार्यप्रणालीः

सरकारी कम्पनी का संचालन व्यापार के सिद्धान्तों के आधार पर किया जा सकता है। यह वित्तीय तथा प्रशासनिक मामलों में पूर्णतः स्वतन्त्र होती है। सामान्यतः इसके निदेशक मण्डल में कुछ पेशेवर तथा प्रतिष्ठित स्वतन्त्र व्यक्तियों को रखा जाता है।

(ग) कुशल प्रबन्धनः

सरकारी कम्पनियों की वार्षिक आख्या को संसद के दोनों सदनों में चर्चा के लिए रखा जाता है, अतः इनका प्रबन्धन अपनी गतिविधियों के संचालन तथा व्यापार के प्रबन्धन में दक्षता को सुनिश्चित करने के लिए सदैव सतर्क रहती हैं।

(घ) स्वस्थ प्रतिस्पर्धाः

ये कम्पनियॉ प्रायः निजी क्षेत्र के साथ स्वस्थ प्रतिस्पर्धा करती हैं जिससे कि ये गुणवत्ता में किसी प्रकार का समझौता किये बिना उचित मूल्य पर वस्तु एवं सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करती हैं।

सरकारी कम्पनियों की सीमाएं

सरकारी कम्पनियों की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं–

(क) पहल का अभावः

सरकारी कम्पनियों के प्रबन्धन को सदैव ही जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारी का भय रहता है। परिणामस्वरुप, वे सही निर्णय सही समय पर लेने की पहल करने अक्षम रहती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ निदेशक जनता की आलोचनाओं के भय से गतिविधियों में पर्याप्त रुचि नहीं लेते हैं।

(ख) व्यावसायिक अनुभव का अभावः

सामान्यतः इन कम्पनियों का प्रबन्धन प्रशासनिक अधिकारियों के हाथों में रहता है जिनके पास व्यावसायिक संगठनों के पेशेवर प्रबन्धन के अनुभव का अभाव रहता है। अतः अधिकांश मामलों में वे वांछित दक्षता का स्तर प्राप्त करने में असफल रहते हैं।

(ग) नीतियों तथा प्रबन्धन में परिवर्तनः

इन कम्पनियों की नीतियों तथा प्रबन्धन में सरकार के परिवर्तन के साथ ही परिवर्तन हो जाते हैं। नियमों, नीतियों तथा प्रणालियों में बार–बार होने वाला परिवर्तन व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को अस्वस्थ परिस्थितियों की ओर अग्रसर करता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की विशेषताएं

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए इनकी आधारगत विशेषताओं का संक्षेप में निम्नवत् वर्णन किया जा सकता है–

(क) सरकार का स्वामित्व तथा प्रबन्धनः

सार्वजनिक उपक्रमों का स्वामित्व तथा प्रबन्धन केन्द्र अथवा राज्य सरकार अथवा स्थानीय निकाय द्वारा किया जाता है। सरकार या तो इन सार्वजनिक उपक्रमों पर पूर्ण स्वामित्व रखती है या फिर स्वामित्व अंशतः सरकार तथा अंशतः निजी उद्योगपतियों अथवा जनता के पास रहता है। उपरोक्त किसी भी मामले में नियन्त्रण, प्रबन्ध तथा स्वामित्व मूलतः सरकार के पास ही रहता है। उदाहरणार्थ– नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन (एन0टी0पी0सी0) केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित उद्यम है तथा इसका एक अंश जनता द्वारा भी प्रदान किया गया है। इसी प्रकार की स्थिति ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कार्पोरेशन की भी है।

(ख) सरकारी कोषों द्वारा पोषितः

सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा अपनी पूॅजी सरकारी कोषों से जुटाई जाती है तथा सरकार को अपने बजट में इनकी पूॅजी के लिए प्रावधान करना होता है।

(ग) जनहितः

सार्वजनिक उपक्रमों का लक्ष्य लाभ कमाना नहीं होता है। इनका मुख्य ध्यान सेवा अथवा वस्तु को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने पर केन्द्रित होता है। उदाहरण के तौर पर इण्डियन ऑयल तथा गैस एथॉरिटी ऑफ इण्डिया (गेल) जनता को पेट्रोलियम तथा गैस अनुदानित मूल्यों पर उपलब्ध कराते हैं।

(घ) जनोपयोगी सेवाएंः

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के द्वारा जन उपयोग की सेवाओं यथा– यातायात, विद्युत, दूरसंचार आदि को उपलब्ध कराने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

(ङ.) सार्वजनिक उत्तरदायित्वः

सार्वजनिक उपक्रम सरकार की सार्वजनिक नीतियों से शासित होते हैं तथा ये संविधान के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(च) अतिशय औपचारिकताएंः

सरकारी नियमों तथा परिनियमों का अतिशय दबाव होने के कारण सार्वजनिक उपक्रमों को अपने कार्य संचालन में अत्यधिक औपचारिकताओं का निर्वहन करना पड़ता है। इसके कारण प्रबन्धन का कार्य अत्यन्त संवेदनशील तथा जटिल हो जाता है।

14.3 सार्वजनिक उपक्रमों की भूमिका

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तथा योजनाकाल के प्रारम्भ के साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर विस्तार होता गया। औद्योगिक नीति 1956 के प्रस्तर तथा समाज की समाजवादी व्यवस्था को राष्ट्रीय लक्ष्य के रुप में अपनाने के बाद सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका में पुनः सुविचारित विस्तार हुआ।

सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को समझने के लिए हमें भारतीय अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में इसके आकार का अनुमान लगाना होगा। सम्पूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के विशद परिदृष्य के लिए हमें स्वायत्तशासी निगमों तथा विभागीय उपक्रमों से बाहर विचार करना होगा। ऐसा करते समय न केवल केन्द्र सरकार द्वारा संचालित उपक्रमों को सम्मिलित किया जायेगा वरन् राज्य सरकार तथा स्थानीय निकायों को भी इसमें सम्मिलित किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त केवल किसी एक मानक द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र का अनुमान लगाना उचित नहीं होगा, वरन् कुछ अन्य मानकों का प्रयोग भी वांछनीय होगा। उदाहरण के लिए– रोजगार, निवेश, उत्पादन का मूल्य, राष्ट्रीय आय का सृजन, पूॅजी निर्माण तथा पूॅजी स्कन्ध।

14.4 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का मूल्यांकन

यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र 1947 के बाद ही तेजी से आगे आया, तथापि राज्य के स्वामित्व वाले उपक्रमों का विचार काफी पहले से ही आने लगा था। दक्षिण भारत में 11वीं तथा 12वीं सदी में चोल राजाओं द्वारा कावेरी नदी पर बड़े बॉध आदि बनाए जाने लगे थे। ये चोल राजाओं की बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता के अद्भुत दस्तावेज हैं। इसकी पुनरावृत्ति देश के अन्य भागों में भी हुई। भारत केवल मन्दिरों का ही देश नहीं था, वरन् समाज के सतत विकास की ओर प्रवृत्त राज्यों के आर्थिक विकास का भी नमूना थे। ये बॉध आदि जिन्हें राज्य द्वारा जनता के हित के लिए बनाया गया था सार्वजनिक क्षेत्र के अभ्युदय की अनूठा उदाहरण

थे। चोल राजाओं से प्रारम्भ हुए सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक निरन्तर होता रहा। सन् 1947 के बाद सार्वजनिक क्षेत्र एक निवेश योग्य क्षेत्र बन गया क्योंकि सरकार ने यह अनुभव किया कि तीव्र आर्थिक विकास को आर्थिक गतिविधियों में सरकार के हस्तक्षेप के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 तथा 1956 में स्पष्ट रुप से सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की आवश्यकता को प्रतिबिम्बित किया गया है। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र तीव्र गति से विकसित हुआ है तथा हमारी अर्थव्यवस्था का पथ प्रदर्शक बन गया है।

14.5 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का संविकास

राष्ट्रीय आय में अंशः

राष्ट्रीय आय में सार्वजनिक क्षेत्र का विशेष योगदान है। सन् 1960 से 1999 की अवधि में राष्ट्रीय आय में सार्वजनिक क्षेत्र का अंश लगभग दुगना होकर वास्तविक मानकों तथा लेखों में अर्थव्यवस्था की कुल आय का 25 प्रतिशत हो गया। निःसंदेह यह घरेलू गतिविधियों में सार्वजनिक क्षेत्र के बढते महत्व की दृष्टि से आर्थिक संरचना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

संतुलित क्षेत्रीय विकासः

भारत एक विशाल देश है जिसमें जलवायु, जनांकिकी, संसाधन उपलब्धता, उर्वरता तथा भू संरचना में व्यापक अन्तर है। यहॉ एक ही समय में देश का एक भाग भयानक बाढ से जूझ रहा होता है तो वहीं कोई दूसरा भाग भयंकर सूखे की चपेट में होता है। यहॉ विस्तृत बंजर और वीरान धरती भी है तो उसके विपरीत घनी आबादी वाले क्षेत्र भी हैं। औद्योगीकरण इन अन्तरों को पाटने की काफी क्षमता रखता है। उडीसा, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश इस दृष्टि से विचारणीय हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त आर्थिक विकास की विषमताओं का अनुभव करते हुए 1956, 1977 तथा 1980 के औद्योगिक नीति प्रस्तावों में अर्थव्यवस्था की संवृद्धि, तीव्र औद्योगीकरण तथा क्षेत्रीय असंतुलनों की समाप्ति के लिए त्वरित भूमिका की आवश्यकता का अनुभव किया गया। इस संदर्भ में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की भूमिका अनिवार्य माना गया क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र में वृहद उद्योगों की स्थापना क्षेत्रीय असन्तुलनों को रोजगार सृजन, लघु व सहायक उद्योग की वृद्धि तथा आधारभूत संरचना के विकास रुपी परिवर्तन द्वारा दूर करती है। यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के स्थल का चयन आर्थिक व्यवहार्यता पर आधारित होता है, तथापि पिछडे क्षेत्रों का समुचित ध्यान रखा गया है।

संसाधन गतिशीलताः

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने केन्द्र सरकार के संसाधनों में लाभांश, ऋण पर ब्याज के भुगतान, आयकर, आबकारी तथा अन्य कर के रुप में बहुत अधिक योगदान दिया है।

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने विलम्बित आयगत व्ययों के अपलेखन सहित ह्रास प्रावधान, रक्षित लाभ आदि के रुप में अपने लिए आन्तरिक संसाधनों का बडी मात्रा में सृजन किया है। दृष्टव्य है कि केवल वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों को ही आन्तरिक श्रोतों के सृजन की अनुमति होती है।

विकास तथा सम्वर्द्धन गतिविधियों में संलग्न उद्यमों से अधिक मात्रा में लाभार्जन की अपेक्षा नहीं की जाती है।

इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण उच्चता प्राप्त की है तथा आधुनिक भारत के मन्दिर के रुप में स्थान प्राप्त किया है। इनके बिना भारत आत्म निर्भर देशों के उस समुदाय में सम्मिलित नहीं हो सकता था जिन्होंने ने स्वयं को स्थापित किया है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम औद्योगीकरण प्रक्रिया, संरचना आपूर्ति, अयस्क आदि तथा तेजी से बढती अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक पूँजीगत साधनों को जुटाने में अग्रणी रहे हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का निष्पादन सुधारने हेतु सुझावः

1. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में प्रत्येक स्तर पर लागत पर नियन्त्रण,
2. उत्पादन में वृद्धि,
3. पूँजीगत आधार में सुधार,
4. आन्तरिक तथा विदेशी प्रतिस्पर्धियों से स्पर्धा का सामने करने हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के स्तर में सुधार,
5. अतिरिक्त मानवशक्ति की पहचान करना तथा उसका पुनःप्रशिक्षण, पुनःनियोजन तथा स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहन द्वारा उपयोग करना, आदि।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रमुख वर्ग

कोयला

कोयला उद्योग की संवृद्धि दर बढाने, संसाधन के रुप में कोयले की उपलब्धता को अनुकूलतम करने तथा खनन की गुणवत्ता व कार्य की दशाओं को सुधारने के लिए सार्वजनिक कोषों के निवेश उपलब्ध कराने की दृष्टि से कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण 1970 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में किया गया। परिणामस्वरुप कोयला उद्योग पर केन्द्र व राज्य सरकार के सार्वजनिक उद्यमों का बोलबाला हो गया।

कच्चा तेल तथा प्राकृतिक गैस

खनन क्षेत्र में कच्चा तेल व प्राकृतिक गैस एक अन्य उद्योग है जिसे केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के रुप में पहचाना जाता है, यद्यपि नई एक्सप्लोरेशन लाइसेंसिंग पालिसी 1999 के बाद इस उद्योग में निजी क्षेत्र के उद्यमियों की निरन्तर बढती पैठ के रुप में एक बडा परिवर्तन प्रकट हुआ है। वित्तीय वर्ष 2009 में तेल तथा गैस के कुल घरेलू उत्पादन का लगभग 81 प्रतिशत भाग केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से प्राप्त हुआ। इसमें तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग– ओ0एन0जी0सी0 तथा ऑयल इण्डिया लिमिटेड– ओ0आई0एल0 की कुल उत्पादन में क्रमशः 89 प्रतिशत तथा 11 प्रतिशत की हिस्सेदारी थी।

पेट्रोलियम शोधन तथा विपणन

केन्द्र सरकार द्वारा एडमिनिस्टर्ड प्राइसिंग मैकेनिज्म (ए0पी0एम0) के द्वारा मूल्यों पर पर्याप्त नियन्त्रण लगा देने के कारण पेट्रोलियम शोधन तथा विपणन के क्षेत्र में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का वर्चस्व परम्परागत रुप से बना रहा है।

ऊर्जा उत्पादन

भारत में ऊर्जा उत्पादन के त्वरित विकास के लक्ष्य के साथ राष्ट्रीय विद्युत नीति के आगमन के बाद ऊर्जा के उत्पादन में समुचित वृद्धि हुई जिससे वित्तीय वर्ष 2009 में कुल उत्पादन 723.8 बीयू हो गया। फलस्वरुप वित्तीय वर्ष 2005–2009 के काल में सी0ए0जी0आर0 5.5 प्रतिशत हो गई। यद्यपि विगत कुछ वर्षों में ऊर्जा के उत्पादन में विविधीकरण के लिए वैकल्पिक श्रोतो यथा–बायोगैस, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि को अधिक महत्व प्रदान किया गया तथापि वाष्प ऊर्जा उत्पादन भारत में कुल ऊर्जा उत्पादन के 80 प्रतिशत के साथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण श्रोत बना रहा।

दूरसंचार

दूरसंचार के क्षेत्र में भारत में तारयुक्त तथा बेतार संचार दोनों ही क्षेत्रों में अतुलनीय क्रान्ति हुई है जिससे वैश्विक मानकों के आधार पर बढते हुए विगत दशक में भारत ने विश्व के बेतार संचार के बाजार में दूसरा स्थान प्राप्त कर लिया है। भारतीय दूरसंचार नियामक आयोग–(टी0आर0एं0आई0) के अनुसार भारत में वर्तमान उपभोक्ता आधार 65 करोड का है जिसमें से लगभग 94 प्रतिशत भाग बेतार संचार या मोबाइल फोन का है। बेतार क्रान्ति के क्षेत्र में जहॉ निजी क्षेत्र प्रभावशाली भूमिका में है, वहीं तारयुक्त संचार के क्षेत्र में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम का ही वर्चस्व बना है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों के प्रमुख योगदान

भारत के सकल घरेलू उत्पादन (जी0डी0पी0) में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों की अंश

केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का कुल व्यापार वर्ष 2005 में रु0 7.4 लाख करोड की तुलना में वर्ष 2009 में लगभग रु0 12.6 लाख करोड पहुॅच गया जिससे 2005–2009 की अवधि में सी0ए0जी0आर0 14.1 प्रतिशत पहुॅच गया। कुल व्यापार की दृष्टि से केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों (सी0पी0एस0ई0) का भारत के सकल घरेलू उत्पाद में अंश इस अवधि में लगभग 22–23 प्रतिशत था।

केन्द्रीय आयों में योगदान

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों व शुल्कों के भुगतान, लाभांश भुगतान, सरकारी ऋणों पर ब्याज आदि के भुगतान के द्वारा केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का भारत की सार्वजनिक आय में महत्वपूर्ण योगदान है।

विदेशी विनिमय की आय में योगदान

केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का भारत की कुल विदेशी विनिमय से आय में वस्तु व सेवाओं (यथा– रायल्टी, तकनीकी ज्ञान, पेशेवर तथा सलाहकारी सेवा शुल्क) के निर्यात के माध्यम से विगत पॉच वर्षो में लगभग दस प्रतिशत का महत्वपूर्ण योगदान है।

संगठित क्षेत्र में रोजगार सृजन में योगदान

वर्ष 2007 में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों द्वारा 16.14 लाख व्यक्तियों (आकस्मिक तथा संविदा श्रमिकों के अतिरिक्त) को रोजगार प्रदान किया गया जो संगठित क्षेत्र में देश में कुल रोजगार का 6 प्रतिशत भाग है।

बाजार पूॅजीकरण में योगदान

पूँजी बाजार में सूचीबद्ध केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों की बाजार पूँजीकरण में संवृद्धि को देखते हुए यह अनुभव किया गया कि ये उपक्रम निवेशकों/हितधारकों के लिए बडे सम्पदा सर्जक बन गए हैं। 31 मार्च 2009 को 41 सूचीकृत इकाइयों का बाजार पूँजीकरण बी0एस0ई0 बाजार पूँजीकरण का 26.4 प्रतिशत पहुँच गया जो कि वर्ष 2008 में 21.8 प्रतिशत था।

वाह्यवर्ती निवेश

केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का वाह्यवर्ती निवेश के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान रहा है, विशेषतः ओ0एन0जी0सी0 विदेश लि0 (ओएनजीसी के पूर्ण स्वामित्व वाली अनुषंगी) द्वारा जो कि समुद्रपारीय खोज तथा उत्पादन गतिविधियों में संलग्न है। अन्य वाह्यवर्ती निवेश वाले प्रमुख केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों में इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन, जी0ए0आई0एल0, बी0एच0ई0एल0, एन0टी0पी0सी0, आर0आई0टी0ई0एस0 आदि प्रमुख हैं।

सरकार के बजट सहयोग में कमी के माध्यम से आत्म निर्भरता में वृद्धि

प्रारम्भिक वर्षों यहॉ तक कि नब्बे के दशक तक एक बडी संख्या में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम केन्द्र सरकार की बजट सहायता पर निर्भर रहते थे किन्तु धीरे–धीरे इस प्रकार के केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमो की संख्या कम होती चली गई।

14.6 लघु एवं मध्यम उपक्रम

प्रस्तावना

लघु स्तरीय उद्योगों का भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये देश की प्रगति में रणनीतिक भूमिका का निर्वहन करते हैं। ये उद्योग आर्थिक संवहन की मंच के रुप में देश को परम्परागत वर्ग से आधुनिक वर्ग में स्थापित करने के लिए प्रतिनिधिस्वरुप कार्य करते हैं। इन उद्योगों की विविधता में इस प्रक्रिया का परम्परागत स्वरुप प्रदर्शित होता है। कुछ लघु उद्योगों में सामान्य दक्षता तथा मशीनी प्रणाली की आवश्यकता होती है तो अन्य अनेकों में आधुनिक तथा उच्चीकृत तकनीक का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में हमारी अर्थव्यवस्था आर्थिक संवृद्धि की चुनौतियों से जूझ रही है। इसे अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों (यथा–कृषि व उद्योग) की उत्पादकता में उनकी उत्पादन तकनीक में सुधार द्वारा वृद्धि करना है। लघु उद्योगों को इन अपेक्षाओं की पूर्ति काफी मितव्ययी तथा वैविध्यपूर्ण ढंग से करनी है।

लघु उद्योग भारतीय आर्थिक ढॉचे के अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग के रुप में कार्य करते हैं। ये राष्ट्रीय नियोजन के कार्यक्रम में सतत अंग के रुप में कार्य करते हैं। ये भारतीय अर्थव्यवस्था के रणनीतिक अंग है, साथ ही ये प्रगतिशील तथा प्रभावशाली विकेन्द्रित क्षेत्र भी हैं जो कि कृषि तथा मध्यम व वृहद उद्योगों से निकट से जुडा है। समाज की समाजवादी संरचना, जिसमें सभी को रोजगार उपलब्ध हो, की सम्पूर्ण योजना आर्थिक गतिविधियों विकेन्द्रित तथा व्यापक वितरण, उद्यमिता तथा आर्थिक लाभों पर निर्भर है। भारतीय नियोजन के मूल सामाजिक दर्शन में मध्यम व वृहद उद्यम क्षेत्र का विकास केवल आधुनिक तकनीक का लाभ लेने के लिए है। अन्य क्षेत्रों के लिए लघु स्तरीय उद्योगों को सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा। यदि स्तर में परिवर्तन होता है तो उसे समतल तथा लम्बवत सहयोग तथा पारस्परिक सहमति से विकसित किया जायेगा।

सरकार द्वारा सन् 1951 में नियोजित अर्थव्यवस्था के प्रारम्भ तथा बाद की औद्योगिक नीतियों में योजनाकारों तथा सरकार ने लघु उद्योगों तथा मध्यम आकार उद्योगों के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विशेष भूमिका चिन्हित की। दोनों ही क्षेत्रों विशेषतः लघु उद्योगों के लिए 1951 से 1991 में उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की नीति अपनाने तक विशेष संरक्षण प्रदान किया गया। कुछ उत्पादों को लम्बे समय तक केवल लघु उद्योगों के लिए आरक्षित कर दिया गया, यद्यपि उत्पादों की यह सूची बदलती औद्योगिक नीतियों तथा वातावरण के आधार पर निरन्तर छोटी होती गई है।

लघु व मध्यम उद्योगों ने सदैव सरकार की सामाजिक आर्थिक नीतियों का प्रतिनिधित्व किया है जिसमें विदेशी विनिमय के पूँजीगत वस्तुओं के आयात हेतु विवेकपूर्ण प्रयोग, श्रम आधारित उत्पादन प्रणाली, रोजगार सृजन, आर्थिक शक्तियों के कुछ हाथों (जैसा कि बडें औद्योगिक घरानों में था) से विकेन्द्रित तथा विखण्डित करने, उत्पादन व विपणन में एकाधिकारी व्यवहारों को हतोत्साहित करने तथा अन्ततः न्यूनतम आयात केन्द्रित गतिविधियों द्वारा देश के अर्जित विदेशी विनिमय का प्रभावशाली सहयोग सुनिश्चित करने पर विशेष बल दिया गया। इसमें औद्योगिक गतिविधियों को किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र से विकेन्द्रित करने की नीति भी साथ ही जुडी रही।

यह पाया गया है कि लघु व मध्यम उद्योगों द्वारा सरकार की अपेक्षाओं को सदैव पूरा किया है। लधु व मध्यम उद्योगों का विकास इस प्रकार हुआ है कि उन्होंने निम्न उद्‌देश्यों को भी पूर्ति की है–

- घरेलू उत्पादन में उच्च योगदान
- निर्यात से भरपूर आय
- निवेश की कम आवश्यकता
- संचालनगत लोचशीलता
- स्थल आधारित वहनीयता
- न्यून आयात
- देशी तकनीक के विकास की क्षमता
- आयात प्रतिस्थापन
- रक्षा उत्पादों के प्रति योगदान
- तकनीक उम्मुख उद्योग
- घरेलू तथा निर्यात बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता

उपरोक्त के साथ ही लघु व मध्यम उद्योगों की कुछ सीमाओं को भी जान लेना उचित होगा, जो कि निम्नलिखित है–

- अल्प पूँजी आधार
- कार्यप्रणाली एक–दो व्यक्तियों पर संकेन्द्रित
- अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का अपर्याप्त अनुभव
- विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू0टी0ओ0) युग के प्रभावों का सामना करने में अक्षम

- शोध एवं विकास के प्रति अपर्याप्त योगदान
- पेशेवर दक्षता का अभाव

उपरोक्त सीमाओं के उपरान्त भी लघु व मध्यम उद्योगों का तकनीकी विकास तथा निर्यात के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लघु व मध्यम उद्योग भारतीय उद्योग जगत में लगभग समस्त महत्वपूर्ण क्षेत्रों में स्थापित किये जाते रहे हैं। यथा–

- कृषि निवेश
- रसायन एवं औषधि
- इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रिकल्स तथा इलैक्ट्रोनिक्स
- इलैक्ट्रो–मेडिकल उपकरण
- कपडा तथा सिले हुए वस्त्र
- चमडा तथा चमडे का सामान
- मॉस के उत्पादन
- बायो–इंजीनियरिंग
- खेल का सामान
- प्लास्टिक के उत्पाद
- कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर, आदि।

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के साथ डब्ल्यू0टी0ओ0 युग के प्रभाव के कारण भारतीय लघु व मध्यम उद्योग अभी संक्रमण काल से गुजर रहा है। भारत तथा विदेशों, विशेषतः अमेरिका तथा यूरोपीय संघ, की अर्थव्यवस्था में मंदी तथा चीन तथा कुछ अन्य कम लागत वाले विदेशी उत्पादन केन्द्रों के साथ प्रतियोगिता में वृद्धि के कारण अनेकों इकाइयॉ अपने बुरे दौर में हैं। वर्तमान चुनौती का सामना करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था में अपने योगदान द्वारा उच्च सफलता वे लघु व मध्यम उद्यम (एस0एम0ई0) ही प्राप्त कर सकेंगे जिनका तकनीकी आधार मजबूत है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक दृष्टिकोण है, प्रतिस्पर्धात्मक भावना है तथा जो स्वयं की पुनर्सरचना करने की ईच्छाशक्ति रखते हों।

लघु, मध्यम तथा सूक्ष्म उद्यमों (एम0एस0एम0ई0) की परिभाषाः

लघु, मध्यम तथा सूक्ष्म उद्यम विकास अधिनियम 2006 की धारा 7 व उपधारा 1 में निहित शक्तियों का उपयोग करते हुए तथा धारा 7 की उपधारा 4 के आधार पर सलाहकार समिति की अनुशंसा के आधार पर केन्द्र सरकार यह संसूचित करती है कि निम्नलिखित उद्यम, चाहे वे एकल स्वामित्व में हो, अविभाजित हिन्दू परिवार हों, व्यक्तियों के समूह, सहकारी समिति, साझेदारी अथवा उपक्रम हों या कोई अन्य वैधानिक संस्था हो चाहे उन्हें किसी भी नाम से संबोधित क्यों न किया जाये–

औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम 1951 की प्रथम अनुसूची में विशिष्टीकृत किसी विशेष उद्योग से सम्बन्धित वस्तुओं के निर्माण अथवा उत्पादन में संलग्न उपक्रम, यथा–

(क) सूक्ष्म उपक्रम जिनमें प्लान्ट व मशीन में निवेश रु0 पॉच लाख से अधिक न हो।

(ख) लघु उपक्रम जिनमें प्लान्ट व मशीन में निवेश रु0 पॉच लाख से अधिक किन्तु पॉच करोड से कम हो।

(ग) मध्यम उपक्रम जिनमें प्लान्ट व मशीन में निवेश रु0 पॉच करोड से अधिक किन्तु दस करोड से कम हो।

14.7 लघु स्तरीय उद्योगों का महत्व

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में बताया गया है कि लघु उद्योग क्षेत्र देश में रोजगार प्रदान करने, उद्योगों के विकेन्द्रण, उद्यमिता के प्रोत्साहन तथा परिवर्तन की असीम सम्भावनाएं रखते हैं। निम्नांकित बिन्दु लघु स्तरीय उद्योगों के महत्व को प्रमुखता से प्रकट करते हैं–

1. **स्माल इज ब्यूटीफुलः** ई0एं0 शूमाकर का कथन है– स्माल इज ब्यूटीफुल अर्थात् जो छोटा है वह सुन्दर है। उनके अनुसार मनुष्य की लाभ व प्रगति के लिए लालसा ने संगठनों को विशालकाय रुप दिया है तथा विशिष्टीकरण का बढावा दिया है जिसके परिणामस्वरुप सकल अक्षमता, वातावरण में प्रदूषण तथा अमानवीय कार्य की दशाएं उत्पन्न हुई हैं। शूमाकर ने छोटी कार्यात्मक इकाइयों, सामाजिक स्वामित्व तथा क्षेत्रीय कार्यस्थल जिसमें स्थानीय श्रमिक तथा संसाधनों का उपयोग हो, पर बल दिया है। उनके अनुसार वस्तु के स्थान पर मनुष्य को अधिक महत्व प्रदान किया जाना चाहिए।
2. **नवोन्मेषी तथा उत्पादकः** छोटी इकाइयॉ अधिक नवोन्मेषी होती हैं यद्यपि उनके पास स्वयं के शोध व विकास की इकाइयॉ नहीं होती हैं। "...... व्यापार में नवोन्मेष तथा सफलता का एक भाग छोटे समूहों के अनायास प्रयासों से प्राप्त होता है, जो भारी लागत वाले बडे कार्यो की तुलना में अधिक सफल होते हैं।"
3. **व्यक्तिगत स्वाद, फैशन तथा व्यक्तिगत सेवाः** छोटी फर्म ग्राहकों की बदलती रुचि, तथा फैशन को समझने तथा तदनुसार अपने उत्पादन तथा उत्पादन की प्रक्रिया को सुधारने में अधिक तेज होती हैं । उद्योग के अन्तर्गत छोटी फर्मों को वैयक्तिक सेवाएं प्रदान करने, लोचशीलता तथा व्यापार व तकनीकी वातावरण सम्बन्धी परिवर्तनों को शीघ्र अपनाने के मामले में एक बढत प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए वस्त्र तथा इलैक्ट्रिोनिक्स के क्षेत्र में छोटी इकाईयों ने राज किया है। वस्त्र तथा टी0वी0 उद्योगों में बदलाव यह बताता है कि बडी कम्पनियों ने अपनी उत्तरदायित्वों को नीचे की ओर अग्रसारित किया है तथा आवश्यक होने पर भी स्वयं तेजी से अपनी राह को बदला नहीं है। एक वस्त्र विशेषज्ञ के अनुसार– ''वस्त्र उद्योग बदलते फैशन पर आधारित एक व्यक्तिगत अभिरुचि वाला क्षेत्र है जिसे नियन्त्रित किया जाना आवश्यक है।'' पेशेवर प्रबन्धों को इसके लिए कोई अभिप्रेरण नहीं होता है। इलैक्ट्रोनिक उद्योग में यह माना जाता है कि बडी फर्मों को अपनी लोच के अभाव के कारण अभी तक सीमित सफलता ही प्राप्त हो सकी है।
4. **राष्ट्रीय पहचान का प्रतीकः** लघु उद्यम प्रायः स्थानीय स्वामित्व तथा नियन्त्रण के लिए जाने जाते हैं तथा केवल ये ही परिवारिक व सामाजिक प्रणाली तथा उन सांस्कृतिक परम्पराओं को नष्ट करने के स्थान पर

मजबूत करते हैं जो स्वयं अपने अधिकारों के साथ ही राष्ट्र की पहचान के प्रतीक के रुप में महत्वपूर्ण होते हैं।

14.8 भारत में लघु स्तरीय उपक्रमों की भूमिका

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु स्तरीय उपक्रमों की भूमिका को कम करके नहीं ऑका जा सकता है। लघु स्तरीय उद्यम (एस0एस0आई0) रोजगार सृजन तथा संवृद्धि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। देश के कुल औद्योगिक उत्पादन मूल्य का 40 प्रतिशत भाग लघु उद्योगों की श्रेणी से प्राप्त होता है। बडे उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों द्वारा पॉच गुना रोजगार सृजित किया गया है। संक्षेप में, भारत में लघु उद्योगों की भूमिका निम्नलिखित है–

1. **इकाइयों की संख्याः** लघु स्तरीय उद्यमों की कुल इकाइयों की संख्या तेजी से बढ रही है। 1973–74 में 4.20 लाख की तुलना में यह संख्या 2003–04 में 115.22 लाख पहुॅच गई। लघु उद्यम क्षेत्र के लिए आरक्षित सूची 1972 में 177 से बढकर 1984 में 873 पर पहुॅच गई। इन इकाइयों के द्वारा 75000 से भी अधिक उत्पादों को तैयार किया जाता है। निर्माणी उद्यमों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के द्वारा 1994–95 में कराये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार, कुल पंजीकृत इकाइयों में से 72.4 प्रतिशत इकाइयॉ ग्रामीण क्षेत्रों में तथा मात्र 27.6 प्रतिशत इकाइयॉ शहरी क्षेत्रों स्थापित थीं।
2. **रोजगार सृजनः** लघु स्तरीय उद्यम श्रम प्रधान होते हैं, अतः बडी मात्रा में रोजगार का सृजन कर रहे हैं। लघु स्तरीय उद्यमों द्वारा सृजित कुल रोजगार 1973–74 में 39.7 लाख था जो कि 2003–04 में बढकर 273.97 लाख पहुॅच गया। योजना आयोग के अनुसार, 2002–03 में 120 लाख लोग हथकरघा उद्योग, 15 लाख खादी में, 55 लाख रेशम उद्योग में, 36 लाख ग्रामोद्योग में तथा 64 लाख दस्तकारी उद्योग में रोजगाररत था।
3. **कलात्मक वस्तुएंः** भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग ही कलात्मक वस्तुओं का निर्माण करते हैं। इन कलात्मक वस्तुओं में बनारसी साडियॉ, हाथी दॉत का काम, कालीन, कलात्मक बर्तन, मीनाकारी वाले आभूषण आदि सम्मिलित हैं। इन वस्तुओं के लिए विदेशों में तैयार बाजार उपलब्ध है। वर्ष 2001–02 में दस्तकारी वस्तुओं का रु0 4,406 करोड तथा रत्न व आभूषणों का रु0 34,845 करोड का निर्यात किया गया। इसप्रकार इन उद्योगों ने विदेशी मुद्रा के बडी मात्रा में अर्जन में विशेष सहायता की।
4. **उद्योगों का क्षेत्रीय वितरणः** लघु स्तरीय उद्यम औद्योगिक इकाइयों के देश के विभिन्न क्षेत्रों में वितरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त लघु उद्यम शहरीकरण की बुराइयों जैसे– मकानों की कमी, मूल्य वृद्धि आदि से भी बचाते हैं।
5. **औद्योगिक शान्तिः** इस प्रकार के उद्यमों में औद्योगिक सम्बन्ध प्रत्यक्ष तथा मधुर होते हैं जिससे कि लघु स्तरीय उद्यमों में अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध पाये जाते है। इनके कारण औद्योगिक विवादों में कमी आती है तथा औद्योगिक शान्ति का वातावरण रहता है जो सम्पूर्ण समाज के लिए लाभदायक होता है।

6. **राष्ट्रीय आय का समान वितरणः** लघु स्तरीय उद्यमों के पक्ष में सबसे बडा तर्क यह दिया जाता है कि ये राष्ट्रीय आय व सम्पदा के समान वितरण को सुनिश्चित करते हैं। ऐसा निम्नलिखित दो कारणों से होता है–
   अ. वृहद स्तरीय उद्यमों की तुलना में लघु स्तरीय उद्यमों का स्वामित्व अधिक व्यापक होता है, तथा
   ब. लघु उद्यम के द्वारा वृहद उपक्रमों की तुलना में अधिक रोजगार प्रदान किया जाता है।
7. **औद्योगिक विवादों में कमीः** लघु तथा कुटीर उद्योगों के अनेक समर्थक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि वृहद उद्योगों की तुलना में इन उद्योगों में औद्योगिक अशान्ति काफी कम होती है। जहॉ बडे उद्योगों में प्रायः हडताल तथा तालाबन्दी का वातावरण रहता है, लघु उद्योगों में इस प्रकार की समस्याओं का सामना नहीं करना पडता है। इसप्रकार लघु व कुटीर उद्योगों के उत्पादन को हानि नहीं होती है। यह तर्क पूर्णतः सत्य नहीं है। वस्तुतः वृहद उद्योगों में श्रमिक अधिक संगठित होते हैं, इसलिए यहॉ हडताल व तालाबन्दी का समाचार माध्यमों में अधिक प्रचार होता है। लघु व कुटीर उद्योगों में श्रमिक असंगठित होते हैं तथा हडताल नहीं कर पाते हैं। यदि कोई श्रमिक विरोध करता है तो उसे तुरन्त ही बाहर कर दिया जाता है। इसीकारण यद्यपि लघु व कुटीर उद्योगों में सतही तौर पर नियोक्ता तथा कर्मचारी के सम्बन्ध सामान्य प्रदर्शित होते है किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है।

14.9 लघु स्तरीय उद्योगों की समस्याएं

1. **कच्चे माल तथा शक्ति की समस्याः** इन उद्योगों को उचित मात्रा में कच्चा माल सही मूल्य पर नहीं मिल पाता है। उचित गुणवत्ता वाला माल न मिल पाना भी एक अन्य समस्या है जिसके कारण इन उद्योगों द्वारा उच्च गुणवत्तापूर्ण सामग्री का उत्पादन करने में बाधा आती है। साथ ही इन इकाइयों के द्वारा उत्पादित सामग्री की उत्पादन लागत अधिक आती है, परिणामस्वरुप ये उद्योग वृहद उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते हैं। इन उद्योगों को शक्ति (विद्युत) तथा कोयले की कमी की समस्या का भी सामना करना पडता है।
2. **विपणन समस्याएंः** सामान्यतः लघु क्षेत्र उद्यमों को अपने माल को उचित मूल्य पर बेचने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता है। लघु उद्यमों के पास सामान्यतः अपने उत्पाद का प्रभावशाली विपणन करने के लिए संसाधनों तथा विशेषज्ञता की कमी होती है। ये उद्यमी वित की कमी के कारण आकर्षक उधार बिक्री की नीति भी नहीं अपना सकते हैं। यद्यपि सरकार द्वारा इस क्षेत्र में कुछ कदम उठाये गये हैं किन्तु ये भी लघु उद्यमों की विपणन समस्याओं को दूर करने में सक्षम नहीं हैं।
3. **सुयोग्य उद्यमियों का अभावः** ये उद्योग प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित हैं तथा अक्षम उद्यमियों द्वारा संचालित हैं। श्रमिक प्रायः अशिक्षित होतें हैं। उद्यमी नए उपकरणों तथा उत्पादन की आधुनिक तकनीकों से अनजान होते हैं। भारतीय स्टेट बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार, इन उद्योगों की असफलता का एक कारण योग्य तथा दक्ष उद्यमियों का अभाव है।

4. **विज्ञापन का अभावः** जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है, ये उद्योग वित्तीय संसाधनों की कमी से ग्रस्त हैं तथा यही कारण है कि ये उपक्रम उच्च विज्ञापन लागत का भार नहीं उठा सकते। विज्ञापन के अभाव में इन उद्योगों उत्पाद की मॉग कम रहती है।
5. **वित्तः** लघु उद्योगों के समक्ष वित सबसे बडी समस्या है। वित किसी संगठन का जीवन रक्त होता है तथा कोई भी संगठन पर्याप्त वित के अभाव में अपना उचित प्रकार संचालन नहीं कर सकता। पूँजी की कमी तथा ऋण सुविधाओं का अभाव इस समस्या के प्रमुख कारण हैं। प्रथमतः पर्याप्त मात्रा में कोष उपलब्ध नहीं हैं तथा द्वितीयतः अपने कमजोर वित्तीय आधार के कारण उद्यमी की ऋण लेने की क्षमता भी कम होती है। न तो उनके पास अपने संसाधन होते हैं और न ही वे ऋण लेने की स्थिति में होते हैं। उद्यमियों को साहूकारों से मनमानी दरों पर ऋण प्राप्त करने के लिए विवश होना पडता है जिसके कारण उनका सारा गणित गडबडा जाता है। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों के द्वारा इस क्षेत्र को ऋण प्रदान किया जाना प्रारम्भ हुआ। ये उद्यम अभी तक उच्च लागत वाले तथा अपर्याप्त मात्रा में उपलब्ध वित्त की समस्या से जूझ रहे हैं। इन उद्यमों के द्वारा विभिन्न सामाजिक उद्देश्यों को भी पोषित कर रहे हैं तथा इनके कार्यो को बढावा देने के लिए इन्हें आसान नियम व शर्तों पर पर्याप्त मात्रा में ऋण प्रदान किया जाना आवश्यक है।
6. **तकनीकः** लघु स्तरीय उद्यम आधुनिकतम तकनीक से पूर्णतः परिचित नहीं हैं। इसके अतिरिक्त उनके पास अपने प्लाण्ट व मशीनरी के आधुनिकीकरण के लिए पर्याप्त संसाधन भी नहीं होते हैं। उत्पादन की अप्रचलित प्रणालियों के प्रयोग के कारण इन उद्यमों को उच्च लागत, कम गुणवत्ता तथा कम उत्पादन की समस्या से जूझना पडता है। ये उद्यम किसी भी प्रकार अपने प्रतिद्वन्द्वी आधुनिक संयन्त्रों से युक्त वृहद आकार वाले उद्यमों का सामना करने की स्थिति में नहीं होते हैं।
7. **परियोजना नियोजनः** लघु स्तरीय उद्यमों की एक अन्य समस्या इनका कमजोर परियोजना नियोजन है। ये उद्यमी व्यवहार्यता (आर्थित तथा तकनीकी दोनों) सम्बन्धी अध्ययन से जुडे नहीं होते हैं तथा मात्र उत्साह तथा अतिरेक के आधार पर ही उद्यमिता की गतिविधि से जुड जाते हैं। इन्हें परियोजना प्रारम्भ करने पूर्व मॉग सम्बन्धी पहलुओं, विपणन समस्याओं, कच्चे माल के श्रोत तथा यहॉ तक कि उचित आधारभूत संरचना की उपलब्धता की भी अधिक चिन्ता नहीं होती है। तकनीकी तथा वित्तीय उपादेयता के साथ ही ये परियोजना के व्यवहार्यता विश्लेषण को भी अधिक महत्व प्रदान नही ंकिया जाता है। अनुभवहीनता तथा अभिलेखों की अपूर्णता के कारण व्यापार संवर्द्धन सम्बन्धी औपचारिकताओं में सदैव विलम्ब हो जाता है। छोटे उद्यमी प्रायः अवास्तविक व्यवहार्यता रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं तथा अक्षम उद्यमी परियोजना विवरणों को ठीक से समझने तक में असमर्थ होते हैं। सीमित साधनों के कारण ये लोग विशेषज्ञ सलाहकारो की सेवा लेने की स्थिति में भी नहीं होते हैं। इसके परिणामस्वरुप परियोजना का नियोजन तथा क्रियान्वयन दोनों ही कमजोर

होते हैं। समय तथा लागत सम्बन्धी कारकों के कारण लघु उद्यमियों के हित सदैव दुष्प्रभावित होते हैं।

14.10 सारांश

सामान्य शब्दों में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम ऐसे औद्योगिक, वाणिज्यिक अथवा अन्य आर्थिक गतिविधि वाले आस्थान होते हैं जो केन्द्र अथवा राज्य अथवा दोनों के संयुक्त स्वामित्व तथा प्रबन्धन में होते हैं। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों के तीन प्रकार पाये जाते हैं, ये हैं– (1) विभागीय उपक्रम (2) संवैधानिक अथवा सार्वजनिक उपक्रम, तथा (3) सरकारी कम्पनी। सार्वजनिक क्षेत्र प्रबलता के साथ सन् 1947 बाद आगे आया जबकि सरकारी उपक्रमों का विचार काफी पूर्व से ही प्रचलित था। दक्षिण भारत में कावेरी नदी पर चोल राजाओं द्वारा बडे बॉध 11वीं तथा 12 वीं शताब्दी में निर्मित किये गये। ये चोल राजाओं की बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता के भव्य दस्तावेज हैं।

लघु स्तरीय उद्योगों की भारत जैसे विकासशील देशों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये देश के विकास में एक रणनीतिक भूमिका का निर्वाह करते हैं। ये उद्योग परम्परागत जगत से आधुनिक जगत की ओर आर्थिक संक्रमण की अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन उद्योगों के विविधीकरण में इस प्रक्रिया की परम्परागत प्रकृति के दर्शन होते हैं। कुछ लघु उद्योगों में सामान्य दक्षता तथा तकनीक की आवश्यकता होती हैं जबकि बहुत से अन्य में आधुनिक तथा परिष्कृत तकनीक का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में हमारी अर्थव्यवस्था आर्थिक संवृद्धि की चुनौती का सामना कर रही है। लधु उद्योग क्षेत्र रोजगार प्रदान करने, उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण, उद्यमिता को प्रोत्साहित करने तथा राष्ट्र में बदलाव लाने की दृष्टि से संभावनावान क्षेत्र है। इस क्षेत्र की भूमिका को भारतीय अर्थव्यवस्था में कम करके नहीं ऑका जा सकता। लघु उद्यम क्षेत्र रोजगार सृजन तथा संवृद्धि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। लघु स्तर उद्यमों के उत्पादन का मूल्य देश में कुल औद्योगिक उत्पादन के 40 प्रतिशत भाग के बराबर है।

14.11 शब्दावली

सार्वजनिक क्षेत्र का उद्यमः वह औद्योगिक, वाणिज्यिक अथवा कोई अन्य आर्थिक गतिविधि है जिसका स्वामित्व व प्रबन्धन केन्द्र अथवा राज्य सरकार अथवा इन दोनों के द्वारा संयुक्त रुप से किया जाता है।

संवैधानिक निगमः वे निगमित निकाय हैं जिनका गठन संसद अथवा राज्य विधान सभा में विशेष अधिनियम के द्वारा किया जाता है।

14.12 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. एक सार्वजनिक उपक्रम वह संगठन है जो कि केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय सरकार के द्वारा.............................या अधिक स्वामित्व को धारित करता हो।
2. ....का स्वरुप सामान्यतः उन संगठनों में पाया जाता है कि जहॉ मूलभूत सेवाएं उपलब्ध कराई जानी हों जैसे– रेलवे, डाक सेवाएं, प्रसारण सेवाएं आदि।
3. लघु उपक्रम जिनमें प्लान्ट व मशीन में निवेश रु0 ....से अधिक किन्तु पॉच करोड से कम हो।

4. देश के कुल औद्योगिक उत्पादन मूल्य का .... प्रतिशत भाग लघु उद्योगों की श्रेणी से प्राप्त होता है।

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 50 प्रतिशत 2. विभागीय उपक्रम 3. पॉच लाख 4. 40

14.14 स्वपरख प्रश्न

1. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से क्या आशय है? इसके उद्देश्य क्या हैं?
2. संगठन के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. विभागीय उपक्रमों को समझाइए। इसकी विशिष्टताएं तथा गुंण बताइए।
4. संवैधानिक निगम से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं तथा सीमाओं का वर्णन कीजिए।
5. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की विशेषताएं क्या हैं?
6. लघु उद्योग क्षेत्र तथा इसकी समस्याओं पर एक लेख लिखिए।

14.15 संदर्भ पुस्तकें

1. Neelamegam V.,Business Environment, Vrinda Publication Pvt.Ltd. Delhi. 2nd Edition 2010
2. Shukla M.B. , Business Environment Text and Cases, Taxmann Publication (P.) Ltd. Latest Edition, 2012, New Delhi.
3. Aswathappa K., Essentials of Business Environment. Himalaya Publication House, Mumbai.
4. Goyal Alok and Goyal Mridula, Business Environment, VK (India) Enterprises, Delhi.
5. Khanka SS, Entrepreneurial Development, S Chand & Company Ltd New Delhi.
6. Taneja Satish and Gupta S.L., Entrepreneur Development new venture creation. Galgotia Publication Company, 2nd revised edition, New Delhi.
7. Charantimath P.M., Entrepreneurship Development and Small Business Enterprises, Pearson Education, New Delhi.
8. Sehgal M.K., Entrepreneurship Development: A Systematic Approach, UDH Publisher & Distributors Pvt. Ltd. First Edition, New Delhi. 2011
9. Havinal Veerabhadrappa, Management and Entrepreneurship, New Age International Publishers, New Delhi.

इकाई 15 सूक्ष्म वित्त

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 सूक्ष्म वित्त से आशय
15.3 सूक्ष्म वित्त की आवश्यकता
15.4 सूक्ष्म वित्त की विशेषताएं एवं लक्षण
15.5 सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं
15.6 सूक्ष्म वित्त के सिद्धान्त
15.7 सूक्ष्म वित्त की वाहिकाएं
15.8 भारत में सूक्ष्म वित्त आन्दोलन
15.9 सारॉंश
15.10 शब्दावली
15.11 बोध प्रश्न
15.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.13 स्वपरख प्रश्न
15.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- सूक्ष्म वित्त की आवश्यकताओं का वर्णन कर सकें।
- सूक्ष्म वित्त की विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- सूक्ष्म वित्त के सिद्धान्तों का वर्णन कर सकें।
- सूक्ष्म वित्त की वाहिकाओं का वर्णन कर सकें।
- भारत में सूक्ष्म वित्त के आन्दोलन की व्याख्या कर सकें।

15.1 प्रस्तावना

सूक्ष्म वित्त अथवा लघु वित्त का आशय निर्धन वर्ग के लिए छोटे ऋण प्रदान करने, सामूहिक ऋण देने तथा सामाजिक/जनहितकारी गतिविधियों के लिए वित्तीय सेवाओं का प्रावधान करने से है। इस सम्बन्ध में जिन महत्वपूर्ण पक्षों को ध्यान में रखा जाता है, वे हैं– वित्तीय सेवाओं का विस्तार, सामूहिक व व्यक्तिगत ऋण तथा लाभदायक गतिविधियॉं। इसमें सुगम्यता (भौगोलिक सुगम्यता तथा व्यवहार से आसानी) की समस्या के कारण उत्पन्न सूचनाओं की असमानता, सम्पार्श्विक प्रतिभूति का अभाव, मूल्यों की कमी तथा व्यवसाय की नकद आधारित प्रकृति के साथ ही स्टाफ में प्रशिक्षण तथा मनोबल के अभाव के कारण जोखिम प्रबन्धन सम्बन्धी चुनौतियॉं भी होती हैं। सम्बन्धित जोखिम में विपरीत चयन की समस्या है जो कि ऋण से पूर्व अपूर्ण सूचनाओं की समस्या तथा नैतिक समस्याओं (ऋण के पश्चात की गुप्त गतिविधियों) के कारण होती हैं। लक्षित समूह तथा स्टाफ के विवरण को निम्न रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

- 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जहॉं भौगोलिक पहुॅंच कठिन होती है।

- अनौपचारिक गतिविधियॉ– समय की परिवर्तनशीलता के अनुरुप आवश्यकताओं का आकलन।
- अशिक्षाः परम्परागत सेवाओं के साथ व्यवहार सम्बन्धी कठिनाई।
- सौदों का मूल्य कम होना।
- सम्पार्श्विक प्रतिभूति की कमी।
- प्रशिक्षित स्टाफ की कमी।
- स्टाफ में मनोबल की कमी।
- स्टाफ के अभिप्रेरण सम्बन्धी कठिनाई।

19वीं सदी के अन्तिम काल से ही निर्धन वर्ग को वित्तीय सेवाएं प्रदान करने की परम्परा भारत में रही थी, जबकि साहूकारों द्वारा ग्रामीणों की भूमि पर बलपूर्वक अधिकार जमा लेना एक सामान्य बात थी। ब्रिटिश सरकार द्वारा लिए गये बडे कदमों में से एक सहकारी समितियों का ऋण प्रदान करने वाली वैकल्पिक संस्था के रुप में गठन किया जाना था। स्वतन्त्र भारत में गरीबों को ऋण सुविधा उपलब्ध कराना एक अलग रुप में देखा गया जबकि ऋण को निर्धनता से लडने का एक अनिवार्य अंग माना गया, जिसके निम्नलिखित प्रमाप माने गये–

- संस्थागत संरचना का विस्तार
- पिछडे ऋण प्राप्तकर्ताओं तथा वर्गों को निर्देशित ऋण
- अनुदानों द्वारा सहायित ब्याज दरें
- संस्थागत वाहनः सहकारिता, वाणिज्यिक बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आर0आर0बी0)

समय के साथ अनेक उपायों पर बदलाव आता रहा। 1950 से 1969 के मध्य सहकारिता के विकास पर बल दिया गया। 1969 में बडे वाणिज्यिक बैकों के राष्ट्रीयकरण के साथ वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं को ग्रामीण तथा अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में विस्तारित किया गया। वर्ष 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को कम लागत वाली ऐसी संस्थाओं के रुप में विकसित किया गया जो ऋण की दृष्टि से पिछडे क्षेत्रों के निर्धनतम व्यक्तियों तक पहुॅच सकें। इस अवधि में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में अनुदान आधारित ऋण (प्राथमिकता क्षेत्र की अवधारणा) के लिए आवश्यक हस्तक्षेप बनाये रखा। ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं में वित्तीय सुधार निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया–

- वाणिज्यिक स्वतन्त्रता के क्षेत्र का विस्तारण
- बैंको की गरीबों तक पहुॅच को बढाना
- इस क्षेत्र की ओर ऋण के प्रवाह को बढाना
- सहकारिता तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में ब्याज दरों उदारीकरण
- जहॉ, जिस क्षेत्र में तथा जिसे भी क्षेत्रीय वित्तीय संस्थाएं प्राथमिकता क्षेत्र में ऋण दे सकें, के नियन्त्रणों को कम करना।
- दूरदर्शी सिद्धान्तों का प्रारम्भ।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का पुनर्गठन एवं पुनःपूॅजीयन।

इन उपायों के परिणाम उत्साहवर्द्धक रहे–

- वर्ष 1969 में 1,833 की तुलना में वर्तमान में 32,538 ग्रामीण शाखाओं की बढोत्तरी। समस्त अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण शाखा का 49 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में।
- 1969 में प्रति बैंक ग्रामीण शाखा जनसंख्या 2,01,854 से घटकर वर्तमान में 16,000 के स्तर पर।
- ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति परिवार संस्थागत ऋण का भाग 1951 में 7 प्रतिशत से बढकर वर्तमान में 60 प्रतिशत से अधिक हुआ।

ग्रामीण वित्त का महत्व निम्नलिखित तथ्यों से परखा जा सकता है–

- कुल जमा खातों का 31 प्रतिशत (131.1 मिलियन) भाग ग्रामीण भारत से है।
- कुल ऋण खातों का 43 प्रतिशत (22.4 मिलियन) भाग ग्रामीण भारत से है।
- निर्धनों के स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पडा है।

इस प्रणाली की कमियॉ निम्न प्रकार रहीं–

- नीति की संरचना में कमियॉ।
- कियान्वयन में कमजोरियॉ।
- सरकारों की ऋण माफी जैसी योजनाओं से बचने में नाकामयाबी।
- अत्यधिक बकायेदारी चूक।
- बैंकिग प्रणाली द्वारा निर्धनों को ऋण व्यवहार्य गतिविधि के रुप में न देकर सामाजिक उत्तरदायित्व के रुप में प्रदान किये गये।
- वाणिज्यिक बैंकों को यह मानना अत्यन्त कठिन है कि निर्धनों को ऋण देना लाभदायक गतिविधि हो सकता है।

निवारण किये जाने योग्य बडे लम्बित अन्तराल–

- 741 मिलियन (74.1 करोड) ग्रामीण जनसंख्या के विरुद्ध 500 मिलियन लोग बैंकिंग सेवा से वंचित।
- प्रति शाखा जनसंख्या अभी तक 22,793 है।
- शहरी व अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में 104 प्रतिशत के विरुद्ध 18 प्रतिशत से भी कम बचत खाते खोले जा सके हैं।
- प्रति शाखा गॉवों की संख्या 19 है।
- अनौपचारिक साधनों पर अधिक निर्भरता।
- ग्रामीण वित्त का 36 प्रतिशत अनौपचारिक क्षेत्रों से।
- निम्न आय वर्ग में निर्भरता और भी अधिक (78 प्रतिशत) है।

सूक्ष्म वित्त तथा सूक्ष्म ऋण के सम्बन्ध में प्रमुख मॉडल तीन प्रकार के पाये जाते हैं–

- स्वयं सहायता समूह तथा बैंक संयोजन मॉडल
- वित्तीय मध्यस्थता मॉडल

- आई0सी0आई0सी0आई0 साझेदारी मॉडल
  सूक्ष्म वित्त के विस्तार के साथ ही तकनीक की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो गई है। महत्वपूर्ण विशेषताओं में सम्मिलित हैं–
- प्रबन्ध सूचना प्रणाली (एम0आई0एस0)
- रोकड संचालन
- समंक एकत्रण तथा तदवर्ती प्रबन्धन

उपरोक्त के समाधान के लिए आवश्यक है कि निम्नलिखित विविध प्रणालियों को अपनाते हुए नई सूक्ष्म वित्तीय संस्थाओं का गठन किया जाये–

1. साहसिक पूॅजीकृत प्रणाली (वेंचर कैपिटलिस्ट मॉडल)
2. वैकल्पिक वाहिकाएं–
   अ. अभिकर्ता प्रणाली–
      क. जीवन बीमा निगम का मॉडल
      ख. चुनौतियॉः धोखाधडी नियन्त्रण
   आ. इन्टरनेट कनेक्टिविटी–
      क. बी0एस0एन0एल0ः यदि वर्तमान स्थापित ग्रामीण एक्सचेंजों में वायरलैस प्रणाली स्थापित की जाये तो 80–85 प्रतिशत गॉवों को जोडा जा सकता है।
      ख. विभिन्न उपकरण जो कि इन्टरनेट प्रणाली से जोडे जा सकते हैंः बायोमेट्रिक कम लागत वाले ए0टी0एम0।
      ग. धोखाधडी पर नियन्त्रण को आसान बनाता है।
3. सूक्ष्म वित्तीय सेवाओं का विस्तारः
   1. व्यक्तिगत ऋण सेवा
   2. बीमा
   3. स्वास्थ्य बीमा
   4. पशु बीमा
   5. मौसम बीमा
   6. सामग्री मूल्य डेरिवेटिव
   7. बचत एवं निवेश उत्पाद
   8. रकम प्रेषण
4. प्रभाव के मापन एवं उन्हें अधिकतम करने के लिए प्रमुख बिन्दु–
   1. ऋण ब्यूरो
   2. विशिष्ट पहचानकारक
   3. तकनीकी मंच
   4. ग्रामीण सरचना
   5. विनियम में परिवर्तन (ब्याज दर आदि)
   6. प्रशिक्षण संस्थाएं
   7. शोध

सूक्ष्म उपकमों का अर्थशास्त्र

अनेक विद्वानों के अनुसार सूक्ष्म वित्त लघु ऋण (सामान्यतः बिना सम्पार्श्विक प्रतिभूति के) प्रदान करने तथा अल्प बचतों को स्वीकार करने सम्बन्धी

बैंकिंग व्यवहारों का संग्रहण है। इसमें क्रान्ति अथवा व्यवहारों में बदलाव जैसी कोई बात नहीं है। कुछ अन्य यह मानते हैं कि सूक्ष्म वित्त को अभी पूर्णतः विकसित होना है तथा समय की कसौटी पर खरा उतरना है। कुछ लोग असहमत हो सकते हैं किन्तु सूक्ष्म वित्त ने अन्तर्राष्ट्रीय विकास की दुनिया को हिलाकर रख दिया है। सबसे महत्वपूर्ण तत्व यह है कि यह नवीन माडल अल्प आय वाले देशों के अनुभवों से निकलकर आया है, न कि अमीर देशों के मानक बैंकिंग माडल से।

विश्व भर के उद्यमियों, विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा विकास के विशेषज्ञों का झुकाव सूक्ष्म बैंकों तथा गैर सरकारी संगठनों (एन0जी0ओ0) के प्रति हुआ है। ये सूक्ष्म वित्त के माध्यम से खुदरा बैंकिंग के अनुभवों से आकर्षित हैं तथा साथ ही उन वायदों से भी, जो अपोषित वर्ग को अति वांछित संसाधनों की प्राप्ति हेतु सूक्ष्म वित्त संस्थाओं में निहित है। लघु ऋणियों को जोखिम से बचाने के लिए तथा सूचना की समस्या का सामना करने के लिए कुछ महत्व गैर पारम्परिक अनुबन्धों को भी प्रदान किया गया। सूक्ष्म वित्त को कम आय वाली अर्थव्यवस्थाओं वाले बाजारों की प्रकृति को समझने तथा सरकारी अक्षम कम्पनियों के स्थान पर बाजार के माध्यम से बीमा, पानी, बिजली की आपूर्ति के संभावित परिणामों के रुप में महत्व प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त इन बातों को भी महत्व प्रदान किया गया कि सूक्ष्म वित्त गरीबी का निराकरण करता है, लैंगिक असमानता को दूर करता है तथा समाजों को मजबूत बनाता है।

सूक्ष्म वित्त का विचार एक आशा प्रदान करता है। उस समय जबकि विश्व भर के गरीबों के बोझ को कम करने के लिए विदेशी सहायता की प्रभावशीलता को मौलिक प्रश्नों का सामना करना पड़ रहा है, बैंक तथा गैर सरकारी संस्थाएं (सूक्ष्म वित्त संस्थाएं) खूब विकसित हो रही हैं। विश्व भर की सरकारें प्रायः भ्रष्ट, दागी तथा सुधारों के प्रति अनिच्छुक होने की आलोचनाओं को झेल रहीं हैं। इस पृष्ठभूमि में बैंक तथा एनजीओ गरीबी निवारण तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए नवोन्मेषी तथा कम लागत वाले मार्ग प्रदान कर रहे हैं।

सूक्ष्म वित्त बढ़ते हुए बाजारों, गरीबी निवारण के उपायों तथा सामाजिक की संभावनाओं की एक श्रृंखला प्रस्तुत करता है। इस बात पर बहस हो सकती है कि क्या निर्धनतम व्यक्ति को ऋण अथवा बचत के अन्य तरीकों से सेवित किया जा सकता है, अनुदान सहायता प्रदान करते हैं अथवा बाधा उत्पन्न करते हैं, क्या बिना किसी प्रशिक्षण अथवा सहायता के ऋण मात्र उपलब्ध करा देना पर्याप्त है तथा ऋण प्रदान करने की कौन सी प्रणाली सर्वाधिक सफल रही है। सूक्ष्म वित्त को समझने के मार्ग में आये अनेक मिथकों को समझे जाने की भी आवश्यकता है। पहला मिथक है कि सूक्ष्म वित्त आवश्यक रुप से ऋण प्रदान करने से सम्बन्धित है। दूसरा मिथक है कि ऋणों पर उच्च पुनर्भुगतान दरों का रहस्य सामूहिक ऋण अनुबन्धों, अनुबन्धों के नवोन्मेष तथा बैंकिंग के उन व्यवहारों से सम्बन्धित है जो सामूहिक ऋण से पृथक हैं। तीसरा मिथक है कि सूक्ष्म वित्त सामाजिक प्रभावों से सम्बन्धित है तथा गरीबी निवारण तथा लैंगिक सशक्तीकरण का उपयोगी औजार है। अन्तिम मिथक है कि अधिकांश सूक्ष्म ऋणदाता निर्धनों की सेवा कर रहे हैं और लाभ कमा रहे हैं। सूक्ष्म वित्त के महत्वपूर्ण पहलू निम्नलिखित हैं–

- सूक्ष्म उद्यम के मापक, प्रत्याय तथा अवरोध
- बाजार श्रृंखलन

- श्रेष्ठ व्यवहारों का अभिलेखीकरण

इस इकाई में उपरोक्त सभी पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जायेगा। सूक्ष्म वित्त निर्धन तथा अल्प आय वाले लोगों को उनके सूक्ष्म उद्यम तथा लघु व्यवसाय के लिए वित्तीय सेवाओं, यथा– जमा, ऋण, भुगतान सेवाएं, धन स्थानांतरण तथा बीमा उत्पाद की विस्तृत श्रंखला का प्रावधान करता है जिससे कि उनकी आय तथा जीवन स्तर को बढाया जा सके।

सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए पहला कदम आश्चर्यजनक रुप से यह है कि आप सूक्ष्म वित्त का मूल्यांकन कर रहे हैं। यह लगता तो स्वभाविक है किन्तु होता नहीं है क्योंकि सूक्ष्म वित्त की परिभाषा पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। सामान्य रुप से कहा जाये तो ऋण के लिए सूक्ष्म वित्त (सूक्ष्म ऋण) लोगों को लघु वित्तीय सेवाओं को उपलब्ध कराना है जिन्हें पारम्परिक बैंकिंग सेवाओं का लाभ प्राप्त नहीं हो पा रहा है। सूक्ष्म वित्त में सामान्यतः अल्प आय वर्ग के लोगों को स्वरोजगार हेतु ऋण तथा साथ ही अल्प बचत को सम्मिलित किया जाता है। लघु तथा निर्धन शब्द को कैसे परिभाषित किया जाये, इस पर निर्भर करता है कि वह सूक्ष्म वित्त है अथवा नहीं। सूक्ष्म वित्त जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह सामान्य ऋण से पृथक है अन्यथा इसे सूक्ष्म ऋण ही कहा जाता। अनेक कार्यक्रम केवल बचत आधारित उत्पाद पेश करते हैं तथा धन प्रेषण व बीमा आदि निर्धन वर्ग के लिए वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदत्त वित्तीय सेवाओं के नवोन्मेषी उत्पाद के रुप में सम्मिलित हो गए हैं। वस्तुतः कोई भी ऐसी संस्था नहीं है जो पूर्णतः निर्धनों को सूक्ष्म वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराती हो। वाणिज्यिक बैंक तथा बीमा कम्पनियॉ भी नए बाजार की तलाश में निम्न वर्ग की ओर आ रही हैं, उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं की निर्माता कम्पनियॉ भी गरीबों को सूक्ष्म ऋण के लिए लक्षित कर रही हैं तथा वालमार्ट जैसी कम्पनियॉ भी धन प्रेषण जैसी सेवाएं प्रदान कर रही हैं। इसप्रकार, सभी कार्यक्रम जिन्हें सूक्ष्म वित्त में सम्मिलित किया जाता है, सभी लोगों की अपेक्षाओं के अनुरुप, मॉडल, लक्षित वर्ग तथा प्रदत्त सेवाओं के आधार पर, समान नहीं हो सकते।

15.2 सूक्ष्म वित्त से आशय

सूक्ष्म वित्त को मितव्ययिता के प्रावधान के साथ ऋण तथा अन्य वित्तीय सेवाओं को अल्प रकम के रुप में निर्धन वर्ग को उनके आय के स्तर तथा जीवन स्तर बढ़ाने के लिए प्रदान करने के रुप में परिभाषित किया जाता है। यह अल्प ऋणों के लिए प्रावधान है जिन्हें छोटी अवधि में भी भुगतान किया जाता है तथा जो कम आय वर्ग के व्यक्तियों व परिवारों को दिया जाता है। सूक्ष्म ऋण योग्य बनाने, सशक्त करने तथा निर्धनता निवारण का परिवर्तनकारी उपकरण है जिसने विकासशील देशों के अल्प आय वर्ग के परिवारों को आर्थिक तथा अनार्थिक वाह्यताओं को प्रदान किया है।

सूक्ष्म वित्त क्षेत्र (विकास एवं नियमन) बिल, 2007 सूक्ष्म वित्त को किसी व्यक्ति अथवा अर्ह ग्राहक को प्रत्यक्ष अथवा सामूहिक आधार पर लघु तथा अति लघु उद्यमों, कृषि, सहायक क्रियाओं (इन व्यक्तियों के उपभोग व्ययों सहित) के लिए अधिकतम पचास हजार रुपये तक की रकम अथवा गृह निर्माण व अन्य विशिष्ट मदों में एक लाख पचास हजार रुपये की रकम प्रदान करने को सूक्ष्म

वित्त के रुप में परिभाषित करता है। इस योजना के अन्तर्गत अर्ह ग्राहक जिन्हें आर्थिक सहायता दी जाती है वे भूमिहीन मजदूर तथा बाहरी मजदूर, कारीगर तथा सूक्ष्म उद्यमी, कृषि भूमि के जुताईदार, बॅटाईदार, साझीदार तथा दो हेक्टेयर से कम के भूमिदार भी हो सकते हैं।

15.3 सूक्ष्म वित्त की आवश्यकता

विकासशील देशों में, ग्रामीण निर्धनों को औपचारिक वित्तीय सेवाओं के माध्यम से वित्त प्रदान करना उनकी ऋण आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असफल सिद्ध हुआ है। इस असफलता का मुख्य कारण कोई स्पष्ट रोजगार न होने के कारण निर्धन के पास सम्पार्श्विक प्रतिभूति का अभाव होना है। लघु ऋणों तथा बचत खातों के सम्बन्ध में उच्च जोखिम तथा उच्च लेनदेन लागत के कारण यह क्षेत्र बैंकिंग योग्य नहीं होते। औपचारिक संस्थाओं से ऋणों के अभाव के कारण गरीब व्यक्ति के पास स्थानीय साहूकारों से उच्च दरों पर ऋण लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता है। भारत सहित विभिन्न देशों में उनकी सरकारों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में औपचारिक ऋण वितरण के लिए विशेष कृषि बैंक तथा ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई अथवा वाणिज्यिक बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने के निर्देश दिये गये। यद्यपि ये प्रयास भी विभिन्न कारणों से फलीभूत नहीं हो सके। विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा इसके लिए सामान्य कारण ऋणों की वसूली तथा निर्धनों के स्थान पर अपेक्षाकृत धनी व प्रभावशाली लोगों का ऋण हेतु चयन के लिए राजनीतिक हस्तक्षेप माना गया।

इस प्रकार, औपचारिक ऋण संस्थाओं की निर्धनों की ऋण आवश्यकता पूर्ण करने में अक्षमता ने सूक्ष्म वित्त को निर्धनों के लिए वैकल्पिक ऋण प्रणाली के रुप में प्रस्तुत किया। सूक्ष्म वित्त योजना उन लोगों के लिए वित्तीय सेवाओं की एक वृहद श्रंखला प्रस्तुत करती है जिनके पास पारम्परिक समपार्श्विक प्रतिभूति के रुप में कुछ नहीं है अथवा अपर्याप्तता है। यह उन लोगों के लिए सम्पत्ति सृजित करने, संकट का सामना करने तथा गरीबी से बाहर आने के लिए लघु व्यवसाय अपनाने में मदद करती है। लघु ऋण (सूक्ष्म ऋण) देने के अतिरिक्त सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम ऋण की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अन्य वित्तीय सेवाएं यथा– बचत, बीमा, मार्गदर्शन, दक्षता विकास प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण तथा आय सृजन गतिविधियों के लिए मनोबल विकास भी प्रदान करता है।

15.4 सूक्ष्म वित्त की विशेषताएं तथा लक्षण

विशेषताएं	विशिष्ट लक्षण
ग्राहक का प्रकार	अल्प आय अनौपचारिक क्षेत्र में रोजगार अल्प मजदूरी वर्ग भौतिक सम्पर्श्विक प्रतिभूति का अभाव घरेलू तथा व्यावसायिक गतिविधियों का जुड़ाव
ऋण तकनीक	सूक्ष्म ऋणों का तीव्र स्वीकृति तथा वितरण अत्यधिक ऋण अभिलेखों का अभाव सम्पार्श्विक प्रतिभूति का विकल्प– सामूहिक

	आधारित गारण्टी अन्य परिस्थिति आधारित सूक्ष्म ऋणों की सशर्त उपलब्धता रोकड़ प्रवाह विश्लेषण से जुडी सूचना प्रधान व चरित्र आधारित ऋण प्रणाली समूह आधारित लाभार्थी चयन
ऋण श्रेणीयन (पोर्टफोलिओ)	अत्यधिक परिवर्तनशील जोखिम मुख्यतः पोर्टफोलिओ प्रबन्धन दक्षता पर आधारित
संगठनात्मक विचारधारा	सरकार पर दूरस्थ निर्भरता अथवा गैर निर्भरता लागत वसूली उद्देश्य बनाम लाभ सर्वोच्चता
संस्थागत संरचना	विकेन्द्रित अपर्याप्त वाह्य नियन्त्रण तथा नियमन पूँजी आधार– नाम मात्र की पूँजी (अनुदान, सुलभ ऋण)

यह बहस का विषय हो सकता है कि इनमें से कौन सी विशेषता (यदि कोई है) ऐसी है जिसके आधार पर कार्यक्रम को सूक्ष्म वित्त माना जा सकता है। पहली विशेषता छोटे ऋण की है जो कि सबसे आवश्यक लगती है। ऋण स्वयं सूक्ष्म वित्त की एक आवश्यकता नहीं है क्योंकि कुछ सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम बचत प्रोत्साहन पर केन्द्रित होते हैं (कुछ केवल बचत पर आधारित होते हैं तथा ऋण का कार्य नहीं करते)। यद्यपि सूक्ष्म वित्त संस्थाएं प्रायः सूक्ष्म उद्यमियों को लक्षित करती हैं किन्तु वे भी इस बात पर मत भिन्नता रखते हैं कि यह ऋण प्रदान करने की अनिवार्य शर्त है। कुछ सूक्ष्म वित्त संस्थाएं ऋणी के व्यवसाय स्थल पर जाकर ऋण के उद्यमी गतिविधियों में प्रयोग का सत्यापन करते हैं जबकि कुछ अन्य सूक्ष्म वित्त संस्थाएं केवल कुछ प्रश्न पूछकर ऋण का वितरण किसी उपभोक्ता ऋण नेतृत्व की तरह कर देते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ सूक्ष्म वित्त संस्थाएं सम्पार्श्विक प्रतिभूतियों अथवा सम्पार्श्विक प्रतिभूतियों के विकल्प जैसे घरेलू सम्पत्तियॉ आदि की मॉग करती हैं, जो कि ऋणी के लिए महत्वपूर्ण होती हैं यद्यपि ये ऋण के मूल्य से कम होती हैं। सामूहिक ऋण भी ऋण प्रदान करने का एकमात्र तरीका नहीं है यद्यपि सामान्यतः इसका प्रयोग किया जाता है। अनेक सूक्ष्म वित्त संस्थाएं अपने सम्मानित ग्राहकों को तथा नए ग्राहकों को भी व्यक्तिगत ऋण प्रदान करती हैं। ग्रामीण बैंक, जो कि सूक्ष्म वित्त आन्दोलन तथा सामूहिक ऋण मॉडल के प्रारम्भकर्ता थे, ने व्यक्तिगत ऋण की ओर रुख कर लिया है। निर्धन शब्द की विभिन्न परिभाषाओं को अपनाने के उपरान्त भी निर्धन ग्राहकों पर संकेन्द्रण लगभग सार्वभौमिक है। यह मामला गत दिनों संयुक्त राष्ट्र कांग्रेस के कानून के बाद अधिक महत्वपूर्ण हो गया जिसके द्वारा यू0एस0ए0आई0डी0 को निर्धनों पर आधारित कार्यक्रमों तक सीमित कर दिया गया। कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि सूक्ष्म वित्त को आर्थिक रुप से सक्रिय गरीबों पर केन्द्रित होना चाहिए अथवा गरीबी स्तर पर या उससे नीचे के लोगों पर (रॉबिन्सन 2001)। कुछ अन्य लोग सुझाव देते हैं कि सूक्ष्म वित्त संस्थाओं को निर्धनतम व्यक्ति तक पहुॅच बनानी

चाहिए (डले–हैरिस 2005)। लगभग सभी सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम महिलाओं को महत्व प्रदान करते हैं। महिलाओं ने ऋणों के भुगतान में अधिकता प्रदर्शित की है तथा उनके उद्यम से लाभ का अधिक भाग उनके परिवारों तक पहुॅचता है। सूक्ष्म ऋण सम्मेलन अभियान की रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक स्तर पर 80 प्रतिशत सूक्ष्म ऋण के लाभार्थी महिलाएं हैं। महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत विभिन्न हिस्सों में अलग–अलग है, जिसमें एशिया में सर्वाधिक भाग है तथा अफ्रीका व लेटिन अमेरिका उसके बाद हैं। मध्य पूर्व तथा उत्तरी अमेरिका में यह भाग न्यूनतम है।

निर्धनों तथा महिलाओं पर ध्यान देने तथा आवेदन प्रक्रिया के सरलीकरण व ग्राहक समुदाय के स्थल तक पहुॅचने के साथ बैंकविहीन क्षेत्रों – जिन्हें गरीब, अशिक्षित तथा ग्रामीण होने के कारण छोड़ दिया गया था, में वित्तीय सेवाएं प्रदान किये जाने को महत्व प्रदान किया गया। कुल मिलाकर सूक्ष्म ऋण को इस प्रकार डिजायन किया गया कि सूक्ष्म वित्त संस्थाएं बाजार पर आधारित ब्याज प्राप्त कर अपनी लागतें तो निकाल सकें किन्तु निर्धनों से नाजायज ब्याज वसूल कर अतिरिक्त लाभ न कमा सकें। यह एक महत्वपूर्ण अवधारणा है क्योंकि उच्च ब्याज दरों वाली संस्थाएं शायद ही उन साहूकारों से सस्ती सिद्ध हों जिन्हें हटाने की नियत से इन्हें स्थापित किया गया। अनुदानित दरों वाली संस्थाएं अन्य ऋणदाताओं को जो अपनी लागत प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं, समाप्त कर उस बाजार को नष्ट कर सकती हैं। यह प्रभाव का आकलन करने की प्रक्रिया है क्योंकि जितना कम ब्याज किसी ग्राहक को देना पड़ता है उतना ही अधिक वह आय सृजन कर सकता है। यदि हम सूक्ष्म वित्त की सामान्य ब्याज दरों से बाहर देखें तो हमें एक कार्यक्रम से दूसरे कार्यक्रम के बीच अलग–अलग निष्कर्ष प्राप्त होंगे क्योंकि प्रत्येक कार्यक्रम अलग प्रकार के ग्राहकों पर अलग लागत का प्रयोग करता है। उल्लेखनीय है कि किसी संगठन की संपोषणीयता (जैसा कि विश्व बैंक नीति में सामान्य रुप से परिभाषित है) के लिए प्रत्येक उत्पाद अथवा लक्षित बाजार का संपोषणीय होना आवश्यक नहीं है वरन् संगठन को सम्पूर्ण रुप से संपोषणीय होना चाहिए। इसलिए संगठन को निर्धनतम लोगों को कम ब्याज दरों पर ऋण देना चाहिए और कम निर्धन लोगों से पर्याप्त लाभ कमाना चाहिए जिससे उपरोक्त कार्यक्रमों के लिए अनुदान की भरपाई की जा सके। यह कार्यक्रम भविष्य में संपोषणीय हो सकता है यदि प्रारम्भिक काल के अनुदानित कार्यक्रम भविष्य में ग्राहक की निष्ठा तथा सूक्ष्म वित्त संस्था के साथ उनके दीर्घकालीन सम्बन्ध का मार्ग प्रशस्त कर सकें।

15.5 सूक्ष्म वित्त कार्यक्रमों की प्रमुख विशेषताएं

सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम की योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है–

1. **सूक्ष्म वित्त संस्थाओं /गैर सरकारी संगठनों के लिए सावधि जमा की व्यवस्था–**

   सिडबी (स्माल इण्डस्ट्रीज डवलपमेन्ट बैंक आफ इण्डिया) द्वारा एक सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम क्षमता मूल्यांकित सूक्ष्म वित्त संस्थानों तथा गैर संरकारी संगठनों के जाल के माध्यम से चलाया जा रहा है। सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम की योजना सिडबी से ऋण प्राप्त करने के लिए वांछित

प्रतिभूति– जमा में सहयोग करने के लिए सिडबी से निम्न आधार पर जुड़ी है–

(अ) भारत सरकार सिडबी को सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम के अन्तर्गत धनराशि उपलब्ध करायेगा जिसे पोर्टफोलिओ रिस्क फण्ड (पी0आर0एफ0) कहा जायेगा। इस धनराशि का उपयोग सूक्ष्म वित्त संस्थाओं (एम0एफ0आई0) तथा गैर सरकारी संगठनों (एन0जी0ओ0) की प्रतिभूति जमा आवश्यकताओं तथा ब्याज पर हानि की लागत को पूर्ण करने के लिए किया जायेगा। वर्तमान में सिडबी ऋण राशि का 10 प्रतिशत सावधि जमा के रुप में प्राप्त करता है। एम0एफ0आई0 / एन0जी0ओ0 का अंशदान ऋण राशि का 2.5 प्रतिशत (प्रतिभूति जमा का 25 प्रतिशत) होगा तथा शेष 7.5 प्रतिशत (प्रतिभूति जमा का 75 प्रतिशत) भारत सरकार से प्राप्त धन से समायोजित किया जायेगा। प्रतिभूति जमा में सहयोग के आधार पर एम0एफ0आई0 / एन0जी0ओ0 सिडबी से और भी ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

(ब) सरकार दसवीं योजना के चार वर्षों में आवश्यक कोष उपलब्ध कराएगी तथा प्रत्येक अर्द्ध वर्ष में प्रतिभूति जमा की मॉग के आधार पर इसे अवमुक्त करेगी। दसवीं पंचवर्षीय योजना में सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम के अन्तर्गत रु0 6 करोड़ लगाने पर सिडबी रु0 80 करोड़ का ऋण एम0एफ0आई0 / एन0जी0ओ0 को उपलब्ध करा सकता है। यदि औसत ऋण की रकम रु0 5,000 प्रति लाभार्थी मान ली जाये तो इससे लगभग 1.60 लाख लाभार्थियों को लाभ प्राप्त हो सकता है।

(स) जिस दर पर एन0जी0ओ0 द्वारा ब्याज दिया जाना है उसी दर पर सिडबी सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये सावधि जमा पर ब्याज भारत सरकार को देगा। अन्य नियम व शर्तें सिडबी तथा भारत सरकार की पारस्परिक सहमति से तय की जायेंगी।

(द) ऋण तथा ब्याज की वसूली पूर्णतः सिडबी का उत्तरदायित्व होगा। वसूली न होने की स्थिति में सिडबी सर्वप्रथम एम0एफ0आई0 / एन0जी0ओ0 द्वारा ऋण की प्रत्याभूति के 2.5 प्रतिशत तथा सावधि जमा तथा उस पर उपार्जित ब्याज की वसूली करेगा तथा तत्पश्चात भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये 7.5 प्रतिशत भाग व उस पर ब्याज को भारत सरकार की समिति के अनुमोन के आधार पर समायोजित करेगा।

2. **सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम पर प्रशिक्षण तथा अध्ययन–**

भारत सरकार सिडबी को एम0एफ0आई0, एन0जी0ओ0, मध्यस्थ संस्थाओं तथा उद्यमियों की प्रशिक्षण सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करने तथा उनकी कार्यक्रम के प्रति जागरुकता बढाने में सहयोग करती है। यह कार्य राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं उद्यमिता विकास संस्थान (ई0डी0आई0) तथा लघु उद्योग सेवा संस्थान (एस0आई0एस0आई0) के माध्यम कराया जायेगा। शोध सम्बन्धी गतिविधियॉ भी प्रतिष्ठित संस्थाओं के माध्यम से सम्पन्न कराई जायेंगी।

3. **व्यवहार्य परियोजनाओं की पहचान हेतु मध्यस्थ कड़ियों का संस्थागत निर्माण–**

भारत सरकार संस्थागत ढॉचे के निर्माण में मध्यस्थ संगठनों की पहचान तथा विकास के द्वारा सहायता प्रदान करेगी जिससे किएम0एफ0आई0 / एन0जी0ओ0 को परियोजना को जानने, परियोजना रिपोर्ट तैयार करने, अग्रेतर तथा पश्चातवर्ती कड़ियों को जोड़ने तथा विपणन तथा तकनीक सम्बन्धी अनुबन्ध तैयार करने में सहायता प्राप्त हो सके। एस0आई0एस0आई0 विभिन्न क्षेत्रों में इन मध्यस्थों को पहचानने में सहायता करेगा।

15.6 सूक्ष्म वित्त के सिद्धान्त

1. **निर्धन को केवल ऋण नहीं वरन् विभिन्न वित्तीय सेवाओं की आवश्यकता होती है–**

किसी भी अन्य व्यक्ति के समान ही गरीब व्यक्ति को भी विभिन्न प्रकार की ऐसी वित्तीय सेवाओं की आवश्यकता होती है जो सुविधाजनक, लोचपूर्ण तथा उचित मूल्य पर उपलब्ध हो। अलग–अलग परिस्थितियों के अनुसार निर्धन व्यक्ति को ऋण ही नहीं बचत, नकदी हस्तांतरण तथा बीमा की भी आवश्यकता होती है।

2. **सूक्ष्म वित्त गरीबी के विरुद्ध शक्तिशाली उपकरण है–**

संपोषणीय वित्तीय सेवाओं से निर्धन व्यक्ति को अपनी आय बढ़ाने, सम्पत्तियॉ सृजित करने तथा वाह्य आघातों के जोखिम सहने की क्षमता प्रदान करने में सहायता प्राप्त होती है। सूक्ष्म वित्त गरीब परिवारों को दैनिक आजीविका के संकट से बाहर लाकर भविष्य की योजना बनाने, पुष्टाहार में निवेश करने, जीवन स्तर सुधारने तथा बच्चों के स्वास्थ्य व शिक्षा की दिशा में अग्रसर किया है।

3. **सूक्ष्म वित्त का आशय ऐसी वित्तीय प्रणाली का निर्माण करना है जो निर्धनों की सेवा करती है–**

अधिकांश विकासशील राष्ट्रों में जनसंख्या का अधिकांश भाग निर्धन जनता के रुप में होता है। फिर भी निर्धनों का एक बड़ा भाग मूलभूत वित्तीय सेवाओं की पहॅुच से वंचित होता है। काफी देशों में सूक्ष्म वित्त को सीमान्त क्षेत्र तथा प्रथमतः दानदाताओं, सरकारों तथा सामाजिक रुप से उत्तरदायी निवेशकों के विकास सम्बन्धी चिन्ता के रुप में देखा जाता है। इसके निर्धन वर्ग तक पहॅुचने सम्बन्धी पूर्ण परिणामों तक पहॅुचने के लिए सूक्ष्म वित्त को वित्तीय क्षेत्र का अभिन्न अंग होना आवश्यक है।

4. **पर्याप्त संख्या में निर्धनों तक पहॅुचने के लिए वित्तीय संपोषणीयता (निरन्तरता) आवश्यक है–**

अधिकांश निर्धन व्यक्ति मजबूत खुदरा वित्तीय मध्यस्थ संस्थाओं के अभाव में वित्तीय सेवाओं की पहॅुच से बाहर रहते हैं। वित्तीय रुप से संपोषणीय संस्थाओं का निर्माण कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह तो वह एकमात्र मार्ग है जिसके द्वारा पर्याप्त मात्राा में तथा उचित प्रभाव के साथ दानदाता संस्थाएं धन उपलब्ध करा सकती हैं। वित्तीय संपोषणीयता का आशय सूक्ष्म वित्त संस्थाओं की अपनी सम्पूर्ण लागत को वसूल करने की

क्षमता से है। यह सूक्ष्म वित्त प्रदाता को निरन्तर कार्य करने तथा निर्धनों को वित्तीय सेवाओं की निरन्तरता की अनुमति प्रदान करता है। वित्तीय सम्पोषणीयता प्राप्त करने का आशय है लेनदेन की लागत को घटाना तथा श्रेष्ठ उत्पाद व सेवाएं प्रस्तुत करना जिससे कि ग्राहकों की आवश्यकताएं पूर्ण हो सकें तथा बैंक विहीन निर्धनों को नई राह मिल सके।

5. **सूक्ष्म वित्त स्थाई स्थानीय वित्तीय संस्था के निर्माण से सम्बन्धित है–**

निर्धनों के लिए वित्तीय प्रणाली के निर्माण का अर्थ है सुदृढ़ घरेलू वित्तीय मध्यस्थों को तैयार करना जो कि निर्धनों को स्थायी आधार पर वित्तीय सेवाएं प्रदान कर सके। ऐसी संस्थाएं घरेलू बचतों को प्रोत्साहित करने व उनके पुनर्चक्रीकरण करने तथा ऋण प्रदान करने तथा सेवाओं की एक श्रंखला प्रदान करने में सक्षम होना चाहिए। जैसे–जैसे स्थानीय वित्तीय संस्थाओं का बाजार विकसित होता है, दानदाताओं तथा सरकार (सरकार द्वारा वित्त पोषित विकास बैंकों सहित) पर निर्भरता धीरे–धीरे समाप्त समाप्त हो जायेगी।

6. **सूक्ष्म ऋण सदैव समाधान नहीं है–**

सूक्ष्म ऋण सदैव सभी परिस्थितियों का अनुकूल समाधान नहीं होता है। निर्धनतम भूखे व्यक्ति जिनके पास आय का कोई ऐसा साधन नहीं है कि वे ऋण का भुगतान कर सकें, को ऋण दिये जाने से पूर्व अन्य प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। अनेक प्रकरणों में छोटे अनुदान, संरचनात्मक विकास, रोजगार व प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा गैर वित्तीय सेवाएं निर्धनता निवारण में अधिक सहायक सिद्ध हो सकती हैं। यथासम्भव इन गैर वित्तीय सेवाओं को बचत निर्माण से जोड़ा जाना चाहिए।

7. **ब्याज दर की उच्च सीमा निर्धनों की वित्तीय सेवाओं तक पहुॅच को दुष्प्रभावित कर सकती है–**

कुछ बड़े ऋण को देने की तुलना में अनेक छोटे ऋण देना लागत की दृष्टि से मंहगा होता है। छोटे ऋणदाता यदि औसत बैंक ब्याज दरों से अधिक ब्याज न लें तो वे अपनी लागतों को भी पूरा नहीं कर सकते तथा उनकी संवृद्धि तथा संपोषणीयता अनुदानित कोषों की अल्प तथा अनिश्चित आपूर्ति के कारण बाधित हो जायेगी। जब सरकार ब्याज दरों को नियमित करती है तो निर्धारित दर सूक्ष्म ऋणों की संपोषणीयता की दृष्टि से काफी कम होती है। साथ ही सूक्ष्म ऋणदाता अपनी संचालनगत अक्षमताओं को भी ब्याज दर अथवा अन्य शुल्क के रुप में ग्राहकों को अन्तरित नहीं कर सकते क्योंकि यह पहले से ही अपेक्षित से अधिक स्तर पर होते हैं।

8. **सरकार की भूमिका वित्तीय सेवाओं को उपलब्ध कराने की है, न कि प्रत्यक्षतः प्रदान करने की–**

राष्ट्रीय सरकार ऐसी सहयोगी नीति का वातावरण बना सकती है जो निर्धन वर्ग की जमाओं को सुरक्षित रखते हुए वित्तीय सेवाओं के विकास को भी बढ़ावा दे सके। मुख्य कार्य जो एक सरकार सूक्ष्म वित्त के

लिए कर सकती है वह हैं– व्यापक आर्थिकीय स्थिरता, ऋण ब्याज दरों के बन्धन को हटाना, अस्थिर अनुदानित बाजार से बचाव, अतिविलम्बित ऋण कार्यक्रम आदि। सरकार उद्यमियों के लिए व्यापार का वातावरण विकसित करके, भ्रष्टाचार में कमी लाकर तथा बाजार तथा संरचना के प्रति पहुॅच बढ़ाकर निर्धनों को वित्तीय सेवाओं में सहयोग प्रदान कर सकती है। विशेष परिस्थितियों में सुदृढ तथा स्वतन्त्र सूक्ष्म वित्त संस्थाओं को अधिपत्रित किया जा सकता है जिन्हें कोषों की आवश्यकता है।

9. **अनुदानित दानों को पूरक होना चाहिए, न कि निजी क्षेत्र की पूॅजी से प्रतिस्पर्धात्मक–**

दाताओं द्वारा उपयुक्त मात्रा में अनुदान, ऋण तथा समता प्रपत्र अस्थाई आधार पर उपलब्ध कराने चाहिए जिससे कि वित्त प्रदाताओं की संस्थागत क्षमता, सम्बन्धित संरचना (यथा–रेटिंग ऐजेन्सीज, ऋण ब्यूरो, अंकेक्षण क्षमता आदि) तथा प्रयोगात्मक सेवा व उत्पाद सहयोग का विकास किया जा सके। कुछ मामलों में बिखरी हुई अथवा अन्य कारणों से दुष्कर पहुॅच वाली जनसंख्या की स्थिति में दीर्घकालिक अनुदानों की आवश्यकता हो सकती है। अनुदानित कोषों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए वित्तीय सेवा एकीकृत करते हुए निर्धनों को स्थानीय वित्तीय बाजार, परियोजना के डिजायन तथा क्रियान्वयन के लिए विशिष्ट विशेषज्ञों की सेवाएं, निरन्तर सहयोग के लिए न्यूनतम निष्पादन मानक तथा प्रारम्भिक स्थिति से बाहर आने की योजना का पालन किया जाना चाहिए।

10. **संस्थागत तथा मानवीय क्षमताओं का अभाव मुख्य बाधा है–**

सूक्ष्म वित्त एक विशेषज्ञता का क्षेत्र है जिसमें सामाजिक उद्देश्यों के साथ बैंकिंग तथा वित्तीय संस्थाओं को नियमन व निरीक्षण संस्थाओं तथा सूचना प्रणाली से लेकर सरकारी विकास इकाइयों व अनुदानक संस्थाओं तक, प्रत्येक स्तर पर क्षमता के निर्माण की आवश्यकता होती है। सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही क्षेत्रों में अधिकतम निवेश क्षमता निर्माण में किया जाना चाहिए।

11. **वित्तीय तथा सेवा संस्था सम्बन्धी पारदर्शिता–**

निर्धनों को सेवा प्रदान करने वाली वित्तीय तथा सामाजिक संस्थाओं के सम्बन्ध में सटीक, मानक तथा तुलनीय सूचना होना अनिवार्य है। बैंकों के संचालकों व नियामकों, अनुदानकों, निवेशकों तथा सबसे महत्वपूर्ण निर्धन वर्ग जो कि सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के ग्राहक हैं, को इन सूचनाओं की आवश्यकता जोखिम तथा प्रतिफल के आकलन के लिए होती है।

15.7 सूक्ष्म वित्त की वाहिकाएं

भारत में सूक्ष्म वित्त दो वाहिकाओं के माध्यम से संचालित होता है–

1. एस0एच0जी0 – बैंक संयोजन कार्यक्रम (एस0बी0एल0पी0)
2. सूक्ष्म वित्त संस्थाएं (एम0एफ0आई0)

1. **एस0एच0जी0 – बैंक संयोजन कार्यक्रम (एस0बी0एल0पी0)–**

यह बैंकों के नेतृत्व वाली सूक्ष्म वित्त वाहिका है जिसे नाबार्ड द्वारा 1992 में प्रारम्भ किया गया। एस0एच0जी0 (स्वयं सहायता समूह) के

अन्तर्गत इसके सदस्य जो कि प्रायः ग्रामीण महिलाएं होती है, को 10–15 लोगों का समूह बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है। सदस्य अपनी बचतों को समूह को समय–समय पर प्रदान करती हैं तथा इन बचतों से सदस्यों को ऋण प्रदान किये जाते हैं। बाद में इन समूहों को आय सृजन के किसी कार्य हेतु बैंक द्वारा ऋण प्रदान किया जाता है। समूह के सदस्य नई बचतों के प्राप्त होने पर, सदस्यों द्वारा पूर्व ऋण की वसूली प्रदान करने पर तथा नये ऋणों के वितरण के लिए समय–समय पर मिलते हैं। यह मॉडल पूर्व में अत्यन्त सफल हुआ है तथा समय के साथ यह और भी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है। स्वयं सहायता समूह अनवरत संस्था हैं तथा एक बार समूह के स्थिर हो जाने के बाद यह स्वतः किसी एन0जी0ओ0 की सहायता से अपना कार्य संचालित करने लगता है।

2. **सूक्ष्म वित्त संस्थाएं (एम0एफ0आईज)–**

वे संस्थाएं जिनका मुख्य कार्य सूक्ष्म वित्त उपलब्ध कराना है, को सूक्ष्म वित्त संस्थाएं कहा जाता है। अलग–अलग आकार तथा विधिक संरचना वाली अनेक संस्थाएं सूक्ष्म वित्त प्रदान करने के कार्य में संलग्न हैं। ये संस्थाएं संयुक्त दायित्व समूह (जे0एल0जी0) की अवधारणा के आधार पर ऋण प्रदान करती हैं। जे0एल0जी0 एक अनौपचारिक समूह होता है जिसमें 5 से 10 सदस्य होते हैं और जो बैंक से व्यक्तिगत अथवा सामूहिक ऋण पारस्परिक गारण्टी के आधार पर लेने के लिए संगठित होते हैं। सूक्ष्म वित्त प्रदान करने के लिए पृथक से एक सूक्ष्म वित्त संस्था खोलने की आवश्यकता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

- लेनदेन की उच्च लागत– सामान्यतः सूक्ष्म ऋण बैंकों द्वारा ऋण प्रदान करने की दृष्टि से खण्ड–सम बिन्दु से नीचे होते हैं।
- सम्पार्श्विक प्रतिभूति का अभाव– निर्धन वर्ग सामान्यतः अपने ऋण की सुरक्षा के लिए सम्पार्श्विक प्रतिभूति प्रदान करने की स्थिति में नहीं होता है।
- सामान्यतः ऋण बहुत छोटी अवधि के लिए प्राप्त किए जाते हैं।
- ऋण की किश्तों के भुगतान की अधिक आवृत्ति तथा चूक की अधिक दर।

सूक्ष्म ऋण का सुपुर्दगी मॉडल

सूक्ष्म वित्त की अवधारणा निर्धन वर्ग के लिए अनौपचारिक तथा लोचपूर्ण पद्धति को सम्मिलित करती है। ऐसी कोई एक विशेष पद्धति अथवा मॉडल नहीं है जो सभी परिस्थितियों में उपयुक्त सिद्ध हो सके। इसलिए विभिन्न देशों /प्रदेशों में उनकी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार सुविधाजनक अनेक सूक्ष्म वित्त मॉडल सामने आये। संक्षेप में सूक्ष्म वित्त की सुपुर्दगी के निम्न छः समूह वर्गीकृत किये जा सकते हैं–

1. **ग्रामीण बैंक मॉडल**

ग्रामीण बैंक मॉडल सूक्ष्म वित्त प्रदान करने का सबसे पुराना एवं सफलतम मॉडल है। यह मॉडल बांग्लादेश में विकसित हुआ। इस मॉडल में सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम के प्रतिभागी पॉच सदस्यों के समूह में संगठित

होते हैं। वे समूह के लिए बचतों तथा बीमा निधि में अनिवार्य सहयोग प्रदान करते हैं। प्रत्येक सदस्य बैंक के साथ अपनी व्यक्तिगत बचत तथा ऋण खातों का संचालन करता है तथा एक निश्चित समय के लिए बचत कोष में अपना योगदान देने के बाद समूह का सदस्य बैंक से व्यक्तिगत ऋण प्राप्त करता है किन्तु समूह को सदस्य को प्रदत्त ऋण के पुनर्भुगतान हेतु कोई गारण्टी देने की आवश्यकता नहीं होती है। पुनर्भुगतान का उत्तरदायित्व पूर्णतः ऋणी का होता है तथा किसी प्रकार का संयुक्त उत्तरदायित्व नहीं होता है अर्थात् चूक की दशा में समूह के सदस्य चूककर्ता के स्थान पर भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं होंगे। ऋण छः माह से एक वर्ष तक की अवधि के लिए दिये जायेंगे किन्तु उनकी वापसी साप्ताहिक आधार पर की जायेगी। बैंक स्टाफ सामयिक आधार पर समूहों का भ्रमण करेंगे, सदस्यों का व्यक्तिगत अभिलेख रखेंगे तथा सभी लेनदेनों में उनकी सहायता करेंगे। इससे कार्य सम्पन्न करने में सुगमता होती है किन्तु समूह सदस्यों के सशक्तीकरण में बाधा पहुॅचती है। समूह के सदस्य अपने समूह के विभिन्न कार्यों के लिए फील्ड ऑफीसर पर निर्भर रहते हैं। ग्रामीण मॉडल एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के चालीस से अधिक देशों में कतिपय स्थानीय परिस्थिति आधारित परिवर्तनों के साथ अपनाया गया। बोलीविया में बैंकासोल कार्यक्रम तथा लेटिन अमेरिका के अधिकांश सोलिडेरिटी समूह इस मॉडल को अपनाते हैं। भारत में भी अनेक सूक्ष्म वित्त संस्थाएं इस मॉडल को अपना चुकी हैं।

2. **संयुक्त उत्तरदायित्व समूह मॉडल**

इस मॉडल में 4 से 10 व्यक्ति एक समूह में संगठित होते हैं जिसे संयुक्त उत्तरदायित्व समूह कहा जाता है। समूह के सदस्य बैंक से समूह की पारस्परिक गारण्टी के माध्यम से ऋण ले सकते हैं तथा उनके बचत खाते होने की कोई बाध्यता नहीं है। सभी सदस्य एक संयुक्त उत्तरदायित्व अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करते हैं जिसके अनुसार प्रत्येक सदस्य समूह के किसी भी सदस्य द्वारा लिए गये ऋण के लिए संयुक्त रुप से उत्तरदायी होगा। इसप्रकार ऋणदाता बैंक को केवल सामाजिक सम्पार्श्विक प्रतिभूति ही उपलब्ध कराई जाती है। संयुक्त उत्तरदायित्व समूह मूलतः ऋण समूह के रुप स्थापित होते हैं तथा नियमित बचत किया जाना समूह सदस्यों के लिए अनिवार्य नहीं है। समूह का अस्तित्व इस पर निर्भर है कि इसके सदस्य विधिक रुप से एक दूसरे बॅधे होते हैं। इस मॉडल में समूह सदस्यों के सशक्तीकरण की प्रगति अन्यन्त सीमित होती है। भारत में, इस प्रकार के समूह सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा बनाये गये हैं क्योंकि इसमें ऋण के उपयोग को लेकर बहुत कम बन्धन होने के कारण इस प्रकार के समूह बनाना आसान होता है। नाबार्ड इस मॉडल का उपयोग किराया–कृषकों, मौखिक व भागीदारी वाले जुताईदारों, लघु कृषकों को ऋण प्रदान करने के लिए कर रहा है जिनके पास अपनी भूमिधारिता के उचित अभिलेख उपलब्ध नहीं हैं। अनेक अन्य देश भी इस मॉडल का प्रयोग कर रहे हैं। निर्धन वर्ग में भी अनेक प्रभाग हैं, जैसे–

बॅटाईदार, मौखिक किरायेदारी, किराया कृषक आदि जो कि छूट गये थे, जिनकी ऋण आवश्यकताएं अधिक थीं किन्तु जिनके पास परम्परागत बैंकिंग प्रणाली की वित्तीय मॉग के अनुरुप सम्पार्श्विक प्रतिभूतियॉ नहीं थीं। इस प्रकार के ग्राहकों की सेवा करने के लिए संयुक्त उत्तरदायित्व समूह, जो कि स्वयं सहायता समूह का ही एक उन्नत रुप है, एक प्रभावी मार्ग हो सकता है।

3. **व्यक्तिगत ऋण मॉडल**

इस प्रणाली में कोई व्यक्ति बिना किसी समूह की सदस्यता के ऋण प्राप्त कर सकता है। यह सीधा–सपाट ऋण प्रदान करने की व्यवस्था है जिसमें सूक्ष्म ऋण सीधे लाभार्थी को दिये जाते हैं। इस मॉडल में वित्तीय संस्थाएं व्यक्तियों की विशिष्ट आवश्यकताओं पर आधारित डिजायन ऋण उत्पादों को उपलब्ध कराने के लिए अपने ग्राहकों के निकट सम्पर्क में रहते हैं। यह बड़े, शहर–आधारित, उत्पादोन्मुखी व्यवसाय के लिए सर्वोत्तम है। इस मॉडल को अनेक वित्तीय संस्थाओं द्वारा अपनाया गया, यथा– ऐसोसिएशन फार द डवलपमेंट आफ माइक्रो एण्टरप्राइजेज (ए0डी0ई0एम0आई0) डोमीनिकन रिपब्लिक, बैंक रक्यात इण्डोनेशिया, सेनेगल इजिप्ट, सेल्फ एम्प्लायमेंट वोमन्स एसोसिएशन आफ इण्डिया आदि।

4. **समूह विचारधारा**

समूह विचारधारा में सम्पूर्ण वित्तीय प्रक्रिया को वित्तीय संस्था के स्थान पर समूह को अन्तरण कर दिया जाता है। बचत, ऋण प्राप्त करना, ऋणों का पुनर्भुगतान तथा अभिलेखीकरण जैसे समस्त कार्यों का प्रबन्धन समूह स्तर से ही किया जाता है। इस प्रणाली में, 10–20 सदस्य एक समूह का गठन करने के लिए संगठित होते हैं। इसके समूह के सदस्य निश्चित राशि की नियमित बचत के द्वारा एक कोष का निर्माण करते हैं। बचत की रकम तथा आवृत्ति का निर्धारण भी समूह सदस्यों द्वारा पारस्परिक सहमति से किया जाता है। कुछ समय तक सफलतापूर्वक समूह का संचालन करने के बाद यह समूह ऋण के उद्देश्य से किसी वित्तीय संस्था से जुड़ जाता है। वित्तीय संस्था ऋण की रकम को समूह के नाम स्वीकृत करती है तथा सम्पूर्ण समूह ही इसके पुनर्भुगतान के लिए उत्तरदायी होता है। ऋण की राशि का निर्धारण समूह द्वारा जमा की गई कुल रकम के आधार पर किया जाता है। समूह के सदस्य ही ऋण की कुल राशि को सदस्यों के मध्य वितरण किये जाने के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं। इस ऋण के द्वारा सम्पूर्ण समूह संयुक्त रुप से एक सूक्ष्म उद्यम प्रारम्भ कर सकता है अथवा इसके सदस्य व्यक्तिगत रुप से व्यवसाय कर सकते हैं। कोई व्यक्ति ऋण की रकम को उपभोक्ता कार्यो अथवा अन्य प्राथमिकता आवश्यकताओं के लिए भी व्यय कर सकता है। समूह के सदस्यों का पारस्परिक दबाव ऋणों के ससमय पुनर्भुगतान के लिए सहायक होता है। इस प्रकार की समूह आधारित ऋण सुपुर्दगी प्रणाली समूह सदस्यों को सशक्त करती है क्योंकि वे विभिन्न सामूहिक गतिविधियों में एक साथ कार्य करते हैं। वे एक साथ बैंक व बाजार जाते

हैं तथा समूह की सभाएं आयोजित करते हैं जिससे उनके आत्म–विश्वास में वृद्धि होती है। भारत में, समूह आधारित ऋण सुपुर्दगी प्रणाली को एस0एच0जी0– बी0एल0पी0 के नाम से जाना जाता है। ये सूक्ष्म वित्त प्रदान करने की महत्वपूर्ण प्रणाली है। इण्डोनेशिया में प्रोग्राम हबनगन बैंक डनक्स्म (पी0एच0बी0के0) परियोजना तथा केन्या में चिकोला ग्रुप ऑफ के–आरईपी इस प्रकार की ऋण सुपुर्दगी कर रहे हैं।

5. **ग्राम बैंकिंग प्रणाली**

ग्राम बैंकिंग प्रणाली समूह प्रणाली का ही एक विस्तार है। इस मॉडल का विकास बोलीविया में मध्य 1980 काल में एक लाभ निरपेक्ष सूक्ष्म वित्त संगठन 'फाउण्डेशन फॉर इन्टरनेशनल कम्यूनिटी असिस्टेंस' (एफ0आई0एन0सी0ए0) द्वारा किया गया। इस मॉडल में, 30 से 100 अल्प आय व्यक्ति, जो स्वरोजगार के माध्यम से अपना जीवन सुधारना चाहते हैं, के द्वारा मिलकर एक ग्राम बैंक विकसित किया जाता है। बैंक का वित्तीयन सदस्यों के बचत खातों के आन्तरिक संघटन तथा उनके प्रवर्तक सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के माध्यम से किया जाता है। सूक्ष्म वित्त संस्था द्वारा बैंक को पूँजी उपलब्ध कराई जाती है जो कि उसके द्वारा अपने सदस्यों को ऋण स्वरुप दी जाती है। सदस्य ग्राम बैंक का संचालन करते हैं। वे अपने सदस्यों का चुनाव करते हैं, अपने अधिकारी चुनते हैं, अपने नियम निर्धारित करते हैं, व्यक्तियों को ऋण देते हैं तथा बचत व भुगतान प्राप्त करते हैं। ऋण की राशि को उक्त बैंक सदस्य द्वारा जमा की गई धनराशि से जोड़ा जाता है। ऋण का पुनर्भुगतान छोटी–छोटी किश्तों में साप्ताहिक आधार पर किया जाता है। इसप्रकार, ग्राम बैंकों में उच्च स्तर का लोकतांत्रिक नियन्त्रण तथा स्वतंत्रता का दर्शन होता है। इस मॉडल का उपयोग विभिन्न सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा किया गया है। यथा–ग्वाटेमाला की केयर (कोऑपरेटिव असिस्टेंस एण्ड रिलीफ एवरीह्वेयर), अल सल्वाडोर की सेव द चिल्ड्रन, बोलीविया, माली तथा घाना की बुरकीना फासो, थाइलैण्ड व बेनिन की फ्रीडम फ्राम हंगर एण्ड कैथोलिक रिलीफ सर्विसेज, अपॉर्चुनिटी इण्टरनेशनल, कंसल्टेटिव ग्रुप फार असिस्टिंग द पुअर (सी0जी0ए0पी0) आदि।

6. **ऋण संगठन तथा सहकारिता**

ऋण संगठन एक प्रजातांत्रिक, लाभ निरपेक्ष वित्तीय सहकारिता है। इसका स्वामित्व तथा प्रशासन इसके सदस्यों के पास होता है जो कि अपनी सहकारी समिति के स्वामी तथा ग्राहक दोनों एक साथ होते हैं। सहकारी संगठन प्रायः एक समान स्थानीय अथवा पेशेवर समुदाय से होते हैं अथवा उनके हित समान होते हैं। सामान्यतः सहकारी संगठन अपने ग्राहकों को बैंकिंग तथा वित्तीय सेवाओं की एक बड़ी श्रृंखला प्रस्तुत करते हैं। इसके ग्राहक सभी निर्णयों में प्रतिभाग करते हैं तथा अपने बीच से ही अधिकारियों का चुनाव सहकारी संगठन की देखभाल तथा प्रशासन के लिए करते हैं। ऋणों का वितरण केवल सदस्यों को किया जाता है। सानासा डवलपमेंट बैंक आफ श्रीलंका ग्रामीण ऋण सहकारिता है जो कि सूक्ष्म वित्तीय सेवा प्रदाता के रुप में सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है।

15.8 भारत में सूक्ष्म वित्त आन्दोलन

भारत में सूक्ष्म वित्त आन्दोलन को औपचारिक रुप से राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) द्वारा 1992 में प्रारम्भ किया गया। भारत की औपचारिक वित्तीय संस्थाएं ग्रामीण परिवारों विशेषतः असंगठित क्षेत्र की महिलाओं तक अपनी पहुॅच नहीं बना सकी थीं। संरचना की जड़ता तथा उपरिव्ययों की अधिकता के कारण छोटे ऋणों को भी उच्च लागत का सामना करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त निर्धनों को ऋण देने के योग्य नहीं माना जाता था। निर्धनों द्वारा अपनी ऋण पुनर्भुगतान योग्यता तथा बचत सेवाओं के लिए प्रभाव सिद्ध न कर सकने के कारण निर्धनों की समस्याएं बढ़ गईं।

सूक्ष्म वित्त एक वित्तीय नवोन्मेष है जो बांग्लादेश के ग्रामीण बैंक के साथ प्रारम्भ हुआ। इसने बांग्लादेश के अति निर्धन वर्ग को स्वरोजगार परियोजनाओं से जोड़ने का कार्य सफलतापूर्वक किया तथा अनेक मामलों में सम्पदा निर्माण तथा निर्धनता निवारण का कार्य भी किया। सूक्ष्म ऋण की सफलता के कारण औपचारिक बैंकिंग उद्योग में भी अनेकों ने यह स्वीकार किया कि सूक्ष्म ऋण के लाभार्थियों को बैंकिंग योग्यता की पूर्वावस्था में माना जाये। इस प्रकार सूक्ष्म ऋण मुख्य धारा के वित्त उद्योग में निरन्तर लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं। अनेक पारम्परिक वृहद संगठन सूक्ष्म ऋण परियोजनाओं को भावी संवृद्धि के श्रोत के रुप में देख रहे हैं, जबकि लगभग सभी ने प्रारम्भिक काल में इसकी सफलता को कमतर ऑका था। सम्पूर्ण देश में एक बहु–संस्था ग्रामीण ऋण प्रदाता संगठन वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा सहकारी बैंकों को सम्मिलित करते हुए स्थापित किया गया किन्तु इस संगठन के लिए भी निर्धनों की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं (छोटी एवं निरन्तर) को पूर्ण करना कठिन था। जटिल प्रणाली तथा प्रक्रियाओं ने भी निर्धनों के बड़े वर्ग को औपचारिक बैंकिंग संवर्ग से दूर बनाये रखा। दूसरी ओर, बैंकों का निरन्तर बढता जाल इसकी लाभप्रदता के लिए खतरा बन गया किन्तु वे निर्धन वर्ग को स्वयं से दूर भी न कर सके। निर्धन वर्ग की वित्तीय सेवाओं को पूर्ण करने के लिए एक वैकल्पिक प्रणाली की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी।

सूक्ष्म वित्त ऋणों की परिभाषा

सूक्ष्म वित्त ऋण वे लघु ऋण हैं जो आधारगत क्षेत्र के लाभार्थी के रोकड़ प्रवाह तथा अन्य निर्धनों व अल्प आय परिवारों को उनके सूक्ष्म उद्यमों व लघु व्यापार हेतु उनकी आय तथा जीवन स्तर बढाने के लिए प्रदान किये जाते हैं। ये ऋण सामान्यतः असुरक्षित होते हैं यद्यपि कुछ अवसरों पर सुरक्षित भी हो सकते हैं।

सूक्ष्म वित्त ऋण का स्तर

फिलिपींस में किसी गैर सरकारी संगठन की सूक्ष्म वित्त संस्था अथवा सहकारी बैंक अथवा ऋण संगठन का औसत सूक्ष्म वित्त ऋण लगभग 25,000 पेसो (न्यूनतम 2,000 से 5,000 पेसो) है। व्यावहारिक रुप से किसी सूक्ष्म वित्त ऋण की अधिकतम मूल राशि 1,50,000 पेसो तक हो सकती है। (एक पेसो का वर्तमान मूल्य लगभग 1.26 भारतीय रुपये है)। यह आरए (रिपब्लिक एक्ट) 8425 के अन्तर्गत सूक्ष्म उद्यम की अधिकतम पूॅजीकरण राशि के समतुल्य है।

सूक्ष्म वित्त ऋण का सम्पार्श्विकीकरण

एक सूक्ष्म वित्त ऋणी इस योग्य नहीं होता कि वह बड़े व्यावसायिक बैंकों से ऋण प्राप्त कर सके किन्तु एनजीओ सूक्ष्म वित्त संस्थाओं या फिर छोटे ग्रामीण सहकारी बैंकों से ले सकते हैं। सूक्ष्म वित्त ऋण सामान्यतः असुरक्षित होते हैं, अपेक्षाकृत कम अवधि (180 दिन) के होते हैं जिन पर मूल व ब्याज का मासिक (या अधिक आवृति) लगाई जाती है। इन पर प्रायः एकाधिक व्यक्तियों की संयुक्त अथवा पृथक गारण्टी होती है। इन पर भौतिक सम्पार्श्विक प्रतिभूति प्रायः नहीं होती है किन्तु कुछ प्रकरणों में ये ऋणी की बैंकों को स्वीकार्य सम्पार्श्विक प्रतिभूति प्रस्तुत करने की क्षमता के आधार पर सुरक्षित हो सकते हैं।

सूक्ष्म वित्त ऋणों पर ब्याज

1. **पुरानी अवधारणाः** अल्प आय ऋणियों के लिए पुरानी (जिसे अब अप्रभावी मान लिया गया है) अवधारणा में अनुदानित दर पर ब्याज पर बल दिया गया। इसमें यह नहीं माना गया कि इस प्रकार बाजार में प्रचलित ब्याज दर से कम अनुदानित ब्याज दर से यह आवश्यक नहीं है कि अल्प आय परिवारों तथा सूक्ष्म उद्यमियों के लिए वित्तीय सेवाओं के द्वार आवश्यक रुप से खुल ही जायेंगे।

2. **नई अवधारणाः** नई अवधारणा जो कि वैश्विक अनुभवों पर आधारित है, को बाजार आधारित ब्याज–दर युग के रुप में पहचाना जाता है। यह सूक्ष्म वित्त सेवा प्रदायक संस्थाओं को अपनी प्रशासनिक लागत, ऋण पर हानियों के प्रावधान तथा मध्यस्थता/वित्त की लागत को प्राप्त करने की अनुमति प्रदान करता है। यह आधार वित्तीय रुप से संपोषणीय ग्रामीण वित्त तथा सूक्ष्म वित्त के लिए समान रुप से लागू है। वैश्विक अनुभव अभी भी यह मान्यता प्रदान करता है कि निर्धन तथा असेवित वर्ग के लिए यह अधिक महत्वपूर्ण है कि उसे वित्तीय सेवाएं प्राप्त हों, न कि ब्याज दर की लागत क्योंकि सूक्ष्म उद्यमी तथा लघु व्यवसायी ऋणी सूक्ष्म वित्त ऋण तभी लेंगे जब पुनर्भुगतान समय उनके द्वारा सृजित संभावित अतिरिक्त नकद प्रवाह के अनुकूल होगा। इसलिए इन सूक्ष्म वित्त ऋणों पर ब्याज युक्तिसंगत होना चाहिए किन्तु यह प्रभावी बाजार दरों से कम नहीं होना चाहिए। यह इसलिए है जिससे ऋणदाता संस्थाएं न केवल इन सूक्ष्म ऋणों से सम्बन्धित अपनी वित्तीय व संचालनगत लागतें निकाल सकें वरन् कुछ सामान्य लाभ भी अर्जित कर सकें।

सूक्ष्म ऋण की मॉग के प्रवर्ग–

1. भूमिहीन वर्ग जो फसल आधारित कृषि कार्यों में संलग्न है तथा श्रमिक वर्ग जो वनों, खानों, घरेलू उद्योगों, निर्माण तथा यातायात के क्षेत्रों में कार्यरत है, को अपनी उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा कुछ छोटी उत्पादक आवश्यकताओं (जैसे– पशुधन) के लिए ऋण की आवश्यकता होती है।

2. लघु व सीमान्त कृषक, ग्रामीण दस्तकार, बुनकर तथा शहरी क्षेत्रों के असंगठित फेरीवाले, विक्रेता तथा घरेलू सूक्ष्म उद्यमों में कार्यरत स्वरोजगारी जनों को उनके कार्य के सम्बन्ध में कार्यशील पूॅजी, जिसका एक भाग उपभोक्ता आवश्यकताओं में भी व्यय होता है, की आवश्यकता होती है। इस वर्ग में निर्धन जन सम्मिलित हैं किन्तु वे निर्धनतम नहीं हैं।

3. मध्यम कृषक तथा लघु उद्यमी जो वाणिज्यिक कृषि से जुड़े हैं अथवा दुग्ध उद्योग (डेयरी), मुर्गी पालन आदि में संलग्न हैं। गैर कृषि गतिविधियों में ग्रामीण व बस्तियों में रहने वाले वे लोग सम्मिलित हैं जो प्रक्रियात्मक अथवा निर्माणी

गतिविधियों में संलग्न हैं। ये लोग निर्धनता की रेखा से मात्र ऊपर होते हैं तथा अपर्याप्त औपचारिक ऋण सम्बन्धी उपलब्धता से पीड़ित होते हैं।

15.9 सारांश

सूक्ष्म वित्त निर्धन तथा अल्प आय वर्ग के परिवारों को उनके सूक्ष्म उद्यम तथा लघु व्यापार के लिए वित्तीय सेवाओं यथा– जमा, ऋण, सेवाओं का भुगतान, धन हस्तांतरण तथा बीमा उत्पाद, के प्रावधान की विस्तृत श्रंखला है जिससे कि उनके आय का स्तर बढ़ाया जा सके तथा जीवन स्तर सुधारा जा सके। सूक्ष्म वित्त शब्द में सामान्यतः अल्प आय वर्ग के ग्राहकों को स्वरोजगार के लिए छोटे–छोटे ऋण तथा साथ ही अल्प बचतों को सम्मिलित किया जाता है। सूक्ष्म वित्त को निर्धनों के लिए आय बढ़ाने तथा जीवन स्तर ऊँचा करने हेतु मितव्ययी ऋण तथा अन्य वित्तीय सेवाओं व उत्पादों की छोटी रकम के रुप परिभाषित किया जाता है। भारत में सूक्ष्म वित्त दो वाहिकाओं के माध्यम से कार्य करता हैः (अ) एस0बी0एल0पी0 अर्थात् एस0एच0जी0–बैंक लिंकेज प्रोग्राम तथा (ब) सूक्ष्म वित्त संस्थाएं। भारत में सूक्ष्म वित्त आन्दोलन औपचारिक रुप से राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) द्वारा 1992 में पायलेट प्रोजेक्ट के रुप में प्रारम्भ किया गया। भारत में औपचारिक वित्तीय संस्थाएं निर्धनों विशेषतः असंगठित क्षेत्र की महिलाओं तक अपनी पहुॅच बनाने में अक्षम रही हैं। सूक्ष्म ऋण एक ऐसा वित्तीय नवोन्मेष है जो बांग्ला देश में ग्रामीण बैंकों की स्थापना से प्रारम्भ हुआ। किसी गैर सरकारी संगठन सूक्ष्म वित्त संस्था अथवा सहकारी बैंक का अथवा फिलीपींस की क्रेडिट यूनियन का सूक्ष्म वित्त ऋण लगभग 25,000 पेसो (न्यूनतम 2000 से 5000 पेसो) है। सूक्ष्म वित्त में दो प्रकार की अवधारणाएं हैं– 1. पुरानी अवधारणा तथा 2. नई अवधारणा।

15.10 शब्दावली

सूक्ष्म वित्त अथवा लघु वित्तः से आशय निर्धन वर्ग के लिए छोटे ऋण प्रदान करने, सामूहिक ऋण देने तथा सामाजिक/जनहितकारी गतिविधियों के लिए वित्तीय सेवाओं का प्रावधान करने से है।

15.11 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करो।

1. वर्ष 1975 में ....को कम लागत वाली ऐसी संस्थाओं के रुप में विकसित किया गया जो ऋण की दृष्टि से पिछडे क्षेत्रों के निर्धनतम व्यक्तियों तक पहुॅच सकें।
2. एस0एच0जी0 (स्वयं सहायता समूह) बैंकों के नेतृत्व वाली सूक्ष्म वित्त वाहिका है जिसे नाबार्ड द्वारा ....में प्रारम्भ किया गया।
3. सूक्ष्म वित्त एक वित्तीय नवोन्मेष है जो ....के ग्रामीण बैंक के साथ प्रारम्भ हुआ।

15.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों 2. 1992 3. बांग्लादेश

15.13 स्वपरख प्रश्न

1. सूक्ष्म वित्त से क्या आशय है?

2. सूक्ष्म वित्त की विभिन्न विशेषताओं एवं प्रमुखताओं को बताइए।
3. सूक्ष्म वित्त के विभिन्न सिद्धान्तों को विस्तार से समझाइए।
4. सूक्ष्म वित्त तथा इसकी वाहिकाओं को समझाइए तथा विश्लेषण कीजिए।
5. सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम की महत्वपूर्ण विशिष्टताओं को परिभाषित कीजिए।
6. सूक्ष्म वित्त के विभिन्न सुपुर्दगी मॉडल को समझाइए।
7. सूक्ष्म वित्त ऋण पर एक निबन्ध लिखिए।

15.15 संदर्भ पुस्तकें

1. Taneja Satish and Gupta S.L., Entrepreneur Development new venture creation. Galgotia Publication Company, 2nd revised edition, New Delhi.
2. Khanka S.S., Entrepreneurial Development, S.Chand & Company Ltd. New Delhi.
3. Small Scale Industries, Government of India, Ministri of SSI, f.no.e-20(2)/2003
4. http://www.nabard.org/pdf/report_financial/chap_viiipdf, dated on 10 May 2012
5. http://www.cgap.org/gm/document-1.9.2747/KeyPrincMicrofinance_CG_eng.pdf, dated 12 May 2012
6. http://www.iitk.ac.in/ime/MBA_IITK/avantgarde/?p=475, dated on 13 May, 2012
7. http://www.bsp.gov.ph/downloads/Regulations/attachments/2001/circ272.pdf, dated on 18 May, 2012

===========

इकाई 16 वित्तीय संस्थाएं (आई0डी0बी0आई0, आई0एफ0सी0आई0, आई0सी0आई0सी0आई0, यू0टी0आई0 तथा एस0आई0डी0बी0आई0)

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 वित्तीय संस्थाएंः अर्थ व कार्य
16.3 वित्तीय संस्थाओं के प्रकार
16.4 वित्तीय संस्थाओं का नियमन
16.5 भारत की वित्तीय संस्थाएं
16.6 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई0डी0बी0आई0)
16.7 यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया (यू0टी0आई0)
16.8 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई0एफ0सी0आई0)
16.9 भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम (आई0सी0आई0सी0आई0)
16.10 स्माल इण्डस्ट्रीज डवलपमेंट बैंक ऑफ इण्डिया (एस0आई0डी0बी0आई0)
16.11 सारांश
16.12 शब्दावली
16.13 बोध प्रश्न
16.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.15 स्वपरख प्रश्न
16.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- वित्तीय संस्थाएं के अर्थ व कार्य का वर्णन कर सकें।
- वित्तीय संस्थाओं के प्रकार को जान सकें।
- वित्तीय संस्थाओं के नियमन की व्याख्या कर सकें।
- भारत की वित्तीय संस्थाओं की जानकारी प्राप्त कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

वित्तीय संस्थाएं सरकारी प्राधिकारियों के द्वारा निर्धारित नियमों तथा विनियमों से नियन्त्रित तथा पर्यवेक्षित होती हैं। कुछ वित्तीय संस्थाएं अंश बाजार तथा ऋण सुरक्षा बाजार में मध्यस्थ के रुप में भी कार्य करती हैं। इन वित्तीय संस्थाओं का मुख्य कार्य निवेशकों से कोषों का एकत्रीकरण तथा उनको विभिन्न वित्तीय सेवा प्रदाताओं की ओर मोड़ना है जिन्हें उनकी आवश्यकता है। वित्तीय संस्थाएं बाण्डस्, ऋणपत्र, स्कन्ध, ऋण, जोखिम विविधीकरण, बीमा, हेजिंग, सेवा निवृत्ति नियोजन, निवेश, श्रेणीकरण (पोर्टफोलिओ) प्रबन्धन तथा उनसे सम्बन्धित कार्य करती हैं। इनके कार्यों की सहायता से ये वित्तीय संस्थाएं कोषों अथवा धन को अर्थव्यवस्था की विविध श्रेणियों की ओर अन्तरित करते हैं तथा इस प्रकार ये घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृष्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। अपने व्यावसायिक संचालनों में वित्तीय संस्थाएं विभिन्न प्रकार के आर्थिक मॉडलों को अपनाती हैं। वे अपने ग्राहकों तथा निवेशकों को उचित सलाह देकर

लाभों को अधिकतम करने में मदद करते हैं। वित्तीय संस्थाएं निवेशकों को निवेश की आवश्यक जानकारी देने तथा स्कन्ध के मूल्यांकन, बॉण्ड, सम्पत्ति, विदेशी विनिमय, तथा वस्तुओं के सम्बन्घ में भी शैक्षिक कार्यक्रमों की एक विस्तृत श्रंखला आयोजित करती हैं। इस प्रकार निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि वित्तीय संस्था वह संस्था होती है जो निजी एवं सार्वजनिक निवेशकों से कोष एकत्रित करके उसका प्रयोग वित्तीय सम्पत्तियों में करती है। वित्तीय संस्थाओं के कार्य मात्र किसी विशेष देश तक सीमित नहीं हैं वरन् वे वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभावों के कारण विदेशों में भी लोकप्रिय हो गये हैं।

16.2 वित्तीय संस्थाएं: अर्थ व कार्य

वित्तीय संस्थाएं वे संगठन होते हैं जो अपने ग्राहकों को विभिन्न प्रकार की वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराने में संलग्न होते हैं। वित्तीय संस्थाओं में बैंक, ऋण संगठन, सम्पत्ति प्रबन्धन फर्म, भवन समितियॉ तथा स्टॉक दलाल आदि सम्मिलित होते हैं। ये संस्थाएं वित्तीय संसाधनों को संभावित उपयुक्त प्रयोगकर्ताओं में नियोजित ढंग से वितरित करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। अनेकों संस्थाएं ऐसी होती हैं जो अति आवश्यक क्षेत्र अथवा व्यक्ति के लिए वित्तीय संसाधनों को एकत्रित करती हैं तथा उपलब्ध कराती हैं। दूसरी ओर, विभिन्न संस्थाएं ऐसी होती हैं जो मध्यस्थ की भूमिका का निर्वहन करते हुए अल्प अथवा अति साधनों वाली इकाइयों का मिलन कराती हैं। निवेशकों की ओर से उनके धन को निवेशित करना भी वित्तीय संस्थाओं का एक अन्य कार्य है।

वित्तीय संस्थाओं को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है–

- जमा स्वीकार करने वाली संस्थाएं
- वित्त एवं बीमा संस्थाएं
- निवेश संस्थाएं
- पेंशन प्रदान करने वाली संस्थाएं
- जोखिम प्रबन्धन संस्थाएं

उपरोक्त के साथ ही अनेक सरकारी वित्तीय संस्थाएं हैं जिन्हें नियमन तथा पर्यवेक्षण का कार्य प्रदान किया गया है। इन संस्थाओं ने विभिन्न उद्योगों की वित्तीय व प्रबन्धकीय आवश्यकताओं की पूर्ति में विशिष्ट भूमिका का निर्वहन किया है तथा राष्ट्र के आर्थिक परिदृष्य को संवारा है। जमा प्राप्त करने वाले संगठनों को वाणिज्यिक बैंक, पारस्परिक बचत बैंक, बचत संगठन, ऋण संगठन आदि के रुप में जाना जाता है। इस प्रकार के वित्तीय संगठनों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

- जमाएं स्वीकार करना
- वाणिज्यिक ऋण प्रदान करना
- भवन सम्पत्ति ऋण प्रदान करना
- बन्धक ऋण प्रदान करना
- अंश प्रमाण पत्र निर्गत करना

वित्तीय कम्पनियॉ ऋण, व्यापारिक स्कन्ध ऋण तथा अप्रत्यक्ष उपभोक्ता ऋण प्रदान करती हैं। ये कम्पनियॉ अपने कोष बॉण्ड तथा अन्य अनुबन्धों को

जारी करके प्राप्त करती हैं। ये कम्पनियॉ अनेक देशों में कार्य करती हैं। दूसरी ओर बीमा कम्पनियॉ हैं जो विभिन्न प्रकार के जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करती हैं तथा ये निवेश के विभिन्न अवसर भी उपलब्ध कराती हैं। बीमा कम्पनियॉ विभिन्न कार्यों के लिए ऋण भी प्रदान करती हैं तथा निवेश उत्पादों को तैयार करती हैं। वित्तीय कम्पनियों के विभिन्न कार्य जैसे स्कन्ध विनिमय, वस्तु बाजार, भावी सौदे, मुद्रा तथा विकल्प विनिमय आदि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये संस्थाएं वित्तीय दावों के सृजन तथा स्वामित्व प्रदान करने के कार्य में सम्मिलित होती हैं। ये संस्थाएं बाजार में वित्तीय तरलता स्थापित करने तथा मूल्य परिवर्तन जोखिम के प्रबन्धन के लिए उत्तरदायी हैं। अपनी विभिन्न सेवाओं के द्वारा ये संस्थाएं निवेश के अवसर उपलब्ध कराती हैं तथा विभिन्न उद्देश्यों के लिए कोषों के सृजन के द्वारा व्यापार की मदद करते हैं।

निवेश बैंक आदि के रुप में वित्तीय संस्थाओं के कार्य भी अत्यन्त आवश्यक हैं तथा निवेश क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। ये कम्पनियॉ विभिन्न वित्तीय गतिविधियों में संलग्न होती हैं जैसे– प्रतिभूतियों का अवलेखन, प्रतिभूतियों का निवेशकों को विक्रय, दलाली सेवाएं प्रदान करना तथा कोष प्राप्त करने सम्बन्धी सलाह प्रदान करना आदि। वित्तीय सस्थाएं वे फर्म हैं जो वित्तीय सेवाएं प्रदान करती हैं तथा अपने ग्राहकों को सलाह देती हैं। वित्तीय संस्थाएं सामान्यतः सरकारी प्राधिकारियों के वित्तीय कानूनों से नियमित होती हैं।

16.3 वित्तीय संस्थाओं के प्रकार

सरकारी नियन्त्रण के आधार पर वित्तीय संस्थाएं मूलतः दो प्रकार की होती हैं, एक तो वे जो प्रत्यक्षतः सरकार के अधीन होती हैं तथा दूसरी जो निजी क्षेत्र में होती हैं। दूसरा वर्गीकरण इस आधार पर हो सकता है कि वे बैंक जो परम्परागत बैंकिंग गतिविधियों के आधार पर जमा स्वीकार करना, ऋण प्रदान करना आदि कार्य करते हैं तथा दूसरे वे जो मूलतः ऋण, बीमा, वित्त व साख, बन्धक, स्कन्ध तथा वित्तीय जगत की अन्य गतिविधियों से जुड़े होते हैं।

उपरोक्त संस्थाओं के मध्य मुख्य अन्तर उनकी ऋण जारी करने तथा वित्त प्राप्त करने से सम्बन्धित कार्यप्रणाली के आधार पर किया जाता है। सरकार द्वारा संचालित संस्थाएं अपने कोष जमाओं तथा अंशों की बिक्री से प्राप्त करती हैं जबकि निजी संस्थाएं सामान्यतः वित्त सृजित करने में अतिरिक्त पूॅजी वाली जनता तथा संस्थाओं को निवेश के अवसर उपलब्ध कराकर मध्यस्थ की भूमिका निभाते हुए कार्य करती हैं तथा इस प्रकार व्यापारों तथा कम्पनियों को आवश्यक कोष उपलब्ध कराना सरल बनाती हैं।

उपरोक्त संस्थाओं को उनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं के आधार पर मुख्यतः निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. बैंक
2. साख संगठन
3. बीमा कम्पनियॉ
4. वित्त कम्पनियॉ
5. बन्धक कम्पनियॉ
6. न्यास कम्पनियॉ
7. बचत तथा ऋण संगठन

वित्तीय कम्पनियॉ जनता को उसकी आवश्यकता तथा लघु तथा वृहद व्यापार की स्थापना के अनुरुप कोष/धन उपलब्ध कराने में मदद करती हैं अथवा दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ये व्यापार को वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराने वाले मध्यस्थ हैं। अनेकों इस प्रकार की संस्थाएं हैं, जैसे– बैंक, ऋण संगठन आदि। इनका उत्तरदायित्व किसी विशिष्ट निवेशक से धन को विभिन्न कम्पनियों को अन्तरित कराना है।

भारत में वित्तीय संस्थाओं को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है–

1. बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं
2. गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं

1. बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं वे हैं जिन्हें जनता से धन स्वीकार करने की अनुमति होती है, यथा– बैंक जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गनिर्देशों के अन्तर्गत जनता से साथ व्यवहार की अनुमति होती है।
2. गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं वे संस्थाएं होती हैं जिन्हें जनता से प्रत्यक्ष जमा प्राप्त करने की अनुमति नहीं होती है किन्तु वे अन्य वित्तीय सहायता सेवा उपलब्ध कराएंगे जैसे– परियोजना वित्तीयन, किराया क्रय वित्त, बिलों की कटौती। सामान्यतः ये संस्थाओं के साथ व्यवहार करते हैं तथा इनकी सेवाएं उद्यम आधारित होती हैं। ये वित्तीय सहायता, सलाह तथा अन्य सेवाएं उद्योग को ही देती है।

सेवाएं उपलब्ध कराने के आधार पर वित्तीय संस्थाएं विभिन्न प्रकार की होती हैं जैसे– बैंक, साख संगठन, बीमा कम्पनियॉ, बचत व ऋण संघ, वित्त कम्पनियॉ, न्यास कम्पनियॉ तथा बन्धक कम्पनियॉ। वित्तीय संस्थाओं को उनकी सम्पत्तियों तथा दायित्वों के आधार पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। वित्तीय संस्थाओं की पहली श्रेणी में जमा संस्थाएं जैसे– वाणिज्यिक बैंक, बचत तथा ऋण संगठन, पारस्परिक बचत निधि तथा साख संघ सम्मिलित हैं। दूसरी श्रेणी की वित्तीय संस्थाओं में अनुबन्धित बचत संस्थान जैसे जीवन बीमा कम्पनी, अग्नि तथा आकस्मिक बीमा कम्पनी, पेंशन निधि तथा सरकारी सेवानिवृत्ति निधि सम्मिलित होते हैं। वित्तीय संस्थाओं की तृतीय श्रेणी में निवेश मध्यस्थकारी संस्थाएं होती हैं। इन संस्थाओं में वित्तीय कम्पनियॉ, पारस्परिक निधियॉ तथा मुद्रा बाजार पारस्परिक निधियॉ सम्मिलित हैं।

वित्तीय संस्थाओं की भूमिका

- विभिन्न वित्तीय संस्थाएं सामान्यतः पूँजी बाजार तथा ऋण बाजार के बीच मध्यस्थ की भूमिका का निर्वहन करती हैं किन्तु किसी विशेष संस्था द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं उनके वर्गीकरण पर निर्भर होती हैं।
- वित्तीय संस्थाएं कोषों को निवेशकों से कम्पनियों को हस्तांतरित करने के लिए भी उत्तरदायी होती हैं।
- सामान्यतः कुछ विशिष्ट इकाइयॉ होती हैं जो अर्थव्यवस्था में धन के प्रवाह को नियन्त्रित करती हैं।

16.4 वित्तीय संस्थाओं का नियमन

वित्तीय संस्थाओं का नियमन एक देश से दूसरे देश का भिन्न होता है। वित्तीय संस्थाओं का नियमन विभिन्न देशों के सरकारी प्राधिकारियों के द्वारा

निर्धारित किये जाते हैं। इन सरकारी प्राधिकारियों का प्रमुख उद्देश्य उस देश में संचालित वित्तीय गतिविधियों को नियमित करना होता है। वित्तीय नियमन निकाय स्कन्ध बाजार, बॉण्ड बाजार, विदेशी विनिमय बाजार तथा वित्त बाजार के अन्य हिस्सों को नियन्त्रित करता है।

वित्तीय नियमन किसी देश के वित्तीय बाजार में स्वच्छ तथा ग्राहकोन्मुखी वातावरण बनाने के लिए तैयार किये जाते हैं जो कि आर्थिक सवंद्धि में सहायक होते हैं। वित्तीय नियमन निकायों के कुछ उदाहरण हैं– फेडरल रिजर्व बैंक (संयुक्त राष्ट्र), रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया (आर0बी0आई0), भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी), यूनाइटेड किंगडम में फाइनेन्सियल सर्विसेज अथोरिटी, संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य अनेक में सिक्योरिटी एण्ड एक्सचेंज कमीशन (एसईसी) आदि।

वित्तीय संस्थाओं के नियमन निकायों के वैधानिक उद्देश्यों में निम्नलिखित सम्मिलित है–

- **बाजार का आत्म विश्वासः** वित्तीय नियमन निकायों का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य वित्तीय बाजारों का आत्म विश्वास बनाये रखना होता है।
- **उपभोक्ता संरक्षणः** उपभोक्ता संरक्षण के सर्वोपयुक्त स्तर को प्राप्त करना।
- **जनचेतनाः** शैक्षिक कार्यक्रमों में सम्मिलित करते हुए जनता में वित्तीय बाजारों के बारे में चेतना जाग्रत करना।
- **वित्तीय अपराधों को समाप्त करनाः** वित्तीय अपराधों तथा धोखाधडी को कम करने उद्देश्य से वित्तीय विनियमों का विनिर्माण करना।
- वित्तीय संस्थाओं के नियामकों द्वारा अपनाये जाने वाले सांवधिक सिद्धान्तों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:
- **प्रबन्धन में भूमिकाः** वित्तीय संस्थाओं के वरिष्ठ प्रबन्धन पर नियामक उपायों को लागू करना जिससे कि वे कोई ऐसा निर्णय न लें जो वित्तीय बाजार के लिए हानिकारक हो।
- **नवोन्मेषः** नवोन्मेषों को कुछ प्रतिबन्धों के साथ इस प्रकार उपलब्ध कराया जाना चाहिए कि प्रदान की जाने वस्तु तथा सेवाएं नियमों तथा परिनियमों के अनुकूल हों।
- **अन्तर्राष्ट्रीय पहलूः** कठोरता के साथ अवलोकन किया जाना चाहिए जिससे कि यह तय किया जा सके कि अन्तर्राष्ट्रीय मानकों का पालन किया जा रहा है अथवा नहीं।
- **दक्षता एवं अर्थव्यवस्थाः** देश के वित्तीय संसाधनों को विवेकपूर्ण तथा प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए।
- **आनुपातिकताः** जिन वित्तीय परिनियमों को लागू किया जाना है वे उन लाभों के अनुपात में होने चाहिए जिन्हें इन नियमों के द्वारा अनुमानित किया गया है।
- **स्पर्धात्मकताः** वित्तीय बाजार पर कड़ी निगरानी रखी जानी चाहिए जिससे कि प्रतिस्पर्धा के हानिकारक प्रभावों को न्यूनतम किया जा सके।

16.5 भारत की वित्तीय संस्थाएं

भारत में वित्तीय संस्थाएं दो श्रेणियों में विभाजित हैं। पहली श्रेणी नियामक संस्थाओं की है तथा दूसरी श्रेणी मध्यस्थ संस्थाओं की है। नियामकों को भारतीय वित्तीय प्रणाली के सभी अंगों को शासित करने का दायित्व है। ये नियामक संस्थाएं अपनी निगरानी में पारदर्शिता तथा राष्ट्र हितों की सुरक्षा बनाये रखने के लिए उत्तरदायी हैं।

भारत में वित्तीय संस्थाओं के नियामक निकाय निम्नलिखित हैं–

- भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई0डी0बी0आई0)
- यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया (यू0टी0आई0)
- भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई0एफ0सी0आई0)
- भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (आई0सी0आई0सी0आई0)
- भारतीय लघु औद्योगिक विकास निगम (एस0आई0डी0बी0आई0– सिडबी)

16.6 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई0डी0बी0आई0)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई0डी0बी0आई0) की स्थापना उद्योगों के विकास तथा विकास संस्थाओं की सहायता के लिए साख उपलब्ध कराने तथा अन्य सुविधाओं के लिए प्रमुख संस्था के रुप में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम 1964 के अधीन के अन्तर्गत की गई। वर्ष 1976 तक आई0डी0बी0आई0 भारतीय रिजर्व बैंक की एक सहायक संस्था थी। सन् 1976 में यह भारतीय रिजर्व बैंक से अलग हुआ तथा इसका स्वामित्व भारत सरकार को सोंप दिया गया। विकास के आधार पर आई0डी0बी0आई0 विश्व में दसवॉ सबसे बड़ा बैंक है। नेशनल स्टॉक एक्सचेन्ज, नेशनल सिक्योरिटी डिपोजिटरी सर्विसेज लि0 (एन0एस0डी0एल0), स्टॉक होल्डिंग कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया आदि कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जिन्हें आई0डी0बी0आई0 द्वारा निर्मित किया गया है।

संगठन एवं प्रबन्ध

आई0डी0बी0आई0 का एक निदेशक मण्डल होता है जिसमें भारत सरकार द्वारा नियुक्त एक अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक तथा केन्द्र सरकार द्वारा नामित भारतीय रिजर्व बैंक का उप निदेशक सम्मिलित होते हैं। मण्डल द्वारा अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक सहित एक दस सदस्यीय कार्यकारी समिति का गठन किया जाता है। यह कार्यकारी समिति वित्तीय सहायता स्वीकृत करने के लिए सक्षम होती है।

आई0डी0बी0आई0 का मुख्य कार्यालय मुम्बई में है। बैंक के 21 शाखा कार्यालयों के अतिरिक्त पॉच क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता, गुवाहाटी, नई दिल्ली, चेन्नई तथा मुम्बई में हैं।

आई0डी0बी0आई0 के कार्य

आई0डी0बी0आई0 के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

- औद्योगिक उपक्रमों का वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।
- औद्योगिक विकास में संलग्न संस्थाओं को प्रोत्साहित करना।
- उद्योगों के प्रोत्साहन, प्रबन्धन तथा विस्तार हेतु तकनीकी तथा प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराना।

- उद्योगों के विकास के सम्बन्ध में बाजार तथा निवेश सम्बन्धी शोध तथा सर्वेक्षण का कार्य करना।

आई0डी0बी0आई0 सहायता

आई0डी0बी0आई0 प्रत्यक्षतः अथवा किसी विशिष्ट संस्था के माध्यम से वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता हैः

प्रत्यक्ष सहायताः आई0डी0बी0आई0 औद्योगिक संस्थाओं को ऋण तथा अग्रिम प्रदान करते हैं। इसमें किसी भी प्रतिष्ठान के लिए ऋण राशि की कोई निम्न अथवा उच्च सीमा निर्धारित नहीं है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा राज्य सहकारी बैंकों, अनुसूचित बैंकों, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम तथा अन्य अधिकृत वित्तीय संस्थाओं से खुले बाजार में लिए गए ऋणों को आई0डी0बी0आई0 द्वारा गारण्टी प्रदान की जाती है।

अप्रत्यक्ष सहायताः औद्योगिक संस्थानों द्वारा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, राज्य वित्त निगम तथा कुछ अन्य वित्तीय संस्थाओं व राज्य औद्योगिक विकास निगम, वाणिज्यिक बैंकों तथा सहकारी बैंकों से न्यूनतम 10 वर्ष की अवधि के सावधि ऋणों पर 3 से 25 वर्ष के पुनर्वित्त की सुविधा आई0डी0बी0आई0 द्वारा प्रदान की जाती है। आई0डी0बी0आई0 वित्तीय संस्थाओं के अंशों तथा बॉण्डों में भी निवेश करता है तथा उन्हें पूरक संसाधन उपलब्ध कराता है।

आई0डी0बी0आई0 की विकास गतिविधियॉं

प्रोत्साहनात्मक गतिविधियॉंः अपनी विकासात्मक भूमिका के निर्वहन में बैंक नए उद्यमों, लघु व मध्यम उपक्रमों हेतु सलाहकारी सेवाओं तथा प्रत्यायित स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा वंचित वर्ग के आर्थिक उत्थान हेतु निर्मित कार्यक्रमों से सम्बन्धित वृहद स्तर पर प्रोत्साहनात्मक गतिविधियॉं संचालित करता है। इन गतिविधियों में उद्यमिता विकास, स्वरोजगार तथा औद्योगिक क्षेत्रों में समाज के कमजोर वर्ग हेतु स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराना, विज्ञान व तकनीक की सहायता, उद्यमिता पार्क, ऊर्जा संरक्षण, छोटे उद्योगों के लिए सामान्य गुणवत्ता परख केन्द्र सम्मिलित हैं।

तकनीकी सलाहकारी संगठनः उद्यमियों, विशेषतः नवीन व लघु उद्यमियों को उचित लागत पर विचारण एवं सलाहकारी सेवाएं प्रदान करने के दृष्टिगत आई0डी0बी0आई0 ने अन्य अखिल भारतीय वित्तीय संगठनों के साथ मिलकर सम्पूर्ण राष्ट्र में तकनीकी सलाहकार संगठनों (टी0सी0ओ0) का एक जाल तैयार किया है। टी0सी0ओ0 लघु तथा मध्यम उद्यमों को परियोजना के चयन, विनिर्माण व मूल्यांकन तथा क्रियान्वयन एवं समीक्षा के लिए विविध सेवाएं प्रदान करते हैं।

उद्यमिता विकास संस्थानः यह अनुभव करते हुए कि उद्यमिता विकास ही औद्योगिक विकास की कुंजी है, आई0डी0बी0आई0 ने देश में उद्यमिता के विकास के लिए भारतीय उद्यमिता विकास संस्थान की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इसी प्रकार के संस्थान बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में भी स्थापित किये गये हैं। आई0डी0बी0आई0 औद्योगिक विकास से सम्बन्धित अध्ययन व सर्वेक्षण का आयोजन करने के लिए वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराता है।

16.7 यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया (यू0टी0आई0)

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया एक सार्वजनिक क्षेत्र की संवैधानिक संस्था है जिसकी स्थापना फरवरी 1964 में भारतीय यूनिट ट्रस्ट अधिनियम 1963 के अन्तर्गत हुई है। यू0टी0आई0 ने अपना कार्य जुलाई 1964 से प्रारम्भ किया। यह लघु बचतकर्ताओं को उन क्षेत्रों में निवेश के लिए अवसर प्रदान करता है जहॉ जोखिम बॅटा हुआ है। इकाई धारक, यदि आवश्यक हो तो, अपनी इकाइयॉ यू0टी0आई0 को यू0टी0आई0 द्वारा निर्धारित मूल्यों पर बेच सकते हैं। एक आकर्षण यह है कि यू0टी0आई0 के निवेश पर आयकर छूट प्राप्त होती है तथा यू0टी0आई0 से आय आयकर से कुछ सीमा तक मुक्त होती है।

उद्देश्यः

यू0टी0आई0 के प्रारम्भिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- मध्यम तथा निम्न आय वर्ग की बचतों को प्रोत्साहित करना तथा उसे एकत्रित करना।
- उन्हें देश के औद्योगिक विकास के लाभों तथा उन्नति में भागीदार बनाना।

संगठन एवं प्रबन्धः

यू0टी0आई0 की स्थापना रु0 5 करोड़ की प्रारम्भिक पूॅजी के साथ की गई जिसमें भारतीय रिजर्व बैंक, जीवन बीमा निगम, भारतीय स्टेट बैंक व इसके अनुषंगी तथा अन्य अनुसूचित बैंक व वित्तीय संस्थाओं का सहयोग था। पॉच करोड़ रुपये की प्रारम्भिक पूॅजी रु0 50,000 प्रत्येक के 1,000 प्रमाण पत्रों में विभाजित थी। अपने वित्तीय संसाधनों को बढ़ाने के लिए ट्रस्ट भारतीय रिजर्व बैंक से उधार ले सकता है जो कि 18 माह में मॉग पर पुनर्भुगतान योग्य होगी।

यू0टी0आई0 का प्रबन्धन न्यासी मण्डल (बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज) के द्वारा किया जाता है जिसमें एक अध्यक्ष, चार रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा नामित सदस्य, एक भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा नामित सदस्य, एक भारतीय स्टेट बैंक द्वारा नामित सदस्य तथा दो सदस्य भागीदार संस्थाओं से चुने हुए होते हैं।

यू0टी0आई0 के कार्य

यू0टी0आई0 के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. विनिमय विपत्र, वचन–पत्र (प्रोमेसरी नोट), वहन पत्र (बिल ऑफ लेडिंग), भण्डारण रसीद, माल के अधिकार पत्र के प्रपत्रों को स्वीकार करना, कटौती करना, क्रय–विक्रय करना।
2. ऋण व अग्रिम की स्वीकृति।
3. मर्चेन्ट बैंकिंग तथा निवेश सलाहकारी सेवाएं।
4. पट्टा (लीज) तथा किराया क्रय व्यवसाय।
5. भारत से बाहर रहने वाले व्यक्तियों को पोर्टफोलिओ प्रबन्धन प्रदान करना।
6. विदेशी विनिमय के सौदों में क्रय, विक्रय तथा व्यवहार।
7. सामान्य बीमा निगम के साथ अथवा उसके अभिकर्ता के रुप में इकाई योजना अथवा बीमा योजना तैयार करना।
8. केन्द्र सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक अथवा विदेशी बैंकों की प्रतिभूतियों में निवेश करना।

यू0टी0आई0 की गतिविधियॉ

यू0टी0आई0 स्वयं द्वारा जारी इकाइयों का विक्रय अथवा क्रय, प्रतिभूतियों में निवेश, अधिग्रहण, धारण अथवा अपधारण (डिस्पोज ऑफ) आदि कर सकता है।

यह धन को स्वयं धारित कर सकता है अथवा अनुसूचित बैंकों में जमा कर सकता है तथा इससे सम्बन्धित अन्य सभी प्रासंगिक अथवा आनुषंगिक कार्य कर सकता है। यू0टी0आई0 द्वारा जारी समस्त इकाइयॉ रु0 10 मूल्य (प्रत्येक) की होती हैं। इन इकाइयों को इनके अंकित मूल्य पर जारी किया जाता है तथा इसके बाद इनका मूल्य यू0टी0आई0 द्वारा दैनिक आधार पर निर्धारित किया जाता है। इकाइयों को दस अथवा उसके गुणक में क्रय किया जा सकता है।

यू0टी0आई0 की योजनाएं

यू0टी0आई0 की प्रमुख योजनाएं निम्नलिखित है–

1. इकाई योजना–1964 (यू0एस0–64)
2. इकाई संयोजित बीमा योजना (यूनिट लिंक्ड इन्स्योरेंस प्लान–1971 –यूलिप)
3. बाल उपहार वृद्धि कोष इकाई योजना (चिल्ड्रन गिफ्ट ग्रोथ फण्ड यूनिट स्कीम) –1986
4. राज्यलक्ष्मी इकाई योजना– 1992
5. वरिष्ठ नागरिक इकाई योजना– 1993
6. मासिक आय इकाई योजना
7. मास्टर इक्विटी प्लान– 1995
8. मुद्रा बाजार पारस्परिक निधि–1997
9. यूटीआई वृद्धि क्षेत्र कोष– 1999
10. वृद्धि एवं आय इकाई योजना

यूनिट ट्रस्ट के लाभ

यूटीआई के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1. निवेश सुरक्षित रहता है तथा जोखिम प्रतिभूतियों की वृहद श्रंखला में विस्तारित हो जाता है।
2. इकाई धारक नियमित तथा अच्छी आय प्राप्त करते हैं क्योंकि इसकी आय का 90 प्रतिशत भाग वितरित किया जाता है।
3. व्यक्तिगत निवेशक के लिए रु0 1000 तक के लाभांश आयकर से मुक्त होते हैं।
4. निवेश में उच्च तरलता रहती है क्योंकि इकाइयों को यूटीआई को कभी भी बेचा जा सकता है।

वर्ष 1999 के वित्तीय संकट के बाद यूटीआई की मुख्य योजना यू0एस0–64 तथा अन्य अनेकों योजनाओं का सरकार द्वारा अधिग्रहण कर इसे एक पृथक उपक्रम को प्रबन्धन हेतु सौंपा गया। यूटीआई की पूर्ववर्ती योजनाओं का प्रबन्धन अब यूटीआई सम्पत्ति प्रबन्धन कम्पनी (यूटीआई–एएमसी) द्वारा किया जायेगा जो कि किसी भी पारस्परिक निधि के समान है।

16.8 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई0एफ0सी0आई0)

भारत सरकार द्वारा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई0एफ0सी0आई0) की स्थापना जुलाई 1948 में एक विशेष अधिनियम के द्वारा की गई। यह भारत में स्थापित पहली वित्तीय कम्पनी है जो औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए मध्यम एवं दीर्घ अवधि के ऋण प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित की गई है।

आई0एफ0सी0आई0 के अंशधारक आई0डी0बी0आई0, अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनियॉ, निवेश न्यास तथा सहकारी बैंक हैं। केन्द्र सरकार ने इसकी पूॅजी के पुनर्भुगतान तथा न्यूनतम वार्षिक लाभांश के भुगतान की गारण्टी ली है। निगम को खुले बाजार में बॉण्डस् व ऋणपत्र जारी करने, विश्व बैंक व अन्य संस्थाओं से विदेशी मुद्रा उधार लेने, जनता से जमा स्वीकार करने तथा रिजर्व बैंक से ऋण लेने का अधिकार है।

आई0एफ0सी0आई0 की प्रारम्भिक अधिकृत पूॅजी रु0 10 करोड़ थी। औद्योगिक वित्त निगम (संशोधन) अधिनियम 1986 को इसकी अधिकृत पूॅजी को रु0 100 करोड़ से बढ़ाकर रु0 250 करोड़ कर दिया गया। (अधिकृत पूॅजी को भारत सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।)

कार्य

आई0एफ0सी0आई0 के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. निगम द्वारा औद्योगिक संस्थानों को ऋण एवं अग्रिम प्रदान किया जाता है।
2. रुपये तथा विदेशी मुद्रा दोनों में ऋण प्रदान किये जाते हैं।
3. निगम द्वारा स्कन्ध, बाण्डस् तथा अंश आदि का अवलेखन किया जाता है।
4. निगम केवल सार्वजनिक सीमित कम्पनियों तथा सहकारिता को ऋण प्रदान कर सकता है किन्तु निजी सीमित कम्पनियों तथा साझेदारी फर्मों को नहीं।

संगठन एवं प्रबन्ध

आई0एफ0सी0आई0 का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है। इसने अपना क्षेत्रीय कार्यालय मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, चण्डीगढ़, हैदराबाद, कानपुर तथा गुवाहाटी में स्थापित किये हैं। आई0एफ0सी0आई0 की शाखाएं भोपाल, पुणे, जयपुर, कोचीन, भुवनेश्वर, पटना, अहमदाबाद तथा बंगलोर में हैं।

आई0एफ0सी0आई0 का प्रबन्धन निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है जिसका मुखिया अध्यक्ष होता है। इसकी नियुक्ति भारतीय रिजर्व बैंक की संस्तुति पर भारत सरकार द्वारा की जाती है। अध्यक्ष का कार्यकाल तीन वर्ष का होता है जिसे बढ़ाया जा सकता है। इसके 12 निदेशकों में से 4 आईडीबीआई द्वारा नामित होते हैं जिसमें से तीन उद्योग, श्रम व अर्थशास्त्र क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं तथा चौथा आईडीबीआई का महाप्रबन्धक होता है। शेष आठ निदेशकों में से दो –दो निदेशकों का नामांकन अनुसूचित बैंकों, सहकारी बैंकों, बीमा कम्पनियों तथा निवेशक कम्पनियों द्वारा किया जाता है, जिनकी कुल संख्या आठ होती हैं।

आई0एफ0सी0आई0 की गतिविधियॉ

आई0एफ0सी0आई0 की प्रमुख प्रोत्साहनात्मक गतिविधियॉ निम्नलिखित हैं–

1. **सॉफ्ट लोन सहायताः** यह योजना वर्तमान लघु व मध्यम उद्योगों को आन्तरिक शोध तथा विकास कार्य के लिए तकनीकी विकास हेतु सॉफ्ट ऋण प्रदान करती है।
2. **उद्यमिता विकासः** आई0एफ0सी0आई0 भारत भर के विभिन्न ऐजेन्सियों को उनके द्वारा उद्यमी विकास कार्यक्रमों (ई0डी0पी0) का आयोजन करने हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करता है। ये कार्यक्रम भारतीय उद्यमिता विकास संस्थान के सहयोग से आयोजित किये जाते हैं।

3. **पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकासः** आई0एफ0सी0आई0 रियायती वित्त की योजना द्वारा पिछडे क्षेत्रों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के विभिन्न उपाय अपनाती है।
4. **अनुदानित सलाहकारी सेवाएंः** आई0एफ0सी0आई0 निम्न हेतु अनुदानित सलाहकारी सेवाएं प्रदान करता है–

- लघु उद्यमियों को उनकी परियोजना लागत पूर्ण करने के लिए
- अनुषंगी उद्योगों के प्रोत्साहन के लिए
- बाजार अनुसंधान के लिए
- रुग्ण इकाइयों के पुनर्जीवन के लिए
- आधुनिकीकरण लागू करने के लिए
- कारखानों में प्रदूषण नियन्त्रण के लिए

5. **प्रबन्धकीय विकासः** पेशेवर प्रबन्धन के विकास के लिए आई0एफ0सी0आई0 ने प्रबन्ध विकास संस्थान की स्थापना 1973 में की। इसने विकास बैंकों की स्थापना की।

आई0एफ0सी0आई0 की कार्यप्रणाली

आई0एफ0सी0आई0 की कार्यप्रणाली को आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। पहले स्थान पर ब्याज की दर जो कि निगम द्वारा वसूल की जाती थीं, बहुत अधिक थीं। दूसरे, ऋण स्वीकृत करने तथा धनराशि उपलब्ध होने में बहुत अधिक देरी हो जाती थी। तीसरे, निगम का सम्पत्ति के बन्धन के अतिरिक्त भी प्रबन्ध निदेशक की व्यक्तिगत गारण्टी मॉगे जाने को अनुचित माना गया।

गत दो दशकों में निगम ने नई गतिविधियों में प्रवेश किया है, जैसे– ऋणपत्रों तथा अंशों का अवलेखन तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा प्लाण्ट व उपकरणों के विदेशों से आयात के सम्बन्ध में विलम्बित भुगतानों की गारण्टी देना तथा प्रत्यक्ष रुप से उद्योगों के अंशों व स्कन्धों के लिए धन लगाना। विगत दो दशकों में आई0एफ0सी0आई0 की प्रगति अन्य सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय कम्पनियों की तुलना में प्रशंसनीय रही है।

16.9 भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम (आई0सी0आई0सी0आई0)

भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम (आई0सी0आई0सी0आई0) की स्थापना वर्ष 1955 में भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत एक सार्वजनिक कम्पनी के रुप में निजी क्षेत्र में मध्यम व लघु उद्योगों के विकास के लिए की गई। प्रारम्भ में इसकी समता पूॅजी कम्पनियों, संस्थाओं तथा व्यक्तियों के स्वामित्व में थी किन्तु वर्तमान में इसकी पूॅजी सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं यथा– बैंक, एल0आई0सी0, जी0आई0सी0 तथा इनकी सहायक कम्पनियों के पास है। मार्च 2002 में आई0सी0आई0सी0आई0 का विलय आई0सी0आई0सी0आई0बैंक में करके भारत के प्रथम वैश्विक बैंक का निर्माण किया गया। इस विलय के परिणामस्वरुप अब विकासात्मक वित्तीय संस्था के रुप में आई0सी0आई0सी0आई0 का अस्तित्व समाप्त हो गया है।

उद्देश्य

आई0सी0आई0सी0आई0 के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- निजी क्षेत्र की औद्योगिक परियोजनाओं को ऋण प्रदान करना।
- नए उद्योगों के सम्वर्द्धन को प्रेरित करना।
- स्थापित उद्योगों के विस्तार तथा आधुनिकीकरण में सहायता करना।
- उत्पादन बढ़ाने के लिए तकनीकी तथा प्रबन्धकीय सहायता उपलब्ध कराना।

आई0सी0आई0सी0आई0 द्वारा वित्तीय सहायता

अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आई0सी0आई0सी0आई0 द्वारा निम्न प्रकार से वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाती है–

- भारतीय रुपये तथा विदेशी मुद्रा के रुप में दीर्घावधि तथा मध्यम अवधि के ऋण प्रदान करना।
- समता पूँजी तथा ऋण पत्रों में भाग लेना।
- नये अंशों व ऋण पत्रों के निर्गम का अपलेखन।
- उपकरणों के आपूर्तिदाता तथा विदेशी ऋणदाताओं को गारण्टी।

आई0सी0आई0सी0आई0 ने गतावधि में एक मर्चेन्ट बैंकिंग प्रभाग की स्थापना की है जो कि प्रशंसनीय ढंग से कार्य कर रहा है। इसने आईसीआईसीआई एसेट्स मैनेजमेन्ट कम्पनी लि0 की स्थापना जून 1993 में आईसीआईसीआई म्यूच्युअल फण्ड की योजनाओं के संचालन के लिए की है। आई0सी0आई0सी0आई0 की अन्य सहायक कम्पनी आईसीआईसीआई इन्वेस्टर सर्विसेज लि0 (मार्च 1994) तथा आईसीआईसीआई बैंकिंग कार्पोरेशन लि0 (जनवरी 1994) ने भी अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

आई0सी0आई0सी0आई0 की गतिविधियॉ

आई0सी0आई0सी0आई0 की प्रमुख गतिविधियॉ निम्नलिखित हैं–

1. **परियोजना वित्तीयनः** उत्पादन तथा प्रक्रियात्मक गतिविधियों के लिए उद्योगों की स्थापना, आधुनिकीकरण अथवा विस्तार की परियोजनाओं को भारतीय रुपये व विदेशी ऋणों, अंशो व ऋण पत्रों के अपलेखन व भागीदारी तथा उपकरणों की आपूर्ति व विदेशी दानदाताओं के लिए गारण्टी सम्बन्धी वित्तीयन प्रदान किया जाता है। रुपये में ऋण उपकरणों और मशीनरी के क्रय, निर्माण तथा प्रारम्भिक व्ययों के लिए दिये जाते हैं। विदेशी मुद्रा में ऋण आयातित पूँजीगत उपकरणों के क्रय हेतु प्रदान किये जाते हैं।
2. **लीजिंगः** आई0सी0आई0सी0आई0 ने लीजिंग का कार्य वर्ष 1983 में प्रारम्भ किया। यह सहायता उद्योगों को कम्प्यूटरीकरण, आधुनिकीकरण, पुनर्स्थापना, ऊर्जा संरक्षण के उपकरण, निर्यातोन्मुखी कार्य, प्रदूषण नियन्त्रण आदि कार्यों के लिए प्रदान की जाती है।
3. **परियोजना सलाहकारी सेवाएंः** परियोजना सलाहकारी सेवाएं केन्द्र व राज्य सरकारों तथा सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र कम्पनियों को प्रदान की जाती है। सरकार को नीतिगत सुधारों तथा मूल्य श्रंखला विश्लेषण के लिए तथा निजी क्षेत्र की कम्पनियों को रणनीतिक प्रबन्धन के लिए सलाह प्रदान की जाती है।

4. **अनिवासी भारतीयों को सुविधाएंः** भारत सरकार द्वारा अनिवासी भारतीयों को भारत में विवेकपूर्ण निवेश हेतु प्रदान की जाने वाली सुविधाओं तथा प्रेरणाओं की जानकारी अनिवासियों को दी जाती है।
5. **विदेशी मुद्रा में ऋण हेतु प्रावधानः** आई0सी0आई0सी0आई0 के द्वारा भारतीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों को विदेशों से पूँजीगत सामान प्राप्त करने के लिए विदेशी मुद्रा में ऋण प्रदान किये जाने का प्रावधान है।
6. **अन्य संस्थागत प्रवर्तनः**

- आई0सी0आई0सी0आई0 द्वारा हाउसिंग डवलपमेंट फाइनेंस कार्पोरेशन का प्रवर्तन देश भर में मध्यम तथा निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों, सहकारिता आदि आवासीय भवनों के निर्माण तथा स्वामित्व के आधार पर क्रय करने हेतु दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने के लिए किया गया।
- क्रेडिट रेटिंग इन्फार्मेशन सर्विसेज आफ इण्डिया लिमिटेड (क्रिसिल) की स्थापना आई0सी0आई0सी0आई0 द्वारा यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया (यू0टी0आई0) के साथ मिलकर निगमित क्षेत्र में साख श्रेणीयन सेवाएं प्रदान करने के लिए किया गया।
- टेक्नोलोजी डवलपमेन्ट एण्ड इन्फोर्मेशन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड (टी0डी0आई0सी0आई0) का प्रवर्तन आई0सी0आई0सी0आई0 द्वारा तकनीक के अन्तरण व उन्नयन तथा तकनीकी सूचनाएं प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया।
- प्रोग्राम फार द एडवांसमेंट आफ कामर्शियल टेक्नोलोजी (पैक्ट) की स्थापना यूनाइटेड स्टेट एड (यूएस एड) के द्वारा प्रदत्त 100 लाख अमेरिकन डॉलर की सहायता से भारतीय व अमेरिकन कम्पनियों के लिए संयुक्त रुप से बाजारोन्मुख शोध व विकास गतिविधियों के लिए सहायता करने हेतु की गई। पैक्ट का प्रशासन तथा प्रबन्धन आई0सी0आई0सी0आई0 द्वारा किया जाता है।
- प्रोग्राम फार एक्सीलरेशन आफ कामर्शियल एनर्जी रिसर्च (पी0ए0सी0ई0आर0) को भी आई0सी0आई0सी0आई0 द्वारा प्रारम्भ किया गया जो कि यूनाइटेड स्टेट एड (यूएस एड) के द्वारा प्रदत्त 200 लाख अमेरिकन डॉलर की सहायता से भारत में ऊर्जा क्षेत्र में चयनित शोध तथा तकनीकी विकास के प्रस्तावों को सहायता प्रदान करने का कार्य करने के लिए स्थापित हुआ।

16.10 स्माल इण्डस्ट्रीज डवलपमेन्ट बैंक आफ इण्डिया (एस0आई0डी0बी0आई0– सिडबी)

स्माल इण्डस्ट्रीज डवलपमेन्ट बैंक आफ इण्डिया (सिडबी) की स्थापना आई0डी0बी0आई0 के पूर्ण स्वामित्व वाली अनुषंगी के रुप में भारतीय लघु उद्योग विकास अधिनियम 1989 के अन्तर्गत की गई। यह लघु उद्योग क्षेत्र में उद्योगों के सम्वर्द्धन, वित्तीयन तथा विकास की प्रमुख संस्था है। यह सम्बन्धित कार्यों में संलग्न अन्य संस्थाओं के मध्य समन्वयन का कार्य भी करती है। इस उद्देश्य के साथ सिडबी ने लघु उद्योग विकास निधि तथा राष्ट्रीय समता निधि के संचालन की उत्तरदायित्व आई0डी0बी0आई0 से ले लिया है।

पूँजी

सिडबी ने अपना कार्य अप्रेल 1990 में रु0 250 करोड़ की अधिकृत पूँजी से प्रारम्भ किया जिसे रु0 1000 करोड़ तक बढ़ाया जा सकता था। इसने आई0डी0बी0आई0 के लघु उद्योग विकास निधि के अन्तर्गत रखे गये लघु क्षेत्र से सम्बन्धित रु0 4000 करोड़ से अधिक के बकाया पोर्टफोलिओ को भी अधिग्रहीत कर लिया।

उद्देश्य

सिडबी की स्थापना के सम्बन्ध में सरकार का मुख्य उद्देश्य लघु उद्योग इकाइयों की सहायता के लिए विस्तृत प्रवाह सुनिश्चित करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सिडबी का मुख्य बल निम्नांकित उपायों पर रहा–

1. वर्तमान इकाइयों के तकनीकी उन्नयन तथा आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक कदम उठाना।
2. लघु स्तरीय उद्यमों के उत्पादों के विपणन माध्यमों का विस्तारण करना।
3. रोजगारोन्मुखी उद्योगों को विशेषतः उप नगरीय क्षेत्रों में अधिक रोजगार संभावनाओं के लिए प्रोत्साहन देना तथा शहरी क्षेत्रों की ओर होने वाली पलायन की समस्या की रोकथाम करना।

सिडबी द्वारा लघु स्तरीय उद्योगों को वित्तीय सहायता वर्तमान में अस्तित्व वाली साख वितरण प्रणाली, जिसमें राज्य वित्त आयोग, राज्य औद्योगिक विकास निगम, वाणिज्यिक बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सम्मिलित हैं, के माध्यम से ही प्रवाहित की गई है। सिडबी ने सन् 1992–93 में दो नई योजनाएं प्रारम्भ कीं– वर्तमान में अच्छी स्थिति में संचालित लघु उद्योग इकाइयों में तकनीकी उन्नयन/आधुनिकीकरण तथा राष्ट्रीय वस्त्र निगम के ऐच्छिक अवकाश प्राप्त कर्मचारियों के पुनर्स्थापन के लिए पुनर्वित्तीयन हेतु उपकरण वित्त योजना चलाई गई। दूसरी नई योजना उपक्रम पूँजी कोष (वेंचर कैपिटल फण्ड) थी जो कि पूर्णतः लघु स्तरीय इकाइयों के लिए थी। इसके लिए प्रारम्भिक रु0 10 करोड़ संग्रहित कोष में रखे गए। इसने स्वयं को ओटीसीईआई के संस्थागत सदस्य के रुप में नामांकित कराया। सिडबी राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम को भी लीजिंग, किराया क्रय तथा विपणन हेतु वित्तीय सहयोग प्रदान करता है।

सहायता की वाहिकाएं

सिडबी द्वारा लघु उद्योग क्षेत्र को वित्तीय सहायता निम्न दिशाओं में प्रदान की जाती है–

1. **प्रत्यक्ष सहायताः** सिडबी द्वारा प्रत्यक्ष सहायता योजना का उद्देश्य वर्तमान में लघु उद्योग क्षेत्र में साख वितरण व्यवस्था के अन्तराल को ज्ञात करके पीएलआई के प्रयासों में सहयोग रहा है। सहायता प्रत्यक्षतः सिडबी की 43 शाखाओं के माध्यम से प्रदान की जाती है। यह सहायता सीधे तौर पर नई लघु उद्योग इकाइयों की स्थापना, छोटे होटलों, अस्पतालों/नर्सिंग होम्स, तकनीकी उन्नयन व आधुनिकीकरण, विस्तार तथा विविधीकरण, लघु उद्योग उत्पादों के विपणन, बहुउपयोगी भवन (मल्टीप्लेक्स) स्थापित करने, लघु उद्योगों के लिए संरचना विकास तथा विनिमय विपत्रों की कटौती के लिए दी जाती है।
2. **अप्रत्यक्ष सहायताः** लघु उद्योग को साख वितरण के लिए सिडबी की अप्रत्यक्ष सहायता की योजनाएं 913 प्रमुख ऋण संस्थाओं (पी0एल0आई0)

के वृहद जाल के माध्यम संचालित की जाती हैं। सिडबी को इसके ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम के लिए एसोसिएशन आफ डवलपमेन्ट फाइनेंसिंग इन्स्टीट्यूशन्स इन एशिया एण्ड द पैसिफिक (एडीएफआईएपी) की ओर से प्रतिष्ठित एडीएफआईएपी विकास पुरस्कार 2003 से सम्मानित किया गया है जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में संपोषणीय 65,000 से अधिक औद्योगिक व सेवा प्रतिष्ठानों के शाखाओं के जाल द्वारा ग्रामीण विकास को गति प्रदान की गई है। सहायता पुनर्वित्त, बिलों की कटौती तथा अल्पकालीन ऋण/ पुनर्वित्त के स्थान पर साख रेखा के रुप प्रदान की गई है।

3. **विकास एवं सहायक सेवाएंः** सिडबी लघु तथा अतिलघु उद्योगों को सहायता प्रदान करने वाली विभिन्न संस्थाओं को ऋण व अनुदानों के द्वारा विकास एवं सहायक सेवाएं प्रदान करती है। यह सहायता ग्रामीण औद्योगीकरण, लघु उद्योग क्षेत्र में मानव संसाधन विकास, तकनीकी उन्नयन, गुणवत्ता व वातावरण प्रबन्धन, विपणन संवर्द्धन, सूचना प्रसार आदि को महत्व प्रदान करने वाले उपक्रमों के प्रोत्साहन देने के लिए प्रदान किया जाता है।

16.11 सारांश

वित्तीय संस्थाएं वे संगठन होते हैं जो अपने ग्राहकों को विभिन्न प्रकार की वित्तीय सेवाएं प्रदान करते हैं। वित्तीय संस्थाएं सरकारी प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित नियमों व विनियमनों से नियन्त्रित व पर्यवेक्षित होती हैं। कुछ वित्तीय संस्थाएं अंश बाजार तथा ऋण सुरक्षा बाजार में मध्यस्थ का कार्य भी करते हैं। वित्तीय संस्थाओं में बैंक, साख संगठन, सम्पत्ति प्रबन्ध फर्म, भवन समिति तथा स्कन्ध दलाल सम्मिलित होते हैं। सरकार की दृष्टि से वित्तीय संस्थाएं दो प्रकार की होती हैं, एक वे जो प्रत्यक्षतः सरकार के अधिकार में होती हैं तथा दूसरी वो जो निजी क्षेत्र में होती हैं। दूसरी प्रकार का वर्गीकरण संस्था के कार्यों से होता है– वे जो जमा स्वीकार करने, ऋण प्रदान करने जैसे परम्परागत बैंकिंग कार्य करती हैं तथा दूसरी वे जो ऋण, बीमा, वित्त व साख, बन्धक, स्कन्ध तथा वित्त जगत के अन्य कार्य करती हैं। भारत में वित्तीय संस्थाओं को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है– 1. बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं, तथा 2. गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं। अन्य विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएं हैं जो कि उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से जानी जाती हैं, यथा– भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई0डी0बी0आई0) जो कि भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम 1964 के द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक की अनुषंगी के रुप में स्थापित किया गया। भारतीय इकाई न्यास (यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया–यू0टी0आई0) सार्वजनिक क्षेत्र की संवैधानिक निवेश संस्था है जिसे भारतीय यूनिट ट्रस्ट अधिनियम 1963 के अन्तर्गत फरवरी 1964 में स्थापित किया गया। यूटीआई ने अपना कार्य जुलाई 1964 से प्रारम्भ किया। यह छोटे निवेशकों को उन क्षेत्रों में निवेश के अवसर उपलब्ध कराता है जहॉ जोखिम विभाजित होता है। भारत सरकार ने भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई0एफ0सी0आई0) की स्थापना एक विशेष अधिनियम के द्वारा जुलाई 1948 में की। यह भारत की पहली वित्तीय संस्था है जिसने मध्यम व दीर्घ अवधि की साख औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रदान की। भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम (आई0सी0आई0सी0आई0) की स्थापना 1955 में

एक सार्वजनिक सीमित कम्पनी के रुप में भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत मध्यम व लघु उद्योगों को निजी क्षेत्र में विकसित करने के लिए की गई। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (एस0आई0डी0बी0आई0– सिडबी) की स्थापना भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की अनुषंगी के रुप में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक अधिनियम 1989 के अन्तर्गत की गई।

16.12 शब्दावली

वित्तीय संस्थाएः वे संगठन होते हैं जो अपने ग्राहकों को विभिन्न प्रकार की वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराने में संलग्न होते हैं।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंकः (आई0डी0बी0आई0) की स्थापना उद्योगों के विकास तथा विकास संस्थाओं की सहायता के लिए साख उपलब्ध कराने तथा अन्य सुविधाओं के लिए प्रमुख संस्था के रूप में की गई।

16.13 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. ....में बैंक, ऋण संगठन, सम्पत्ति प्रबन्धन फर्म, भवन समितियॉ तथा स्टॉक दलाल आदि सम्मिलित होते हैं।
2. भारत में वित्तीय संस्थाएं .... श्रेणियों में विभाजित हैं।
3. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई0एफ0सी0आई0) भारत में स्थापित पहली वित्तीय कम्पनी है जो औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए ....अवधि के ऋण प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित की गई है।
4. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया एक सार्वजनिक क्षेत्र की संवैधानिक संस्था है जिसकी स्थापना ....में हुई है।

16.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वित्तीय संस्थाओं 2. दो 3. मध्यम एवं दीर्घ 4. फरवरी 1964

16.15 स्वपरख प्रश्न

1. वित्तीय संस्थाओं से क्या आशय है?
2. भारत में विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाओं को समझाइए।
3. आईडीबीआई तथा इसकी विकास गतिविधियों को परिभाषित कीजिए।
4. यूटीआई के विभिन्न कार्यों तथा गतिविधियों पर चर्चा कीजिए।
5. आईएफसीआई से क्या आशय है?
6. आईसीआईसीआई की वित्तीय सहायता का एक संक्षिप्त ब्यौरा दीजिए।
7. सिडबी पर एक निबन्ध लिखिए।

16.16 संदर्भ पुस्तकें

1. Havinal Veerabhadrappa, 'Management and Entrepreneurship', New Age International Publishers, New Delhi.
2. Taneja Satish and Gupta S.L., 'Entrepreneurial Development New Venture Creation', Galgotia Publication Company, 2nd revised edition, New Delhi.
3. Khanka S.S., 'Entrepreneurial Development', S.Chand & Company Ltd. New Delhi.

4. http://finance.mapsofworld.com/financial-institutions dated 13 May, 2012.
5. http://finance.mapsofworld.com/financial-institutions/functions.html, dated 13 May, 2012.
6. http://finance.mapsofworld.com/financial-institutions/types.html, dated 15 May, 2012.
7. http://www.maharashtradirectory.com/industrialresources/ sidbi.html, dated 20th May 2012.
8. http://www.blurtit.com/q431338.html, dated 20th May 2012.

****

इकाई 17 विदेशी व्यापारः सिद्धान्त, मुद्‌दे एवं आधुनिक सन्दर्भ

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 वणिकवाद
17.3 निरपेक्ष लाभ का सिद्धान्त
17.4 तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त
17.5 हैक्सचर–ओहलिन व्यापार मॉडल
17.6 लियोनटिफ का विरोधाभास
17.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त
17.8 सारांश
17.9 शब्दावली
17.10 बोध प्रश्न
17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.12 स्वपरख प्रश्न
17.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को किससे बढ़ावा प्राप्त होता है, को जान सकें।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परम्परागत, नव–परम्परागत एवं आधुनिक सिद्धान्तों को जान सकें।

17.1 प्रस्तावना

प्राचीन समय से ही वस्तुओं एवं उत्पादन के कारकों को सीमा पर गतिमान किया जाता है। लोगों ने अपनी वस्तुओं को अन्य देशों में बेचकर लाभ अर्जित किया है। परम्परागत अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार, उत्पादन के 4 मूलभूत कारक (संसाधन) होते हैं। भूमि जैसे– भूमि, पेड़ और खनिज, श्रम –व्याक्तियों का मानसिक एवं शारीरिक कौशल; पूँजी –जैसे उपकरण, मशीनें एवं कारखाने जिन्हें उत्पादन में प्रयोग किया जाता है अथवा जिनसे उत्पादन को सुविधा प्राप्त होती है और उद्यमिता–जोखिम वहन करने की योग्यता एवं कौशल, लाभदायक व्यवसाय को संगठित एवं संचालित करना। प्राकृतिक संसाधनों, श्रम एवं पूँजी की उपलब्धता आर्थिक सफलता सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं। उत्पादन के इन कारकों को उद्यमशील व्यक्तियों एवं आर्थिक एजेन्टों, जो लाभ कमाने का अवसर देखते हैं और जो वस्तुओं एवं सेवाओ के उत्पादन के द्वारा इस अपेक्षा में जोखिम लेने को तैयार होते हैं कि वह बिक जायेंगी, के द्वारा सम्मिलित एवं संगठित किया जाता है। किन्तु व्यवसाय में सफलता के लिए केवल यह ही आवश्यक नहीं है कि हमारे पास कौन से संसाधन है, बल्कि यह भी आवश्यक है कि हम कितनी अच्छी तरह इन्हें उपयोग करते हैं। एडम स्मिथ के समय से लोग यह बहस करते आ रहे हैं, कि वस्तओुं एवं सेवाओं के विनिमय की प्रक्रिया में क्या होता है और वह कौन से कारक है जो राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं, सेवाओं एवं उत्पादन के कारकों के गतिमान होने को निश्चित करते हैं। इस परिघटना को

वर्णित करने, व्याख्या करने और पूर्वानुमान लगाने के प्रयासों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्तों को जन्म दिया हैं। जैसे–जैसे समय परिवर्तित होता गया, आर्थिक गतिविधियों की प्रकृति में भी महत्वपूर्ण रुपान्तरण होता गया और तद्नुसार अन्तर्निहित कारकों पर दृष्टि डालने के तरीकों ने भी अनेकानेक दृष्टिकोंण उत्पन्न किए हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के भिन्न–भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। इस पाठ में, हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे।

17.2 वणिकवाद

सोलहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी के काल में वणिकवाद आर्थिक दर्शन था जिसका यह दृढ़ विचार था कि एक देश की सम्पदा का मापन उसके पास धारित सोने और चॉदी की मात्रा के द्वारा होता है। संभवतः इस दर्शन के कारण ही, भारत को प्राचीन काल में सोने की चिड़िया की छवि प्राप्त हुई थी, और उसे सर्वाधिक धनी देशों में से एक के रुप में जाना जाता था। वणिकवाद के सिद्धान्तों के अनुसार एक राष्ट्र का उद्देश्य इन धारित सम्पदाओं अर्थात सोने और चाँदी के रुप में सम्पत्तियों की मात्रा में अभिवृद्धि करना होना चाहिए । देश में सोने की मात्रा में वृद्धि करने के लिए यह विश्वास किया जाता था कि देश में मुद्रा का आगमन होना चाहिए किन्तु इसे बाहर नहीं जाना चाहिए। अतः वणिकवाद यह सुझाव देता है कि सत्तारूढ़ सरकार को इन लक्ष्यों की ओर बढ़ने के लिए अर्थव्यवस्था में संरक्षणवादी भूमिका का निर्वहन निर्यातों को प्रोत्साहित करके तथा आयातों को हतोत्साहित करके उल्लेखनीय रुप से अनुदानों एवं तटकरों के प्रयोग के द्वारा करना चाहिए और संसार के अन्य स्थानों से धन को अर्जित करने के प्रयास करने चाहिए। इस सिद्धान्त ने 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य पश्चिमी यूरोपीय आर्थिक नीतियों में वर्चस्व स्थापित किया। यह उपनिवेशवाद का समय था और राष्ट्रों ने उपनिवेशों को आधिपत्य करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया, और उनका विदोहन उनके कच्चे माल, नाम इत्यादि के लिए किया और उन्हें निर्मित माल बेचा। राष्ट्रों के बीच में माल को बेचने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ। हम संक्षेप में वणिकवाद को 19वीं शताब्दी से पूर्व की वर्चस्वकारी विचारधारा के रुप में पारिभाषित कर सकते हैं, जिसने प्रतिबन्धात्मक व्यापार नीतियों की वकालत की, ताकि अधिकाधिक सोने तथा विदेशी विनिमय को एकत्रित करने के लिए निर्यातों को अधिकतम और आयातों को न्यूनतम किया जा सके। इन समयों में व्याप्त समाजार्थिक दशाओं को ध्यान में रखते हुए वणिकवाद एक उपयोगी विचारधारा हो सकती है, किन्तु इसकी कई कमियां हैं। इसकी मुख्य सीमा यह है कि यह खजाने के अधिग्रहण को सम्पत्ति के अधिग्रहण से भ्रमित करता है। वर्तमान समय में सम्पत्तियॉ केवल सोने और चाँदी के रुप में ही विद्यमान नहीं होती हैं। वर्तमान समय में सम्पत्तियों के नए स्वरूप विद्यमान हैं। यहीं नही, प्रतिबंधात्मक नीतियों ने राष्ट्र को कमजोर किया है, क्योंकि इसने व्यक्तियों से स्वतन्त्र रुप से व्यापार करने की योग्यता और स्वैच्छिक विनिमय से लाभों को छीन लिया। साथ ही, इसने राष्टों को वह वस्तुऐं उत्पादित करने पर विवश किया जिन्हें वे अन्यथा आयातों को न्यूनतम करने के लिए नहीं करते।

वणिकवाद का सिद्धान्त के प्रति, एडम स्मिथ एवं बाद में रिकार्डो जैसे अर्थशास्त्रियों के द्वारा व्यक्तियों को महत्व देते हुए तथा इस बात पर जोर देते हुए

कि व्यक्ति का कल्याण ही राष्ट्र का कल्याण है, कहकर प्रश्न उठाया गया। उनका स्वतन्त्र व्यापार में विश्वास था, उन्होने स्वतन्त्रतावाद एवं आत्मबोध का समर्थन किया और राष्ट्र के धन को समाज में व्यक्तियों के आनन्द के समग्र योग के रुप में माना अतः कोई भी गतिविधि जो लोगों के उपभोग में वृद्धि करती है, उसे प्राथमिकता पूर्ण स्थान प्रदान किया गया। इसके अनुसार, उनके द्वारा प्रतिपादित व्यापार सिद्धान्त, स्वतन्त्र व्यापार पर आधारित थे तथा उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण पर आधारित थे, जहाँ संसाधनों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण ढ़ग से उपयोग किया जा सकता था।

17.3 निरपेक्ष लाभ का सिद्धान्त

निरपेक्ष लाभ के सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 एडम स्मिथ ने किया, जिन्होने यह तर्क दिया कि वणिकवाद व्यक्तियों से स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करने की योग्यता एवं स्वैच्छिक विनिमय के लाभों को छीन लेता है। निरपेक्ष लाभ के सिद्धान्त के अनुसार एक राष्ट्र को उन वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात करना चाहिए जिनके लिए इसका उत्पादन अन्य देशों से अधिक है और उन वस्तओुं एवं सेवाओं का आयात करना चाहिए, जिनके लिए इस देश की तुलना में अन्य देश अधिक उत्पादक हैं। एक देश को अपने व्यापारिक साझेदार देश की तुलना में तब निरपेक्ष लाभ की स्थिति में माना जाता है, जब वह देश दिये हुए आगतों की मात्रा के द्वारा एक वस्तु का अधिक उत्पादन करता है। "यदि एक वाहय देश हमें एक वस्तु उस कीमत से कम पर देता है, जिस पर उसे हम स्वयं उत्पादित कर सकते हैं तो यह अधिक अच्छा है कि हम उसे अपने स्वयं के उद्योग की किसी अन्य वस्तु के बदले में क्रय करें, ताकि हमें लाभ हो सकें।" **(एडम स्मिथ)**

इसे एक उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है। माना हम दो देशों का अध्ययन कर रहे है– इंग्लैड और पुर्तगाल, जो शराब और कपड़े का उत्पादन कर रहे हैं। हम यह भी मान लेते हैं कि दो देशों के बीच कोई व्यापार नहीं है और दोनों देशो का प्रति ईकाई आगत के अनुसार उत्पादन निम्नवत हैः

तालिका 17.1 दो उत्पादकदेशोंकी आगतो की इकाईयां

देश	रोब का उत्पादन / इकाई आगतें	कपड़े का उत्पादन / इकाई आगतें
इंग्लैड	1	12
पुर्तगाल	6	10

जब दोनों देशों के बीच कोई व्यापार नहीं है, तो दोनों देश अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करेंगे। हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक देश की आगतें 1000 इकाइयाँ हैं और इन संसाधनों को समान रुप से दो उत्पादों के उत्पादन करने में लगाया जाता है। जब वे अपना उत्पादन स्वयं ही अकेले उपभोग करते हैं, हम उनका अनुकूलतम उत्पादन/उपभोग बिन्दु अपने 2×2 मैट्रिक्स (उत्पादन) को 500 (प्रत्येक देश में प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त 1000 इकाई आगतों का 1/2 भाग) से गुणा करके ज्ञात कर सकते हैं। दोनों देशों में कुल उत्पादन/उपभोग 3,500 और 11,000 ईकाइयाँ होगा।इसे निम्नांकित तालिका के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।

तालिका 17.2 दो देशों का उत्पादन/आगतों की ईकाइयाँ

प्रति ईकाई आगत का उत्पादन				उत्पादन	
देश	शराब	कपड़ा	आगत	शराब	कपड़ा
इंग्लैड़	1	12	500/500	500	6000
पुर्तगाल	6	10	500/500	3000	5000

इस स्थिति में, शराब का कुल उत्पादन 3500 ईकाइयाँ तथा कपड़े का कुल उत्पादन 11,000 ईकाइयाँ होगा, दोनों देश जो भी उत्पादन करेंगे, उसका उपभोग कर लेंगे, दूसरी स्थिति में, हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक देश उस उत्पाद के उत्पादन में विशिष्टीकरण कर लेता है, जिसमें उसे निरपेक्ष लाभ है। इस उदाहरण में, इंग्लैंड को कपड़े के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है। जबकि पुर्तगाल को शराब के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है, दोनों देश केवल एक उत्पाद का उत्पादन करेंगे, अर्थात इंग्लैड केवल कपड़े का उत्पादन करेगा और पुर्तगाल केवल शराब का उत्पादन करेगा। दोनों देश अपने संसाधनों को पूर्णतः एक वस्तु के उत्पादन में लगा देंगे।

आगामी परिदृश्य में, हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक देश ऐसे उत्पाद में विशिष्टीकरण करता है जिसमें उसे निरपेक्ष लाभ प्राप्त होता है। इस उदाहरण में, इंग्लैड को कपड़े में निरपेक्ष लाभ प्राप्त था, और पुर्तगाल को शराब में निरपेक्ष लाभ प्राप्त था। दोनों देश केवल एक उत्पाद को उत्पादित करते हैं, अर्थात इंग्लैंड केवल कपड़े को उत्पादित करता है, और पुर्तगाल केवल शराब का उत्पादन करता है। दोनों अपने समस्त संसाधनों को पूर्णरुपेण एक उत्पाद पर लगा देते हैं। यह मानते हुए कि वे 1000 ईकाइयाँ उत्पादन करते हैं, इंग्लैंड 12000 ईकाइयाँ कपड़े का उत्पादन एवं पुर्तगाल शराब की 6000 ईकाइयों का उत्पादन करेगा। दोनों देशों का कुल उत्पादन शराब की 2,500 अतिरिक्त ईकाइयों और कपड़े की 1,000 अतिरिक्त ईकाइयों के द्वारा बढ़ता है। इस प्रकार समान आगतों के द्वारा, दोनों देशों के बीच विदेशी व्यापार से कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। व्यापार के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात दोनों देशों के पूर्व व्यापार विनिमय अनुपातों के मध्य में कहीं पर रहेगा। अन्य शब्दों में– व्यापार के द्वारा उत्पादित, अतिरिक्त उत्पादन का वितरण दोनों देशों के बीच निश्चित व्यापार शर्तो के द्वारा किया जाएगा। इस उद्देश्य से, दोनों देशों के घरेलू परिदृश्य का अध्ययन करना होगा। इंग्लैंड में शराब की एक ईकाई कपड़े की 12 ईकाईयों के बराबर होगी और कपड़े की एक इकाई 1/12 बैरेल शराब के समान होगी। इसी प्रकार, पुर्तगाल की दशा में शराब की 1 इकाई, कपड़े की 12/3 ईकाईयों के समान तथा 1 ईकाई कपड़ा, शराब की 3/5 ईकाई के समान होगी, इस प्रकार दोनों देशों के द्वारा अतिरिक्त उत्पादन ले लिया जाएगा और दोनों ही देश व्यापार से अकेले रहने की अपेक्षा लाभान्वित होंगे।

17.4 तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त

निरपेक्ष लाभ के सिद्धान्त के द्वारा शताब्दियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की एक उपयोगी संरचना प्रदान की गयी, किन्तु इसे एक भिन्न दृष्टिकोण से देखा

गया। एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने यह तर्क किया कि राष्ट्रों के बीच व्यापार के लिए लागत लाभ एक आवश्यक और पर्याप्त शर्त नहीं हैं। उन्होंने तर्क दिया कि राष्ट्र व्यापार से तब भी लाभान्वित होंगे, यदि उन्हें निरपेक्ष लागत लाभ प्राप्त है। रिकार्डो के अनुसार, जब तक अन्य देश उत्पादन की समस्त रेखाओं में समान रुप से कम उत्पादक नहीं है, जिसे दो देशों में प्रत्येक वस्तु की अवसर लागत के रुप में मापा जा सकता है, यह उनके लिए पारस्परिक रुप से लाभप्रद होगा, यदि वह व्यापार में संलग्न होते हैं। यह सिद्धान्त यह बताता है कि, एक देश को उन वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं निर्यात करना चाहिए, जिसमें यह अन्य देशों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक है और उन वस्तुओं का आयात करना चाहिए जिनमें अन्य देश उसकी तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक हैं। "एक राष्ट्र, एक व्यक्ति की भांति, व्यापार से लाभों को उन वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यातों से प्राप्त करता है, जिनमें उत्पादकता के रुप में इसे अधिकतम तुलनात्मक लाभ प्राप्त है और उन वस्तुओं एवं सेवाओं को आयात करता है जिसमें इसे न्यूनतम तुलनात्मक लाभ प्राप्त है।" **(डेविड रिकार्डो)**

एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ हुआ, तब माना जाएगा जब यह दूसरे देश की तुलना में अपेक्षाकृत कम अवसर लागत पर इसे उत्पादित कर सकता है। पूर्व में दिए गए उदाहरण (शराब एवं कपड़े का) कपड़े के उत्पादन में अवसर लागत को कपड़े की एक अतिरिक्त ईकाई का उत्पादन करने के लिए शराब की त्यागी गयी मात्रा के रुप में परिभाषित किया जाता है। तुलनात्मक लाभ के नियम को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। पारस्परिक लाभप्रद व्यापार तब सम्भव होता है जब दो देशों में दो वस्तुओं के बीच सम्बन्धित कीमतों (अवसर लागतों) में अन्तर होता है। रिकार्डो का मॉडल श्रम को एक मात्र उत्पादन के साधन के रुप में उपयोग कर, दो देशों के द्वारा दो वस्तुओं के उत्पादन की मान्यता पर आधारित है। उत्पादन की जाने वाली वस्तुऐं समरुप (एक जैसी) फर्मो एवं देशों के बीच मान ली जाती हैं। वस्तुऐं देशों के बीच लागत रहित परिवहन पर भेजी जा सकती हैं। एक देश के भीतर वस्तुओं को उद्योगों के बीच लागत रहित आबंटित किया जा सकता है, किन्तु यह देशों के बीच गतिमान नही हो सकती हैं। श्रम सदैव पूर्ण रोजगार प्राप्त होता है। उत्पादन तकनीकी के अन्तर उद्योगों एवं देशो के मध्य विद्यमान होते हैं और वह श्रम तकनीकी के मानको में प्रतिबिम्बित होते हैं। फर्मो के द्वारा लाभ को अधिकतम करने की मान्यता होती है, जबकि उपभोक्ताओं के द्वारा उपयोगिता को अधिकतम करने की मान्यता होती हैं।

अवसर लागत की अवधारणा को निम्नांकित तालिका की सहायता से समझाया जा सकता है। :

तालिका 17.3 अवसर लागत

प्रति इकाई आगत पर उत्पादन	कागज	मछली
फिनलैंड	3	4
जर्मनी	1	2

इस उदाहरण में, हम यह मान लेते हैं कि, फिनलैंड और जर्मनी कागज एवं मछली का उत्पादन करते हैं। यदि दोनों देश केवल एक ही उत्पाद का उत्पादन

करतें हैं, तो उन्हें दूसरी वस्तु के उत्पादन का त्याग करना होगा। उदाहरण के लिए– यदि फिनलैंड केवल मछली का उत्पादन करना निश्चित करता है तो उसे कागज के उत्पादन का त्याग करना होगा। और इसी प्रकार यदि जर्मनी केवल कागज का उत्पादन करने का निर्णय लेता है तो, उसे मछली के उत्पादन का त्याग करना होगा। इन स्थितियों में जब एक विकल्प का चयन किया जाता है, तो त्यागे गये विकल्प की हानि उठानी पड़ती है। प्रत्येक देश को अपने व्यापारिक साझीदार देश पर उस वस्तु के उत्पादन हेतु तुलनात्मक लाभ होता है जिसके लिए उसकी अवसर लागत व्यापारिक साझेदार देश की तुलना में कम होती हैं। उपरोक्त उदाहरण में, फिनलैंड के द्वारा कागज उत्पादन की स्थिति में कागज की प्रति इकाई लागत/उत्पादन, मछली का 3/4 होगा और जर्मनी की स्थिति में, यह 1/2 होगा, दूसरे शब्दों में, फिनलैण्ड को मछली उत्पादन का त्याग कर कागज उत्पादन करना होगा। तब वह मछली के उत्पादन पर लगने वाली प्रति इकाई श्रम लागत के उत्पादन का 3/4 उत्पादन कर पायेगा। अवसर लागत (जिसे अधिक उत्पादन के लिए त्याग किया जाना होगा) फिनलैंड की दशा में कागज का उत्पादन लागत मछली हेतु 1:1/3 मछली और 3/4 कागज होगा। जर्मनी की दशा में यह 2 मछली और 1/2 कागज होगा। इस पृष्ठभूमि में, प्रत्येक देश का उत्पादन निम्नांकित तालिका में प्रदर्शित हैः

तालिका 17.4ःश्रम आगत की 1000 इकाइयों के लिए उत्पादन

देश	कागज	मछली	आगतें	कागज	मछली
फिनलैण्ड	3	4	500/500	1500	2000
जर्मनी	1	2	500/500	500	1000

ऐसी स्थिति में, जबकि दो देशों के बीच कोई व्यापार नहीं होता है, 100 इकाई की श्रम आगत को दो वस्तुओं के बीच समान रुप में वितरित किया जाएगा और फिनलैंड तथा जर्मनी द्वारा उत्पादित कागज का उत्पादन क्रमशः 1500 एवं 500 इकाइयाँ होगा। इसी प्रकार, मछली का उत्पादन क्रमशः 2000 एवं 1000 इकाइयाँ होगा। अतः कुल उत्पादन/उपभोग दोनों देशों का मिलकर कागज की 2000 इकाइयाँ तथा मछली की 3,000 इकाइयाँ होगा।

साथ ही आइए यह मान लेते हैं कि दोनों देश परस्पर व्यापार करना प्रारम्भ कर देते हैं और उस वस्तु का उत्पादन करते हैं जिसमें उन्हें तुलनात्मक लागत लाभ प्राप्त है अर्थात उस वस्तु को उत्पादित करते हैं जिसे वह अन्य देश की तुलना में कम कीमत पर कर सकते हैं। इस उदाहरण में, फिनलैंड को कागज में तुलनात्मक लाभ प्राप्त है, क्योंकि वह कागज की 3 इकाइयाँ आगत की एक इकाई से करने में समर्थ है जबकि इसके सापेक्ष जर्मनी केवल 1 ईकाई का ही उत्पादन कर सकता है। इसी प्रकार जर्मनी को मछली के उत्पादन में तुलनात्मक लागत लाभ प्राप्त है, यह मानते हुए कि फिनलैंड अपनी आगतों का 70% कागज के उत्पादन के लिए आवन्टित कर देता है और शेष 30% मछली के उत्पादन के लिए आवन्टित करता है और जर्मनी 100% आगतें मछली के उत्पादन के लिए आवन्टित करता है, तो उत्पादन को निम्नांकित तालिका में निम्नवत प्रदर्शित किया जा सकता है।

तलिका 17.5 व्यापार की दशा में आगतों की प्रति 1000 इकाईयों के अनुसार उत्पादन

देश	कागज	मछली
फिनलैंड 700 / 300	2000	1000
जर्मनी 0 / 1000	0	2000
कुल उत्पादन	2000	3000

हम देखते हैं कि व्यापार की दशा में दोनों देशों का उत्पादन बढ़ता है। अब,, बढ़े हुए उत्पादन को कौन प्राप्त करता है, यह दो देशों के बीच व्यापार की शर्तो एवं सौदाकारी शक्ति पर निर्भर करता है। रिकार्डो का सिद्धान्त यह निष्कर्ष प्रदान करता है कि, जब देश विशिष्टीकरण एवं व्यापार करते हैं, तो उत्पादित वस्तुओं की सम्बन्धित कीमतें बढ़ती है, श्रमिको की आय बढ़ती है और आयातित वस्तुऐं उपभोक्ताओं के लिए कम खर्चीली हो जाती हैं। व्यापार में उच्च उत्पादकता वाले एवं कम उत्पादकता वाले दोनों देशों को लाभान्वित करने की सामर्थ्य होती है, यद्यपि व्यापार देशों के भीतर आय के वितरण को परिवर्तित कर सकता है। उच्च उत्पादकता अथवा न्यून मजदूरी देशों को लागत लाभ प्रदान करती है जो उन्हें कार्यक्षमता पूर्वक उत्पादन करने का अवसर प्रदान करती है। किन्तु, इस सिद्धान्त की सीमा यह है कि वास्तविक व्यवहार में मान्यताओं को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। वास्तव में परिवहन लागतें एवं अन्य विविध कारक राष्ट्रो के बीच वस्तुओं के प्रवाह को प्रभावित कर सकते हैं। फिर भी यह सिद्धान्त राष्ट्रो के बीच स्वतंत्र व्यापार को प्रोत्साहित करने का आधार प्रदान करता है जो कि पहले के संरक्षणवादी सिद्धान्त के विपरीत है। निरपेक्ष लाभ एवं तुलनात्मक लाभ दोनों सिद्धान्त यह अनुभव करने में विफल हुए हैं कि, समाज का कल्याण केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभों पर निर्भर नहीं करता बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि, इन लाभों का वितरण कैसे होता है। इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत व्यक्तिगत लाभों की तब तक गारण्टी नहीं दी जा सकती है, जब सरकार एक उचित पुर्नवितरण नीति को नहीं अपनाती है। साथ ही उत्पादक को भी निर्यात योग्य उत्पादन में संलग्न रहने के लिए कुछ निश्चित प्रेरणायें होनी चाहिए। इन सिद्धान्तों की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि, श्रम उत्पादन लागत को निर्धारित करने वाला एकमात्र आगत नहीं है।

17.5 हैक्सचर–ओहलिन व्यापार मॉडल

एडम स्मिथ और रिकार्डो का व्यापार मॉडल श्रम को एकमात्र साधन आगत तथा श्रम उत्पादन में अन्तर को व्यापार का निर्धारक मानता था। ऐली हैक्सचर (1919) और बर्टिन ओहलिन (1933) ने दो साधन आगतों–श्रम एवं पूँजी के साथ यह स्पष्ट करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त (एच0ओ0 व्यापार मॉडल) विकसित किया कि विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न साधन आवंटन व्यापारिक साझेदारों के बीच व्यापार उत्पन्न करते हैं। बर्टिन ओहलिन के अनुसार, व्यापार विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है। वस्तुओं के मूल्यों में अन्तर साधन कीमतों (अर्थात लागतों) में अन्तर के कारण होता है। साधन कीमतें इसलिए भिन्न होती हैं, क्योंकि देशों में आवंटन

(अर्थात पूँजी एवं श्रम) भिन्न होता है। अतः, व्यापार इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न साधन आवंटन होता है।

वास्तविक विश्व में जहाँ व्यापार को आंशिक रुप से श्रम उत्पादकता में अंतरों के द्वारा समझाया जा सकता है, यह देशों के संसाधनों में अंतरों को भी प्रतिबिम्बित करता है।

हैक्सचर ओहलिन सिद्धान्तः

- संसाधन विभिन्नताओं को व्यापार के एकमात्र स्रोत के रुप में जोर देता है।
- यह प्रदर्शित करता है कि, तुलनात्मक लाभ निम्नांकित के द्वारा प्रभावित होता है :

  –सापेक्षिक साधन बहुलता (प्रचुरता) के द्वारा (देशों के संदर्भ में)।

  –सापेक्षिक साधन गहनता (वस्तुओं के संदर्भ में) के द्वारा।
- साधन अनुपात सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है।

हैक्सचर–ओहलिन सिद्धान्त बताता है कि ऐसे देश जो श्रम सम्पन्न हैं, श्रम गहन वस्तुओं का निर्यात करेंगे और ऐसे देश जो पूँजी की दृष्टि से सम्पन्न हैं, वे पूँजी गहन वस्तुओं का निर्यात करेंगे। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि व्यापार में बाधाऐं निहित होती हैं और वस्तु एवं साधन दोनों बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है। साथ ही यह सिद्धान्त सापेक्षिक साधन कीमतों के रुप में तुलनात्मक लाभ पर आधारित है। एक देश जो वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टता अर्जित करता है और जिसमें इसके प्रचुर संसाधन आवश्यक होते हैं, उन्हें निर्यात कर सकता है। इस प्रकार, यदि एक देश पूँजी में सम्पन्न है, तो वह पूँजी गहन वस्तुओं का उत्पादन करेगा और उन्हें श्रम गहन वस्तुओं के बदले निर्यात करेगा। दूसरी ओर, अन्य देश जो श्रम सम्पन्न है, श्रम गहन वस्तुओं का उत्पादन करेगा और उन्हें निर्यात करेगा, वह पूँजी गहन वस्तुओं का आयात करेगा।

हैक्सचर ओहलिन सिद्धान्तः–

एक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जो इसके प्रचुर संसाधन को गहनतापूर्वक उपयोग करता है और उस वस्तु का आयात करेगा जो इसके सीमित साधन का गहनतापूर्वक उपयोग करता है। हैक्सचर ओहलिन सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण की व्याख्या निम्नांकित मान्यताओं के आधार पर करता हैः

i. इसमें दो देशों की संलग्नता होती है। सैद्धान्तिक मॉडल निर्मित करने के लिए यह मान्यता कर ली गयी है कि व्यापार दो देशों के बीच होता है।

ii. प्रत्येक देश में दो साधन (पूँजी एवं श्रम) होते हैं। यह प्रतिष्ठित सिद्धान्त का ही विस्तार है, जो श्रम को एकमात्र कारक मानता था।

iii. प्रत्येक देश दो साधन वस्तुओं या माल उत्पादित करता है, यह श्रम गहन एवं पूँजी गहन हो सकते है।

iv. वस्तु एवं साधन, दोनों बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। पूर्ण प्रतियोगिता उचित कीमत संरचना तथा समस्त प्रतिभागियों हेतु सामान्य लाभ की ओर ले जाती है।

v. समस्त उत्पादन प्रकार्य प्रथम स्तरीय समरुप होते हैं अर्थात उत्पादन प्रकार्य पर उत्पत्ति समता नियम लागू होता है।

vi. साधन देश के अन्तर स्वतन्त्र रुप से गतिशील होते हैं, किन्तु देशों के बीच गतिशील नहीं होते है अर्थात श्रम एवं पूँजी को देशों के अन्दर उपयोग किया जा सकता है।

vii. दो देशों में साधन आपूर्ति में भिन्नता होती है।

viii. प्रत्येक वस्तु साधन गहनता में भिन्न–भिन्न होती है।

ix. समान वस्तु के लिए विभिन्न देशों में उत्पादन प्रकार्य समान रहता है, उदाहरणार्थ यदि वस्तु 'अ' को एक देश में अधिक पूँजी की आवश्यकता है, तो अन्य देश में भी समान मात्रा प्रयुक्त होगी।

x. दोनों देशों में संसाधनों को पूर्ण रोजगार प्राप्त है और इनकी मांग दोनों देशों में समान है।

xi. व्यापार स्वतन्त्र होता है अर्थात प्रशुल्क अथवा गैर–प्रशुल्क बाधाओं के रुप में कोई व्यापार प्रतिबन्ध नहीं हैं।

xii. कोई परिवहन लागतें नहीं हैं।

इन मान्यताओं के प्रकाश में, ओहलिन का सिद्धान्त यह प्रस्तावित करता है कि, एक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जो इसके प्रचुर एवं सस्ते साधन का सापेक्षिक रुप में अधिक अनुपात उपयोग करता है। वह देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन के लिए देश के अपेक्षाकृत सीमित एवं महंगे साधन के गहन उपयोग की आवश्यकता होती है। साधन प्रचुरता की अवधारणा सापेक्षिक कीमतों एवं व्यापार की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखती है।

साधन प्रचुरताः

गृह देश, विदेश की तुलना में श्रम प्रचुर होता है (और विदेश, गृह देश की तुलना में भूमि प्रचुर होता है), यदि केवल गृह देश में कुल भूमि उपलब्धता से श्रम की कुल मात्रा का अनुपात विदेश की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक होता है। उदाहरणार्थः यदि अमेरिका के पास 80 मिलियन श्रमिक हैं और 200 मिलियन एकड़ भूमि है, जबकि ब्रिटेन के पास 20 मिलियन श्रमिक और 20 मिलियन एकड़ भूमि है, तब ब्रिटेन श्रम–प्रचुर है और अमेरिका भूमि प्रचुर है। ऐसी दशा में सीमित साधन– गृह देश में भूमि और विदेश में श्रम है।

दो देशों में, दो वस्तुओं एवं दो साधनों का मॉडल यह बताता है कि पूँजी सम्पन्न देश पूँजी गहन वस्तु का निर्यात करेगा और श्रम सम्पन्न देश श्रम गहन वस्तु का निर्यात करेगा। किन्तु देश के एक या अन्य साधन में सम्पन्न होने की अवधारण बहुत स्पष्ट नहीं हैं।

अर्थशास्त्र, बहुधा साधन प्रचुरता को साधन कीमतों के रुप में परिभाषित करता है। स्वयं ओहलिन ने इस दृष्टिकोंण का अनुसरण किया है। वैकल्पिक रुप में, साधन प्रचुरता भौतिक रुप में परिभाषित की जा सकती हैं। इस दशा में, पूँजी एवं श्रम की भौतिक मात्राओं की तुलना की जाती हैं।

साधन प्रचुरता को परिभाषित करने का कीमती मापदण्ड

एक देश, जहॉ पूँजी सापेक्षिक रुप में सस्ती है और श्रम सापेक्षिक रुप में महॅगा है, उसे पूँजी सम्पन्न देश कहा जाएगा। जबकि एक देश, जहाँ श्रम सापेक्षिक रुप में सस्ता है, और पूँजी सापेक्षिक रुप में महंगी है, उसे श्रम सम्पन्न

देश कहा जाएगा। गणितीय समीकरण को विकसित करने के लिए, आइए मान लें कि व्यापार दो देशों–अमेरिका और भारत के बीच हो रहा है।
साधन की कीमत को निम्नांकित समीकरण के द्वारा मापन किया जा सकता है:

$$Pka/PLa > Pki/PLi$$

इस समीकरण में,Pसाधन की कीमत को व्यक्त करता है, K पूँजी को व्यक्त करता है, L श्रम को व्यक्त करता है, जबकि a अमेरिका और i भारत को व्यक्त करता है। इस समीकरण में, हम अवलोकन करते हैं कि अमेरिका में पूँजी सस्ती एवं इस प्रकार पूँजी प्रचुर देश है, जबकि भारत में श्रम सस्ता है, इस कारण यह श्रम प्रचुर देश है। इससे व्यापार की उभरती प्रवृत्ति को निम्नांकित रेखाचित्र में समझाया जा सकता है। जैसे कि पहले समझाया जा चुका है, हमने उन समान देशों अर्थात अमेरिका और भारत का उदाहरण लिया है जहॉ अमेरिका पूँजी सम्पन्न और भारत श्रम प्रचुर देश है। रेखाचित्र 17.1 में xx अमेरिका में उत्पादित वस्तु x के लिए समोत्पाद वक्र है। yy भारत में उत्पादित वस्तु yके लिए समोत्पाद वक्र है। यह बहुत स्पष्ट है कि xx सापेक्षिक रुप में श्रम गहन है। साधन पूँजी को y अक्ष पर और साधन श्रम को समतल x अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। PAकीमत रेखा या अमेरिका की बजट रेखा है। कीमत रेखा PA बिन्दु E पर xx को स्पर्श करती है। कीमत रेखा PA बिन्दुKपर समोत्पाद वक्र yy को भी स्पर्श करती है। बिन्दु K हमें यह ज्ञात करने में सहायता करता है कि, अमेरिका में y कि एक ईकाई को उत्पादित करने में कितनी पूँजी एवं श्रम की आवश्यकता है।

Exhibit 17.1
हैक्सचर आ`हलिन सिद्धान्त :H-O Theory

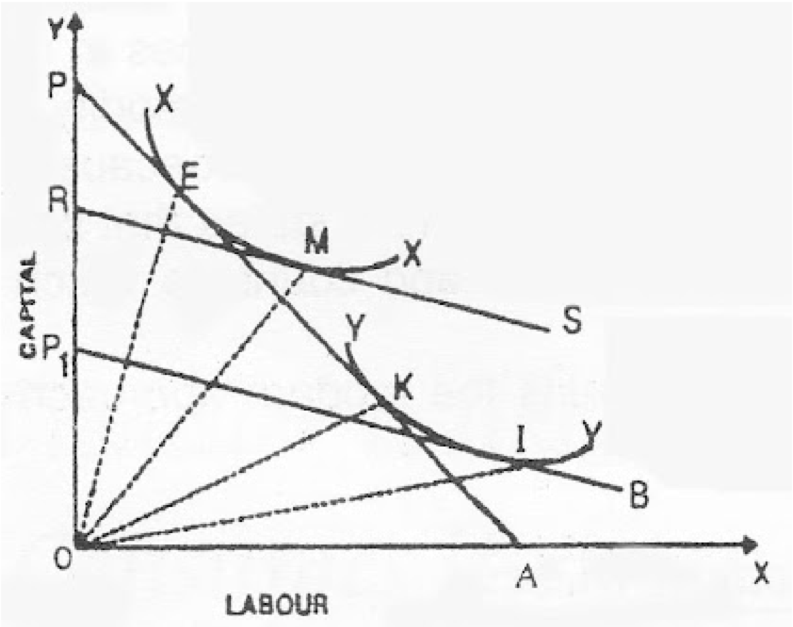

P1B भारत की कीमत रेखा हैं, कीमत रेखा P1B बिन्दु I पर yy वक्र पर स्पर्श रेखा है। कीमत रेखा RS आर0एस0 जो कि P1B के समान्तर खींची गयी

है, xx रेखा पर बिन्दु M पर स्पर्श करती है। इससे हमें यह ज्ञात करने में सहायता प्राप्त होती है कि कितनी मात्रा में पूँजी एवं श्रम भारत में वस्तु एक्स की एक इकाई को उत्पादित करने के लिए आवश्यक है। दी हुई स्थितियों के अन्तर्गत, अमेरिका संयोग E का चयन करेगा। जिसका अर्थ पूँजीगत वस्तुओं में अधिक विशिष्टीकरण होगा, वह संयोग K का चयन नहीं करेगा क्योंकि यह अधिक श्रम गहन एवं कम पूँजी गहन है।

इस प्रकार ओहलिन के अनुसार अमेरिका सस्ती पूँजी साधन का विस्तृत उपयोग करते हुए X वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा, जबकि भारत वस्तु y में विशिष्टीकरण उपलब्ध सस्ते श्रम का उपयोग करते हुए करेगा। ओहलिन के सिद्धान्त का निष्कर्ष यह है कि आन्तरिक व्यापार का आधार दो देशों में वस्तुओं की कीमतों में अन्तर है। वस्तुओं की कीमतों में अन्तर लागतों में अन्तरों के कारण होते है, जो कि दो देशों में साधन आवंटन में अन्तरों के कारण उत्पन्न होते हैं। एक पूँजी सम्पन्न देश जो पूँजी गहन वस्तुओं में विशिष्टीकरण करता है, उन्हें निर्यात करेगा। जबकि एक श्रम प्रचुर देश श्रम गहन वस्तुओं में विशिष्टीकरण करने के कारण उन्हें निर्यात करेगा।

साधन गहनताः

दो वस्तुओं (कपड़ा एवं खाद्य–सामग्री) तथा दो साधनों (श्रम एवं पूँजी) के एक संसार में खाद्य–उत्पादन श्रम गहन है, यदि किसी मजदूरी–किराये के दिए हुए अनुपात में खाद्य–उत्पादन में प्रयुक्त भूमि–श्रम अनुपात, कपड़े के उत्पादन में प्रयुक्त अनुपात से अधिक है। उदाहरणार्थ यदि खाद्य उत्पादन में 80 श्रमिकों एवं 200 एकड़ भूमि प्रयुक्त होती है जबकि कपड़े के उत्पादन में 20 श्रमिक एवं 20 एकड़ भूमि प्रयुक्त होती है, तो खाद्य उत्पादन भूमि गहन एवं कपड़ा उत्पादन श्रम गहन होगा।

साधन कीमतें एवं वस्तु कीमतें:

स्टॉपलर–सेम्युलसन सिद्धान्त (प्रभाव): यदि वस्तुओं की सम्बन्धित कीमतें बढ़ती हैं, साधन पूर्ति स्थिर रहती है, तो उस वस्तु के उत्पादन में गहन रुप से प्रयुक्त साधन की सामान्य एवं वास्तविक प्रत्याय (दोनों वस्तुओं के सम्बन्ध में) बढ़ती है, जबकि अन्य साधन के सम्बन्ध में सामान्य एवं वास्तविक प्रत्याय (दोनों वस्तुओं के सम्बन्ध में) कम होती है। इसके विपरीत स्थिति भी सत्य है। किस प्रकार दो वस्तुओं का उत्पादन परिवर्तित होगा, जबकि अर्थव्यवस्था के संसाधनों में परिवर्तन होता है? इसे राइबेजिंन्स्की सिद्वान्त (प्रभाव) के द्वारा समझाया गया है। यदि एक उत्पादन के साधन में वृद्धि होती है, तो उस वस्तु की आपूर्ति जिसे यह साधन गहनतापूर्वक प्रयुक्त करता है, में भी वृद्धि होगी और किसी दी हुई कीमत पर अन्य वस्तु की आपूर्ति कम हो जाऐगी। इसके विपरीत स्थिति भी सत्य है।

व्यापार एवं आय का वितरण

यह अन्य मुद्दा है जिसे समाधान करने की आवश्यकता है–

- व्यापार से सापेक्षी कीमतों का एकीकरण उत्पन्न होता है।
- सम्बन्धित सापेक्षी कीमतों में परिर्वतन का दोनों देशों में श्रम एवं भूमि की सापेक्षिक आयों पर सुदृढ़ प्रभाव होता है।

- गृह देश में, जहाँ कपड़े की सापेक्षिक कीमत बढ़ती है: श्रमिकों की स्थिति बेहतर होगी और भूस्वामियों की स्थिति खराब हो जाएगी।
- विदेश में, जहाँ कपड़े की सापेक्षिक कीमत कम होगी, विपरीत स्थिति उत्पन्न होगी , श्रमिकों की स्थिति कमजोर तथा भूस्वामियों की स्थिति बेहतर हो जाएगी।
- एक देश के प्रचुर साधनों के स्वामियों को व्यापार से लाभ होगा किन्तु एक देश के सीमित साधनों के स्वामियों को हानि होगी।

विशिष्ट साधन मॉडल तथा हैक्सचर ओहलिन मॉडल के बीच आय वितरण प्रभावों के रुप में अन्तर:

विशिष्ट उद्योग के प्रति साधनों की विशिष्टता प्रायः एक अल्पकालीन समस्या मात्र होती है। उदाहरणार्थ एक रात में ही कपड़ा निर्माता कम्प्यूटर निर्माता नहीं हो सकते हैं किन्तु दिए हुए समय अन्तर्गत अर्थव्यवस्था अपने निर्माण क्षेत्र के रोजगार को पतन होते हुए क्षेत्रों से विस्तारोन्मुख क्षेत्रों की ओर विवर्तित कर सकती है,इसके विपरीत, व्यापार का भूमि, श्रम, और पूँजी के बीच आय वितरण पर प्रभाव न्यूनाधिक रुप में स्थायी होगा।

साधन कीमत समानीकरण:

- व्यापार के अभाव में श्रम गृह देश में कम आय अर्जित करेगा अपेक्षाकृत विदेश के, और भूमि अधिक आय अर्जित करेगी।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के बीच समरुप संसाधनों को सापेक्ष एवं निरपेक्ष प्रत्याय में पूर्ण समानीकरण की ओर ले जाता है।
- यह व्यक्त करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार साधनों की अन्तर्राष्ट्रीय गतिशीलता के लिए एक स्थानापन्न है।

साधन कीमत समानीकरण के पूर्वानुमान हेतु आवश्यक मान्यतायें व्यवहार में सही नहीं हैं।

- दोनों देश दोनों वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।
- दोनों देशों के पास उत्पादन की समान तकनीकें है।
- व्यापार के कारण दोनों देशों में वस्तुओं की समान कीमतें हैं।

साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त यह नहीं कहता है कि, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रति व्यक्ति आयों में अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरों को समाप्त या कम कर देगा।

हैक्सचर ओहलिन (एच0ओ0) सिद्धान्त की सीमाऐं:

(1) अवास्तविक मान्यताऐं

दो देशों, दो वस्तुओं, परिवहन लागतों की अनुपस्थिति इत्यादि सामान्य मान्यताओं के अतिरिक्त ओहलिन का सिद्धान्त उत्पादन के साधनों में गुणवत्ता पूर्ण अन्तर न होने की मान्यता भी कर लेता है। साथ ही समरुप उत्पादन प्रकार्य, उत्पत्ति समता नियम इत्यादि की मान्यता भी कर ली जाती है। यह मान्यतायें सिद्धान्त को अवास्तविक बना देती हैं।

(2) प्रतिबन्धात्मक:

ओहलिन का सिद्धान्त सीमाओं से मुक्त नहीं है। उनका सिद्धान्त केवल दो वस्तुओं, दो देशों और दो साधनों को सम्मिलित करता है। यह एक प्रतिबन्धात्मक सीमा है।

(3) एक पक्षीय सिद्धान्तः

ओहलिन के सिद्धान्त के अनुसार साधन कीमत निर्धारण में पूर्ति मांग की अपेक्षा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। किन्तु यदि मांग की शक्तियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं तो, एक पूँजी सम्पन्न देश श्रम गहन वस्तुओं का निर्यात करेगा क्योंकि पूँजी की कीमत पूँजी की उच्च मांग के कारण ऊँची होगी।

(4) स्थैतिक प्रकृतिः

रिकार्डो के सिद्धान्त की भांति एच0ओ0 मॉडल भी स्थैतिक प्रकृति का है। यह सिद्धान्त अर्थव्यवस्था की एक दी हुई स्थिति पर आधारित है, जिसमें उत्पादन प्रकार्य दिया हुआ है और इनमें कोई परिवर्तन स्वीकार्य नहीं होता है।

(5) वाइजॅनहोल्ड्रस के द्वारा आलोचनाः

अर्थशास्त्री वाइजॅनहोल्ड्रस के अनुसार यह साधन कीमतें नहीं हैं, जो लागतों एवं वंस्तुओं की कीमतों को निर्धारित करती है बल्कि साधन कीमतों तो वस्तुओं की कीमतों से निर्धारित होती है।

(6) उपभोक्ता की मांग की उपेक्षाः

ओहलिन ने एक महत्वपूर्ण तथ्य को उपेक्षित कर दिया कि वस्तु की कीमतें उपभोक्ताओं की मांग से भी प्रभावित होती है।

(7) हैबरलर के द्वारा आलोचनाः

हैबरलर के अनुसार, ओहलिन का सिद्धान्त आंशिक सन्तुलन पर आधारित है। यह एक पूर्ण, विस्तृत एवं सामान्य सन्तुलन विश्लेषण प्रदान करने में असफल रहता है।

(8) लियोनटिफ का विरोधाभासः

अमेरिकन अर्थशास्त्री वैस्ली लियोनटिफ ने एच0ओ0 सिद्धान्त का परीक्षण अमेरिकी स्थितियों में किया। उन्होंने यह ज्ञात किया कि अमेरिका श्रम गहन वस्तुओं का निर्यात एवं पूँजी गहन वस्तुओं का आयात करता है, किन्तु अमेरिका को पूँजी सम्पन्न देश होने के कारण पूँजी गहन वस्तुओं का निर्यात एवं श्रम गहन वस्तुओं को अपने देश में उत्पादन करने के स्थान पर उनका आयात करना चाहिए। इस स्थिति को लियोनटिफ का विरोधाभास कहा जाता है, जो एच0ओ0 सिद्धान्त को नकार देता है। लियोनटिफ का विरोधाभास बाद के विचार—विमर्श में विस्तृत रुप में समझाया गया है।

(9) अन्य कारकों की उपेक्षाः

साधन आबंटन वस्तुओं की कीमतों और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करने वाला एकमात्र कारक नहीं है। एच0ओ0 सिद्धान्त अन्य कारकों जैसे तकनीकी, उत्पादन तकनीकी, प्राकृतिक कारक, श्रम की विभिन्न गुणवत्ता इत्यादि भी जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करते है, को उपेक्षित कर देता है।

17.6 लियोनटिफ का विरोधाभास

एच0ओ0सिद्धान्त के द्वारा प्रतिपादित अवधारणा को 1950 के दशक के प्रारम्भ में एक झटका तब लगा जब लियोनटिफ ने अमेरिका की अर्थव्यवस्था के आगत—निर्गत समंको की सहायता से अपनी इस परिकल्पना का परीक्षण किया कि

पूँजी सम्पन्न देश पूँजी गहन वस्तुओं का निर्यात करते हैं और इसके ठीक विपरीत भी सत्य है। उनके निष्कर्षो ने ए0ओ0 मॉडल की अवधारणा को अवास्तविक सिद्व कर दिया। यह अर्थशास्त्रियों के लिए आधात पूर्ण समाचार था कि अमेरिका के एक पूँजी सम्पन्न देश होने पर भी उसे श्रम गहन वस्तुओं का निर्यात करना चाहिए और पूँजी गहन वस्तुओं का आयात करना चाहिए। लियोनटिफ के विरोधाभास का समाधान करने के लिए अनेकों स्पष्टीकरणों पर विचार किया गया। लियोनटिफ के विरोधाभास के समर्थन में चिन्हित मुख्य कारकों में अमेरिका की प्रतिबन्धात्मक व्यापार नीति, प्राकृतिक संसाधनों का आयात और मानवीय पूँजी में विनियोग सम्मिलित थे। अर्थशास्त्री विलियम पी0 ट्रेविस ने लियोनटिफ के सिद्धान्त का अमेरिका की टैरिफ नीति के संदर्भ में परीक्षण किया। जब लियोनटिफ ने अपनी परिकल्पना का परीक्षण किया था, तब अमेरिका कच्चा तेल, पेपर पल्प, प्राथमिक वस्तुओं, तांबा, शीसा, धातु खनिज एवं अखबारी कागज इत्यादि जो पूँजी प्रधान थे, जैसी मदों का आयात कर रहा था। इस प्रकार ट्रेविस के अनुसार अमेरिका की व्यापार नीति लियोनटिफ के निष्कर्षों के लिए उत्तरदायी थी।

अमेरिका का प्राकृतिक संसाधनों जैसे खनिजों और वन उत्पादों का आयात एवं खाद्य वस्तुओं का निर्यात लियोनटिफ के प्रस्तुतीकरण का और आगे जाकर समर्थन कर रहा था। वास्तव में मानव पूँजी में विनियोग श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करता है। इस कारण अमेरिका के निर्यातों में श्रम गहन वस्तुऐं सम्मिलित थीं और उसके आयात पूँजी गहन प्रकृति के थें।

17.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुद्दे का अध्ययन आधुनिक अर्थशास्त्रियों के द्वारा इसलिए किया जा रहा है, क्योंकि व्यावसायिक वातावरण में कई परिवर्तन हो गए हैं। बहुध्रुवीय विश्व का वर्तमान युग, वैश्वीकरण उदारीकरण एवं निजीकरण का प्रादुर्भाव, तकनीकी विकास विशेष रुप से सूचना तकनीक का विकास इत्यादि ने व्यापार की प्रकृति को परिवर्तित कर दिया है। प्रतियोगिता के युग ने सहयोग का मार्ग प्रशस्त किया है और पूर्व वर्षो में प्रतिपादित सिद्धान्तों में भी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नवत है।

- विशिष्ट कारक एवं आय वितरण
- व्यापार का प्रमाप मॉडल
- प्रतियोगितात्मक लाभ

निम्नांकित चर्चा में आधुनिक युग के इन सिद्धान्तों को समझाया गया हैं।

विशिष्ट कारक एवं आय वितरण (पॉल सेम्युलसन–रोनॉल्ड जॉन्स मॉडल)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन दो अमेरिकी अर्थशास्त्रियों, पॉल सेम्युलसन और रोनॉल्ड जॉन्स ने किया जिन्होंने विशिष्ट कारकों पर आधारित व्यापार मॉडल की व्याख्या की, इस बात के कम से कम दो कारण हैं कि व्यापार का आय–वितरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है।

1. संसाधनों को तत्काल स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता है और एक उद्योग से दूसरे उद्योग में इनका स्थानान्तरण बिना लागतों के नहीं हो सकता है।

2. उद्योग विभिन्न कारकों (साधनों) का उपयोग करते हैं और एक देश के द्वारा प्रस्तुत उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन हो जाने से कुछ उत्पादन के साधनों की मांग कम हो जाती है जबकि अन्य साधनों की मांग बढ़ जाती है।

जहाँ पूर्व के मॉडलों का आधार एक या दो साधन थे। यह एक त्रि–साधन (तीन साधनों वाला) मॉडल था, क्योंकि यह तीन साधनों–श्रम (एल0), पूँजी (के0) और क्षेत्र (टी0) पर आधारित है। खाद्य (एक्स0) जैसे उत्पादों का निर्माण क्षेत्र (टी0) के उपयोग के द्वारा और श्रम (एल0) का प्रयोग करके होता है, जबकि विनिर्माणी उत्पाद (वाई0), पूँजी (के0) और श्रम (एल0) का उपयोग करते हैं। इस सरल उदाहरण से यह अवलोकन किया जा सकता है कि श्रम (एल0) एक गतिशीलकारक है और इसे दोनों क्रियाओं के क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जा सकता है जबकि भौगौलिक क्षेत्र एवं पूँजी विशिष्ट साधन हैं।

एक पूँजी सम्पन्नता एवं कम भूमि वाला देश खाद्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक विनिर्माणी वस्तुओं के उत्पादन की प्रवृति रखता है चाहे कीमत कुछ भी हो, जबकि एक भूमि सम्पन्नता वाला देश अधिक खाद्य उत्पादन की प्रवृति रखता है। यदि अन्य तत्व स्थिर रहें, तो पूँजी में एक वृद्धि का अर्थ विनिर्माणी क्षेत्र से सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि से है, जबकि भौगौलिक क्षेत्र प्रस्तुत करने में हुई एक वृद्धि खाद्य उत्पादन में वृद्धि होगी जो विनिर्माताओं के लिए हानिकारक होगी। जब दो देश व्यापार करना निश्चित करते हैं, तो वह एक एकीकृत विश्व अर्थव्यवस्था की रचना करते हैं जिसका विनिर्माणी एवं खाद्य उत्पादन दोनों देशों के उत्पादन के कुल योग के बराबर होता है। यदि एक देश व्यापार नहीं करता है, तो वस्तुओं का उत्पादन उपभोग के बराबर होता है। व्यापार से लाभ प्रत्येक देश के निर्यात क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक होंगे और उस क्षेत्र में कम होंगे जिनकी आयात क्षेत्र से प्रतिस्पर्धा है।

व्यापार का प्रमाप मॉडल

व्यापार का प्रमाप मॉडल पॉल क्रगमैन तथा मौरिस ऑब्सफील्ड के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। यह सिद्धान्त उत्पादन सम्भावनाओं से उत्पन्न सापेक्षिक वैश्विक पूर्ति वक्र की विद्यमानता को व्यक्त करता है और एक निश्चित वस्तु हेतु विभिन्न अधिमानों से उत्पन्न सापेक्षिक वैश्विक मांग वक्र को व्यक्त करता है। विनिमय दर (निर्यात कीमतों एवं आयात कीमतों के बीच सम्बन्ध) दोनों वक्रों–सापेक्षिक वैश्विक पूर्ति वक्र एवं सापेक्षिक वैश्विक मांग वक्र के कटाव से निर्धारित होता है। यदि अन्य तत्व स्थिर बने रहते हैं, तो एक देश की विनिमय दर में सुधार के अर्थ को उस देश के कल्याण के स्तर में महत्वपूर्ण वृद्धि के रुप में व्यक्त किया जा सकता है।

प्रतियोगितात्मक लाभ

इस सिद्धान्त को हाल ही में अमेरिकन प्रबन्धन गुरु–माइकल पोर्टर ने प्रतिपादित किया, जिन्होंने 'मूल्य श्रृंखला विश्लेषण' की अवधारणा प्रतिपादित की। एक फर्म की गतिविधियों को प्राथमिक एवं द्वितीयक में उपविभाजित किया जा सकता है। प्राथमिक गतिविधियाँ वह हैं जो मूल्य संवर्द्धन में प्रत्यक्ष रुप में योगदान करती है, जबकि द्वितीयक गतिविधियाँ, प्राथमिक गतिविधियों के घटित होने में समर्थन देती है। फर्मो की व्यक्तिगत मूल्य श्रृखलाओं को एकीकृत करके उद्योग

की मूल्य श्रृखला ज्ञात होती है और इसमें तब सुदृढ़ता आएगी, जबकि कोई प्रतियोगितात्मक लाभ विद्यमान हो, प्रतियोगितात्मक लाभ का सृजन संसाधनों तक स्पष्ट पहुँच के द्वारा (साधन आधारित विकास), न्यून लागत निवेश या नवाचार प्रेरित प्रतियोगितात्मक लाभ के द्वारा हो सकता है। पोर्टर ने एक 'प्रतियोगितात्मकता डायमण्ड' का प्रतिपादन किया जो पांच निर्धारकों से युक्त होता है।

- आन्तरिक कारकों की क्षमता
- घरेलू बाजार की विशिष्टता
- उद्योगों के बीच सम्बन्ध
- घरेलू प्रतियोगिता वातावरण

एक राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतियोगी बने रहने के लिए इन कारकों को विकसित एवं संधारित करने की आवश्यकता होती है।

17.8 सारांश

राष्ट्रों के बीच व्यापार के मुद्दे का अध्ययन अर्थशास्त्रियों के द्वारा बहुत पहले से किया गया है और एडम स्मिथ ने यह बताया कि राष्ट्र तब व्यापार करेंगे जबकि एक देश में एक उत्पाद को उत्पादित करने के लिए निरपेक्ष लागत लाभ विद्यमान है। किन्तु रिकार्डो का कहना था कि निरपेक्ष लागत लाभ राष्ट्रों के बीच व्यापार होने का पूर्णतया औचित्य प्रदान नहीं करता है और उन्होने एक तुलनात्मक लागत लाभ सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ओहलिन के सिद्धान्त ने यह प्रतिपादन किया कि एक देश उस वस्तु का अधिक निर्यात करता है जो उस देश में प्रचुरता से उपलब्ध साधन का प्रयोग करता है। वह देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन के लिए उस देश का अपेक्षाकृत सीमित एवं खर्चीला साधन गहनतापूर्वक उपयोग किया जाता है, किन्तु लियोनटिफ ने ओहलिन के सिद्धान्त में विरोधाभास की पहचान की और यह अवलोकन किया कि अमेरिका अधिक महॅगे श्रम के बावजूद श्रम गहन वस्तुओं का लगातार निर्यात कर रहा है। आधुनिक सिद्धान्तों ने उत्पादन के साधनों को दो के स्थान पर तीन तक विस्तारित किया और माइकल पोर्टर के द्वारा प्रति पादित अति आधुनिक सिद्धान्त में प्रतियोगितात्मक लाभ की अवधारणा प्रस्तुत की गयी। राष्ट्र प्रतियोगितात्मक लाभ केवल उत्पादन के साधनों से ही प्राप्त नहीं कर सकते हैं, बल्कि इसे नवाचार एवं विनियोग के द्वारा विकसित एवं संधारित कर सकते है, जो बाजार में नए प्रतियोगियों के प्रवेश को नियंत्रित करके प्रतियोगिता को प्रतिबन्धित कर सकते हैं।

17.9 शब्दावली

निरपेक्ष लागत लाभ का सिद्धान्त : इस सिद्धान्त के अनुसार एक राष्ट्र को उन वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात करना चाहिए जिनके लिए इसका उत्पादन अन्य देशों से अधिक है और उन वस्तओुं एवं सेवाओं का आयात करना चाहिए, जिनके लिए इस देश की तुलना में अन्य देश अधिक उत्पादक हैं।

17.10 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. वाणिकवाद के अनुसार, एक राष्ट्र की सम्पत्ति के रुप में.......... विद्यमान रहती है।
2. निरपेक्ष लाभ सिद्धान्त के अनुसार, एक देश को उन वस्तुओं का निर्यात करना चाहिए जिसके लिए यह अन्य देशों की तुलना में अधिक.................. है।
3. डेविड रिकार्डो ने तर्क किया कि राष्ट्र व्यापार के द्वारा तब भी लाभ प्राप्त करेंगे यदि उन्हें,................लागत लाभ प्राप्त हों।
4. स्मिथ और रिकार्डो, दोनों के सिद्धान्तों ने.................तथा................महत्व को अनुभव नहीं किया।

(ब) सत्य/असत्य लिखिए।

1. ओहलिन के सिद्धान्त के अनुसार, वस्तुओं की कीमतों में अन्तर दो देशों के बीच साधन आबंटन में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।
2. ओहलिन का सिद्धान्त पूर्ण संतुलन पर आधारित है।
3. एच0ओ0 सिद्धान्त के अनुसार अमेरिका को श्रम गहन उत्पादों का निर्यात नहीं करना चाहिए किन्तु लियोनटिफ ने पाया कि यह सत्य नहीं है।
4. सेम्युलसन और जॉन्स मॉडल दो साधनों पर आधारित है।
5. पोर्टर ने तर्क दिया कि फर्में प्रतियोगितात्मक लाभ केवल लागत लाभ के माध्यम से प्राप्त कर सकती है।

17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. सोना और चांदी 2. उत्पादक 3. निरपेक्ष 4. लोगों का कल्याण, आय का वितरण

(ब) 1. सत्य 2. असत्य 3.सत्य 4.असत्य 5.असत्य

17.12 स्वपरख प्रश्न

1. राष्ट्र व्यापार क्यों करते हैं? इस प्रश्न के प्रति एडम स्मिथ का उत्तर क्या था?
2. तुलनात्मक लागत लाभ सिद्धान्त की अवधारणा को एक उदाहरण के द्वारा समझाइए?
3. ओहलिन का सिद्धान्त किस प्रकार राष्ट्रों के बीच व्यापार को समझाता है? यह सिद्धान्त अमेरिका के द्वारा किए गए निर्यातों को समझाने में असफल रहा है?
4. माइकल पोर्टर ने किस प्रकार राष्ट्रों के बीच व्यापार की व्याख्या करने में प्रतियोगितात्मक लाभ सिद्धान्त की व्याख्या की है, समझाइए?

17.13 सन्दर्भ पुस्तकें

(i) Terpstra, Vern and Sarathy, Ravi, "International Marketing", 7th edition, The Dryden Press.
(ii) Onkvisit, Sak and Shaw, John J, "International Marketing: Analysis and strategy", Ist edition, Merrill Publishing Company.
(iii) Keegan, W.J., "Global Marketing Management", 5th edition, Prentice Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi.
(iv) Philip R. Cateora, and John L. Graham, "International Marketing", 10th edition, Tata McGraw Hill Publishing Co. Ltd., New Delhi.
(v) Charles W. Hill, "International Business – competing in the Global marketplace", Tata McGraw Hill Publishing Co. Ltd., New Delhi.

इकाई–18 एफ0डी0आई0एवं एफ0आई0आई0

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश संरचना
18.3 प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश की अन्य विधियाँ
18.4 विदेशी तकनीकी समझौते (एफ0टी0ए0)
18.5 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रकार
18.6 एफ0डी0आई0 के निर्धारक
18.7 भारत में एफ0डी0आई0
18.8 भारत में एफ0डी0आई0 के लाभ
18.9 भारत में एफ0डी0आई0 के दोष
18.10 भारत में एफ0आई0आई0
18.11 एफ0डी0आई0 और एफ0आई0आई0 में अन्तर
18.12 सारांश
18.13 शब्दावली
18.14 बोध प्रश्न
18.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.16 स्वपरख प्रश्न
18.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश और विदेशी संस्थानात्मक निवेश को समझ सकें;
- प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी संस्थानात्मक निवेश के विभिन्न सिद्धान्तों को समझ सकें;
- प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी संस्थानात्मक निवेश की वर्तमान प्रवृत्तियों को जान सकें;
- प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश की विभिन्न व्यूहनीतियों का मूल्यांकन कर सकें।

18.1 प्रस्तावना

विदेशी निवेश एवं तकनीकी एक राष्ट्र के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है और इसे अनेक देशों के द्वारा समझाया गया है। पूर्वी यूरोप, रुस और केन्द्रीय एशिया के संक्रमण कालीन राष्ट्रों का आर्थिक स्वास्थ्य प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश के कारण ही सही रहा है। यहाँ तक कि चीन जैसे साम्यवादी देश ने अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश का स्वागत किया है। भारत सरकार भारत को एक आकर्षक अन्तर्राष्ट्रीय निवेश योग्य स्थल बनाने के लिए भरसक प्रयास कर रही है और अपने देश में विदेशी निवेश हेतु अनुकूल व्यावयायिक पर्यावरण के प्रर्वतक हेतु प्रयासरत है। ऐसा लगता है कि उनके प्रयास सफल हो रहे हैं।

18.2 प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश–संरचना

प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश एक उद्यम में नई समता पूँजी या आय के पर्व विनियोजन हेतु एक निवेश है। विदेशी निवेश दो प्रकार के होते हैं। (1) प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश (एफ0डी0आई0) और (2) विदेशी पोर्टफोलियो निवेश। एफ0डी0आई0 को एक देश के निवेशकर्ता के द्वारा दूसरे देश में एक सम्पत्ति के प्रबन्धन के उद्देश्य से उसे अधिग्रहित करने के लिए किए गए निवेश के रुप में परिभाषित किया जा सकता है। एफ0डी0आई0 को अर्थशास्त्र शब्दकोष के अन्तर्गत–'**विदेश में स्थानीय कम्पनी के अधिग्रहण अथवा एकनवीन स्थल पर उसके लिए एक परिचालन स्थापित करने के माध्यम से विनियोग**' की तरह परिभाषित किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के अनुसार जब एक व्यक्ति या व्यवसाय एक विदेशी कम्पनी की पूँजी के 10% या अधिक अंशों का स्वामित्व प्राप्त कर लेता है, तो इसे एफ0डी0आई0 माना जाता है। इसके पश्चात किया गया कोई भी वित्तीय सौदा आई0एम0एफ0 के द्वारा एक अतिरिक्त प्रत्यक्ष निवेश समझा जाता है। यदि एक निवेशक 10% से कम स्वामित्व प्राप्त करता है, तो इसे केवल स्टॉक पोर्टफोलियो में एक अतिरिक्त योगदान माना जाता है, इससे अधिक नहीं। ओ0ई0सी0डी0 के अनुसार एफ0डी0आई0 से आशय यह है कि विनियोक्ता अन्य देश के निवासी उपक्रम के प्रबन्ध पर महत्वपूर्ण मात्रा में प्रभाव डालता है। ऐसे निवेश में दो उपक्रमों के बीच प्रारम्भिक सौदे तथा उनके विदेशी सम्बद्ध नियमित उपक्रमों के बीच होने वाले सभी भावी सौदे दोनों सम्मिलित होते हैं। भारतीय कम्पनियों में एफ0डी0आई0 हेतु नियामक संरचना के अनुसार भारतीय कम्पनियाँ दो भागों से एफ0डी0आई0 प्राप्त कर सकती हैः

1. स्वचालित मार्ग

स्वचालित मार्ग के अन्तर्गत एफ0डी0आई0 सरकार अथवा भारतीय रिंजर्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना भारत सरकार द्वारा समय–समय पर निर्गमित एकीकृत एफ0डी0आई0 नीति में अधिसूचित सभी विशिष्ट गतिविधियों/सेक्टरों में अनुमन्य है। निवेशक को आर0बी0आई0 के सम्बन्धित क्षेत्रीय कार्यालय को आन्तरिक धन प्रेषण की प्राप्ति के विषय में, ऐसी प्राप्ति के 30 दिन के अन्दर सूचित करने की आवश्यकता होती है तथा उस कार्यालय में वांछित प्रलेखों को, विदेशी निवेशकों को अंश निर्गमन के 30 दिन के अन्दर, फाइल करने की भी आवश्यकता होती है। स्वचालित मार्ग के अन्तर्गत 100% एफ0डी0आई0 निम्नांकित मदों में अनुमन्य होगीः

1. कॉफी एवं रबर उद्योग में प्रक्रियन एवं भण्डारण
2. पॉवर ट्रेडिंग, इलेक्ट्रिसिटी एक्ट 2003 के प्रावधानों के अन्तर्गत।
3. पेट्रोलियम सैक्टर में विपणन से सम्बन्धित अवस्थापना के सृजन में निवेश।
4. अर्ह उपयोगकर्ताओं के उपभोग हेतु कोयला एवं लिगनाइट का खनन।
5. पोटेबल एल्कोहॉल का डिस्टीलेशन एवं ब्रुविंग, औद्योगिक विस्फोटक या एक्सप्लासिब्स एवं खतरनाक रसायन।

2. सरकारी अनुमोदन का मार्ग

सरकारी मार्ग का आशय है कि अनिवासी उपक्रमों के द्वारा निवासी उपक्रमों की पूँजी में निवेश एफ0आई0पी0बी0, वित मन्त्रालय या एफ0आई0ए0, डी0आई0पी0पी0 इत्यादि जैसी भी स्थिति हो, की पूर्व अनुमति से किया जा सकता है। स्वचालित मार्ग के अन्तर्गत गैर–आच्छादित सेक्टरों में एफ0डी0आई0 के लिए सरकार के पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता होती है, जिस पर विदेशी विनियोग प्रवर्तन बोर्ड (एफ0आई0पी0बी0), आर्थिक मामलों का विभाग और वित मन्त्रालय के द्वारा विचार किया जाता है। निम्नांकित सैक्टरों में भारत सरकार के पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता होती हैः

(अ) एफ0डी0आई0 हेतु प्रतिबन्धित सैक्टरःफुटकर व्यापार, लाटरी व्यवसाय, आणविक ऊर्जा, जुआ एवं सट्टा, चिट फंड व्यवसाय, कृषि एवं वृक्षारोपण, निजी कम्पनियाँ, आवास एवं रियल इस्टेट कारोबार इत्यादि।

(ब) ऐसी गतिविधियाँ जिनमें औद्यौगिक लाइसेन्स आवश्यक है।

(स) ऐसे प्रस्ताव जिनमें विदेशी सहयोगी के पास वित्तीय/तकनीकी सहयोग भारत में विद्यमान है।

(द) वित्तीय सेवा में संलग्न विद्यमान भारतीय कम्पनी के अंशों के अधिग्रहण का प्रस्ताव तथा जहाँ प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) का नियमन आकृष्ट होता है।

(य) ऐसे समस्त प्रस्ताव जो अधिसूचित सैक्टोरल नीति में आते हों जहाँ एफ0डी0आई0 अनुमन्य नहीं है। निवासी उपक्रमों में अनिवासी के द्वारा एफ0डी0आई0, जो भारत के बाहर निवासी व्यक्ति को प्रतिभूति के हस्तांतरण अथवा निर्गमन के माध्यम से की गयी हो, एक पूँजी खाता सौदा है और भारत सरकार और रिंजर्व बैंक ऑफ इन्डिया इसे 'फेमा' (FEMA) के अन्तर्गत तथा अन्य विभिन्न कानूनों के अन्तर्गत नियमन करती है। वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, समय–समय पर सरकार नए नियमनों, और अपने आदेशों/सहायक नियमों, प्रेस–नोट इत्यादि के माध्यम से संशोधन/परिवर्तन लेकर आती है। औद्यौगिक नीति और प्रवर्तन विभाग, (डी0आई0पी0पी0), वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय, भारत सरकार एफ0डी0आई0 पर नीतिगत घोषणाऐं प्रेसनोट/प्रेस विज्ञाप्ति के माध्यम से करती है, जिसे रिंजर्व बैंक के द्वारा अधिसूचन संशोधन संख्या फेमा 20/200–आर0बी0 दिनांक मई 3, 2000 की भांति अधिसूचित किया जाता है। यह अधिसूचनाऐं प्रेसनोट/प्रेस विज्ञप्ति की तिथि से प्रभावित होती है। कार्यविधियों सम्बन्धी निर्देश रिजर्व बैंक के द्वारा परिपत्रों के निर्गमन के द्वारा दिए जाते हैं। इस प्रकार एक निश्चित समयावधि के लिए नियामक संरचना में अधिनियम, नियमन, प्रेसनोट, प्रेस विज्ञाप्ति, स्पष्टीकरण इत्यादि सम्मिलित होते हैं। यह परिपत्र एक प्रलेख में समस्त पूर्व नीतियों/नियमनों जो एफ0डी0आई0 से सम्बन्धित है एवं फेमा, 1999, फेमा के अन्तर्गत आर0बी0आई0 नियमन, 1999 तथा प्रेसनोट/प्रेस विज्ञप्तियाँ/डी0आई0पी0पी0 निर्गत स्पष्टीकरण इत्यादि को समेकित कर देता है और एफ0डी0आई0 पर चालू नीति को प्रतिबिम्बित करता है। यह विस्तृत रुप में एफ0डी0आई0 नीति के समस्त पहलुओं जो कि विभिन्न

प्रेस नोटो/प्रेस विज्ञप्तियों/स्पष्टीकरणों, जो डी0आई0पी0पी0 द्वारा निर्गमित किए गए हैं, को ध्यान में रखता है।

तालिका–1: एफ0डी0आई0 का सैक्टरवार विभाजन

एफ0डी0आई0स्वचालित मार्ग	एफ0डी0आई0सरकारी मार्ग
कृषि; पशुपालन; फ्लोरीकल्चर	चाय–बागवानी
खनन, धातु एवं अधातु खनिज का खनन	पेट्रोलियम शोधन सार्वजनिक उद्यमों के माध्यम से,
कोयले एवं लिगनाइट का खनन एवं प्रसंस्करण	रक्षा–26%
पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस	
ब्राडकास्टिंग वाहन सेवा, डी0टी0एच0 के बिल, मोबाइल, टी0वी0, एच0आई0टी0एस (49%)	सरकारी मार्ग के परे 49% एवं 74% तक
केबिल नैटवर्क–49%	एफ0एम0 रेडियों (26%)
एअरपोर्ट– ग्रीनफील्ड परियोजनाऐं	अपलिकिंग (समाचार एवं समसामयिक घटनाऐं, टी0वी0 चैनल 26%
एअरपोर्ट–विद्यमान परियोजनाऐं (74%)	समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन, जो समाचारों एवं समसामयिक घटनाओं से सम्बन्धित हैं
अधिसूचित वायु यातायात सेवा, घरेलू सूचीकृत यात्री वायु सेवा	समाचार एवं समसामयिक घटनाओं में व्यवहार करने वाली विदेशी पत्रिकाओं के भारतीय संस्करणों का प्रकाशन
हेलीकॉप्टर सेवाऐं	वैज्ञानिक/तकनीकि पत्रिकाओं/जर्नलों का प्रकाशन/मुद्रण
रखरखाव एवं मरम्मत संगठन; फ्लाईंग प्रशिक्षण एवं तकनीकी प्रशिक्षण संस्थाऐं	विदेशी समाचार पत्रों के फैक्सीमिली संस्करणों का प्रकाशन
टाउनशिप, गृह निर्माण, अवस्थापना निर्माण एवं विकास परियोजनाओं का निर्माण	उपग्रह–स्थापना एवं परिचालन (74%)
दूरसंचार सेवायें (49%)	सरकारी मार्ग 49%के परे एवं 74% तक
थोक व्यापार–(नकद ले जाना) एवं थोक व्यापार	परीक्षण विपणन
ई– कामर्स गतिविधियाँ	एकल ब्राण्ड उत्पाद फुटकर व्यापार
बैंकिंग –निजी क्षेत्र 49%	सरकारी मार्ग 49%के परे एवं 74%तक
बीमा–26 %	
गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ (एन0बी0एफ0सी0)	
फार्मास्यूटिकल्स–ग्रीनफील्ड	फार्मास्यूटिकल्स–ब्राउनफील्ड

18.3 प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश की अन्य विधियाँ

- ग्लोबल डिपॉजिटरी रसीदें (GDR); /अमेरिकन डिपॉजिटरी रसीदें (ADR)/विदेशी करेन्सी (मुद्रा)
- परिवर्तनशील बॉण्ड (एफ0सी0सी0बी0): विदेशी निवेश जी0डी0आर0/ए0डी0आर0 एवं
- विदेशी करेन्सी के माध्यम से परिवर्तनशील बाण्डों (एफ0सी0सी0बी0) को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश माना जाता है। भारतीय कम्पनियों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जी0डी0आर0/ए0डी0आर/एफ0सी0सी0बी0 के माध्यम से समता पूँजी निर्गमन अनुमन्य है।

18.4 विदेशी तकनीकी समझौते (एफ0टी0ए0)

विदेशी तकनीकी सहयोग को या तो स्वचालित मार्ग के माध्यम से आर0बी0आई0 को प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग के अन्तर्गत या सरकार के द्वारा स्वीकृत किया जाता है। एफ0टी0ए0 को स्वचालित मार्ग या सरकार के पूर्व अनुमोदन के माध्यम से अनुमति प्रदान की जाती है।

1. स्वचालित मार्ग

भारतीय रिंजर्व बैंक अपने क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से सभी उद्योगों को विदेशी तकनीकी सहयोग समझौतों के लिए निम्नांकित प्रतिबन्धों के अन्तर्गत स्वचालित अनुमोदन स्वीकृत करता है :

(अ) 2 मिलियन अमेरिकी डॉलर से कम एकमुश्त भुगतान,

(ब) घरेलू विक्री पर 5% तथा निर्यातों पर 8% तक रॉयल्टी का देय होना बशर्ते कि 10 वर्ष की समयावधि में विक्रय पर 8% कुल भुगतान हो,

(स) रॉयल्टी के भुगतान की अवधि व्यापारिक उत्पादन प्रारम्भ होने से 7 वर्ष से कम अथवा समझौते की तिथि से 10 वर्ष तक, दोनों में जो भी पहले हो, होगी। यह रॉयल्टी सीमायें करों पर शुद्ध होंगी और इनकी गणना मानक दशाओं के अनुसार की जाएगी।

(द) होटल तथा पर्यटन सम्बन्धित उद्योगों के सम्बन्ध में विदेशी तकनीकी समझौते स्वचालित मार्ग के अन्तर्गत अनुमोदित होंगे।

(य) परियोजना की पूँजी लागत के 3% तक तकनीकी एवं सलाहकारी सेवाओं के लिए, जिसमें आर्कीटेक्चर, डिजायन पर्यवेक्षण इत्यादि का शुल्क सम्मिलित होगा, भुगतान किया जा सकेगा।

(र) शुद्ध टर्न ओवर का 3% तक फेंचाइजिंग एवं विपणन/प्रचार/समर्थन शुल्क के लिए देय होगा।

(ल) सकल परिचालन लाभ का 10%तक प्रबन्धन शुल्क प्रोत्साहन शुल्क सहित देय होगा।

सरकारी अनुमोदन

निम्नांकित वर्गों के लिए, सरकारी अनुमोदन आवश्यक होगा:

(अ) अनिवार्य लाइसेन्सिंग को आकृष्ट करने वाले प्रस्ताव,

(ब) लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित निर्माण की मदें,

(स) ऐसे प्रस्ताव जिनमें कोई पूर्व संयुक्त उपक्रम या तकनीकी हस्तान्तरण/ट्रेडमार्क समझौता भारत के उसी समान या सम्बन्धित क्षेत्र में संलग्न हो।

(द) विदेशी तकनीकी सहयोग समझौते का विस्तार (उन प्रकरणों को सम्मिलित करते हुए जिन्हें प्रारंभ में ही स्वचालित मार्ग से अनुमोदन प्राप्त हो गया हो)।

(य) ऐसे प्रस्ताव जो स्वचालित मार्ग के कोई अथवा सभी मानकों को पूरा करते हैं।

100% निर्यातोन्मुख इकाइयाँ/निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र/विशेष आर्थिक क्षेत्र तथा निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र की इकाइयाँ प्रोत्साहनों एवं सुविधाओं के पैकेज का लाभ उठाती हैं, जिसमें समस्त प्रकार के पूँजीगत वस्तुऐं, कच्चामाल एवं उपभोग्य वस्तुओं का कर–मुक्त आयात के साथ–साथ निर्यातों के सापेक्ष कर अवकाश भी सम्मिलित है। 100% निर्यातोन्मुख ई0ओ0यू0 तथा ई0पी0जेड0 में इकाइयाँ स्थापित करने की अनुमति स्वचालित मार्ग से या सरकार द्वारा दी जाती है। निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ई0पी0जेड0)/मुक्त व्यापार क्षेत्र (एफ0टी0जेड0) विशेष अर्थिक क्षेत्र (एस0ई0जेड0) के विकास आयुक्त (डी0सी0) परियोजनाओं के लिए स्वचालित अनुमोदन देते है, जहाँ–

(अ) प्रस्तावित क्रिया अनिवार्य लाइसेन्सिंग आकर्षित नहीं करती है।

(ब) परियोजना स्थल निर्धारित मानकों के अनुसार है।

(स) इकाई निर्यातों एवं मूल्य संवर्द्धन मानकों , जो चालू निर्यात एवं आयात नीति के द्वारा निर्धारित हों, को प्राप्त करने का आश्वासन देती है।

(द) आयातित माल का सी0आई0एफ0 मूल्य, विदेशी समता पूँजी या विदेशी विनिमय, जो प्लाण्ट एवं मशीनरी के आयात के लिए आवश्यक है, और पुराने माल के आयात की दशा में यदि आयात लाइसेन्स जरुरी नहीं है 10 करोड़ रु की सीमा में है।

(य) विदेशी तकनीकि समझौते (यदि कोई हो) मे 200 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक एकमुश्त भुगतान, और निर्यातों के 8%तक रॉयल्टी के भुगतान और व्यापारिक उत्पादन प्रारम्भ होने की तिथि से 5 वर्षो के अन्तर्गत डी0टी0ए0 विक्रय के 3% तक भुगतान का प्रावधान है।

(र) निर्यात साधारण करेन्सी/हार्ड करेन्सी के क्षेत्र में है।

(ल) इकाई कस्टम अधिकारियों के द्वारा बाण्डिंग किए जाने की स्थिति में है और

(व) इकाई ने न्यूनतम निर्यात टर्नओवर जैसा हैंड बुक ऑफ प्रासीजर्स (वोल्यूमI) में निर्धारित है, अनुमानित किया है।

100% ई0ओ0यू/ई0पी0जेड0 इकाइयों हेतु एफ0डी0आई0 नीति

ई0ओ0यू0/ ई0पी0जेड0 इकाइयों में एफ0डी0आई0/ एन0आर0आई0/ ओ0सी0बी0 निवेश के समस्त प्रस्ताव स्वचालित मार्ग के माध्यम से स्वीकृति हेतु अर्ह है, केवल उन प्रस्तावों को छोड़कर जहाँ एफ0आई0पी0बी0 अनुमोदन आवश्यक है। विद्यमान घरेलू टैरिफ क्षेत्र (डी0टी0ए0) इकाइयों का ई0ओ0यू0 में परिवर्तन भी स्वचालित मार्ग में अनुमन्य है, यदि डी0टी0ए0 इकाइयाँ

उपरोक्त वर्णित मानकों को संतुष्ट करती है और कोई भी अदत्त दायित्व भारत सरकार की किसी भी निर्यातोन्मुख योजना में नहीं है।

सरकारी मार्ग

सभी प्रस्ताव जो स्वचालित मार्ग के किसी अथवा सभी मानकों को पूरा नहीं करते हैं, उन्हें सरकार के द्वारा विचार किए जाने एवं अनुमोदित किए जाने की आवश्यकता है। ई0ओ0यू0 और एफ0आई0पी0बी0 के अन्तर्गत आने वाली ई0पी0जेड0/एफ0टी0जेड0 इकाइयों में एफ0डी0आई0 प्रस्तावों को सरकारी अनुमोदन प्राप्त करने की आवश्यकता है।

एस0ई0जेड0 में अवस्थित इकाइयों हेतु एफ0डी0आई0 नीति

निम्नांकित गतिविधियों को छोड़कर एस0ई0जेड0 की समस्त विनिर्माणी क्रियाओं में 100%तक एफ0डी0आई0 स्वचालित मार्ग के माध्यम से अनुमन्य है।

- हथियार एवं विस्फोटक एवं सम्बन्धित रक्षा उपकरण, एयर क्राफ्ट, वारशिप
- आणविक पदार्थ
- नार्कोटिक एवं साइकोट्रॉपिक पदार्थ एवं खतरनाक रसायन
- एल्कोहॉलिक पेय पदार्थो का डिस्टीलेशन एवं ब्रुविंग
- सिगरेट/सिगार एवं निर्मित तम्बाकू स्थानापन्न वस्तुऐं
- सरकार के द्वारा अधिसूचित सेक्टॉरल मानक सेवाओं में विदेशी निवेश पर लागू होंगे।

कुछ सेक्टरों के लिए एफ0डी0आई0 सीमा इस प्रकार हैः

- **बैंकिगः** निजी बैंकिंग सेक्टर में एफ0डी0आई0 74% तक अनुमन्य है जहाँ 49% तक एफ0डी0आई0 स्वचालित मार्ग से तथा 49% से परे 74% तक सरकारी अनुमोदन के मार्ग से स्वीकृत होगी।
- **बीमाः** बीमा क्षेत्र में एफ0डी0आई0 26% तक स्वीकृत है।
- **दूरसंचारः**

i. आधारभूत, सैल्यूलर, मूल्यसंवर्द्धन सेवाओं और वैश्विक मोबाइल सैटेलाइट के द्वारा व्यक्तिगत संचार में एफ0डी0आई0 49% तक सीमित है, बशर्ते कि लाइसेन्सिंग एवं सुरक्षा आवश्यकताऐं पूर्ण हों।

ii. गेटवे के साथ आई0एस0पी0, रेडियों पेजिंग और ऐंण्ड टू ऐंण्ड बैंड विंट्थ में एफ0डी0आई0 74% तक स्वीकृत है, जिसमें 49% के परे सरकारी अनुमोदन आवश्यक है। यह सेवाऐं भी लाइसेन्सिंग एवं सुरक्षा आवश्यकताऐं पूर्ण करने की शर्त पर हैं।

iii. टेलीकॉम सैक्टर में निम्नांकित गतिविधियों हेतु 100% एफ0डी0आई0 अनुमन्य हैः

(अ) इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रोवाइडर गेटवेज (सैटेलाइट एवं सबमैरीन के बिल्स दोनों के लिए)

(ब) इलेक्ट्रॉनिक मेल

(स) वॉइस मेल

18.5 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रकार

एफ0डी0आई0 को निम्नांकित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

1. वाहय एफ0डी0आई0

वाहय एफ0डी0आई0 को सरकार के द्वारा सभी प्रकार के सम्बन्धित जोखिमों के सापेक्ष सुरक्षा प्रदान की जाती है। इस प्रकार की एफ0डी0आई0 विभिन्न प्रकार के कर प्रोत्साहनों के साथ–साथ गैर–प्रोत्साहनों की शर्तो से सम्बन्धित होती है। स्थानीय फर्मो को स्वीकृत अनुदान एवं घरेलू उद्योगों को प्रदत्त जोखिम सुरक्षा वाहय एफ0डी0आई0 के मार्ग में बाधा बनती है, जिन्हें 'विदेश में प्रत्यक्ष निवेश' के रुप में भी जाना जाता है।

2. आन्तरिक एफ0डी0आई0ः

आन्तरिक एफ0डी0आई0 को विदेशी प्रत्यक्ष निवेशकर्ता, जो एक देश के निवासी हैं, के द्वारा दूसरे देश के निवासी उपक्रम में प्रदत्त पूँजी के रुप में परिभाषित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ कोकाकोला कम्पनी के द्वारा भारतीय कम्पनी में निवेश किया जाना। उदाहरणः अमेरिका की जनरल मोटर्स कम्पनी मलेशिया में एक फैक्ट्री स्थापित करती है। उन्हें कुछ पूँजी की आवश्यकता है। ऐसी पूँजी मलेशिया के लिए आन्तरिक एफ0डी0आई0 है।

3. समतल एफ0डी0आई0ः

समतल एफ0डी0आई0 तब उत्पन्न होती है जब एक फर्म अपनी गृह आधारित गतिविधियों को समान मूल्य श्रृंखला चरण पर एफ0डी0आई0 के माध्यम से आयोजक देश में भी दोहराती है। उदाहरणार्थ, फोर्ड कम्पनी अमेरिका में कारों की असेम्बली करती है। समतल एफ0डी0आई0 के द्वारा वह समान कार्य दूसरे आयोजक देशों जैसे यूनाइटेड किंग्डम (यू0 के0), फ्रास, ताइवान सऊदी अरब, और आस्ट्रेलिया में करती है। समतल एफ0डी0आई0 को आयोजक देश में, इस प्रकार फर्म के द्वारा समान उत्पाद को उत्पादित करने अथवा समान सेवा प्रदान करने के रुप में समझा जा सकता है, जो वह फर्म गृह देश में कर रही है।

4. रेखीय एफ0डी0आई0ः

रेखीय एफ0डी0आई0 तब घटित होती है, जब एफ0डी0आई0 के माध्यम से फर्म एक मूल्य श्रृंखला में ऊपर अथवा नीचे जाती है अर्थात जब फर्म एक आयोजक देश में रेखीय रुप में मूल्य संवर्द्धन गतिविधियों को सम्पन्न करती है। अन्य शब्दों में, एक रेखीय एफ0डी0आई0 तब उत्पन्न होती है, जब एक बहुराष्ट्रीय निगम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्पाद प्रक्रिया को फैला देता है और उसके द्वारा उत्पादन के प्रत्येक स्तर को उस देश में अवस्थित करता है, जहाँ इसे न्यूनतम लागत पर किया जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि प्यूजियट (फ्रांसीसी कार निर्माता) केवल कारों की असेम्बंली करते हैं और फ्रांस में कार उपकरण निर्माण नहीं करते किन्तु इसे वह यू0के0 में करते हैं, तब यह कहा जा सकता है कि प्यूजियट कार उपकरणों के व्यवसाय में एफ0डी0आई0 के माध्यम से प्रवेश करती है।

18.6 एफ0डी0आई0के निर्धारक

निर्धारकों को पोर्टर के अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता के 'डायमण्ड मॉडल' के द्वारा समझा जा सकता है, जिसमें चार मुख्य निर्धारकों की पहचान की गयी हैः

1. कारक दशाऐंः

एक देश का दूसरे देश के ऊपर प्रतियोगितात्मक लाभ हो सकता है। इसका कारण उत्पादन के कारक हो सकते हैं। संगठन अपने उत्पादन आधार को उन्हीं देशों में ले जायेंगे जहाँ मुख्य उत्पादन कारक, जो किसी उद्योग के लिए विशिष्ट हैं, मितव्ययी रुप में प्राप्त है। अमेरिका एवं यूरोप की तुलना में भारत के मानवीय संसाधन जिनकी मात्रा स्वयं सिद्ध है और वह मितव्ययी रुप में प्राप्त भी है, के कारण अनेक देशों ने यहाँ अपनी निर्माण इकाइयाँ स्थापित की है। भारत के पास एशिया में अंग्रेजी बोलने वाले लोगों की विशाल संख्या है, जो बहुराष्ट्रीय निगमों को भारत में बी0पी0ओ0 लाने का एक बड़ा कारण है।

2 मांग दशाऐं:

यदि मांग उच्चतर है, तो एफ0डी0आई0 भी उच्चतर होगी। चीन एवं भारत एफ0डी0आई0 के आकर्षण गन्तव्य हैं क्योंकि वहाँ कुल मांग अधिक है। पाब्लिक–प्राइवेट प्रतिभागिता (पी0पी0पी0) के रुप में वह विश्व के पांच सर्वश्रेष्ठ देशों में है। पी0एण्ड जी0 (प्राक्टर एण्ड गैम्बिल) जैसी कम्पनियाँ जो निम्न आय समूह के लिए उत्पादों के निरुपण में विश्वास नही रखती थी, अब निम्न आय वर्गो के लिए वस्तुऐं डिजायन करने हेतु शोध एवं विकास पर निवेश कर रही हैं।

3 सम्बन्धित एवं सामर्थक उद्योग:

बहुराष्ट्रीय निगम उन गंतव्यों में जाना चाहते हैं, जहाँ भली भांति विकसित समर्थक उद्योग (सहायक इकाइयाँ) किसी विशिष्ट उद्योग में उपलब्ध होती हैं। अवस्थापना स्थान चयन के लिए एक प्रमुख भूमिका का निर्वहन करता है। समस्त सुविधायें, जिनकी आवश्यकता होती है, को सावधानी पूर्वक ध्यान में रखा जाना चाहिए।

4. प्रतिस्पर्धा एवं फर्म की व्यूहनीति:

एक देश में प्रतिस्पर्धात्मक पर्यावरण भी एक मुख्य भूमिका का निर्वहन करता है। संगठन उन देशों में निवेश करना चाहते है जहाँ कटु प्रतिस्पर्धा नहीं है। पेप्सी ने भारत में तब निवेश किया, जब भारतीय नीतियाँ उदार नहीं थीं, जिससे कई भारतीय शर्तो को उसे मानना पड़ा। उसने ऐसा इसलिए किया कि उसे यहाँ अपने प्रतिद्वन्दी कोकाकोला से कटु प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ा।

18.7 भारत में एफ0डी0आई0

भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय का औद्योगिक नीति एवं प्रवर्तन विभाग संशोधित समेकित एफ0डी0आई0 नीति जो अप्रैल 5, 2013 से लागू हुई है, को लेकर आया है। पिछले वर्ष में प्रारम्भ किये गए कई परिवर्तनों को नयी नीति में समेकित किया गया है। वर्तमान एफ0डी0आई0 नीति में एक प्रमुख परिवर्तन फुटकर व्यापार मल्टी ब्रांड एफ0डी0आई के अनुमोदन के रुप में किया गया है, जहाँ रिटेल सैक्टर में 51% एफ0डी0आई0 सरकारी अनुमोदन से अनुमन्य होगी। किन्तु, इस नीति में औद्योगिक नीति एवं प्रवर्तन विभाग (डी0आई0पी0पी0) के लागू करने से पूर्व निम्नांकित शर्तो को पूरा किया जाना अनिवार्य किया गया है:

I. निवेशकर्ता के द्वारा लाया जाने वाला न्यूनतम निवेश 100 मिलियन अमेरिकी डॉलर होगा।

II. कुल एफ0डी0आई0का न्यूनतम 50% प्रथम एफ0डी0आई0 सौदे के तीन वर्ष के अन्दर पृष्ठगामी अवस्थापना में किया जाना होगा। 'पृष्ठगामी अवस्थापना' को ऐसे पूँजी खर्च के रुप में परिभाषित किया गया है जिसमें अन्तिम इकाइयों में निवेश को छोड़कर प्रसंस्करण निर्माण, वितरण, डिजायन सुधार, गुणवत्ता नियन्त्रण, पैकेजिंग, लॉजिस्टिक, भण्डारण, स्टोरेज, कृषि विवणन, अवस्थापना आदि सम्मिलित है। किन्तु, भूमि की लागत एवं किराये, यदि कोई हो, को पृष्ठगामी अवस्थापना में सम्मिलित नहीं किया जाएगा।

III. निर्मित माल/प्रसंस्करित उत्पाद के क्रय के द्वारा आपूर्ति का न्यूनतम 30%भारतीय लघु उद्योगों से क्रय किया जाना होगा, जिनका प्लाण्ट एवं मशीनरी में कुल निवेश 1 मिलियन अमेरिकी डालर से अधिक नहीं होगा।

IV. ताजे कृषि उत्पाद, पोल्ट्री, मत्स्य उत्पाद, एवं मीट उत्पाद को प्रतिबन्धित किया जा सकता हैं।

V. सरकार को कृषि उत्पादों की आपूर्ति का प्रथम अधिकार होगा।

VI. कम्पनी के द्वारा निवेश की मात्रा, पृष्ठगामी निवेश और भारतीय लघु उद्योगों से आपूर्ति के सम्बन्ध में स्व प्रमाणन किया जाना आवश्यक होगा।

VII. किराए पर वितरण केन्द्र उन्हीं शहरों में स्थापित किए जाऐंगे, जिनकी जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 10 लाख से अधिक है और यह इन शहरों के नगरपालिका/शहरी क्षेत्र सीमा के 10 कि0 मी0 क्षेत्र तक विस्तारित हो सकेगा। किन्तु, ऐसे राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों, जहाँ शहरों की जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 10लाख से अधिक नहीं है, वे अपनी इच्छा के अनुसार शहरों में अधिमान्यतः सबसे बड़े शहरों में, फुटकर विक्रय केन्द्र स्थापित कर सकेंगे तथा ऐसे शहरों की नगरपालिका/शहरी क्षेत्र सीमा के 10 कि0मी0 क्षेत्र को आच्छादित कर सकेंगे।

VIII. मल्टी ब्राण्ड रिटेल में एफ0डी0आई0 नीति एक सुविधा प्रदायक नीति है और समस्त राज्य सरकारों/केन्द्र शासित प्रदेशों को इस नीति के क्रियान्वयन में अपने स्वयं के निर्णय लेने की छूट होगी। वर्तमान में केवल 10 राज्य सरकारी एवं केन्द्र शासित प्रदेशों ने इस नीति को क्रियान्वित करने की सहमति दी है:

1. आन्ध्र प्रदेश
2. असम
3. दिल्ली
4. हरियाणा
5. जम्मू एवं कश्मीर
6. महाराष्ट्र
7. मनीपुर
8. राजस्थान
9. उत्तराखण्ड
10. दमन एवं दीव तथा दादरा एवं नागर हवेली

IX. उन कम्पनियों के लिए जो मल्टी ब्रण्ड फुटकर व्यापार में संलग्न हैं, एफ0डी0आई0 ई–कॉमर्स के द्वारा, फुटकर व्यापार में किसी भी रुप में अनुमन्य नहीं होगीं।

X. विदेशी निवेश प्रवर्तन बोर्ड (एफ0आई0पी0बी0) के द्वारा सरकारी अनुमोदन के लिए विचार करने से पूर्व, विदेशी निवेश के अनुमोदन के लिए आवेदन पत्र सर्वप्रथम औद्यौगिक नीति एवं प्रवर्तन विभाग को यह निर्धारित करने के लिए करना होगा कि प्रस्तावित निवेश पूर्व निर्धारित मार्ग निर्देशों को पूर्ण करता है।

इस नीति में एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन नागरिक उद्ययन सैक्टर में 49% एफ0डी0आई0 प्रारंभ करना है, जिसके द्वारा विदेशी एयरलाइनों को घरेलू कम्पनियों में 49% अंश धारित करने की अनुमति मिल गयी है। इसके द्वारा विदेशी एयरलाइन कम्पनियों को भारतीय कम्पनियों की पूँजी में सरकारी अनुमोदन मार्ग के माध्यम से निवेश के द्वारा अधिसूचित अथवा गैर अधिसूचित वायु यातायात सेवाऐं उनकी चुकता पूँजी के 49% तक की सीमा तक संचालित करना अनुमन्य किया गया है। किन्तु, ऐसे निवेश निम्नांकित शर्तो के अन्तर्गत होंगेः

(i) यह सरकारी अनुमोदन मार्ग के अन्तर्गत होंगे।

(ii) 49% एफ0डी0आई0 की सीमा में एफ0डी0आई0 एवं एफ0आई0आई0 निवेश सम्मिलित होंगे।

(iii) प्रस्तावित निवेशों को 'सेबी' के सम्बन्धित नियमनों जिसमें पूँजी निर्गमन एवं प्रकटीकरण आवश्यकताऐं (आई0सी0डी0आर0) नियमन, अंशों का अधिग्रहण एव सविलयन (एस0ए0एस0टी0) नियमन सम्मिलित है, का अनुपालन करना होगा।

(iv) सूचीकृत संचालक की अनुमति उस कम्पनी को स्वीकृत की जाएगी जोः

   (अ) रजिस्टर्ड हो एवं जिसका व्यवसाय का मुख्य स्थान भारत में हो;

   (ब) जिसके अध्यक्ष एवं न्यूनतम 2/3संचालक भारत के नागरिक हो; और

   (स) जिसका महत्वपूर्ण स्वामित्व एवं प्रभावशाली नियंत्रण भारतीय नागरिकों में निहित हो।

(v) ऐसे निवेश के फलस्वरुप जो समस्त विदेशी नागरिक भारतीय सूचीकृत/गैर सूचीकृत वायु यातायात सेवाओं से जुड़ना चाहते हैं, उन्हें निवेश लगाने से पूर्व सुरक्षा की दृष्टि से अनापत्ति प्राप्त करनी होगी।

(vii) ऐसे निवेश के फलस्वरुप आयात किए जा सकने वाले समस्त तकनीकी उपकरणों हेतु नागरिक उड्डयन मन्त्रालय के संबंधित प्राधिकारी से अनापत्ति लेने की आवश्यकता होगी। पाकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने तथा दोनों देशो के बीच व्यापार को बढ़ाने के लिए, सरकार ने वर्तमान नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है, जिसके फलस्वरुप पाकिस्तानी नागरिकों एवं कम्पनियों को देश में निवेश करने के लिए सरकारी अनुमोदन के मार्ग से रक्षा, अन्तरिक्ष, आणविक ऊर्जा एवं विदेशी निवेश हेतु प्रतिबन्धित सैक्टरों/गतिविधियों को छोड़कर अनुमति प्रदान की गयी है।

2013 की एफ0डी0आई0 नीति में एकल ब्राण्ड रिटेलिंग एफ0डी0आई0 निवेश में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। 2012 की एफ0डी0आई0 नीति के अनुसार निवेशकर्ता को ब्राण्ड का स्वामी होना आवश्यक था। किन्तु, 2013 की नीति के अनुसार, केवल एक अनिवासी संस्था चाहे ब्राण्ड की स्वामी हो या नहीं, को एकल ब्राण्ड रिटेलिंग (फुटकर व्यापार) में देश में निवेश की अनुमति दी गयी है। किन्तु यह विशिष्ट ब्राण्ड में, जिसके लिए अनुमोदन किया गया है, में ब्राण्ड स्वामी के साथ एक विधिक समझौते के अन्तर्गत अनुमन्य होगी। साथ ही नयी नीति में आपूर्ति की शर्तो में भी परिवर्तन किया गया है, जिसके अनुसार अब 51% से परे वाली एफ0डी0आई0 में सभी सैक्टरों में 30% मूल्य के माल का क्रय भारत में अधिमान्यतः सूक्ष्म, लघु और मध्यम उपक्रमों (एम0एस0एम0ई0), लघु एवं कुटीर उद्योगों, चित्रकारों एवं दस्तकारों से किया जाना होगा। प्रथम दृष्टि में, आपूर्ति शर्तो का अनुपालन एफ0डी0आई0 की प्रथम किस्त के प्राप्त होने के वर्ष में 1 अप्रैल से प्रारम्भ कर पांच वर्षो के अन्तर्गत क्रय किए गए माल के कुल मूल्य के औसत पर होगा। इसके पश्चात, इसका अनुपालन वार्षिक आधार पर होगा, उन कम्पनियों के लिए जो पहले से ही एकल ब्राण्ड फुटकर व्यापार में संलग्न हैं, मल्टी ब्राण्ड फुटकर व्यापार के तहत, फुटकर व्यापार में भी ई—कामर्स माध्यमों से व्यापार की अनुमति नहीं होगी। सम्पत्ति पुर्नगठन कम्पनियों (ए0आर0सी0) के सैक्टर में;ए0आर0सी0 में एफ0डी0आई0 को सरकारी अनुमोदन मार्ग से 49% से बढ़ाकर 74% किया गया है। यह कदम इस क्षेत्र में अधिक विदेशी विशेषज्ञता को लाने के इरादे से किया गया है। साथ ही, ए0आर0सी0 की चुकता पूँजी में व्यक्तिगत विदेशी संस्थानात्मक निवेशकों (एफ0आई0आई0) का अंशधारण 10% से अधिक न होने की शर्त भी लगायी गयी है।

2013 की नीति में, सरकार ने यह भी निश्चित किया है, कि 49% (एफ0डी0आई0 और एफ0आई0आई0) केन्द्रीय विद्युत नियामक आयोग (ऊर्जा बाजार) नियमन, 2010 के अन्तर्गत सरकार के अनुमोदन से ऊर्जा विनिमय में अनुमन्य होगी। ब्रॉडकास्टिंग सैक्टर में, 2013 की एफ0डी0आई0 नीति ने विभिन्न सेवाओं, जैसे डी0टी0एच0 सेवाओं, केबिल नैटवर्क (मल्टी सिस्टम आपरेटर्स) (एम0सी0ओ0) जो राष्ट्रीय, प्रादेशिक या जिलास्तर पर संचालित हों तथा डिजिटाइजेशन एवं पहुँच योग्यता के प्रति अपग्रेडेशन नैटवर्क में एफ0डी0आई0 की सीमा को 74% तक बढ़ा दिया हैं। 49% तक निवेश स्वचालित मार्ग से अनुमन्य होगा जबकि 49% के परे निवेश हेतु सरकारी अनुमोदन आवश्यक होगा। ब्राडकास्टिंग सेवाओं में विदेशी निवेश के सम्बन्ध में, सरकार ने कई सुरक्षा शर्ते एवं आवश्यकताऐं लागू की हैः

i. कम्पनी के मुख्य कार्यकारियों हेतु अनिवार्य प्रावधान
ii. कार्मिकों की सुरक्षा अनापत्ति
iii. अवस्थापना, नैटवर्क और साफ्टवेयर संबंधित प्रावधान
iv. सूचनाओं का अनुश्रवण, निरीक्षण एवं प्रस्तुति
v. राष्ट्रीय सुरक्षा शर्ते

2012 की एफ0डी0आई0 नीति ने यह प्रावधानित किया है कि 100% गैर बैकिंग वित्तीय कम्पनियाँ (एन बी0एफ0सी0) 50 मिलियन अमेरिकी डॉलर की

न्यूनतम पूँजी के साथ परिचालक सहायक कम्पनियों की संख्या और अतिरिक्त पूँजी लाने की शर्त के प्रतिबन्धों के बिना विशिष्ट एन0बी0एफ0सी0 गतिविधियाँ स्थापित कर सकती है। किन्तु, यह नीति, वर्ष 2013 की नीति में परिवर्तित की गयी है जिसके अनुसार 75% से 100% तक विदेशी निवेश और 50 मिलियन अमेरिकी डॉलर के पूँजी के द्वारा एन0बी0एफ0सी0 गतिविधियों के लिए परिचालक सहायिकाओं की संख्या एवं अतिरिक्त पूँजी के बिना अपने निचले स्तर पर सहायिकाऐं स्थापित की जा सकती है। भारत सरकार ने अनिवासी भारतीयों से निवेश आमन्त्रित करने हेतु प्रावधान निर्मित कर प्रयास किया है जहाँ भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अनुपालन के साथ यदि कोई एन0आर0आई0 भारतीय कम्पनी में निवेश हेतु अंशों के निर्गमन का प्रावधान पार्षद सीमा नियम में करती है,तो ऐसा निवेश एफ0डी0आई0 योजना में निवेश की योग्यता की शर्तो के अनुपालन की शर्त पर अंशों के अंकित मूल्य पर किया जा सकता है। वर्ष 2012 की एफ0डी0आई0नीति ने एक एफ0डी0आई0 वाली कम्पनी को सीमित दायित्व वाली साझेदारी (एल0एल0पी0) में परिवर्तित करने हेतु 09 अनिवार्य शर्ते सूचीकृत की है, जिसमें निम्नांकित वाक्य भी सन्निहित है।

एल0एल0पी0 में विदेशी पूँजी प्रतिभागित केवल सामान्य बैंकिंग संरचना या व्यक्ति विशेष के एन0आर0ई0/एफ0सी0एन0आर0 जिसे अधिकृत डीलर/बैंक में रखा गया है, को डेबिट करके प्राप्त आन्तरिक धन–प्रेषण के द्वारा नकद प्राप्ति के माध्यम से ही अनुमन्य है।

किन्तु, 2013 की एफ0डी0आई0 नीति में उपर्युक्त वाक्य को एक कम्पनी की दशा में वैकल्पिक बना दिया गया है जिससे अनिवार्य शर्तो की संख्या केवल आठ रह गयी है।

18.8 भारत में एफ0डी0आई0 के लाभ

भारत में एफ0डी0आई0 के निम्नांकित लाभ हैः

1. अर्थव्यवस्था में विकासः

फुटकर व्यापार क्षेत्र, में विदेशी कम्पनियों के प्रवेश के द्वारा नयी अवस्थापना निर्मित होगी जिससे रियट ऍस्टेट सैक्टर विकसित होगा। फलस्वरुप, बैंकिंग सैक्टर का भी विकास होगा क्योंकि नवीन अवस्थापना को निर्मित करने के लिए वित्त बैंको द्वारा उपलब्ध होगा।

2. रोजगार अवसरः

यह सरकार का अनुमान है कि फुटकर एवं रियल ऍस्टेट सैक्टर में 10 मिलियन नौकरियाँ अनुमानतः सृजित होगी।

3. किसानों को लाभः

फुटकर व्यापार के व्यवसाय में निर्माता या उत्पादन तथा उपभोक्ता के बीच व्यवहार में मध्यस्थों का वर्चस्व रहता है। इस प्रकार कृषक एवं निर्माता अपना वास्तविक लाभांश खो देते हैं क्योंकि अधिकांश अंश मध्यस्थों के द्वारा ले लिया जाता है।इस समस्या का समाधान एफ0डी0आई0 से हो सकता है क्योकि कृषकों को कृषि ठेके पर प्राप्त हो सकती है, जिससे वे एक संगठित फुटकर व्यापारी को मांग के आधार पर आपूर्ति करने योग्य हो सकते हैं और उसके लिए बेहतर

भुगतान प्राप्त कर सकते हैं, ताकि उन्हें क्रेताओं को खोजने की आवश्यकता हेतु भागना न पड़े।

4. उपभोक्ताओं को लाभः

उपभोक्ता को विविध प्रकार की गुणवत्तापूर्ण वस्तुऐं बाजार की अपेक्षा कम दाम पर प्राप्त हो जाती हैं और वे एक ही स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय ब्राण्ड की विभिन्न वस्तुओं में से चयन में सक्षम होते हैं।

5. अवस्थापना का अभावः

यह भारत में वर्षो तक फुटकर व्यापार की श्रृखला में एक सामान्य मुद्दा रहा है जिससे सक्षमता विहीन बाजार संरचना की प्रक्रिया उत्पन्न हुई है। उदाहरणार्थ, भारत के फलों एवं सब्जियों का सबसे बड़ा उत्पादन होने के बावजूद, नाशवान प्रकृति की इन वस्तुओंके विक्रय पर शीतभण्डारण सुविधाओं के अभाव का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है और इन्हें भारी हानि उठानी पड़ी हैं। एफ0डी0आई0 को अनुमति प्रदान करने से भारत में लॉजिस्टिक्स और स्टोरेज तकनीकी बेहतर होंगी, जिससे क्षति से बचाव हो सकेगा। एफ0डी0आई0 के कारण भारत में विदेशी कम्पनियाँ 100 मिलियन डॉलर से अधिक निवेश करेंगी जिससे अवस्थापना सुविधाओं, रेफ्रीजरेशन तकनीकी तथा परिवहन क्षेत्र का द्रुत गति से विकास होगा।

6. नवीन तकनीकी की उपलब्धताः

एफ0डी0आई0 विदेशों से कौशल एवं तकनीकी हस्तांतरण को अनुमति देती है और घरेलू देश की अवस्थापना का विकास करती है। अन्य देशों को प्रबन्धकीय योग्यता का बेहतर प्रवाह होता है। घरेलू उपभोक्ता समस्त कीमत बिन्दुओं पर विभिन्न प्रकार के गुणवत्ता पूर्ण उत्पादों को प्राप्त कर सकते हैं।

7. दीर्घकालीन रोकड़ तरलताः

एफ0डी0आई0संगठित फुटकर व्यापार श्रृंखला के स्टोर्स को स्थापित करने के लिए आवश्यक पूँजी उपलब्ध कराती है। यह दीर्घकालीन निवेश ही है जिसके कारण घरेलू कम्पनी में भौतिक पूँजी सरलता से तरलता में परिवर्तित नहीं हो सकती है।

8. देश के आर्थिक विकास हेतु सकारात्मकः

एफ0डी0आई0 वैश्विक निवेशकों में प्रतिस्पर्धा का सृजन करती है जो अन्ततः बेहतर एवं निम्न कीमतों की गारण्टी देती है, जिससे समाज के सभी वर्गो को लाभ होता है। बाजार संवृद्धि एवं विस्तार को बढ़ावा मिलता है। इससे फुटकर रोजगार में वृद्धि होती है। इससे बेहतर प्रबन्धकीय तकनीकी एवं सफलता सुनिश्चित होती है। अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के द्वारा उच्चतर मजदूरी भुगतान की जाती है। शहरी उपभोक्ताओं को अन्तर्राष्ट्रीय जीवन स्तर के अवसर उपलब्ध होते हैं।

9. सस्ती उत्पादन सुविधाऐंः

एफ0डी0 आई0 उत्पादन चक्र में परिचालन एवं वितरण को सुनिश्चित करती है। परिचालन की मितव्ययिताओं, के कारण उत्पादन सुविधाऐं सस्ती दरों पर उपलब्ध होंगी। जिससे अन्तिम उपभोक्ता को उचित एवं सस्ती कीमतों पर विभिन्न उत्पाद उपलब्ध हो सकते हैं।

10. फ्रेंचाइजिंग में नए अवसरों एवं संभावनाओं का सुलभ होनाः

एफ0डी0आई0 में प्रतिबन्ध को व्यापार प्रतिबन्धों की भांति माना जाता है क्योकि वह विदेशी फर्मो को प्रत्यक्ष बाजार पँहुच में बाधा पहुँचाते हैं। फुटकर व्यापार के विशाल व्यवसायियों के द्वारा विदेशी बाजारों में पहुँच बनाने के लिए उपलब्ध विकल्पों की तलाश रहती है, जिसके लिए वे फ्रेंचाइजों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार, ऐसे देश जो फुटकर व्यवसाय के विकास के लिए वचनबद्व बाजार संभाव्यताऐं प्रस्तुत करते हैं, फ्रेंचाइजिंग सैक्टर के विकास के लिए भी अवसर उपलब्ध कराते हैं।

11. भारत सरकार द्वारा लगायी गयी शर्तो के अनुसार, विदेशी कम्पनियों को न्यूनतम 30% माल भारतीय सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों से आपूर्ति करानी होगी। इससे घरेलू निर्माण क्रिया प्रोत्साहित होगी और रोजगार सृजनपर बड़ा प्रभाव पड़ेगा तथा तकनीकी में सुधार एवं आय सृजन होगा।

12. चीन, इण्डोनेशिया और थाइलैंण्ड जैसें देशों में फुटकर व्यवसाय में 100% एफ0डी0आई0 ळें रिपोर्टो से पता चलता है कि इन देशों में कृषि प्रसंस्करण उद्योग, रेफ्रीजरेशन, तकनीकी एवं अवस्थापना में उच्च विकास दर का अनुभव किया गया है।

13. विदेशी राष्ट्रों को भी भारतीय बाजार में आपूर्ति श्रृखला के सृजन का अवसर प्राप्त होगा।इससे खाद्य सामग्री की बर्बादी एवं नाशवान वस्तुओं की बर्बादी से बचा जा सकेगा।

18.9 भारत में एफ0डी0आई0 के दोष

भारत में एफ0डी0आई0 के दोष निम्नवत हैः

1. संगठित व्यवसायियों (जैसे किराना दुकान दारों) पर प्रभावः

भारत में वर्तमान में फुटकर व्यापार का कुल आकार रु. 5,88,000 करोड़ है, जिसका लगभग रु. 5,83,000 करोड़ का अंश असंगठित है और मात्र रु. 5,000 करोड़ रु. का बाजार ही संगठित भाग में आता है। असंगठित क्षेत्र 3.95 करोड़ लोगों को दूसरे सर्वाधिक विशाल रोजगार अवसर उपलब्ध कराता है। (प्रथम स्थान कृषि सैक्टर का है)। यह तर्क किया गया है कि फुटकर व्यापार क्षेत्र को खोल देने से असंगठित क्षेत्र की बिक्री प्रभावित होगी, जिससे इसके द्वारा सृजित रोजगार भी प्रभावित होगा। यही कारण है कि मध्यस्थों को कम करने से संगठित फुटकर व्यवसाय में कुछ नौकरियों का विस्थापन होगा।

2. सीमित रोजगार सृजनः

यह कहा जाता है कि एफ0डी0आई0 रोजगार अवसर उपलब्ध करा सकती है किन्तु यह तर्क किया जाता है कि यह अर्द्ध–साक्षर लोगों को रोजगार उपलब्ध नहीं करा सकता हैं। इस तर्क को अधिक महत्व महत्व प्राप्त होता है क्योंकि भारत में वर्तमान में अधिकांशतः अर्द्ध–साक्षरों की बहुत बड़ी संख्या हैं।

3. कीमतों के कम हो जाने की आशकाः

यह भय भी है कि रिटेल एफ0डी0आई0 को अनुमति देने से कीमतें कम हो जाऐंगी, क्योकि एफ0डी0आई0 अच्छी तकनीकों एवं आपूर्ति श्रृंखला लायेगी। यदि कीमतें कम हो जायेंगी, तो असंगठित क्षेत्रों के व्यवसायियों का लाभ–मार्जिन भी कम होगा। इससे असंगठित बाजार प्रभावित होगा और फलस्वरुप असंगठित क्षेत्र के द्वारा प्रदत्त रोजगार अवसरों पर भी प्रभाव पड़ेगा।

4. रिटेल एफ0डी0आई0 देश के आय के भाग को विदेशी राष्ट्रों की ओर प्रवाहित करेगी, जो भारतीय अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डालेगा।

5. यह भय है कि घरेलू संगठित रिटेल सैक्टर इतना प्रतिस्पर्धी नहीं है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिभागियों को टक्कर दे सके जिससे उनके बाजार अंश की हानि होगी तथा उनकी इकाइयाँ बन्द भी हो सकती हैं।

6. लघु व्यवसायियों एव अन्य क्षेत्रों के कामगारों को अपनी नौकरी की हानि उठानी पड़ सकती है क्योंकि अनेक लोग असंगठित रिटेल व्यवसाय में संलग्न हैं।

7. छोटे फुटकर व्यवसायी एवं अन्य किराना स्टोर बन्द हो सकते हैं।

8. सुपरमार्केट भारतीय बाजार में एकाधिकार स्थापित कर लेंगे। सुपरमार्केटों के बेहतर सम्बन्धों एवं उच्चतर पहुँच के कारण वह माल को सस्ते में क्रय कर सकेंगे और इस प्रकार उपभोक्ताओं को भी कम कीमतों पर विक्रय कर सकेगें। इससें अनेक छोटे फुटकर व्यवसाय बन्द हो सकते हैं।

9. यद्यपि सरकार ने यह प्रावधान किया है कि 30% आपूर्ति भारतीय स्रोतो से की जाऐगी, किन्तु यह बाद के वर्षो में विलीन हो सकता है। सस्ते देशों से शेष 70% आपूर्ति के कारण लोग वहाँ की ओर भागेंगे तथा भारतीय लघु उद्योगों से 30% आपूर्ति, सस्ती कीमत वाले चीनीमाल से प्रतियोगिता में अयोग्य होने पर, स्वयं अपना अस्तित्व खो देगी।

18.10 भारत में एफ0आई0आई0

विदेशी संस्थानात्मक निवेशकर्ता (एफ0आई0आई0) का आशय "ऐसी संस्था जो भारत के बाहर स्थापित या निगमित है जो भारत में प्रतिभूतियों, रियल सम्पत्ति (रियल ऍस्टेट) तथा अन्य निवेश सम्पत्तियों में निवेश करने का प्रस्ताव करती है" से है। भारत में, विदेशी संस्थानात्मक निवेश का आशय भारतीय वित्तीय बाजारों में बाहरी कम्पनियों के द्वारा निवेश से है, भारत ने विदेशी संस्थानात्मक निवेशकों हेतु अपने स्टॉफ बाजारों को सितम्बर, 1992 से खोल दिया है। वर्ष 1993 से, भारत विदेशियों से पोर्टफोलियो विनियोग समता पूँजी में एफ0आई0आई0 के प्रारुप में प्राप्त कर रहा है। भारतीय समता बाजार में व्यापार करने के लिए समस्त विदेशी संस्थानात्मक निवेशकों (एफ0आई0आई0) को भारत के प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी), में रजिस्टर करना होता है, जो भारत में प्रतिभूति बाजार का नियामक है। कोई भी, जो स्वामीगत कोषों में विनियोग करना प्रस्तावित करता है या व्यापक आधार वाले कोषों की ओर से या विदेशी कम्पनियों और व्यक्तियों की ओर से निवेश करना चाहता है और निम्नांकित वर्गो में से किसी भी वर्ग में आता है, वह एफ0आई0आई0 की तरह पंजीकृत हो सकता है:

- पेन्शनफण्ड
- पारस्परिक (म्युचुअल) फण्ड
- विनियोग फण्ड
- बीमा या पुनर्बीमा कम्पनियाँ
- एण्डोमैन्ट फण्ड
- विश्वविद्यालय फण्ड

- फाउन्डेशन या पुण्यार्थ ट्रस्ट यस पुण्यार्थ समितियाँ , जो अपने स्वयं की ओर से निवेश प्रस्ताव करती हैं।
- सम्पत्ति प्रबन्धन कम्पनियाँ
- नामांकित कम्पनियाँ
- संस्थानात्मक पोर्टफोलियों कम्पनियाँ/प्रबन्धक
- ट्रस्टी
- 'पॉवर ऑफ एटॉर्नी' के धारक
- बैंक

फिट्च के अनुसार, जो कि एक रेटिंग एजेन्सी है, विदेशी निवेशक भारत की विकास सम्भावनाओं के विषय में अत्यधिक आत्मविश्वास रखते हैं। साथ ही उनका आगे कहना है कि 2014 के सामान्य चुनावों से अधिकांश नए निवेश आने आरम्भ हुए। अनिश्चततापूर्ण वैश्विक वित्तीय परिदृश्य के बावजूद विदेशी संस्थानात्मक निवेशकों के द्वारा भारतीय पूँजी बाजारों में बड़ा दॉव लगा रहे हैं, जिसमें उन्होंने 1912 में 25 विलियन अमेरिका डॉलरों का विशाल निवेश किया है। विगत 15 वर्षो में, भारतीय बाजारों ने समस्त उदीयमान बाजारों को एफ0आई0आई0 प्रवाहों का लगभग पांचवा भाग प्राप्त किया जबकि देश ने जापान चीन और मलेशिया को छोड़कर एशिया में एफ0आई0आई0 समता प्रवाहों का आधा, वर्ष 2012 में आकर्षित किया है।

बाजार विशेषज्ञ यह विश्वास करते है कि सरकार के द्वारा हाल ही में किए गए नवीन सुधार के प्रयासों का अन्य देशों में अभाव है और कुल मिलाकर निवेशकों में सकारात्मक भाव ने भारत को एशियन पीयर्स (एशिया के अग्रणी देशों) के सापेक्ष उच्चतर विदेशी प्रवाहों को आकृष्ट करने में सफलता दिलायी है।

- मार्च 31,2013 को समाप्त वित्तीय वर्ष के दौरान, बाजार नियामक सेबी के पास उपलब्ध नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, एफ0आई0आई0 ने भारतीय स्टॉक बाजार में 26 मिलियन अमेरिकी डॉलर निवेश किए हैं। यह धनराशि देश में विदेशी संस्थाओं के द्वारा निवेश प्रारम्भ करने के समय से अब तक किया गया सबसे बड़ा निवेश हैं।
- वित्तीय वर्ष 2012–13 में भारत में पंजीकृत एफ0आई0आई0 की संख्या 1,757 थी।
- भारतीय रिंजर्व बैंक द्वारा निर्गमित किए गए एक और कथन में यह प्रकट किया गया है कि विदेशी विनिमय संचित कोष 1.65 मिलियन अमेरिका डॉलरों से बढ़कर मार्च 22,2013 को समाप्त सप्ताह में 293.37 मिलियन अमेरिकी डॉलर हो गए।विदेशी करेन्सी संचय (एफ0सी0ए0) जो फॉरेक्स संचयों का एक प्रधान तत्व है, 260.41 मिलियन यू0एस0 डॉलर थे जबकि स्वर्ण संचय 26.292 मिलियन डॉलर थे।

एफ0आई0आई0–मुख्य विनियोग एवं विकास

अमेरिका स्थित दानदाता निवेश कोष फर्म 'ओमडियार नेटवर्क' भारत की लाभ और गैर–लाभ कम्पनियों में 100–200 मिलियन यू0एस0 डॉलर निवेश पर विचार कर रहा है। फर्म की स्थापना ई–बे फाउन्डर पियरी ओमड्रयार और उनकी

पत्नी पॉम ने की। फर्म ने वर्ष 2010 तक पहले ही देश की 35 कम्पनियों में 113 मिलियन अमेरिकी डॉलर निवेश किए हैं। ओमड्ड्यार के निवेश मुख्यतः उपभोक्ता इन्टरनैट एवं मोबाइल, उद्यमिता, वित्तीय समावेशीकरण, सरकारी पारदर्शिता और सम्पत्ति अधिकार में केन्द्रित है। फर्म निवेश अवसरों की पहचान उन फर्मो में कर रही है, जहाँ सामाजिक प्रभाव एकीकरण मापदण्ड है।

- भारत अन्तर्राष्ट्रीय प्रमुख निवेशकों के लिए विशेषतः स्वीडिश फर्मो के लिए लगातार एक उभरता हुआ लाभपूर्ण निवेश गन्तव्य बनता जा रहा है। स्वीडिश निवेशकों के आधे से अधिक वित्तीय वर्ष 2014 में भारत में निवेश को बढ़ाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।यह बात स्वीडिश चैम्बर ऑफ कामर्स के द्वारा किये गए एक सर्वेक्षण में कही गयी। स्वीडिश फुटकर व्यापारी जैसे आई0ई0के0ए0 और एच0एण्ड एम0 भारत में स्टोर्स स्थापित करने की योजना बना रहे हैं। भारत में प्रमुख स्वीडिश कम्पनियों में परिवहन में प्रमुख व्यवसायी वॉल्वो, विशाल फार्मा कम्पनी एस्ट्रा जेनेका, टेलाकॉम फर्म एरिकसन तथा औद्यौगिक उपकरण निर्माता एटलस कोप्को, सैन्डविस और एस0के0एफ0 है।
- भारत में स्वीडन की कम्पनियों की संख्या 14.5% से 2012 में 15.8% हो गयी, जो कि पूर्व वर्ष में 15.3% थी और यह संख्या 2013 में और बढ़ने की संभावना है। साथ ही यू0एस0 साहस पूँजी निवेशक कैनन पार्टनर्स की 2013–17 में भारत में 100 मिलियन यू0एस0 डॉलर निवेश करने की योजना है।
- कैनन वैश्विक रुप में 3.5 मिलियन यू0एस0डॉलर की संपत्तियों का प्रबन्धन करता है और आज तक उसके द्वारा 150 मिलियन यू0एस0 डॉलरों का विनियोग किया गया है। फर्म उपभोक्ता इन्टरनैट, उद्यम, मोबाइल, विश्लेषणकर्ता एवं क्लाउड एप्लीकेशन एवं विशाल आंकड़ो पर केन्द्रित तकनीकी कम्पनियों में निवेश करने की ओर देख रही हैं।

18.11 एफ0डी0आई0 और एफ0आई0आई0 में अन्तर

एफ0डी0आई0 और एफ0आई0आई0 दोनों विदेशी राष्ट्रो में निवेश से सम्बन्धित हैं। 2013–14 के बजट मे, श्री चिदम्बरम ने यह कहा था कि एक विशिष्ट स्टॉक में 10% से कम का हित रखने वाला विदेशी निवेशक ही एफ0आई0आई0 माना जाएगा और 10% से अधिक हित संधारण एफ0डी0आई0 माना जाएगा। चिदम्बरम ने अपने बजट भाषण में कहा था–"इस भ्रम को दूर करने के लिए कि एफ0डी0आई0 क्या है और एफ0आई0आई0 क्या है, मै अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति को अपनाने का प्रस्ताव करता हूँ और एक विस्तृत सिद्धान्त रखता हूँ कि जहाँ एक कम्पनी में एक निवेशक का हित 10% या इससे कम है, उसे एफ0आई0आई0 माना जाय।" एफ0डी0आई0 से आशय एक कम्पनी अथवा एक देश में अवस्थित संस्था के द्वारा किये गये निवेश से है। निवेशकर्ता कम्पनी अनेक तरीकों से अपने विदेशी निवेश कर सकती है–या तो सहायिका स्थापित करके या सहायक कम्पनी बनाकर, विदेशी कम्पनी के अंशों के अधिग्रहण के द्वारा या संविलयन या संयुक्त उपक्रम के माध्यम से, एफ0डी0आई0 का एक उदाहरण भारतीय कम्पनी में अमेरिकन कम्पनी के द्वारा बहुसंख्यक हित प्राप्त करना हो सकता हैं। एफ0आई0आई0 से आशय भारत के वित्तीय बाजारों में बाहरी कम्पनियों के द्वारा निवेश से है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानात्मक निवेशकों को बाजार में

प्रतिभाग हेतु प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी)में पंजीकरण कराना होता है। एफ0आई0आई0 से सम्बन्धित एक प्रमुख बाजार से सम्बन्धित एक प्रमुख बाजार नियमन भारतीय कम्पनियों में एफ0आई0आई0 स्वामित्व पर सीमा लगाने से सम्बन्धित है।

निम्नांकित बिन्दु उपर्युक्त दोनों में अन्तरों से सम्बन्धित हैः

- एफ0डी0आई0 को एक अनिवासी के द्वारा घरेलू कम्पनी की समता पूँजी में निवेश, इस उद्देश्य से कि कम्पनी के प्रबन्धन में प्रतिभागिता की जा सके, के रुप में परिभाषित किया जा सकता है, जबकि एफ0आई0आई0 को अनिवासी के द्वारा घरेलू कम्पनी की समता पूँजी में बिना उसके प्रबंधन में प्रतिभाग के इरादे से किए गए निवेश के रुप में परिभाषित किया जा सकता है।
- एफ0डी0आई0 सामान्यतया नवीन तकनीकी, वित्तीयन संरचना नवीन बाजार या नयी प्रक्रिया से सम्बन्धित है जबकि एफ0आई0आई0 निवेशक एवं लक्षित कम्पनी के बीच किसी भी प्रबन्धकीय अन्तर्किया से सम्बन्धित नहीं होती है।
- एफ0डी0आई0 सामान्यतया लक्षित कम्पनी में दीर्घकालीन संलग्नता हेतु अपेक्षित होती है। दूसरी ओर, एफ0आई0आई0 सामान्यतया अल्पकालीन निवेश की तरह अपेक्षित होता है।
- एफ0डी0आई0 में निवेश का इरादा दीर्घकालीन विकास प्राप्त करना है जबकि एफ0आई0आई0 का इरादा तात्कालिक शीघ्र पूँजी लाभ होते है ।
- एफ0डी0आई0 सामान्यतया नए अंशों को निजी स्वामित्व में देने या विद्यमान प्रवर्तकों से प्रत्यक्ष क्रय के माध्यम से घटित होता है जबकि विनियोक्ता एवं कम्पनी के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता और यह द्वितीयक बाजार प्रक्रिया या व्यवहारों के माध्यम से किया जाता है।
- एफ0डी0आई0 से आर्थिक विकास एवं रोजगार उत्पन्न होता है और इस कारण इसे सभी सरकारों के द्वारा वांछनीय माना जाता है। दूसरी ओर, एफ0आई0आई0 मूलभूत रुप में घरेलू निवेश को विदेशी निवेश से प्रतिस्थापित करता है। यद्यपि यह अर्थव्यवस्था में उपलब्ध पूँजी में वृद्धि करने में सहायता करता है, किन्तु इसका आर्थिक विकास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता हैं।
- एफ0डी0आई0 की निकासी अथवा वापसी कठिन एवं समय लेने वाली है जबकि एफ0आई0आई0 सरल निकासी संभावना के कारण 'हॉट मनी' बन जाती है, जिससे यह घरेलू बाजार एवं विनिमय दर को अस्थिर कर सकती है और इस प्रकार घरेलू परिचालन के लिए हानियाँ उत्पन्न कर सकती है। इस प्रभाव के कारण अधिकांश देश इस प्रकार के कोषों के प्रवाह को विनिमय नियंत्रण नियमनों के द्वारा नियंत्रित एवं सीमित करते है।
- एफ0डी0आई0 कम्पनी के संसाधनों में वृद्धि करती है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक चिट्ठे पर होता है।यह बाजार मूल्य को प्रभावित अथवा प्रभावित नहीं भी कर सकता है।दूसरी ओर, एफ0आई0आई0 का कम्पनी के लिए उपलब्ध संसाधनों से कोई सरोकार नहीं है और इस प्रकार इसका आर्थिक चिट्ठे पर भी प्रभाव नहीं होता है। किन्तु द्वितीयक बाजार में किए गये सौदों के कारण इसका कम्पनी के बाजार मूल्य पर तत्काल प्रभाव पड़ता है।

18.12 सारांश

एफ0डी0आई0 को एक कम्पनी के एक निवेशकर्ता के द्वारा सम्पत्ति को प्रबन्ध करने के इरादे से दूसरे देश में उस सम्पत्ति को प्राप्त करने हेतु निवेश के रुप में परिभाषित किया जा सकता है। विदेशी विनियोग एवं तकनीकी एक राष्ट्र के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है और कई देशों के द्वारा इस साधन का विदोहन किया गया है। वैश्वीकरण के इस युग में संगठनों के पास उनकी व्यावसायिक गतिविधियों के स्थान निर्धारण के व्यापक विकल्प होते हैं। सही अर्थो में, एफ0डी0आई0 को 1991 में सर्वप्रथम अनुमति दी गयी जब भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकृत किया गया। भारत ने विदेश प्रत्यक्ष निवेश को अर्थव्यवस्था के लगभग समस्त क्षेत्रों में, केवल व्यूहनीतिक क्षेत्रों जैसे रक्षा, रेलवे परिवहन एवं आणविक ऊर्जा को छोड़कर,आमन्त्रित किया है। 'ग्लोबल वैल्यू चेन्स' के अनुसार भारत में एफ0डी0आई0 का प्रवाह 2012 में 29% घटकर 26 मिलियन डॉलर रह गया। सेवा क्षेत्र में एफ0डी0आई0 प्रवाह बढ़ने की संभावना है और निर्माणी क्षेत्र में भी इसके बढ़ने की अपेक्षा है क्योंकि जापान एवं कोरिया सहित कई देश दिल्ली मुम्बई औद्यौगिक कौरीडोर में देश एवं उद्योग विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना कर रहे हैं।एक देश के लिए एफ0डी0आई0 आर्थिक रुप में ही नहीं, बल्कि सामाजिक रुप में प्रभाव डालती है। यह स्थानीय उद्यमकर्ता के लिए बड़े अवसरों का सृजन करती है। एफ0डी0आई0 ने सभी क्षेत्रों में विनिर्माणी, दूरसंचार, विज्ञापन, मीडिया, और सबसे अधिक, सेवाओं में रोजगार सृजन किया है।संभवतः एफ0डी0आई0 से सर्वाधिक लाभ भारतीय उपभोक्ता को हुआ है।

18.13 शब्दावली

- **विदेशी प्रत्यक्ष निवेशः** यह एक उपक्रम में नवीन समता पूँजी का निवेश अथवा आयों का पुनर्निवेश हैं।
- **आन्तरिक एफ0डी0आई0:** यह एक देश के प्रत्यक्ष विदेशी निवेशक के द्वारा दूसरे देश के उपक्रम में प्रदत्त पूँजी है।
- **रेखीय एफ0डी0आई0:** यह तब घटित होती है जब एक फर्म एफ0डी0आई0 के माध्यम से विभिन्न मूल्य श्रृंखलाओं में ऊपर अथवा नीचे जाती हैं।
- **विदेशी संस्थानात्मक निवेशकः** "भारत के बाहर स्थापित अथवा निगमित संस्था जो भारत में प्रतिभूतियों, वास्तविक सम्पत्तियों और अन्य निवेश सम्पत्तियों में निवेश को प्रस्तावित करती है।"
- एफ0डी0आई0—विदेशी प्रत्यक्ष निवेश
- एफ0आई0आई0 —विदेशी संस्थानात्मक निवेश
- ई0पी0जेड0— निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र
- एफ0टी0जेड0— मुक्त व्यापार क्षेत्र
- एस0ई0जेड0—विशेष अर्थिक क्षेत्र
- डी0सी0—विकास आयुक्त।

18.14 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. घरेलू टैरिफ क्षेत्र (डी0टी0ए0) इकाइयों को ई0ओ0यू0 में बदलना..................
......मार्ग के अन्तर्गत भी अनुमन्य है।
2. सरकारी मार्ग का आशय है कि अनिवासी उपक्रमों के द्वारा निवासी उपक्रमों की पूँजी में निवेश केवल...................की पूर्व अनुमति से ही किया जा सकता है।
3. ....तक की सीमा में एफ0डी0आई0 बीमा क्षेत्र में अनुमन्य है।

(ब) सत्य/असत्य लिखिएः

1. एक देश के निवासी प्रत्यक्ष विदेशी निवेशक के द्वारा उस उपक्रम को जो दूसरे देश में निवासी है, को प्रदत्त पूँजी, एफ0डी0आई0 कहलाती है।
2. फुटकर व्यापार में एफ0डी0आई0 एक देश की आयों के अंश को विदेशी राष्ट्रों की ओर ले जाएगी, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।
3. एफ0डी0आई0 विदेशों से कौशल एवं तकनीक के हस्तांतरण की अनुमति देती है और घरेलू राष्ट्र की अवस्थापना का विकास करती है।

18.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1.स्वचालित 2. एफ0आई0पी0बी0 3. 26%

(ब) 1.असत्य 2. असत्य 3. सत्य

18.16 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में एफ0डी0आई0 की विभिन्न विधियाँ समझाइए।
2. भारत में विभिन्न प्रकार के एफ0डी0आई0 कौन से है? उदाहरण सहित समझाइए।
3. भारत में एफ0डी0आई0 के निर्धारकों की चर्चा कीजिए।
4. वर्तमान सन्दर्भ में भारत की एफ0डी0आई0 नीति का वर्णन कीजिए।
5. एफ0डी0आई0 और एफ0आई0आई0 में अन्तर कीजिए।
6. अर्थव्यवस्था पर एफ0डी0आई0 के प्रभाव को समझाइए।

18.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. शेष ए0एण्ड फातिमा के0, रिटेल मैनेजमैन्ट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, फर्स्ट एडीसन, 2008
2. गवर्नमैन्ट ऑफ इन्डिया (जी0ओ0आई0) (2013).
3. जया जी0, "ग्लोबलाइजेशन एण्ड इन्डियन एकॉनॉमीः सर्विस वाइज एनालिसिस ऑफ एफ0डी0आई0 इन्फ्लोज, 2006
4. मित्तल वी0, "बिजनैस मार्केटिंग", एक्सैल बुक्स, 2009
5. www.rbi.org.in

इकाई–19 विदेशी विनिमय दरें तथा विदेशी विनिमय बाजार

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना
19.2 विदेशी विनिमय
19.3 विदेशी विनिमय बाजार
19.4 विदेशी विनिमय बाजार की प्रकृति
19.5 विदेशी विनिमय बाजार के कार्य
19.6 विदेशी विनिमय बाजार के प्रतिभागी
19.6.1 थोक विदेशी विनिमय बाजार
19.6.2 फुटकर बाजार
19.7 अर्न्त बैंक बाजार में किए जाने वाले व्यवहार
19.7.1 स्पॉट सौदे
19.7.2 पूर्णतः अग्रिम सौदे
19.7.3 'स्वैप' सौदे
19.7.4 भावी सौदे या 'फ्यूचर'
19.7.5 विकल्प
19.8 अग्रिम एवं भावी करेन्सी संविदा की तुलना
19.9 विदेशी विनिमय दरें एवं मूल्य उद्धरण
19.9.1 अर्न्तबैंक मूल्य उद्धरण
19.9.2 प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष मूल्य उद्धरण
19.9.3 'बिड' एवं 'ऑस्क' मूल्य उद्धरण
19.10 विदेशी विनिमय व्यापार एवं स्विफ्ट (SWIFT)
19.11 विदेशी विनिमय दर का निर्धारण
19.11.1 विदेशी विनिमय दर
19.11.2 विनिमय दरों का निर्धारण
19.12 विनिमय दरें
19.13 अग्रिम विनिमय दर को प्रभावित करने वाले कारक
19.14 विनिमय दर निर्धारण के सिद्धान्त
19.15 आरबिट्रेज
19.16 आरबिट्रेज एवं ब्याज दरें
19.17 सारांश
19.18 शब्दावली
19.19 बोध प्रश्न
19.20 बोध प्रश्नों के उत्तर
19.21 स्वपरख प्रश्न
19.22 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- विदेशी विनिमय बाजार की प्रकृति, संरचना एवं परिचालन का विस्तृत वर्णन कर सकें।

- विदेशी विनिमय सौदे के प्रकार और विदेशी विनिमय बाजार के मुख्य प्रतिभागियों का वर्णन कर सकें।
- वॉल स्ट्रीट जर्नल के विदेशी विनिमय मूल्य उद्धरणों को समझ सकें।
- एक स्वतन्त्र बाजार में विदेशी विनिमय दर के साम्य के निर्धारण को समझ सकें।

19.1 प्रस्तावना

विदेशी विनिमय बाजार वह बाजार है जहाँ पर विदेशी विनिमय सौदे किए जाते हैं; अन्य शब्दों में, इस बाजार में राष्ट्रीय मुद्राऐं एक दूसरे से खरीदी एवं बेची जाती है। एच0ई0 ऐविट के शब्दों में, **"यह आर्थिक विज्ञान का वह अनुभाग है जो उन साधनों और विधियों से सम्बन्ध रखता है, जिनके द्वारा एक देश की मुद्रा में सम्पत्ति के अधिकार को दूसरे देश की मुद्रा में सम्पत्ति के अधिकार में परिवर्तित किया जाता है। इसमें उन विधियों, जिनके द्वारा ऐसे विनिमय आवश्यक किए जाते है, ऐसे विनिमय प्रारुप ग्रहण कर सकते हैं और अनुपात अथवा समान मूल्य जिस पर ऐसे विनिमय घटित होते हैं, की जाँच भी सम्मिलित होती हैं।"** विदेशी विनिमय बाजार, सौदे के मूल्यों के रुप में, 2 ट्रिलियन से अधिक अमेरिकी डॉलर के प्रतिदिन के टर्नओवर के साथ विश्व का सबसे बड़ा बाजार है। यह 24 घण्टों का बाजार हैं।

19.2 विदेशी विनिमय

विदेशी विनिमय से आशय एक देश के द्वारा दूसरे देशों को भुगतान करने के लिए धारित विदेशी मुद्राओं से हैं। इसे देश की मुद्रा अथवा साख का दूसरे देश की मुद्रा अथवा साख से विनिमय के रुप में परिभाषित किया जा सकता हैं। इसमें भुगतान की विधियाँ, नियम और विनियमन तथा ऐसे भुगतानों की सुविधाओं देने वाली संस्थाऐं सम्मिमलित होती है।

19.3 विदेशी विनिमय बाजार

एक विदेशी विनिमय बाजार से आशय घरेलू मुद्राओं से विदेशी मुद्राओं को क्रय करना तथा घरेलू मुद्राओं के लिए विदेशी मुद्राओं के विक्रय से है। इस प्रकार यह एक ऐसा बाजार है जिसमें विदेशी मुद्रा के दावे घरेलू मुद्रा के लिए बेचे और खरीदे जाते हैं। निर्यातक घरेलू मुद्राओं के लिए विदेशी मुद्राओं का विक्रय करते हैं और आयातक घरेलू मुद्राओं से विदेशी मुद्राओं का क्रय करते है। एल्सवर्थ के अनुसार **"एक विदेशी बाजार में वह सभी संस्थाऐं और व्यक्ति सम्मिलित होते है जो विदेशी विनिमय का क्रय और विक्रय करते हैं जिसे विदेशी मुद्रा या विदेशी मुद्रा पर किसी तरल दावे के रुप में परिभाषित किया जा सकता है।"** विदेशी विनिमय के सौदों से विदेशी विनिमय का अन्र्तप्रवाह और बर्हिप्रवाह होता है।

19.4 विदेशी विनिमय बाजार की प्रकृति

विदेशी विनिमय बाजार इस अर्थ में एक विकेन्द्रीयकृत बाजार है कि इसमें बाजार के प्रतिभागी एक दूसरे से सामान्यतया से पृथक होते हैं और सौदे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जैसे टेलीफोन, कम्प्यूटर नैटवर्क आदि के माध्यम से किए जाते हैं। विकेन्द्रीयकरण के दो प्रभाव–बिखराव एवं पारदर्शित का अभाव होते हैं। विदेशी विनिमय बाजार इस अर्थ में बिखरा हुआ होता है कि बाजार में विभिन्न

कीमतों पर सौदे साथ–साथ अथवा लगभग साथ–साथ घटित होते हैं। यह अस्पष्ट अथवा अपारदर्शी इस अर्थ में है कि भौतिक बाजार स्थल की अनुपस्थिति कीमत–सूचनाओं की अन्तर्कियात्मक प्रक्रिया को अवलोकित करने एवं समझने में कठिन बना देती है। यद्यपि बाजार विकेन्द्रीयकृत होता है, किन्तु इसके विभिन्न भौतिक स्थान और व्यापारिक केन्द्र सम्पूर्ण विश्व में होते हैं जहाँ अधिकांश महत्वपूर्ण बाजार प्रतिभागी विशेषतया बाजार में सौदे करने वाले डीलर, संकेन्द्रित होने की प्रवृत्ति रखते हैं।

19.5 विदेशी विनिमय बाजार के कार्य

विदेशी विनिमय को 'फॉरेक्स मार्केट' के रुप में भी जाना जाता है। विदेशी विनिमय विपत्र, टेलीग्राफिक स्थानान्तरण, बैंक ड्राफ्ट, लैटर ऑफ क्रेडिट इत्यादि विदेशी बाजार की क्रियाओं को सम्पन्न करने में प्रयुक्त होने वाले महत्वपूर्ण प्रलेख हैं, विदेशी विनिमय बाजार निम्नांकित क्रियाऐं सम्पन्न करता है :

1. क्रय शाक्ति का हस्तान्तरण अथवा समाशोधन कार्य

विदेशी विनिमय बाजार का आधारभूत कार्य एक मुद्रा को दूसरी मुद्रा में परिवर्तन अर्थात निर्यातकों एवं आयातकों के मध्य भुगतान की सुविधा देना है, उदाहरणार्थ, भारतीय रुपये को अमेरिकी डॉलर में परिवर्तित किया जाता है अथवा इसके विपरीत परिवर्तन किया जा सकता है। हस्तान्तरण कार्य को सम्पन्न करने में अनेक प्रकार के साख प्रलेख जैसे टेलीग्राफिक ट्रान्सफर, बैंक ड्राफ्ट और विदेशी बिल, प्रयुक्त होते हैं ।'टेलीग्राफिक ट्रान्सफर' क्रय शक्ति के हस्तान्तरण को तीव्रतम विधि हैं।

2. साख सम्बन्धी कार्य

विदेशी विनिमय बाजार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों को साख प्रदान करता है, जिससे विदेशी बाजार का प्रवर्तन होता है। यह आवश्यक भी है कि कभी–कभी अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान 60 दिन या 90 दिन के लिए विलम्बित हो जाते हैं। स्वाभाविक रुप में, जब विदेशी विनिमय विपत्रों का अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में उपयोग किया जाता है, तब लगभग 3 माह की साख उनकी परिपक्वता तक आवश्यक होती हैं।

3. 'हैजिंग' संबंधी कार्य

विदेशी विनिमय बाजारों का एक तीसरा कार्य विदेशी विनिमय जोखिमों को सुरक्षित अथवा 'हैजिंग' करने का है। 'हैजिंग' से आशय विनिमय दरों में परिवर्तनों के कारण उत्पन्न विनिमय जोखिमों के प्रति सुरक्षा प्रदान करना है। इस कार्य के अन्तर्गत विदेशी विनिमय बाजार इस बाजार में व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के हितों को किसी अदृश्य विनिमय बाजार परिवर्तनों से सुरक्षित करता है। 'हैजिंग' निर्यातकों एवं आयातकों दोनों के हितों को सुरक्षित करता है। हैजिंग को स्पॉट विनिमय बाजार अथवा अग्रिम संविदा वाले अग्रिम विनिमय बाजार के माध्यम से किया जा सकता हैं।

19.6 विदेशी विनिमय बाजार के प्रतिभागी

विदेशी विनिमय बाजार दो स्तरों में सन्निहित होता है : अर्न्त बैंक या थोक बाजार तथा ग्राहक या फुटकर बाजार ।

19.6.1 थोक विदेशी विनिमय बाजार

थोक विदेशी विनिमय बाजारों में अधिकांश विदेशी विनिमय व्यापार बैंकों, जिन्हें अन्तं बाजार कहा जाता है, के द्वारा किया जाता हैं। वे व्यापार को ग्राहकों की ओर से करते है, किन्तु अधिकांश व्यापार उनके अपने खातों के लिए व्यापार स्वामियों के डेस्क द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, बैंक और गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाऐं, बहुराष्ट्रीय निगम, 'हैज' कोष, पेन्शन एवं प्राविडेंट फन्ड, बीमा कम्पनियाँ, पारस्परिक फण्ड, इत्यादि थोक बाजार में प्रतिभाग करते हैं।

विदेशी विनिमय में व्यवहार करने वाले डीलर एवं दलालः

विदेशी विनिमय डीलरों एवं दलालों की भूमिका के विस्तृत विवेचन की आवश्यकता है। किन्तु सर्व प्रथम, यह समझा जाय कि विदेशी विनिमय डीलर कौन हैं?

डीलर्स (व्यवहारकर्ता):

बैंक तथा कुछ गैर बैकिंग संस्थाऐं विदेशी विनिमय डीलरों की तरह कार्य करती है। यह डीलर एक विशिष्ट मुद्रा के जोड़ों के लिए (अर्थात स्पॉट, अग्रिम अथवा स्वैप संविदाओं हेतु) 'बिड' और 'ऑस्क' दोनों के मूल्य उद्धरण देते हैं और मुद्रा के क्रेताओं अथवा विक्रेताओं में किसी एक के बीच अर्थात क्रय और विक्रय कीमतों के बीच मौजूद फैलाव से लाभ अर्जित करते हैं।

दलाल एजेन्ट होते है जो केवल क्रेता एवं विक्रेताओं को मिलाते हैं और दलाली शुल्क प्राप्त करते हैं। इन्टरनैट से पहले, दलाल, डीलर्स और ग्राहक टेलीफोन अथवा टेलैक्स पर या सैटेलाइट संचार के माध्यम से सम्प्रेषण करते थें। सोसाइटी फॉर वर्ल्डवाइड इन्टर बैंक फाइनेन्सिल कम्युनिकेशन (स्विफ्ट) के द्वारा इन दलालों और बैंकों के बीच संचार की सुविधा प्रदान की गयी। इन व्यवहारकर्ताओं (डीलर्स) को 'बाजार निर्माता' के नाम से भी जाना जाता है। बाजार निर्माताओं के रुप में यह व्यवहारकर्ता उद्धरित कीमतों पर मुद्राओं के क्रय एवं विक्रय के लिए हमेशा इच्छुक बने रहते हैं।

दलाल (ब्रोकर्स):

दूसरी ओर दलाल ग्राहकों को डीलरों के द्वारा प्रस्तावित विभिन्न मूल्य उद्धरणों को उपलब्ध करा कर उन्हें बेहतर दर प्राप्त करने में सहायता करते हैं। व्यापारी दरों की तुलना कर सकते हैं, और तद्नुसार निर्णय ले सकते हैं। इन सेवाओं को प्रदान करने के लिए दलाल कमीशन लेते हैं। दलालों एवं ग्राहकों के बीच में सम्प्रेषण इस कार्य हेतु समर्पित टेलीफोन लाइनों के माध्यम से किया जाता है । एक दलाल नवीनतम मूल्य उद्धरणों को प्राप्त करने के लिए लगातार डीलरों के सम्पर्क में रहता है और बाजार की गहराई को समझता है। दलाल डीलरों के द्वारा प्रस्तावित दरों की तुलना करते है और अपने ग्राहकों को उत्तम दरें प्रदान करते हैं अर्थात जब ग्राहक विक्रय करना चाहते है, तों उच्चतम बिड दरें जों डीलरों के द्वारा उद्धरित की गयी हैं और जब ग्राहक क्रय करना चाहते हैं तो न्यूनतम 'आस्क' दरें जो विभिन्न डीलर उद्धरित करते है, दलालों के द्वारा प्रदान की जाती हैं।

वाणिज्यिक एवं निवेश सौदों में प्रतिभागीः

आयातक एवं निर्यातक, अन्तर्राष्ट्रीय पोर्टफोलियो निवेशकर्ता, बहुराष्ट्रीय फर्मे, पर्यटक और अन्य विदेशी विनिमय बाजार को व्यावसायिक एवं निवेश सौदों के क्रियान्वयन के लिए उपयोग करते हैं। इन प्रतिभागियों में से कुछ विदेशी

विनिमय बाजार को विदेशी विनिमय जोखिम के प्रति सुरक्षा (हैज) करने के लिए भी उपयोग करते हैं।

सटोरियों एवं 'आरब्रिट्रेन' करने वाले

सटोरिये एवं आरब्रिट्रेन करने वाले बाजार में होने वाले व्यापार से लाभ कमाना चाहते हैं। वे ग्राहकों की सेवा करने की आवश्यकता या उत्तरदायित्व की भावना के बिना अथवा बाजार की निरन्तरता को सुनिश्चित करने की आवश्यकता के बिना, अपने हित में कार्य करते हैं। सटोरिये अपना लाभ विनिमय दर परिवर्तनों से अर्जित करते हैं, 'आरबिट्रेजर्स' विभिन्न बाजारों में एक समय में प्रचलित विनिमय दरों में अन्तर से लाभ अर्जित करने का प्रयास करते हैं।' आरबिट्रेजर्स' दो विभिन्न बाजारों में एक ही मुद्रा को क्रय एवं विक्रय करते हैं, जब कीमतों में कोई अन्तर विद्यमान होता है। **'एक कीमत का नियम'** का सिद्धान्त आरबिट्रेज के सिद्धान्त का अभिशासन करता है।

केन्द्रीय बैंक एवं कोषागार

केन्द्रीय बैंक एवं कोषागार बाजार को, अपने देश के विदेशी विनिमय संचयों को प्राप्त करने अथवा व्यय करने के साथ–साथ उस दर को प्रभावित करने के लिए जिस पर उनकी अपनी मुद्रा का व्यापार हो रहा है, में उपयोग करते हैं। अनेक परिस्थितियों में वे तब उत्तम परिणाम प्राप्त करते हैं जबकि वे अपने विदेशी विनिमय सौदों को स्वेच्छा से हानि पर करते हैं।

विदेशी विनिमय दलाल

विदेशी विनिमय दलाल वह एजेन्ट हैं जो सौदों में बिना मुख्य भूमिका का निर्वहन करके, डीलरों के बीच व्यापार को सहायता प्रदान करते हैं। इस सेवा के लिए वे एक अल्प कमीशन लेते हैं और खुली टेलीफोन लाइनों के माध्यम से सैकड़ो डीलरों को विश्व व्यापी स्तर पर बाजार में पहुँच प्रदान करते हैं। यह दलाल का व्यवसाय है कि वह यह जानता है कि किस डीलर को किस समय पर मुद्रा का क्रय अथवा विक्रय करना हैं।

19.6.2 फुटकर बाजार

फुटकर बाजार में व्यक्ति (पर्यटक, विदेशी विद्यार्थी, रोगी जो चिकित्सा के लिए अन्य देशों में भ्रमण करते हैं), लघु कम्पनियाँ, लघु निर्यातक एवं आयातक इत्यादि परिचालन करते हैं। मुद्रा स्थानान्तरण कम्पनियाँ/धन–प्रेषण कम्पनियाँ (उदाहरणार्थ 'वैस्टर्न यूनियन' की तरह) भी फुटकर बाजार में मुख्य प्रतिभागी हैं। फुटकर व्यापारी अपनी उचित व्यावसायिक/व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए मुद्रा का क्रय/विक्रय करते है, उदाहरणार्थ, एक निर्यातक विदेशी मुद्रा को देशी मुद्रा में परिवर्तित करने के लिए अग्रिम संविदा में प्रवेश कर सकता है। एक पर्यटक अपनी यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व 'स्पॉट' बाजार में विदेशी मुद्रा क्रय कर सकता है। यू0के0 का एक रोगी जो एक आप्रेशन ,जिसके लिए उसे यू0के0 में काफी कीमत चुकानी होती,के लिए भारत भ्रमण में आ रहा है, ।

19.7 अर्न्त बैंक बाजार में किए जाने वाले व्यवहार

विदेशी विनिमय बाजार में सौदे या व्यवहार स्पॉट पर, अग्रिम, भावी, विकल्प और 'स्वैप' के रुप में हो सकते हैं। इन्हें निम्नवत समझाया गया हैः

19.7.1 स्पॉट सौदेः

स्पॉट विनिमय बाजार में, व्यवसाय निरन्तरता के आधार पर विश्वव्यापी स्तर पर किया जाता है। अतः यह संभव है कि विदेशी विनिमय बाजार में सौदे प्रतिदिन 24 घण्टे किए जाते हैं। इस बाजार में सौदों की मानक निपटारा अवधि 48 घण्टे अर्थात सौदे के क्रियान्वयन के पश्चात 2 दिनों की होती है। स्पॉट विनिमय बाजार प्रतिभूतियों के लिए ओ0टी0सी0(ओवर द काउण्टर) मार्केट की भांति होती है। इसमें कोई भी केन्द्रीयकृत बैठक का स्थान और कोई भी खुलने अथवा बन्द होने का समय नहीं होता है। चूँकि इन बाजारों में अधिकांश व्यवसाय बैंको के द्वारा किया जाता है। अतः सौदे में सामान्यतः मुद्रा का भौतिक हस्तान्तरण नहीं होता है बल्कि बैंकों के बीच में साधारणतया एक पुस्तकीय लेखा किया जाता है। एक स्पॉट सौदे में विदेशी विनिमय की लगभग तत्काल सुपुर्दगी आवश्यक होती है तथा बैंकों के बीच भुगतान सामान्यतः व्यावसायिक दिन के अगले दिन किया जाता है। निपटारे की तिथि को 'वैल्यू दिनांक' कहा जाता हैं।

19.7.2 पूर्णतः अग्रिम सौदेः

एक अग्रिम सौदे में एक मुद्रा की निर्दिष्ट धनराशि के बदले दूसरी मुद्रा की निर्दिष्ट धनराशि की किसी भावी 'वैल्यू' तिथि में सुपुर्दगी आवश्यक होती है । 'वैल्यू' तिथि पर प्रचलित विनिमय दर को समझौते के समय स्थापित किया जाता है। किन्तु भुगतान और सुपुर्दगी परिपक्वता तक आवश्यक नहीं होती है। अग्रिम विनिमय दरें सामान्यतया एक,दो,तीन छः और बारह महीनों की 'वैल्यू' तिथियों हेतु उद्धरित की जाती है। वास्तविक संविदा अन्य अवधियों के लिए भी व्यवस्थित किया जा सकता है। पूर्णतः अग्रिम सौदे समस्त विदेशी विनिमय सौदों के लगभग 9% तक होते है। किसी सम्बन्धित सम्पत्ति में अग्रिम बाजार का उद्देश्य समझौते की भावी तिथि पर सम्पन्न किए जाने वाली संविदा के लिए कीमत को निर्धारित करना तथा क्रेता एवं विक्रेता दोनों को किसी भी ऐसी हानि की जोखिम से मुक्त करना होता है, जो सम्बन्धित सम्पत्ति की कीमतों में उच्चावचन के कारण उत्पन्न हों सकती है। एक अग्रिम संविदा दो इकाइयों के बीच एक पृथक अपने प्रकार की संविदा है जिसमें निपटारा किसी भावी विशिष्ट तिथि पर आज की पूर्व निर्धारित कीमत पर किया जाता है। विनिमय दर का निर्धारण संविदा में प्रवेश के समय किया जाता है। इसे अग्रिम विनिमय दर या सरल शब्दों में अग्रिम दर कहा जाता है।

19.7.3 'स्वैप' सौदेः

एक स्वैप सौदे में दो विभिन्न 'वैल्यू' तिथियों के लिए विदेशी विनिमय की दी हुई धनराशियों के एक साथ क्रय एवं विक्रय सम्मिलित होते हैं। एक अत्यधिक सामान्य प्रकार का स्वैप अग्रिम के सापेक्ष स्पॉट है, जहाँ पर डीलर स्पॉट बाजार में मुद्रा का क्रय करता है और साथ ही उतनी ही धनराशि को अग्रिम बाजार में पुनः विक्रय कर देता है। क्योंकि यह समझौता एक एकल सौदे की तरह क्रियान्वित किया जाता है, इसमें डीलर को कोई भी अनपेक्षित जोखिम नहीं होता हैं। स्वैप भविष्य में पूर्वनिर्धारित फार्मूले के अनुसार दो पक्षकारों के बीच में रोकड़ अर्न्तप्रवाहों के विनिमय के निजी समझौते हैं। इन्हें अग्रिम संविदाओं का पोर्टफोलिओं भी कहा जा सकता है। करेन्सी स्वैप में दो पक्षकारों के बीच म ेंएक भिन्न करेन्सी के एक दिशा में रोकड़ अर्न्तप्रवाह का दूसरी करेन्सी के विपरीत दिशा के रोकड़ अर्न्तप्रवाहों के साथ मूलधन एवं ब्याज दोनों का स्वैप सम्मिलित होता है। करेन्सी

स्वैप के विभिन्न प्रकार हैं –जैसे स्थिर का स्थिर के साथ करेन्सी स्वैप, परिवर्तनशील का परिवर्तनशील के साथ करेन्सी स्वैप, स्थिर का परिवर्तनशील के साथ करेन्सी स्वैप इत्यादि।

19.7.4 भावी सौदे या 'फ्यूचर':

एक करेन्सी 'फ्यूचर' संविदा विशिष्ट करेन्सी को किसी भावी तिथि पर एक निर्दिष्ट कीमत पर तथा एक मानक मात्रा में क्रय एवं विक्रय का साथ अधिकार और दायित्व प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, एक भावी संविदा दो पक्षकारों के बीच में एक सम्पत्ति को भविष्य में निश्चित समय एवं निश्चित कीमत पर क्रय एवं विक्रय करने का एक समझौता है। भावी संविदाऐं विशिष्ट प्रकार की अग्रिम संविदाऐं इस अर्थ में होती हैं किवह मानकीकृत विनिमय व्यापार संविदाऐं हैं।

19.7.5 विकल्पः

करेन्सी विकल्प एक वित्तीय प्रलेख है जो विकल्पधारी को विदेशी विनिमय की एक दी हुई धनराशि को निर्धारित प्रति इकाई कीमतों पर एक निर्धारित समयावधि के लिए क्रय अथवा विक्रय करने का अधिकार तो देता है किन्तु दायित्व नहीं देता(समापन तिथि तक) । दूसरे शब्दों में, एक विदेशी मुद्रा विकल्प एक मुद्रा के बदले में दूसरी मुद्रा, जिसमें एक निश्चित कीमत पर अथवा निर्दिष्ट समयावधि में क्रेता को क्रय करने (कॉल आप्सन) अथवा विक्रय करने (पुट आप्सन) का विकल्प होता है , की भावी सुपुर्दगी करने की संविदा है। विकल्प के विक्रेता को विकल्प के क्रेता से संविदा में दायित्व ग्रहण करने हेतु प्रीमियम प्राप्त होता है। विकल्प का जीवनकाल सामान्यतः एक वर्ष तक का होता है, अधिकांश विकल्पों का व्यापार विकल्प विनिमय विपणियों पर होता है, जिनकी परिपक्वता अवधि 9 माह होती है। लम्बी अवधियों के विकल्पों को वारन्ट कहा जाता है और इन्हें ओ0टी0सी0 पर व्यापार किया जाता है।

19.8 अग्रिम एवं भावी करेन्सी संविदा की तुलना

अग्रिम एवं भावी करेन्सी संविदा की तुलना निम्नवत है:

आधार	अग्रिम संविदा	भावी (फ्यूचर) संविदा
आकार	पक्षकारों की आवश्यकताओं के अनुसार संरचना।	मानकीकृत
सुपुर्दगी तिथि	व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुसार निर्धारित।	मानकीकृत
सौदे की तिथि	बैंक के द्वारा या दलाल के द्वारा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से निर्धारित।	मान्यता प्राप्त विपणि पर क्रेता एवं विक्रेता के मध्य खुली नीलामी।
प्रतिभाग	बैंक, दलाल, फॉरेक्स डीलर, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, संस्थानात्मक निवेशकर्ता, आरबिट्रेजर्स, व्यापारी आदि।	बैंक, दलाल, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, संस्थानात्मक निवेशकर्ता, लघु व्यापारी, सटोरिए, आरबिट्रेजर्स आदि
मार्जिन	कोई नहीं, किन्तु क्षतिपूरक बैंक शेष वांछित हो सकता है।	मार्जिन जमा आवश्यक है।
परिपक्वता	आवश्यकतानुसार निर्धारित जो 1 सप्ताह से 10 वर्ष तक हो सकती	मानकीकृत

	हैं।	

19.9 विदेशी विनिमय दरें एवं मूल्य उद्धरण

एक विदेशी विनिमय दर विदेशी मुद्रा की कीमत होती है। एक विदेशी विनिमय उद्धरण या मूल्य निर्ख एक घोषित दर पर क्रय या विक्रय की तत्परता का वचन हैं।

19.9.1 अर्न्तबैंक मूल्य उद्धरण

पेशेवर डीलर्स एवं दलाल जिस सर्वाधिक प्रचलित तरीके से विदेशी विनिमय मूल्य उद्धरण व्यक्त करती हैं तथा जिस प्रकार वह कम्प्यूटर स्क्रीन पर विश्वव्यापक रुप में प्रकट होते हैं, उसे 'यूरोपियन टर्म्स' कहा जाता है। यूरोपियन टर्म्स मूल्य उद्धरण एक अमेरिकी डॉलर को क्रय करने के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा की इकाइयों की संख्या को प्रदर्शित करता हैः

CAD1.5770/USD

एक वैकल्पिक विधि को अमेरिकन टर्म्स कहा जाता है। अमेरिकन टर्म्स मूल्य उद्धरण विदेशी मुद्रा की एक ईकाई को क्रय करने के लिए आवश्यक अमेरिकी डॉलर की इकाइयों की संख्या को प्रदर्शित करता हैः

USD0.6341/CAD

स्पष्टतया, उपर्युक्त दोनों मूल्य उद्धरण अत्यधिक सम्बन्धित है। अमेंरिकी डॉलर की कीमत CAD में तथा CAD की कीमत अमेरिकी डॉलर (USD) में परिभाषित की जा सकती हैं।

S(USD/CAD)=USD0.6341/CAD

तब इसे होना चाहिएः

S(CAD/USD=S(USD/CAD)

क्योंकि CAD1.5770/USD=1/{ USD 0.6341/CAD}

यह नियम अग्रिम दरों पर भी लागू होते हैं। हम एक पूर्णतः अग्रिम मूल्य उद्धरण को निम्नलिखित मूल्य उद्धरण के उपयोग के द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैंः

F (CAD/USD)

19.9.2 प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष मूल्य उद्धरण

एक प्रत्यक्ष मूल्य उद्धरण विदेशी मुद्रा की एक इकाई के बदले में घरेलू मुद्रा की कीमत होती है।

एक अप्रत्यक्ष मूल्य उद्धरण घरेलू मुद्रा की एक इकाई के बदले में विदेशी मुद्रा की कीमत होती है।

अमेरिका में CAD के लिए एक प्रत्यक्ष मूल्य उद्धरण है–USD 0.6341/CAD

यह मूल्य उद्धरण कनाडा में एक अप्रत्यक्ष मूल्य उद्धरण होगा।

19.9.3 'बिड' एवं 'ऑस्क' मूल्य उद्धरण

एक 'बिड'एक करेन्सी की वह विनिमय दर है जिस पर एक डीलर दूसरे देश की मुद्रा को क्रय करता है। 'ऑस्क' वह विनिमय दर है जिस पर एक डीलर अन्य मुद्रा को विक्रय करता है। इस प्रकार, डीलर 'बिड' कीमत पर क्रय करते है और 'ऑस्क' कीमत पर विक्रय करते हैं तथा 'बिड' और 'ऑस्क' कीमतों के बीच अन्तराल से लाभ अर्जित करते है। bid < ask 'बिड' और 'ऑस्क' मूल्य उद्धरण इस

तथ्य के आधार पर जटिल होते है कि एक करेन्सी के लिए 'बिड' दूसरी करेन्सी के लिए 'ऑस्क' होती है।

S^b (USD/CAD) = 1/S^a (CAD/USD)

S^a (USD/CAD)= 1/S^h(CAD/USD)

19.10 विदेशी विनिमय व्यापार तथा स्विफ्ट (SWIFT)

एक अर्न्त बैंक विदेशी विनिमय सौदे में, किसी भी वास्तविक मुद्रा का हस्तान्तरण नहीं होता है। सभी सौदे इलेक्ट्रानिक्स रूप में स्विफ्ट के माध्यम से किए जाते है। विदेशी विनिमय सौदो को क्रियान्वित करने वाले बैंक एक सौदे का निपटारा करने के लिए SWIFTके माध्यम से केवल बैंक जमा को स्थानान्तरित कर देते हैं। SWIFT या स्विफ्ट , विश्वव्यापी अर्न्त बैंक वित्तीय दूरसंचार सोसाइटी, एक सहकारिता संगठन है , जिसका मुख्य कार्यालय बेल्जियम में है। स्विफ्ट नैटवर्क 8300 बैंको, वित्तीय संगठनों 208 देशों में परिचालन करने वाली कम्पनियों को आपस में जोड़ती है। स्विफ्ट इन सदस्यों को प्रमाणित सन्देश सेवा प्रदान करता है। जब दो पक्षकारों के बीच में कोई सौदा क्रियान्वित किया जाता है, स्विफ्ट दोनों वित्तीय पक्षकारों को प्रमाणित प्रारूप में संदेश सम्प्रेषित करता है। क्योंकि विदेशी विनिमय बाजार मुख्यतः एक ओ0 टी0 सी0 बाजार है, स्विफ्ट का संदेश सौदे को विधि मान्यता प्रदान करता है। निम्नांकित पंक्तियों में स्विफ्ट की सौदे की क्रियाओं को सारांकित किया गया है। "स्विफ्ट संदेशों का एकमात्र वाहक है। इसका अपना कोई कोष नहीं है और नही यह ग्राहकों की ओर से खातो का प्रबन्ध करता है तथा यह वित्तीय सूचना को सतत रूप में भण्डारण भी नहीं करता है। एक समंक वाहक के रूप में, स्विफ्ट दो वित्तीय संस्थाओ के मध्य संदेशों को संप्रेषित करता है। इस क्रिया में स्वामीगत समंको का सुरक्षित विनिमय सम्मिलित होता है, जिसमें इनकी गोपनीयता एवं विश्वसनीयता सुनिश्चित होती है।"

19.11 विदेशी विनिमय दर का निर्धारण

19.11.1 विदेशी विनिमय दर

विनिमय दर से आशय उस दर से है जिस पर विभिन्न देशों की मुद्राओं का विनिमय अन्य देश की मुद्राओं के लिए किया जाता है। अन्य शब्दों में, यह अन्य देश की मुद्रा के शब्दों में एक देश की मुद्रा की कीमत है। उदाहरणार्थ यदि भारतीय रुपये में एक अमेरिकी डॉलर का मूल्य 45 रू0 है, तब विनिमय दर है–

1US $ = 45

इस प्रकार, विदेशी विनिमय दर देशो की मुद्राओं का वाह्य मूल्य बतलाती है। यह अन्य देश की मुद्राओं के शब्दों में, एक देश की मुद्रा की क्रय शक्ति को भी प्रदर्शित करती हैं।

19.11.2 विनिमय दरों का निर्धारण

क्योंकि विनिमय दर राष्ट्रीय मुद्रा का अन्य देशों की मुद्राओं में मूल्य होती है, अतः विदेशी विनिमय बाजार में इसका निर्धारण मूल्य के सामान्य सिद्धान्त अर्थात मांग एवं पूर्ति की शक्तियों की अर्न्तक्रिया के अनुसार होता है। इस प्रकार, विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय दर विदेशी विनिमय की मांग और विदेशी विनिमय की पूर्ति की अन्तर्क्रिया से निर्धारित होती है।

1. **विदेशी विनिमय हेतु मांग :**

विदेशी विनिमय नागरिकों एवं सरकार के द्वारा विदेश में भुगतान हेतु आवश्यक होती है। इससे विदेशी विनिमय की मांग उत्पन्न होती है। इन भुगतानों को भुगतान सन्तुलन (बी0ओ0पी0) के भुगतान पक्ष में अभिलिखित किया जाता है। विदेशी विनिमय की मांग निम्नलिखित भुगतानों के लिए की जाती है :

- **वस्तुओं का आयातः** उपभोक्ता एवं पूँजीगत वस्तुऐं अन्य देशों से आयात की जाती है। विदेशी विनिमय की उन व्यक्तियों के द्वारा मांग की जाती है, जो इन्हें आयात करते हैं। आयातों का मूल्य जितना अधिक होगा, विदेशी विनिमय (मुद्रा) की मांग भी उतनी ही अधिक होगी।
- **सेवाओं का आयातः** अन्य देशों के द्वारा दी गयी सेवाऐं जिनमें बैंकिग, बीमा, परिवहन, संचार, शिक्षा सेवाऐं इत्यादि सम्मिलित हैं, के लिए भी विदेशी विनिमय में भुगतान करना होता हैं।
- **लाभांश, ब्याज एवं लाभः** भारत में, कई विदेशी फर्मो ने विभिन्न क्षेत्रों में निवेश किया है, जो लाभांश एवं लाभों के सम्बन्ध में विदेशी विनिमय के बर्हिप्रवाह के रुप में परिणित होता है। दूसरी ओर सरकार एवं अन्य फर्मे भी विदेशों से ऋण लेती हैं, जिन पर ब्याज का भुगतान करना होता हैं।
- **एक पक्षीय भुगतानः** दान, उपहार इत्यादि बिना किसी समपार्श्विक प्रत्याय के एकपक्षीय भुगतान है; ऐसे भुगतान विदेशी विनिमय के लिए मांग उत्पन्न करते हैं।
- **पूँजी का निर्यातः** ऋण का पुर्न भुगतान, विदेशों में सम्पत्तियों का क्रय इत्यादि के लिए भी विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। उपरोक्त सभी वर्गो में विदेशों में भुगतान किए जाने से विदेशी विनिमय की कुल मांग उत्पन्न होती है। विदेशी मुद्रा की कुल मांग विदेशी विनिमय दर से विपरीत रुप में सम्बन्धित होती है। ऊँची विनिमय दर पर विदेशी विनिमय की मांग कम हो सकती हैं।

2. विदेशी विनिमय की पूर्तिः

विदेशी विनिमय की एक देश में पूर्ति इसके निर्यातों की प्राप्तियों से आती है। विदेशी मुद्रा की प्राप्तियों को बी0ओ0पी0 के प्राप्ति पक्ष में अभिलिखित किया जाता है। पूर्ति के विभिन्न मुख्य स्रोत निम्नवत है :

- **वस्तुओं का निर्यातः** यह विदेशी विनिमय की आपूर्ति का एक मुख्य स्रोत है। निर्यातों का आकार एवं कीमतों वस्तुओं की मांग की लोच पर निर्भर करती हैं। भारत में, विनिर्माणी मदें निर्यातों में उच्च स्थान पर आती है।
- **सेवाओं का निर्यातः** हाल के वर्षो में, यह स्रोत महत्व प्राप्त कर रहा हैं। विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञ सेवाऐं, अन्य देशों से पर्यटकों का आगमन, परिवहन, संचार, बीमा इत्यादि महत्वपूर्ण सेवाऐं हैं जो विदेशी विनिमय अर्जित करते हैं एवं इसकी आपूर्ति करते हैं।
- **लाभांश ब्याज एवं लाभः** भारतीय फर्मो ने विदेशों में विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग किया है। इस प्रकार लाभांशों एवं लाभों के रुप में विदेशी विनिमय का अर्न्तप्रवाह होता है। भारतीय संस्थाओं ने विदेशों में मुद्रा भी उधार में दी हैं, जिससे ब्याज की प्राप्ति होती हैं।

- **एक पक्षीय प्राप्तियाँः** देश के नागरिकों एवं अन्य संस्थाओं से, जो विदेश में कार्य करते है, से प्राप्त धन दान इत्यादि विदेशी विनिमय की आपूर्ति का एक भाग होते हैं।
- **पूँजी का आयातः** विदेशी निवेश–प्रत्यक्ष एवं पोर्टफोलियो–विदेशों से ऋण का पुर्नभुगतान इत्यादि सभी विदेशी विनिमय की आपूर्ति को बढ़ाते हैं। उपरोक्त समस्त वर्गो में विदेशों प्राप्तियाँ विदेशी विनिमय की कुल आपूर्ति के रुप में परिणित होती हैं। कुल आपूर्ति, किसी भी वस्तु की पूर्ति की भांति, विदेशी विनिमय दर से प्रत्यक्ष रुप में सम्बन्धित होती है। ऊँची विनिमय दर पर विदेशी विनिमय (मुद्रा) की पूर्ति भी अधिक हो सकती हैं।

19.12 विनिमय दरें

विदेशी विनिमय बाजार में किए जाने वाले लेन–देनों को जिस दर पर किया जाता है, उसे विनिमय दर कहा जाता है। विदेशी विनिमय बाजार में दो प्रकार की विनिमय दर क्रियाऐं परिचालित होती हैं। यह स्पॉट विनिमय दर एवं अग्रिम विनिमय दर हैं।

(1) स्पॉट विनिमय–दरः

जब विदेशी विनिमय को तत्काल सुपुर्दगी हेतु क्रय एवं विक्रय किया जाता है, तो इसे स्पॉट विनिमय कहा जाता है। इससे आशय एक अथवा दो दिनों से लगाया जाता है जिसमें दो मुद्राऐं संलग्न होती हैं। स्पॉट विनिमय दर का मूल सिद्धान्त यह है कि इसे मांग एवं पूर्ति की शक्तियों की सहायता से किसी भी अन्य कीमत की भांति विश्लेषण किया जा सकता है। डॉलर की विनिमय दर विदेशी विनिमय में डॉलरों की मांग एवं पूर्ति की अन्तर्क्रिया से निर्धारित होती है। डॉलर की मांग देश की आयातों हेतु मांग से व्युत्पादित होती है, जो डॉलर में भुगतान की जाती है और देश के निर्यातों से पूर्ति व्युत्पादित होती है, जिन्हें डॉलरों में विक्रय किया जाता है। बाजार शक्तियों के द्वारा निर्धारित विनिमय दर तब परिवर्तित हो जाती है जब इन बाजार शक्तियों में परिवर्तन होता है। प्रारंभिक कीमत निर्माता बाजार में मुद्राओं का क्रय (बिड) या विक्रय (ऑस्क) करते हैं और स्वतन्त्र बाजार में मांग एवं पूर्ति पर निर्भर दरें लगातार परिवर्तित होती रहती है; प्रारम्भिक डीलर (बैंक) दो दरें उद्धरित करते हैं अर्थात क्रय एवं विक्रय दरें।

(बिड) क्रयदर 1 यू0एस0 $ = रु.45.50

(ऑस्क) विक्रय दर 1 यू0एस0 $ = रु.45.75

बैंक एक यू0एस0 डॉलर को 45.50 रु में क्रय करने तथा 45.75 रु. में विक्रय हेतु तैयार रहता है। रु0.25 का अन्तर डीलर का लाभ –मार्जिन है।

(2) अग्रिम विनिमय दरः

यहाँ पर विदेशी विनिमय को भावी सुपुर्दगी हेतु क्रय या विक्रय किया जाता है, अर्थात 30, 60 अथवा 90 दिनों की अवधि के लिए। 180 एवं 360 दिनों के लिए भी लेन–देन होते हैं। इस प्रकार, अग्रिम बाजार भावी सुपुर्दगी हेतु संविदाओं में व्यवहार करता है। ऐसे लेन–देनों के लिए कीमत संविदा के समय निर्धारित होती है; इसे अग्रिम विनिमय दर कहा जाता है अग्रिम विनिमय दर, स्पॉट विनिमय दर से इस अर्थ में भिन्न होती है कि अग्रिम विनिमय दर में प्रीमियम या कटौती निहित होती है। यदि अग्रिम दर, वर्तमान स्पॉट दर से अधिक होती है, तो

विदेशी विनिमय दर को प्रीमियम पर कहा जाता है। यदि अग्रिम दर, वर्तमान स्पॉट दर से कम होती है, तो विदेशी विनिमय दर को कटौती पर कहा जाता है। उदाहरणार्थ, एक भारतीय आयातक आज से 60 दिनों के लिए एक यू0एस0 $ = रु. 48पर 10,000 यू0एस0 डॉलर क्रय करने का समझौता करता है। समझौते के समय किसी भी धनराशि का भुगतान नहीं किया जाता है, केवल कुल धनराशि की लगभग 10% सुरक्षा मार्जिन धनराशि ली जाती है। आज से 60 दिन बाद, आयातक रु. 4,80,000 के बदले में 10,000 यू0एस0 डॉलर प्राप्त करेगा, चाहे उस तिथि पर स्पॉट विनिमय दर कुछ भी हों।

19.13 अग्रिम विनिमय दर को प्रभावित करने वाले कारक

i. ब्याज दरें।
ii. विदेशी विनिमय बाजार में सट्टे का अंश।
iii. स्फीति दर।
iv. घरेलू देश में विदेशी निवेशकर्ता का विश्वास।
v. देश की आर्थिक दशा।
vi. देश की राजनीतिक दशा।
vii. भुगतान सन्तुलन की दशा।

19.14 विनिमय दर निर्धारण के सिद्वान्त

भावी विनिमय दरों के निर्धारकों के सम्बन्ध में कई सिद्वान्त लिखे गए हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश सिद्धान्त इस बात के पर्याप्त कारण देते हैं कि मुद्राओं के बीच दरों का निर्धारण वास्तव में किसके द्वारा किया जाता है। यहँ पर, हम विनिमय दरों के निर्धारकों के सम्बन्ध में मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन कर रहे हैंः

1ः मांग एवं पूर्तिः वस्तुओं की भांति विनिमय दर अपनी कीमत का निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों से प्रतिक्रिया करते हुए निश्चित करती है। अतः, यदि किन्हीं कारणों से एक विशिष्ट मुद्रा के लिए लोग अपनी मांग बढा देते हैं (मांग रेखा D से D की ओर विवर्तित हो जाती है) तब कीमत बढकर A से B हो जायेगी, बशर्ते कि पूर्ति स्थिर रहे। इसके विपरित, यदि पूर्ति बढ जाती है (पूर्ति रेखा S से S1 हो जाती है) कीमत घटकर A से C रह जाती है, बशर्ते की मांग स्थिर रहे। (रेखाचित्र –1) कोई भी अतिरिक्त पूर्ति (संतुलन बिन्दु के ऊपर) अथवा अतिरिक्त मांग (सन्तुलन बिन्दु के नीचे) तदनुसार विदेशी विनिमय संचयों को बढा अथवा घटा देंगी, अन्ततः ऐसी असन्तुलन की स्थितियाँ कीमतों के माध्यम से अर्थात स्वयं बाजार के द्वारा समाप्त हो जाऐंगी।

रेखाचित्र : 1– विदेशी मुद्रा की मांग एवं पूर्ति

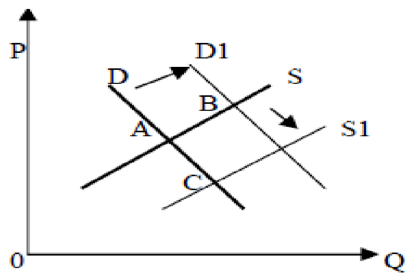

नोटः P: विनिमय दर को प्रदर्शित करता है,

Q: मुद्रा की मांग एवं पूर्ति को प्रदशित करता है।

A,B,C:संतुलन विनिमय दरों को प्रदर्शित करते हैं,

2: क्रय शक्ति समता (पी0पी0पी0)

पारिभाषिक रूप में पी0पी0पी0 यह व्यक्त करता है कि मुद्रा की एक इकाई का प्रयोग करके, माना कि यह एक यूरो इकाई है, जो कि विश्वव्यापक स्तर पर समान वस्तुऐं क्रय कर सकने की क्रय शक्ति है। सह सिद्धान्त 'एक समान कीमत के नियम' पर आधारित है, जो यह तर्क देता है कि यदि एक वस्तु की यूरो कीमत को विनिमय दर से गुणित किया जाता है (€/US$) तब इससे यू0एस0 डॉलर में वस्तुओं की समान कीमत उत्पन्न होगी। दूसरे शब्दों मे विनिमय दर 1/1.2 व्यक्त की गयी है, तो यूरोपियन यूनियन में जो माल €10 का होगा, उसे अमेरिकन में US$ 12 का होना चाहिए। अन्यथा, आरबिट्रेज लाभ उत्पन्न होगा। किन्तु अन्त में यह बाजार ही है जो मांग एंव पूर्ति के माध्यम से यूरो और यू0 एस0 डॉलर की कीमतों को तदनुसार संतुलन बिन्दु की ओर गतिमान करेगा। इस प्रकार एक मूल्य का नियम लागू हो जायेगा और यू0 एस0 डॉलर तथा यूरो के बीच में क्रय शक्ति समता बनी रहेगी। देशों के मध्य स्फैतिक अन्तराल भी वस्तुओं के मूल्यों पर उसके प्रभाव के शब्दों में समाप्त हो जाऐंगे, क्योंकि पी0पी0पी0 उनके कीमत स्तरों के अनुपात के समान समायोजित हो जाएगा। अधिक स्पष्ट रूप में, लुम्बी, एस0 एण्ड जोन्स, सी0 1999 ने अपनी पुस्तक में व्यक्त किया हैः **'उच्चतर स्फीति वाले देश की मुद्रा अन्य देश की मुद्रा के सापेक्ष लगभग स्फैतिक अन्तराल तक ह्रासित हो जाऐगी'।** निष्कर्ष के रूप में, यह कहा जा सकता है कि सिद्धान्त यद्यपि विनिमय दरों के निर्धारण के तरीके का पर्याप्त मात्रा मे वर्णन करता है, किन्तु, इस कारण अधिक महत्व का नहीं है क्योंकि इसके मुख्यतः दो दोष हैं, प्रथम, सभी वस्तुओं का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है और दूसरे, परिवहन लागतें वस्तु के मूल्य की एक छोटी सी धनराशि का प्रतिनिधित्व करती है।

3. भुगतान संतुलन (बी0ओ0पी0) दृष्टिकोण :

भुगतान संतुलन दृष्टिकोंण एक अन्य विधि है, जो यह व्याख्या करती है कि एक देश की मुद्रा की पूर्ति एवं मांग रेखाओं को क्या निर्धारित करता है? समष्टि अर्थशास्त्र से यह ज्ञात होता है कि भुगतान सन्तुलन एक देश के मौद्रिक लेन–देनों को एक विशिष्ट समयावधि के दौरान अभिलिखित करने की एक विधि हैं। अभिलिखित लेन–देनों को तीन वर्गो में विभाजित किया जाता हैः चालू खाते के लेन–देन, पूँजी खाते के लेन–देन तथा केन्द्रीय बैंक के लेन–देन। उपरोक्त वर्ग कमी अथवा आधिक्य प्रदर्शित कर सकते हैं, किन्तु सैद्धान्तिक रुप में समस्त कुल भुगतान (बी0ओ0पी0 का कुल योग) शून्य होना चाहिए, किन्तु ऐसा कम ही होता है। जैसा कि पूर्व में व्यक्त किया गया है, एक मुद्रा की कीमत का अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन (मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन) एक देश के आयातों एवं निर्यातों की मात्रा को प्रत्यक्ष रुप में प्रभावित करता है और परिणामस्वरुप, विनिमय दर में एक संभावित उच्चावचन बी0ओ0पी0 असन्तुलनों को बढ़ा देता है। उदाहरणार्थ एक संभावित अवमूल्यन (ह्रास) गृह देश की मुद्रा के शब्दों में निर्यातों के मूल्य में वृद्धि

कर देगा। (निर्यात मांग की लोच जितनी अधिक होगी, यह वृद्धि भी उतनी ही अधिक होगी)। इसके विपरीत आयात अपेक्षाकृत अधिक व्ययसाध्य हो जाऐंगे, और उनका मूल्य गृह देश की मुद्रा के शब्दों में कम हो जाएगा। (आयात मांग की लोच जितनी अधिक होगी, यह कमी भी उतनी ही अधिक होगी)।

J—वक्र प्रभाव यह बताता है कि अल्पकाल में मुद्रा का अवमूल्यन प्रारम्भिक रुप में चालू खाते के शेष को खराब कर देगा (अर्थात बिन्दु A से B तक) किन्तु तत्पश्चात स्थिति में सुधार होगा (अर्थात बिन्दु B से आगे रेखाचित्र 19.2)। ऐसा आयातों एवं निर्यातों की न्यून मांग की कीमत लोच के कारण होगा जो कि विनिमय दर परिवर्तन का तत्काल परिणाम होगा।

रेखाचित्र 19.2 :J—वक्र प्रभाव

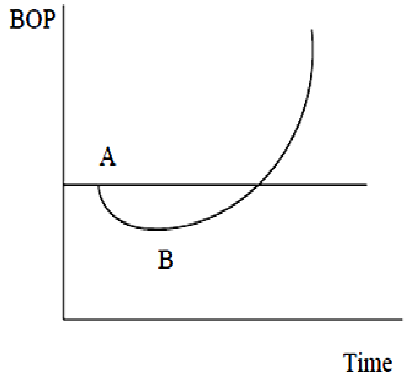

4. मौद्रिक दृष्टिकोंण:

इस दृष्टिकोंण में मुद्राओं के स्टाक पर, लोगों के द्वारा इस स्टाक को धारण करने की तत्परता की तुलना में ध्यान दिया जाता है। मौद्रिक सिद्धान्त के अनुसार, विनिमय दरें यह सुनिश्चित करने के लिए समायोजित होती है कि प्रत्येक मुद्रा की मात्रा की पूर्ति मांगी गयी मात्रा के समान होती है। मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (क्वांटिटी थ्यौरी ऑफ मनी या क्यू0टी0एम0) और क्रय शाक्ति समता सिद्धान्त (पी0पी0पी0) दोनों को उपरोक्त वर्णित सिद्धान्त के समर्थन में प्रयोग किया गया हैं। क्यू0टी0एम0 या परिमाण सिद्धान्त यह व्यक्त करता है कि मुद्रा की मात्रा और विक्रय की गयी वस्तु एवं सेवाओं के कीमत स्तर में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता हैं। दूसरे शब्दों में, अधिक मुद्रा अधिक स्फीति के समान होती है।

5. पोर्टफोलियों सन्तुलन दृष्टिकोंण

पोर्टफोलियों सन्तुलन दृष्टिकोंण विनियोक्ता की परिसम्पत्तियों के पोर्टफोलियों के विविधीकरण को ध्यान में रखता हैं। विविधीकरण वह तकनीक है जो विभिन्न वित्तीय प्रलेखों और सीमापार विभिन्न देशों दोनों में निवेश के द्वारा जोखिम को कम करने का प्रयास करती है। (इसके अन्य स्वरुप भी हो सकते हैं।) उदाहरणार्थ निम्नवत रेखाचित्र में हम घरेलू और विदेशी मुद्रा और घरेलू और विदेशी बाण्डों के संयोजन को ध्यान में रखते हैं, जिसके प्रभावों को निम्नवत प्रदर्शित किया गया हैं।

रेखाचित्र C : पोर्टफोलियों सन्तुलन दृष्टिकोंण

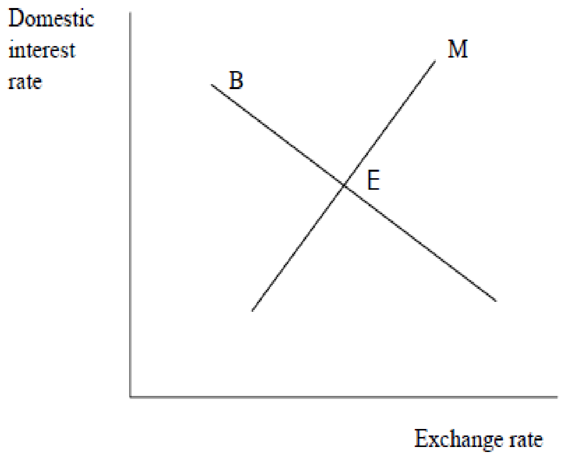

एम0 और बी0 दोनों वक्र घरेलू ब्याज दरों और विनिमय दरों के संयोग को व्यक्त करते हैं। ऊपर की रेखा M मुद्रा बाजार में संतुलन के समान है और नीचे की रेखा B बाण्ड बाजार में संतुलन के समान है बिन्दु E जो कि M और B के कटाव पर है, ब्याज दरों के विनिमय दरों के साथ संयोग को व्यक्त करता है जो मुद्रा और ब्राण्ड दोनों बाजारों के संतुलन को प्रदर्शित करता है। यह सिद्धान्त यह तर्क देता है कि मुद्रा आपूर्ति में किसी वृद्धि से विनिमय दर में अवमूल्यन उत्पन्न होता है। अवमूल्यन की सीमा M और B रेखाओं के ढाल पर निर्भर करती है, उदाहरणार्थ, यदि हम घरेलू मुद्रा पूर्ति में वृद्धि पर विचार करते हैं, तो हम यह प्रत्याशा करेंगे कि एक कम ब्याज दर और/या एक उच्च विनिमय दर अतिरिक्त पूर्ति को अवशोषित कर सकती है जो कि बाद में बाण्डों में कमी उत्पन्न करेगी। इस सीमा तक, Mरेखा दायीं ओर तथा Bरेखा बायीं ओर गतिमान होगी।

19.15 आरबिट्रेज

आरबिट्रेज एक साथ एक बाजार में एक मुद्रा को क्रय करने तथा दूसरे बाजार में इसे विक्रय कर, विनिमय दरों में दो बाजारों में अंतराल का लाभ उठा कर, लाभ अर्जित करने की क्रिया है। यदि आरबिट्रेज दो बाजारों तक सीमित है, तब इसे 'दो बिन्दुओ' वाला आरबिट्रेज कहते है। यदि यह तीन, अथवा अधिक बाजारों तक विस्तृत होता है, तो इसे 'तीन बिन्दुओ' अथवा 'बहुबिन्दु' आरबिट्रेज कहा जाता है। आरबिट्रेज में व्यवहार कर्ताओ को आरबिट्रेजर्स कहा जाता है। एक मुद्रा की एक स्पॉट बिक्री जब एक एकल सौदे में अग्रिम पुर्नक्रय के साथ संयोजित होती है, तो इसे 'करेन्सी स्वैप' कहा जाता है। स्वैप दर, करेन्सी स्वैप में, स्पॉट एवं अग्रिम विनिमय दरों का अन्तर होती है। आरबिट्रेज अवसर विदेशी विनिमय बाजार में विद्यमान होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि विनिमय दर 1US $=रु. 50 अमेरिकी बाजार में है और भारतीय बाजार में यह 1US $=रु.55 है, तब एक आरबिट्रेजर अमेरिकी बाजार में डॉलर क्रय कर सकता है और भारतीय बाजार में बेचकर 5 रु. प्रति डॉलर का लाभ अर्जित कर सकता है। आज के सुविधाजनक दंग से जुड़े एवं अत्याधुनिक बाजार में, आरबिट्रेजर्स (जोकि मुख्यतः बैंक होते हैं) इसे तत्काल चिन्हित कर लेते है और इस अवसर का लाभ उठाते हैं। एक समयावधि में ऐसे अवसर समाप्त हो जाते हैं और सन्तुलन पुनः स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ,

Bank A रु. /$ = 50.50/50.55

Bank B रु./$ = 50.40/50.45

उपरोक्त दरें बहुत निकट हैं। आरबिट्रेजर्स इसका लाभ उठा सकते हैं और वह बैंक B से 50.55 प्रति डॉलर की दर पर 1 लाख डॉलर क्रय करके, उसे बैंक A को 50.50 प्रति डॉलर की दर पर बेचकर, इस प्रकार प्रति डॉलर 0.05 रु. का लाभ अर्जित कर सकते हैं। कुल लाभ (1,00,000×0.05= 5,000) होगा। यह लाभ बिना किसी जोखिम और पूँजी के अर्जित हुआ हैं।

19.16 आरबिट्रेज एवं ब्याज दरें

ब्याज आरबिट्रेज से आशय घरेलू बाजार और विदेशी बाजारों में ब्याज दरों का अन्तर है। यदि विदेशी बाजार में ब्याज दरें देशी बाजार से ऊँची है, तो एक निवेशकर्ता ब्याज के अन्तर का लाभ उठाने के लिए विदेशी बाजार में निवेश कर सकता है। ब्याज आरबिट्रेज सुरक्षित अथवा असुरक्षित हो सकता हैं।

1. **असुरक्षित आरबिट्रेजः** इस प्रणाली में, आरबिट्रेजर्स विदेशी बाजार में उच्च ब्याज वाली जोखिम रहित प्रतिभूतियों में निवेश के द्वारा लाभ अर्जित करने का जोखिम लेता है। उस के लाभ उसकी गणना के अनुसार होंगे, यदि जिस देश में उसने निवेश किया है, उसकी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं होता है। यदि अवमूल्यन ब्याज दरों में अन्तर के समान होता है, तो निवेशकर्ता को हानि नहीं होगी। किन्तु यदि अवमूल्यन ब्याज दरों से अधिक होता है, तब आरबिट्रेजर को हानि उठानी पड़ेगी।

2. **सुरक्षित आरबिट्रेजः** अन्तर्राष्ट्रीय निवेशकर्ता विदेशी विनिमय जोखिम से बचना चाहेंगे, अतः ब्याज आरबिट्रेज सामान्यतः सुरक्षित होती है। निवेशकर्ता घरेलू मुद्रा को विदेशी मुद्रा में चालू स्पॉट दर पर निवेश के उद्देश्य से परिवर्तित करता है। ठीक उसी समय, निवेशकर्ता निवेश की जा रही धनराशि एवं ब्याज की विदेशी मुद्रा को अग्रिम बेच देता है। ताकि विदेशी निवेश की परिपक्वता के अनुसार आय अर्जित कर सके। अतः सुरक्षित ब्याज आरबिट्रेज से अभिप्राय निवेश करने के लिए विदेशी मुद्रा के स्पॉट क्रय से है और विदेशी विनिमय जोखिम के प्रति सुरक्षा करने के लिए विदेशी मुद्रा का अग्रिम विक्रय एक साथ करके इसकी क्षतिपूर्ति व्यवस्था करने से है। जब ट्रेजरी बिल परिपक्व होंगे तो विनियोक्ता विदेशी विनियोग एवं ब्याज के बराबर घरेलू मुद्रा प्राप्त करेंगे और विदेशी विनिमय जोखिम से भी सुाक्षित रहेंगे।

19.17 सारांश

विदेशी विनिमय बाजार वह संरचना है, जिसके द्वारा फर्म का एक व्यक्ति एक देश से दूसरे देश में क्रय शक्ति हस्तान्तरित करता है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लेन–देनों के लिए साख प्राप्त या प्रदान करता है और विदेशी विनिमय जोखिम को न्यूनतम करता है। एक विदेशी विनिमय सौदा क्रेता एवं विक्रेता के बीच एक समझौता है कि एक मुद्रा की दी हुई धनराशि की निर्धारित दर पर दूसरी मुद्रा के बदले में सुपुर्दगी की जाऐगी, एक विदेशी विनिमय दर विदेशी मुद्रा की कीमत होती है। एक विदेशी विनिमय मूल्य उद्धरण अथवा मूल्य निर्ख एक पूर्व घोषित दर पर क्रय अथवा विक्रय करने का कथन होता हैं। विदेशी विनिमय बाजार दो स्तरों से निर्मित होता हैः अन्तर्बैंक या थोक बाजार और ग्राहक अथवा फुटकर बाजार, प्रतिभागियों में बैंक एवं गैर विदेशी विनिमय डीलर्स, व्यावसायिक एवं निवेश सौदे

करने वाले व्यक्ति एवं संस्थाऐं, सटोरिये और आरबिट्रेजर्स, केन्द्रीय बैंक एवं कोषागार, और विदेशी विनिमय दलाल सम्मिलित होते है। लेन–देन या तो स्पॉट आधार पर अथवा अग्रिम या स्वैप आधार पर क्रियान्वित किए जाते है। एक स्पॉट लेन–देन एक लगभग तात्कालिक वैल्यू तिथि के लिए किया जाता है। जबकि एक अग्रिम सौदा भविष्य की किसी वैल्यू तिथि के लिए होता है। मूल्य उद्धरणों को यूरोपियन और अमेरिकन टर्म्स अथवा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उद्धरणों की तरह वर्गीकृत किया जा सकता है। एक क्रास दर (आड़ी दर) वह विनिमय दर होती है जिसकी गणना दो देशों की मुद्राओं के बीच, किसी तीसरे देश से उनके सामान्य सम्बन्धों से की जाती है। आरबिट्रेज एक बाजार में एक मुद्रा का एक साथ क्रय और दूसरे बाजार में उसे विक्रय करके विनिमय दरों के दो बाजारों में अन्तरों का लाभ उठाकर लाभ अर्जित करने की क्रिया हैं।

19.18 शब्दावली

विदेशी विनिमय :विदेशी विनिमय से आशय एक देश के द्वारा दूसरे देशों को भुगतान करने के लिए धारित विदेशी मुद्राओं से हैं।

विदेशी विनिमय बाजार : वह संरचना है, जिसके द्वारा फर्म का एक व्यक्ति एक देश से दूसरे देश में क्रय शक्ति हस्तान्तरित करता है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लेन–देनों के लिए साख प्राप्त या प्रदान करता है और विदेशी विनिमय जोखिम को न्यूनतम करता है।

स्पॉट विनिमय–दरःजब विदेशी विनिमय को तत्काल सुपुर्दगी हेतु क्रय एवं विक्रय किया जाता है, तो इसे स्पॉट विनिमय कहा जाता है।

स्वैप सौदा :एक स्वैप सौदे में दो विभिन्न 'वैल्यू' तिथियों के लिए विदेशी विनिमय की दी हुई धनराशियों के एक साथ क्रय एवं विक्रय सम्मिलित होते हैं।

'फ्यूचर' संविदाःएक भावी संविदा दो पक्षकारों के बीच में एक सम्पत्ति को भविष्य में निश्चित समय एवं निश्चित कीमत पर क्रय एवं विक्रय करने का एक समझौता है।

प्रत्यक्ष मूल्य उद्धरणः विदेशी मुद्रा की एक इकाई के बदले में घरेलू मुद्रा की कीमत होती है।

क्यू0टी0एम0 : मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (क्वांटिटी थ्यौरी ऑफ मनी)

पी0पी0पी0 : क्रय शाक्ति समता सिद्धान्त

स्विफ्ट : विश्वव्यापी अर्न्त बैंक वित्तीय दूरसंचार सोसाइटी

बी0ओ0पी0 : भुगतान संतुलन

19.19 बोध प्रश्न

(अ) **सत्य अथवा असत्य लिखिए।**

1. स्टॉक एवं वस्तु विपणियों के समान, विदेशी विनिमय बाजार एक निश्चित मिलने के स्थान और औपचारिक लाइसेन्सिंग आवश्यकताओं के साथ एक संगठित संरचना हैं।
2. अधिकांश विदेशी विनिमय सौदे व्यापारिक बैंकों और घरेलू ग्राहकों के बीच में होते हैं।
3. विदेशी विनिमय दलाल व्यापारिक बैंकों को विदेशी विनिमय व्यापार संचालित करने और विदेशी विनिमय का वांछित शेष बनाए रखने में

सहायता करते हैं।

4. एक व्यक्ति जिसे तत्काल विदेशी विनिमय की आवश्यकता है, इसे स्पॉट बाजार पर क्रय करेगा।
5. अधिकांश विदेशी विनिमय व्यापार अग्रिम बाजार में किया जाता हैं।
6. व्यापारिक बैंको के मध्य स्वैप लेन–देनों में, एक मुद्रा का दूसरे मुद्रा में एक बिन्दु पर परिवर्तन इस समझौते के साथ कि इसे भविष्य में किसी बिन्दु पर मूल मुद्रा में वापस पुर्नपरिवर्तित किया जायेगा, सन्निहित होता है।
7. बिड दरों से आशय उस दर से है जिस पर बैंक विदेशी मुद्रा की एक इकाई बेचने को तत्पर होता है और प्रस्ताव दर वह कीमत है जिस पर बैंक विदेशी विनिमय की एक इकाई क्रय करने हेतु तैयार रहता हैं।
8. एक व्यापारिक बैंक को विदेशी विनिमय व्यापार से तब लाभ होता है जब उसकी बिड दर प्रस्ताव दर से अधिक होती हैं।

(ब) बहुविकल्पी प्रश्न

1. विदेशी विनिमय बाजार से आशय एक ऐसे बाजार से है जहाँ एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा के साथ विनिमय की जाती है। मुद्रा विनिमय प्रायः निम्नांकित विधियों से किया जाता है।
   (अ) क्रेता एवं विक्रेता एक भौतिक स्थान पर मिलते हैं।
   (ब) क्रेता एवं विक्रेता टेलीफोन नैटवर्क के माध्यम से मिलते हैं।
   (स) क्रेता एवं विक्रेता कम्प्यूटर संचार के माध्यम से मिलते हैं।
   (द) (अ) और (ब)
   (य) (ब) और (स)
2. निम्नलिखित में से कौन सा प्रतिभागी विदेशी विनिमय बाजार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिभागी कहा जा सकता हैः
   (अ) फुटकर ग्राहक
   (ब) व्यापारिक बैंक
   (स) विदेशी विनिमय डीलर
   (द) केन्द्रीय बैंक
   (य) उपयुर्क्त में कोई नहीं।
3. मुद्राओं में व्यापार की किसी विधि में एक मुद्रा को दूसरी मुद्रा में एक बिन्दु पर परिवर्तन इस समझौते के अन्तर्गत होता है कि इसे किसी भावी बिन्दु पर मूल मुद्रा में पुनः परिवर्तित किया जा सकता है, सन्निहित होता हैः
   (अ) अग्रिम सौदा
   (ब) भावी सौदा
   (स) स्पॉट सौदा
   (द) स्वैप सौदा
4. अधिकांश विदेशी विनिमय व्यापार बैंकों और...............के बीच में होता हैः
   (अ) राष्ट्रीय सरकारों
   (ब) अन्य बैंक
   (स) निगमों

(द) घरेलू निवेशकों

5. अन्तर्बैंक विदेशी विनिमय बाजार में,..............दर से आशय उस कीमत से है जो बैंक विदेशी विनिमय पर एक इकाई के लिए भुगतान करने को तत्पर है।
   (अ) प्रस्ताव दर
   (ब) बिड दर
   (स) स्प्रैड दर
   (द) सौदा दर
6. निम्नांकित में से कौन सट्टे की विशेषता नहीं हैं:
   (अ) लाभ उद्देश्य
   (ब) विनिमय दर उच्चावचन
   (स) हैजिंग
   (द) जोखिम लेना
   (य) जान बूझकर असुरक्षित स्थिति लेना

19.20 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1.असत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.सत्य 5.असत्य 6.सत्य 7.असत्य 8.असत्य

(ब) 1.(स) 2.(द) 3.(द) 4.(ब) 5.(ब) 6.(स)

19.21 स्वपरख प्रश्न

1. विदेशी विनिमय बाजार को परिभाषित कीजिए। विदेशी विनिमय बाजार के क्या कार्य है?
2. विदेशी विनिमय बाजार के मुख्य प्रतिभागी बताइए?
3. स्विफ्ट क्या है? विदेशी विनिमय बाजार में इसकी भूमिका को समझाइए।
4. विदेशी विनिमय बाजारों के प्रकार कौन से है? विदेशी विनिमय बाजार में प्रयुक्त मूल्य उद्धरणों को समझाइए।
5. विदेशी विनिमय दरों के निर्धारक कौन से है? विदेशी विनिमय दरों के मुख्य प्रकारों को समझाइए।
6. विदेशी विनिमय दरों के निर्धारण के सिद्धान्तों को समझाइए।
7. आरबिट्रेज को परिभाषित कीजिए और आरबिट्रेज एवं ब्याज दरों के मध्य सम्बन्ध बताइए।

19.22 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Sundaram, Anant K. and J. Stewart Black, The International Business Environment: Text and Cases, Prentice Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi.
2. Cherunilam Francis, International Business: Text and Cases, Prentice Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi.
3. Jain, Yadav & Peyrard, Foreign Exchange Market, Macmillan Publishers India ltd. New Delhi.

इकाई 20 आई0एस0–एल0एम0–बी0ओ0पी0 वक्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना
20.2 विदेशी विनिमय आई0एस0–एल0 एम0–बी0ओ0पी0 वक्र की चित्रमय व्याख्या
20.3 गणितीय समीकरण एवं आई0एस0–एल0एम0–बी0ओ0पी0 मॉडल के संघटक
20.4 मॉडल की संरचना
20.5 आई0एस0–एल0एम0 से अन्तर
20.6 सारांश
20.7 शब्दावली
20.8 बोध प्रश्न
20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
20.10 स्वपरख प्रश्न
20.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- आई0एस0 / एल0एम0 मॉडल तथा मौद्रिक नीति पर इसके प्रभाव को समझ सकें।
- आई0एस0–एल0एम0–बी0ओ0पी0 वक्र के संघटकों की व्याख्या कर सकें।
- आई0एस0 / एल0एम0 मॉडल की संरचना को समझ पायेंगे और मॉडल की क्रियाविधि की आई0एस0–एल0एम0–बी0ओ0पी0 बिन्दुरेख के शब्दों में व्याख्या कर सकें, और
- स्थिर एवं परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्था में आई0एस0–एल0एम0–बी0ओ0पी0 वक्र के निर्धारण को समझ सकें।

20.1 प्रस्तावना

आई0एस0–एल0एम0 मॉडल, जो सर जॉन हिक्स और एल्विन हेन्सन के द्वारा विकसित किया गया, 1937 के उत्तर काल में केन्सवाद के मुख्य भाग को सारांकित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसे प्रथम चतुर्भुज में दो परस्पर काटती हुई रेखाओं के बिन्दुरेख के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। क्षैतिज अक्ष, जो Y के द्वारा दिखाया गया है, राष्ट्रीय आय अथवा वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद को प्रदर्शित करता है । लम्बवत अक्ष वास्तविक ब्याज दर 'आई' (i) को व्यक्त करता है। आई0एस0 अनुसूची को नीचे गिरते हुए ढाल वाले वक्र के रूप में प्रांकित किया गया है। प्रारम्भिक आई0एस0 निवेश / बचत साम्य' को व्यक्त करता है, किन्तु 1937 और उसके बाद से यह समस्त साम्य बिन्दुओं के परिपथ को प्रदर्शित करता है, जहॉ कुल व्यय (उपभोग व्यय + नियोजित निजी निवेश + सरकारी क्रय + शुद्ध निर्यात) एक अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन (आय Y अथवा जी0डी0पी0 के बराबर) के समान हो जाता है। ऐतिहासिक अर्थ से सम्बन्ध रखते हुए, आई0एस0 वक्र उस साम्य को प्रदर्शित करता है जहॉ कुल निजी निवेश, कुल

बचत के बराबर हो जाता है, जहॉ कुल बचत, उपभोक्ता बचत + सरकारी बचत (बजट आधिक्य)+ विदेशी बचत (व्यापार आधिक्य) के बराबर होती है। दोनों ही स्थितियों में साम्य की दशा में सभी व्यय वांछित एवं नियोजित होते हैं, कोई भी अनियोजित स्टॉक संग्रह नहीं होता (अर्थात वस्तुओं एवं सेवाओं की सामान्य अति आपूर्ति नहीं होती है। वास्तविक जी0डी0पी0 का स्तर (Y) इस रेखा पर ब्याज की प्रत्येक दर के सापेक्ष निर्धारित होता है। इस प्रकार आई0एस0 अनुसूची वास्तविक (गैर–वित्तीय) अर्थव्यवस्था में साम्य बिन्दुओं का परिपथ होता है।

स्थिर निवेश पर प्रत्याय के विषय में प्रत्याशायें दी हुई होने पर, ब्याज का प्रत्येक स्तर

(i) नियोजित स्थिर निवेश और अन्य ब्याज संवेदी व्ययों के निश्चित स्तर को उत्पन्न करेगा, कम ब्याज दरें, उच्चतर स्थिर निवेश को प्रेरित करेंगी और इसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करेंगी। एक दी हुई ब्याज की दर पर आय साम्य स्तर पर तब होगी, जब उपभोक्ता की उस आय में से की गयी बचत निवेश के बराबर होगी (अथवा अधिक होगी, जब चक्रीय प्रवाह से 'रिसाव' ठीक जान बूझकर किये गये निवेशों (इन्जैक्सन्स) के समान होंगे)। एक दी हुई ब्याज दर पर एक उच्चतर स्तर की बचत, उच्चतर स्तर की आय उत्पन्न करने हेतु आवश्यक है (अर्थात रिसाव)। वैकल्पिक रूप में, स्थिर निवेशों में एक वृद्धि का गुणक प्रभाव वास्तविक जी0डी0पी0 में वृद्धि कर देगा। कुल मिलाकर यह रेखा गिरते हुए ब्याज दरों का बढ़ती हुई नियोजित स्थिर निवेश के प्रति और बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय और उत्पादन के प्रति कारण–परिणाम के सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।

एल0एम0 अनुसूची एक ऊपर की ओर उठते हुए ढाल का वक्र है जो वित्त और मुद्रा की भूमिका को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भिक एल0एम0'' तरलता अधिमान/मुद्रा पूर्ति साम्य'' को अभिव्यक्त करता है किन्तु यह मुद्रा को धारित करने की मांग (नैत्यिक कार्यो के सम्पादन हेतु मुद्रा को एक सम्पत्ति के रूप में रखने की मांग) और बैंकों तथा केन्द्रीय बैंक के द्वारा मुद्रा की आपूर्ति के बीच साम्य को सरलता से समझने के लिए है। ब्याज दर इस रेखा पर दिये हुए जी0डी0पी0 के प्रत्येक स्तर पर निर्धारित होती है। एक बन्द अर्थव्यवस्था में, IS वक्र को $y=C\ (Y-T)+I(r)+G$ की तरह परिभाषित किया जा सकता है, जहॉ y आय को प्रदर्शित करता है, $c(y-T)$, व्यय योग्य आय (आय करों को घटाकर) के फंक्शन के रूप में उपभोक्ता के व्ययों को प्रदर्शित करता है। $I(r)$ वास्तविक ब्याज दरों के फंक्शन के रूप में निवेश को प्रदर्शित करता है तथा G सरकारी व्यय को प्रदर्शित करता है। इस समीकरण में, G और T वाहय कारक मान लिए गये हैं। इस प्रकार LM वक्र को $M/P=L(r, y)$ के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जहॉ मुद्रा की पूर्ति को वास्तविक मुद्रा शेष M/P (मुद्रा के नाममात्र अवशेष के विपरीत) के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जो मुद्रा की मांग के बराबर होती , L ब्याज दरों एवं आय स्तरों का फंक्शन प्रदर्शित करता है। इस मॉडल को एक खुली अर्थव्यवस्था में अपनाने पर शुद्ध निर्यात (निर्यात x- आयात M) को IS समीकरण में जोड़ा जाना होगा। बढ़ती हुई जी0डी0पी0 आय, GDP(Y) का आशय है– मुद्रा एवं तरलता अधिमान हेतु बढ़ती हुई सौदों की मांग। एक दिये हुए और

बेलोच मुद्रा पूर्ति वक्र से साम्य ब्याज दरों में वृद्धि होती है। इससे LM वक्र का ढाल ऊपर को उठता हुआ होता है। इन अनुसूचियों के मिलान बिन्दुओं पर वास्तविक एवं मौद्रिक क्षेत्रों में (यद्यपि श्रम बाजार जैसे अन्य क्षेत्रों में आवश्यक रूप से नहीं) अल्पकालीन साम्य प्रदर्शित होता है। उत्पाद बाजार एवं मुद्रा बाजार दोनों साम्य पर होते हैं। यह साम्य ब्याज दरों एवं वास्तविक जी0डी0पी0 के अनोखे संयोजनो को उत्पन्न करता है।

केन्स की एक मान्यता यह थी कि सरकार के घाटे पर व्यय करने का प्रभाव कम बचत दर अथवा अधिक निजी स्थायी निवेश पर राष्ट्रीय आय के लिए कुल मांग की धनराशि को बढ़ाने हेतु प्रत्येक व्यक्तिगत ब्याज दर के स्तर की तरह होता है। राष्ट्रीय सरकार का बढ़ा हुआ घाटा IS वक्र को दायीं ओर विवर्तित (शिफ्ट) कर देता है। इससे साम्य ब्याज दर बढ़कर i 1 से i 2 हो जाती है। और राष्ट्रीय आय Y1 से Y2 हो जाती है। इस रेखाचित्र में अर्थव्यवस्था को गतिमान करने के तरीके के रूप में घाटे पर व्यय करने की प्रमुख आलोचना भी प्रदर्शित होती हैः बढ़ती हुई ब्याज दरों से भीड़ छॅंट जाती है अर्थात निजी स्थायी निवेश हतोत्साहित होते हैं, जिससे पूर्ति पक्ष की दीर्घकालनी संवृद्धि (प्रत्याशित उत्पादन) को आघात पहॅुच सकता है। केन्सवादियों का प्रत्युत्तर यह है कि घाटे पर व्यय से निजी स्थायी निवेश त्वरक के प्रभाव से संकेन्द्रित अथवा प्रोत्साहित होते हैं, जो दीर्घकालीन संवृद्धि से सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि सरकारी घाटे को उत्पादक सार्वजनिक निवेश पर व्यय किया जाय (अर्थात अवस्थापना अथवा सार्वजनिक स्वास्थय पर) तो वह प्रत्यक्ष रूप से एवं परिणामतः प्रत्याशित उत्पादन में अभिवृद्धि करता है। IS-LM मॉडल मौद्रिक नीति की भूमिका को भी अनुमति प्रदान करता है। यदि मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होती है ,तो इससे LM वक्र दायीं ओंर विवर्तित हो जाता है, जिससे ब्याज दर कम हो जाती है और साम्य राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ जाता है कुल मिलाकर इसमें , कीमत स्तर को स्थिर माना जाता है और स्फीति को विचार में नही लिया जाता है BP वक्र भुगतान संतुलन वक्र है इसमें y को क्षैतिज अक्ष –x पर तथा ब्याज दरों बनाम विदेशी ब्याज दरों को लम्बवत –y अक्ष पर प्रदर्शित किया जाता है। स्थिर या परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्थाओं में घरेलू और विदेशी दोनों विनिमय दरों के दिये हुए होने पर यह कोषों की लागत हैं। BP वक्र y एवं r के उन समस्त संयोगों को प्रदर्शित करता है,जो केन्द्रीय बैंक के हस्तक्षेप के अभाव में बाजार विनिमय दरों को अपरिवर्तित रखते हैं।

IS-LMमॉडल मौद्रिक नीति का प्रभाव

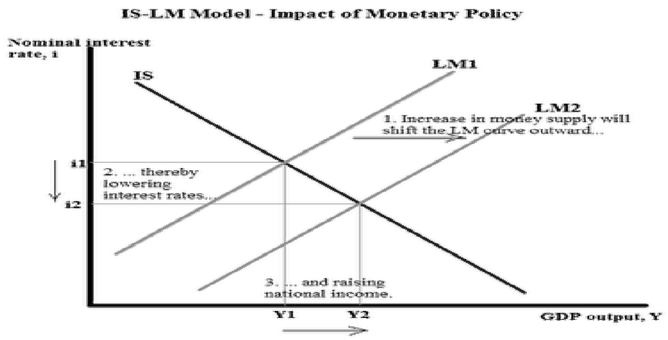

20.2 विदेशी विनिमय आई0एस0–एल0एम0 –बी0ओ0पी0 वक्र की चित्रमय व्याख्या

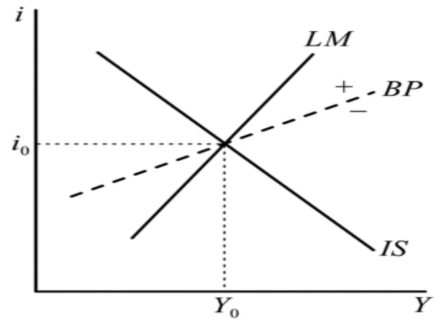

चरों का वर्णनः

Y	राष्ट्रीय आय और उत्पादन	E	विनिमय दर (विदेशी मुद्रा की घरेलू मुद्रा में कीमत)
I	ब्याज दर (वास्तविक =नाममात्र, क्योंकि कीमतें स्थिर रहती है)	K	वाह्य पूँजी अर्न्तप्रवाह
IS	वस्तु बाजार साम्य (निवेश=बचतें)	G	सरकारी व्यय
LM	मुद्रा बाजार साम्य (मुद्रा की मांग L पूर्ति के बराबर होती है)	M	मुद्रा पूर्ति
BP	भुगतान संतुलन (बी0ओ0पी0) वक्र		

व्याख्याः

साम्य IS और LM के कटाव बिन्दु पर होता है, मूल्य स्थिरता हेतु निर्धारित एक विनिमय दर पर यह BP वक्र से पृथक रह सकता है, जो इस बात का संकेतक है, कि बी0ओ0पी0 आधिक्य की स्थिति में ऊपर तथा कमी की स्थिति में नीचे होता है। परिवर्तनशील विनिमय दरों के साथ, एक द्वितीयक विनिमय दरों का समायोजन E , तीनों वक्रों को इस प्रकार गतिमान करता है, ताकि यह एक बिन्दु

पर परस्पर मिल सके, जिससे विनिमय बाजार में साम्य स्थापित हो सके । रेखाचित्र में वाहय परिवर्तनों के निम्नांकित प्रभाव प्रदर्शित होते हैं (जो यह मान्यता करते है कि पूँजी अपेक्षाकृत गतिशील होती है और विनिमय बाजार हस्तक्षेपों को समाप्त कर दिया गया है) ।

राजकोषीय विस्तारः

सरकारी व्यय में एक वृद्धि अथवा कर में कमी IS वक्र को दायीं ओर विवर्तित कर देती है। एक स्थिर विनिमय दर के साथ इसके परिणाम स्वरूप आय और ब्याज दर दोनों बढ़ती है ब्याज दरों में वृद्धि पूँजी प्रवाह को आकर्षित करती है जो कि अपेक्षाकृत गतिशील पूँजी के माध्यम से बी0ओ0पी0 आधिक्य सृजित करने के लिए पर्याप्त है । परिवर्तनशील ब्याज दर के साथ यह घरेलू मुद्रा के लिए अतिरिक्त मांग है जो इस प्रकार बढ़ती है । इस वृद्धि से आय और ब्याज दरों दोनों में वृद्धि और अधिक हो जाती है।

मौद्रिक प्रसारः

मुद्रा पूर्ति में एक वृद्धि एल0एम0 वक्र को दायीं ओर विवर्तित कर देती है जिससे आय में वृद्धि एवं ब्याज दर में कमी होती है। एक स्थिर विनिमय दर पर इन दोनों परिवर्तनों से बी0ओ0पी0 घाटे में योगदान होता है। परिवर्तनशील विनिमय दर पर यह घरेलू मुद्रा की अतिरिक्त आपूर्ति है, जिससे उसका अपना मूल्य ह्रासित या कम होता है। इस अवमूल्यन से आय पुनः बढ़ती है किन्तु ब्याज दर में कमी आती है।

अवमूल्यनः

स्थिर विनिमय दर के अवमूल्यन से घरेलू वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है, जिससे IS वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाता है किन्तु इससे बी0पी0 वक्र भी नीचे की ओर आता है और बी0ओ0पी0 आधिक्य उत्पन्न होता है (यह J- वक्र की सम्भावना को घ्यान में नहीं रखता है)।

पूँजी अर्न्तप्रवाहः

एक वाहय पूँजी अर्न्तप्रवाह का स्थिर विनिमय दर के अन्तर्गत आई0एस0 अथवा एल0एम0 वक्र पर कोई प्रभाव नहीं होता है। क्योंकि केन्द्रीय बैंक ब्याज दर पर इसके प्रभाव को निष्प्रभावित कर देता है। इससे केवल बी0ओ0पी0 आधिक्य ही उत्पन्न होता है किन्तु परिवर्तनशील विनिमय दर से इस आधिक्य के कारण विनिमय दर में वृद्धि होती है जिससे मांग में कमी आती है और आई0एस0 वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जाता है। इस प्रकार पूँजी अर्न्तप्रवाह आय एवं ब्याज दरों में परिवर्तनशील विनिमय दरों के अर्न्तगत कमी करता है ।

रेखाचित्र की व्याख्याः

1– एल0एम0 बी0पी0 वक्रों के सापेक्षिक ढाल इनमें से कुछ परिणामों के लिए महत्वपूर्ण हैं। प्रदर्शित स्थिति यह मान कर चलती है कि अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर पूँजी पर्याप्त गतिशील है इस कारण से बी0पी0 वक्र एल0एम0 वक्र से अधिक समतल है । पूर्ण पूँजी गतिशीलता की एक सिरे की स्थिति में बी0पी0 वक्र समतल होगा।

2–उपर्युक्त दो प्रदर्शित स्थितियों के अतिरिक्त हम प्रतिबन्धहीन स्थिर विनिमय दरों की स्थिति पर भी विचार कर सकते हैं। ऐसी दशा में जब कभी बी0ओ0पी0 गैर

साम्य की स्थिति में होगा, मुद्रा पूर्ति भी परिवर्तित हो जायेगी अर्थात वह आधिक्य होने पर बढ़ेगी और घाटे की स्थिति में कम हो जायेगी (जिससे रेखाचित्र में (+) और (–) के चिन्हों के द्वारा प्रदर्शित किया गया है) अतः एल0एम0 वक्र तब तक विवर्तित होगा, जब तक तीनों वक्र एक साथ नहीं काटते हैं।

3– विनिमय दर अवमूल्यन (या ह्रास) को आई0एस0 एव बी0पी0 वक्रों ,दोनों के दायीं ओर विवर्तित होने के रूप में प्रदर्शित किया गया है इसके लिए यह आवश्यक है कि आयात मांग की लोच, मार्शल– लर्नर दशाओं को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त अधिक होनी चाहिए। इसके बिना जैसा कि प्रायः अल्पकाल में होता है, दोनों अन्य दिशा में विवर्तित होंगे । यह J वक्र का एक सम्भावित कारण है, जिससे अल्पकाल में व्यापार संतुलन बिगड़ जायेगा। साथ ही समग्र मांग में कमी आ जायेगी।

4– विदेशों में व्यापार नीति से व्यापार चक्र उच्चावचनों तक के विभिन्न कारणों में से किसी मेंपरिवर्तन के कारण निर्यातों और/अथवा आयातों में हुए वाहय परिवर्तनों का , स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत, वैसा ही प्रभाव होगा जैसा उपर्युक्त प्रदर्शित अवमूल्यन के अर्न्तगत होता है, किन्तु परिवर्तनशील विनिमय दरों के अर्न्तगत यह जानने की आवश्यकताओं के कारण कि विनिमय दर में परिवर्तन पूँजी प्रभाव को किस प्रकार परिवर्तित करेंगे, यह विषय और अधिक जटिल हो जाता है। अन्य बातों के साथ–साथ अपेक्षाओं की प्रकृति पर निर्भर रहते हुए कुछ भी और कुछ नही भी सम्भव हो सकता है, विशेष रूप से यह हो सकता है कि निर्यातों में वाहय वृद्धि का प्रभाव व्यापार संतुलन और समग्र मांग पर इसके प्रभाव से विनिमय दर में वृद्धि के द्वारा पूर्णतः समायोजित हो जाय ।

5– यह मॉडल समस्त दिये हुए विदेशी चरों को इस मान्यता के अर्न्तगत सम्मिलित करता है कि यह एक लघु खुली अर्थव्यवस्था है। यदि ऐसी स्थिति नही है , तो एक देश में व्यापार और पूँजी प्रवाहों के प्रति विदेशी प्रतिक्रिया से विदेशी प्रभाव उत्पन्न होंगे और परिणामों में तद्नुसार परिवर्तन हो सकता है।

20.3 गणितीय समीकरण एवं आई0एस0–एल0एम0–बी0ओ0पी0 मॉडल के संघटक

IS-LM-BOP मॉडल जिसे मुंडेल–फ्लेमिंग मॉडल के नाम से भी जाना जाता है, एक आर्थिक मॉडल है, जिसका प्रतिपादन राबर्ट मुंडेल और मार्कस फ्लेमिंग के द्वारा किया गया, यह मॉडल IS-LM मॉडल का एक विस्तार है। जहॉ परंपरागत IS-LM मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था के साथ व्यवहार करता है, IS-LM-BOP मॉडल खुली अर्थव्यवस्था की सामान्य विनिमय दर, ब्याज दर और उत्पादन के बीच अल्पकालीन सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है, जबकि इसके विपरीत IS-LM मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत केवल ब्याज दर और उत्पादनके बीच सम्बन्धों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। IS-LM-BOP मॉडल यह तर्क करने के लिए प्रयोग किया जाता है कि एक अर्थव्यवस्था एक साथ एक स्थिर विनिमय दर, पूॅजी का स्वतन्त्र प्रवाह और स्वतन्त्र मौद्रिक नीति को बनाये नहीं रख सकती है। इस सिद्धान्त को बहुधा 'असम्भव त्रिमूर्ति' 'अपवित्र त्रिमूर्ति' 'असंगत त्रिमूर्ति' अथवा मुंडेल फ्लेमिंग त्रिकोण' के नाम से जाना जाता है।

चरः यह मॉडल निम्नांकित चरों का उपयोग करता हैः

- y जी0डी0पी0 है,
- C उपभोग है,
- I भौतिक निवेश है,
- G सरकारी व्यय (एक वाहय चर) है,
- M सामान्य(एकनाममात्र की) मुद्रा पूर्ति है,
- P कीमत स्तर है,
- i नाममात्र की ब्याज दर है,
- L तरलता अधिमान (वास्तविक मुद्रा मांग) है,
- T कर है,

समीकरण :IS-LM-BOP मॉडल निम्नांकित समीकरणों पर आधारित हैः

IS वक्र :

Y =C+I+G+NX

जहॉ_NX वास्तविक निर्यात है।

LM वक्र :

M/P = L (i,Y)

एक उच्चतर ब्याज दर अथवा एक निम्न आय स्तर, मुद्रा की निम्न मांग की ओर ले जाता है।

BoP वक्र (भुगतान संतुलन वक्र):

BoP= CA +KA

जहॉ BoP भुगतान संतुलन का आधिक्य है, CA चालू खाते का आधिक्य है और KA पूॅजी खाते का आधिक्य है।

IS संघटक :

$$C = C(Y - T(Y), i - E(\pi))$$

जहॉ $E(\pi)$ स्फीति की अपेक्षित अथवा प्रत्याशित दर है। उच्चतर व्यय योग आय या एक निम्न वास्तविक ब्याज दर (सामान्य ब्याज दर– प्रत्याशित स्फीति), उच्चतर उपभोक्ता व्यय की ओर ले जाती है।

$$I = I(i - E(\pi), Y_{-1})$$

जहां Y_{-1} पूर्व अवधि की GDP है।उच्चतर आय या एक निम्नतर वास्तविक ब्याज दर उच्चतर विनियोग की ओर ले जाती है।

$$NX = NX(e, Y, Y*)$$

जहॉ N शुद्व निर्यात, e नाममात्र का विनिमय दर, (विदेशी मुद्रा की इकाइयों में घरेलू मुद्रा की कीमत), y जी0डी0पी0 है, और y* विदेशी व्यापार साझीदार देशों की संयुक्त जी0डी0पी0 है। उच्चतर घरेलू आय (जी0डी0पी0) आयातों पर अधिक व्यय की ओर ले जाती है और इस प्रकार निम्न शुद्व निर्यात होते हैं। उच्चतर व्यय की ओर गतिमान करती है और इससे उच्चतर शुद्व निर्यात होंगे। एक

उच्चतर e (विदेशी मुद्रा के शब्दों में सस्ती घरेलू मुद्रा और समान रूप में अधिक खर्चीली विदेशी मुद्रा घरेलू मुद्रा के शब्दों में) विदेशी वस्तुओं को उन्हें क्रय करने के लिए विदेशी मुद्रा की अधिक लागत के कारण, कम क्रय करने की ओर गतिमान करता है और साथ ही देश के निर्यातों को विदेशियों के द्वारा अधिक क्रय करने की ओर भी ले जाता है, क्योंकि वे इनके लिए भुगतान करने हेतु देश की मुद्रा को कम लागत पर प्राप्त कर सकते हैं। इन दोनों कारणों से उच्चतर e, उच्चतर शुद्ध निर्यातों की ओर ले जाती है।

भुगतान सन्तुलन (बी0ओ0पी0) संघटक :

CA = NX

जहॉ CA चालू खाता तथा NX = शुद्ध निर्यात हैं। चालू खाते को केवल आयात और निर्यात को सन्निहित करने के रूप में देखा जाता है।

KA = Z (i –I*) + K

जहॉ i* विदेशी ब्याज दर, K पूॅजी प्रवाहों का वाहय संघटक है, Z पूॅजी प्रवाहों का ब्याज संवेदी संघटक तथा Z फंक्शन का व्युत्पाद (डेरिवेटिव) पूॅजी गतिशीलता का अंश है (घरेलू एवं विदेशी ब्याज दरों के पूॅजी प्रवाहों में अन्तरों का प्रभाव)। यह डेरिवेटिव धनात्मक होगा यदि कोई पूॅजी गतिशीलता विद्यमान है (क्योंकि उच्चतर सापेक्षिक घरेलू ब्याज दरें देश में कोसों से अधिक आगमन को प्रेरित करेंगी) और यह असीमित रूप में धनात्मक होगा यदि पूॅजी की पूर्ण गतिशीलता विद्यमान होगी।

मॉडल के द्वारा निर्धारित चर :

उपरोक्त प्रारम्भिक तीनों समीकरणों में बाद के समीकरणों को प्रतिस्थापन करने के पश्चात, तीन समीकरणों में तीन अज्ञातचरों की प्रणाली जिसमें दो जी0डी0पी0 और घरेलू ब्याज दर हैं। परिवर्तनशील विनिमय दरों के अन्तर्गत, विनिमय दर तीसरा वाहय चर है जब कि बी0ओ0पी0 को शून्य निर्धारित किया गया है। इसके विपरीत, स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत e वाहय चर है और मॉडल के द्वारा भुगतान संतुलन आधिक्य निर्धारित किया जाता हैं। दोनों प्रकार की विनिमय दरों की प्रणाली के अन्तर्गत, नाममात्र की घरेलू मुद्रा पूर्ति (M) वाहय चर है, किन्तु वह भिन्न कारणों से है । परिवर्तनशील विनिमय दरों के अर्न्तगत सामान्य (नाममात्र की) मुद्रा आपूर्ति पूर्णतया केन्द्रीय बैंक के नियंत्रणाधीन होती है, किन्तु स्थिर विनिमय दरों के अर्न्तगत, मुद्रा पूर्ति अल्पकाल में भूतकाल के अर्न्तराष्ट्रीय मौद्रिक प्रवाहों पर आधारित स्थिर होती है, जबकि जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था समय के साथ विकसित होती है, यह अर्न्तराष्ट्रीय प्रवाह भावी समय बिन्दुओं पर उच्चतर या निम्न (किन्तु पूर्व निर्धारित) मुद्रा पूर्ति उत्पन्न करते हैं।

20.4 मॉडल की संरचना एवं कार्यविधि

मॉडल की कार्यविधि को एक IS-LM-BOP बिन्दुरेख, जिसमें ब्याज दरों को लम्बवत रुप में तथा जी0डी0पी0 को समतल रुप में दर्शाया गया है। IS वक्र का ढाल नीचे की ओर गिरता हुआ होता है, जबकि LM वक्र का ढाल ऊपर की ओर चढ़ता है, जैसा कि एक बन्द अर्थव्यवस्था के IS-LM विश्लेषण में पाया जाता

है। BOP वक्र का ढाल ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होगा, जब तक कि पूँजी की पूर्ण गतिशीलता नहीं होती हैं। ऐसी स्थिति में यह क्षैतिज होगा तथा इस का स्तर विश्वब्याज दर पर होगा। इस बिन्दु रेख में, पूर्ण पूँजी गतिशीलता से कम होने पर IS और BOP दोनों वक्रों की स्थिति विनिमय दर पर होगी (जैसा कि निम्नवत प्रदर्शित किया गया है) , क्योंकि IS-LM बिन्दुरेख वास्तव में ब्याज दर, आय और विनिमय दर के त्रि– विमा क्षेत्र का , एक द्वि–विमा आड़ा उप–विभाग होता है, किन्तु पूर्ण पूँजी गतिशीलता के अन्तर्गत BOP वक्र साधारणतया वैश्विक ब्याज दरों के समान घरेलू ब्याज दर के स्तर पर क्षैतिज होगा।

एक परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत

एक परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली में, केन्द्रीय बैंक विनिमय दरों को केवल बाजार शक्तियों के द्वारा निर्धारित किए जाने की अनुमति देता है।

मुद्रा पूर्ति में परिवर्तनः

मुद्रा पूर्ति में एक वृद्धि LM वक्र को दायीं ओर विवर्तित कर देती है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर के सापेक्ष स्थानीय ब्याज दर प्रत्यक्ष रुप से घट जाती है। इसके परिणामस्वरुप स्थानीय मुद्रा की विनिमय दर पूँजी के वाहय प्रवाहों के माध्यम से कम हो जाती है। (उस सीमा तक, जहाँ तक कोष अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गतिशील हो, वे विदेशी ब्याज दरों का लाभ उठाने के लिए बाहर को प्रवाहित होते हों और यह ब्याज दर अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक हो जाती है और इस कारण मुद्रा के मूल्य में कमी आती है)। मुद्रा के मूल्य में इस कमी से स्थानीय वस्तुऐं विदेशी वस्तुओं की तुलना में सस्ती हो जाती हैं और इससें निर्यातों में वृद्धि होती है तथा आयातों में कमी होती है। इस प्रकार, शुद्ध निर्यातों में वृद्धि होती है। बढ़े हुए शुद्ध निर्यातों से IS वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाता है (जो$Y=C+I+G+NX$ होता है)। इसके परिणामस्वरुप घरेलू ब्याज दरों में प्रारम्भिक कमी आंशिक रुप से अथवा पूर्णतः समायोजित हो जाती है। साथ ही, BOP वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाता है, क्योंकि अवमूल्यित मुद्रा के द्वारा भुगतान संतुलन आधिक्य का शून्य शेष प्रदान करने के लिए यह कम ब्याज दर या उच्चतर आय को ग्रहण करता है (जो कि इस वक्र के द्वारा प्रदर्शित होता है)। इन तीन वक्रों के विवर्तन का सम्मिलित प्रभाव राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आय में वृद्धि करता है। मुद्रा पूर्ति में एक कमी इसके ठीक विपरीत प्रक्रिया को जन्म देती है।

सरकारी व्यय में परिवर्तन

सरकारी व्यय में एक परिवर्तन IS वक्र को दायीं ओर विवर्तित कर देता है। इस विवर्तन से स्थानीय ब्याज दर एवं आय (जी0डी0पी0) दोनों बढ़ते हैं। स्थानीय ब्याज दरों में वृद्धि से पूँजीगत प्रवाहों में वृद्धि उत्पन्न होती है और यह अर्न्तप्रवाह विदेशी मुद्राओं की तुलना में घरेलू मुद्रा को मजबूत बना देते हैं। दूसरी ओर, उच्चतर GDP आयातों पर व्यय को बढ़ा देती है, जिससे मुद्रा कमजोर होने की ओर प्रवृत होती है। यह मानते हुए कि BOPवक्र उतना खड़ा नहीं है, जितना कि LM वक्र है (अर्थात यह मानते हुए कि पूँजी गतिशीलता अपेक्षाकृत सुदृढ़ है), पहला प्रभाव प्रभावशाली होगा और मुद्रा अधिक मजबूत होगी और यह विदेशी वस्तुओं की तुलना में घरेलू वस्तुओं को सस्ता बना देगी। इससे उच्चतर आयात प्रोत्साहित होंगे तथा निर्यात हतोत्साहित होगें। अतः शुद्ध निर्यात पहले से कम हो

जाऐंगे। विनिमय दर में इस परिवर्तन के परिणामस्वरुप, IS वक्र विवर्तित होकर अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाऐगा। मजबूत मुद्रा हो जाने से BOP वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होगा क्योंकि अब ब्याज दरों का उच्चतर स्तर अपेक्षाकृत सुदृढ विनिमय दर की मौजूदगी में शून्य भुगतान अधिक्य के साथ संगत होगा। LM वक्र अल्पकाल में बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होगा। इस सबका शुद्ध प्रभाव यह होगा कि यदि पूर्ण पूँजीगतिशीलता है, तो स्थानीय अर्थव्यवस्था के आय का स्तर प्रारम्भिक स्तर से अपरिवर्तित रहेगा जबकि पूँजी के पूर्ण गतिशील से कम होने पर यह बढ़ जाऐगा । सरकारी व्यय में एक कमी इस प्रक्रिया को उलट देगी।

वैश्विक ब्याज दर में परिवर्तन

अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर में एक वृद्धि BOPवक्र को ऊपर की ओर विवर्तित कर देगी और इस कारण से घरेलू अर्थव्यवस्था से पूँजी का बर्हिगमन होगा। इस के परिणामरूवरुप घरेलू मुद्रा की कीमत में कमी होगी और शुद्ध निर्यातों में तेजी से वृद्धि होगी तथा ISवक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाऐगा। पूर्ण पूँजी गतिशीलता से कम की स्थिति में, घटी हुई विनिमय दर BOP वक्र को पुनः वापस अपनी लगभग पूर्व स्थिति तक विवर्तित कर देगी। शुद्ध प्रभाव आय और स्थानीय ब्याज दर में वृद्धि के रुप में उत्पन्न होगा। पूर्ण पूँजी गतिशीलता के अन्तर्गत BOP वक्र सदैव अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर के स्तर पर क्षैतिज होगा। जब अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दरें बढ़ेंगी, BOPवक्र भी उसी समान मात्रा से ऊपर की ओर विवर्तित हो जाऐगा, और उस स्थान पर टिका रहेगा। विनिमय दर में परिवर्तन IS वक्र को जहाँ वह नए BOPवक्र को उसके अपरिवर्तित LMवक्र के साथ कटाव बिन्दु पर, मिलता है, तक विवर्तन के लिए पर्याप्त होना चाहिए। अब घरेलू विनिमय दर, नवीन अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर के बराबर हो जाऐगी। वैश्विक ब्याज दर में कमी होने से विपरीत प्रभाव उत्पन्न होगा।

स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत

स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार एक विनिमय दर (समता दर) घोषित कर देती है, जिस पर वह घरेलू मुद्रा की किसी भी मात्रा को क्रय अथवा विक्रय करने के लिए तैयार रहती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में अथवा उसके बाहर की ओर भुगतानों के शुद्ध प्रवाह को शून्य होने की आवश्यकता नहीं है; विनिमय दर e वाहय रुप में प्रदत्त होती है, जबकि परिवर्तनशील BOP आन्तरिक होती है। एक स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत, केन्द्रीय बैंक एक विशिष्ट विनिमय दर को बनाए रखने के लिए विदेशी विनिमय बाजार में लेन–देनों के द्वारा परिचालन करता है। यदि विदेशी विनिमय बाजारों में घरेलू मुद्रा की पूर्ति उसकी मांग से अधिक होने के कारण घरेलू मुद्रा के मूल्य में कमी का दबाव है, तो स्थानीय प्राधिकारी विदेशी विनिमय बाजार में घरेलू मुद्रा की पूर्ति को कम करने के लिए विदेशी मुद्रा के बदले में घरेलू मुद्रा का क्रय करता है। इससे घरेलू मुद्रा की विनिमय दर लक्षित स्तर पर बनी रहती है। यदि घरेलू मुद्रा की विनिमय दर में वृद्धि का दबाव है, क्योकि विदेशी विनिमय बाजार में घरेलू मुद्रा की मांग उसकी पूर्ति से अधिक है, तो स्थानीय प्राधिकारी विदेशी विनिमय बाजार में घरेलू मुद्रा की पूर्ति को बढ़ाने के लिए घरेलू मुद्रा के बदले में विदेशी मुद्रा का क्रय करता है, जिससे विनिमय दर लक्षित स्तर पर बनी रहती हैं।

मुद्रा पूर्ति में परिर्वतन

अति अल्पकाल में मुद्रा पूर्ति सामान्यतः अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान प्रवाहों के भूतकालीन इतिहास से पूर्व निर्धारित होती है। यदि केन्द्रीय बैंक एक ऐसी विनिमय दर को बनाए रखता है, जो भुगतान संतुलन प्रवाहों के आधिक्य के साथ सुसंगत है, तो देश में, समय के साथ ही मौद्रिक प्रवाह होगा और मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि होगी (और भुगतान संतुलन प्रवाहों की कमी की स्थिति में विपरीत प्रभाव होगा।) यदि केन्द्रीय बैंक इन भुगतान संतुलन प्रेरित मुद्रा पूर्ति में परिवर्तनों को समायोजित करने के लिए घरेलू बाण्ड बाजार में खुले बाजार की क्रियाऐं करता है, जिसे बंध्यीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है, तो यह नवीन अन्र्त प्रवाहित मुद्रा का अवशोषण, घरेलू मुद्रा के अपने ब्राण्डों के धारण में कमी के द्वारा करेगा। (इसके विपरीत स्थिति में मुद्रा का प्रवाह बाहरी देशों की ओर होगा।) किन्तु पूर्ण पूँजी गतिशीलता के अन्तर्गत, इस प्रकार का कोई भी बंध्यीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाहों के द्वारा समायोजित हो जाएगा।

सरकारी व्यय में परिवर्तन

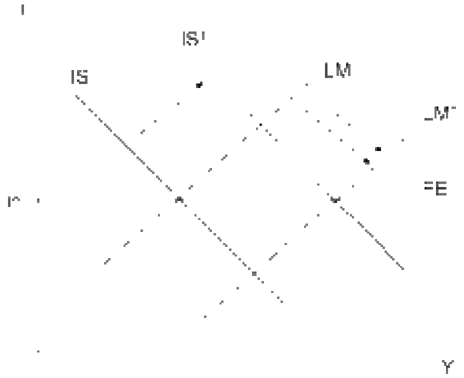

सरकारी व्यय में एक वृद्धि मौद्रिक प्राधिकारी को विनिमय दर को अपरिवर्तित रखने के लिए बाजार में घरेलू मुद्रा की पूर्ति करने के लिए विवश करेगी। यहाँ पूर्ण पूँजी गतिशीलता की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। इसमें BOPवक्र (अथवा जैसा कि यहाँ पर इसे FE वक्र के द्वारा प्रदर्शित किया गया है) क्षैतिज है। बढ़ा हुआ सरकारी व्यय IS वक्र को दायीं ओर विवर्तित कर देगा। इस विवर्तन से ब्याज दर में आरम्भिक वृद्धि उत्पन्न होगी और इस प्रकार, विनिमय दर (घरेलू मुद्रा का मूल्य) पर ऊपर की ओर दबाव होगा, क्योंकि विदेशी कोष उच्चतर ब्याज दर से आकर्षित होकर अन्दर की ओर आने प्रारंभ होंगे। किन्तु, स्थिर विनिमय दर प्रणाली की संरचना में विनिमय दर स्थानीय मौद्रिक प्राधिकारी के द्वारा नियन्त्रित की जाती है। विनिमय दर को बनाए रखने तथा उस पर से दबाव को हटाने के लिए, मौद्रिक प्राधिकारी घरेलू मुद्रा कोषों का उपयोग विदेशी मुद्रा को क्रय करने के लिए करेगा, जिससे LM वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाऐगा। अन्त में, ब्याज दर वही बनी रहेगी, किन्तु अर्थव्यवस्था में सामान्य आय में वृद्धि होगी। IS-LM-BOP बिन्दुरेख में, IS वक्र राजकोषीय प्राधिकारी के द्वारा वाहय रुप में विवर्तित कर दी गयी है और ISवक्र तथा BOP वक्र दोनों अर्थव्यवस्था का अंतिम साम्य का स्थान निर्धारित करते है; LM वक्र केवल निष्क्रिय रुप में

प्रतिक्रिया करता हैं। इसके विपरीत प्रक्रिया तब होती है, जबकि सरकारी व्यय में कमी आती है।

अन्तराष्ट्रीय ब्याज दर में परिवर्तन

स्थिर विनिमय दर को बनाए रखने के लिए केन्द्रीय बैंक को पूँजी प्रवाहों (आन्तरिक अथवा वाहय) को समायोजित करना होगा, जो कि विनिमय दरों पर प्रभाव को दूर करने के लिए वैश्विक ब्याज दर में परिवर्तन के द्वारा उत्पन्न होते है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दरों में वृद्धि होती है, तो BOP वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाऐगा तथा अवसर का लाभ उठाने के लिए पूँजी बाहर की ओर प्रवाहित होगी। इससे घरेलू मुद्रा पर मूल्य में कमी हेतु दबाव पड़ेगा, अतः केन्द्रीय बैंक को घरेलू मुद्रा का क्रय करना होगा, अर्थात इस पूँजी बर्हिगमन को समायोजित करने के लिए कुछ विदेशी मुद्रा कोषों को बेचना पड़ेगा। इस बर्हिगमन से मुद्रा की पूर्ति में कमी होगी, LM वक्र बायीं ओर को विवर्तित होगा जब तक कि यह IS और BOP वक्रों के कटाव बिन्दु पर उनसे नहीं मिलता है। एक बार पुनः, LM वक्र एक निष्क्रिय भूमिका का निर्वहन करता है और परिणामों का निर्धारण IS-BOP की अन्तर्क्रिया से होता है। पूर्ण पूँजी गतिशीलता के अन्तर्गत, नया BOP वक्र नए अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर के स्तर पर क्षैतिज होगा, अतः साम्य घरेलू ब्याज दर, अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर के बराबर होगी। यदि अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दरों में घरेलू दर से नीचे तक कमी होती है, तब विपरीत स्थिति उत्पन्न होती है। BOP वक्र नीचे की ओर विवर्तित होता है, विदेशी मुद्रा का अन्र्तप्रवाह होता है और घरेलू मुद्रा के मूल्य में वृद्धि का दबाव उत्पन्न होता है, अतः केन्द्रीय बैंक इस दबाव को हटाने के लिए घरेलू मुद्रा का विक्रय करता है (और समान मात्रा में विदेशी मुद्रा का क्रय करता है) मुद्रा के अन्र्तप्रवाह से LM वक्र दायीं ओर विवर्तित होता है और घरेलू ब्याज दर कम हो जाती है (यदि पूर्ण पूँजी गतिशीलता है, तो यह अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर के स्तर तक नीचे गिर जाती है)।

20.5 IS-LM से अन्तर

यह उल्लेखनीय है कि इस मॉडल के कुछ परिणाम खुली अर्थव्यवस्था की मान्यता के कारण IS-LMमॉडल के परिणामों से भिन्न हैं। दूसरी ओर, एक वृहत आकार वाली खुली अर्थव्यवस्था के लिए परिणाम IS-LM मॉडल द्वारा प्राक्कलित अनुमानों के साथ सुसंगत हो सकते हैं। इसका कारण यह है कि एक वृहत आकार वाली खुली अर्थव्यवस्था में एक *औटार्की* (आत्मनिर्भर) और एक लघुस्तरीय खुली अर्थव्यवस्था की विशेषताऐं होती हैं। विशेष रुप में, इसे पूर्ण गतिशीलता का सामना नहीं करना पड़ सकता है, इस प्रकार घरेलू ब्याज दर को प्रभावित करने के लिए आन्तरिक नीति उपायों को करने की अनुमति मिल जाती है और यह मुद्रा पूर्ति में भुगतान सन्तुलन प्रेरित परिवर्तनों का बंध्याकरण करने में समर्थ हो सकती है। IS-LM मॉडल में, मुद्रा बाजार एवं वस्तु बाजार दोनों में साम्य बनाए रखने में घरेलू ब्याज दर एक प्रमुख तत्व होता है। मुन्डेल–फ्लेमिंग संरचना के अन्तर्गत, जो पूर्ण पूँजी गतिशीलता का सामना करने वाली लघुस्तरीय अर्थव्यवस्था के लिए है, घरेलू ब्याज दर स्थिर है और दोनों बाजारों में साम्य को नाममात्र की विनिमय दर अथवा मुद्रा पूर्ति (अन्तर्राष्ट्रीय कोष प्रवाहों से) दोनों को समायोजित करके बनाए रखा जा सकता हैं।

IS-LM मॉडल (एक बन्द अर्थव्यवस्था में)

(अ) यह K –मॉडल का विशिष्ट रुप है।

(ब) पूर्व की अपेक्षा, यह मॉडल विश्लेषण में ब्याज दरों को सम्मिलित करता है।

(स) ब्याज दर को लम्बवत अक्ष पर आय (जी0डी0पी0) अथवा Yको क्षैतिज अक्ष पर प्रदर्शित किया जाता है।

(द) IS वक्र (विनियोग= बचत या अधिक उचित प्रकार से, विनियोग + सरकार = बचत + कर)

i. स्मरण करें कि साधारणKमॉडल में वस्तुओं के लिए कुल मांग Yके स्तर को निर्धारित करती है– इस प्रकार, इस सम्बन्ध में, निम्न ब्याज दर उच्चतर विनियोग व्यय एवं उच्चतर आय और उत्पादन को उत्पन्न करती है (इस प्रकार ISवक्र का नीचे की ओर गिरता हुआ ढाल होता है)।

ii. वस्तु बाजार में ISवक्र समस्त साम्य का बिन्दु पथ होता है (मांग= पूर्ति) किन्तु यह ब्याज दर परिवर्तनों पर आधारित होता है, (प्रत्येक ब्याज दर पर एक साम्य)।

(ई) **LM** वक्रः

(1) अर्थव्यवस्था में ब्याज दर को मुद्रा पूर्ति एवं मुद्रा मांग की अन्तर्क्रिया से निर्धारित होना सर्वोत्तम समझा जाता है।

- मुद्रा पूर्ति (MI) निर्धारण संघीय सरकार के द्वारा मौद्रिक नीति मूलतः बैंक संचयों एवं बैंक ऋणों के नियंत्रण की उसकी योग्यता के माध्यम से होता है (मुद्रा पूर्ति में तब वृद्धि हो जाती है, जब संघीय सरकार बैंक संचयों एवं बैंक ऋणों में विस्तार करने की दृष्टि से खुले बाजार की क्रियाओं में संलग्न होती है।)
- मुद्रा की मांग एक जटिल अवधारणा है (इसे मुद्रा शेषों को धारित करने की इच्छा के रुप में बेहतर समझा जा सकता है) किन्तु इसमें मुख्यतया उन लोगों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें वांछित लेन–देनों (क्रय करने के लिए) मुद्रा की आवश्यकता होती है और उन लोगों को सम्मिलित किया जाता है, जो नकदी को 'विनियोग' (अर्थात नकदी बनाम बॉण्ड) के लिए अपने पास रखना चाह सकते हैं।

i. आधार रेखा (बॉटमलाइन): जब अर्थव्यवस्था में लेन–देनों में वृद्धि होती है (Y में वृद्धि होती है), तब लेन–देनों के शेषों के लिए अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है, जो मुद्रा की मांग में वृद्धि करती है और ब्याज दरों को बढ़ा देती है।

ii. अतः LM वक्र का ढाल ऊपर की ओर को होता है।

iii. और LM वक्र आय के प्रत्येक स्तर पर मुद्रा बाजार में समस्त साम्य बिन्दुओं का बिन्दुपथ होता है।

(2) एक बन्द अर्थव्यवस्था में (बिना किसी विदेशी व्यापार के) IS-LM वक्रों की अन्तर्क्रिया आय और ब्याज दर के साम्य की होती है। वस्तु बाजार और मुद्रा बाजार दोनों को एक साथ साम्य की स्थिति में होना चाहिए।

(3) सरकार राजकोषीय अथवा मौद्रिक नीति के माध्यम से अर्थव्यवस्था को उसे तीव्र गति से संचालित करने अथवा धीमा करने के साधन के रुप में प्रभावित कर सकती है।

- राजकोषीय नीति, करों में कटौती या सरकारी व्यय में वृद्धि के माध्यम से अर्थव्यवस्था में गति लाने की प्रक्रिया क्रियान्वित की जा सकती है। इसके परिणाम स्वरुप IS वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाता है (G अथवा C की अधिक मात्रा से) तथा Y एवं ब्याज दरों में वृद्धि कर देता है (एक नया साम्य स्थापित हो जाता है।)
- मौद्रिक नीति के माध्यम से अर्थव्यवस्था में गति लाने के लिए मुद्रा पूर्ति में एक वृद्धि को क्रियान्वित किया जाता है। इसके परिणामस्वरुप LM वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाता है और यह Y में वृद्धि करता है और ब्याज दरों में कमी होती है।

IS-LM मॉडल (एक खुली अर्थव्यवस्था में)

1– अमेरिका, या जर्मनी अथवा जापान जैसी विशाल अर्थव्यवस्थाओं में, जहाँ उनकी नीतियों से अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दरें प्रभावित होती है अर्थात यह गुमनामी की स्थिति को खोने के लिए पर्याप्त होती है।

- अब मॉडल को एक भुगतान सन्तुलन (BOP) वक्र को सम्मिलित करने के लिए संशोधित किया जाना चाहिए। BOP वक्र विभिन्न आय स्तरों और ब्याज दरों, जो भुगतान संतुलन साम्य के लिए आवश्यक होती है, के बीच परस्पर सम्बन्ध को व्यक्त करता है।(साथ ही स्थायित्व पूर्ण विनिमय दर को भी व्यक्त करता है।)
- प्रथम स्थिर विनिमय दरों का प्रकरण हैं।
- क्योंकि आय में वृद्धि से शुद्ध निर्यात कम होंगे (अर्थात चालू खाते में घाटा), अतः उच्च ब्याज दरों की आवश्यकता होगी। इसके द्वारा पूँजी खाते पर विपरीत प्रभाव उत्पन्न करने के लिए (पूँजी अर्न्त प्रवाहों के फलस्वरुप आधिक्य के कारण) इसका अर्थ BOP वक्र का ऊपर की ओर उठता हुआ ढाल होगा।
- अब, IS वक्र में दायीं ओर विवर्तन होगा (संभवतः राजकोषीय नीति प्रेरणाओं के कारण से)। इससे ब्याज दरें BOP साम्य रेखा से ऊपर की ओर गतिमान होंगी। यह भुगतान संतुलन साम्य (काल्पनिक साम्य) सुसंगत नहीं होगा, ब्याज दरें काफी अधिक होंगी और पूँजी का अर्न्तप्रवाह अत्यधिक मात्रा मे होगा, जिससे विनिमय दर में वृद्धि का जोखिम बढ़ जाएगा (डॉलर की मुद्रा बाजारों में मांग अत्यधिक हो जाऐगी)।
- **उपायः**–केन्द्रीय बैंक को ब्याज दर को इतना अधिक बढ़ने से रोकने के लिए मुद्रा पूर्ति का विस्तार करना होगा और LM वक्र त्रिकोंणीय अन्तर्क्रिया (BOP रेखा सहित) करने के लिए पर्याप्त सीमा तक दायीं ओर गतिमान हो जाऐगा।

निष्कर्षः–स्थिर विनिमय दरों के साथ राजकोषीय नीति ठीक तरह से कार्य करेगी।

2. यदि LM वक्र का दायीं ओर होता, जिसका कारण, मान लीजिए, मौद्रिक नीति के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विस्तार की आवश्यकता हैः

- इस समय में प्रवृत्ति ब्याज दर को BOPरेखा से नीचे ले जाने की होगी, जिससे पूँजी का बर्हिप्रवाह होगा ओर केन्द्रीय बैंक को मुद्रा की पूर्ति को कम करके विनिमय दर में कमी को रोकने की आवश्यकता होगी (डॉलरों का क्रय किया जाना होगा) जिससे अर्थव्यवस्था अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त कर सके।

निष्कर्षः– स्थिर विनिमय दरों के साथ मौद्रिक नीति कारगर नहीं होती है।

IS-LMमॉडल (एक लघु आकार की खुली अर्थव्यवस्था में स्थिर विनिमय दरों के साथ) इस अर्थव्यवस्था में यह माना गया है कि पूर्ण पूँजी गतिशीलता है, जो कि विशाल आकार की अर्थव्यवस्था के विश्लेषण के लिए उचित होती है।

(अ) केवल एक अन्तर यह है कि लघु आकार की अर्थव्यवस्था को घरेलू ब्याज दरों को वैश्विक स्तर पर बनाए रखना होगा।

- इसका आशय यह है कि BOP रेखा क्षैतिज होगी, यदि ब्याज दरें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से बिल्कुल भिन्न हैं, जिससे तीव्र और अत्यधिक मात्रा में पूँजी प्रवाह होगा जिससे केन्द्रीय बैंक के हस्तक्षेप के अभाव में विनिमय दर ऊपर अथवा नीचे की ओर गतिमान होगी।
- अतः IS-LM और क्षैतिज BOP रेखाओं के द्वारा उपर्युक्त विश्लेषण के समान परिणाम होंगेःISके दायीं ओर गतिमान होने से ब्याज दर बढ़ेगी और पूँजी अर्न्तप्रवाह उत्पन्न होगा, अतः विनिमय दर को स्थिर रखने के लिए मुद्रा की पूर्ति का विस्तार करना आवश्यक होगा, राजकोषीय नीति कारगर होगी(आवश्यक मौद्रिक उपाय के द्वारा यह प्रवर्तित की जाएगी)। मुख्य तथ्य यह है कि ब्याज दरों को अन्तर्राष्ट्रीय दर से भिन्न नहीं होने दिया जाना चाहिए।
- इसी प्रकार, उपर्युक्तानुसार, मौद्रिक नीति को एक स्वतन्त्र नीति उपकरण के रुप में प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

IS-LM मॉडल (एक लघु आकार की खुली अर्थव्यवस्था में परिवर्तनशील विनिमय दरों के साथ):

(अ) क्षैतिज BOP रेखा के समान व्यवस्था का उपयोग करके, किन्तु इस बार केन्द्रीय बैंक द्वारा किसी विशिष्ट विनिमय दर को संरक्षित करने में रुचि न रखने पर अर्थात किसी भी भुगतान संतुलन का 'असन्तुलन' विनिमय दर समायोजन से पूर्णतः अर्न्तधान हो जाऐगा।

1. मान लीजिए, राजकोषीय नीति विस्तार को क्रियान्वित किया जा रहा है। इसके परिणामस्वरुप ब्याज दर में वृद्धि होगी, जिससें तत्काल पूँजी अर्न्तप्रवाह तथा विनिमय दर में वृद्धि उत्पन्न होगी।
2. इससे, शुद्ध निर्यातों में कमी आयेगी फलस्वरुप IS वक्र तब तक बायीं ओर गतिमान होगा, जबकि विनिमय दर को इतना नीचे की ओर समायोजित नहीं किया जा सकता, जिससे कि विनिमय दर पुनः विश्वस्तर के समान स्तर पर नहीं आ जाती हैं।

निष्कर्षः परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली में राजकोषीय नीति कारगर नहीं होती हैं।

IS-LMमॉडल (विशाल अर्थव्यवस्थाओं में):

यह अर्थव्यवस्थाऐ अपनी क्रियाओं के द्वारा दूसरे देशो को प्रसन्न अथवा दुखी करने की स्थिति में होती हैं। उदाहरणार्थ यदि अमेरिका ब्याज दरो में वृद्धि करके (परिवर्तनशील दरों की प्रणाली में) स्फीति के विरूद्ध उपाय करना चाहता हैं, तो सभी को उसके साथ चलना होगा क्योंकि अमेरिका का अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दरों पर मुख्य प्रभाव होता हैं।

20.6 सारांश

1. IS-LM मॉडल को प्रथम चतुर्थांश (क्वाड्रेंट) में दो परस्पर काटते वक्रों के बिन्दुरेख के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता हैं। क्षैतिज–अक्ष पर राष्ट्रीय आय अथवा जी0डी0पी0 को प्रदर्शित किया जा सकता हैं। क्षैतिज–अक्ष राष्ट्रीय आय हैं। लम्बवत अक्ष वास्तविक ब्याज दर (i) को प्रदर्शित करता हैं। IS अनुसूची को नीचे गिरते हुए ढाल वाले वक्र के रूप में प्रदर्शित किया जाता हैं। प्रारम्भिक IS 'विनियोग बचत साम्य' का संकेतक है।

2. IS-LM-BOP मॉडल, जिसे मुण्डेल फ्लेमिंग मॉडल के नाम से भी जाना जाता हैं, एक आर्थिक मॉडल हैं, जिसे सर्वप्रथम राबर्ट मुण्डेल और मार्कस फ्लेमिंग ने प्रतिपादित किया। मॉडल IS-LM मॉडल का ही एक विस्तार हैं। जबकि IS-LM मॉडल अर्थव्यवस्था की औटार्की (अथवा एक बंद अर्थव्यवस्था) में व्याख्या करता हैं, जबकि IS-LM-BOP मॉडल एक खुली अर्थव्यवस्था का वर्णन करता हैं।IS-LM-BOP मॉडल अर्थव्यवस्था की अल्पकाल में व्याख्या करता हैं, जबकि IS-LM मॉडल केवल ब्याज दर और उत्पाद के बीच सम्बन्ध की, बन्द अर्थव्यवस्था के विपरीत स्थिति में,व्याख्या करता हैं। मॉडल की कार्य विधि को IS-LM-BOP बिन्दुरेखा जिसमें घरेलू ब्याज दरों को लम्बवत रूप में तथा वास्तविक GDP को क्षैतिज रूप में प्रदर्शित किया जाता हैं, IS वक्र का ढाल नीचे को गिरता हुआ होता हैं और LM वक्र का ढाल ऊपर की ओर उठता हुआ होगा, किन्तु ऐसा होने पर यह वैश्विक ब्याज दर के स्तर पर क्षैतिज होगा। IS-LM-BOP मॉडल का खुली एवं बन्द अर्थव्यवस्थाओं में भी वर्णन किया जा सकता हैं तथा इसे लघु एवं विशाल अर्थव्यवस्थाओं में स्थिर एवं परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली में भी लागू किया जा सकता हैं।

20.7 शब्दावली

कुल व्यय (उपभोग व्यय + नियोजित निजी निवेश + सरकारी क्रय + शुद्ध निर्यात)

कुल उत्पादन–आय Y अथवा जी0डी0पी0

कुल बचत– उपभोक्ता बचत + सरकारी बचत (बजट आधिक्य)+ विदेशी बचत (व्यापार आधिक्य)

आई0एस0 वक्र– उस साम्य को प्रदर्शित करता है जहॅा कुल निजी निवेश, कुल बचत के बराबर हो जाता है।

एल0एम0– तरलता अधिमान/मुद्रा पूर्ति

आई0एस0–निवेश / बचत
बी0ओ0पी0–वक्र भुगतान संतुलन वक्र

20.8 बोध प्रश्न

(अ) बहुविकल्पी प्रश्न

1. भुगतान सन्तुलन साम्य का आशय हैं

(अ) व्यापार संतुलन शून्य के समान होना
(ब) चालू खाते का शेष शून्य के समान होना
(स) पूँजी खाते का शेष शून्य के समान होना
(द) चालू खाते का शेष, पूँजी खाते के शेष से पूर्णतया समायोजित होना

2. स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत IS-LM मॉडल में, स्वचालित समायोजन प्रक्रिया BOP साम्य उत्पन्न करतीहैं:

(अ) LM वक्र स्थिर IS और BP वक्रो के साथ विवर्तित होता हैं।
(ब) IS वक्र स्थिर IS और BP वक्रो के साथ विवर्तित होता हैं।
(स) BPवक्र स्थिर IS और BP वक्रो के साथ विवर्तित होता हैं।
(द) IS, LM और BP वक्र सभी विवर्तित होते हैं।

3. परिवर्तनशील विनिमय दरों के अन्तर्गत घरेलू देश की मुद्रा के मूल्य में कमी से.........वक्र........ओर विवर्तित होगा।

(अ) ISऔर LM; दायीं
(ब) ISऔर LM; बायीं
(स) ISऔर BP; दायीं
(द) ISऔर BP; बायीं

4. मार्शल–लर्नर दशाऐ (शर्ते) यह सुनिश्चित करती हैं किः

(अ) मुद्रा बाजार स्थिर हैं।
(ब) वस्तु बाजार स्थिर हैं।
(स) घरेलू देश की मुद्रा के मूल्य में कमी घरेलू देश के चालू खाते में सुधार करती हैं।
(द) घरेलू देश की मुद्रा के मूल्य में वृद्धि घरेलू देश के चालू खाते में सुधार करती हैं।

5. मौद्रिक दृष्टिकोण तथा पोर्टफोलियो अवशेष दृष्टिकोण में मुख्य अंतर यह हैं किः

(अ) मौद्रिक दृष्टिकोण घरेलू एवं विदेशी दोनो मुद्राओ को अपने पास रखने कि अनुमति देता हैं।
(ब) मौद्रिक दृष्टिकोण घरेलू एवं विदेशी दोनो बाण्डो को अपने पास रखने कि अनुमति देता हैं।
(स) पोर्टफोलियो अवशेष दृष्टिकोण विदेशी दोनों मुद्राओं को अपने पास रखने कि अनुमति देता हैं।
(द) पोर्टफोलियो अवशेष दृष्टिकोण घरेलू एवं विदेशी बाण्डो दोनो को अपने पास रखने की अनुमति देता हैं।

निम्नांकित IS-LM मॉडल के सन्दर्भ में प्रश्न संख्या 6 से 9 का उत्तर दीजिएः

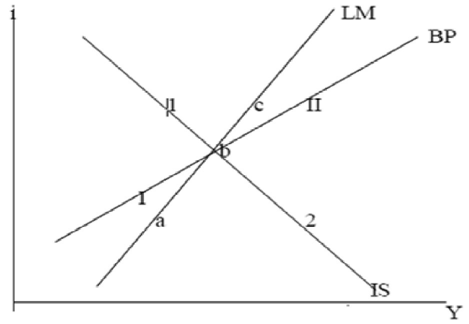

6. **IS-LMमॉडल हैं :**
   (अ) एक विशाल खुली अर्थव्यवस्था का मॉडल
   (ब) एक लघु खुली अर्थव्यवस्था का मॉडल
   (स) अल्पकाल में एक लघु खुली अर्थव्यवस्था का मॉडल
   (द) दीर्घकाल में एक लघु खुली अर्थव्यवस्था का मॉडल
   (य) अल्पकाल में एक विशाल खुली अर्थव्यवस्था का मॉडल
7. **प्रारंभिक साम्य से आरम्भ करते हुए, यदि एक विस्तारवादी राजकोषीय नीति हैं, तोः**
   (अ) LM वक्र दायी ओर को जैसे बिन्दु '2' पर विवर्तित होगा,
   (ब) LM वक्र दायी ओर को जैसे बिन्दु '1' पर विवर्तित होगा,
   (स) IS वक्र दायी ओर को जैसे बिन्दु 'c' पर विवर्तित होगा,
   (द) IS वक्र दायी ओर को जैसे बिन्दु 'a' पर विवर्तित होगा,
   (य) उपरोक्त में कोई नहीं
8. **अस्थायी साम्य पर, भुगतान सन्तुलन का अस्थायी.........होगा :**
   (अ) आधिक्य।
   (ब) कमी या घाटा ।
   (स) संतुलन ।
   (द) उपर्युक्त में कोई नहीं।
9. **माना कि यह एक परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली हैं, तो साम्य की पुर्नस्थापना के लिए :**
   (अ) LM वक्र अपने मूल स्थान पर वापस विवर्तित की जानी होगी।
   (ब) IS और BP वक्र दोनों बायीं ओर को विवर्तित की जानी होंगी।
   (स) IS और BP वक्र दोनों दायीं ओर को विवर्तित किये जाने होंगे।
   (द) IS और LM दोनो वक्र बायी ओर को विवर्तित किये जाने होंगे।
   (य) IS और LM वक्र दोनो दायी ओर को विवर्तित किये जाने होंगे।
10. एक खड़ी या सीधी LM रेखा का आशय है, कि समग्र मांग वक्र होगा :
   (अ) सीधा और KI गुणक लघु आकार का हो जाएगा।
   (ब) अपेक्षाकृत समतल और KI गुणक लघु आकार का हो जाएगा।
   (स) अपरिवर्तित और KI गुणक लघु आकार का हो जाएगा।
   (द) क्षैतिज औरKIगुणक वृहत आकार का हो जाएगा।

11. जब एक अर्थव्यवस्था में **IS-LM** की अन्तर्क्रिया **BP** रेखा से ऊपर होती हैं, घरेलू ब्याज दर पूँजी..........उत्पन्न करती हैं, जिसका अर्थ है, उसके पूँजी खाते में...........।
(अ) अर्न्तप्रवाह, आधिक्य
(ब) अर्न्तप्रवाह, कमी
(स) बर्हिप्रवाह, आधिक्य
(द) बर्हिप्रवाह, कमी

20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1-(द), 2 -(अ), 3 -(स) , 4 - (स) , 5 –(द) , 6 -(स) , 7- (स) , 8 -(अ) , 9 –(ब) , 10 – (ब) , 11 – (अ)

20.10 स्वपरख प्रश्न

Q 1. IS-LM-BOP वक्र विश्लेषण को विस्तृत रूप में समझाइए।

Q 2. IS-LM-BOP मॉडल के संघटकों एवं चरों का बिन्दुरेख की सहायता से वर्णन कीजिए।

Q 3. IS-LM-BOP मॉडल का गणितीय समीकरण क्या है ?

Q 4. IS-LM-BOP वक्र विश्लेषण को विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में स्थिर एवं परिवर्तनशील विनिमय दरों की स्थितियों में विस्तृत रूप में समझाइए।

20.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Macroeconomics, Thomas F. Dernberg, Mcgraw-Hill College, 1985.
2. Macroeconomic Theory and Policy, William H.Branson, Branson, William H.,Macroeconomic Theory and Policy, third edition, Harper & Row, Publishers, Inc., 1989.

इकाई 21 वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना
21.2 वैश्वीकरणः अवधारणात्मक रूपरेखा
21.2.1 वैश्वीकरण की परिभाषाएं
21.2.2 वैश्वीकरण के लक्षण / घटक
21.3 वैश्वीकरण की रणनीतियां
21.3.1 निर्यात
21.3.2 लाइसेंसिंग और फ्रेंचाइजींग
21.3.3 अनुबंध विनिर्माण
21.3.4 संयुक्त उद्यम
21.3.5 प्रबंधन करार
21.3.6 संपूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियां
21.3.7 असेंबली कॉन्ट्रैक्ट्स
21.3.8 क्रॉस–बॉर्डर विलय और अधिग्रहण
21.3.9 तृतीय देश का रूट / स्थान
21.4 वैश्वीकरण के लिए आवश्यक शर्तें
21.4.1 उदारीकरण
21.4.2 बहुपक्षीय व्यापार समझौते
21.4.3 बहुपक्षीय निवेश समझौता
21.4.4 पर्याप्त संसाधन
21.4.5 तुलनात्मक लाभ
21.4.6 परिवहन में सुधार
21.4.7 सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में सुधार
21.4.8 अन्य देशों का अनुभव
21.4.9 कॉर्पोरेट संगठन में वृद्धि
21.4.10 अच्छा क्वालिटी बुनियादी ढांचा सुविधाएं
21.5 भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकरण का प्रभाव
21.5.1 वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव
21.5.2 वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव
21.6 वैश्वीकरण का राजनीतिक प्रभाव
21.7 भूमंडलीकरण की राह में बाधायें
21.8 ग्लोकलाइजेशन
21.9 उदारीकरण
21.10 उदारीकरण के लिए किए गए उपाय
21.11 निजीकरण का अर्थ
21.12 निजीकरण के कारण
21.13 निजीकरण के उद्देश्य
21.14 निजीकरण के लाभ
21.15 निजीकरण में बाधाएं / नुकसान
21.16 भारत में निजीकरण

21.17 सारांश
21.18 शब्दावली
21.19 बोध प्रश्न
21.20 बोध प्रश्नों के उत्तर
21.21 स्वपरख प्रश्न
21.22 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण का अर्थ समझ सकें।
- व्यापार पर वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के प्रभाव का आकलन कर सकें।
- भारतीय संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता और महत्व की व्याख्या कर सकें।

21.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में वैश्विक अर्थव्यवस्था की बहु–ध्रुवीय विश्व एक विशेषता है जहां पूरे देश में माल और सेवाओं का मुक्त प्रवाह है। विनियमित व्यापार का समय खत्म हो गया है और दुनिया भर में सरकारें आर्थिक प्रणाली के अन्य रूपों से मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था को पसंद करती हैं। इस इकाई में, मुख्य अवधारणाओं – वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण और व्यवसाय पर उनका प्रभाव समझाया गया है।

21.2 वैश्वीकरणः अवधारणात्मक रूपरेखा

वैश्वीकरण का अर्थ है एक देश की अर्थव्यवस्था को मुक्त व्यापार, पूंजी और श्रम की गतिशीलता आदि के माध्यम से अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ जोड़ना। इसका आशय यह है कि बहुराष्ट्रीय निगमों को घरेलू अर्थव्यवस्था में निवेश करने के लिए आमंत्रित किया जाए।

"वैश्वीकरण को खुलेपन से बढ़ने, आर्थिक परस्पर निर्भरता बढ़ाना और विश्व अर्थव्यवस्था में आर्थिक एकीकरण को मजबूत बनाने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

वैश्वीकरण अर्थात् विदेशी निवेश को खोलना, बहुराष्ट्रीय निगमों (एमएनसी) के प्रवेश में बाधाओं को दूर करना, आयात शुल्क में कमी लाने, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने, अंतरराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने, आदि को बढ़ावा देने से संबंधित है। भारत में वैश्वीकरण के साथ, बहुराष्ट्रीय कंपनियों को उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रवेश करने की अनुमति है जिनके प्रवेश को पहले वर्जित या प्रतिबंधित किया गया था। वैश्वीकरण में माना जाता हैं कि घरेलू अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ निकट संबंध होना चाहिए। नतीजतन, दुनिया के विभिन्न देशों में माल और सेवाओं, प्रौद्योगिकी और विशेषज्ञता का अप्रतिबंधित प्रवाह होगा पूरे विश्व में अलग–अलग अर्थव्यवस्थाओं के साथ घरेलू अर्थव्यवस्था का सहयोग बढ़ेगा। दुनिया के विकसित देशों से चीन और भारत जैसे विकासशील देशों की ओर पूंजी और प्रौद्योगिकी का प्रवाह होगा।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां वैश्वीकरण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। अब अलग–अलग देशों के बीच निवेश, प्रौद्योगिकी, सामान और सेवाओं की वृद्धि हुई है। ई विश्व के विभिन्न देश एक दूसरे के निकट संपर्क में आ गए हैं। अब अलग–अलग देशों के लोगों के बीच व्यवहार एवं लेन देन में भी वृद्धि हुई है। परिवहन और संचार में सुधार के साथ, बेहतर रोजगार, बेहतर शिक्षा, पर्यटन, चिकित्सा उपचार और अन्य अवसरों आदि की तलाश में अधिक लोग एक देश से दूसरे स्थान पर जाते हैं। वैश्वीकरण का अंतिम उद्देश्य दुनिया को एक 'वैश्विकश गांव' सदृश बनाना है। इस प्रकार, वैश्वीकरण विश्व अर्थव्यवस्था के साथ घरेलू अर्थव्यवस्था को एकीकृत करने की प्रक्रिया है। वैश्वीकरण में मुख्य रूप से शामिल हैं:

(I) विभिन्न देशों में टैरिफ और गैर–टैरिफ बाधाओं को कम करना।
(II) विभिन्न राष्ट्रों के बीच पूंजी के मुक्त प्रवाह की अनुमति देना।
(III) विभिन्न देशों में प्रौद्योगिकी के मुक्त प्रवाह की अनुमति देना।
(IV) विभिन्न देशों के बीच श्रम के मुक्त प्रवाह की अनुमति देना।

21.2.1 वैश्वीकरण की परिभाषाएं

वैश्वीकरण को परिभाषित करने के कई तरीके हैं कुछ परिभाषाओं को निम्नानुसार कहा जा सकता है:

1. रूबेंस रिकुपेरो, UNCTAD के महासचिव के शब्दों में – "वैश्वीकरण तीन मुख्य शक्तियों के परिणामस्वरूप विश्व अर्थव्यवस्था का एकीकरण है: (i) माल और सेवाओं में व्यापार में वृद्धि (ii) बहुराष्ट्रीय कंपनियों के निवेश में वृद्धि और उत्पादन की प्रकृति में परिणामस्वरूप परिवर्तन। उत्पादन अब राष्ट्रीय नहीं हो रहा है, बल्कि विभिन्न देशों में एक प्रक्रिया के रूप में हो रहा है, और (iii) अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक लेनदेन।"

2. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री दीपक नैयर के अनुसार, "वैश्वीकरण को खुलेपन से बढ़ने, आर्थिक परस्पर निर्भरता बढ़ाना और विश्व अर्थव्यवस्था में आर्थिक एकीकरण को मजबूत बनाने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

3. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार, "वैश्वीकरण का आशय माल और सेवाओं और अंतर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह में सीमा पार के लेन–देन को बढ़ाकर और प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार के माध्यम से विभिन्न देशों की आर्थिक अंतर–निर्भरता बढ़ाना है।"

संक्षेप में, ऊपर दी गयी परिभाषाएं वैश्वीकरण की निम्नलिखित विशेषताओं को उजागर करती हैं:

(I) वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ घरेलू अर्थव्यवस्था का एकीकरण।
(II) विदेशी पूंजी, विदेशी प्रौद्योगिकी और विदेशी प्रतियोगिता के लिए अर्थव्यवस्था को खोलना।
(III) निर्यात और आयात के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण के साथ मुक्त विश्व व्यापार व्यवस्था में टैरिफ और कोटा का उन्मूलन।
(IV) बहुराष्ट्रीय निगमों का विस्तार।
(V) अंतरराष्ट्रीय पूंजी का मुफ्त प्रवाह।

21.2.2 वैश्वीकरण के लक्षण / घटक

1. **माल और सेवाओं का मुक्त व्यापारः** वैश्वीकरण में, उदार नीति वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात और आयात के लिए अपनाई गई है। विभिन्न टैरिफ और गैर–टैरिफ बाधाओं को हटा दिया जाता है ताकि विभिन्न देशों में वस्तुओं और सेवाओं के अप्रतिबंधित आवागमन को सुनिश्चित किया जा सके। पूरी दुनिया को एक एकल वैश्विक गांव के रूप में माना जाता है।

2. **पूंजी का मुक्त प्रवाहः** वैश्वीकरण का आशय घरेलू अर्थव्यवस्था को विदेशी पूंजी और निवेश के लिए खोलना और बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश में बाधाओं को दूर करना। वैश्वीकरण में, पूंजी के अन्तः प्रवाह और बहिप्रर्वाह पर प्रतिबंध हटा दिए जाते हैं और विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए कई रियायतें दी जाती हैं।

3. **श्रम का स्वतंत्र आवागमनः** वैश्वीकरण से आशय विभिन्न देशो के मध्य श्रम के मुक्त प्रवाह एवं आवागमन से है। आप्रवासन और उत्प्रवास नियम उदार होने से तकनीशियन, टेक्नोक्रेट, कुशल श्रम की भर्ती को आसान बना दिया है। यह व्यावसायिक इकाइयों को अन्य देशों में उपलब्ध सस्ते मानव श्रम का लाभ लेने में सक्षम बनाता है। इससे विभिन्न राष्ट्रों के मध्य एक दूसरे पर निर्भरता बढ़ जाती है।

21.3 वैश्वीकरण की रणनीतियां

वैश्वीकरण के विभिन्न प्रकार की रणनीतियों को अपनाने के माध्यम से विभिन्न कम्पनियां विश्वव्यापी बढ़ती हैं। कुछ कंपनियां विभिन्न राष्ट्रों के लिए भी अलग–अलग रणनीति अपनाती हैं। वैश्वीकरण की विभिन्न रणनीतियों पर चर्चा निम्न प्रकार हैः

21.3.1 निर्यात

निर्यात वैश्वीकरण का सबसे पारंपरिक तरीका है। शुरू में, एक घरेलू व्यापार इकाई एक राष्ट्र को निर्यात करके अपने अंतरराष्ट्रीय व्यापार शुरू करती है। धीरे–धीरे, यह विभिन्न देशों में अपने निर्यात का विस्तार करता है। जब देश की अतिरिक्त उत्पादन क्षमता होती है तो निर्यात बहुत उपयोगी होता है, अर्थात इसका घरेलू खपत अपनी उत्पादन क्षमता से कम है। इसी समय, देश अन्य देशों की तुलना में उन वस्तुओं के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त करता है। तुलनात्मक लाभ सस्ते श्रम, अच्छी गुणवत्ता वाले कच्चे माल की प्रचुर आपूर्ति, तकनीकी लाभ आदि के कारण हो सकता है।

21.3.2 लाइसेंसिंग और फ्रेंचाइजी

लाइसेंस में, एक देश की व्यावसायिक इकाई (लाइसेंसधारी) दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई (लाइसेंसधारी) को अपनी तकनीकी जानकारी (पेटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट, आदि) का उपयोग करने की अनुमति देती है। इसके लिए, लाइसेंसधारक समय के निर्धारित अवधि के लिए लाइसेंसधारी से रॉयल्टी का भुगतान करता है। अधिकांश देशों में, रॉयल्टी की दर बिक्री का 5% से लेकर 8% है। लाइसेंसिंग समझौतों से लाइसेंसधारी को अपनी बौद्धिक संपदा का अधिकतम उपयोग करने में सक्षम किया गया है। लाइसेंसधारी भी, लाइसेंसिंग समझौते में प्रवेश करके आधुनिक तकनीक के लाभों का लाभ उठा सकते हैं। फ्रेंचाइज़िंग के तहत, एक देश की व्यावसायिक इकाई (फ्रैंचाइज़र) दूसरे देश के

व्यापार इकाई (फ्रेंचाइजी) को एक विशेष तरीके से व्यवसाय करने के अधिकार देता है। फ्रैंचाइज़र के ब्रांड नामों के तहत सामान बेचने के संबंध में यह अधिकार हो सकता है। कुछ मामलों में, फ्रैंचाइज़र द्वारा फ्रैंचाइजी को मुख्य घटक प्रदान किए जाते हैं। फ्रैंचाइज़िंग के एक अन्य रूप में, निर्माता अन्य देशों में डीलरों की नियुक्ति कर सकता है। उदाहरण के लिए, पेप्सी और कोका–कोला जैसी शीतल पेय निर्माताओं ने अपने उत्पाद का मुख्य भाग प्रदान किया है, अन्य देशों में उनके फ्रेंचाइजी के लिए सिरप। फ्रैंचाइज़ी के पास अपने स्वयं के बोतल बनाने के संयंत्र हैं। जहां वे शीतल पेय बनाते हैं लेकिन फ्रेंचाइज़र के ब्रांड नाम के तहत वे इसे बेचते हैं।

21.3.3 अनुबंध विनिर्माण

इस समझौते में, एक देश की व्यावसायिक इकाई दूसरे देशों के निर्माताओं के साथ समझौते में प्रवेश करती है ताकि उन्हें अपने सामानों के निर्माण के लिए अनुमति मिल सके, लेकिन इन वस्तुओं को बाजार में रखने का अधिकार पैतृक विदेशी उधम द्वारा बनाए रखा जाता है। इस तरह के समझौते के तहत, पैतृक विदेशी उधम अन्य देशों में अपने व्यापार का विस्तार अन्य देशों में अपना स्वयं का विनिर्माण संयंत्र स्थापित किए बिना कर सकते हैं। यदि मूल उधम का मानना है कि किसी खास देश में विपणन बहुत लाभदायक नहीं है, तो वह उस राष्ट्र से आसानी से बाहर निकल सकता है क्योंकि उसने दूसरे देश में अपना उत्पादन संयंत्र स्थापित नहीं किया है।

21.3.4 संयुक्त उधम

यह विदेशी बाजार में प्रवेश पाने के लिए एक आम रणनीति है। संयुक्त उधम में, विदेशी साझेदार दूसरे देश की स्थानीय इकाई के साथ एक व्यवस्था करता है जिसमें स्वामित्व और प्रबंधन स्थानीय इकाई और विदेशी सहयोगी द्वारा साझा किया जाता है। स्थानीय इकाई का घरेलू परिस्थितियों का संपूर्ण ज्ञान है और इसका स्थानीय सेट अप, विनिर्माण इकाई, वितरण नेटवर्क, सेवा केंद्र आदि जैसी बुनियादी सुविधाएं हैं। यदि विदेशी साझेदार विकसित राष्ट्र से संबंधित है, तो यह अपनी उन्नत प्रौद्योगिकी और टेक्नोक्रेट प्रदान करता है। जबकि स्थानीय इकाई श्रम के लिए व्यवस्था करता है, संयुक्त उधम का लाभ विदेशी सहयोगी और स्थानीय इकाई के बीच साझा किया जाता है।

21.3.5 प्रबंधन अनुबंध

इस व्यवस्था में, एक राष्ट्र के मूल उधम प्रबंधन एजेंसियों को स्थापित करता है। इन प्रबंधन एजेंसियों के माध्यम से, अन्य देशों की व्यावसायिक इकाइयों को स्वामित्व / पूंजी में कोई भी हिस्सेदारी के बिना प्रबंधित किया जाता है। इसका आशय है कि मूल उधम अन्य देशों के व्यापारिक इकाइयों को बस अपनी प्रबंधकीय विशेषज्ञता प्रदान कर रहा है। इसके लिए, लाभ या एकमुश्त शुल्क के प्रतिशत के रूप में कुछ शुल्क मूल उधम द्वारा लिया जाता है।

21.3.6 संपूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियां

कुछ कंपनियां अन्य देशों में पूर्ण स्वामित्व वाली इकाइयां खोलती हैं। ये सहायक कंपनियां पूरी तरह से उनकी मूल कंपनी के स्वामित्व में हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां वैश्वीकरण के लिए इस मार्ग को पसंद करती हैं, जब वे दूसरे देशों में विनिर्माण गतिविधियों पर पूरा नियंत्रण रखना चाहते हैं। संयुक्त उद्यमों, लाइसेंसिंग,

फ्रेंचाइज़िंग, निर्यात आदि में प्रवेश करने के बजाय, उन्होंने विभिन्न देशों में अपनी विनिर्माण इकाई स्थापित की। उदाहरण के लिए, एलजी इलेक्ट्रॉनिक्स ने भारत में इसकी पूर्ण स्वामित्व वाली विनिर्माण सहायक इकाई के रूप में एलजी इंडिया की स्थापना की है। भारत में इसका अपना विनिर्माण और विपणन सेट–अप है मूल कंपनी का ब्रांड नाम सहायक कंपनियों को बढ़ाया जाता है

21.3.7 असेंबली कॉन्ट्रैक्ट्स

वैश्वीकरण की इस रणनीति में, विदेशी साझेदार प्रमुख घटक और कलपुर्जे प्रदान करता है जो किसी अन्य देश में संकलित किए जाते हैं। आमतौर पर विकसित देशों की व्यावसायिक इकाई प्रमुख अवयव प्रदान करती है, जबकि इन्हें विकासशील राष्ट्र में इकट्ठा किया जाता है। इन अनुबंधों में प्रवेश किया जाता है ताकि विकासशील देशों में उपलब्ध सस्ते श्रम के लाभ का लाभ उठाया जा सके। इतने संकलित किए गए उत्पादों को विदेशी मूल कंपनी के ब्रांड नाम के तहत विपणन किया जाता है। यह व्यवस्था कस्टम ड्यूटी को बचाने में भी मदद करती है क्योंकि तैयार उत्पाद के मुकाबले केवल प्रमुख घटक आयात किए जाते हैं। तैयार उत्पादों के मुकाबले कस्टम ड्यूटी घटकों पर कम है। वैश्वीकरण के इस रूप में, राजनीतिक प्रतिरोध कम है क्योंकि यह विकासशील देश में रोजगार के अवसर बनाता है जहां घटक संकलित होते हैं। ये संकलित करके तैयार किए गए उत्पादों को घरेलू बाजार में ही नहीं बेचा जाता बल्कि उन अन्य देशों को भी निर्यात किया जाता है जो विकासशील राष्ट्र के निर्यात को बढ़ाने में मदद करता है।

21.3.8 क्रॉस–बॉर्डर विलय और अधिग्रहण

इस तरह के विलय और अधिग्रहण अलग–अलग देशों के व्यापार इकाइयों के बीच होते हैं। विलय में, व्यापारिक इकाइयां आमतौर पर एक ही स्तर पर कार्य कर रही हैं, प्रतियोगिता का सामना करने के लिए समान प्रकार के व्यवसाय होते हैं और उनकी दीर्घकालिक प्रतियोगी ताकत को बढ़ाने के लिए। यह आगे पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं के लिए जोड़ता है। सीमा पार अधिग्रहण में, आम तौर पर एक देश की एक बड़ी व्यावसायिक इकाई दूसरे देश में अपेक्षाकृत छोटे व्यवसाय इकाई का अधिग्रहण करती है। उदाहरण के लिए, टाटा स्टील (भारतीय कंपनी) ने कॉर्न्स स्टील (यूरोपीय कंपनी) का अधिग्रहण किया। इसी तरह, भारती एयरटेल ने अफ्रीका में जेन के दूरसंचार कंपनी का अधिग्रहण किया। इस तरह, पार से सीमा विलय और अधिग्रहण के माध्यम से, व्यापारिक इकाइयां अपने व्यापार गतिविधियों को अन्य देशों में विस्तारित करती हैं वैश्वीकरण की यह रणनीति दूसरे देश में विनिर्माण और विपणन के लिए त्वरित पहुंच प्रदान करती है।

21.3.9 तीसरा देश का मार्ग/स्थान

भूमंडलीकरण की इस रणनीति का उपयोग दो देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का लाभ उठाने के लिए किया जाता है। इस मामले में, एक देश दूसरे देश में सीधे निवेश नहीं करता है, बल्कि तीसरे देश में निवेश किया जाता है। इस तीसरे देश के माध्यम से, निवेश गंतव्य देश को कराया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में मॉरीशस के साथ कर–रियायत संधि है, अर्थात् अगर भारत में मॉरीशस के माध्यम से कोई भी निवेश किया जाता है, तो उसे कर छूट मिलेगी। इस संधि का लाभ उठाने के लिए, जापान, यूके और अमेरिका जैसे अन्य देशों के

कुछ विदेशी निवेशकों, जो भारत में सीधे निवेश करने की बजाय भारत में निवेश करने का इरादा रखते हैं, करों की रियायतों का लाभ उठाने के लिए मॉरीशस के माध्यम से अपने निवेश का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीसरे देश की स्थान रणनीति का भी उपयोग किया जाता है जब दो राष्ट्रों (ए और बी कहते हैं) के पास अच्छे राजनीतिक या व्यापार संबंध नहीं होते हैं यदि देश ए का निवेशक देश में निवेश करना चाहता है या इसके विपरीत, तो निवेशक तीसरे देश के माध्यम से अपने पैसे का मार्ग रखेंगे। इस प्रकार, वैश्वीकरण की इस रणनीति में, गंतव्य देश में निवेश करने के लिए तीसरे देश का उपयोग किया जाता है।

21.4 वैश्वीकरण के लिए आवश्यक शर्तें

21.4.1 उदारीकरण

उदारीकरण का आशय है सरकार द्वारा लगाए गए व्यापार इकाइयों पर अनावश्यक प्रतिबंध और नियंत्रण को कम करना। इसका अर्थ है प्रक्रियात्मक सरलीकरण, आराम से व्यापार और उद्योग अनावश्यक नौकरशाही बाधाओं से यह औद्योगिक लाइसेंसिंग, सामान पर मूल्य नियंत्रण, आयात लाइसेंस, विदेशी मुद्रा नियंत्रण, बड़े कारोबारी घरों द्वारा निवेश आदि के संबंध में छूट प्रदान करता है। इसमें विदेशी व्यापार पर टैरिफ और गैर–टैरिफ बाधाओं को कम करना, विदेशी निवेश के अन्तः एवं बाह्य आवागमन को सुगम बनाना आदि भी शामिल हैं। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के संबंध में सरकार की उदार नीति बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश के लिए मार्ग प्रशस्त करती है, यह वैश्वीकरण को बढ़ावा देता है।

21.4.2 बहुपक्षीय व्यापार समझौते

पहले, विदेशी व्यापार द्विपक्षीय व्यापार समझौतों के माध्यम से किया गया था, अर्थात, दो विदेशी राष्ट्रों के बीच व्यापार समझौतों लेकिन विश्व व्यापार संगठन, आईएमएफ, UNCTAD जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के उद्भव के साथ, विदेश व्यापार ने अपने मार्ग को द्विपक्षीय व्यापार समझौतों से बहुपक्षीय व्यापार समझौतों में बदल दिया यानी, कई देशों के बीच व्यापार समझौते। बहुपक्षीय व्यापार समझौतों ने कई देशों में विदेशी व्यापार को बढ़ावा दिया है, जिन्होंने दुनिया के कई देशों को एक दूसरे के करीब लाया है। यह विभिन्न देशों के बीच परस्पर निर्भरता को बढ़ावा दिया है बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के बिना, वैश्वीकरण संभव नहीं होता। 2010 में, विश्व के 153 देश विश्व व्यापार संगठन के सदस्य थे विश्व व्यापार संगठन के प्लेटफॉर्म पर दर्ज किसी भी समझौते बहुपक्षीय व्यापार समझौते की प्रकृति में हैं और साथ ही साथ 153 देशों के लिए लागू है।

21.4.3 बहुपक्षीय निवेश समझौता

बहुपक्षीय निवेश समझौते में, कई देशों में विदेशी निवेश के प्रवाह और बहिर्वाह पर प्रतिबंध हटाने के लिए समझौते किए जाते हैं। यह दुनिया के विभिन्न हिस्सों में अपने कारोबार का विस्तार करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अवसर प्रदान करता है। TRIMs अर्थात विश्व व्यापार संगठन मंच पर व्यापार संबंधी निवेश उपाय बहुपक्षीय निवेश समझौते का एक उदाहरण है। ऐसे समझौते वैश्वीकरण को बढ़ावा देते हैं

21.4.4 पर्याप्त संसाधन

वैश्विक स्तर पर व्यापार का विस्तार संभव है, जब व्यापार इकाई में पर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रबंधकीय और तकनीकी विशेषज्ञता, उद्यमशीलता कौशल,

लोकप्रिय ब्रांड, विपणन कौशल, कुशल मानव संसाधन आदि शामिल हैं। अगर इन संसाधनों की कमी है, तो वैश्विक स्तर पर व्यवसाय का विस्तार नहीं किया जा सकता है।

21.4.5 तुलनात्मक लाभ

अगर किसी व्यावसायिक इकाई का उत्पादन, उत्पाद की गुणवत्ता, विपणन लाभ, ब्रांड छवि इत्यादि के संबंध में तुलनात्मक लाभ होता है, तो व्यापार इकाई के लिए दुनिया के विभिन्न हिस्सों में अपने व्यवसाय का विस्तार करना आसान हो जाता है। यह तुलनात्मक लाभ अच्छी गुणवत्ता वाले कच्चे माल की प्रचुर आपूर्ति, सस्ते और कुशल श्रम की उपलब्धता, तकनीकी लाभ आदि के कारण हो सकता है। उदाहरण के लिए, भारत में रत्न और आभूषण उद्योग के लिए कुशल श्रम कम कीमत पर उपलब्ध है, जिससे इसकी उत्पादन लागत कम करने में मदद मिली है। उसने वैश्विक स्तर पर भारतीय रत्न और आभूषण उद्योग को चमकने में सक्षम बनाया है।

21.4.6 परिवहन में सुधार

पिछले कई सालों में, परिवहन प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। हवाई परिवहन प्रणाली और बंदरगाहों के विकास में सुधार के साथ, कम दरों पर लंबी दूरी पर सामान वितरित करना आसान हो गया है। कंटेनर परिवहन में वृद्धि के साथ, विदेशी व्यापार में काफी वृद्धि हुई है इसने विदेशी व्यापार और विभिन्न देशों के एकीकृत बाजारों को बढ़ावा दिया है

21.4.7 सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में सुधार

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है दूरसंचार में वृद्धि, इंटरनेट, कंप्यूटर, से विभिन्न देशों में सूचना साझा करना बहुत आसान हो गया है। अब मोबाइल फोन, फैक्स, इलेक्ट्रॉनिक मेल, वॉयस मेल बहुत आम हो गए हैं उसने विभिन्न देशों में विभिन्न नौकरियों के आउटसोर्सिंग को सक्षम किया है।

21.4.8 अन्य देशों का अनुभव

पिछले दो या तीन दशकों में, रूस, पूर्वी यूरोप, पूर्वी जर्मनी जैसे केंद्रीय योजनाबद्ध अर्थव्यवस्थाएं आर्थिक मोर्चे पर विफल रही हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपनाने में यह अर्थव्यवस्थाएं हिचक रही थीं। इसके विपरीत, कोरिया, थाईलैंड, हांगकांग, सिंगापुर आदि जैसे कुछ विकासशील अर्थव्यवस्थाओं ने आर्थिक सफलता की नई ऊंचाइयों को हासिल करने के लिए वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपनाया। वैश्वीकरण की प्रक्रिया का सहारा लेकर चीन भी आर्थिक विकास की उच्च दर हासिल करने में सफल रहा। वैश्वीकरण की ये सफलता की कहानियों ने भारत और अन्य देशों को अपनी अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक बनाने के लिए प्रेरित किया।

21.4.9 कॉर्पोरेट संगठन में वृद्धि

संगठन के कॉर्पोरेट रूप के विकास ने वैश्वीकरण को गति दी है। विदेशी निवेशक आसानी से कंपनियों के शेयर खरीदकर संगठन के कॉर्पोरेट रूप में आसानी से निवेश कर सकते हैं। कॉर्पोरेट संगठनों में, विदेशी निवेशक स्टॉक एक्सचेंज के माध्यम से शेयरों को खरीदने या बेचकर अपने निवेश को बढ़ा या घटा सकते हैं।

21.4.10 अच्छी गुणवत्ता की बुनियादी ढांचा सुविधाएं

वैश्वीकरण के लिए अच्छी गुणवत्ता की बुनियादी सुविधाएं आवश्यक हैं। अगर देश में अच्छी गुणवत्ता की बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध हैं, तो उस देश में अपनी व्यावसायिक इकाइयों को स्थापित करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियां आकर्षित करती हैं। इसमें निर्बाध विद्युत आपूर्ति, परिवहन, बंदरगाह की सुविधा, भंडारण, बैंकिंग, संचार, कुशल पूंजी बाजार आदि शामिल हैं।

21.4.11 विश्व स्तर पर स्वीकृत मुद्रा

वैश्वीकरण के लिए, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत मुद्रा आवश्यक है यह अंतरराष्ट्रीय भुगतान की सुविधा देता है और अंतरराष्ट्रीय तरलता बढ़ जाती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) ने अंतरराष्ट्रीय रूप से स्वीकृत मुद्रा के रूप में पांच मुद्राएं, अर्थात् अमेरिकी डॉलर, ब्रिटिश पाउंड, फ्रांसीसी फ़्रैंक, जर्मन ड्यूश मार्क और जापानी येन को मान्यता दी है। अंतर्राष्ट्रीय भुगतान और तरलता की सुविधा के लिए आईएमएफ ने विशेष आहरण अधिकार (एसडीआर) भी जारी किए हैं।

21.5 भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकरण का प्रभाव

21.5.1 वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव

1. विदेशी व्यापार में वृद्धि

वैश्वीकरण के बाद अपनाया विदेशी व्यापार नीतियों के परिणामस्वरूप, विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा बढ़ गया है। 1990–91 में, विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा 0.53% था। 1999–96 में, यह बढ़कर 0.60% हो गया। 2009–10 में यह आगे बढ़कर 1.78% हो गया।

सारणी: विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा

वर्ष	विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा (प्रतिशत में)
1990-91	0.53
1995-96	0.60
2005-06	1.00
2007-08	1.50
2008-09	1.64
2009-10	1.78
स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, 2010–11	

उपरोक्त तालिका दर्शाती है कि भारत के विदेशी व्यापार के वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, विश्व व्यापार में भारत के हिस्से में कुछ वृद्धि हुई है। भारत के जीडीपी में भारत के निर्यात का हिस्सा लगातार बढ़ रहा है। 1990–91 में, यह जीडीपी का 6% था जो 2009–10 में बढ़कर 15.54% हो गया।

2. विदेशी निवेश में वृद्धि

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश में काफी वृद्धि हुई है।

(i) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई)

विदेशी कंपनियों द्वारा किसी अन्य देश में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियों की स्थापना के लिए विदेशी कंपनियों द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किया जाता है और ऐसी कंपनियों के प्रबंधन के लिए उन्हें प्रबंधित करने या किसी अन्य देश में कंपनियों के शेयरों को खरीदने के लिए। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मुख्य विशेषता

यह है कि देशी कंपनियां विदेशी कंपनियों द्वारा प्रबंधित की जाती हैं या नई कंपनियों को विदेशी कंपनियों द्वारा भारत में स्थापित किया जाता है। इस प्रकार के निवेश में, यह विदेशी निवेशक है जो जोखिम लेता है और इस तरह की कंपनी के लाभ/हानि के लिए पूरी तरह जिम्मेदार है।

(ii) पोर्टफोलियो निवेश

इस प्रकार के निवेश के तहत, विदेशी कंपनियों/विदेशी संस्थागत निवेशक (FIl) देशी कंपनियों के शेयर/डिबेंचर खरीदते हैं, हालांकि प्रबंधन और नियंत्रण देशी/ घरेलू कंपनियों के साथ निहित रहते हैं। भारत में विदेशी निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है 1990–91 में कुल विदेशी निवेश (एफडीआई और पोर्टफोलियो निवेश) 103 मिलियन अमेरिकी डॉलर था। वर्ष 2007–08 में, विदेशी निवेश की मात्रा 62,106 मिलियन अमरीकी डॉलर हो गई। वैश्विक मंदी के कारण, 2008–09 में विदेशी निवेश का प्रवाह घटकर 23,983 मिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया। 2009 –10 में फिर से विदेशी निवेश का प्रवाह बढ़कर + 70,139 मिलियन हो गया है। विदेशी निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि के कारण, भारत को भुगतान के अतिरिक्त शेष का अनुभव करना शुरू हुआ और विदेशी मुद्रा भंडार में एक बहुत ही उल्लेखनीय सुधार हुआ।

3. विदेशी सहयोग में वृद्धि

वैश्वीकरण ने कई भारतीय कंपनियों के साथ विदेशी कंपनियों के सहयोग को बढ़ावा दिया है। ये सहयोग समझौतों तकनीकी सहयोग, वित्तीय सहयोग या दोनों हो सकते हैं। वित्तीय सहयोग में, विदेशी कंपनियां वित्तीय संसाधन प्रदान करती हैं, जबकि तकनीकी सहयोग में विदेशी कंपनियों द्वारा आधुनिक विदेशी तकनीक प्रदान की जाती हैं। विदेशी कंपनियों ने भारतीय कंपनियों के सहयोग से भारत में कई उद्यम स्थापित किए हैं।

4. विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि

भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, विदेशी मुद्रा भंडार में भी काफी वृद्धि हुई है। 1991 में, भारत का विदेशी मुद्रा भंडार ₹4,388 करोड़ था, जो मार्च 2011 में बढ़कर 13,43,188 करोड़ (यूएस + 301.84 अरब) हो गया। इस प्रकार, भारत के विदेशी मुद्रा भंडार में 306 गुना वृद्धि हुई है।

5. बाजार का विस्तार

वैश्वीकरण ने बाजार के आकार का विस्तार किया है। इसने भारतीय व्यापारिक इकाइयों को पूरी दुनिया में अपने व्यापार का विस्तार करने की अनुमति दी है। अब बहुराष्ट्रीय निगमों की कोई राष्ट्रीय सीमा नहीं है। भारतीय कंपनियों जैसे इंफोसिस, टाटा कंसल्टेंसी, विप्रो, टाटा स्टील, रिलायंस आदि कई देशों में अपना कारोबार कर रहे हैं।

6. तकनीकी विकास

वैश्वीकरण ने विदेशी प्रौद्योगिकी के प्रवाह को सक्षम किया है, जो बहुत बेहतर और उन्नत है। अब भारतीय व्यावसायिक इकाइयों ने इस आधुनिक तकनीक का उपयोग किया है।

7. ब्रांड विकास

वैश्वीकरण ने ब्रांडेड वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा दिया है। अब न केवल टिकाऊ वस्तुओं को ब्रांडेड किया जाता है लेकिन कपड़ों, जूस, स्नैक्स, अनाज

आदि जैसे उत्पादों को भी ब्रांडेड किया जाता है। भारतीय उपभोक्ताओं में विदेशी ब्रांड बहुत लोकप्रिय हैं । ब्रांड के विकास से गुणवत्ता में सुधार आया है

8. पूंजी बाजार का विकास

वैश्वीकरण ने भारतीय पूंजी बाजार के विकास में मदद की है। अब कई विदेशी निवेशक भारतीय पूंजी बाजार में निवेश करते हैं हाल ही में, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और पोर्टफोलियो निवेश के प्रवाह में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

9. सेवा क्षेत्र का विकास

वैश्वीकरण ने सेवा क्षेत्र की वृद्धि में मदद की है। विदेशी कंपनियों के प्रवेश के साथ, दूरसंचार, बीमा, बैंकिंग, आदि जैसे विभिन्न सेवाओं में भारी सुधार देखा गया है। अब मोबाइल फोन भारत में बहुत सस्ते और लोकप्रिय हैं।

10. रोजगार में वृद्धि

वैश्वीकरण ने रोजगार के अवसरों को बढ़ावा दिया है विदेशी कंपनियां भारत में अपने उत्पादन और व्यापारिक इकाइयों की स्थापना कर रही हैं। इसने भारतीयों के लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि की है। कई भारतीय वर्तमान में विदेशी बीमा कंपनियों, मोबाइल कंपनियों, आदि में कार्यरत हैं।

11. ब्रेन ड्रेन में कमी

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, कई बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारत में अपनी व्यावसायिक इकाइयां स्थापित की हैं। ये बहुराष्ट्रीय कंपनियां कुशल भारतीय इंजीनियरों, प्रबंधकों, पेशेवरों के लिए आकर्षक वेतन पैकेज और अच्छी कामकाजी परिस्थितियां प्रदान करती हैं। अब भारतीयों को भारत में अच्छे रोजगार के अवसर मिलते हैं।

12. जीवन के मानक स्तर में सुधार

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, भारतीय आबादी के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। अब कम कीमत पर भारतीयों को बेहतर गुणवत्ता वाले सामान मिलते हैं । वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप कई उत्पादों की कीमतों में कमी हुई है, विशेष रूप से टेलीविजन, एसी, मोबाइल फोन, रेफ्रिजरेटर आदि जैसे इलेक्ट्रॉनिक आइटम। अब मध्यम–आय वर्ग इन लक्जरी उत्पादों का उपयोग करता है, जो पहले केवल अमीर वर्ग द्वारा उपयोग किया जाता था।

21.5.2 वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव

1. घरेलू उद्योग में नुकसान

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारत में विदेशी प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है। अब भारतीय औद्योगिक इकाइयों को विदेशी औद्योगिक इकाइयों के साथ प्रतिस्पर्धा करना पड़ती है। विदेशी वस्तुओं की बेहतर गुणवत्ता और कम लागत की वजह से, कई भारतीय औद्योगिक इकाइयां प्रतियोगिता का सामना करने में विफल रही हैं और बंद हो गई हैं। इस प्रतियोगिता से छोटे और कुटीर उद्योग सबसे ज्यादा प्रभावित हुए हैं।

2. बेरोजगारी

भारत में कार्यरत विदेशी कंपनियां पूंजीगत गहन तकनीक का इस्तेमाल करती हैं यहां तक कि कुछ भारतीय कंपनियां आयातित पूंजीगत तकनीक का उपयोग करती हैं कंप्यूटर और स्वचालित मशीनों के बढ़ते उपयोग के साथ, रोजगार के अवसर कम हो जाते हैं।

3. **श्रम का शोषण**

वैश्वीकरण कम मजदूरी, कम नौकरी की सुरक्षा, लंबे काम के घंटे देकर अकुशल श्रमिकों का शोषण कर रहा है। श्रमिकों को इन परिस्थितियों में भी काम करना पड़ता है क्योंकि खराब नौकरी और कम मजदूरी बिना नौकरी से बेहतर होती है।

4. **प्रदर्शन प्रभाव**

विदेशी वस्तुओं की आसान उपलब्धता के साथ, भारतीयों में प्रदर्शन प्रभाव बढ़ गया है। अब कई उपभोक्ता दूसरों की नकल करके लक्जरी उत्पादों का उपयोग कर रहे हैं। इसने भारत में व्यर्थ उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। इस बढ़ती व्यर्थ व्यय से बचत और पूंजी निर्माण में कमी आई है।

5. **असमानताओं में वृद्धि**

वैश्वीकरण ने हमारी अर्थव्यवस्था में असमानताओं को बढ़ा दिया है। वैश्वीकरण ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों और बड़े औद्योगिक इकाइयों को फायदा पहुंचाया है, लेकिन छोटे और कुटीर उद्योग पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हैं। इससे भारत में आय असमानताओं में वृद्धि हुई है।

6. **विदेशी संस्थानों के प्रभुत्व**

विदेशी संस्थानों के वैश्वीकरण के प्रभुत्व के साथ भारत में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण ने अपने बाजार हिस्सेदारी को बढ़ाने में विदेशी कंपनियों की मदद की है। उदाहरण के लिए, भारतीय शीतल पेय बाजार में, एक बड़ा हिस्सा पेप्सी और कोका–कोला द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जो विदेशी कंपनियों के हैं।

21.6 वैश्वीकरण का राजनीतिक प्रभाव

वैश्वीकरण में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं को शामिल करने वाले बहुआयामी चरित्र हैं। वैश्वीकरण का मुख्य राजनीतिक प्रभाव इस प्रकार हैः

1. **सीमा पार से संबंध में सुधार**

वैश्वीकरण ने दुनिया के विभिन्न देशों के बीच बातचीत बढ़ाई है। इसने पूरे विश्व में एक बाजार बनाया है। इसमें विभिन्न देशों के बीच संबंधों में सुधार हुआ है

2. **नौकरशाही की भूमिका बदलना**

वैश्वीकरण और उदारीकरण के परिणामस्वरूप प्रक्रियात्मक सरलीकरण हुआ है। इसने आर्थिक गतिविधियों में सरकार के हस्तक्षेप को कम कर दिया है। इससे पहले, नौकरशाही विकास के रास्ते में बाधा थी, लेकिन अब यह विकास प्रक्रिया में एक बूस्टर, त्वरक और सुविधा प्रदान करता है।

3. **पूंजीवाद में वृद्धि**

वैश्वीकरण ने दुनिया भर में पूंजीवाद को बढ़ावा दिया है। यहां तक कि चीन और रूस जैसे देश जो समाजवाद के महान अनुगामी थे उन्होंने भी पूंजीवाद को अपनाया है।

4. **सरकार की भूमिका में परिवर्तन**

भूमंडलीकरण से पहले, सरकार को आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक गतिविधियों में भाग लेना था, लेकिन वैश्वीकरण के साथ, सरकार ने अपनी भूमिका को आर्थिक क्षेत्र में कम कर दिया है। अब निजी क्षेत्र, बहुराष्ट्रीय कंपनियां आर्थिक

क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अब सरकार स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षित पेयजल, पर्यावरण संरक्षण, बुनियादी ढांचा, रक्षा आदि जैसे अन्य क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित कर सकती है।

5. सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों की दक्षता में वृद्धि

भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण के साथ, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की दक्षता में वृद्धि हुई है। प्रतिस्पर्धा में वृद्धि और निजीकरण के भय के साथ, अब सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां बेकार खर्चों को कम करने और उत्पादकता और दक्षता बढ़ाने के दबाव में हैं।

21.7 भूमंडलीकरण की राह में बाधायें

1. नौकरशाही की बाधा

व्यापार इकाइयों में अत्यधिक प्रशासनिक बाधा की वजह से ज्यादा प्रलेखन, लंबी और बोझिल प्रक्रियाओं, आदि कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इस प्रशासनिक हस्तक्षेप के कारण विदेशी निवेशक भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेश करने में संकोच करते है।

2. अस्थिर सरकारी नीति

भारत में, सत्तारूढ़ पार्टी में लगातार बदलाव होते हैं। नतीजतन, सरकार की आर्थिक नीतियां स्थिर नहीं हैं। अक्सर बदलते आर्थिक नीतियां दीर्घकालिक निवेशकों को भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेश करने के लिए हतोत्साहित करती हैं। इसके अलावा, सरकार की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता की कमी भी विदेशी निवेशकों के मन में संदेह को जन्म देती है।

3. पिछड़ी प्रौद्योगिकी

उन्नत उद्योगों की तुलना में भारतीय उद्योगों में प्रौद्योगिकी का स्तर खराब और निम्न है। भारत में प्रौद्योगिकी के अनुसंधान और विकास भी बहुत कम है। पिछड़े तकनीक के कारण, भारतीय उत्पाद खराब गुणवत्ता के हैं। भारतीय कंपनियों को खराब गुणवत्ता वाले उत्पादों के कारण विदेशी देशों में अपने व्यापार का विस्तार करना बहुत मुश्किल लगता है।

4. खराब बुनियादी ढांचा

भारत में, विकसित देशों की तुलना में अवसंरचनात्मक सुविधाएं बहुत खराब हैं। गरीब बुनियादी ढांचे के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में निवेश करने में संकोच करते हैं। मजबूत बुनियादी ढांचे का अभाव अन्य देशों में भारतीय कंपनियों के विस्तार में बाधा पैदा करता है। पर्याप्त बंदरगाह सुविधाओं की कमी की तरह निर्यात आयात लेनदेन में एक बड़ी बाधा है।

5. छोटे आकार के व्यापारिक इकाइयां

भारत में, अधिकांश व्यापारिक इकाइयां परिवार के स्वामित्व वाले हैं। उनकी व्यावसायिक गतिविधियां मुख्य रूप से स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर तक सीमित हैं। वे अपने व्यापार गतिविधियों को अन्य देशों में विस्तार करने का नहीं सोच सकते।

6. वैश्विक दृष्टि की कमी

भारत में, बहुत कम उद्यमियों को वैश्विक दृष्टि है। अधिकांश उद्यमियों को संकीर्ण दृष्टि है। उनके पास वैश्विक अभिविन्यास नहीं है। वे विदेशी व्यापार में शामिल जोखिम से बचते हैं और स्थानीय या राष्ट्रीय स्तर पर ही सीमित रहते हैं।

7. वैश्विक प्रतिस्पर्धा में वृद्धि

अन्य वस्तुओं के उत्पादों से वैश्विक बाजार में भारतीय वस्तुओं को कठिन प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा में बढ़ोतरी ने भारतीय निर्यातकों को अपने उत्पादों को वैश्विक बाजार में बेचने में बहुत मुश्किल बना दिया है।

8. विकसित देशों द्वारा लगाई गई टैरिफ और गैर–टैरिफ़ बाधाएं

विकसित देशों ने विकास शुल्क, मात्रात्मक प्रतिबंध, पैकिंग नियमों, सुरक्षा मानदंडों जैसे विकासशील देशों से आयात पर विभिन्न टैरिफ और गैर–टैरिफ बाधाएं लगाई हैं। इससे विकसित देशों में अपने उत्पादों को बेचने के लिए निर्यातकों पर प्रतिकूल असर पड़ा है।

21.8 ग्लोकलाइजेशन

ग्लोकलाइजेशन एक और शब्द है जिसका उपयोग आजकल वैश्विक बाजारों के संदर्भ में किया जाता है। ग्लोकलाइजेशन के तहत, वैश्विक कंपनियां विभिन्न देशों की घरेलू आवश्यकताओं, संस्कृति और फैशन के अनुसार अपने उत्पाद को संशोधित करती हैं। वैश्विक कंपनियां स्थानीय जरूरतों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के उत्पादों और सेवाओं को बेचती हैं। इस प्रकार, ग्लोकलाइजेशन दो अवधारणाओं का मिश्रण है–वैश्वीकरण और स्थानीयकरण। आजकल वैश्विक बाजार और विभिन्न संस्कृतियों, आय स्तर, सीमा शुल्क, परंपराओं, कानून आदि में कड़ी प्रतिस्पर्धा के दौर में, एक बहुराष्ट्रीय कंपनी सभी देशों में एक ही उत्पाद नहीं बेच सकती है। इसे विभिन्न देशों के लिए अलग–अलग उत्पादन और विपणन रणनीतियों को अपनाना पड़ता है। ग्लोकलाइजेशन वैश्विक होने की रणनीति है लेकिन एक साथ स्थानीय जरूरतों और शर्तों के प्रति संवेदनशील है। ग्लोकलाइजेशन विभिन्न राष्ट्रों और क्षेत्रों के बहुसांस्कृतिक प्रकृति का समाधान प्रदान करता है। सरल शब्दों में, ग्लोकलाइजेशन का अर्थ है, "थिंक ग्लोबल एंड एक्ट लोकल।" उदाहरण के लिए, मैकडॉनल्ड्स, एक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय फास्ट फूड ब्रांड, भारतीय परंपराओं और संस्कृति के आधार पर अपने मेनू को स्थानांतरित करता है अधिकांश भारतीय, पश्चिमी उपभोक्ताओं के विपरीत, मांस का उपभोग नहीं करते और ज्यादातर भारतीय शाकाहारी है इसे समझते हुए, मैकडॉनल्ड्स ने अपने मजबूत शाकाहारी मेनू के साथ भारतीय फास्ट फूड में प्रवेश किया और केवल गैर–शाकाहारी श्रेणी में चिकन और मटन तक ही सीमित है। इसने महाराजा मैक, चिकन टिक्का आलू आदि जैसे खाद्य पदार्थों के लिए स्थानीय नाम भी चुना है।

21.9 उदारीकरण

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का अर्थ है सरकार द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष या भौतिक नियंत्रण से मुक्त करना। 1991 से पहले, सरकार ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर कई प्रकार के नियंत्रण लगाए थे उदाहरण के लिए औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली, मूल्य नियंत्रण या वित्तीय नियंत्रण या सामान पर वित्तीय नियंत्रण, आयात लाइसेंस, विदेशी मुद्रा नियंत्रण, बड़े व्यापारिक घरानों द्वारा निवेश पर प्रतिबंध आदि। यह सरकार द्वारा अनुभव किया गया था कि कई कमियां इन नियत्रणों के कारण अर्थव्यवस्था में आ गई थी और इनने उद्यमियों के उत्साह को नए उद्योगों

को स्थापित करने के लिए कम किया था। इन नियंत्रणों ने भ्रष्टाचार, अनुचित देरी और अक्षमता को जन्म दिया था। अर्थव्यवस्था की आर्थिक वृद्धि दर तेजी से गिर गई और उच्च लागत वाली आर्थिक प्रणाली अस्तित्व में आई। आर्थिक सुधारों ने अर्थव्यवस्था पर लगाए गए प्रतिबंध को कम करने के लिए एक प्रयास किया।

21.10 उदारीकरण के लिए किए गए उपाय

भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के लिए आर्थिक सुधारों के तहत निम्नलिखित उपाय किए गए हैं:

1. **औद्योगिक लाइसेंसिंग और पंजीकरण का उन्मूलन**

नई औद्योगिक नीति की मुख्य विशेषता यह है कि नियंत्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर उदारीकरण की नीति अपनाए। अब तक, अर्थव्यवस्था का निजी क्षेत्र एक कठोर लाइसेंसिंग प्रणाली के तहत काम कर रहा था। नई आर्थिक नीति के अंतर्गत निजी क्षेत्र को लाइसेंस प्राप्त करने और अन्य प्रतिबंधों से काफी हद तक मुक्त किया गया है। जुलाई 1991 में, इस संबंध में एक नई औद्योगिक नीति घोषित की गई थी। इसके अनुसार, ये 6 अपवाद के साथ, अन्य सभी उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेंस समाप्त कर दिया गया है। जिन उद्योगों के लिए लाइसेंस अभी भी आवश्यक हैं: (i) शराब, (ii) सिगरेट, (iii) रक्षा उपकरणों (iv) दवाएं, (v) औद्योगिक विस्फोटक (vi) खतरनाक रसायन। कोई भी उद्यमी किसी भी नई कंपनी को शुरू कर सकता है और बिना किसी प्रतिबंध के अपने शेयरों को बेच सकता है।

2. **एकाधिकार अधिनियम से छूट**

एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (एमआरटीपी अधिनियम) के प्रावधानों के मुताबिक जो कंपनियां 100 करोड़ से अधिक संपत्ति की संपत्ति वाले हैं, उन सभी कंपनियों को एमआरटीपी कंपनी घोषित किया जाता था और उन्हें कई प्रतिबंधों के अधीन किया जाता था। अब एमआरटीपी की अवधारणा को समाप्त कर दिया गया है। इन फर्मों को अब निवेश निर्णयों को लेने के समय सरकारों के पूर्व अनुमोदन प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं का विस्तार करने के लिए स्वतंत्र हैं । एमआरटीपी अधिनियम के तहत आने वाली कंपनियों को बड़ी रियायतें दी गई हैं। पूंजीगत निवेश सीमा पहले तय की गई है। नतीजतन, प्रमुख उद्योगों और औद्योगिक घरानों पर नए उद्योग स्थापित करने या उद्योगों के विस्तार, अधिग्रहण और एकीकरण के लिए कोई प्रतिबंध नहीं होगा। हालांकि, इस नीति के तहत उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए अनुचित व्यापार पद्धतियों की जांच के लिए अधिक जोर दिया जाएगा। नए सशक्त एकाधिकार बोर्ड को व्यक्तिगत उपभोक्ताओं से प्राप्त शिकायतों पर या किसी भी चीज की जांच करने के लिए प्राधिकृत किया जाएगा। उन्होंने एमआरटीपी अधिनियम की भी आलोचना की और कहा, "एमआरटीपी अधिनियम के तहत बड़े कारोबार पर लगाए गए प्रतिबंध का आशय है कि कुछ महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्रों में, जिनके लिए बड़े पैमाने पर निवेश की आवश्यकता थी, जहाँ छोटे व्यवसायिक घर पर्याप्त संसाधनों को पूरा नहीं कर पाए, क्षमता का विस्तार विशेष रूप से मुश्किल हो गया। "

3. **उद्योग के लिए विस्तार और उत्पादन के लिए स्वतंत्रता**

उदारीकरण की नीति के तहत, उद्योगों को विस्तार और उत्पादन करने के लिए स्वतंत्रता हैं। उन्हें पूर्व आधिकारिक अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। उदारीकरण नीति के परिणामस्वरूप, उद्योगों को निम्नलिखित स्वतंत्रता दी गई हैः

(I) उदारीकरण से पहले पुरानी नीति के प्रावधानों के तहत सरकार लाइसेंस की अनुमति देने के समय उत्पादन क्षमता की अधिकतम सीमा तय किया करती थी। कोई भी उद्योग इस सीमा से अधिक उत्पादन नहीं कर सकता अब यह सीमा हटा दी गई है, ताकि उद्योग को बड़े पैमाने पर उत्पादन का पूरा फायदा उठाने के लिए सक्षम किया जा सके।

(II) निर्माता अब बाजार में मांग के आधार पर कुछ भी उत्पादन करने के लिए स्वतंत्र हैं। इससे पहले, केवल उन वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है जो लाइसेंस में उल्लिखित थे किन्तु अब ऐसा नहीं है।

4. लघु उद्योगों की निवेश सीमा में वृद्धि

छोटे उद्योगों की निवेश सीमा बढ़ा दी गई है, ताकि उन्हें आधुनिकीकरण लागू करने में सक्षम बनाया जा सके। उद्योगों की निवेश सीमा को भी बढ़ाकर 25 लाख रुपये कर दिया गया है।

5. पूंजीगत वस्तु का आयात करने की स्वतंत्रता

उदारीकरण की नीति के तहत, भारतीय उद्योगों को विस्तार और आधुनिक बनाने के लिए विदेशों से मशीनों और कच्चे माल खरीदने के लिए स्वतंत्रता होगी ।

6. प्रौद्योगिकी आयात के लिए स्वतंत्रता

आर्थिक सुधारों की नई आर्थिक नीति ने आधुनिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए उच्च तकनीक के इस्तेमाल पर जोर दिया है। इस नीति का उद्देश्य उदीयमान उद्योगों को विकसित करना है यानी कंप्यूटर और इलेक्ट्रॉनिक्स। नए आर्थिक सुधारों के तहत, भारतीय उद्योगों में तकनीकी गतिशीलता को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने समझौतों को उच्च प्रौद्योगिकी आयात करने की अनुमति दी है। नई औद्योगिक नीति में प्रावधान है कि उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों को उच्च प्रौद्योगिकी से संबंधित समझौतों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं चाहिए।

7. ब्याज दरों का स्वतंत्र निर्धारण

उदारीकरण की नीति के अनुसार देश की बैंकिंग प्रणाली की ब्याज दर अब भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित नहीं की जाएगी। पूरे देश में बैंक अब ब्याज दर की दर निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र हैं।

8. सूचना प्रौद्योगिकी और सॉफ्टवेयर विकास के लिए कार्य योजना

सूचना प्रौद्योगिकी और सॉफ्टवेयर विकास पर राष्ट्रीय टास्क फोर्स ने जुलाई, 1998 में 108 प्वाइंट एक्शन प्लान को प्रस्तुत किया। सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और उनके कार्यान्वयन के निर्देश सभी संबंधित विभागों दिए गए।

21.11 निजीकरण का अर्थ

आर्थिक सुधारों के संदर्भ में, निजीकरण का आशय निजी क्षेत्र को अधिक से अधिक उद्योग स्थापित करने की अनुमति देना है जो पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे। इसके तहत, सार्वजनिक क्षेत्र के मौजूदा उद्यम या तो पूर्ण या आंशिक रूप से निजी क्षेत्र को बेच दिए जाते हैं। "निजीकरण एक निजी स्वामित्व

वाली उद्यम के स्वामित्व या संचालन में निजी क्षेत्र को शामिल करने की सामान्य प्रक्रिया है।" निजीकरण की आवश्यकता मुख्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र की अक्षमता के कारण महसूस हुई थी सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकांश उद्यम नुकसान में चल रहे थे। इसके पीछे मुख्य कारण यह था कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के प्रबंधकों को स्वतंत्र रूप से किसी भी निर्णय लेने के लिए स्वतंत्रता नहीं थी। सभी महत्वपूर्ण निर्णयों मंत्री द्वारा लिए गए, जो उनके राजनीतिक हितों से ज्यादा प्रेरित थे। निर्णय लेने में लंबा समय लगा। नतीजतन, उत्पादन क्षमता का उचित उपयोग नहीं हुआ, प्रबंधक जिम्मेदार तरीके से कार्य करने में विफल रहे जिससे उत्पादकता कम हो गई। इन सभी कारकों ने सार्वजनिक क्षेत्र की अक्षमता में योगदान दिया। निजीकरण के परिणामस्वरूप अधिक प्रतिस्पर्धा होगी, अर्थव्यवस्था की दक्षता में वृद्धि, गुणवत्ता और उत्पादन बढ़ाने की विविधता शामिल होगी। उपभोक्ताओं को विशेष रूप से लाभ होगा और यह तीन रूप ले सकता है:

1. स्वामित्व में परिवर्तन

निजीकरण की स्थिति को सार्वजनिक उद्यमों से निजी क्षेत्र में हस्तांतरित स्वामित्व की सीमा से जाना जा सकता है। स्वामित्व एक व्यक्ति, सहकारी या कॉर्पोरेट क्षेत्र में स्थानांतरित किया जा सकता है। इसमें चार रूप हो सकते हैं;

(अ) **कुल राष्ट्रीयकरण**: इसका अर्थ है निजी क्षेत्र के लिए सार्वजनिक उद्यम के स्वामित्व का 100% अंतरण।

(ब) **संयुक्त उद्यम**: यह एक सार्वजनिक उद्यम के आंशिक हस्तांतरण को निजी क्षेत्र में दर्शाता है।

(स) **परिसमापन**: इसका आशय यह है कि किसी व्यक्ति को संपत्ति की बिक्री जो उसी उद्देश्य या किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग कर सकते हैं। यह केवल खरीदार की पसंद पर निर्भर करता है

(द) **वर्कर्स को–ऑपरेटिव**: यह एक विशेष रूप से अनन्यताकरण है इस रूप में, उद्यमों के स्वामित्व को कामगारों को स्थानांतरित कर दिया जाता है जो उद्यम चलाने के लिए एक सहकारी बन सकते हैं। ऐसी स्थिति में, बैंक ऋण की उचित प्रावधान श्रमिकों को उद्यमों के शेयरों को खरीदने के लिए सक्षम करने के लिए किया जाता है।

2. संगठनात्मक उपाय

इसमें सरकार के नियंत्रण को सीमित करने के लिए कई तरह के उपाय शामिल हैं। उनमे शामिल है:

(अ) **एक होल्डिंग कंपनी की संरचना**: यह उस तरीके से तैयार किया जा सकता है जिसमें सरकार उच्च स्तर के प्रमुख निर्णयों पर नियंत्रण रखती है और अपने दैनिक कार्यों के संचालन में कंपनियों के लिए पर्याप्त स्वायत्तता छोड़ देती है।

(ब) **पट्टादायी**: इस व्यवस्था में, सरकार एक विशिष्ट अवधि के लिए एक सार्वजनिक उद्यम की संपत्ति के उपयोग को एक निश्चित अवधि के लिए स्थानांतरित करने के लिए सहमत है, जो 5 साल का है। पट्टे में प्रवेश करते समय, बोली लगाने वाले को मुनाफे की मात्रा का आश्वासन देने की आवश्यकता होती है जो सरकार को उपलब्ध कराई जाएगी।

(स) **पुनर्संरचना**: यह दो प्रकार की है: वित्तीय पुनर्गठन और मूल पुनर्संरचना।

(I) वित्तीय पुनर्गठन का अर्थ है संचित घाटे के लेखन और ऋण–इक्विटी अनुपात के संबंध में पूंजी संरचना के युक्तिकरण।
(II) मूल पुनर्संरचना होने पर कहा जाता है जब सार्वजनिक उद्यम अपनी गतिविधियों को अनुरक्षण या लघु इकाइयों द्वारा संचालित करने का निर्णय करता है।

3. **क्रियात्मक उपाय**

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की दक्षता संगठनात्मक संरचना पर निर्भर करती है। जब तक यह संरचना उद्यम के ऑपरेटरों को पर्याप्त मात्रा में स्वायत्तता प्रदान नहीं करता है या प्रोत्साहन की एक प्रणाली विकसित करता है, यह अपनी दक्षता और उत्पादकता नहीं बढ़ा सकता। एक संकीर्ण अर्थ में निजीकरण निजी क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के स्वामित्व का हस्तांतरण इंगित करता है, या तो पूर्णतः या आंशिक रूप से। लेकिन, एक अन्य अर्थ में यह सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्रों के लिए निजी क्षेत्र को खोलने का तात्पर्य करता है। बुनियादी उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के क्षेत्रों को सीमित करना और भारी उद्योगों और बुनियादी ढांचे सहित निजी क्षेत्र के संचालन के क्षेत्रों का विस्तार करना है।

21.12 निजीकरण के कारण

हाल के वर्षों में निजीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की अक्षमता और कम उत्पादकता एक बड़ा कारण है। निजीकरण के मुख्य कारण निम्नानुसार हैं:

1. समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं का विघटन

रूस और अन्य समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र था । मॉडल के रूप में इन अर्थव्यवस्थाओं को माना गया, लगभग सभी अविकसित देशों ने सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यधिक महत्व दिया। हालांकि, सार्वजनिक उद्यम अक्षम रहे और इन अर्थव्यवस्थाओं की विफलता के लिए जिम्मेदार एकल कारक साबित हुए। रूसी अर्थव्यवस्था उसके बाद विघटित हुई नतीजतन, अन्य अर्थव्यवस्थाओं ने भी सार्वजनिक क्षेत्र की दक्षता में विश्वास खो दिया। दूसरी ओर, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि की अर्थव्यवस्थाएं निजी क्षेत्र में तेजी से प्रगति कर रही हैं। इस प्रकार, बाकी की अर्थव्यवस्थाओं की अर्थव्यवस्थाओं को अपनी दक्षता के कारण बाजार अर्थव्यवस्था और निजी क्षेत्र की ओर आकर्षित किया गया।

2. **अक्षम सार्वजनिक क्षेत्र**

सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधन में फैसले लेने की स्वतंत्रता नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अधिकांश निर्णय मंत्री द्वारा लिए जाते हैं। उनके फैसले राजनीति से प्रेरित हैं नौकरशाही की स्थापना के फैसले की वजह से देरी हो रही है। नतीजतन, उत्पादन क्षमता का पूरी तरह उपयोग नहीं किया गया है और उत्पादकता में गिरावट आई है। ये सभी कारक सार्वजनिक क्षेत्र में अक्षम हैं।

3. **गैर–आर्थिक मूल्य नीति**

सार्वजनिक उपयोगिता सेवाए जैसे बिजली, सिंचाई, परिवहन, जल आदि की कीमतें वाणिज्यिक सिद्धांतों के आधार पर निर्धारित नहीं की जाती हैं। ये राजनीतिक, सामाजिक और अन्य गैर–आर्थिक विचारों के आधार पर निर्धारित हैं। कुछ मामलों में, कीमतें जानबूझकर उत्पादन की लागत से कम रखी जाती हैं।

नतीजतन, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का नुकसान होता है ऐसे नुकसान से बचने के लिए निजीकरण की वकालत की जाती है।

4. **सरकार पर बोझ**

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों द्वारा किए गए नुकसान उनके प्रबंधन या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वहन नहीं किया जाता है। सरकारी राजस्व से घाटे की पूर्ति की जाती है इसलिए प्रबंधक अर्जित मुनाफे या हानि के प्रति उदासीन हैं। उत्पादकता और उद्यम की दक्षता पर ध्यान नहीं दिया जाता है। 59 सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां नुकसान में चल रही हैं। यह सरकार पर अनावश्यक आर्थिक बोझ पैदा करता है। अपने आर्थिक बोझ को कम करने के लिए सरकार ने निजीकरण को बढ़ावा दिया है।

5. **एशिया के नए औद्योगिक राष्ट्रों के अनुभव**

एशिया, जापान, कोरिया, सिंगापुर, हांगकांग, ताइवान जैसे एशिया के औद्योगिक देशों ने निजीकरण की मदद से आर्थिक विकास की तेज दर हासिल की है। इसलिए अन्य देशों की सरकार निजीकरण को अपनाने और निजी क्षेत्र के क्षेत्र का विस्तार करने के बारे में सोचने लगी है।

6. **पूंजीवाद के लाभों को प्राप्त करने के लिए**

जापान, अमेरिका, हांगकांग, सिंगापुर, कोरिया, ताइवान, आदि जैसे देशों में पूंजीवाद बहुत सफल है। प्रतिस्पर्धा में वृद्धि, तकनीकी उन्नति में वृद्धि, दक्षता में वृद्धि आदि जैसी पूंजीवाद के लाभों को देखते हुए, हमारी सरकार ने निजीकरण को अपनाने का निर्णय लिया है।

7. **औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए**

सरकार ने महसूस किया कि पूंजी की कमी के कारण सार्वजनिक क्षेत्र अकेले बुनियादी और भारी उद्योगों के विकास के बोझ को सहन नहीं कर पाएगा। इसलिए औद्योगिक विकास को बढ़ाने के लिए निजीकरण को बढ़ावा दिया गया था।

21.13 निजीकरण का उद्देश्य

निजीकरण का उद्देश्य उद्योगों के बीच उत्पादकता, दक्षता और प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के लिए हैं। मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार वर्णित हैंः

1. राष्ट्र के तेजी से आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए।
2. सार्वजनिक उद्यमों पर सरकारी खर्चे को कम करके घाटे के वित्तपोषण को कम करने के लिए।
3. औद्योगिक प्रबंधन को मजबूत करने के लिए।
4. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए।
5. आर्थिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए।
6. देश के तेजी से औद्योगिक विकास प्राप्त करने के लिए।
7. निवेश पूंजी पर रिटर्न बढ़ाने के लिए।
8. औद्योगिक इकाइयों में उत्पादकता बढ़ाने के लिए।
9. विदेशी निवेश का अधिकतम उपयोग करने के लिए और इसके प्रवाह को आकर्षित करने के लिए।
10. तकनीकी स्तर में सुधार के लिए।

11. स्वामित्व में विविधता लाने के लिए और उद्यमशीलता के आधार को बढ़ाने के लिए यानी इन उद्यमों में निजी उद्यमियों की भागीदारी में वृद्धि।
12. सरकार के आर्थिक भार को कम करने और घाटे में चल रहीं सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में बड़े पैमाने पर अवरुद्ध सार्वजनिक संसाधनों को उपयोग करने के लिए।
13. प्रतियोगिता बढ़ाने के लिए।

21.14 निजीकरण के लाभ

निजीकरण के लाभ निम्नांकित हैं:

1. **दक्षता में वृद्धि**

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के निजीकरण से उनकी उत्पादकता, लाभप्रदता और प्रभावशीलता बढ़ जाती है।

2. **व्यावसायिक प्रबंधन**

निजीकरण के जरिए, निजी क्षेत्र के पेशेवर प्रबंधन के लाभों का लाभ उठाया जा सकता है। निजी क्षेत्र में, प्रतिष्ठित प्रबंधन संस्थानों से एमबीए की तरह पेशेवर योग्यता वाले व्यक्ति नियुक्त किए जाते हैं। यदि रणनीतिक साझेदार विदेशी निवेशक है, तो विदेशी विशेषज्ञता का लाभ भी लिया जा सकता है।

3. **प्रतिस्पर्धा में वृद्धि**

निजी क्षेत्र में वृद्धि करके और मौजूदा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का निजीकरण करके, प्रतियोगिता का लाभ उठाया जा सकता है। प्रतियोगिता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को फायदा हुआ है उदाहरण के लिए, दूरसंचार क्षेत्र के निजीकरण की वजह से, टेलीफोन सेवाओं की टैरिफ दरें नीचे आ गई हैं अब सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का कोई एकाधिकार नहीं है और कारोबारी माहौल अधिक प्रतिस्पर्धी है।

4. **अंतर्राष्ट्रीय रुझानों के साथ अनुरूपता**

अधिकांश विकासशील और विकसित अर्थव्यवस्थाओं ने पहले ही अपना निजीकरण अपनाया है। तो निजीकरण को अपनाने के द्वारा, हमारी अर्थव्यवस्था अंतरराष्ट्रीय रुझानों के अनुरूप आ जाएगी।

5. **सरकार के आर्थिक बोझ में कमी**

निजीकरण के जरिये, निजी क्षेत्र आर्थिक विकास का बोझ साझा करेगा और पूंजी निवेश के लिए धन उपलब्ध कराएगा। नई परियोजनाओं में निवेश के संबंध में सरकार का बोझ और हानि वाली परियोजनाओं का आधुनिकीकरण और बीमार इकाइयां कम हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की नुकसान वाली इकाइयों से सरकार के आर्थिक बोझ को निजीकरण के जरिये घटाया जा रहा है।

6. **सरकार के वित्तीय संसाधनों में वृद्धि**

निजी क्षेत्र को सरकारी इक्विटी बेचकर, सरकार भारी धन जुटा सकती है। इस धन का उपयोग बुनियादी ढांचे के विकास के लिए किया जा सकता है।

7. **उत्तरदायित्व में वृद्धि**

निजीकरण लाल फीताशाही, भाई– भतीजावाद और अन्य नौकरशाही जैसी समस्याओं को समाप्त करता है। 'कार्य के अनुसार आय' का नियम अपनाया गया

है। अगर कोई व्यक्ति काम नहीं करता है, तो उसे नौकरी से बाहर निकाल दिया जाता है इससे कर्मचारियों के बीच जिम्मेदारी की भावना बढ़ जाती है ।

8. **राजनीतिक हस्तक्षेप में कमी**

निजीकरण के परिणामस्वरूप कुछ हद तक राजनीतिक हस्तक्षेप से छुटकारा मिल जाता है। औद्योगिक निर्णय लेने में कोई देरी नहीं होती है। इंडस्ट्रीज ठोस आर्थिक सिद्धांतों पर चलती हैं और विशेषज्ञों द्वारा इन उद्योगों की कार्यवाही संभव हो जाती है।

9. **नए आविष्कारों के लिए प्रोत्साहन**

निजी क्षेत्र में, अनुसंधान के लिए अधिक जोर दिया जाता है। निजीकरण नए आविष्कार, अनुसंधान और विकास गतिविधियों को प्रोत्साहित करता है ।

10. **अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण**

वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की वृद्धि के साथ, हमारी अर्थव्यवस्था दुनिया के बाकी हिस्सों से आर्थिक व्यवहार (लेन–देन) कर रही है। यह हमारी अर्थव्यवस्था के लिए निजीकरण की वजह से संभव है। जब पीएसयू विदेशी सामरिक भागीदारों को बेचा जाता है तो निजीकरण वैश्वीकरण को बढ़ावा देता है।

11. **औद्योगिक विकास दर में वृद्धि**

निजीकरण औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देता है। यह आगे रोजगार बनाता है, औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाता है और निर्यात को बढ़ावा देता है।

12. **विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में वृद्धि**

निजीकरण वैश्वीकरण को बढ़ावा देता है। यह विदेशी निवेशकों को घरेलू अर्थव्यवस्था में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करता है भारत में, अगस्त 1991 से फरवरी 2011 तक 6,36,120 करोड़ रुपये विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के रूप में निवेश किया गया।

13. **सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों के घाटे में कमी**

निजीकरण भी मौजूदा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को अपनी दक्षता में सुधार करने के लिए प्रोत्साहित करता है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को नुकसान पहुंचाने के लिए निजीकरण की हमेशा धमकी रहती है। इस प्रकार निजीकरण से सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की लाभप्रदता में सुधार करने में मदद मिलती है। निजीकरण के खतरे के कारण, सार्वजनिक क्षेत्र के कई नुकसान वाले उपक्रमों ने मुनाफा कमाना शुरू कर दिया है।

21.15 निजीकरण के दोष / बाधाएं / आपत्तियां

1. **औद्योगिक रुग्णता**

निजीकरण जरूरी नहीं दक्षता में सुधार हो। भारत में व्यापक औद्योगिक बीमारी एक स्पष्ट उदाहरण है। 2008 में, निजी क्षेत्र में 89,641 बीमार औद्योगिक इकाइयां थीं। उनके खिलाफ 35,366 करोड़ रुपये का बैंक ऋण बकाया है।

2. **सामाजिक कल्याण पर ध्यान न देना**

निजीकरण के तहत, निजी उद्यमी उन उद्योगों में अपनी पूंजी निवेश करने के लिए अधिक उत्सुक होते हैं, जिनमें लाभ या मार्जिन बहुत अधिक है। निजी क्षेत्र सामाजिक कल्याण से अधिक लाभ को महत्व देता है ।

3. **वर्ग संघर्ष**

निजीकरण का आशय वर्ग संघर्ष है। पूंजीपतियों (उद्यमियों) और मजदूरों के बीच परस्पर विरोधी हित हैं जो अर्थव्यवस्था की निर्बाध कार्यप्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

4. असमानता में वृद्धि

निजीकरण से आर्थिक असमानता की संभावना बढ़ जाती है और इसका परिणाम आर्थिक शक्ति की एकाग्रता में होता है। निजीकरण बढ़ते प्रतिस्पर्धा के कारण बड़े उद्योगों को आगे बढ़ने में मदद करता है और छोटे उद्योग निजीकरण से पीड़ित होते हैं। उदाहरण के लिए, जब सरकार ने वीएसएनएल और आईपीसीएल का निजीकरण किया, तो यह क्रमशः टाटा और रिलायंस के हाथों एकाधिकार बना।

5. कर्मचारियों द्वारा विरोध

भारत में ट्रेड यूनियन सार्वजनिक उद्यमों के निजीकरण का विरोध करते हैं। उनके अनुसार, यह बेरोजगारी बढ़ाएगा और कर्मचारियों का शोषण करेगा यद्यपि, कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए, सरकार ने राष्ट्रीय नवीकरण कोष स्थापित किया है और इसके लिए 200 करोड़ रुपये दिए हैं, फिर भी ट्रेड यूनियनों ने निजीकरण का समर्थन नहीं किया है।

6. वित्तपोषण की समस्या

निजी क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को खरीदने के लिए विशाल संसाधनों की आवश्यकता है। निजी क्षेत्र बड़े वित्तीय संसाधनों को अपने आप से प्रबंधित नहीं कर सकते हैं यदि यह वित्तीय संस्थानों से सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों को खरीदने के लिए धन उधार लेता है, तो यह निजी उद्यमों द्वारा सरकारी फंडों के साथ सरकारी उद्यम खरीदना होगा। यह निष्पक्ष नहीं होगा। सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों को शेयर बाजारों के माध्यम से श्जनता को बेचा जाना चाहिए। हालांकि, इसकी थोड़ी संभावना है, क्योंकि आमतौर पर लोग सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की लाभप्रदता के बारे में निश्चित नहीं होते हैं और इसलिए वे उसमें अपनी पूंजी निवेश करने में नाखुश होंगे।

7. राजनीतिक दबाव

कुछ राजनीतिक दलों मुख्य रूप से कम्युनिस्ट निजीकरण के खिलाफ हैं इसलिए यह निजीकरण की प्रक्रिया को बाधित करती है ।

8. बेरोजगारी में वृद्धि

निजीकरण के मद्देनजर बेरोजगारी में वृद्धि की संभावना अधिक है। निजीकरण के मामले में, कुछ कर्मचारी जो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में काम कर रहे हैं, जिन्हें निजीकरण किया जा सकता है। इसके अलावा, अपने मुनाफे में वृद्धि करने के लिए, निजी उद्यमियों ने अत्यधिक परिष्कृत तकनीक का उपयोग किया है जो ज्यादातर पूंजीगत है। ऐसी तकनीक बेरोजगारी का कारण बनती है तो निजीकरण में बेरोजगारी बढ़ जाती है

9. व्यर्थ खर्च

निजी क्षेत्र की इकाइयों द्वारा बेकार खर्च, निंदनीय विज्ञापन, बिक्री की पदोन्नति, प्रमोटरों और निदेशकों आदि के लिए लाभ आदि शामिल हैं। इन बेकार खर्चों को ग्राहकों से उच्च मूल्यों के रूप में वसूला जाता है।

10. गरीब देशों का शोषण

निजीकरण वैश्वीकरण को बढ़ावा देता है। वैश्वीकरण में कुछ अमीर राष्ट्र गरीब राष्ट्रों का फायदा उठाते हैं और इन गरीब देशों को अपनी उपनिवेशों के रूप में इस्तेमाल करते हैं। अमीर देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियां गरीब देशों के घरेलू उद्योगों के लिए घातक साबित हुई है।

11. कमजोर वर्गों की उपेक्षा

लाभ का उद्देश्य निजीकरण के मार्गदर्शक सिद्धांत है। निजी क्षेत्र के उत्पादकों का लक्ष्य मुनाफा को अधिकतम करना है उद्यमी उन सामान को बनाने के लिए अधिक इच्छुक हैं जो कि विलासिता और आराम को पूरा करते हैं समाज के कमजोर वर्गों की जरूरतों को नजरअंदाज किया जाता है। इसके अलावा, निजी क्षेत्र अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े उम्मीदवारों को नौकरी का आरक्षण नहीं देते है।

12. राष्ट्रीय महत्व के उद्यमों पर ध्यान न देंना

निजी क्षेत्र केवल लाभ के उद्देश्य के लिए काम करता है। तो यह ऐसे क्षेत्र में प्रवेश नहीं करता है जिसमें मुनाफा कम है इसलिए कभी—कभी निजी क्षेत्र द्वारा प्रमुख और बुनियादी उद्योगों की अनदेखी की जाती है।

13. क्षेत्रीय असंतुलन में वृद्धि

अपर्याप्त बुनियादी ढांचे के कारण निजी क्षेत्र पिछड़े क्षेत्रों में इकाइयों को स्थापित करने के लिए झिझकता है। निजी क्षेत्र के उद्यमी पहले से विकसित क्षेत्रों में अपनी इकाइयां स्थापित करना पसंद करते हैं। इससे क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ता है।

21.16 भारत में निजीकरण

आजादी से पहले, भारत में निजी क्षेत्र का वर्चस्व रहा। नियोजन की अवधि के दौरान, सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व में वृद्धि हुई और निजी क्षेत्र में अपेक्षाकृ त गिरावट आई। 1991 में, नई आर्थिक नीति घोषित की गई थी। इस नीति के तहत, निजी क्षेत्र को बहुत महत्व दिया गया है और निजीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई है। भारत में निजीकरण की प्रक्रिया की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1. सार्वजनिक क्षेत्र का संकुचन

सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या को 17 से घटाकर केवल 02 कर दिया गया है। ये दो उद्योग हैं – परमाणु ऊर्जा और रेलवे, और शेष उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खोले गए हैं। इस उपाय से प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में निवेश के प्रवाह में वृद्धि होगी। आशा है कि प्रतिस्पर्धा और दक्षता उन क्षेत्रों में बढ़ेगी जो निजी क्षेत्र के लिए खोले गए हैं। उदाहरण के लिए, दूरसंचार के क्षेत्र में, निजीकरण के बाद निजी क्षेत्र के द्वारा बड़े धन का निवेश किया गया है और इसने प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया है

2. निजी क्षेत्र के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के शेयरों की बिक्री

सार्वजनिक क्षेत्र के 74% तक शेयर विदेशी निवेशकों, संस्थागत निवेशकों, म्यूचुअल फंड, सार्वजनिक और श्रमिकों को बेच दिया गया है। मार्च 2011 के अंत तक, सार्वजनिक क्षेत्र के शेयरों की कीमत 99,739 करोड़ रुपये बिक चुकी थी। कुछ सार्वजनिक उपक्रमों में, 100% शेयरों का भी विनिवेश किया जाता है। अब पीएसयू के शेयर बोली प्रक्रिया के माध्यम से बेचे जाते हैं।

3. **बीमार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग**

निजी क्षेत्र के बीमार उद्योगों के समान सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का व्यवहार किया जाएगा। सार्वजनिक क्षेत्र के बीमार उद्यमों को फिर से संगठित करने के लिए, उसे औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बीआईएफआर) को सौंपा जाएगा। सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार औद्योगिक कंपनियों के विभिन्न मामलों को बीआईएफआर को भेजा गया है। बीमार पीएसयू जिन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है, वे निजी क्षेत्र को बेच दिए जाते हैं।

4. **समझौता ज्ञापन (एमओयू)**

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के कामकाज में सुधार के लिए, समझौता ज्ञापन की एक प्रणाली शुरू की गई है। इसके तहत, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के प्रबंधन को अधिक स्वतंत्रता दी जाती है और वे परिणाम के लिए जवाबदेह हैं। समझौता ज्ञापन में, निदेशकों को अधिक स्वायत्तता दी जाती है और नियमित निर्णय के लिए उन्हें मंत्रियों की अनुमति नहीं चाहिए। 1991—92 में, 71 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों ने समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। वर्ष 2010—11 में, 202 उद्यमों ने समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं। एमओयू पर हस्ताक्षर करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों में से 77% ने अपने प्रदर्शन में सुधार किया है।

5. **राष्ट्रीय नवीकरण निधि**

निजीकरण के कारण कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए यह फंड स्थापित किया गया था। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइ के सभी कर्मचारियों को जो निजी क्षेत्र में बेचा जा रही है, निजी क्षेत्र में संयोजित नहीं किया जा सकता है। कुछ कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाता है और कुछ को इस योजना के तहत स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की पेशकश की जाती है। मार्च 2010 तक 3.54 लाख कर्मचारियों ने सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों से सेवानिवृत्ति की मांग की है। इस निधि का उपयोग मुआवजे के भुगतान के लिए और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के कर्मचारियों के सामाजिक सुरक्षा उपायों के लिए भी किया जाता है; और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए भुगतान करने के लिए यह निर्णय लिया गया है कि श्रमिक के हित सभी विनिवेश निर्णयों में संरक्षित होंगे।

6. **रंगराजन समिति की सिफारिशों का कार्यान्वयन**

पीएसयू के कामकाज में सुधार के तरीकों की सिफारिश के लिए रंगराजन समिति नियुक्त किया गया था। रंगराजन समिति की सिफारिशों के बाद में लागू किया गया है, जो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के निजीकरण की दिशा में चला गया हैः (I) आरक्षित सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों के 49% इक्विटी का विनिवेश करने और अन्य सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों के 74% इक्विटी विनिवेश करने के लिए। (II) सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के निगमकरण (कॉर्पोरेट निकाय के रूप में चल रहे पीएसयू)। (III) शेयरों का सार्वजनिक निर्गमरू शेयरों के सार्वजनिक मुद्दे में, उसी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी के कर्मचारियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए (IV) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को रियायती ऋण देने के लिए विनिवेश की 10% की राशि को अलग रखा जाना चाहिए।

7. **योजनाओं में निजी क्षेत्र के निवेश में वृद्धि**

पंचवर्षीय योजनाओं में, योजना के कुल निवेश में निजी क्षेत्र का हिस्सा बढ़ा है। निजी क्षेत्र के निवेश का हिस्सा पांचवीं पंचवर्षीय योजना में 42% से बढ़कर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 78.1% हो गया है।

8. शेयरों में ऋणों की परिवर्तनीयता का आहरण

ऋणों को आगे बढ़ाने के दौरान, पहले सरकारी वित्तीय संस्थानों में परिवर्तनीयता खंड शामिल किया जाता था । इस खंड के अनुसार, वित्तीय संस्थान ऋण का भुगतान नहीं किए जाने के मामले में अपने ऋण को इक्विटी पूंजी में परिवर्तित कर सकते हैं और इस प्रकार वित्तीय संस्थान अपने हाथों में निजी क्षेत्र की इकाइयों का स्वामित्व और नियंत्रण ले सकते हैं। यह निजी क्षेत्र के विकास में एक बड़ा खतरा और बाधा है। 1991 के आर्थिक सुधारों में, इस परिवर्तनीयता के खंड को वापस ले लिया गया है। यह निजीकरण की दिशा में एक स्वागत योग्य कदम है।

9. राष्ट्रीय निवेश निधि की स्थापना

वर्ष 2005 में, सरकार ने राष्ट्रीय निवेश कोष स्थापित किया है विनिवेश के लाभ को इस फंड में हस्तांतरित कर दिया जाता है। इस फंड की आय का 75% स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार आदि जैसी सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं के लिए उपयोग किया जाता है और शेष 25% आय लाभदायक और पुनर्योज्य सार्वजनिक उद्यमों में पूंजी निवेश के लिए उपयोग किया जाता है।

21.17 सारांश

वर्तमान समय में आर्थिक व्यवस्था एक स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था पर आधारित होती है, जिसमें सरकारें व्यापारिक प्रणालियों के काम में हस्तक्षेप नहीं करती हैं। मांग और आपूर्ति के बाजार बलों ने माल और सेवाओं की कीमतों का निश्चय किया। वे दुनिया भर में जाने के लिए स्वतंत्र हैं और उपभोक्ता को चुनने का सबसे अच्छा विकल्प मिलता है। यह मुक्त बाजार शासन वैश्वीकरण कहलाता है जहां पूरे देश में व्यापार की स्वतंत्रता है और कोई व्यापार अवरोध नहीं है। इसे प्राप्त करने के लिए, पूरी दुनिया में सरकार अपनी अर्थव्यवस्थाओं के उदारीकरण का सहारा ले रही है और अपने व्यवसाय के नियंत्रण और नियमन को कम कर रही है। साम्यवादी या समाजवादी व्यवस्था के दौरान, सरकारों ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की स्थापना में भारी निवेश किया था। निजीकरण में, इन्हें निजी स्वामित्व में स्थानांतरित किया जा रहा है। भूमंडलीकरण, निजीकरण और अर्थव्यवस्थाओं के उदारीकरण के कारण देशों के आबादी पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

21.18 शब्दावली

वैश्वीकरण:एक देश की अर्थव्यवस्था को मुक्त व्यापार, पूंजी और श्रम की गतिशीलता आदि के माध्यम से अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ जोड़ना।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई):विदेशी कंपनियों द्वारा किसी अन्य देश में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियों की स्थापना के लिए विदेशी कंपनियों द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किया जाता है

निजीकरण: निजी क्षेत्र को अधिक से अधिक उद्योग स्थापित करने की अनुमति देना है जो पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे।

21.19 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. .... का आशय घरेलू अर्थव्यवस्था को विदेशी पूंजी और निवेश के लिए खोलना और बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश में बाधाओं को दूर करना।
2. .... का आशय है सरकार द्वारा लगाए गए व्यापार इकाइयों पर अनावश्यक प्रतिबंध और नियंत्रण को कम करना।
3. .... के तहत, विदेशी कंपनियों/विदेशी संस्थागत निवेशक (FII) देशी कंपनियों के शेयर/डिबेंचर खरीदते हैं, हालांकि प्रबंधन और नियंत्रण देशी/ घरेलू कंपनियों के साथ निहित रहते हैं।
4. ....के तहत, वैश्विक कंपनियां विभिन्न देशों की घरेलू आवश्यकताओं, संस्कृति और फैशन के अनुसार अपने उत्पाद को संशोधित करती हैं।

21.20 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वैश्वीकरण 2. उदारीकरण 3. पोर्टफोलियो निवेश 4. ग्लोकलाइजेशन

21.21 स्वपरख प्रश्न

1. निजीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करें। उसके कारण, लाभ और हानि क्या हैं?
2. अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण से क्या आशय है? वैश्वीकरण के आयाम और कारण बताएं।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण से क्या आशय है? इसकी विशेषताओं और प्रभावों पर चर्चा करें।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या करें।
5. भूमंडलीकरण क्या है? भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों पर चर्चा करें।

21.22 संदर्भ पुस्तकें

1. Assayag, Jackie and Fuller, C.J. 2005. Introduction in Assayag, Jackie and Fuller,
2. C.J Globalising India: Perspectives from Below, Anthem South Asian Studies
3. Bauman, Z. 1998 *Globalisation: the Human Consequences.* Polity Press, Cambridge.
4. Beck,V. 2000 What is Globalization, Polity Press, Cambridge
5. Giddens, Anthony 2000 *Runaway World: How Globalization is Reshaping Our Lives* New York : Routledge.
6. 2001 *The Coming of Globalization: Its Evolution and Contemporary Consequences*
7. Held, David and McGrew, Anthony 2002. Globalisation /Antiglobalisation, Polity
8. Press, Cambridge.
9. Houndmills, Basingstoke, Hampshire, London; New York: Palgrave.
10. Scholte, Jan Aart. 2000 *Globalization: A Critical Introduction* New York: St. Martin's Press.
11. *Globalization Issues* website by Keith Porter Contains a wealth of information about globalization – both for and against. http://globalization.about.com/

इकाई 22 क्षेत्रीय व्यापारिक खण्ड

इकाई की रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना
22.2 क्षेत्रीय व्यापारिक खण्डों के स्वरुप
22.3 क्षेत्रीय व्यापारिक खण्डों के लाभ
22.4 क्षेत्रीय व्यापारिक खण्ड एवं विश्व व्यापार संगठन
22.5 अन्तर्राष्ट्रीय समूहन
22.6 सारांश
22.7 शब्दावली
22.8 बोध प्रश्न
22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
22.10 स्वपरख प्रश्न
22.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वैश्विक अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रीय व्यापारिक खण्डों से परिचित हो सकें।
- विश्व बाजार में क्षेत्रीय व्यापारिक खण्डों के विविध स्वरुपों की भूमिका को समझ सकें।

22.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण वर्तमान समय का सर्वाधिक प्रचलित शब्द है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हो रहा है, देश एक दूसरे के निकट आ रहे हैं, वे एक दूसरे के साथ अन्य बाजारों की तलाश में विचार विनिमय कर रहे हैं तथा वे विश्व में स्वच्छ प्रतिस्पर्धा के लिए समझौते कर रहे हैं। राष्ट्र अपने घरेलू कानूनों को अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरुप परिवर्तित कर रहे हैं तथा इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण, आज विश्व व्यापार संगठन में 125 से अधिक देश एक साथ एक मेज पर बैठकर बातचीत कर रहे हैं।

क्षेत्रीय व्यापारिक खण्डों की परिभाषा

व्यापार खण्डों से आशय कुछ देशों के एक समूह, जो सदस्य देशों के मध्य व्यापार बाधाओं को दूर करने की दृष्टि से निर्मित होते हैं, के मध्य वरीय व्यापार समझौते से होता है। जब कोई व्यापार खण्ड पडोसी देश अथवा भौगोलिक रुप से समान देशों के मेल से बनता है तो इसे क्षेत्रीय व्यापार (अथवा एकीकरण) समझौते के रुप में संदर्भित किया जाता है। कभी कभी इसे कम यातायात लागत अथवा पारस्परिक व्यापार तीव्रता को महत्व प्रदान करते हुए स्वभाविक व्यापार खण्ड भी कहा जाता है।

किसी व्यापार खण्ड की दो प्रमुख विशेषताएं हैं–

1. यह व्यापार की बाधाओं को कम अथवा समाप्त करता है, तथा
2. यह व्यापार उदारीकरण भेदभावपूर्ण है क्योंकि यह केवल व्यापार खण्ड के सदस्य देशों पर लागू होता है। बाहर के देश व्यापार खण्ड के देशों के साथ व्यापार सम्बन्धों इस भेदभाव के शिकार होते हैं।

सामान्यतः, क्षेत्रीय व्यापारिक खण्ड सरकारी स्तर पर राष्ट्रों के वे संगठन होते हैं जो खण्ड स्तर पर व्यापार के सम्वर्द्धन तथा इसे वैश्विक प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए बनाए जाते हैं।
क्षेत्रीय व्यापारिक खण्ड किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में राष्ट्रों का वह समूह होता है जो स्वयं को गैर सदस्य राष्ट्रों के साथ आयात से बचाता है। व्यापारिक खण्ड एक प्रकार का आर्थिक एकीकरण तथा विश्व व्यापार प्रणाली की ओर बढ़ता हुआ आकार हैं।

22.2 क्षेत्रीय व्यापारिक खण्डों के स्वरुप

व्यापार खण्डों के स्वरुप निम्नलिखित हैं–

1. **वरीय व्यापार क्षेत्र (प्रिफरेंसियल ट्रेड एरिया– पीटीए)**
   वरीय व्यापार क्षेत्र तब अस्तित्व में आता है जब किसी एक भौगोलिक क्षेत्र के राष्ट्र उक्त क्षेत्र के अन्य सदस्य राष्ट्रों से चयनित वस्तुओं के आयात में प्रशुल्क बाधाओं को घटाने अथवा हटाने पर सहमत हो जाते हैं। यह प्रायः व्यापारिक खण्ड बनाने की दिशा में पहला छोटा कदम होता है। यह आर्थिक एकीकरण की प्रथम अवस्था है। वरीय व्यापार क्षेत्र तथा मुक्त व्यापार क्षेत्र (एफटीए) के मध्य रेखा धुंधली सी होती है क्योंकि प्रायः वरीय व्यापार क्षेत्र का मुख्य उद्देश्य प्रशुल्क व व्यापार समझौते के अनुसार मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाना हो सकता है।
2. **मुक्त व्यापार क्षेत्र (फ्री ट्रेड एरिया– एफटीए)** मुक्त व्यापार क्षेत्र तब बनते हैं जब किसी क्षेत्र के दो या अधिक राष्ट्र अन्य सदस्य के यहॉ से आने वाली सभी वस्तुओं पर व्यापार सम्बन्धी बाधाओं को कम या समाप्त करने के लिए सहमत हो जाते हैं। सदस्य देशों के मध्य वस्तुओं व सेवाओं के व्यापार के सम्बन्ध में कोई बाधा नहीं होती है। इसके अतिरिक्त, कोटा, प्रशुल्क, अनुदान सम्बन्धी कोई भेदभाव नहीं होता तथा ये देश गैर सदस्य देशों के सम्बन्ध में अपनी नीतियॉ निर्धारित कर सकते हैं।
3. **सीमा शुल्क संघ (कस्टम यूनियन– सीयू)**
   सीमा शुल्क संघ प्रशुल्क की बाधाओं से मुक्ति को सम्मिलित करते हुए गैर सदस्यों के लिए एक सामान्य (एकीकृत) वाह्य प्रशुल्क की स्वीकृति प्रदान करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सदस्य देश तीसरे पक्षकारों से या विश्व व्यापार संगठन से एक संघ के रुप में सौदेबाजी कर सकते हैं। सीमा शुल्क संघ बनाये जाने के निम्न लाभ हैं–

   अ. जब एक सीमा शुल्क संघ स्थापित होता है तथा सदस्य देशों के मध्य व्यापार बाधाएं समाप्त कर दी जाती हैं तो प्रत्येक देश के उत्पादक संघ के सदस्य देशों के अन्य उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए अधिक सक्षम होते हैं।

   ब. सीमा शुल्क संघ की स्थापना का दूसरा संभावित लाभ बढ़े हुए बाजार में बड़े उत्पादन में पैमाने की बचत के रुप में हो सकता है।

   स. सीमा शुल्क संघ का एक अन्य संभावित लाभ बड़े बाजार तथा बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा का लाभ लेने के लिए निवेश की प्रेरणा प्राप्त होना है।

द. सीमा शुल्क संघ की स्थापना के ये प्रावैगिक लाभ उन सभी स्थैतिक लाभों से अधिक बड़े व महत्वपूर्ण माने गए हैं जिनका वर्णन पूर्व में किया गया है।

4. **सामान्य बाजार (कॉमन मार्केट)**

सामान्य बाजार पूर्ण आर्थिक एकीकरण की ओर प्रथम महत्वपूर्ण कदम होता है तथा यह तब होता है जब कि सभी सदस्य देश सभी आर्थिक संसाधनों में, केवल दृश्य वस्तुओं में ही नहीं, स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करते हैं। इसका अर्थ यह है कि वस्तु, सेवा, पूँजी तथा श्रम के क्षेत्र से समस्त बाधाओं को हटा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त गतिमान तथा गैर प्रशुल्क बाधाएं भी कम अथवा समाप्त कर दी जायेंगी। किसी सामान्य बाजार की सफलता के लिए सूक्ष्म आर्थिक नीतियों में समानता तथा एकाधिकारी शक्ति तथा अन्य गैर प्रतिस्पर्धी व्यवहारों के सम्बन्ध में एकरुप नियम होने आवश्यक हैं। प्रमुख उद्योगों के सम्बन्ध में जैसे यूरोपियन यूनियन की सामान्य कृषि नीति तथा सामान्य मत्स्य पालन नीति के समान नीति भी बनाई जा सकतीं हैं।

5. **यूरोपियन यूनियन (ईयू)**

यूरोपियन यूनियन विश्व की सबसे बड़ी व्यापार खण्ड तथा अमेरिका के बाद दूसरी सबसे बडी अर्थव्यवस्था है। सन् 1957 में रोम समझौते के बाद इसकी स्थापना होने पर यूरोपीय यूनियन को मूल रुप से यूरोपीय समुदाय (सामान्य बाजार या द सिक्स) कहा जाता था। इसके मूल छः सदस्य थे– जर्मनी, फ्रांस, इटली, बेल्जियम, नीदरलैण्ड तथा लक्समबर्ग। इसका प्रारम्भिक उद्‌देश्य व्यापार की बाधाएं हटाकर तथा सदस्यों के बीच स्वतन्त्र व्यापार स्थापित करके वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी तथा श्रम के लिए एकल बाजार बनाना था। गैर सदस्यों के साथ व्यवहार के सम्बन्ध में सस्ते आयातों के विरुद्ध सामान्य प्रशुल्क बाधाएं भी खड़ी की गईं। जैसे– जापान जिसकी वस्तुओं के दाम कृत्रिम रुप से कम थे क्योंकि येन (जापानी मुद्रा) का अवमूल्यन किया गया था।

22.3 क्षेत्रीय व्यापार खण्डों के लाभ

क्षेत्रीय व्यापार संघों के लाभ निम्नलिखित हैं–

1. राष्ट्र निर्मित माल बाजार के सम्बन्ध में क्षेत्रीय समझौते करने तथा तुलनात्मक लाभ लेने के लिए स्वतन्त्र होते हैं क्योंकि मित्र राष्ट्र भी उन वस्तुओं की आपूर्ति कर रहे होंगे जो कि मेजमान राष्ट्र के पास उपलब्ध न हों।
2. सभी राष्ट्रों की एक दूसरे के बाजारों में पहुँच होती है तथा सदस्य विशिष्टता के लिए प्रोत्साहित होते हैं। इसका अर्थ यह है कि क्षेत्रीय स्तर पर तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त का विस्तृत उपयोग होता है।
3. उत्पादकों को पैमाने की बचत लागू होने का लाभ मिलता है जिससे लागत में कमी तथा उपभोक्ताओं के लिए मूल्यों में कमी का मार्ग प्रशस्त होता है।
4. सदस्य अर्थव्यवस्थाओं के मध्य व्यापार में वृद्धि के फलस्वरुप रोजगार में वृद्धि होती है।

5. खण्ड के अन्दर की फर्मों को बाहर से सस्ते आयातों से सुरक्षा प्राप्त होती है जैसे इकानोमिक यूनियन के जूता उद्योग को चीन व वियतनाम से संरक्षण प्राप्त है।
6. इससे व्यापारिक खण्ड को विश्व व्यापार संगठन के अन्दर सौदेबाजी की शक्ति प्राप्त होती है क्योंकि वे सौदेबाजी के समय एक दूसरे से सहयोग करते हैं। इससे अन्य देशों की सौदेबाजी की शक्ति कम होती है जैसे कि विकासशील देशों के द्वारा जी–15 तथा आशियान जैसे क्षेत्रीय व्यापार संगठन बनाये जाने से उनकी शक्ति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।
7. आर्थिक एकीकरण के साथ ही श्रम व पूॅजी की अल्प उत्पादक क्षेत्र से अति उत्पादक क्षेत्र की ओर उत्पादकता बढेगी जिससे कि उत्पादन लागत में कमी आयेगी।
8. बाजार का आकार बढ़ेगा जिससे प्रतिस्पर्धी फर्मो की संख्या में वृद्धि होगी, फलस्वरुप प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होगी, क्षमता का विकास होगा तथा उपभोक्ताओं के लिए मूल्यों में कमी आयेगी।

22.4 क्षेत्रीय व्यापारिक खण्ड एवं विश्व व्यापार संगठन

यद्यपि विश्व व्यापार संगठन द्वारा क्षेत्रीय शब्द का प्रयोग किया गया है किन्तु इसके अन्तर्गत समस्त देशों अथवा समूहों के मध्य द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौतों को सम्मिलित किया जाता है चाहे वे समान क्षेत्र में न भी हों। ये समझौते इतने व्यापक हो गये हैं कि विश्व व्यापार संगठन के अधिकांश सदस्य एक या अधिक ऐसे समझौतों का अंग हैं तथा इसका क्षेत्र, विस्तार तथा संख्या निरन्तर बढ़ रही है।

अनुमानतः विश्व का आधे से अधिक व्यापार इस प्रकार से ही संचालित हो रहा है। ये सभी महाद्वीपों में विद्यमान हैं। सर्वाधिक पहचाने जाने वालों में से यूरोपियन यूनियन, यूरोपीय मुक्त व्यापार संगठन (यूरोपियन फ्री ट्रेड एसोसिएशन–इफ्टा), उत्तर अमेरीकी मुक्त व्यापार संमझौता (नार्थ अमेरीकी फ्री ट्रेड एग्रीमेन्ट– नाफ्टा), दक्षिण सामान्य बाजार (द सदर्न कॉमन मार्केट– मर्कोसर), दक्षिणपूर्व एशियाई देशों का संगठन (एसोसिएशन ऑफ साउथईस्ट एशियन नेशन्स–आशियान) तथा इसके आशियान मुक्त व्यापार क्षेत्र (आशियान फ्री ट्रेड एरिया– आफ्टा) तथा पूर्वी व दक्षिण अफ्रीकी सामान्य बाजार (कॉमन मार्केट आफ ईस्टर्न एण्ड सदर्न अफ्रीका–कोमेसा) हैं।

गैट तथा अब विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू0टी0ओ0) ने प्रारम्भ से ही गैट अनुच्छेद 1 के सर्वाधिक अनुकूल राष्ट्र (मोस्ट फेवर्ड नेशन–एम0एफ0एन0) के अनुच्छेद में भेदभावरहित व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्त के अपवादस्वरुप कस्टम यूनियन तथा मुक्त व्यापार क्षेत्रों को सम्मिलित करने की अनुमति प्रदान की है। गैट के अनुच्छेद 24 में इन समझौतों के अन्तर्गत वस्तुओं के व्यापार से सम्बन्धित समस्त शर्तें निर्धारित की गई हैं। प्रारम्भिक रुप से किसी क्षेत्रीय व्यापार समझौते को इसके सदस्य देशों के मध्य व्यापार को प्रोत्साहित करना होना चाहिए, न कि अन्य डब्ल्यू0टी0ओ0 देशों के लिए व्यापार बाधाएं खड़ी करना। वर्ष 1986–94 के मध्य उरुग्वे दौर के समझौते के अनुच्छेद 24 में इसे स्पष्ट तथा कुछ सीमा तक अद्यतन किया गया है।

22.5 अन्तर्राष्ट्रीय समूहन

महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समूह निम्नवत् हैं–

आशियान

दक्षिणपूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (आशियान) एशिया का एक प्राथमिक बहुराष्ट्रीय व्यापार समूह है। यह 8 अगस्त 1967 को बैंकाक, थाईलैण्ड में आशियान घोषणा पत्र (बैंकाक घोषणा पत्र) पर इसके संस्थापक देशों इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपींस, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड के हस्ताक्षर द्वारा स्थापित किया गया। ब्रुनेई दारेसलाम द्वारा इसे 7 जनवरी 1984 को, वियतनाम द्वारा 28 जुलाई 1995 को लाओ पीडीआर व म्यॉमार द्वारा 23 जुलाई 1997 तथा कम्बोडिया द्वारा 30 अप्रैल 1999 द्वारा इसकी सदस्यता प्राप्त की गई।

आशियान के प्रथम सम्मेलन में 24 फरवरी 1976 को दक्षिणपूर्व एशिया में सौहार्द व सहयोग की संधि (द ट्रीटी ऑफ एमिटी एण्ड कोआपरेशन इन साउथईस्ट एशिया– टैक) पर हस्ताक्षर किये गये। टैक में उल्लेख किया गया कि आशियान क्षेत्र में लोचपूर्ण व्यवहार के द्वारा राजनीतिक तथा सुरक्षा वार्ता के साथ शान्ति तथा स्थिरता प्राप्त की जायेगी।

आशियान के उद्देश्य तथा प्रयोजन

1. क्षेत्र में समानता तथा साझेदारी की भावना के द्वारा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में समृद्ध तथा शान्तिपूर्ण समुदाय स्थापित करने के लिए संयुक्त प्रयासों के द्वारा आर्थिक वृद्धि, सामाजिक प्रगति तथा सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा देना,
2. क्षेत्र के राष्ट्रों के मध्य न्याय तथा कानून के शासन द्वारा क्षेत्रीय शान्ति व स्थिरता को प्रोत्साहित करना तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के सिद्धान्तों के पालन को सुनिश्चित करना,
3. सामान्य हित वाले आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी, वैज्ञानिक व प्रशासनिक प्रकरणों में सक्रिय सहयोग तथा पारस्परिक सहायता को प्रोत्साहित करना,
4. शैक्षिक, पेशेवर, तकनीकी तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में प्रशिक्षण व शोध सुविधाओं के रुप में एक दूसरे को सहायता प्रदान करना,
5. कृषि व उद्योग के बेहतर उपयोग, उनके व्यापार के विस्तार (अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुओं के व्यापार की समस्याओं के अध्ययन सहित), यातायात व संचार की सुविधा के विकास तथा उनके नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिए अधिक प्रभावशाली ढंग से संयोजन करना।
6. दक्षिण पूर्व एशियाई अध्ययनों को प्रोत्साहित करना।

आसियान समुदाय

आसियान नेताओं द्वारा आसियान की 30वीं वर्षगॉठ पर अंगीकार किये गये आशियान संदृष्टि पत्र 2020 में आसियान के साझा संदृष्टि पत्र को दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के वाहयमुखी, शान्तिजीवी, स्थिर तथा समृद्ध जीवन, एक दूसरे के प्रति जुडाव वाले गतिशील विकास तथा समुदाय का संरक्षण करने वाले समाज के समवेत कार्यक्रम के रुप में स्वीकार किया गया।

सन् 2003 में आशियान के नवें सम्मेलन में आसियान के नेताओं ने यह प्रस्ताव किया कि एक आसियान समुदाय बनाया जायेगा। जनवरी 2007 में आसियान के

12वें सम्मेलन में नेताओं ने आसियान समुदाय 2015 तक बना लिये जाने के लिए तीव्र कार्य करने का ठोस इरादा किया तथा आसियान समुदाय 2015 तक पूर्णतः बना लेने के लिए सेबू घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये।

आशियान समुदाय तीन स्तम्भों से मिलकर बना है– आसियान राजनीतिक सुरक्षा समुदाय, आशियान आर्थिक समुदाय तथा आसियान सामाजिक–सांस्कृतिक समुदाय। प्रत्येक समुदाय का अपना निर्धारित लक्ष्य है तथा ये इनीसिएटिव फार आसियान इन्टीग्रेशन (आईएआई) के रणनीतिक ढॉचे तथा आईएआई की कार्य योजना के द्वितीय चरण (2009–15) के साथ आसियान समुदाय 2009–15 के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं।

सन् 1996 में कार्यात्मक सहयोग को उच्च स्तर पर बढावा देने के लिए एक ढॉचा 'मानव विकास, तकनीकी प्रतिस्पर्धात्मकता तथा सामाजिक अनुरक्ति के साथ साझा समृद्धि' के विषय के साथ अपनाया गया। कार्यात्मक सहयोग निम्न योजनाओं के आधार पर निर्देशित है–

- सामाजिक विकास के लिए आसियान कार्य योजना
- संस्कृति तथा सूचना के लिए आसियान कार्य योजना
- विज्ञान व तकनीक के लिए आसियान कार्य योजना
- पर्यावरण के लिए आसियान कार्य योजना
- नशे की बुराई पर नियन्त्रण के लिए आसियान कार्य योजना, तथा
- अन्तर्राष्ट्रीय अपराध प्रतिरोध हेतु आसियान कार्य योजना।

सार्क (दक्षेस)

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन– दक्षेस (साउथ एशियन एसोसिएशन फार रीजनल कोओपरेशन– सार्क) की स्थापना 8 दिसम्बर 1985 को भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, मालदीव तथा भूटान के द्वारा की गई। अप्रैल 2007 में एसोसिएशन के 14वें सम्मेलन में अफगानिस्तान को आठवें सदस्य के रुप में सम्मिलित किया गया। संगठन का उद्देश्य दक्षिण एशिया में नागरिकों के हितों को प्रोत्साहित करना तथा क्षेत्र में निरन्तर वृद्धिशील आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति तथा सांस्कृतिक विकास के द्वारा जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना है।

सार्क का सचिवालय काठमाण्डू (नेपाल) में है। यह गतिविधियों के क्रियान्वन की निगरानी करता है, सभाओं की तैयारी करता है तथा संगठन व इसके सदस्यों एवं अन्य क्षेत्रीय संगठनों के साथ संचार के माध्यम के रूप में कार्य करता है।

सचिवालय का मुखिया महासचिव होता है जिसकी नियुक्ति तीन वर्ष की अवधि के लिए सदस्य राष्ट्रों में से वर्णमाला क्रम में मन्त्री परिषद द्वारा की जाती है। सदस्य देशों से आठ निदेशक प्रतिनियुक्ति आधार पर महासचिव को सहायता प्रदान करते हैं। सार्क सचिवालय तथा सदस्य राष्ट्र 8 दिसम्बर को सार्क चार्टर दिवस के रूप मनाते हैं।

सहयोग के क्षेत्र

सार्क निम्नलिखित क्षेत्रों में सहयोग प्राप्त करता है–

1. कृषि एवं ग्रामीण विकास
2. बायो टेक्नोलोजी

3. संस्कृति
4. अर्थव्यवस्था एवं व्यापार
5. शिक्षा
6. ऊर्जा
7. पर्यावरण
8. वित्त
9. कोषीय प्रणाली
10. सूचना, संचार तथा माध्यम
11. व्यक्ति प्रति व्यक्ति संपर्क
12. निर्धनता निवारण
13. विज्ञान व तकनीक
14. विज्ञान पहलू
15. सामाजिक विकास
16. पर्यावरण

साप्टा

दक्षिण एशिया वरीयता समझौता (साउथ एशियन प्रेफरेंशियल एग्रीमेंट–साप्टा) पर सार्क सदस्यों द्वारा 11 अप्रेल 1993 को हस्ताक्षर किये गये तथा यह दिसम्बर 1995 से प्रभावी हुआ। साप्टा का उद्देश्य सार्क देशों के मध्य प्रशुल्क दरों को कम करना तथा वरीयता के आधार पर व्यापार को बढ़ाना है।

(अ) आर्थिक व औद्योगिक विकास, उनके वाह्य व्यापार का स्वरूप तथा व्यापार व प्रशुल्क की नीति व प्रणाली के आधार पर अनुबन्ध करने वाले राष्ट्रों को सकल पारस्परिकता तथा आपसी लाभ प्रदान करना,

(ब) सामयिक परीक्षणों के द्वारा विभिन्न चरणों में, निरन्तर सुधारित व विस्तारित प्रशुल्क सुधारों हेतु समझौते करना,

(स) समझौता करने वाले न्यूनतम विकसित राष्ट्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पता लगाना तथा उनके पक्ष में ठोस प्राथमिकता उपायों के आधार पर समझौते करना, तथा

(द) सभी वस्तुओं व उत्पादों को उनके कच्चे, अर्द्ध निर्मित तथा निर्मित स्वरूप में सम्मिलित करना।

साफ्टा

दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (साउथ एशियन फ्री ट्रेड एरिया– साफ्टा) समझौता जनवरी 2006 में प्रभाव में आया जिसके लिए दस वर्ष का समय पूर्ण प्रचालन के लिए रखा गया। यह समझौता 6 जनवरी 2004 को इस्लामाबाद (पाकिस्तान) में आयोजित सार्क के 12वें सम्मेलन में तैयार किया गया। इसके द्वारा बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान तथा श्रीलंका की 160 करोड़ आबादी (वर्ष 2011 में इनकी संयुक्त आबादी 180 करोड़ है) के लिए मुक्त व्यापार क्षेत्र का निर्माण किया। क्षेत्र के सात विदेश मन्त्रियों द्वारा साफ्टा समझौते के मसौदे पर समस्त व्यापार वस्तुओं पर सीमाशुल्क को कम करके वर्ष 2016 तक शून्य तक पहुँचाने हेतु हस्ताक्षर किये गये।

13 सितम्बर 2012 को सदस्य देशों द्वारा साफ्टा के अन्तर्गत कुल एफओबी निर्यात की मात्रा साफ्टा व्यापार उदारीकरण कार्यक्रम (जुलाई 2006) के अभ्युदय के बाद से 200 करोड़ अमेरीकी डालर को पार कर चुका है, विवरण निम्नवत् है–

वर्ष	बांग्लादेश	भारत	मालदीव	पाकिस्तान	श्रीलंका	योग
2006	0.00	0.00	14001.15	55,234.00	0.00	69,325.1
2007	15,273,177	–	0.00	576,164.99	19,828.02	19,652,581.1
2008	98,316,963,16	–	0.00	31,796,718.51	40,789.22	139,138,891.5
2009	199,786,454.72	–	0.00	43,509,984.90	608,623.96	559,161,799.9
2010	236,711,501.24	–	0.00	56,119,007.59	517,566.00	663,019,127.6
2011	–	–	–	43,174,978.83	102,393.00	331,087,834.2
2012	–	–	–	–	–	342,980,545.0
योग	550,088,096,627.55	–	14,001.15	175,232,178.82	1289,200.20	2,055,110,104.6

साफ्टा के उद्देश्य

(अ) व्यापार की बाधाओं को दूर करना तथा अनुबन्ध करने वाले देशों के मध्य सीमाओं के पार वस्तुओं के आवागमन को सुविधाजनक बनाना,

(आ) मुक्त व्यापार क्षेत्र में स्वच्छ प्रतिस्पर्धा की स्थितियों को बढ़ावा देना तथा समस्त अनुबन्धित राष्ट्रों को उनके स्तर तथा आर्थिक विकास के स्तर के अनुसार समान लाभ सुनिश्चित कराना।

(इ) इस अनुबन्ध के संयुक्त प्रशासन तथा विवाद निस्तारण सम्बन्धी क्रियान्वयन तथा लागू करने के लिए प्रभावशाली प्रणाली विकसित करना, तथा

(ई) इस अनुबन्ध के पारस्परिक लाभ के लिए अग्रेतर क्षेत्रीय सहयोग स्थापित करने हेतु रूपरेखा स्थापित करना।

नाफ्टा

उत्तर अमेरीकी मुक्त व्यापार अनुबन्ध (नार्थ अमेरिकन फ्री ट्रेड एग्रीमेन्ट–नाफ्टा) एक वृहद व्यापार समझौता है जिसके द्वारा कनाडा, संयुक्त राष्ट्र तथा मैक्सिको के मध्य व्यापार व निवेश सम्बन्धी नियम निर्धारित किये गये हैं। यह समझौता 1 जनवरी 1994 से लागू है। नाफ्टा ने तीन सदस्य राष्ट्रों के मध्य मुक्त व्यापार की अधिकांश प्रशुल्क व गैर प्रशुल्क बाधाओं को व्यवस्थित ढंग से समाप्त किया है। इसके अतिरिक्त, नाफ्टा ने भावी विकास की सुदृढ़ आधारशिला रखी है तथा व्यापार उदारीकरण के लाभ की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया है। कनाडा तथा संयुक्त राष्ट्र ने मुक्त व्यापार अनुबन्ध हस्ताक्षर किया था जो कि 1 जनवरी 1989 से प्रभावी था। बाद में मैक्सिको ने भी संयुक्त राष्ट्र से इस हेतु प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप 1 जनवरी 1994 को उत्तर अमेरीकी मुक्त व्यापार अनुबन्ध प्रभावी हुआ।

नाफ्टा में निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं–

वस्तुओं की बाजार में पहुॅच

- उत्तर अमेरीकी सीमाओं के अन्दर हजारों वस्तुओं पर कर की समाप्ति।
- प्रशुल्क दरों में चरणबद्ध कमी (अब पूर्णतः), तथा कृषि, ऑटोमोटिव तथा वस्त्र व वस्त्रोत्पाद के लिए विशेष नियम।

- नाफ्टा सेवा प्रदाताओं तथा उपयोगकर्ताओं को विस्तृत श्रेणी वर्गों में विशेष अधिकार प्रदान करना।
- दूरसंचार तथा वित्तीय सेवाओं के सम्बन्ध में विशेष वचनबद्धता।
- विवाद निस्तारण की औपचारिक प्रक्रिया जिससे कि नाफ्टा के नियमों के क्रियान्वयन व लागू करने से सम्बन्धित मतभेदों को समाप्त किया जा सके।

विदेशी निवेशों से सुरक्षा

- नाफ्टा के देशों में एक दूसरे के निवेशकों तथा निवेश को उसी प्रकार समर्थन देना जैसे कि वे उसके अपने देश के हों।
- नाफ्टा निवेशकों को उत्तरी अमेरीकी निवेशकों के अतिरिक्त विदेशी निवेशकों के समान श्रेष्ठ व्यवहार प्रदान करने का संकल्प।
- विशेष रूप से निवेशों के प्रति व्यवहार की एक पारदर्शी तथा बाध्यकारी परिवाद निवारण प्रणाली।

बौद्धिक सम्पदा की सुरक्षा

- बौद्धिक सम्पदा अधिकारों (पेटेन्ट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट तथा औद्योगिक डिजायन सहित) की विस्तृत श्रंखला का उपयुक्त व प्रभावकारी संरक्षण तथा प्रवर्तन करते हुए यह सुनिश्चित करना कि इन अधिकारों का प्रवर्तन करने वाले उपाय उचित व्यापार के लिए स्वयं बाधा न बन जायें।

व्यापारिक यात्रियों के लिए आसान पहुॅच

- व्यापारिक पेशेवरों को सैकड़ों पेशों के सम्बन्ध में आसान पहुॅच बनाना जिससे कि वे सम्पूर्ण उपमहाद्वीप में व्यापार सम्बन्धी यात्राऐं कर सकें।

सरकारी संरक्षण के लिए पहुॅच

- कनाडा, मेक्सिको तथा संयुक्त राष्ट्र के राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी संरक्षण के अवसरों तक पहुॅच बनाना।

उत्पत्ति के नियम

- कोई वस्तु नाफ्टा के अन्तर्गत वरीयता व्यवहार के लिए अर्ह है अथवा नहीं, की जॉच करने के सम्बन्ध में नाफ्टा के उत्पत्ति सम्बन्धी नियमों का प्रयोग किया जाता है।
- नाफ्टा के अस्तित्व में आने के बाद अनेक बार इसके साझेदारों के द्वारा उन उत्पादों की सूची को उदार बनाने अथवा बढ़ाने के उपाय अपनाये गये हैं जिन्हें वरीय व्यवहार के लिए योग्य माना गया है।

पार्श्व समझौते

नाफ्टा के साझेदारों के द्वारा दो पार्श्विक समझौते भी किये गये हैः उत्तर अमेरीकी पर्यावरण सहयोग समझौता तथा उत्तर अमेरीकी श्रम सहयोग समझौता।

पर्यावरण के लिए वचनबद्धता

नाफ्टा के सदस्य देशों के द्वारा पर्यावरण सम्बन्धी विषयों के लिए एक समानान्तर समझौते 'उत्तर अमेरीकी पर्यावरण सहयोग समझौता' (एनएएईसी) पर हस्ताक्षर किये गये। एनएएईसी के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र, कनाडा तथा मेक्सिको ने पर्यावरण संरक्षण के लिए कुछ कदम हेतु वचनबद्धता प्रदर्शित की है जिसमें प्रत्येक

सदस्य द्वारा पर्यावरण कानूनों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने की प्रतिबद्धता भी सम्मिलित है। किसी एक पक्ष द्वारा पर्यावरण दायित्वों का पालन करने में असमर्थता उसी प्रकार की विवाद निवारण प्रणाली से हल किया जाता है जैसा कि नाफ्टा के व्यावसायिक दायित्व प्रणाली में समाहित है।

श्रम सहयोग के प्रति वचनबद्धता

नाफ्टा के सहयोगियों के द्वारा प्रत्येक देश के श्रम कानूनों तथा अधिनियमों को लागू करने तथा नाफ्टा सहयोगियों के बीच श्रम मामलों के लिए सहयोग बढ़ाने के लिए एक समानान्तर श्रम सहयोग समझौता भी हस्ताक्षरित किया गया है।

उत्तर अमेरीकी श्रम सहयोग समझौता (एनएएएलसी) के द्वारा श्रम सहयोग आयोग की स्थापना की गई जिसमें एक मंत्री परिषद तथा एक सचिवालय भी बनाया गया। एनएएएलसी के क्रियान्वयन में श्रम सहयोग आयोग को तीनों देशों के राष्ट्रीय प्रशासनिक अधिकारियों (एनएओज्) का भी सहयोग प्राप्त होता है।

एफटीएए

एफटीएए का अर्थ है फ्री ट्रेड एरिया ऑफ द अमेरिकाज् (अमेरिका का मुक्त व्यापार क्षेत्र)। यह वर्तमान उत्तर अमेरीकी मुक्त व्यापार अनुबन्ध (नाफ्टा) का ही विस्तार है। इसमें कनाडा, संयुक्त राष्ट्र, मेक्सिको तथा क्यूबा के अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण अमेरीका सम्मिलित है। अमेरिका के मुक्त व्यापार क्षेत्र, जिसमें वर्तमान में 34 अमेरीकी देश सम्मिलित हैं, इसके निर्माताओं द्वारा इतिहास का सबसे दूरगामी प्रभावों वाला व्यापार समझौता बताया गया है। यद्यपि यह उत्तर अमेरीकी मुक्त व्यापार समझौते (नाफ्टा) के मॉडल पर आधारित है, तथापि यह नाफ्टा के क्षेत्र व शक्तियों में काफी आगे हैं। एफटीएए जिस रूप में अभी है, सम्पूर्ण पश्चिमी गोलार्द्ध में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के प्रस्तावित सेवा समझौते को असफल बहुपक्षीय निवेश समझौते (एमएआई) की शक्तियों को कनाडा व अमेरिकाज में नई शक्तियों के साथ एक नवीन व्यापारिक शक्तिगृह के रूप में सभी क्षेत्रों में लागू करेगा।

एफटीएए की लक्ष्य नाफ्टा को व्यापार से बाधाएं दूर करने के द्वारा मजबूती प्रदान करना है। इसमें सेवाओं में उदारता सम्बन्धी वचनबद्धता की सम्पूर्ण श्रेणी–शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, पर्यावरण सेवा (जल उपलब्धता सहित), शक्ति, डाक सेवा तथा अन्य कोई भी जो भौतिक पदार्थ न हो तथा जिसके लिए हम भुगतान करते हैं, को सम्मिलित किया गया है। यह प्रभावकारी रूप से पश्चिमी गोलार्द्ध में निजीकरण तथा नियमहीनता में वृद्धिकारक तथा अत्यन्त व्यापारवर्द्धक समझौता है जो शक्तियों को सरकार से लेकर निगमों को प्रदान करने वाला है।

सीएसीएम

सेन्ट्रल अमेरिकन कामन मार्केट (केन्द्रीय अमेरीकी सामान्य बाजार) –सीएसीएम पॉच केन्द्रीय अमेरीकी राष्ट्रों का संगठन है, जो 13 दिसम्बर 1991 को केन्द्रीय अमेरीकी राष्ट्र संगठन (ऑर्गेनाईजेशन ऑफ सेन्ट्रल अमेरिकन स्टेट्स–ओडीईसीए) के अधिकार पत्र व नियमों अथवा टेगुसिगल्पा अधिकार–पत्र पर हस्ताक्षर द्वारा स्थापित हुआ। इसने 12 दिसम्बर 1962 को हस्ताक्षरित ओडीईसीए अधिकार पत्र में बदलाव किया। यह औपचारिक तौर पर 1 फरवरी 1993 को पनामा में अस्तित्व में आया था। इसे व्यापार और आर्थिक एकीकरण के

द्वारा क्षेत्रीय आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए स्थापित किया गया। इसे केन्द्रीय अमेरीकी आर्थिक एकीकरण का सामान्य समझौते पर ग्वाटेमाला, हौण्डूरास, अल सल्वाडोर तथा निकारागुआ के हस्ताक्षर द्वारा दिसम्बर 1960 में स्थापित किया गया। जुलाई 1962 में इसमें कोस्टारिका को सम्मिलित करते हुए सदस्यता में विस्तार किया गया। सीएसीएम का मुख्यालय ग्वाटेमाला सिटी में स्थापित है।

सीएसीएम के उद्देश्य

1. जनतन्त्र को एकजुट करना तथा इसकी आम जनता द्वारा निर्वाचित तथा स्वतन्त्र व गोपनीय मताधिकार वाली तथा असीमित मानवाधिकारों वाली सरकारों द्वारा स्थापित संस्थाओं को मजबूत बनाना।
2. शक्तियों के सम्मत सन्तुलन पर आधारित क्षेत्रीय सुरक्षा के नये मॉडल की स्थापना करना, नागरिक अधिकारों को मजबूत बनाना, अतिशय निर्धनता का उन्मूलन, संपोषणीय विकास का संवर्द्धन, पर्यावरण की संरक्षा तथा हिंसा, भ्रष्टाचार, आतंकवाद तथा नशे व हथियारों की तस्करी का समापन।
3. मानव तथा समाज के पूर्ण तथा समान विकास के लिए आजादी के विस्तृत युग को बढ़ावा देना।
4. केन्द्रीय अमेरिका की जनता के कल्याण तथा आर्थिक व सामाजिक न्याय के लिए क्षेत्रीय प्रणाली प्राप्त करना।
5. आर्थिक संघ तथा केन्द्रीय अमेरिका की वित्तीय प्रणाली को प्राप्त करना।
6. क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में स्थापित करने के लिए इसे आर्थिक शक्ति के रुप में मजबूत करना।
7. केन्द्रीय अमेरिका के आत्म संकल्प को पुनःपुष्ट तथा मजबूत बनाना क्योंकि यह क्षेत्र के एकीकृत रूप से एकल रणनीति द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय परिदृष्य में मजबूती से तथा विस्तृत रूप से प्रतिभाग द्वारा वाह्य सम्बन्धों से सम्बन्धित है।
8. सदस्य देशों तथा एकीकृत रूप से सम्पूर्ण क्षेत्र के संपोषणीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विकास के लिए समरूप तथा सन्तुलित मार्ग को बढ़ावा देना।
9. क्षेत्र में नवीन पारिस्थितिकी स्थापित करने की दृष्टि से सन्तुलित विकास तथा क्षेत्र के प्राकृतिक साधनों के विवेकपूर्ण विदोहन हेतु प्रकृति के साथ आदर तथा समरसता के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के प्रति निर्दिष्ट समावेशी कार्यवाही सुनिश्चित करना।
10. विधिक व संस्थानिक क्रम तथा पारस्परिक सम्मान पर आधारित केन्द्रीय अमेरीकी एकीकरण प्रणाली स्थापित करना।

एपीईसी (अपेस)

एशिया प्रशान्त आर्थिक सहयोग (एशिया पैसिफिक इकोनीमिक कोओपरेशन–एपीईसी) एशिया प्रशान्त क्षेत्र में आर्थिक विकास, सहयोग, व्यापार तथा निवेश को सहयोग करने वाला एक महत्वपूर्ण संस्थान है जिसकी स्थापना क्षेत्र की आर्थिक प्रगति तथा सम्पन्नता में वृद्धि करने तथा एशिया प्रशान्त समुदाय को मजबूत बनाने के उद्देश्य से वर्ष 1989 में की गई। यह एक अन्तर्शासकीय समूह है जो कि अबाध्यकारी प्रतिबद्धता, खुली वार्ता तथा सभी प्रतिभागियों के प्रति समान सम्मान के आधार पर संचालित होता है। विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ)

तथा अन्य बहुपक्षीय व्यापार निकायों से इतर एपीईसी में इसके प्रतिभागियों के लिए किसी प्रकार की अनुबन्ध सम्बन्धी बाध्यता नहीं होती। एपीईसी के निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते हैं तथा वचन बद्धता को स्वैच्छिक आधार पर लागू किया जाता है।

एपीईसी के 21 सदस्य हैं जिन्हें सदस्य अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है। यह विश्व की जनसंख्या के लगभग 40 प्रतिशत, विश्व के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 55 प्रतिशत तथा विश्व व्यापार के लगभग 44 प्रतिशत भाग को समाहित करता है।

अपेस (एपीईसी) की सदस्य 21 अर्थव्यवस्थाएं हैं– आस्ट्रेलिया, ब्रूनेई दारुस्सलाम, कनाडा, चिली, चीन गणराज्य, हांगकांग, इण्डोनेशिया, जापान, कोरिया गणराज्य, मलेशिया, मेक्सिको, न्यूजीलैण्ड, पापुआ न्यू गिनी, पेरू, फिलिपींस गणराज्य, रूसी संघ, सिंगापुर, चीनी ताइपेई, थाईलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, वियतनाम।

अपेस अर्थव्यवस्थाओं द्वारा निम्नलिखित चार उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं–

1. क्षेत्र की जनता के सार्वजनिक हित के लिए संवृद्धि तथा विकास को निरन्तरता प्रदान करना जिससे कि विश्व अर्थव्यवस्था के विकास को सहयोग प्रदान किया जा सके।
2. वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी तथा तकनीक के प्रवाह को प्रोत्साहित करना जिससे कि क्षेत्रीय तथा विश्व अर्थव्यवस्था दोनों के लाभों में बढ़ोत्तरी की जा सके।
3. एशिया प्रशान्त सदस्य अर्थव्यवस्थाओं तथा अन्य अर्थव्यवस्थाओं के हित में मुक्त बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को विकसित करना तथा उसे बढ़ावा देना।
4. गैट/विश्व व्यापार संगठन के सिद्धान्तों के अनुरूप तथा जहॉ लागू हो और अन्य अर्थव्यवस्थाओं के लिए अहितकर होने के आधार पर वस्तुओं तथा सेवाओं के व्यापार की बाधाओं को कम करना तथा प्रतिभागियों में निवेश सम्बन्धी रुकावटों को न्यूनतम करना।

अपेस वर्ष 2010 तक औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के लिए तथा 2020 तक विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए व्यापार व निवेश में पूर्ण उदारता तथा सुगमता लागू करने की संदृष्टि रखता है। वर्ष 2010 तथा 2020 तक क्रमशः विकसित तथा विकासशील देशों के लिए शून्य प्रशुल्क करना इसका लक्ष्य रखा गया है।

इण्डिया मर्कोसर पीटीए

मर्कोसर लेटिन अमेरिका का व्यापारिक समूह है जिसमें ब्राजील, अर्जेन्टीना, उरुग्वे तथा पेरागुए सम्मिलित हैं। इसकी स्थापना 1991 में चार सदस्य राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी तथा व्यक्तियों के मुक्त प्रवाह के लक्ष्य के साथ हुई। यूरोपियन यूनियन (ईयू) तथा उत्तर अमेरीकी मुक्त व्यापार अनुबन्ध (नाफ्टा) के बाद यह तीसरी सबसे बड़ा एकीकृत बाजार है। भारत ने वर्ष 2003–04 में मर्कोसर के साथ 1247.32 अमेरिकन डालर का व्यापार किया। वर्ष 2003–04 में मर्कोसर के लिए भारत के निर्यात लगभग 385.45 अमेरिकन डालर तथा इसी अवधि के लिए आयात लगभग 861.87 अमेरिकन डालर के थे।

एक वरीयता व्यापार अनुबन्ध (प्रिफरेन्सियल ट्रेड एग्रीमेंट–पीटीए) पर नई दिल्ली में 25 जनवरी 2004 को हस्ताक्षर किये गये। इस वरीय व्यापार अनुबन्ध का लक्ष्य भारत तथा मर्कोसर के मध्य वर्तमान सम्बन्धों को विस्तारित करना एवं मजबूत बनाना तथा सम्बन्धित पक्षों के बीच मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के उद्देश्य से

पारस्परिक निश्चित प्रशुल्क वरीयताओं के द्वारा व्यापार के विस्तार को प्रोत्साहित करना है।

मर्कोसर की प्रस्तावित सूची में मुख्य उत्पाद समूह में खाद्य उत्पाद, जैविक रसायन, औषधि, आवश्यक तेल, प्लास्टिक व सामान, रबर व रबर उत्पाद, यन्त्र व उपकरण, मशीन वस्तुएं, विद्युत मशीन व उपकरण सम्मिलित हैं।

एण्डियन समझौता (एण्डियन समुदाय)

एण्डियन समुदाय दक्षिण अमेरीकी देशों बोलीविया, कोलम्बिया, इक्वेडोर तथा पेरू का व्यापारिक समूह है। व्यापार समूह 1969 में कार्टाजीना समझौता हस्ताक्षर होने के बाद अस्तित्व में आया तथा इसे 1996 तक एण्डियन समझौता कहा जाता था। एण्डियन समुदाय का मुख्यालय लीमा (पेरू) में स्थापित है। यह व्यापार समझौता संयुक्त रूप से 101मिलियन का (2010) है।

एण्डियन समझौते के तथ्यः

1. एण्डियन समुदाय में कुल 47,00,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 120 मिलियन निवासी हैं तथा वेनेजुएला के अतिरिक्त इनका कुल घरेलू उत्पाद 900 मिलियन यूएस डालर है।
2. एण्डियन समुदाय तथा मर्कोसर दक्षिण अमेरिका के दो प्रमुख व्यापारिक समुदाय हैं।
3. समुदाय के संगठन में एण्डियन प्रेसीडेन्सियल काउन्सिल, विदेश मन्त्रियों की परिषद आयोग, न्यायिक न्यायाधिकरण, कांग्रेस तथा रक्षित कोष सम्मिलित हैं।
4. मर्कोसर के साथ सहयोग समझौता होने के बाद एण्डियन समुदाय को पॉच नये सह सदस्य अर्जेन्टीना, ब्राजील, पैरागुए, चिली तथा उरूग्वे प्राप्त हुए।

एण्डियन समझौते के आर्थिक विकास की अवस्थाएं

मूल एण्डियन समझौता वर्ष 1969 में बोलीविया, चिली, कोलम्बिया, इक्वेडोर तथा पेरू के मध्य हुआ। 1973 में वेनेजुएला इसमें सम्मिलित हुआ। 1976 में चिली द्वारा इससे अलग होने तथा 2006 में वेनेजुएला के अलग होने से इसकी संख्या में कमी आई। 1994 में समान वाह्य प्रशुल्क (कॉमन एक्सटर्नल प्रशुल्क–सीईटी) को सहमति प्रदान की गई। जुलाई 2005 में चार मर्कोसर सदस्यों को एण्डियन काउन्सिल ऑफ फॉरेन मिनिस्टर्स द्वारा सह सदस्यता प्रदान की गई। इसके परावर्ती प्रभाव से मर्कोसर ने भी एण्डियन समुदाय के समस्त देशों को उनके तथा एण्डियन समुदाय (सीएएन) के मध्य आर्थिक समझौतों, मुक्त व्यापार समझौतों के माध्यम से सह सदस्यता प्रदान की। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जुलाई 2005 में इस समझौते को अनुमोदित किया गया।

केरीकॉम

सन् 1972 में, राष्ट्र मण्डल कैरीबियन नेताओं ने सातवें राष्ट्राध्यक्षों के सम्मेलन में कैरीबियन मुक्त व्यापार संगठन (कैरिफ्टा) को सामूहिक बाजार में परिवर्तित करने तथा कैरीबियन समुदाय को स्थापित करने का निर्णय लिया, जिसका सामूहिक बाजार एक अन्तरंग हिस्सा होगा।

राष्ट्र मण्डल कैरीबिआई देशों के लिए 4 जुलाई 1973 का दिन जिसमें कैरीबियन समुदाय की स्थापना के लिए चौगुरामास में हस्ताक्षर किये गये, एक ऐतिहासिक

यद्यपि एक मुक्त व्यापार क्षेत्र स्थापित हो गया था, कैरिफ्टा ने श्रम व पूँजी के प्रवाह को मुक्त नहीं किया था अथवा कृषि, उद्योग तथा विदेश नीतियों में समन्वय नहीं था। परिवर्तित समझौते के अनुच्छेद 6 में समुदाय के निम्न उद्देश्य बताए गये हैं–

1. रहन सहन तथा कार्य की दशाओं में सुधार,
2. श्रम तथा उत्पादन के अन्य साधनों को पूर्ण रोजगार,
3. त्वरित, समन्वित तथा निरन्तर आर्थिक विकास तथा सहगामिता,
4. तीसरे देशों, देशों के समूह तथा अन्य इकाइयों के साथ व्यापार तथा आर्थिक सम्बन्धों का विस्तार

22.6 सारांश

वैश्वीकरण के युग के बाद हम क्षेत्रीयकरण के युग में प्रवेश कर रहे हैं। कतिपय राष्ट्रों के अतिरिक्त विश्व व्यापार संघ के सभी हस्ताक्षरी क्षेत्रीय व्यापार समझौते (रीजनल ट्रेड एग्रीमेन्ट–आरटीए) के भी सदस्य है तथा उनमें से अधिकांश एकाधिक आरटीए के सदस्य हैं। भारत भी अनेक ऐसे क्षेत्रीय व्यापार समझौतों का सदस्य है। भारत ने सिंगापुर के साथ व्यापक संधि पर हस्ताक्षर किये हैं। ब्रिटेन को आशा है कि भारत ऐसी ही संधि यूरोपीय संघ के साथ भी हस्ताक्षर करेगा। प्रत्येक देश दूसरे देश के बाजार में प्रवेश तथा वहॉ के कच्चे माल तक पहुॅच बनाने के लिए आतुर है। राष्ट्रों के द्वारा वरीय व्यापार प्रणाली के द्वारा आंशिक रूप से मुक्त व्यापार की दिशा में कदम बढ़ा दिये हैं। इसके द्वारा सदस्य देशों के बीच मुक्त व्यापार किन्तु विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। इस प्रकार की प्रणाली सामान्य मुक्त क्षेत्र अथवा सीमा शुल्क संघ (जिसमें विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापार पर सामान्य प्रतिबन्ध लगाया गया है) अथवा सामूहिक बाजार (जिसमें साथ ही पूँजी तथा श्रम का प्रवाह भी मुक्त है तथा कर व व्यापार कानून भी समान हैं) के रूप में हो सकती है। वरीय व्यापार से पैमाने की वाह्य बचत, विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ व्यापार में सौदेबाजी की शक्ति में वृद्धि, सदस्य देशों के बीच बड़ी प्रतिस्पर्धा के कारण कार्यक्षमता में वृद्धि तथा तकनीक में अधिक तीव्रता से वृद्धि जैसे गतिमान लाभ प्राप्त हो सकते हैं। दूसरी ओर, ये सदस्यों के लिए क्षेत्रीय समस्याओं को भी बढ़ावा दे सकती हैं, अल्पाधिकारी दुरभिसंधि तथा विभिन्न पैमाने की अपबचतें सामने आ सकती हैं। व्यवस्था को संचालित करने की लागतें भी बढ़ सकती हैं। दुनिया भर में वरीय व्यापारिक व्यवस्थाओं के लिए विभिन्न प्रयास किये गये हैं। इनमें से दो सबसे शक्तिशाली हैं–यूरोपीय संघ (ईयू) तथा उत्तर अमेरीकी मुक्त व्यापार संगठन (नाफ्टा)।

यूरोपीय संघ एक सीमा शुल्क संघ है जिसमें समान वाह्य प्रशुल्क दरें होती हैं तथा कोई आन्तरिक दर नहीं होती। किन्तु, वस्तुतः प्रारम्भ से ही इसमें सामान्य बाजार के भी लक्षण पाये जाते हैं, विशेषतः कृषि नीति, क्षेत्रीय नीति, एकाधिकार तथा प्रतिबन्धित व्यवहार नीति तथा कुछ सीमा तक कर एकरूपता, यातायात नीति तथा सामाजिक नीति के सम्बन्ध में भी। एकल यूरीपीय अधिनियम 1986 किसी अन्य बचे हुए प्रतिबन्ध को समाप्त करने तथा यूरोपीय संघ के अन्दर एक अकृत्रिम मुक्त बाजार स्थापित करने के लिए के लिए बनाया गया जिससे कि पूर्ण मुक्त बाजार स्थापित किया जा सके। आन्तरिक बाजार को पूर्ण बनाने के

लाभों में व्यापार उत्पन्न करना, बाधाओं को संचालन जारी न करने के कारण लागत बचत, फर्मों के लिए पैमाने की बचत यूरोप भर के लिए उपलब्ध होना तथा कम लागत व मूल्य के कारण अधिक प्रतिस्पर्धा, तकनीकी सूचना व अधिक नवोन्मेष का अधिक प्रवाह आदि सम्मिलित हैं।

22.7 शब्दावली

क्षेत्रीय व्यापार खण्डः से आशय है कि जब कोई व्यापार खण्ड पडोसी देश अथवा भौगोलिक रुप से समान देशों के मेल से बनता है तो इसे क्षेत्रीय व्यापार (अथवा एकीकरण) समझौते के रुप में संदर्भित किया जाता है।

वरीय व्यापार क्षेत्रः से आशय है कि जब किसी एक भौगोलिक क्षेत्र के राष्ट्र उक्त क्षेत्र के अन्य सदस्य राष्ट्रों से चयनित वस्तुओं के आयात में प्रशुल्क बाधाओं को घटाने अथवा हटाने पर सहमत हो जाते हैं।

मुक्त व्यापार क्षेत्रः से आशय है कि जब किसी क्षेत्र के दो या अधिक राष्ट्र अन्य सदस्य के यहॉ से आने वाली सभी वस्तुओं पर व्यापार सम्बन्धी बाधाओं को कम या समाप्त करने के लिए सहमत हो जाते हैं।

आशियानः यह दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (आशियान) एशिया का एक प्राथमिक बहुराष्ट्रीय व्यापार समूह है।

22.8 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थान की पूर्ति करो।

1. संरक्षण का ढंग जिसके द्वारा यूरोपीय संगठन तथा राष्ट्रों में कृषि क्षेत्र को संरक्षण दिया जाता है उसे .... कहते हैं।
2. जब सदस्य राष्ट्र सभी आर्थिक संसाधनों में मुक्त रूप से व्यापार करते हैं तो इसे .... कहते हैं।
3. वह परिस्थिति जिसमें देश उत्पादन लागत से भी कम पर उत्पाद का निर्यात करते हैं, उसे .... कहते हैं।

(ब) बहुविकल्पी प्रश्न

1. आशियान से तात्पर्य है–
   - अ. दक्षिण पूर्व कृषि राष्ट्र संगठन
   - ब. दक्षिण पूर्व एशियन राष्ट्र संगठन
   - स. दक्षिण पूर्व एशियाई पड़ोसी गठबन्धन
   - द. दक्षिण पूर्व अफ्रीकन राष्ट्र गठबन्धन
2. यूरोपियन संगठन एवं उत्तर अमेरिका मुक्त व्यापार समझौता (नाफ्टा) के बाद तीसरा सबसे बड़ा एकीकृत बाजार है–
   - अ. साप्टा
   - ब. मर्कोसर
   - स. अपेस
   - द. डब्ल्यूटीओ
3. सार्क के सदस्य देशों की संख्या है–
   - अ. छह
   - ब. आठ
   - स. सात

द. सोलह

4. सार्क का आठवॉ सदस्य कौन सा राष्ट्र बना है?

अ. अफगानिस्तान

ब. क्यूबा

स. भारत

द. श्री लंका

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. आयात प्रशुल्क, 2. समान बाजार, 3. राशिपातन (डम्पिंग)

(ब) 1. ब (दक्षिण पूर्व एशियन राष्ट्र संगठन), 2. ब (मर्कोसर), 3. ब (आठ), अ (अफगानिस्तान)

22.10 स्वपरख प्रश्न

8. क्षेत्रीय व्यापार खण्ड को परिभाषित कीजिए। इसके विभिन्न प्रकारों को उदाहरण सहित समझाइए।
9. आशियान तथा इसके लक्ष्य व उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
10. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए– सार्क, सीएसीएम, अपेस, यूरोपियन संगठन तथा मुक्त व्यापार क्षेत्र।
11. नाफ्टा के विभिन्न क्षेत्रों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

22.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Mittal, Vivek, (eds.) (2007) “Business Marketing”, Excel Books
2. Hew, Denis, (eds.) (2007), Brick by brick: The Building of an ASEAN Economic Community, Singapore: Institute of Southeast Asian Studies.
3. Anderson, Kym and Richard Blackhurst (eds.) (1993), Regional Integration and the Global Trading System, New York: St. Martin’s Press.
4. Bhagwati, Jagdish and Arvind Panagariya (eds.) (1996), The Economics of Free Trade Areas, Washington, D.C.: AEI Press.
5. www.asean.org.in
6. http://commerce.gov.in/trade
7. www://nafta.org.in

===========

इकाई 23 विश्व व्यापार और उदीयमान वातावरण

इकाई की रूपरेखा

23.1 प्रस्तावना
23.2 वैश्विक अर्थव्यवस्था की स्थिति
23.3 विश्व व्यापार
23.4 भारत का मर्चेंडाइज व्यापार
 23.4.1 भारत का निर्यात विकास
 23.4.2 निर्यात वृद्धि और विनिमय दर में परिवर्तन
23.5 भारत और ईडीई का निर्यात प्रदर्शन
23.6 भारत का आयात विकास
23.7 व्यापारिक घाटा
23.8 सेवाओं में विश्व व्यापार
23.9 विश्व व्यापार संगठन के समझौते और भारत
23.10 द्विपक्षीय और क्षेत्रीय सहयोग
23.11 चुनौतियां व दृष्टिकोण
 23.11.1 दृष्टिकोण
 23.11.2 चुनौतियां
23.12 सारांश
23.13 शब्दावली
23.14 बोध प्रश्न
23.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
23.16 स्वपरख प्रश्न
23.17 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- वैश्विक अर्थव्यवस्था की स्थिति को जान सकें।
- विश्व व्यापार के साथ–साथ भारत के मर्केंडाइज़ व्यापार को जान सकें।
- भारत का निर्यात–आयात विकास को समझ सकें।
- सेवाओं में विश्व व्यापार की स्थिति को जान सकें।
- डब्ल्यूटीओ वार्ता और भारत के सम्बन्ध को जान सकें।
- द्विपक्षीय और क्षेत्रीय सहयोग को समझ सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष चुनौतियां और दृष्टिकोण को जान सकें।

23.1 प्रस्तावना

भारत के वैश्वीकरण ने नए अवसरों को जन्म दिया है। लेकिन इसके साथ ही नई चुनौतियों और जिम्मेदारियों को भी लाया है। इसका आशय है, कि वैश्विक अर्थव्यवस्था अब एक दर्शक की दृष्टि से नहीं देखी जा सकती है। वहाँ क्या होता है इसका भारत पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हर बार दुनिया में कहीं भी एक बड़ा वित्तीय संकट होता है तो ब्रेस की स्थिति जानने की आवश्यकता होती है। और इसके बदले में, भारत की विकास दर का उदय और गिरावट वैश्विक विकास पर

प्रभाव डालती है और भारत को इस जिम्मेदारी को गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। यह अध्याय, आर्थिक सर्वेक्षण में एक नया अतिरिक्त अध्याय है, जो इस तथ्य की पुष्टि करता है। यह वैश्विक अर्थव्यवस्था की स्थिति और उसमें भारत की स्थिति की जांच करता है। यह मौजूदा वैश्विक मंदी और यूरोजोन संकट का विश्लेषण करता है, भारत के लिए इसका क्या मतलब है और किन नीतिगत चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, ये अंतरराष्ट्रीय मामले घरेलू जमीं पर उभरते हैं। यह अध्याय जी –20 अनिवार्यताओं और वैश्विक वैश्विक क्रम में एक रचनात्मक खिलाड़ी के रूप में भारत की भूमिका पर भी चर्चा करता है।

23.2 वैश्विक अर्थव्यवस्था की स्थिति

दुनिया के प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में पिछले वर्ष के विकास को प्रोत्साहित नहीं किया गया है। यह आशंका है कि 2008 के वित्तीय संकट के बाद शुरू हुई वैश्विक आर्थिक सुधार की प्रक्रिया की धीमी शुरुआत हो रही है और यूरोजोन क्षेत्र में संप्रभु ऋण संकट थोड़ी देर के लिए जारी रह सकता है। इन खतरनाक क्षेत्रो हेतु एक सुरक्षा आवरण बनाने का प्रयास करना चाहिए किन्तु विश्व का इस सन्दर्भ में पर्याप्त अनुभव नहीं है, अतः हमें कुछ उल्लंघनो हेतु तैयार रहना चाहिए। अमेरिकी अर्थव्यवस्था में कुछ सुधार दिखाया गया है लेकिन आर्थिक विकास सुस्त रहा है। वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण (WEO) के अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) जनवरी 2012 के अपडेट के मुताबिक, 2012 में वैश्विक अर्थव्यवस्था में 3.3% की वृद्धि दर्ज की गई थी, जो 2011 में 3.8% थी। 2011 में 3.2% की तुलना में 2011 में 3.2% की तुलना में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि 1.6% से घटकर 2012 में 1.2% हो सकती है। उभरती अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि 2011 में 7.3ः की तुलना में 6.2% 2010 में और 2012 में 5. 4% होने का अनुमान है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था कुछ हद तक फिर से शुरू हो रही है और 2012 के लिए 1.8% की वृद्धि दर बनाए रखने का अनुमान है। हालांकि, दोनों वित्तीय और मौद्रिक नीति उपकरण के व्यापक उपयोग के बावजूद अमेरिका में आर्थिक विकास धीमी रहा है। यूरोज़ोन को 2012 में 0.5% की वृद्धि की उम्मीद है (तालिका 23. 1)।

इस अवधि में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में कमजोर वृद्धि के लिए प्रमुख कारण यूरोजोन की परिधीय अर्थव्यवस्थाओं में शुरू हुआ संप्रभु ऋण संकट बना हुई है, लेकिन 2011 के उत्तरार्ध में, वहां के प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। मध्यम अवधि के राजकोषीय समेकन से जुड़े मुद्दों, सार्वजनिक और निजी कर्ज के लिए यूरोपीय बैंकों का जोखिम, और संकट को हल करने के तरीके में आवर्ती मतभेदों ने वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण पर ध्यान देना जारी रखा क्योंकि यूरोजोन वैश्विक जीडीपी के एक–पांचवें भाग के करीब है।

तालिका 18.1 जीडीपी का विकास (%) (वर्ष दर वर्ष)

	World	Advanced economies	US	EU	UK	Eurozone	Germany	Japan	B	R	I*#	C*	S
2010	5.2	3.2	3.0	2.0	2.1	1.8	3.6	4.4	7.5	4.0	9.9	10.4	2.9
Q1			2.2	1.0	1.2	1.0	2.4	5.0	9.3	3.0	9.4	11.9	1.6
Q2			3.3	2.2	2.5	2.1	4.1	4.5	8.7	5.2	8.8	10.3	3.0
Q3			3.5	2.4	3.0	2.1	4.0	5.2	7.0	3.4	8.9	9.6	3.3
Q4			3.1	2.2	1.7	2.0	3.8	3.2	5.3	4.4	8.3	9.7	3.6
2011	3.8	1.6	1.8	1.6	0.9	1.5	3.0	-0.9	2.9	4.1	7.4	9.2	3.1
Q1			2.2	2.4	1.6	2.4	4.6	0.1	4.2	3.8	7.8	9.7	3.7
Q2			1.6	1.7	0.5	1.6	2.9	-1.7	3.3	3.5	7.7	9.5	3.3
Q3			1.5	1.4	0.4	1.3	2.6	-0.6	2.2	4.9	6.9	9.1	2.9
Q4			1.6	0.9	0.7	0.7	2.0	-1.0	na	na	6.1	8.9	na
2012 (P)	3.3	1.2	1.8	-0.1	0.6	-0.5	0.3	1.7	3.0	3.3	7.0	8.2	2.5

स्रोतः आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) प्रिंसिपल ग्लोबल इंडिकेटर्स एंड आईएमएफ (WEO)

मौद्रिक नीति विकल्पों के प्लवन प्रभाव और उन्नत वित्तीय बाजारों में अन्य अनिश्चितताओं के परिणामस्वरूप पूंजी प्रवाह में अस्थिरता ने विनिमय दर को प्रभावित किया और कई उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में व्यापक आर्थिक प्रबंधन का काम कठिन बना दिया। इसने वित्तीय संकट के बाद के विश्व में वैश्वीकरण के एक नए आयाम को उजागर किया है, जहां देशों के एक समूह में आसान मौद्रिक नीति का परिणाम पारगमन पूंजी प्रवाह के कारण और कहीं मुद्रास्फीति में हो सकता है।

सामान्य रूप से उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी की स्थिति, और विशेष रूप से यूरोजोन की परिधीय अर्थव्यवस्थाएं, जो वैश्विक संकट के मद्देनजर खराब हुई थीं, में सुधार नहीं हुआ है। ओईसीडी रोजगार आउटलुक 2011 ने देखा कि वसूली रोकने के साथ, ओईसीडी बेरोजगारी उच्च रही, करीब 44.5 मिलियन बेरोजगार लोगों के साथ। उच्चतम बेरोज़गारी दर (21.7%) का प्रदर्शन करने वाले स्पेन में ओईसीडी देशों में बेरोजगारी की सीमा अलग–अलग है। ओईसीडी रिपोर्ट के अनुसार, मुख्य हताश हुए युवा और अस्थायी श्रमिक रहे हैं, जिनमें से कुछ नौकरी बाजार से बाहर निकल रहे हैं। अमेरिका में बेरोजगारी की दर कुछ सुधार (Q4 2011 में 8.7% थी, जो 2011 की तीसरी तिमाही के मुकाबले 9.1% थी), लेकिन फिर भी उच्च बनी हुई है उन्नत देशों में बेरोजगारी की लगातार उच्च दर, विशेष रूप से संकटग्रस्त देशों में, यूरोज़ोन के संकटग्रस्त देशों में, राजकोषीय समेकन के निहित विरोधाभास (संकुचन प्रवृत्ति को बिगड़ते बिना) की परिधीय अर्थव्यवस्थाओं में एक सामाजिक नतीजा है और इसमें सार्वजनिक बहस का तेजी से ध्रुवीकरण किया गया है। उचित आर्थिक नीतियों को अपनाया जाना चाहिए।

2011 में वैश्विक विकास के पुनरुद्धार से बाहर निकलने की वजह जापान में भूकंप और सुनामी के परिणामस्वरूप आपूर्ति श्रृंखला नेटवर्क में बाधाएं बढ़ीं (मार्च 2011 में)। बाद में वर्ष (अक्टूबर और नवंबर) में, थाईलैंड में गंभीर बाढ़ ने कुछ आपूर्ति श्रृंखला भी बाधित की। कुछ मध्य पूर्व और उत्तर अफ्रीकी देशों में राजनीतिक अनिश्चितताएं तेल की कीमतों के लिए उनके स्पष्ट निहितार्थ के अलावा अनिश्चितता का एक और स्रोत रही हैं। यूरोज़ोन में गंभीर अनिश्चितता ने दिसंबर 2011 में वैश्विक वित्तीय बाजारों को प्रभावित किया था, जो पूंजी उत्क्रमण से सुरक्षित स्थानों तक पहुंच गए थे।

इस मौके पर, अल्पकाल में, वैश्विक अर्थव्यवस्था विभिन्न स्रोतों, आर्थिक, सामाजिक और भू–राजनीतिक से निकलने वाले कई झटकों से बुरी तरह आहत रही है। 2012 में अधिकांश देशों के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा अनुमानित कम वैश्विक वृद्धि शायद इन विभिन्न कारकों के विभिन्न सेटों से उत्पन्न होने वाली अनिश्चितता के पुनरावृत्त ब्योरा को दर्शाती है। फिर भी, भारत को आईएमएफ के अनुसार चीन (8.2%) के बाद दूसरा सबसे तेजी से बढ़ता प्रमुख अर्थव्यवस्था (7%) होने का अनुमान है। मध्यम अवधि में, वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए चुनौतियां यूरोज़ोन संकट को संबोधित करने के तरीके से आगे निकलती रहती हैं। जापान और संयुक्त राज्य में उच्च घाटे और कर्ज और सामान्य रूप से उच्च आय वाले देशों में धीमी गति से विकास का समाधान नहीं किया गया है। ईरान पर केंद्रित भू–राजनीतिक तनाव के कारण वैश्विक दृष्टिकोण को उभरते जोखिम भी तेल की आपूर्ति को बाधित कर सकता है और इसके परिणामस्वरूप तेल की कीमतों में तेज़ वृद्धि और आपूर्ति मार्गों को भी बाधित कर सकता है। हालांकि वर्तमान से सम्मिलन के लिए संक्षेप से मध्यम अवधि में परिणामों की आशंका करना महत्वपूर्ण है, वर्तमान वैश्विक स्थिति कुछ दीर्घकालिक घटनाओं और प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के परस्पर स्थिति में बदलाव की एक अभिव्यक्ति है, जो अब संभवतः कुछ महत्वपूर्ण अनुपातों तक पहुंचे हैं।

23.3 विश्व व्यापार

विश्व व्यापार के व्यापार मूल्य ने पूर्व संकट (2008) 16 खरब डॉलर के स्तर को पार कर दिया, और दो साल का अंतराल के बाद जो 2011 में 18.26 खरब डॉलर तक पहुंच गया। हालांकि, विश्व व्यापार की मात्रा तेजी से घटकर 2012 में 2.8% हो गई 2011 की तुलना में 5.9% से और 2010 में 12.6% से (तालिका 23.2)। वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइजेशन (डब्ल्यूटीओ) के आंकड़ों के मुताबिक 2011 की इसी अवधि की तुलना में 2012 के पहले तीन तिमाहियों में विश्व का निर्यात 0.2% गिर गया। आईएमएफ के जनवरी 2013 के अपडेट के मुताबिक 2013 में विश्व व्यापार की मात्रा 3.8% बढ़ने का अनुमान है, जो अक्टूबर 2012 के अपडेट के मुकाबले 0.7% अंकों की गिरावट है। उभरते बाजार और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की आयात और निर्यात की मात्रा में वृद्धि दर उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में अधिक होने का अनुमान है।

तालिका 18.2: व्यापार की मात्रा में वृद्धि का रुझान

			Projections	
	2011	2012	2013	2014
World trade volume (goods and services)	**5.9**	**2.8**	**3.8**	**5.5**
Imports				
Advanced economies	4.6	1.2	2.2	4.1
Emerging market & developing economies	8.4	6.1	6.5	7.8
Exports				
Advanced economies	5.6	2.1	2.8	4.5
Emerging market & developing economies	6.6	3.6	5.5	6.9

स्रोतः अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ), विश्व आर्थिक आउटलुक अपडेट, जनवरी 2013

यूरो क्षेत्र में संकट के अंतिम समाधान के बारे में संदेह सहित वैश्विक आर्थिक अनिश्चितता, अमेरिका में राजकोषीय वापसी की गति के बारे में संदेह, जापान में भूकंप के पुनर्निर्माण के बाद और चीन के साथ व्यापार में बाधा आने के बाद वृद्धि

को बनाए रखने के लिए चुनौतियां, भारत सहित उभरते और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (ईडीई) के व्यापार विकास पर अपनी छाया डालना जारी रखता है।

23.4 भारत का मर्चेंडाइज व्यापार

2000 के दशक में भारत का मर्चेंडाइज व्यापार 2000–01 के दशक में बढ़कर 95.1 अरब अमरीकी डॉलर से 2010–11 में 620.9 अरब अमरीकी डॉलर और 2011–12 में 793.8 अरब अमरीकी डॉलर हो गया। वैश्विक निर्यात और आयात में भारत का हिस्सा 2000 में क्रमशः 0.7% और 0.8% से बढ़कर 1.7% और विश्व व्यापार संगठन के अनुसार 2011 में 2.5% हो गया। प्रमुख निर्यातकों और आयातकों में इसकी रैंकिंग वर्ष 2000 में सुधरकर क्रमश: 31 और 26 से क्रमश: 19 और 12 थी। जबकि भारत का कुल घरेलू उत्पाद सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के प्रतिशत के रूप में 2004–05 में 28.2% से बढ़कर 43.2% अनंतिम अनुमान के अनुसार 2011–12 में, इसी अवधि में जीडीपी के प्रतिशत के रूप में भारत के व्यापारिक वस्तुओं का निर्यात 11.8% से बढ़कर 16.5% हो गया।

23.4.1 भारत का निर्यात विकास

2008 की विश्व मंदी के बाद निर्यात में मदद करने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए उपायों और 2010–11 में भारत के निर्यात में सुधार हुआ और यह आजादी के बाद से सभी समय में 40.5% के उच्च स्तर पर पहुंच गया। यद्यपि यह 2011–12 में घटकर 21.3% पर आ गया, हालांकि यह 2004–05 से 2011–12 के दौरान 20.3% से अधिक है और 20.3% की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सीएजीआर) से कहीं अधिक है। जुलाई 2011 में 56.5% की उच्च वृद्धि दर्ज करने के बाद, नवंबर 2011 में निरंतर बढ़ोतरी की वजह से निरंतर निर्यात में गिरावट आई और फिर मार्च 2012 से नकारात्मक आंकड़ों के मुताबिक 2012 में मासिक निर्यात में वृद्धि हुई। अप्रैल 2012–13 (अप्रैल–दिसंबर) अप्रैल 2012 में मामूली वृद्धि के अलावा नकारात्मक था। 2012–13 में तीन महीनों के लिए निर्यात में सालाना आधार पर गिरावट आई, जुलाई 2012 में सबसे बड़ी गिरावट –15.1 % दर्ज की गई। जनवरी 2013 में, 0.8% की एक सीमांत सकारात्मक वृद्धि हुई है।

23.4.2 निर्यात वृद्धि और विनिमय दर में परिवर्तन

वर्ष 2011–12 में (पूर्ण वर्ष) 21.3% की वृद्धि के मुकाबले, डॉलर के संदर्भ में निर्यात की वृद्धि 2012–13 (अप्रैल–जनवरी) में नकारात्मक –4.9% थी। रुपए के संदर्भ में, यह 9.1% पर सकारात्मक था, हालांकि यहां भी, वर्ष 2011–12 (पूरे वर्ष) में 28.3% से कमी आई थी। भारत के निर्यात का विकास लगभग 2000 के दशक और 2011 में विश्व निर्यात विकास से ऊपर रहा है। एक मुद्दा या बहस का विषय यह है कि क्या भारत का निर्यात विकास दर विश्व विकास/व्यापार या विनिमय दर पर निर्भर है। भारत का निर्यात विकास और विश्व निर्यात वृद्धि (चित्र 23.1) के बीच एक मजबूत पत्राचार है। यह स्पष्ट रूप से 2009 में दिखाई देता है, जब दोनों विश्व निर्यात और भारत के निर्यात में बड़ी गिरावट आई थी। असली प्रभावी विनिमय दर (आरईईआर) और भारत के निर्यात के विकास में परिवर्तन के बीच का सम्बन्ध विश्व व्यापार के साथ स्पष्ट रूप से दृष्ट नहीं है।

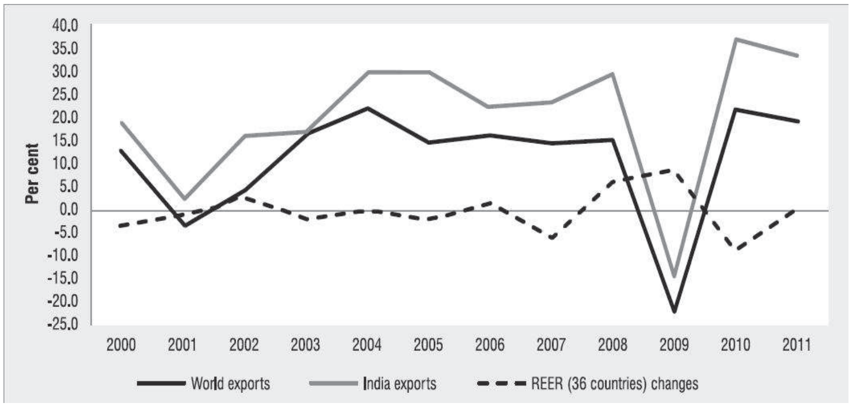

चित्र 23.1: विश्व और भारत के निर्यात की वृद्धि और पुनः परिवर्तन
स्रोतः http:@@indiabudget-nic-in

23.5 भारत का निर्यात प्रदर्शन और ईडीई

2011 में यूएस +18 ट्रिलियन के विश्व निर्यात में चुनिंदा उभरते हुए और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (ईडीई) का हिस्सा बढ़कर 41% हो गया है जो कि 2000 में 15.6% की हिस्सेदारी में बदलाव के साथ बढ़ गया है। अगर चार नए उद्योगित एशियाई अर्थव्यवस्थाएं, अर्थात् सिंगापुर, हांगकांग, ताइवान और कोरिया गणराज्य, जिसे अब आईएमएफ द्वारा उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के तहत वर्गीकृत किया गया है, इसमें भी शामिल किया जाएगा तो हिस्सा 50.5% होगा। 2000 और 2011 के बीच दुनिया के निर्यात में 6.6% की बढ़ोतरी के साथ चीन का प्रदर्शन शानदार है, इस अवधि में ईडीई में कुल वृद्धि का 42.4% शामिल है, जबकि भारत में 1% की हिस्सेदारी में वृद्धि का योगदान केवल 6.5% है। कुल वृद्धि हालांकि, 2011 में चीन की निर्यात वृद्धि दर 20.3% थी जो भारत की तुलना में काफी कम थी। 2011 में भारत की निर्यात वृद्धि दर 33.8% थी और 2010 की 37.3% वृद्धि से यह दुनिया में सबसे ज्यादा है। विश्व व्यापार के निर्यात में भारत का हिस्सा जो 2004 से तेजी से बढ़ रहा था, 2010 में 1.5% और 2011 में 1.7% तक पहुंच गया। 2012 में (जनवरी–अक्टूबर) में मामूली गिरावट आई, मुख्य रूप से इसकी अपेक्षाकृत नकारात्मक निर्यात वृद्धि 5.1% दुनिया के निर्यात में वृद्धि की तुलना में – 0.2% (तालिका 23.3) इसके विपरीत 2012 में चीन की हिस्सेदारी बढ़कर 11. 2% हो गई (जनवरी–अक्टूबर) 7.9% की एक सकारात्मक निर्यात वृद्धि के साथ।

तालिका 18.3: निर्यात में वृद्धि और वैश्विक निर्यात में हिस्सारू भारत और अन्य चयनित देश

	Value (US$ billion) 2011	CAGR 2000-09	Growth rate % Annual 2010	2011	2012 (Jan-Oct.)	Share in world exports (%) 2000	2010	2011	2012 (Jan-Oct.)	change in shares 2011/2000
EDEs	**7400**	**12.3**	**28.8**	**24.9**	**1.8**	**25.4**	**39.2**	**41.0**	**41.7**	**15.6**
of which										
China	1899	19.1	31.3	20.3	7.9	3.9	10.4	10.5	11.2	6.6
Russia	522	12.5	32.0	30.4	3.1	1.7	2.7	2.9	2.9	1.2
Mexico	350	3.6	29.8	17.3	7.0	2.6	2.0	1.9	2.1	-0.7
India	303	16.3	37.3	33.8	-5.1	0.7	1.5	1.7	1.6	1.0
Malaysia	228	5.4	26.2	14.8	-0.6	1.5	1.3	1.3	1.3	-0.3
Brazil	256	12.0	32.0	26.8	-5.2	0.9	1.3	1.4	1.3	0.6
Thailand	226	9.2	28.6	15.9	0.8	1.1	1.3	1.3	1.3	0.2
Indonesia	201	6.9	32.1	26.9	-6.2	1.0	1.0	1.1	1.0	0.1
South Africa	97	8.5	30.7	18.5	-9.8	0.5	0.5	0.5	0.5	0.1
NIAEs*										
Korea, Republic	557	8.6	29.0	19.3	-1.3	2.7	3.1	3.1	3.0	0.4
Hong Kong	429	5.2	22.5	9.9	1.4	3.2	2.6	2.4	2.4	-0.8
Singapore	410	7.8	30.4	16.4	0.3	2.2	2.3	2.3	2.3	0.1
Taiwan	308	3.6	34.8	12.2	NA	2.3	1.8	1.7	NA	-0.6
World	**18033**	**7.7**	**22.0**	**19.4**	**-0.2**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**-**

स्रोत : आईएमएफ से गणना, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सांख्यिकी, जनवरी 2013 ।

नोटः ' नई एशियाई अर्थव्यवस्थाएं, एनएः उपलब्ध नहीं।

भारत के कुछ प्रमुख व्यापारिक भागीदारों के निर्यात और आयात की नवीनतम मासिक वृद्धि दर कम या नकारात्मक रही है। 2012 में यूरोपीय संघ के अधिकांश आयातों में नकारात्मक वृद्धि हुई है। पिछले दो या तीन महीनों में अमेरिका, हांगकांग और सिंगापुर और दिसम्बर 2012 में चीन जैसे देशों में थोड़ी–थोड़ी अस्थिर आयात वृद्धि हुई है।

23.6 भारत का आयात विकास

पिछले वर्ष की गिरावट से 2010–11 में सुधार के बाद, भारत का व्यापारिक माल 2011–12 में 32.3% की वृद्धि के साथ 489.2 बिलियन अमरीकी डॉलर तक बढ़ गया। यह पेट्रोलियम, तेल और ल्यूब्रिकेंट (पीओएल) के आयात में 46.2% की वृद्धि और 26.7% पीओएल आयात के साथ गैर–पीओएल आयात में वृद्धि (भारत के कुल आयात में 31.7% के हिस्से के साथ) में वृद्धि के कारण था, 2011–12 में भारतीय कच्चे तेल के आयात मूल्य में 31.5ः की बढ़ोतरी 2010–11 में 22% के मुकाबले मुख्य रूप से उच्च वृद्धि दर्ज की गई (चित्र 23.2)।

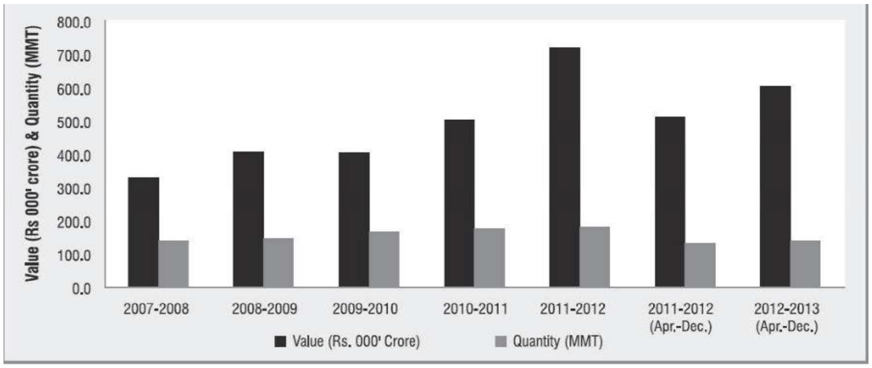

चित्र 18.2: पीओएल आयात

स्रोत: पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस डेटा मंत्रालय के आधार पर।

पीओएल आयात की मात्रा में वृद्धि वर्ष 2009–10 में 14.9% से घटकर 2010–11 में 3.7% और 2011–12 में 3.5% हो गई। वैश्विक मंदी के चलते जुलाई 2008 में अंतरराष्ट्रीय तेल की कीमतें (ब्रेंट) 132.47 अमेरिकी डॉलर के उच्च स्तर पर पहुंच

गई थीं, जिनमें दिसम्बर 2008 में तेजी से गिरावट आई थीं, जो दिसंबर 2008 में 40.35 डॉलर थी। 2009 के बाद से, तेल की कीमत आंतरायिक अस्थिरता के साथ बढ़ रही है, मार्च 2012 में यूएस + 125.33 तक पहुंच गई है और आगामी महीनों में उतार–चढ़ाव के साथ मामूली गिरावट आई है। वर्तमान में ब्रेंट ऑयल की कीमत यूएस + 110/बीबीएल के आसपास हो रही है। सोने और चांदी के आयात (भारत के कुल आयात में 12.6% की हिस्सेदारी के साथ) 2011–12 में 44.5% की वृद्धि हुई। सोना और चांदी के कुल आयात का 91.7% अकेले सोने का आयात रहा।

2011–12 में, सोने के आयात मूल्य में 38.8% और मात्रा में 11.2% की वृद्धि हुई। गैर–पीओएल गैर बुलियन आयात 2010–11 में 29% की तुलना में 2011–12 में 23.3% की वृद्धि हुई। 2012–13 में यूएस + 406.9 बिलियन आयात (अप्रैल–जनवरी) में 0.01% की वृद्धि दर्ज की गई। 2012–13 (अप्रैल से दिसंबर) के दौरान, पीओएल का आयात 125.2 अरब अमेरिकी डॉलर में 12.8% की वृद्धि हुई। गैर–पीओएल आयात + 239.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर में 5.1% की गिरावट आई और 39.3 अरब अमेरिकी डॉलर के साथ सोना और चांदी के आयात में 14.7% की गिरावट आई है। गैर पीओएल और गैर–बुलियन आयात जो मूल रूप से औद्योगिक गतिविधि के लिए आवश्यक पूंजीगत वस्तुओं के आयात को दर्शाते हैं और निर्यात के लिए आवश्यक आयात 3.0% की गिरावट आई है।

23.7 व्यापारिक घाटा

1950–51 से 55.6% की उच्चतम वृद्धि के साथ 2010–11 में यूएस + 118.6 बिलियन अमरीकी डॉलर से व्यापार घाटा (सीमा शुल्क के आधार पर) 2011–12 में 184.6 अरब अमरीकी डॉलर के शिखर पर पहुंच गया। मध्यम निर्यात वृद्धि और उच्च आयात वृद्धि, विशेषकर पीओएल में उच्च मूल्यों और उच्च सोने और चांदी के आयात के कारण आयात, 1950–51 से भारत में सबसे ज्यादा व्यापार घाटे का कारण बन गया, जिससे सकल घरेलू उत्पाद का 4.2% के उच्च चालू खाता घाटा (सीएडी) में योगदान दिया गया। 2012–13 (अप्रैल–जनवरी) के लिए यूएस + 167.2 बिलियन का व्यापार घाटा वर्ष 2011–12 (अप्रैल–जनवरी) में यूएस + 154.9 अरब से 7.9% अधिक था। 2011–12 में पीओएल के आयात में 46.2% की वृद्धि हुई जबकि पीओएल का निर्यात 34% कम था क्योंकि पीओएल के निर्यात में 3.8% की कमी थी, जिसके परिणामस्वरूप शुद्ध पीओएल आयात 2011–12 में 99.3 अरब डॉलर हो गया। 2012–13 (अप्रैल–नवंबर) में, हालांकि पीओएल के आयात की वृद्धि 11.7% तक कम हो गई, पीओएल का निर्यात बढ़कर 7.3% था, जो पीओएल के निर्यात में 0.9: की गिरावट के कारण भी था। नतीजतन, कुल आयात में शुद्ध पीओएल का आयात 2012–13 (अप्रैल–नवंबर) में बढ़कर 23.5% हो गया, जो 2011–12 में (पूरे वर्ष) 20.3% था।

23.8 सेवाओं में वैश्विक व्यापार

विश्व मर्चेंडाइज व्यापार की तरह, 2008 के वैश्विक संकट से बुरी तरह प्रभावित विश्व व्यापार सेवाए दो साल के अंतराल के बाद 2011 में पूर्व संकट स्तर

पार कर 4.17 खरब डॉलर पहुंच गई। व्यावसायिक सेवाओं की निर्यात की वृद्धि दर जो 2000–05 में 11% थी और 2009 में 12% थी, ने 2011 में फिर से 11% तक पहुंचने के लिए एक मोड़ लिया है। विश्व व्यापार संगठन के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सांख्यिकी के मुताबिक, यूरोप 2010 में व्यावसायिक सेवाओं के निर्यात में 4% वृद्धि हुई, जो 2011 में 11% थी, जबकि उत्तर अमेरिका ने 9% की समान वृद्धि दर बनाए रखी।

स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रमंडल (सीआईएस) सबसे गतिशील क्षेत्र था, इसके बाद दक्षिण और मध्य अमेरिका ने 2010 में क्रमशः 19% और 13% वृद्धि दर्ज की। परिवहन और अन्य वाणिज्यिक सेवाओं में धीमी वृद्धि के कारण 2010 में एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि दर 23% थी जो 2011 में घटकर 11% हो गई थी। वाणिज्यिक सेवाओं की सभी तीन श्रेणियां, अर्थात् परिवहन, यात्रा, और अन्य वाणिज्यिक सेवाओं 2011 में काफी अच्छी वृद्धि दर्ज की गई।

2012 में, सेवा व्यापार की वृद्धि कम हो गई है क्योंकि विश्व व्यापार संगठन की पहली तिमाही से 2012 के तीसरे तिमाही के आंकड़ों के मुकाबले यह स्पष्ट हो गया है कि निर्यात और आयात की वृद्धि वर्ष 2012 की दूसरी तिमाही में शून्य और 1% और फ3 में –2% और –1% थी। 2012 पिछले वर्ष की इसी अवधि के दौरान निर्यात और आयात दोनों में यूरोप का एक बहुत ही उच्च नकारात्मक विकास –7% था।

23.9 विश्व व्यापार संगठन के समझौते और भारत

2001 में शुरू हुई विश्व व्यापार संगठन में व्यापार वार्ता के दोहा दौर विभिन्न मुद्दों पर सदस्यों के बीच मतभेदों के कारण अधूरा रह गया है। दिसंबर 2011 में जिनेवा में आयोजित विश्व व्यापार संगठन की आठवीं बैठक में शामिल मुद्दों को हल करने के लिए सदस्यों को राजनीतिक मार्गदर्शन प्रदान किया गया था। हालांकि, 2012 में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई थी। भारत का मानना है कि वार्ता के किसी भी प्रारंभिक परिणाम को विकासशील देशों, विशेषकर कम से कम विकसित देशों (एलडीसी) और छोटे कमजोर अर्थव्यवस्थाओं (एसवीई) के लिए ब्याज के मुद्दों पर ध्यान देना चाहिए। व्यापार सुविधा पर एक ड्राफ्ट कंसोलिडेटेड नेगोशीटिंग टेक्स्ट डब्ल्यूटीओ के सदस्यों द्वारा 14 दिसंबर 2009 को किया गया था। ड्राफ्ट अध्याय को ट्रेड सुविधा (एनजीटीएफ) पर वार्ता समूह की बैठकों में चर्चा के माध्यम से चौदह बार (दिसंबर 2012 तक) संशोधित किया गया है।

भारत सक्रिय रूप से इन वार्ताओं में व्यस्त रहा है और "कस्टम कॉरपोरेशन", "रैपिड अलर्ट सिस्टम ऑफ़ कस्टम्स यूनियन" और "अपील तंत्र" पर कुछ प्रस्ताव पेश किए हैं। मसौदा में, आंतरिक संतुलन का अभाव है विकसित देशों ने अपने खुद के देशों के कानूनों और प्रक्रियाओं को बेंचमार्क के रूप में पकड़ रखा है और विकासशील देशों को उन्हें दोहराना चाहते हैं। विकासशील देशों ने बड़े पैमाने पर बातचीत में एक रक्षात्मक दृष्टिकोण अपना लिया है। विकसित देशों और कुछ विकासशील देशों, एमसी 9 के लिए समय के लिए, जल्दी परिणाम के लिए 'व्यापार सुविधा' सफल करने के प्रयास कर रहे हैं। अधिकांश विकासशील देशों के साथ भारत बाजार की पहुंच और व्यापार सुविधा के मुद्दे को विकास संबंधी मुद्दों जैसे कि ड्यूटी फ्री कोटा, एलडीसी के लिए मुफ्त

बाजार पहुंच और कपास सब्सिडी को कम करने के लिए रूपरेखाओं की स्वीकृति के साथ संतुलित होना चाहता है। भारत के 46 विकासशील देशों के गठबंधन वाले देशों के जी 33 समूह ने 16 नवंबर, 2012 को विश्व व्यापार संगठन में खाद्य सुरक्षा पर एक प्रस्ताव पेश किया है। यह प्रस्ताव कृषि के लिए विश्व व्यापार संगठन समझौते के कुछ प्रावधानों में संशोधन के लिए है विकासशील देशों को खाद्य सुरक्षा उद्देश्यों के लिए अपने सार्वजनिक स्टॉकहोल्डिंग ऑपरेशंस में अधिक लचीलापन भारत के लिए खाद्य सुरक्षा का मुद्दा बहुत महत्वपूर्ण है और एमसी 9 के लिए किसी भी पैकेज सौदे में जी 33 प्रस्ताव को स्वीकृति के द्वारा व्यापार सुलभता मोर्चे पर किसी भी रियायत को संतुलित करना जरूरी है।

चालू वर्ष के दौरान, विश्व व्यापार संगठन के सूचना प्रौद्योगिकी समझौते (आईटीए) के कुछ विकसित देश सदस्य संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान ने आईटी उत्पादों की कवरेज बढ़ाने के लिए समझौते (विस्तारित आईटीए –2) प्रस्तावित किया है, जिस पर सीमा शुल्क शून्य पर बाध्य होगा, गैर–टैरिफ उपायों को संबोधित करेगा, और हस्ताक्षरकर्ता देशों की संख्या का विस्तार अर्जेंटीना, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका जैसे नए हस्ताक्षरकर्ताओं को शामिल करने के लिए आईटीए विस्तार के समर्थकों ने लगभग 350 आईटी उत्पादों (आईटीए –2 के सभी समर्थकों के लिए ब्याज के उत्पादों का संयोजन) युक्त एक समेकित सूची तैयार की है, जिस पर टैरिफ में कमी की मांग की जा रही है। यह विश्व व्यापार संगठन में सक्रिय चर्चा के तहत है और भारत ध्यान से प्रस्ताव की जांच कर रहा है।

सेवाओं में वार्ता मुख्य रूप से बहुपक्षीय प्रारूप में जारी रही है। 2009, 2010, और 2011 के पहले छमाही तक गहन बातचीत आयोजित की गई। अप्रैल 2011 में इन प्रयासों में सेवाओं में व्यापार पर समिति के अध्यक्ष द्वारा विशेष रिपोर्ट (सीटीएस–एसएस) और सीटीएस के तहत सभी सहायक निकायों की एक रिपोर्ट में समझा गया। अध्यक्ष की रिपोर्ट में दो विचार सामने आए हैं। विकसित देशों का यह मानना है कि बाज़ार पहुंच पर और प्रगति में स्वायत्त उदारीकरण की बाध्यता शामिल हो सकती है, जहां वाणिज्यिक उपस्थिति मोड के तहत पहुंच के संभावित स्तर, अर्थात, मोड 3 (विदेशी इक्विटी भागीदारी और वाणिज्यिक उपस्थिति के रूपों पर प्रतिबंध) शामिल हैं। साथ ही मोड 4 (प्राकृतिक व्यक्तियों की मौजूदगी) में एक मजबूत और संतोषजनक परिणाम के रूप में। विकासशील देशों का विचार यह है कि बाज़ार पहुंच वार्ता में असंतुलन है, जैसा कि इस तथ्य से यह साबित होता है कि विकासशील देशों के लचीलेपन को अन्य सदस्यों के अनुरोधों पर ध्यान नहीं दिया गया है, विकासशील देशों के लिए निर्यात ब्याज के क्षेत्र पूरी तरह से प्रभावित नहीं हैं विकसित सदस्यों की पेशकश; विकासशील देशों ने पहले से दोहा दौर में महत्वपूर्ण योगदान दिया है; और कुछ बहुपक्षीय अनुरोध और हाल के प्रस्तावों ने हांगकांग मंत्रिस्तरीय घोषणा के अनुलग्नक सी में सहमति व्यक्त किए जाने से परे जाने वाली महत्वाकांक्षा के स्तर को शामिल किया है। भारत ने पहले से ही अपने संशोधित प्रस्ताव में काफी सुधार किया है (उरुग्वे दौर में 37 उप–वर्गों से संशोधित प्रस्ताव में 95)। कुछ प्रमुख विकसित देशों के सदस्यों ने उनके मोड 4 ऑफ़र में शून्य या छोटे आंदोलन दिखाए हैं, जो हमारे हित का क्षेत्र है।

23.10 द्विपक्षीय और क्षेत्रीय सहयोग

हालांकि भारत हमेशा एक खुले, न्यायसंगत, पूर्वानुमानित और नियम आधारित बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली (एमटीएस) के लिए खड़ा था, लेकिन यह हाल के वर्षों में क्षेत्रीय व्यापार व्यवस्था (आरटीए) के साथ सक्रिय करने के लिए 'बिल्डिंग ब्लॉक्स' के रूप में कार्य करने के लिए सक्रिय रहा है। व्यापार उदारीकरण और एमटीएस का पूरक अब तक, भारत ने 10 मुक्त व्यापार समझौतों (एफटीए) और 5 अधिमान्य व्यापार समझौतों (पीटीए) पर हस्ताक्षर किए हैं और इन एफटीए/पीटीए पहले से ही लागू हैं। इसके अलावा, भारत वर्तमान में 17 एफटीए के साथ बातचीत कर रहा है, जिसमें मौजूदा कुछ लोगों की समीक्षा/विस्तार शामिल है। वर्तमान स्थिति में जब विश्व व्यापार संगठन की वार्ता स्थगित हो गई है, विश्व व्यापार धीमा हो गया है, और संरक्षणवादी उपायों की छाया बड़ी है, क्षेत्रीय प्रक्रिया के माध्यम से प्रौद्योगिकी की गहन निर्यात में विविधता लाने की एक रणनीति व्यापार उदारीकरण के साथ आगे व्यापार को बढ़ावा दे सकती है।

23.11 चुनौतियां और दृष्टिकोण

23.11.1 दृष्टिकोण

विश्व व्यापार और भारत के व्यापार की संभावनाएं अनिश्चित हैं। हालांकि, विश्व व्यापार की मजबूती के लिए बाल्टिक ड्राई इंडेक्स (बीडीआई) का एक अच्छा प्रॉक्सी हैं , जो 19 मई 2008 को 11709 के अपने चरम सूचकांक (पिछले पांच वर्षों में) से गिरने लगे और जिसमे आधा भी सुधार नहीं हुआ है। हाल के महीनों में नवंबर–दिसंबर 2012 में की गई वसूली जैसे बीडीआई में वसूली के छोटे–मोटे कामों की तुलना किसी भी तरह से 2008 के उच्चतम बिंदु से नहीं की जा सकती है। यहां तक कि यह तेजी कम समय तक चलने में सफल रही है, जनवरी 2013 की शुरुआत में गिरावट के कारण 2 जनवरी, 2013 को 698 तक सूचकांक पहुंचने के कारण यह बीडीआई के मौजूदा स्तर 792 (28.1.2013) के मुकाबले एक मामूली सुधार हो गया है।

इससे यह भी पता चलता है कि भारत के मर्कैंडाइज व्यापार और शिपिंग सेवाओं के लिए दृष्टिकोण, जो सीधे मर्कैंडाइज व्यापार पर निर्भर हैं, अभी भी अनिश्चित हैं। पिछले कुछ महीनों में अमेरिका, हांगकांग, सिंगापुर और चीन जैसे कुछ व्यापारिक भागीदारों जैसे आयात वृद्धि दर में कुछ वृद्धि हुई हैं, जैसा कि पहले कहा गया था, हालिया महीनों में भारत से उनकी आयात वृद्धि दर पर एक मिश्रित तस्वीर दिखती है। जबकि 2012 में अमेरिका और जापान से भारत में आयात क्रमशः 12.6% और 1.8% 2012 (जनवरी–नवंबर) में बढ़ गया, चीन और चीन हांगकांग का आयात क्रमशः 2012 में 19.6% और 17.9% घटकर क्रमशः 2012 (पूर्ण वर्ष) और सिंगापुर भारत से आयात 2012 (जनवरी–नवंबर) में 8.3% तक गिर गया।

सोना आयात में कमी के बावजूद आयात को सीमित किया जा सकता है (सरकार द्वारा उठाए गए नीतिगत उपायों के परिणामस्वरूप), जैसा कि अंतरराष्ट्रीय सोने की कीमतें अभी भी उच्च हैं और तेल की कीमत 110 अमेरिकी डॉलर प्रति बैरल के आसपास हो रही है। वैश्विक विकास और व्यापार के संबंध में सेवा निर्यात वृद्धि समान रूप से निर्भर है, वैश्विक संकट की अवधि के बाद बहुत

ही अनिश्चितता रही है। दूसरी ओर, अगर सेवाओं का आयात बढ़ता जा रहा है और सेवाओं में व्यापार का सकारात्मक संतुलन 2012–13 की पहली छमाही में गिरावट जारी है, तो व्यापार घाटे को कम करने के लिए उपलब्ध कुशन सीमित होगा।

23.11.2 चुनौतियां

व्यापार के मोर्चे पर भारत के लिए चुनौतियां कई हैं हालांकि भारत ने अपने निर्यात को सफलतापूर्वक विविधता प्रदान की है, लेकिन उत्पाद विविधीकरण के मोर्चे पर अधिक काम किये जाने की जरूरत है। इसे खुद को ताकतवर करके पारंपरिक क्षेत्रों में बदलाव करना पड़ेगा जैसे कपड़ा और चमड़े और चमड़े के विनिर्माण क्षेत्र जहां साख में कमी आयी है, जबकि एक ही समय में नए क्षेत्रों में प्रस्ताव बनाते हैं। बहुपक्षीय व्यापार वार्ता के साथ रुका हुआ है, और वृद्धि पर आरटीए, भारत को एक रणनीतिक क्षेत्रीय व्यापार नीति का भी पालन करना होगा जो अधिक महत्वपूर्ण आरटीए में संभावित तकनीकी–गहन वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। हालांकि भू–राजनीतिक विचार महत्वपूर्ण हैं, इसलिए भारत को अपने क्षेत्रीय व्यापार वार्ता में अधिक सौदा करना पड़ सकता है, खासकर ऐसे मामलों में जहां आबादी के बड़े इलाकों की आजीविका शामिल है, इसमें इलेक्ट्रॉनिक्स, कपड़ा, और कुछ एफटीए / आरटीए के कारण रसायनों और कृत्रिम उलटी हुई कर्तव्य संरचना सेवाओं के मोर्चे पर, स्वास्थ्य पर्यटन सहित पर्यटन जैसे क्षेत्रों में अवसरों की एक स्वर्ण खदान दोहन के लिए इंतजार कर रही है। हाल ही में वैश्विक मंदी ने भारत के लिए नई चुनौतियां दी हैं, क्योंकि पिछले साल के कुछ महीनों में 50% से अधिक की उच्च विकास दर की तुलना में मई 2012 के बाद से निर्यात लगातार नकारात्मक रहा है। सरकार के लिए उपलब्ध सीमित वित्तीय स्थान और व्यापार भागीदारों के संरक्षणवादी उपायों के साथ बढ़ते हुए संकेतों के साथ, नीतिगत विकल्प सूक्ष्म स्तर पर अधिक हैं। इस प्रकार कई सूक्ष्म, बंदरगाह–विशिष्ट और क्षेत्र–विशिष्ट समस्याएं हैं जिनके लिए तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता होती है। ये बुनियादी ढांचे, व्यापार सुविधा, कर और टैरिफ, और क्रेडिट से संबंधित हैं, और वास्तविक और लघु और मध्यम अवधि में ध्यान दिया जा सकता है। इन मुद्दों को ध्यान देते हुए, जैसा कि वर्तमान में सरकार द्वारा किया जाता है, भारत के निर्यात विकास को तेजी से बढ़ाया जा सकता है

23.12 सारांश

भारत की पिछले दशक की बड़ी कहानी वैश्विक परिदृश्य पर पहुंच गई है। 1980 के दशक की शुरुआत से भारतीय अर्थव्यवस्था ने कम वृद्धि वाले जाल से खुद को मुक्त किया था 1990 के दशक के मध्य तक, 1991–93 के आर्थिक सुधारों के बाद, भारत ने खुद को वैश्विक अर्थव्यवस्था में कुछ महत्व पूर्ण के खिलाड़ी के रूप में पेश करना शुरू किया। इसके बाद, 1990 के दशक के पूर्व एशियाई संकट के बाद, और 21 वीं सदी के पहले दशक के पहले वर्षों से वापस नहीं देखा। भारत का निर्यात बढ़ना शुरू हुआ, उसके विदेशी मुद्रा भंडार, जो दशकों से लगभग 5 अरब डॉलर तक रहने लगा था, आर्थिक सुधारों के बाद तेजी से बढ़ गया और एक दशक से भी कम 300 अरब डॉलर तक बढ़ गया। भारतीय निगम जो कि शायद ही कभी भारत से बाहर निकले थे, अचानक सारी दुनिया में

और कुछ औद्योगिक देशों में भी निवेश कर रहे थे। जब 2009 में, जी –20 के नेताओं के लिए एक मंच स्तर पर उठाया गया था, भारत इस वैश्विक नीति समूह का एक महत्वपूर्ण सदस्य था।

वैश्विक आर्थिक संकट के बाद दो साल में सुधार के बाद, माल और सेवाओं दोनों में विश्व व्यापार 2011 में पूर्व संकट स्तर तक पहुंच गया और इससे आगे निकल गया। हालांकि, 2012 में वैश्विक विकास और व्यापार में गिरावट और वैश्विक विकास में केवल एक क्रमिक सुधार का पूर्वानुमान अंतरराष्ट्रीय संस्थानों द्वारा विश्व व्यापार के लिए एक कमजोर और धीमी वसूली का संदेश दिया है। भारत का निर्यात, जो वर्ष 2010–11 में एक वर्ष के भीतर पूर्व संकट स्तर को पार कर गया था, रिकॉर्ड 40.5% वृद्धि के साथ, 2011–12 में भी बढ़ रहा था, लेकिन अंत में 2012–13 में वैश्विक मंदी से प्रभावित हुए थे क्योंकि 2009–10 के संकटग्रस्त वर्ष के दौरान दर्ज किए गए –3.5% की तुलना में पहले दस महीनों में –4.9%निर्यात में गिरावट आई थी।

23.13 शब्दावली

अंतर्राष्ट्रीय व्यापारः देश की सीमाओं के पार होने वाले वाणिज्यिक लेनदेन।
क्षेत्रीय सहयोगः एक ही क्षेत्र के राज्यों द्वारा दर्ज क्षेत्रीय नियमों और संस्थानों के माध्यम से सहयोग बढ़ाने की एक व्यवस्था ।

23.14 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. यह आशंका है कि 2008 के ....के बाद शुरू हुई वैश्विक आर्थिक सुधार की प्रक्रिया की धीमी शुरुआत हो रही है और यूरोजोन क्षेत्र में संप्रभु ऋण संकट थोड़ी देर के लिए जारी रह सकता है।
2. दिसंबर 2011 में .... में आयोजित विश्व व्यापार संगठन की आठवीं बैठक में शामिल मुद्दों को हल करने के लिए सदस्यों को राजनीतिक मार्गदर्शन प्रदान किया गया था।
3. सेवाओं में वार्ता मुख्य रूप से .... प्रारूप में जारी रही है।

23.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वित्तीय संकट 2. जिनेवा 3. बहुपक्षीय

23.16 स्वपरख प्रश्न

1. अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण से आपका क्या आशय है? इसके बारे में बताएं।
2. वैश्विक अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति के बारे में लिखिए।
3. वैश्विक व्यापार के मद्देनजर भारत के मर्केंडाइज़ व्यापार को समझाओ।
4. भारत के निर्यात–आयात के विकास के बारे में एक संक्षिप्त जानकारी दें।
5. डब्ल्यूटीओ वार्ता भारतीय अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करती है? चर्चा करें।
6. द्विपक्षीय और क्षेत्रीय सहयोग से आप क्या समझते हैं? विस्तृत वर्णन करें।
7. भारतीय अर्थव्यवस्था से पहले विभिन्न चुनौतियों और संभावनाओं का वर्णन करें।

23.17 संदर्भ पुस्तकें

1. Mittal, Vivek (2011). Business Environment-Text and Cases. New Delhi: Excel Books.
2. Paul, Justin (2008). International Business. PHI Learning Private Limited.
3. http://indiabudget.nic.in/
4. Charles Hill, "International Business", New Delhi: TataMcGraw-Hill.
5. Daniels, John and Lee Radebaugh (2005), "International Business", New Delhi: Pearson Education.
6. Porter, Michael E. (1990), "The Competitive Advantage of Nations", New York: Free Press.

इकाई 24 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

24.1 प्रस्तावना
24.2 बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणाली का अर्थ
24.3 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणाली
24.4 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के सिद्धान्त
24.5 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली तथा वैश्विक प्रशासन
24.6 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली एवं विश्व व्यापार संगठन
24.7 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के समर्थन में वक्तव्य तथा विश्व व्यापार संगठन का नवॉ मंत्री स्तरीय सम्मेलन
24.8 वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली
24.9 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के लाभ
24.10 भारत में बहुपक्षीय व्यापार समझौते
24.11 सारांश
24.12 शब्दावली
24.13 बोध प्रश्न
24.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
24.15 स्वपरख प्रश्न
24.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली की अवधारणा को अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में समझ सकें।
- बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के विभिन्न नियमों व अधिनियमों को समझ सकें।
- राष्ट्रों के मध्य बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के महत्व को समझ सकें।
- बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के लाभों की जानकारी प्राप्त सकें।

24.1 प्रस्तावना

बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के अन्तिम, आठवें, तथा इन समझौतों की श्रृंखला में से सर्वाधिक महत्वाकांक्षी उरुग्वे चक्र का 15 अप्रेल 1994 को माराकाश, मोरक्को में हस्ताक्षर के साथ समापन हुआ जिसमें समस्त बहुपक्षीय तथा विविध पक्षीय समझौतों को सम्मिलित किया गया है। पहला चक्र, जो 1947 में जेनेवा में सम्पन्न हुआ, के परिणामस्वरूप प्रशुल्क तथा व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट समझौता) आकार में आया। उरुग्वे चक्र समझौते में सेवा, बौद्धिक सम्पदा अधिकार के व्यापार सम्बन्धी पहलुओं तथा निवेश उपायों से सम्बन्धित व्यापार से सम्बन्धित बहुपक्षीय नियमों तथा विषयों को सम्मिलित किया गया। इसके द्वारा कृषि तथा वस्त्र के व्यापार को पुनः गैट की परिधि में लाया गया। अन्तिम मसौदे में ''सदस्यों के मध्य व्यापार सम्बन्धी (उरुग्वे चक्र) समझौतों के सम्बन्ध में व्यापार सम्बन्धों का निर्वहन करने हेतु सामान्य संस्थागत ढॉचा तैयार करने हेतु'' विश्व व्यापार संगठन के रूप में एक औपचारिक संगठन की स्थापना को सम्मिलित किया गया। उरुग्वे

चक्र में प्रतिभागी कुल 124 सरकारों तथा यूरोपियन समुदायों के प्रतिनिधि मंत्रियों ने अन्तिम मसौदे पर अपनी घोषणा में हस्ताक्षर करते समय यह पुनःपुष्ट किया कि ''विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) की स्थापना वैश्विक आर्थिक सहयोग के एक नये युग का आरम्भ करेगी जो अपनी जनता के हित तथा कल्याण के लिए उचित तथा अधिक मुक्त बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणाली के संचालन की व्यापक अभिलाषा को प्रतिबिम्बित करेगी।''

24.2 बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणाली का अर्थ

बहुपक्षीय व्यापार एक ऐसी व्यापार प्रणाली है जो विभिन्न पक्षों के मध्य वित्तीय उपकरणों के विनिमय को सुगम बनाता है। यह अनुबन्ध के अर्ह प्रतिभागियों को विविध प्रतिभूतियों, विशेषतः वे जिनका कोई आधिकारिक बाजार न हो, को एकत्रित करने तथा स्थानांतरित करने की अनुमति प्रदान करती है। यह सुविधाएं प्रायः इलैक्ट्रोनिक प्रणाली होती हैं जो अधिकृत बाजार संचालकों तथा बड़े निवेश बैंकों से नियंत्रित होती हैं। व्यापारी प्रायः अपने आदेश इलैक्ट्रोनिक माध्यम से देते हैं जहॉं समान सॉफ्टवेयर इंजन का उपयोग क्रेता तथा विक्रेताओं को मिलाने के लिए उपयोग होता है।

24.3 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणाली

प्रशुल्क तथा व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट) की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि इसने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपजी एकल ध्रुवीय प्रणाली को बहु ध्रुवीय व्यापार प्रणाली बना दिया। गैट के प्रारम्भिक दशकों को संयुक्त राज्य के आत्म हित से ओतप्रोत काल माना जा सकता है जिसमें संयुक्त राज्य ने पश्चिम यूरोप की युद्ध प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निमाण के लिए व्यापार बाधाओं के व्यापक उदारीकरण के साथ ही उन्हें विकास हेतु उदारतापूर्ण सहायता द्वारा संयुक्त राज्य के बाजार को संरक्षित किया तथा इस प्रकार प्रजातन्त्रीय प्रशासन के लिए स्थिर आधार तैयार किया और सोवियत विस्तारवाद के विरुद्ध भरोसेमन्द प्रतिरोध तैयार किया। युद्धोत्तर काल के प्रारम्भिक दशक में संयुक्त राज्य की व्यापार नीतियॉं इसके पूर्व सैनिक शत्रुओं के प्रति उदार थीं तथा उभरते हुए यूरोपीय समुदाय को सहयोग प्रदान करती रहीं। इसी प्रकार, गैट में संयुक्त राज्य तथा यूरोपीय नीति विकासशील देशों के प्रति उदार थी तथा उनके बाजारों में बाधाओं को घटाने के वचन के बिना ही व्यापार प्रणाली को अपनाने की आज्ञा प्रदान करती थी। संयुक्त राज्य तथा यूरोपीय व्यापार बाधाऐं गैट के आठवें चक्र के बाद, केवल कुछ महत्वपूर्ण व्यापार प्रतिबन्धों को छोड़कर जो सुरक्षित घरेलू हित समूहों को लाभ प्रदान करते हैं, तेजी से नीचे आयीं। कृषि इस सुधार आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण अपवाद था तथा वस्त्र तथा सम्बन्धी व्यापार को तीव्र कटौतियों से बचाया गया जब तक कि सन् 2005 में कोटा प्रणाली का उन्मूलन हुआ। किन्तु गैट के भोजनालय में मुफ्त में भोजन नामक कोई चीज नहीं होती। पारस्परिक समझौतों (कम से कम उरुग्वे चक्र तक) में सम्मिलित न होने की कीमत काफी अधिक थी। गैट चक्रों में औद्योगिक देशों द्वारा लगाए गये प्रमुख प्रतिबन्धों को, जिन्होंने विकासशील देशों के लिए कृषि तथा निर्मित वस्तुओं के निर्यात को सीमित किया हुआ था, यथावत रखा।

इस प्रकार, विकासशील देशों ने अपना बाजार सुरक्षित किया किन्तु बदले में उन्हें अपने सबसे प्रतिस्पर्धी निर्यातों के विरुद्ध उच्च विदेशी व्यापार प्रतिबन्धों को स्वीकार करना पड़ा। यद्यपि इस प्रकार की नीतियों को कभी भी कोई उच्च आर्थिक प्रतिफल नहीं मिला, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से ये सुविधाजनक हैं। अनेक विकासशील देशों ने अच्छी संवृद्धि के लिए संरक्षित घरेलू बाजार तथा उत्पादित निर्यातों पर विश्वास व्यक्त किया, कुछ ने निर्यातोन्मुखी वृद्धि की रणनीति को अपनाया तथा हल्के उत्पादों के संयोजन व निर्यात के मंच बन गये। उनकी इस सफलता ने विकसित बाजारों में तथाकथित स्वैच्छिक निर्यात प्रतिबन्धों, राशिपातनरोध तथा प्रतिकारी शुल्कों तथा बहुरेशीय प्रबन्ध जैसे विशिष्ट संरक्षण काल के रूप में संरक्षणवाद की एक लहर चल पड़ी।

उरुग्वे चक्र (1986—1994) सभी सदस्यों से सभी मामलों के लिए एकल वचनपत्र लेने के कारण इस पद्धति से विचलित हो गया। इस प्रक्रियात्मक नियम ने सौदेबाजी के पुराने गतिमानों को नाटकीय ढंग से पलट दिया। विकासशील देश अब पूर्व चक्रों की भॉति मुक्त सवार नहीं बन सकते थे। उरुग्वे चक्र के मध्य में व्यापार प्रणाली को मजबूत बनाने के लिए नये विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के एक अतिरिक्त प्रस्ताव ने एकल वचन पत्र के महत्व को रेखांकित किया। तभी विकासशील देशों को नए विश्व व्यापार संगठन में सदस्यता हेतु अर्ह होने के लिए उरुग्वे चक्र में वर्णित सभी शर्तों (यद्यपि कुछ विशिष्ट तथा भिन्न उपाय अपनाये जा सकते हैं) को स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा। उरुग्वे चक्र समझौतों को 'न' कहना अब कोई विकल्प नहीं था क्योंकि सभी बड़ी व्यापारिक शक्तियॉ नई व्यवस्था को स्वीकार कर रही थीं। परिवर्तित संस्थाओं ने विकासशील देशों को एक अलग एवं हानिप्रद स्थिति में रख दिया तथा यह समझाया कि क्यों उन्हें कुछ क्षेत्रों (यथा—बौद्धिक सम्पदा) में वचनबद्ध होना होगा जिन्हें पूर्णतः क्रियान्वित तथा लागू नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, विश्व व्यापार संगठन का जन्म एक 'विकास घाटे' के रूप में हुआ जिसके अनेक जन्मगत विकारों को विश्व व्यापार संगठन के सम्बन्ध में प्रारम्भिक मूल्यांकनों में विश्लेषित किया गया। उल्लेखनीय है कि वर्तमान विश्व व्यापार संगठन समझौतों में एक ही वचनपत्र से विकासशील देशों को कुछ ऐसे प्रोत्साहन मिलते हैं जिससे उनके अपने निर्यात हितों को बढ़ावा मिलता है— यदि संयुक्त राज्य तथा यूरोपीय संघ के अधिकारी उनकी वरीय मॉगों को पूर्ण नहीं करते हैं तो वे दोहा चक्र को समाप्ति से बचा सकते हैं। उरुग्वे चक्र के एकदम विपरीत केवल एक वचनपत्र के आधार पर विकासशील देश अनेक शक्तियों में से एक ऐसी शक्ति प्राप्त करते है जिसका भय, यदि उपयोग न किया जाये, काफी महत्वपूर्ण होता है।

24.4 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के सिद्धान्त

विश्व व्यापार संगठन के अनुसार बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणाली निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित होती है—

(अ) भेदभाव रहित व्यापार

(ब) बन्धनमुक्त व्यापार

(स) बाध्यकारी तथा पारदर्शिता के साथ पूर्वानुमानयोग्यता

(द) प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन

(ई) विकास व आर्थिक सुधारों को प्रोत्साहन

उपरोक्त सिद्धान्तों को निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है–

(अ) भेदभाव रहित व्यापार

भेदभावरहित व्यापार के पीछे मुख्य विचार किसी भी व्यापारिक साझेदार को कोई अनुचित लाभ प्राप्त करने अथवा अन्य साझेदारों से अनावश्यक हानि का सामना करने से बचाना था। कभी कभी व्यापारी एक गठबन्धन बना लेते हैं तथा भेदभावपूर्ण व्यापारिक व्यवहार करने लगते हैं। बहुपक्षीय व्यापार एक ऐसी भूमिका का निर्वाह करते हैं जिसमें सभी साझेदारों को समान अवसर प्राप्त होता है तथा व्यापार से समान लाभ प्राप्त होते हैं। यह विचार निम्नलिखित सिद्धान्तों की सहायता से व्यवहार में प्रभावी होता है–

क. सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र (मोस्ट फेवर्ड नेशन– एमएफएन)

ख. राष्ट्रीय उपचार

क. सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र (मोस्ट फेवर्ड नेशन– एमएफएन)

अवसरों की समानता को सुनिश्चित करने के लिए विश्व व्यापार संगठन की संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देश किसी अन्य व्यापारिक साझेदार के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकता अथवा किसी को विशेष पक्ष (जैसे किसी वस्तु के सम्बन्ध में सीमा शुल्क कम करना) नहीं ले सकता। यदि व्यापार के लिए कोई रियायत दिया जाना आवश्यक हो तो विश्व व्यापार संगठन के अन्य सभी सदस्यों को भी वह दी जानी होंगी, न कि केवल कुछ देशों को। इस सिद्धान्त को सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र के सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है। यह इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि यह व्यापार एवं प्रशुल्क पर सामान्य समझौता– गैट, जो कि वस्तुओं में व्यापार को शासित करता है, के प्रथम अनुच्छेद पर रखा गया है। अनुच्छेद 2 के अनुसार एमएफएन सेवाओं में व्यापार (गैट्स) तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकार के व्यापार सम्बन्धी पहलू (ट्रिप्स) के सम्बन्ध में भी प्राथमिकता पर रखा गया है। (अनुच्छेद 4), यद्यपि प्रत्येक समझौते में इस सिद्धान्त को थोड़ा अलग ढंग से रखा गया है। उपरोक्त तीनों समझौते मिलकर विश्व व्यापार संगठन द्वारा संचालित व्यापार के तीनों मुख्य क्षेत्रों को आच्छादित करते हैं।

यद्यपि इस अनुच्छेद के कुछ अपवादों को भी अनुमति प्रदान की गई है। उदाहरण के लिए– देश ऐसे मुक्त व्यापार क्षेत्र बना सकते हैं जिनमें केवल उन वस्तुओं को, जिनका व्यापार केवल समूह के अन्दर किया जाता हो, बाहरी क्षेत्र से वस्तुओं के प्रति भेदभाव के साथ, पारस्परिक व्यापार की अनुमति प्रदान की जा सकती है; अथवा वे विकासशील देशों को अपने बाजार में विशेष पहुॅच प्रदान कर सकती हैं; अथवा कोई देश किसी उत्पाद के विरुद्ध ऐसे अवरोध खड़े कर सकता है जिनका उस राष्ट्र विशेष के साथ अनुचित ढंग से व्यापार किया जाता है; तथा सेवाओं के मामले में सीमित मामलों में देशों को एक सीमा तक भेदभावपूर्ण व्यवहार की अनुमति होती है। किन्तु अनुबन्धों में इन अपवादों की अनुमति अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में ही दी जाती है। सामान्यतः, सर्वाधिक पसन्द के राष्ट्र का आशय है कि जब भी देश व्यापार के अवरोध कम करता है तथा बाजार को अधिक खुला बनाता है तो उस समान वस्तु या सेवा के लिए सभी व्यापारिक साझेदारों के लिए ऐसा ही करना होगा– चाहे वह राष्ट्र अमीर हो या गरीब, कमजोर हो या मजबूत।

ख. राष्ट्रीय उपचार (नेशनल ट्रीटमेन्ट)

सिद्धान्ततः विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों के द्वारा राष्ट्रीयता के आधार पर व्यापारियों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों के द्वारा स्थानीय तथा विदेशियों के लिए समान व्यवहार किया जाना चाहिए। विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों को विदेशियों तथा स्थानीयों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए, यथा– विदेशी तथा स्थानीय वस्तुओं के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए– कम से कम तब अवश्य जबकि विदेशी वस्तु बाजार में प्रवेश कर चुकी हो। व्यवहार में इसका अर्थ है कि विदेशी वस्तुओं को अतिरिक्त रियायतों के कारण किसी प्रकार का समर्थन न हो या अतिरिक्त शुल्कों के कारण हानिप्रद स्थिति का सामना न करना पड़े तथा उन्हें घरेलू वस्तुओं के साथ बाजार की प्रतिस्पर्धा में बराबरी के साथ सम्मिलित होना चाहिए। यही विदेशी तथा घरेलू सेवाओं तथा विदेशी व स्थानीय व्यापार चिन्ह (ट्रेडमार्क), स्वत्वाधिकार (कॉपी राइट), पेटेन्ट आदि के सम्बन्ध में भी लागू होना चाहिए। राष्ट्रीय उपचार (अन्यों से अपने राष्ट्रवालों के समान व्यवहार करना) का यह सिद्धान्त सभी तीन डब्ल्यूटीओ समझौतों (गैट का अनुच्छेद 3, गैट्स का अनुच्छेद 17 तथा ट्रिप्स का अनुच्छेद 3) में पाया जाता है, यद्यपि पुनः प्रत्येक परिस्थिति में इन्हें अलग ढ़ंग से प्रयोग किया गया है।

राष्ट्रीय उपचार का प्रयोग केवल एक बार तभी होता है जबकि वस्तु, सेवा या बौद्धिक सम्पदा की कोई वस्तु बाजार में प्रवेश करती है। अतः आयात पर सीमा शुल्क लिया जाना जबकि स्थानीय वस्तुओं पर समान कर नहीं लगाया जाता है, राष्ट्रीय उपचार का उल्लंघन नहीं है।

(ब) बन्धनमुक्त व्यापार

बहुपक्षीय व्यापार तभी सम्भव है जबकि यह प्रशुल्क तथा गैर प्रशुल्क सम्बन्धी व्यापार बन्धनों से मुक्त हो। व्यापार को, विशेषतः अन्य राष्ट्रों के साथ, प्रतिबन्धित करने के लिए राष्ट्र अवरोधों (जैसे– सीमाशुल्क अथवा प्रशुल्क, आयात प्रतिबन्ध अथवा कोटा जो मात्रा को गुणात्मक आधार पर सीमित करता है) का उपयोग करते हैं। कभी–कभी राष्ट्र कठोर प्रक्रियागत बाधाएं खड़ी करते हैं जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं के राष्ट्रों के बीच प्रवाह पर रुकावट आती है। खुले बाजार लाभदायक हो सकते हैं किन्तु इसके लिए समायोजन की आवश्यकता होती है। बहुपक्षीय समझौतों में राष्ट्रों को विकासशील उदारीकरण द्वारा धीमे धीमे बदलाव लाना चाहिए। यह बातचीत के द्वारा किया जा सकता है जिसमें व्यापार करने वाले राष्ट्र एक दूसरे के विचारों को जान सकते हैं तथा तदुपरान्त मुक्त व्यापार की युक्तियों पर निर्णय ले सकते हैं।

(स) बन्धन एवं पारदर्शिता के द्वारा पूर्वानुमेयता

विदेशी निवेशकों के लिए नीतियों की सततता एक महत्वपूर्ण विषय होता है। जब मल्टी–ब्राण्ड खुदरा बाजार में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) पर काफी शोर–शराबा हो रहा था तब कोई निवेशक इस क्षेत्र में भारत नहीं आ रहा था। इसका प्रमुख कारण भारत सरकार की पूर्वानुमेयता का अभाव है। सरकार में परिवर्तन अथवा यहॉ तक कि विपक्ष अथवा सहयोगी दलों के दबाव के कारण सरकारी नीतियों में परिवर्तन करने पड़ते हैं। इससे निवेशकों के विश्वास में कमी आती है जो कि राष्ट्रीय नीतियों के ढॉचे में स्थिरता की आशा करते हैं तथा दीर्घकालीन दृष्टिकोण रखते हैं। कभी–कभी, व्यापार अवरोध खड़े न करने का

विश्वास दिलाना भी अवरोध कम करने के समान महत्वपूर्ण सिद्ध होता है क्योंकि इस विश्वास से व्यापारियों को भविष्य के अवसरों के प्रति स्पष्ट परिदृष्य प्राप्त होता है। स्थिरता तथा पूर्वानुमेयता के साथ, निवेश प्रोत्साहित होते हैं, रोजगार सृजित होते हैं तथा ग्राहक प्रतिस्पर्धा का लाभ– पसंद तथा कम मूल्य, पूर्णतः उठा पाते हैं। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली सरकार के द्वारा एक प्रयास है जिसके द्वारा व्यापार के पर्यावरण को स्थिर तथा पूर्वानुमेय बनाया जा सकता है।

गत दिनों भारत में वोडाफोन कर विवाद, जेट एतिहाद सौदा के प्रकरण सामने आये, जिस पर सरकार की अनुचित प्रतिक्रिया सामने आयी थी। ये पूर्वानुमेयता की कमी के उदाहरण हैं जो कि बहुपक्षीयता के लिए अनुकूल नहीं है। बहुपक्षीय समझौतों में, यथा विश्व व्यापार संगठन, जब राष्ट्र अपने बाजार को वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए खोलने के लिए सहमत होते हैं, वे अपने वचन से बंधे होते हैं। वस्तुओं के सम्बन्ध में ये बन्धन प्रशुल्क की दरों की उच्चतम सीमा निर्धारित करते हैं। कभी कभी देश आयात पर कर निर्धारित दरों से कम वसूल करते हैं। विकासशील देशों में बहुधा ऐसा होता है। विकसित देशों में वास्तविक दर तथा निर्धारित दर एक समान होती हैं।

कोई देश अपनी निर्धारित सीमाओं को बदल सकता है, किन्तु अपने व्यापार साझेदारों के साथ बातचीत के बाद, जिसका अर्थ है उनके व्यापार के घाटे की प्रतिपूर्ति करना। बहुपक्षीय व्यापार वार्ता के उरुग्वे चक्र की एक उपलब्धि बन्धनकारी वचनों के द्वारा व्यापार की मात्रा में वृद्धि होना है। कृषि के क्षेत्र में अब सभी 100 प्रतिशत उत्पाद प्रशुल्क युक्त हैं। इसका परिणाम होता है व्यापारियों तथा निवेशकों को बाजार सुरक्षा की निरन्तर उच्च दर।

प्रणाली पूर्वानुमेयता तथा स्थिरता में वृद्धि का अन्य रीतियों से भी प्रयास करती है। इनमें से एक कोटा तथा अन्य उपायों के द्वारा आयातों को सीमित करने के प्रयास को हतोत्साहित करना है। कोटा प्रणाली को प्रशासित करना अधिक लालफीताशाही तथा अनुचित व्यवहार के आरोपों की ओर प्रवृत्त करता है। इसके अतिरिक्त देश में व्यापार के नियमों को स्पष्ट तथा सार्वजनिक (पारदर्शी) बनाना है। अनेक विश्व व्यापार संगठन समझौतों को सरकार को अपनी नीतियों व व्यवहारों को देश में अथवा विश्व व्यापार संगठन को सूचना द्वारा प्रकट करने की आवश्यकता होती है। व्यापार नीतियों की समीक्षा प्रणाली के माध्यम से राष्ट्रीय व्यापार नीतियों की नियमित निगरानी घरेलू तथा बहुपक्षीय स्तर पर पारदर्शिता बढ़ाने का एक अन्य साधन प्रदान करता है।

(द) उचित प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करना

बहुपक्षीयता के लिए खुले, उचित तथा अविद्रूपित नियमों की एक प्रणाली की आवश्यकता होती है। प्रशुल्क तथा उद्योगों के संरक्षण का कोई अन्य ढंग हो सकता है, किन्तु इनका संचालन उनकी सीमाओं के अन्दर ही होना चाहिए। पूर्ववर्णित अभेदभावपूर्णता के नियम– सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र तथा राष्ट्रीय उपचार का उद्देश्य भी व्यापार की उचित दशाओं को सुनिश्चित करना होता है। इसी प्रकार बहुपक्षीय समझौतों के सदस्यों को राशिपातन (बाजार भाग बढ़ाने के लिए लागत से कम पर निर्यात करना) जैसे अनुचित व्यापार व्यवहारों तथा अनुदानों से बचना चाहिए। राष्ट्रों की निर्णय लेने की प्रक्रिया एक जटिल कार्य है तथा वे राष्ट्रीय हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करते हैं। उनके स्वयं के उचित

अनुचित सम्बन्धी नियम होते हैं विशेषतः कृषि, बौद्धिक सम्पदा, सेवाएं। उचित प्रतिस्पर्धा कुछ विशेष वर्ग के लोगों के लिए काफी कष्टदायक सिद्ध हो सकती है। प्रकरणों के ढॉचे के अन्तर्गत राष्ट्रों को इसप्रकार उचित प्रतिस्पर्धा विकसित करनी चाहिए कि बिना किसी एक व्यापारिक साझेदार को अनुचित लाभ पहुँचाए हुए व्यापार करने वाले साझेदारों में तालमेल बना रहे। उदाहरण के लिए अन्य विभिन्न डब्ल्यूटीओ समझौते कृषि, बौद्धिक सम्पदा व सेवा का सहयोग करने का लक्ष्य रखते है जैसे– सरकार द्वारा खरीद के समझौते (एक बहुपक्षीय समझौता क्योंकि इसे डब्ल्यूटीओ के कुछ ही सदस्यों ने हस्ताक्षरित किया है) विभिन्न देशों में हजारों सरकारी इकाइयों के द्वारा क्रय के नियमों के द्वारा प्रतिस्पर्धा प्रदान करते हैं।

(ई) विकास तथा आर्थिक सुधार को प्रोत्साहित करना

बहुपक्षीय व्यापार केवल तभी सफल हो सकता है जबकि यह आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करे। .बहुपक्षीय व्यापार की उपनिवेशवादी प्रणाली एक देश को गरीब बनाती है तथा दूसरे देश को अमीर बनाती है। ऐसी प्रणाली लम्बे समय तक कार्य नहीं कर सकती तथा दो देशों के बीच व्यापार दोनों के लिए लाभदायक होना चाहिए। इसने आर्थिक विकास की प्रक्रिया में योगदान देना चाहिए। विकासशील देशों की अनेकों समस्याएं हैं तथा उन्हें आर्थिक सुधारों में सहायता की आवश्यकता होती है। एक अच्छे मित्र की भॉति बहुपक्षीय व्यापार समझौते ने भी उन्हें आर्थिक सुधारों को लागू करने में सहायता प्रदान करना चाहिए जो उन्हें मुक्त व्यापार की ओर प्रवृत्त करेगा। सन् 1991 में, भारत ने आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की तथा बहुपक्षीय व्यापार को प्रोत्साहित करने वाली संस्थाओं यथा– अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ), विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) आदि ने इनके अनुपालन में सहायता प्रदान की। आर्थिक उदारीकरण के दो दशक बाद व्यापार में तीव्र संवृद्धि देखी गई है तथा हमने सकल घरेलू उत्पाद की दर दो अंकों में भी देखी है। बहुपक्षीय व्यापार ने भारत के आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान किया है।

24.5 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली तथा वैश्विक प्रशासन

वैश्विक प्रशासन इस बात की व्याख्या है कि किस प्रकार वैश्विक नियमों को एक साथ रखा जा सकता है तथा लागू किया जा सकता है। बाजारों के वैश्वीकरण ने वैश्विक संस्थाओं तथा बाजार शक्तियों को उचित आकार देने वाली प्रणाली के परिणामों, जिनकी आवश्यकता हमारे समाज के मूल्यों पर आधारित हो, की तुलना में अधिक तीव्रता से वृद्धि की है। जब प्रशासन की संस्थाओं पर ध्यान देते हैं तो उन्हें तीन कार्यों का समन्वय करना होता है– मूल्य (मूल्यों का समूह जिसे शासितों द्वारा साझा किया जाये, आसानी से परिभाषित किया जा सके किन्तु विशेषतः वैश्विक स्तर पर महसूस न किया गया हो), क्षमता तथा वैधता।

24.6 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली एवं विश्व व्यापार संगठन

विश्व व्यापार संगठन विश्व के आर्थिक प्रशासन की प्रणाली का एक स्तम्भ है क्योंकि यह वस्तुओं, सेवाओं तथा निवेशों के रूप में वास्तविक अर्थव्यवस्था के उदारीकरण को लक्षित करता है जिसने वैश्विक संवृद्धि में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। विश्व व्यापार संगठन के नियमों का, विवाद निस्तारण प्रणाली एक उपयुक्त ढॉचा (कुछ लोग इसे अति कठोर कहते हैं) है किन्तु इसकी

नियम बनाने वाली मशीनरी/तंत्र भारी है तथा कभी कभी अव्यवस्थित सी है– सर्वसहमति से प्राप्त निर्णय सामयिक अर्द्धवार्षिक मंत्री स्तरीय बैठकों में प्राप्त होते हैं। वैश्विक प्रशासन प्रणाली के सहायतास्वरूप दोहा (सम्मेलन) ने जो सहायता प्रदान की वह बिना असफल हुए तथा गम्भीर दबाव में भी बिना टूटे हुए थी। एक समय 11 सितम्बर के बाद जब समस्त अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय लगभग निराश भाव से किसी स्पष्ट इशारे की प्रतीक्षा कर रहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली अभी भी कार्य कर रही थी, विश्व व्यापार संगठन के मंत्रालय में 142 विभिन्न हितों वाले देशों को अत्यन्त जटिल मामलों में एकमत कराने के लिए प्रयास किये जा रहे थे। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग, विशेषतः संयुक्त राष्ट्र द्वारा वित्तीयन के मार्च 2002 में मोन्टेरे में तथा इसी वर्ष के अन्त में जोहान्सबर्ग (रियो+10) में निरन्तर विकास पर विश्व सम्मेलन आयोजन के दृष्टिगत, एक शक्तिशाली मंच के निर्माण कर सकता है तथा किया है।

24.7 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के समर्थन में वक्तव्य तथा विश्व व्यापार संगठन का नवॉ मंत्री स्तरीय सम्मेलन

1. व्यापार के लिए उत्तरदायी अपेस मन्त्री जो 20–21 अप्रेल 2013 को सुराबया, इन्डोनेशिया में 19वीं बैंठक कर रहे हैं, को विकास के इंजन, रोजगार सृजन तथा विकास के स्रोत के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व का ज्ञान है। इस प्रकार, वे नियमों पर आधारित, पारदर्शी, भेदभावरहित, खुली तथा समेकित बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को शक्ति प्रदान करने के लिए दृढ हैं तथा विश्व व्यापार संगठन पर आधारित प्रणाली की महत्ता तथा केन्द्रीयता के प्रति पुनःप्रतिज्ञ हैं।
2. वे वैश्विक व्यापारिक पर्यावरण की उभरतीं संभावनाओं तथा चुनौतियों को पहचानते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक प्रणालियों में परिवर्तन हुए हैं तथा अब वे उभरतीं हुई वैश्विक मूल्य श्रंखला से प्रभावित हैं। यह विकास व्यापार, संवृद्धि तथा विविधीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण अवसर प्रस्तुत करता है। फिर भी, वर्ष 2013 के प्रथम त्रैमास में व्यापार वृद्धि के उचित उछाल के उपरान्त भी वैश्विक अर्थव्यवस्था अभी भी संकट में है। आन्तरिक दृष्टि वाली नीतियों के प्रति प्रतिरोध की दृढप्रतिज्ञता कुछ देशों में अभी भी लडखड़ाती हुई है। यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सक्रिय भागीदारी से रोकता है तथा वैश्विक आर्थिक चुनौतियों को बढ़ाता है। इस बिन्दु पर विश्व व्यापार संगठन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
3. सदस्य 2011 में होनोलूलू तथा 2012 में ब्लाडीबोस्टक में स्थैतिकता के द्वारा संरक्षणवाद के विरुद्ध नेताओं द्वारा ली गई शपथ पर दृढता से कायम हैं, जो यह संस्तुत करता है कि वे 2016 तक रहेंगे तथा संरक्षणवाद तथा व्यापार में बाधक उपायों को वापस लिया जायेगा। वे उन उपायों को नियन्त्रित करने के लिए कटिबद्ध रहेंगे जो विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों को लागू करने के लिए आवश्यक माने गये हैं किन्तु वे एक संरक्षणात्मक प्रभाव रखते हैं तथा शीघ्र ही उनके, जहॉ लागू हों, सुधार के उपाय करेंगे। वे संरक्षणवाद की निगरानी सम्बन्धी विश्व व्यापार संगठन तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के कार्यों का समर्थन करते हैं तथा

उनके कार्यों को जारी रखने तथा मजबूती प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

4. एमसी 8 मन्त्रियों ने अनुभव किया कि दोहा चक्र अपरिहार्य है। फिर भी तब तक एमसी 8 की राजनीतिक निर्देशन में अपेस अर्थव्यवस्थाओं तथा डब्ल्यूटीओ के अन्य सदस्यों द्वारा पारदर्शी तथा सहभागिता के सिद्धान्त का सम्मान करते हुए विभिन्न समझौतों की सम्भावना तलाश की जाती रही है।

5. इस सम्बन्ध में विचारों का समागम हो रहा है कि वर्तमान में होने वाले समझौते बाली में 3–6 दिसम्बर 2013 में एमसी–9 के सफल परिणामों की ओर ले जाते हुए प्रतीत नहीं होते। सदस्य समझौतों की कार्यप्रणाली के विषय में चिन्तित हैं तथा डब्ल्यूटीओ के सदस्यों का कार्य को शीघ्रता तथा प्रभावशाली ढंग से पूर्ण करने के लिए गुणवत्ता तथा कार्य के स्तर में परिवर्तन करने हेतु आह्वान करते हैं। वे सभी सदस्यों, विशेषतः बड़े सदस्यों, को इस संज्ञान के साथ आगामी माहों में अन्तर का पाटने के लिए कठिन परिश्रम करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं कि विश्व व्यापार संगठन के समझौता वार्ताओं की व्यवहार्यता कठिन दौर में है। अपेस अर्थव्यवस्थाओं के साथ जो कि विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का आधे से अधिक तथा विश्व के व्यापार का 44 प्रतिशत है, तथा एमसी 9 के प्रकट परिणामों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान करने के अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करते हैं।

6. व्यापार में सहायक समझौता तथा कृषि व विकास के समझौते, एलडीसी के हितों वाले प्रकरणों सहित, को बाली पैकेज में आवृत्त करने के उद्देश्य को साझा करना। इन मामलों पर समझौता वार्ताओं के द्वारा प्रगति को बढ़ाने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई।

7. एमसी 9 का सफलतापूर्ण परिणाम डीडीए वार्ताओं में सम्मिलित अन्य क्षेत्रों के लिए भविष्य की प्रगति का उत्प्रेरक सिद्ध होगा तथा बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में एक नया विश्वास प्रदान करेगा। इस परिणाम की प्राप्ति इस वर्ष सदस्यों के कार्य की प्राथमिकता होनी चाहिए किन्तु यह अन्त नहीं है। हम डीडीए के पूर्ण समापन के लिए बाली पैकेज पर कार्य करने तथा बाली के बाद के डीडीए सम्बन्'धी मामलों को सुलझाने के लिए वार्ता जारी रखने के अपने वचन को दोहराते हैं। ऐसा करते हुए वे दोहा के निर्णयों तथा इसके विकास सम्बन्धी पक्ष का सम्मान करेंगे।

8. अग्रिम प्रगति करते हुए व्यापार के लिए उत्तरदायी अपेस मन्त्री डब्ल्यूटीओ आईटीए के अन्तर्गत उत्पादों का विस्तार करने के लिए वार्ता को तीव्रता से पूर्ण करने के लिए आईटीए प्रतिभागियों से वर्ष के मध्य तक मिलेंगे। आईटीए के विस्तार का अन्तिम परिणाम वाणिज्यिक रूप से महत्वपूर्ण, विश्वसनीय, व्यावहारिक, सन्तुलित तथा गत 16 वर्ष में सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में गतिमान तकनीकी विकास को प्रतिबिम्बित करता हुआ होना चाहिए। ऐसा परिणाम बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को शक्तिशाली बनाने, सम्बन्धों को प्रोत्साहित करने, क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण को सहयोग देने

तथा सभी अपेस अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास को आगे बढाने सहित विभिन्न अपेस उद्देश्यों को पूर्ण करने में सहायक होगा।

24.8 वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली

(अ) विश्व व्यापार 2013 में धीमी गति से बढ़ने की संभावना है

अधिकांश देशों के लिए आर्थिक संवृद्धि तथा रोजगार सृजन एक बडा विषय रहा है। समीक्षा काल में वैश्विक अर्थव्यवस्था विश्वव्यापी तथा जी–20 व्यापार प्रवाह के नकारात्मक परिणामों के कारण संघर्ष कर रही है। 2013 के लिए नवीनतम भविष्यवाणी विश्व व्यापार तथा उत्पादन में 2012 की ही निरन्तरता, धीमी विकास गति तथा ऐतिहासिक स्तर से नीचे तथा औसत, के लिए की गई है। वर्ष 2013 में विश्व व्यापार 3.3 प्रतिशत की दर से वृद्धि होने का अनुमान है। यद्यपि 2012 में 2 प्रतिशत की दर से अधिक है किन्तु यह गत बीस वर्षों के औसत लगभग 5 प्रतिशत से कम है।

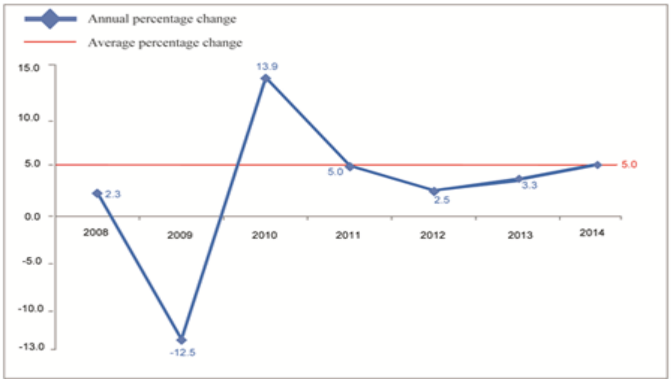

चार्ट 1. विश्व स्तर पर वस्तुओं के व्यापार की मात्रा में 2008–2013 में वृद्धि (वार्षिक प्रतिशत परिवर्तन)

स्रोत– डब्ल्यूटीओ सेक्रेटेरिएट

(ब) कुछ जी–20 अर्थव्यवस्थाएं अभी व्यापार बाधाओं को बनाये हुए हैं

पिछले सात माह में जी–20 देशों द्वारा 100 से अधिक व्यापार अवरोधक उपाय लागू किये गये हैं जिनमें लगभग 0.5 प्रतिशत जी–20 माल आयात, जो कि विश्व के माल आयात का 0.4 प्रतिशत है, सम्मिलित है। इस अवधि में लिए गये सबसे महत्वपूर्ण उपाय व्यापार निवारक उपाय, विशेषतः राशिपातन विरोधी जॉच के संदर्भ में, लागू करना था जिसके बाद प्रशुल्क दरों में वृद्धि की जाती है। यह उल्लिखित करना महत्वपूर्ण है कि वैश्विक मूल्य श्रंखला तथा खण्डित उत्पादन प्रक्रिया के संसार में अब निर्यात आयातों पर पहले से अधिक निर्भर हो गया है। आयातों पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध निश्चित रूप से निर्यातकों के लिए अधिक लागत के रूप में प्रतिबिम्बित होंगे।

उपाय का प्रकार	मध्य मई से मध्य अक्टूबर 10 (5माह)	मध्य अक्टूबर 10 से अप्रेल 11 (6 माह)	मई से मध्य अक्टूबर 11 (6 माह)	मध्य अक्टूबर 11 से मध्य मई 12 (7 माह)	मध्य मई से मध्य अक्टूबर 12 (5माह)	मध्य अक्टूबर 12 से मध्य मई 13 (7माह)
व्यापार उपचार	33	53	44	66	46	67
आयात	14	52	36	39	20	29
निर्यात	4	11	19	11	4	7

अन्य	3	6	9	8	1	6
कुल	54	122	108	124	71	109
औसत प्रति माह	10.8	20.3	18	17.7	14.2	15.6

व्यापार प्रतिबन्धित उपाय

(स) जी–20 नेताओं को अभी बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को सख्ती से लागू करने की आवश्यकता है

कमजोर तथा असमान आर्थिक वसूली तथा निम्न व्यापार संवृद्धि के संदर्भ में यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि जी–20 सरकारें अलगाववादी नीतियों तथा व्यापार को बाधित करने वाले उपायों को, जिनके कारण उनके साझेदारों द्वारा कटु प्रतिक्रिया की जा सकती है, को लागू करने से बचें। इसके स्थान पर उन्हें व्यापार को अधिक मजबूत करने की संभावनाओं को बन्धनमुक्त करने के सकारात्मक कदम उठाने चाहिए जिसके सफल परिणाम आगामी बाली में आयोजित होने वाले मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में सुनिश्चित हो सकें। कृषि एवं विकास के मामलों की श्रृंखला पर समझौते के साथ व्यापार की सुविधाओं का अनुबन्ध एक संकेत प्रदान करेगा कि विश्व व्यापार संगठन 21वीं शताब्दी में व्यापार नियमों को निर्धारित करने वाला एक सुसंगत मंच बना रहेगा।

संरक्षणवाद के खतरे का सामना करने तथा आर्थिक राष्ट्रवाद में आत्मघाती कमियों से बचने के लिए जी–20 अर्थव्यवस्थाओं को अपना ध्यान बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली पर पुनः केन्द्रित करने की आवश्यकता है। व्यापार विश्व अर्थव्यवस्था के लिए अस्थिरता तथा तनाव के स्थान पर एक बार फिर से विकास का इंजन तथा तथा शक्ति का श्रोत बन सकता है। इस अवस्था में विश्व अर्थव्यवस्था को वो सभी सहायता की आवश्यकता है जो उसे मिल सके तथा व्यापार इनमें से एक महत्वपूर्ण तथा व्यवहार्य विकल्प है।

24.9 बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के लाभ

बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1. **मूल्यों में कमीः** बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली उन देशों के मध्य प्रशुल्क की दरों को कम करती है जो कि व्यापार अनुबन्ध का हिस्सा होते हैं। हावर्ड विश्वविद्यालय के अनुसार, प्रशुल्कों में कमी के लिए विश्व व्यापार संगठन को क्षेत्रीय व्यापार अनुबन्धों की आवश्यकता होती है किन्तु यह उन देशों के लिए भी प्रशुल्क बढाने की अनुमति नहीं देता जो इसमें प्रतिभाग नहीं करते हैं। प्रशुल्क की दरों में कमी दूसरे देशों से कम मूल्य पर माल क्रय करने का अवसर देता है। भारत में, अनेक वस्तुओं के, विशेषतः टिकाऊ वस्तुओं के, मूल्यों मे वृद्धि नहीं हुई है तथा उपभोक्ताओं को बहुपक्षीय व्यापार से लाभ हुआ है।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय निर्यात के लाभः** यह प्रणाली क्षेत्र के सभी देशों को व्यापार के लाभ प्रदान करता है जो उनकी, जो देश अनुबन्ध में सम्मिलित नहीं हैं उनके बाजारों सहित, विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाता है। एक कार निर्माता किसी ऐसे देश से जहॉ से उसका क्षेत्रीय व्यापार अनुबन्ध है, से सस्ता स्टील खरीद का निर्मित कारों को कहीं भी सस्ती दरों पर बेच

सकता है। वर्तमान में, हम सहयोग तथा समरसता के युग में रह रहे हैं तथा फर्म केवल मुख्य कार्यों पर ध्यान केन्द्रित रखना की लाभदायक समझती हैं तथा शेष को वाहय श्रोत से प्राप्त करती हैं। इससे सर्वश्रेष्ठ सौदेबाजी सम्भव होती है तथा इस से लागत में कमी आती है जो के ग्राहकों को निर्मित वस्तु के कम मूल्य के रूप में अन्तरित होती है। सन् 1991 के बाद से भारत, जो कि एक चूककर्ता देश था, ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण विदेशी विनिमय का सम्मानजनक भण्डार तैयार कर लिया।

3. **विश्वसनीयता में वृद्धिः** बहुपक्षीय समझौतों से बंधे रहने के कारण भारत ने निवेशकों की दृष्टि में पूर्व की अपेक्षा काफी अधिक विश्वसनीयता प्राप्त की है। एक स्थापित लोकतन्त्र के रूप में एक विधिवत संविधान तथा निर्णयन प्रणाली के साथ भारत को कई अन्य देशों की तुलना में निवेश की दृष्टि से एक अधिक सुरक्षित स्थान के रूप में देखा जाता है तथा इस प्रकार इसे निवेशकों को विश्वास प्राप्त है। एक बड़ी संख्या में बहुपक्षीय व्यापार अनुबन्धों पर हस्ताक्षरकर्ता होने के कारण भारत ने एक अच्छी छवि बनाई है तथा हम इससे संयुक्त उपक्रमों तथा विदेशी निवेशों को आते देख रहे हैं।

4. **विवाद निस्तारणः** बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में व्यापारिक विवादों के निस्तारण की प्रक्रिया भी सम्मिलित है। राष्ट्र कृषि अनुदान, उत्पाद का कम मूल्य पर राशिपातन तथा मुद्रा के प्रबन्धन के कारण एक दूसरे के साथ विवाद की स्थिति में रहते है। व्यापार संधियों में मानक मध्यस्थता नियम सम्मिलित होते हैं तथा ये सुनिश्चित किया जाता है कि व्यापारिक विवादों के निस्तारण नियमों के अनुरूप किया गया है। कोमैल विश्वविद्यालय के अनुसार प्रायः व्यापार समझौते उन मंचों को इंगित करते हैं जहॉ व्यापार विवाद का निस्तारण किया जाना है। इससे उन विवादों की संख्या कम होती है जिनका निराकरण उनके स्तर पर हो सकता है। व्यापार समझौतों के अनुसार कोई भी देश जो उन व्यवहारों का पालन करता है जिससे साथी देश को हानि होती हो, को व्यापार समझौते के नियमों के अनुरूप कानूनी रूप से दण्डित किया जा सकता है। ब्राजील को विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) की ओर से यह अनुमति प्राप्त है कि वह संयुक्त राज्य की कारों तथा दवाइयों पर प्रशुल्क बढ़ा सके, साथ ही संयुक्त राज्य में सृजित कार्यों पर बौद्धिक सम्पदा संरक्षण घटा दे क्योंकि संयुक्त राज्य ने अपने कपास उत्पादको को अनुदान या निर्यात साख संयुक्त राज्य के कोषागार के अनुसार प्रदान किया है। जब संयुक्त राज्य अपने कपास उत्पादकों को अनुदान उपलब्ध कराता है तो यह ब्राजील के कपास उत्पादकों को हानि पहुॅचाता है क्योंकि अमेरिकन कपास उत्पादक ब्राजील में सस्ता कपास बेच सकते हैं तथा फिर भी वे लाभ कमा लेते हैं। विश्व व्यापार संगठन ने यह व्यवस्था दी कि संयुक्त राज्य द्वारा कपास उत्पादकों को दी जाने वाली निर्यात साख गारन्टी तथा भुगतान संयुक्त राज्य तथा ब्राजील के मध्य हुई व्यापार संधि का उल्लंघन है।

5. **व्यापारेत्तर अवरोधों में कमीः** अनेक देशों ने गैर व्यापार संधि (नान ट्रेड ट्रीटी–एनबीटी) को घरेलू व्यापार के संरक्षण का उपाय माना है। उदाहरण के लिए– भारत को बाल श्रम के चलते अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। अनेक देशों ने भारत से आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। तथावि, बहुपक्षीय मंचों पर अपनी बात उठाकर भारत अपने पक्ष में सकारात्मक राय बनवा पाया है तथा हम देखते हैं कि समुद्रपारीय बाजार में भारतीय उत्पादों के लिए व्यापारिक प्रतिबन्धों में काफी कमी आई है।

24.10 भारत में बहुपक्षीय व्यापार समझौते

भारत बड़ी संख्या में देशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ बहुत सी संधियों पर हस्ताक्षरकर्ता रहा है। वाणिज्य मन्त्रालय की वेबसाइट के ऑकड़ों के अनुसार भारत ने निम्नलिखित संधियों पर हस्ताक्षर किये हैं–

1. भारत मलेशिया सीईसीए के क्रियान्वयन पर संधि
2. आशियान के साथ ढॉचागत संधि
3. चिली के साथ ढॉचागत संधि
4. जीसीसी राष्ट्रों के साथ ढॉचागत संधि
5. थाईलैण्ड के साथ ढॉचागत संधि
6. भारत–ईयू (यूरोपियन यूनियन) व्यापार एवं निवेश संधि
7. भारत–संयुक्त राज्य व्यापार नीति मंच संयुक्त वक्तव्य
8. भारत–आस्ट्रेलिया संयुक्त मुक्त व्यापार संधि व्यवहार्यता अध्ययन
9. भारत–बांग्लादेश व्यापार संधि
10. भारत–सीलोन व्यापार संधि
11. भारत–डीपीआर कोरिया व्यापार संधि
12. भारत–ईयू रणनीतिक साझेदारी संयुक्त कार्य योजना
13. भारत–इंडोनेशिया संयुक्त अध्ययन दल आख्या
14. भारत–मालदीव व्यापार संधि
15. भारत–मंगोलिया व्यापार संधि
16. भारत–न्यूजीलैण्ड संयुक्त अध्ययन दल आख्या
17. भारत–पाकिस्तान व्यापार संधि
18. भारत–संयुक्त राज्य व्यापारिक वार्ता
19. भारत–रूस संयुक्त टास्कफोर्स बनाने हेतु संयुक्त संप्रेषण
20. भारत–इन्डोनेशिया के मध्य द्विवर्षीय व्यापार–मंत्रियों के मंच पर एमओयू

24.11 सारांश

एक मुक्त तथा उचित बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली किसी भी उदारीकरण की ओर अग्रसर अर्थव्यवस्था के हितों को सबसे अच्छे ढंग से पूर्ण करती है। दोहा चक्र कें सफल समापन की धुंधली संभावनाओं के कारण बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के चारों ओंर छाई निराशा के वातावरण के उपरान्त भी वैश्विक व्यापार का युग खुला हुआ है तथा इसके लिए प्रभारी संस्था– विश्व व्यापार संगठन अच्छी स्थिति में है। यदि कोई बात इस चक्र के प्रारम्भ के साथ, दोहा चक्र स्वयं अपनी सफलता का शिकार हुआ है, वास्तव में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के भविष्य को बचाने, जो कि कम महत्ववूर्ण नहीं है, के अतिरिक्त हुई है तो वह है कृषि के

उदारीकरण को वास्तव में प्राप्त किया गया है। यह भी कि दोहा चक्र एक निष्कर्ष के साथ समाप्त हुआ है, भले ही यह काफी हल्के रूप में हो। पूर्ण असफलता की स्थिति में प्रणाली को हानि काफी अधिक होगी। अन्त में, दोहा चक्र का समापन संयुक्त राज्य को समझौते के लिए अग्रणी भूमिका निभाने की आवश्यकता होगी। वस्तुओं में सबसे बड़ा निर्यातक होने के कारण चीन को अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए, एक बेतुका सुझाव है।

22.12 शब्दावली

बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणालीः यह एक ऐसी व्यापार प्रणाली है जो विभिन्न पक्षों के मध्य वित्तीय उपकरणों के विनिमय को सुगम बनाती है तथा अनुबन्ध के अर्ह प्रतिभागियों को विविध प्रतिभूतियों, विशेषतः वे जिनका कोई आधिकारिक बाजार न हो, को एकत्रित करने तथा स्थानांतरित करने की अनुमति प्रदान करती है।

बन्धनमुक्त व्यापारः से आशय है कि जब व्यापार प्रशुल्क तथा गैर प्रशुल्क सम्बन्धी व्यापार बन्धनों से मुक्त हो।

सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र (मोस्ट फेवर्ड नेशन– एमएफएन): इसके अनुसार अवसरों की समानता को सुनिश्चित करने के लिए विश्व व्यापार संगठन की संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देश किसी अन्य व्यापारिक साझेदार के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकते है ।

22.13 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

4. अन्य राष्ट्र वालों को भी वही उपचार प्रदान करना जो कि अपने राष्ट्रवालों को दिया जाता है, ... सिद्धान्त है।
5. .... के क्षेत्र में 100 प्रतिशत उत्पाद प्रशुल्कयुक्त हैं।
6. राष्ट्रीय व्यापार नीतियों पर नियमित निगरानी .... के द्वारा रखी जाती है।
7. गैट का पूर्ण नाम है ....

(ब) सत्य/असत्य बताइए

1. आर्थिक राष्ट्रीयता में आत्मघाती चूक से बचने के लिए जी–20 अर्थव्यवस्थाओं को बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को मजबूती से लागू करने की ओर अपना ध्यान पुनः केन्द्रित करना होगा।
2. विश्व व्यापार संगठन नियमों की एक महत्वपूर्ण संस्था है जिसकी विवाद निस्तारण प्रणाली काफी कमजोर है।
3. विकसित देशों ने सर्वाधिक पिछड़े देशों से लगभग सभी उत्पाद कर–रहित तथा अभ्यंश (कोटा) रहित आधार पर आयात करने की अनुमति देना प्रारम्भ कर दिया है।

24.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. राष्ट्रीय उपचार, 2. कृषि , 3. व्यापार नीति समीक्षा प्रणाली
4. जनरल एग्रीमेन्ट आन टैरिफ एण्ड ट्रेड (प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता)

(ब) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य

22.15 स्वपरख प्रश्न

1. बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के विविध लाभों का वर्णन कीजिए।
2. वर्तमान परिदृष्य में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को समझाइए।
3. वैश्विक प्रशासन में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के विभिन्न पक्षों को समझाइए।
4. बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के सिद्धान्त क्या हैं? समझाइए।

24.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. www.wto.org.in
2. Bhagirath Lal, The WTO and Multilateral Trading System – Past, Present and Future, 3rd edition, Third World Network and Zed Books, New Delhi, 2003.
3. Kluwer Law International, From Gatt to the WTO: The Multilateral Trading System in the New Millennium, World Trade Organization, 2001,
4. www.unctad.org.in

===========

इकाई 25 वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.)

इकाई की रूपरेखा

25.1 प्रस्तावना
25.2 जी एस टी का अर्थ
25.2.1 जी.एस.टी. लागू करने का प्रस्ताव
25.2.2 जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर
25.2.3 जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं
25.2.4 जी.एस.टी. करारोपण और उसका प्रशासन
25.2.5 प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी
25.2.6 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण
25.3 माल और सेवा कर के लाभ
25.3.1 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत छोटे कर दाताओं के लिये उपलब्ध लाभ
25.4 जीएसटी की मुख्य विशेषताएं
25.5 पंजीकरण
25.6 आपूर्ति का अर्थ, संभावना आपूर्ति का समय
25.7 कर का जी.एस.टी. भुगतान
25.8 जीएसटी परिषद्
25.8.1 जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णय
25.8.2 न्यूतनतम इंटरफेस
25.9 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंर्तगत आयात व निर्यात
25.9.1 जी.एस.टी. के अंर्तगत आयात
25.9.2 जी.एस.टी. के अंर्तगत निर्यात
25.10 आंकलन और लेखा–परीक्षण
25.11 प्रतिदाय/रिफंड
25.11.1 इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट)
25.11.2 धन वापसी (रिफंड)
25.11.3 माँग (डिमांड्स)
25.12 जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन
25.13 निरीक्षण, तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी
25.14 अपराध और दंड अभियोजन और संयुक्तिकरण
25.15 वैकल्पिक विवाद समाधान योजना–अग्रिम विनिर्णय
25.16 माल और सेवा कर के अन्य प्रावधान
25.17 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान
25.17.1 अपंजीकृत व्यापारियों से माल की खरीद के मामले में क्या उलझने
25.18 निपटान आयोग
25.19 सारांश
25.20 शब्दावली
25.21 बोध प्रश्न
25.22 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.23 स्वपरख प्रश्न
25.24 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- जी.एस.टी. के अर्थ की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुओं का वर्णन का सकें ।
- जी.एस.टी. के अंतर्गत उपरोक्त करों को सम्मिलित करने के सिद्धांत की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. से प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन का सकें ।
- जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन व जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान को समझ सकें ।

25.1 प्रस्तावना

वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में अप्रत्यक्ष कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा । बडी संख्या में केंन्द्र और राज्यों के द्वारा लगाए जा रहे करों को मिलाकर अकेला एक कर बना दिए जाने से करो बहुतायत और दोहरे कराधान की समस्या हल हो जाएगी और एक सामान्य राष्ट्रीय बाजार के लिए रास्ता साफ हो जाएगा । उपभोक्ताए की दृ ष्टि से देखें तो, सबसे बडा लाभ यह होगा कि वस्तुओं पर लगने वाले कर के बोझ मे कमी आ सकेगी । आज यह कर बोझ 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत के लगभग है । जीएसटी के लागू किए जाने से भारतीय उत्पाद घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे । किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि इससे आर्थिक विकास पर भी बहुत उत्साहजनक प्रभाव पडेगा और सबसे अंत में यह कहना है कि इस कर को लागू करना आसान होगा क्योंकि इसमें पारदर्शिता रहेगी और नीतियां स्वंय तैयार की जा सकेंगी ।

जीएसटी के बारे मे सबसे पहले तत्कालीन केंद्रीय वित्त मंत्री के दिमाग में आया था जिसको उन्होंने 2007–08 के बजट में व्यक्त किया था । शुरू–शुरू में जीएसटी के 1 अप्रैल, 2010 से लागू किए जाने का विचार था । राज्यों के वित्त मंत्रियों की शक्ति प्राप्त समिति (इ.सी.), जिसने राज्यों में लगाए जाने वाले वैट की रूपरेखा तैयार की थी, से अनुरोध किया था कि वह जीएसटी के लिए भी मार्ग प्रशस्त करें और उसकी रूपरेखा अधिकारियों का एक संयुक्त कार्यकारी दल, जिसमें राज्य और केंन्द्र दोनों के प्रतिनिधि थे, का गठन किया गया था, जिसका कार्य जीएसटी के विभिन्नं पहलुओं की जांच–परख करना था और अपनी रिपोर्ट, विशेषकर छूट और निर्धारित (थ्रेशोल्ड) सीमा सेवाओं पर कर लगाना/करारोपण और अंतर्राज्यीय आपूर्ति पर करारोपण के बारे में, देना था। इनमें परस्पर तथा इनके और केंद्र सरकार के बीच हुए विचारविमर्श के आधार पर इस शक्ति प्राप्त समिति (ई.सी.) ने नवम्बर, 2009 में जीएसटी पर अपना प्रथम विमर्श पत्र (एफडीपी) जारी किया था । इसमें प्रस्तावित जीएसटी की विशेषताओं को बताया गया है और अब तक केंद्र और राज्यो के बीच चलने वाली बात–चीत का आधार तैयार किया गया हैं ।

25.2 जी एस टी का अर्थ

जी.एस.टी. वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है। इसे विनिर्माण से अंतिम उपभोग के सभी चरणों पर कर लगाने के लिये प्रस्तावित किया जाता है और पिछले चरणों में भुगतान किये कर को अलग करने के लिये क्रेडिट प्राप्त किया जाता है।

संक्षेप में, केवल मूल्य संवर्धन (value addition) पर ही कर लगाया जाएगा और कर का बोझ अंतिम उपभोक्ता द्वारा वहन किया जाएगा। उस कर–प्राधिकरण को कर की प्राप्ति, जिसके अधिकार क्षेत्र के स्थान पर उपभोग किया जाएगा और जिसे आपूर्ति स्थल भी कहा जाता है, उपर्जित है।

वर्तमान में, केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय अधिकार स्पष्ट रूप से संविधान में सीमांकित किये गये हैं जिनमें संबंधित क्षेत्रों के बीच लगभग किसी तरह का ओवरलैप नही है। केंद्र के अधिकार में वस्तुओं के विनिर्माण (सिवाय मानव उपभोग के लिये शराब, अफीम, नशीले पदार्थों आदि को छोड़कर) पर कर लगाने की शक्तियां हैं, जबकि राज्यों के अधिकार में वस्तुओं की बिक्री पर कर लगाने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। अंतर–राज्य बिक्री के मामले में केंद्र सरकार को वस्तुओं की बिक्री पर कर (केंद्रीय बिक्री कर) लगाने की शक्ति है लेकिन, कर पूरी तरह से राज्यों द्वारा एकत्र किया जाता है। जहां तक सेवाओं का प्रश्न है, केवल केंद्र को सेवा कर लगाने के लिये सशक्त किया गया है।

जी.एस.टी. प्रस्तुत करने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन करने की आवश्यकता थी ताकि केंद्र और राज्यों को एक साथ कर लगाने और एकत्र करने के लिये सशक्त किया जा सके। भारत के संविधान को संविधान के (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 द्वारा हाल ही में इस प्रयोजन के लिये संशोधित किया गया था। संविधान का अनुच्छेद 246ए केंद्र और राज्यों का कर लगाने और जी.एस.टी. एकत्र करने के लिए सशक्त करती है।

25.2.1 जी.एस.टी. लागू करने का प्रस्ताव

यह केंद्र और राज्यों के साथ एक साथ सामान्य कर आधार पर आरोपित एक दोहरा जी.एस.टी. होगा। वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा तथा राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस. टी. (एस.जी.एस.टी.) कहा जायेगा। इसी प्रकार केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवोओं की आपूर्ति पर एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है। भारत एक संघीय देश है, जहां केंद्र और राज्यों को उनके उपयक्तु कानन्ू के माध्यम से करारोपण आरै एकत्र करने की शक्तियां पद्रत्त की गई हैं दोनों सरकार के स्तर पर अलग–अलग जिम्मदोरियों का निष्पादन के अनसुार सविंधान में शक्तियों का विभाजन निधार्रित किया गया है जिसके लिये उन्हें संसाधनों को जुटाने की आवश्यकता होती है। दोहरा जी.एस.टी. , इसीलिये, वित्तीय संघवाद की संवैधानिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है।

25.2.2 जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर

जी.एस.टी. में निम्नलिखित करों को प्रतिस्थापित किया जायेगाः

(i) आज के समय केंद्र द्वारा वर्तमान समय पर लगाए और संग्रह किए जाने वाले करः

- क. केंद्रीय उत्पाद शुल्क
- ख. उत्पाद शुल्क (दवाईयां और प्रसाधन पदार्थ)
- ग. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (विशेष महत्व की वस्तुएं)
- घ. अतिरिक्त उत्पाद शलुक (कपड़ा आरै कपड़ों की वस्तएु)
- ड़. अतिरिक्त सीमा शुल्क (सामान्यतः सीवीडी से जाना जाता है)
- च. अतिरिक्त विशेष सीमा शुल्क (एसएडी)
- छ. सेवा कर
- ज. केंद्रीय/राज्य अधिशुल्क और उपकर जहां तक वे वस्तुओं और सेवाओं से संबंधित हैं

(ii) उन राज्य करों को स्पष्ट करें जिन्हें जी.एस.टी. में प्रतिस्थापित किया जाएगाः

क. राज्य वैट(मूल्य वर्धित कर)
ख. केंद्रीय बिक्री कर
ग. विलास कर (लक्जरी टैक्स)
घ. प्रवेश कर (सभी रूपों में)
ड़. मनोरंजन और मनोरंजक कर (सिवाय तब जब स्थानीय निकायों द्वारा करारोपण किया गया है)
च. विज्ञापनों पर कर
छ. क्रय कर
ज. लॉटरी, शर्त और जुए पर कर
झ. राज्य अधिभार और उपकर जहां तक वे वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति से संबंधित हैं

जी.एस.टी. परिषद केंद्र और राज्यों को केंद्रीय, राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा करों, उपकरों और अधिभारों के करारोपण के लिये सिफारिष करेगी जिन्हें जी.एस.टी. में सम्मिलित किया जा सकता है।

25.2.3 जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं

मानव उपभोग के लिए शराब, पेट्रोलियम उत्पाद अर्थात कच्चा पेट्रोलियम तेल, मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), हाई स्पीड डीजल, प्राकृतिक गैस और विमानन टर्बाइन ईंधन एवं बिजली। उपरोक्त वस्तुओं के संबंध में मौजूदा कराधान प्रणाली (वैट और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क) अस्तित्व में जारी रहेगी। तम्बाकू एवं तम्बाकू उत्पाद जीएसटी के अधीन होगें। इसके अतिरिक्त केन्द्र इन उत्पादों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आरोपित करने हेतु सषक्त होगा।

25.2.4 जी.एस.टी. करारोपण और उसका प्रशासन

केंद्र सी.जी.एस.टी. और आई.जी.एस.टी. का करारोपण और प्रशासन करेगा, जबकि संबंधित राज्य एस.जी.एस.टी. करारोपण और प्रशासन करेंगे।

वस्तुओं और सेवाओं के एक विशेष लेन–देन के लिये कर एक साथ केंद्रीय जी.एस.टी. (सी.जी.एस.टी) और राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी.) के अंतर्गत लगाया जाना

केंद्रीय जी.एस.टी. आरै राज्य जी.एस.टी. को एक साथ प्रत्येक वस्तुओं और सेवाओं के लेन देन पर लगाया जायगो सिवाय छूट दी गई वस्तुओं और सेवाओं और जी.एस.टी. के दायरे से बाहर की वस्तुओं और उन लेनदेन को छोड़कर जिनका मूल्य निर्धारित सीमा से नीचे है। आगे, दोनों पर एक कीमत या मूल्य पर कर लगाया जायेगा राज्य वैट के विपरीत जिसकें अतर्गत वस्तुओं के मलूय में सेनवैट जाडे क़र वैट लगाया जाता है । जबकि सी.जी.एस.टी. के प्रयोजन के लिये देश के भीतर आपूर्तिकर्ता और आपूर्ति प्राप्तकर्ता के स्थान का कोई अर्थ नहीं है और एस.जी.एस.टी. तभी लगाया जाएगा जब आपूर्तिकर्ता आरै आपूर्ति प्राप्तकर्ता एक ही राज्य के भीतर स्थित हैं।

चित्रण I: मान लीजिए कि सी.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिशत और एस.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिशत है। जब उत्तर प्रदेश में स्टील का एक थोक व्यापारी एक निर्माण कंपनी को स्टील की सलाखों और छड़ों की आपूर्ति करता है जो उसी राज्य के भीतर स्थित है; मान लें कि 100 रूपये में, डीलर 10 रूपये का सी.जी.एस.टी. और 10 रूपये का एस.जी.एस.टी. माल के मूल दाम में जोड़कर वसूल करेगा। उस सी.जी.एस.टी. की रकम केंद्र सरकार के खाते में जमा करनी है, जबकि एस.जी.एस.टी. के हिस्से की राशि संबंधित राज्य सरकार के खाते जमा करना आवश्यक होगा। जाहिर है, कि उसे वास्तव में 20 रुपये (10+10 रुपये) नकद राशि में जमा करना आवश्यक नहीं होगा क्योंकि वह इस दायित्व को अपनी खरीद पर भुगतान किये गये सी.जी.एस.

टी. या एस.जी.एस.टी. के (इनपुट, कहते हैं) के विरूद्ध समायोजित करने का हकदार होगा। लेकिन सी.जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उसे केवल अपनी खरीद पर सी.जी.एस.टी. क्रेडिट का उपयोग करने की ही अनुमति दी जाएगी जबकि सी.जी.एस. टी. के लिये वह अकेले एस.जी. एस.टी. के क्रेडिट का उपयोग कर सकता है। दूसरे शब्दों में, एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को, आमतौर पर, एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। न ही एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को सी.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

चित्रण II: मान लीजिए, फिर अनुमानतः कि सी.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिषत और एस.जी.एस. टी. की दर भी 10 प्रतिषत है। जब मुंबई में स्थित एक विज्ञापन कंपनी महाराष्ट्र राज्य के भीतर स्थित एक साबुन विनिर्माण कंपनी के लिए विज्ञापन सेवाओं की आपूर्ति करती है, आईये मान लेते हैं कि 100 रूपये, विज्ञापन कंपनी सेवा की मूल कीमत पर 10 रूपये सी.जी.एस.टी. और 10 रूपये एस.जी. एस.टी. शुल्क लगायेगी। उसे सी.जी.एस.टी. का हिस्सा केंद्र सरकार के खाते में, और एस.जी.एस.टी. हिस्सा संबंधित राज्य सरकार के खाते में जमा करना आवश्यक होगा। बेशक, उसे फिर से, वास्तव में 20 रुपये (10+10 रु) का नकद भुगतान करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह इस दायित्व को अपनी खरीद पर भुगतान किये गये सी.जी.एस.टी. या एस.जी.एस.टी. के (इनपुट जैसे स्टेशनरी, ऑफिस उपकरण, कलाकारों की सेवाएं इत्यादि कहते हैं) के विरूद्ध समायोजित करने का हकदार होगा। लेकिन सी.जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उसे केवल अपनी खरीद पर सी.जी.एस.टी. क्रेडिट/जमा का उपयोग करने की ही अनुमति दी जाएगी जबकि एस.जी.एस.टी. के लिये वह अकेले एस.जी.एस.टी. के क्रेडिट का उपयोग कर सकता है। दूसरे शब्दों में, सी.जी.एस.टी. क्रेडिट को, आमतौर पर, एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। न ही एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को सी.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

25.2.5 प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी

जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत, कर का भुगतान वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर कराधीन व्यक्ति द्वारा देय है। कर के भुगतान के लिए दायित्व तब उत्पन्न होता है जब कराधीन व्यक्ति छूट दी गई सीमारेखा (threshold exemption) को पार कर लेता है, यानि 10 लाख रुपए (पूर्वोत्तर राज्यों के लिए यह 5 लाख रुपये होगी) सिवाय कुछ विशिष्ट मामलों को छोड़कर कराधीन व्यक्ति जी.एस.टीका भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है भले ही उसने निर्धारित सीमा रेखा की छूट को पार नहीं किया है। सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टीअंतर–राज्य में आपूर्ति की गई सभी वस्तुओं और/या सेवाओ पर देय है। सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टी. और आई.जी.एस.टी संबंधित अधिनियमों की अनुसूचियों में निर्दिष्ट दरों पर देय हैं।

25.2.6 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण

एच.एस.एन. (हार्मोनाइज़्ड सिस्टम आफ नॉमेंक्लेचर) कोड को जी.एस.टी. व्यवस्था के अंर्तगत वस्तुओं को वर्गीकृत करने के लिए प्रयोग किया जाएगा। करदाताओं जिनकी कुल बिक्री/टर्नओवर 1.5 करोड रुपये से ऊपर है लेकिन 5 करोड़ रुपये से कम है, वे 2 अंकों के कोड का उपयोग कर पाएंगे और वह करदाता जिनकी कुल बिक्री/टर्नओवर 5 करोड रुपये और उससे अधिक है वह 4 अंकों के कोड का उपयोग करेंगे। ऐसे करदाताओं को जिनकी कुल बिक्री 1.5 करोड रुपये के नीचे है उन्हें अपने चालान/बिलों पर एचएसएन कोड का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। सेवाओं को सर्विस एकाउंटिंग कोड के अनुसार वर्गीकृत किया जाएगा (एस.ए. सी.)

25.3 माल और सेवा कर के लाभ

माल और सेवा कर से होने वाले लाभ निम्नलिखित है:

1. माल और सेवा कर (जीएसटी) पूरे देश के लिए लाभदायक व्यवस्था है। इससे अर्थव्यवस्था के सभी हितधारकों, सरकार और उपभोक्ताओं को लाभ होगा । इससे वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत में कमी आएगी । अर्थव्यवस्थास को प्रोत्साहन मिलेगा और भारतीय वस्तुएँ एवं सेवाएँ वैश्विक स्तोर पर प्रतिस्पर्धी बनेंगी । जीएसटी का लक्ष्य कर दरों और प्रक्रियाओं में समरूपता लाकर और आर्थिक बाधाओं को हटाकर भारत को एक साझा राष्ट्रीय बाजार बनाना है जिससे राष्ट्रीय स्तर पर एक एकीकृत अर्थव्यवस्था का पथ प्रशस्त हो सके । अधिकांश केन्द्रीय एवं राज्य अप्रत्यक्ष करों को एकल कर में समाहित करके एवं समूचे वैल्यूं–चेन में पूर्व–चरण के प्रदाय (सप्लाई) में भुगतान किये गए करों के समंजन से व्यवसायों में प्रपत्तन (कैस्केअडिंग– यानि कर पर कर का लगना) के दुष्प्रभाव कम होंगे, प्रतिस्पर्धात्मयकता बढ़ेगी और चल निधि (लिक्विडिटी) में सुधार होगा । जीएसटी एक गंतव्य–आधारित कर है । यह बहु–स्तरीय संग्रहण विधि का अनुसरण करता है । इसमें प्रदाय (सप्लाई) के हर स्तर पर कर का भुगतान होगा और पिछले स्तर पर चुकाए गए कर का क्रेडिट प्रदाय के अगले स्तर पर समंजन (सैट–ऑफ) के लिए उपलब्ध होगा । इससे कर भार अंतिम उपभोक्ता की ओर स्थानांतरित होता है और उद्योगों को बेहतर नकदी प्रवाह और बेहतर कार्यशील पूंजी प्रबंधन से लाभ होता है ।
2. जीएसटी मुख्यीत: प्रौद्योगिकी संचालित है । इससे मानवीय हस्तक्षेप बहुत हद तक कम हो जायेगा और जिससे निर्णयों में तेजी आएगी ।
3. माल और सेवा कर से भारत में उत्पादित वस्तुऐं एवं सेवाएँ भारत के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पार्धी बनेंगी और इससे भारत सरकार की महत्वपूर्ण पहल ''मेक इन इंडिया'' को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा । इसके अलावा सभी आयातित वस्तुओं पर एकीकृत माल और सेवा कर (आईजीएसटी) आरोपित किया जाएगा जो कि केन्द्रीय जीएसटी + राज्य जीएसटी के समतुल्य होगा । इससे आयातित उत्पादों और स्थानीय उत्पादों पर कराधान में समता आएगी ।
4. वर्तमान व्यवस्था के विपरीत, जहां केन्द्र और राज्यों के बीच अप्रत्यक्ष करों की विखंडित प्रकृति के कारण कुछ करों का प्रतिदाय (रिफंड) नहीं हो पाता है, जीएसटी व्यंवस्थाा के अधीन निर्यात पर पूर्ण रूप से संगृहित कर का प्रतिदाय होगा । इससे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय निर्यात को बढ़ावा मिलेगा और तदैव भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार होगा । साफ ट्रैक रिकॉर्ड वाले निर्यातकों को निर्यात से संबंधित दावों का सात दिनों के भीतर 90ः प्रतिदाय (रिफंड) कर प्रोत्साहित किया जाएगा।
5. माल और सेवा कर के कारण कराधार बढ़ने और कर अनुपालन में सुधार होने से सरकारी राजस्व में वृद्धि आने का अनुमान है । जीएसटी के कारण भारत के 'व्यवसाय करने की सुगमता' इंडेक्स (ईज ऑफ डुईंग बिजनेस) की श्रेणीक्रम (रैकिंग) में सुधार आने की संभावना है और सकल घरेलू उत्पाजद में 1.5% से 2% तक वृद्धि होने का अनुमान है ।
6. माल और सेवा कर से अप्रत्य.क्ष कर कानूनों में और अधिक पारदर्शिता आएगी । चूँकि समूची प्रदाय श्रृंखला (सप्लानई चेन) के प्रत्येरक स्तर पर कर लगेगा और जिसके साथ पिछले स्तर पर चुकाए गए करों का प्रत्यंय (क्रेडिट) प्रदाय के अगले स्तर पर समंजन (सैट–ऑफ) के लिए उपलब्ध होगा, प्रदाय के अर्थतंत्र और कर वैल्यू– का सुगमता से आकलन किया जा सकेगा । इससे उद्योगों को क्रेकडट लेने में और

सरकार को चुकाए गए करों की सत्यता को जाँचने एवं उपभोक्ता को चुकाए गए कर की सही राशि जानने में सहायता मिलेगी।

7. करदाताओं को केन्द्र और राज्यो सरकारों के अनेक अप्रत्यक्ष कर कानूनों जैसे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सेवा कर, वैट, केन्द्रीय बिक्री कर, चुंगी, प्रवेश कर, लक्जरी कर, मनोरंजन कर, आदि का अभिलेख (रिकॉर्ड) रखने और अनुपालन करने की आवश्यकता नहीं होगी । उनको सभी राज्यान्तर्गत प्रदायों के लिए केन्द्रीय माल और सेवा कर अधिनियम तथा राज्य (अथवा संघ राज्यक्षेत्र) माल और सेवा कर अधिनियम (जिनके लगभग समरूप कानून हैं) और सभी अन्तरराज्यिक प्रदायोंके लिए एकीकृत माल और सेवा कर अधिनियम (जिनकी अधिकांश मूल विशेषताएँ भी सीजीएसटी और एसजीएसटी अधिनियम से व्युषतपन्नट हैं) के संबन्धए में केवल रेकॉर्ड रखने तथा अनुपालन दर्शाने की आवश्यकता है ।

25.3.1 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत छोटे कर दाताओं के लिये उपलब्ध लाभ

वे कर दाता जिनका एक वित्तीय वर्ष में कुल कारोबार (10 लाख रूपये) तक है उन्हें कर से मुक्त किया जाएगा। (सकल कुल बिक्री में कुल कर योग्य और गैर–कर योग्य आपूर्ति, छूट दी गई आपूर्ति और वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात का कुल मूल्य शामिल होगा और कर अर्थात जी.एस.टी. शामिल नहीं होंगे।) सकल कुल बिक्री की गणना अखिल भारतीय आधार पर की जाएगी। पूर्वोत्तर राज्यों और सिक्किम के लिए, छूट सीमा (रुपए 5 लाख) होगी। सीमा में छूट के पात्र सभी करदाताओं को इनपुट टैक्स क्रेडिट (आई.टी.सी.) लाभ के साथ कर के भुगतान करने का विकल्प उपलब्ध होगा। अंतर–राज्य आपूर्ति करने वाले कर दाताओं या रिवर्स चार्ज के आधार पर कर का भुगतान कर रहे कर दाताओं को सीमा में छूट की पात्रता प्राप्त नहीं होगी।

25.4 जीएसटी की मुख्य विशेषताएं

माल और सेवा कर की मुख्य विशेषताएं निम्नयलिखित हैं :–

i) वस्तुओं के निर्माण अथवा बिक्री पर या सेवाओं के प्रावधान पर देय मौजूदा कराधानों की तुलना में माल और सेवा कर वस्तुओं अथवा सेवाओं के प्रदाय (सप्लाई) पर लागू होगा । यह एक गंतव्य – आधारित उपभोग कर होगा । जहाँ वस्तु एवं सेवा का उपभोग होगा, उसी राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र को यह कर उपार्जित होगा । यह एक दोहरा कर होगा जिसमें केन्द्र और राज्यो दोनों एक साथ समान कर आधार पर कर उद्ग्रहण एवं संग्रहण करेंगे । वस्तुओं अथवा सेवाओं के राज्यान्तर्गत प्रदायों पर केन्द्र द्वारा वसूला जाने वाला जीएसटी केन्द्रीय माल और सेवा कर (सीजीएसटी) और राज्यों तथा विधान मंडल वाले संघ राज्यक्षेत्रों/बिना विधान मंडल वाले संघ राज्याक्षेत्रों द्वारा वसूला जाने वाला माल और सेवा कर क्रमश: राज्य जीएसटी (एसजीएसटी)/संघ राज्यक्षेत्र जीएसटी (यूटीजीएसटी) कहलाएगा ।

ii) मानवीय उपभोग हेतू एल्कोहलिक लिकर एवं पांच पेट्रोलियम उत्पीदों, यथा अपरिष्कृएत पेट्रोलियम (पेट्रोलियम क्रूड),मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), उच्च गति डिजल (हाई स्पीडड डीजल), प्राकृतिक गैसव (नैचुरल गैस) एवं विमानन टरबाइन ईंधन (एविएशन टर्बाईन फ्यूल) के अलावा सभी वस्तुओं पर माल और सेवा कर लागू होगा । यह कर कुछ सेवाओं, जिन्हें विनिर्दिष्ट किया जाना है, को छोड़कर सभी सेवाओं, पर लागू होगा । केन्द्र द्वारा वर्तमान में उद्ग्रहीत एवं एकत्र किए जाने वाले निम्नालिखित करों की जगह माल और सेवा कर लगेगा :–

1. केन्द्रीय उतपाद शुल्क;
2. उत्पाद शुल्क डयूटी (औशधीय और प्रसाधन निर्मितियाँ);
3. उत्पाद शुल्क की अतिरिक्त डयूटी (विशेष महत्वरकी वस्तुएँ);
4. उत्पाद शुल्क की अतिरिक्त डयूटी (सामान्यत: सीवीडी के रूप में जाना जाता है);
5. सीमा शुल्क की विशेष अतिरिक्ति डयूटी (एसएडी);
6. सेवा कर;
7. केन्द्रीय प्रभार एवं उपकर, जहाँ तक ये वस्तुओं की आपूर्ति एवं सेवाओं से संबंधित हैं ।

iii) राज्यं कर जिनको माल और सेवा कर में सम्मिलित किया जाएगा :–

1. राज्य वैट;
2. केन्द्रीय बिक्री कर;
3. लक्जरी कर;
4. एंट्री कर(सभी प्रकार के);
5. मनोरंजन एवं आमोद–प्रमोद कर (सिवाय जब यह कर स्थानीय निकायों द्वारा वसूला जाता हो);
6. विज्ञापनों पर कर;
7. क्रय कर;
8. लॉटरी, सट्टेबाजी एवं जुए पर कर;
9. राज्य प्रभार एवं उपकर, जहाँ तक वे वस्तु ओं एवं सेवाओं के प्रदाय से संबंधित हैं ।

iv) छूट प्राप्तं वस्तुओं एवं सेवाओं की सूची केन्द्रं एवं राज्यों के लिए समान होगी ।

v) शुरूआती (थ्रेशहोल्ड) छूट: एक वित्तीय वर्ष में 20 लाख रूपये तक के संकलित आवर्त (कुल टर्नओवर) वाले करदाता को कर से छूट मिलेगी । कुल टर्नओवर की गणना अखिल भारतीय स्तमर पर होगी । ग्याणरह (11) विशेष दर्जा प्राप्तत राज्यों, जो पूर्वोत्तर में हैं, या पहाड़ी राज्य हैं, के लिए शुरूआती छूट 10 लाख रूपयो होगी । शुरूआती छूट के पात्र करदाताओं के पास इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट) लाभ के साथ कर भुगतान करने का विकल्पी होगा । करदाता जो अन्तरराज्यिक प्रदाय करते हैं अथवा रिवर्स चार्ज आधार पर कर का भुगतान करते हैं वे शुरूआती छूट के पात्र नहीं होंगे ।

vi) कम्पोजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना

एक वित्तीय वर्ष में 50 लाख रूपये तक संकलित आवर्त (कुल टर्नओवर) के छोटे करदाता कम्पोजिशन योजना (सम्मिश्रण उदग्रहण) हेतु पात्र होंगे । ऐसा करदाता इस योजना के अधीन इनपुट कर प्रत्यय (आईटीसी)लाभ लिए बिना वर्ष के दौरान अपनी टर्नओवर के विनिर्दिष्ट प्रतिशत के बराबर कर का भुगतान करेगा। सीजीएसटी एवं एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी, प्रत्येक के लिए कर की दर निम्नलिखित से ज्यादा नहीं होगी :–

- रेस्टोरेंट आदि के मामले में 25% ।
- विनिर्माता के मामले में राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में टर्नओवर का 1% ।
- अन्यक प्रदायों के मामले में राज्य/संघ राज्यतक्षेत्र में टर्नओवर का 0.5 % ।

कम्पोजिशन योजना (सम्मिश्रण उदग्रहण) को चुनने वाले करदाता अपने उपभोक्ताओं से कोई कर नहीं लेंगें न ही वे किसी इनपुट कर प्रत्यय का दावा करने के हकदार होगें ।

कम्पोपजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना वैकल्पिक है । अन्तरराज्यिक प्रदाय करने वाले करदाता कम्पोपजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना के हकदार नहीं होंगे । जीएसटी कॉउंसिल (परिषद्) की योजना के हकदार नहीं होंगे। जीएसटी कॉउंसिल (परिषद) की सुस्तुनति पर सरकार योजना के लिए छूट की सीमा को एक करोड़ रूपये तक बढ़ा सकती है ।

vii) वस्तुओं एवं सेवाओं की अन्तरराज्यिक प्रदायों पर केन्द्र द्वारा एकीकृत माल और सेवाकर का उदग्रहण एवं संग्रहण किया जाएगा। केन्द्र एवं राज्योंस के बीच आवधिक रूप से अकाउंटस का निपटान यह सुनिश्चित करने हेतु किया जाएगा कि आईजीएसटी का एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी हिस्सा उस गंतव्य राज्य/संघ राज्यं क्षेत्र को स्थानांतरित हो जाए जहाँ वस्तुओं एवं सेवाओं का अन्ततः उपयोग किया गया ।

viii) इनपुट कर प्रत्येय (क्रेडिट)का उपयोग
इनपुट पर भुगतान किए गए करों का इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट) लेने की अनुमति करदाता को होगी एवं वे आउटपुट टैक्स) के भुगतान हेतु इसका उपयोग करेगें । तथापि सीजीएसटी के अकाउंट पर लिए गए किसी इनपुट कर प्रत्यय का उपयोग एसजीएसटी/यूटीजीएसटी के भुगतान के लिए एवं इसके विलोमतः (वाइस–वर्सा) नहीं होगा। आईजीएसटी क्रेडिट का उपयोग क्रमशः आईजीएसटी, सीजीएसटी एवं एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी के भुगतान हेतु करने की अनुमति होगी ।

ix) एच एस एन (हार्मोनाइज्डट सिस्टक ऑफ नॉमनक्ले्चर) कोड का उपयोग माल और सेवा कर व्यवस्था के अधीन वस्तुओं के वर्गीकरण हेतु किया जाएगा । ऐसे करदाता जिनका अर्नओवर 1.5 करोड़ रूपये से ऊपर है परन्तु 5 करोड से कम है, 2–डिजिट कोड का इस्तेरमाल करेंगे एवं करदाता जिनका टर्नओवर 5 करोड़ या उससे ऊपर है, 4– डिजिट कोड का इस्तेभमाल करेंगे । एसे करदाता, जिनका टर्नओवर 1.5 करोड़ रूपये से नीचे है, से अपने बीजक (इन्वायस) में एचसएएन का उल्लेहख करना अपेक्षित नहीं होगा ।

x) एसईजेड को किए गए निर्यात एवं प्रदाय को जीरो रेटेड प्रदाय माना जाएगा। निर्यातक के पास विकल्पट रहेगा कि या तो वह आउटपुट पर कर का भुगतान करे एवं इसके प्रतिदाय (रिफंड) का दावा करे या बिना कर भुगतान के बांड के अधीन निर्यात करे एवं इनपुट कर प्रत्यय के प्रतिदाय का दावा करे ।

xi) वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात को अन्तरराज्यिक प्रदाय माना जाएगा एवं आयात पर लागू सीमा शुल्क के अतिरिक्त आईजीएसटी लगेगा । भुगतान किया गया आईजीएसटी आगामी प्रदाय पर इनपुट कर प्रत्याय के रूप में उपलब्ध रहेगा ।

25.5 पंजीकरण

वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.) के अंर्तगत पंजीकरण करवाना व्यवसाय को निम्नलिखित लाभ प्रदत्त करेगाः

- वस्तुओं और सेवाओं के आपूर्तिकर्ता के रूप में कानूनी मान्यता प्राप्त होती है ।
- इनपुट वस्तुओं या सेवाओं के समुचित कर भुगतान के लेखा जिन्हें वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति या व्यापार द्वारा दोनो पर देय जी.एस.टी. भुगतान के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

- अपने खरीदारों से कानूनी तौर पर कर जमा करने और वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति पर खरीदार या प्राप्तकर्ताओं को देय करों को क्रेडिट करने के लिये अधिकृत किया है।

बिना जी.एस.टी. पंजीकरण के कोई भी व्यक्ति न तो अपने ग्राहकों से जी.एस.टी. एकत्र कर सकता है और न ही अपने द्वारा भुगतान किए गए जी.एस.टी. के किसी भी इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा कर सकता हैं। पंजीकरण के लिए जहां पर आवेदन किया गया है उसकी प्रस्तुति के 30 दिनों के भीतर व्यक्ति पंजीकरण करने के लिए उत्तरदायी हो जाता है, पंजीकरण की प्रभावी तिथि उसके पंजीकरण के अपने दायित्व की तिथि होगी। जहाँ आवेदक द्वारा पंजीकरण का आवेदन प्रस्तुत किया जा चुका है उसके 30 दिनों के बाद वह पंजीकरण का उत्तरदायी बन जाता है,पंजीकरण की प्रभावी तिथि उसे पंजीकरण प्रदान करने की तारीख होगी।

स्वतः पंजीकरण के मामले में, अर्थात स्वेच्छा से पंजीकरण लेना जबकि कर भुगतान के लिए सीमा में छूट की सीमा के भीतर है, पंजीकरण की प्रभावी तिथि पंजीकरण के आदेश की तिथि होगी। कोई भी आपूर्तिकर्ता जो भारत के किसी भी स्थान से व्यापार कर रहा है और जिसकी कुल बिक्री एक वित्तीय वर्ष में निर्धारित सीमा से अधिक है वह स्वयं पंजीकरण के लिये उत्तरदायी है। हालांकि, एम.जी.एल. अनुसूची III में उल्लिखित व्यक्तियों की कुछ श्रेणियों को इस सीमा का ख्याल किये बिना पंजीकृत किया जा सकता है। एक किसान को कराधीन व्यक्ति नहीं माना जायेगा और वह पंजीकरण करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

एम.जी.एल. की अनुसूची III के पैरा 5 के अनुसार, निम्नलिखित श्रेणियों के व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से निर्धारित सीमा की परवाह किए बिना पंजीकृत करवाना आवश्यक होगा;

क) व्यक्ति जो किसी प्रकार की अंतर–राज्य कराधीन आपूर्ति कर रहे हैं;

ख) आकस्मिक कराधीन व्यक्ति;

ग) वे व्यक्ति जिन्हें रिवर्स प्रभार के अंर्तगत कर भुगतान करना आवष्यक है;

घ) अनिवासी (एनआरआई) कराधीन व्यक्ति

ड़) वे व्यक्ति जिन्हें धारा 37 के अंर्तगत कर की कटौती करना आवश्यक है;

च) वे व्यक्ति जो अन्य पंजीकृत कराधीन व्यक्तियों की ओर से वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति करते हैं, चाहे अभिकर्ता या अन्य किसी रूप में;

छ) इनपुट सेवा वितरक/डिस्ट्रीब्यूटर;

ज) वे व्यक्ति जो ब्रांडेड सेवाओं को छोड़कर वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति करते हैं, इलेक्ट्रॉनिक कामर्स ऑपरेटर के माध्यम से;

झ) प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक कामर्स ऑपरेटर;

ञ) एक एग्रीगेटर जो सेवाओं की आपूर्ति अपने ब्रांड नाम या ट्रेड नाम से प्रदान करता है; तथा

ट) ऐसे अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग जिन्हें परिषद की सिफारिशों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है।

प्रत्येक वह व्यक्ति जो पंजीकरण लेने के लिए उत्तरदायी है उसे प्रत्येक उन राज्यों में अलग–अलग पंजीकरण लेना आवश्यक है जहां पर वह व्यवसाय संचालित कर रहा है और मॉडल जी.एस.टी. कानून की धारा 19 की उप–धारा (1) के अनुसार जी.एस.टी. का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। प्रत्येक व्यक्ति के पास मॉडल जी.एस.टी. कानून की धारा 19 के अंर्तगत पंजीकरण प्राप्त करने की पात्रता के क्रम में आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) के अधीन जारी किया गया स्थायी खाता संख्या (पैन) रखना अनिवार्य होगा।

हालांकि एम.जी.एल. की धारा 19 (4ए) के अनुसार, अनिवासी/एनआरआई कराधीन व्यक्ति के लिये पैन रखना अनिवार्य नहीं है और उसे किसी अन्य दस्तावेज के आधार पर

पंजीकरण दिया जा सकता है, जिस रूप में उसे निर्धारित किया जा सकता है। एक बार पंजीकरण प्रमाण पत्र प्रदान करने पर वह स्थायी हो जाता है जब तक कि उसे अभ्यर्पण, रद्द, निलंबित या वापस नहीं ले लिया जाता।

सरकारी प्राधिकरणों/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पी.एस.यू.) को जो जी.एस.टी. माल की आगे आपूर्ति नहीं कर रहे (और इसलिये जी.एस.टी. पंजीकरण प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी नहीं है) लेकिन अंतर–राज्यीय खरीद कर रहे हैं, उन्हें संबंधित राज्य कर प्राधिकारियों द्वारा जी. एस.टी. पोर्टल के माध्यम से एक विशिष्ट पहचान संख्या (आई.डी.) प्रदान किया जाएगा। ऐसे करदाता जो आईटी–कुशल नहीं हैं, उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उन्हें निम्नलिखित सुविधाएं उपलब्ध की जाएंगीः–

टैक्स रिटर्न प्रिपेयरर (टी.आर.पी): एक कराधीन व्यक्ति स्वयं अपना पंजीकरण आवेदन तैयार कर सकते हैं/ रिटर्न भर सकते हैं या टी.आर.पी. को संपर्क कर सकते हैं। टी.आर.पी. कथित पंजीकरण दस्तावेज/निर्धारित प्रारूप में रिटर्न कराधीन व्यक्ति द्वारा दी गई सूचना के आधार पर तैयार करेगा। टी.आर.पी. द्वारा तैयार किये प्रारूप में सम्मिलित जानकारियों की शुद्धता और कानूनी जिम्मेदारी केवल कराधीन व्यक्ति पर होगी और टी.आर.पी. किसी त्रुटि या गलत जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

सुविधा केंद्र (एफ.सी.): दस्तावेजों की विधिवत अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित कराधीन व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत सारांश शीट सहित प्रारूपों और दस्तावेज़ों के डिजिटलीकरण और/या अपलोडिंग के लिए जिम्मेदार होंगे। एफसी आईडी और पासवर्ड का उपयोग करते हुए आम एफसी पोर्टल पर डाटा अपलोड करने के बाद, स्वीकृति/पावती का एक प्रिंट–आउट लेगा और एफसी द्वाराहस्ताक्षर करने के बाद वह कराधीन व्यक्ति को उसके रिकार्ड के लिये सौंप दिया जायेगा। अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा विधिवत हस्ताक्षर की गई सारांश शीट को एफसी स्कैन करने के बाद अपलोड कर देगा।

25.6 आपूर्ति का अर्थ, संभावना आपूर्ति का समय

शब्द 'आपूर्ति' बहुत व्यापक शब्द है और इसमें वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति के सभी रूप जैसे बिक्री, स्थानांतरण, वस्तु विनिमय, अदला–बदली, लाइसेंस, किराया, पट्टा या निपटान करना या करने के विचार पर एक व्यक्ति द्वारा उसके व्यापार को आगे बढ़ाने के प्रयोजन के लिये सहमति देना शामिल है। इसमें सेवाओं का आयात भी शामिल है। मॉडल जी. एस.टी. कानून आपूर्ति के दायरे के भीतर बिना प्रतिफल के कुछ लेनदेन को षामिल करने की भी व्यवस्था प्रदान करता है।

वस्तुओं के उपयोग के अधिकार के हस्तांतरण को सेवाओं की आपूर्ति के रूप में माना जायेगा क्योंकि इस प्रकार के हस्तांतरण में वस्तुओं का शीर्षक/नाम हस्तांतरित नहीं हुआ। इस तरह के लेन–देन को विशेष रूप से एम.जी.एल. की अनुसूची–II में सेवा की आपूर्ति के रूप में माना जायेगा।

आपूर्ति का समय

आपूर्ति का समय निर्धारित करता है कि कब जी.एस.टी. कर का दायित्व उत्पन्न होता है। यह भी इंगित करता है कि कब आपूर्ति पूर्ण कर दी गई समझी जायेगी। एमजीएल वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति के लिये अलग–अलग समय प्रदान करता है। वस्तुओं के विपरीत, सेवाओं के मामले में, आपूर्ति का समय इस तथ्य के आधार पर निर्धारित करता है कि क्या सेवाओं की आपूर्ति के लिए चालान/बिल निर्धारित अवधि के भीतर या निर्धारित अवधि के बाद जारी कर दिया गया है।

25.7 कर का जी.एस.टी. भुगतान

जी.एस.टी. व्यवस्था में, किसी भी राज्यांतरिक (राज्य के भीतर) आपूर्ति के लिए, किया जाने वाला करों का भुगतान केंद्रीय जी.एस.टी. (सी.जी.एस.टी., केन्द्र सरकार के खाते में जमा होगा) और राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी., संबंधित राज्य सरकार के खाते में जमा होगा)। किसी भी अंतर–राज्य आपूर्ति के लिए, किया जाने वाला कर भुगतान एकीकृत जी.एस.टी. (आई. जी.एस.टी.) है जिसमें दोनों सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के घटक सम्मिलित होंगे। इसके अतिरिक्त, पंजीकृत व्यक्तियों की कुछ श्रेणियों को कर स्रोत पर कटौती (टी.डी.एस.) और कर स्रोत पर एकत्रित (टी.सी.एस.) सरकारी खाते में भुगतान करने की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त, जहां लागू हो, ब्याज, जुर्माना, फीस और कोई भी अन्य भुगतान करना आवश्यक होगा।

आमतौर पर जी.एस.टी. भुगतान का दायित्व वस्तुओं या सेवा आपूर्तिकर्ता का है। हालांकि कई निर्दिष्ट मामलों में जैसे आयात और अन्य अधिसूचित आपूर्तियों के लिये, रिवर्स प्रभार व्यवस्था के अंर्तगत प्राप्तकर्ता पर यह दायित्व डाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में, भुगतान करने का दायित्व तीसरे व्यक्ति पर होता है उदाहरणार्थ (टी.सी.एस. के मामले के लिये ई–कॉमर्स ऑपरेटर जिम्मेदार है या टी.डी.एस. के लिये सरकारी विभाग जिम्मेदार हैं)। जैसा कि धारा 12 में स्पश्ट किया गया है वस्तुओं की आपूर्ति के समय और धारा 13 में सेवाओं की आपूर्ति के समय किया जाना चाहिये। समय आम तौर पर इन तीन में से सबसे पहले का समय होगा, अर्थात भुगतान की प्राप्ति पर, चालान/बिल जारी करने पर या आपूर्ति पूरा हो जाने के बाद का समय। उपरोक्त धाराओं में विभिन्न स्थितियों की परिकल्पना और अलग–अलग कर केंद्र स्पष्ट किये गये हैं।

भुगतान निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता हैः

(i) आम पोर्टल पर अनुरक्षित करदाता के ऋण खाता बही में नामे के माध्यम से – केवल कर का भुगतान किया जा सकता है। ऋण खाता बही में ब्याज, जुर्माना और शुल्क का भुगतान नामे द्वारा नहीं किया जा सकता। करदाताओं को (इनपुट टैक्स क्रेडिट) इनपुट/आदानों पर भुगतान का क्रेडिट लेने और उसका उपयोग आउटपुट कर के भुगतान करने के लिए अनुमति दीजायेगी। हालांकि, सी.जी.एस.टी. के कारण इनपुट टैक्स क्रेडिट को एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिये उपयोग नहीं किया जायेगा और विलोमतः। आई.जी.एस.टी. के क्रेडिट को आई.जी.एस.टी., सी.जी.एस.टी. और एस.जी. एस.टी. के भुगतान के लिए उस अनुक्रम में उपयोग करने की अनुमति दी जाएगी।

(ii) आम पोर्टल पर अनुरक्षित करदाता के नकद खाता बही के नामे द्वारा नकद रूप में। विभिन्न माध्यमों से नकद खाता बही में राशि जमा की जा सकती है, अर्थात, ई–भुगतान (इंटरनेट बैंकिंग, क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड); पैसा भेजने का सबसे तेज तरीका/रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट (आर.टी.जी.एस.)/नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांस्फर (एन.ई.एफ.टी.); जी.एस.टी. जमा स्वीकार करने के लिए अधिकृत बैंकों की शाखाओं में काउंटरों पर भुगतान।

25.8 जीएसटी परिषद्

जीएसटी परिषद् (जीएसटी काउंसिल) की व्यववस्था केन्द्र एवं राज्यों के साथ–साथ राज्यों के बीच जीएसटी के विभिन्न पहलुओं पर संगतिकरण सुनिश्चित करेगी । यह विशेष रूप से प्रावधान किया गया है कि जीएसटी परिषद अपने विभिन्न कार्यों के निर्वहन में जीएसटी के सामंजस्य पूर्ण संरचना के सृजन की आवश्यकता तथा वस्तुओं एवं सेवाओं हेतु सुव्यवस्थित

राष्ट्रीय बाजार के विकास के लक्ष्यों द्वारा मार्गदर्शित होगी । जीएसटी कॉउंसिल अपने द्वारा की गई संस्तुतियों या इनके क्रियान्वयन से उत्पन्न होने वाले विवादों के अधिनिर्णयन हेतु एक तंत्र स्थापित करेगी ।

जी.एस.टी. परिषद के गठन में केंद्रीय वित्त मंत्री (जो परिषद के अध्यक्ष होंगे), राज्यमंत्री (राजस्व) और राज्य वित्त/कराधान मंत्री सम्मिलित होंगे जो केंद्र और राज्यों को निम्न पर अपनी सिफारिशें करेंगे:

(i) केंद्र, राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा लगाये करों, उपकरों और अधिभारों पर जिन्हें जी.एस.टी. के अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है;

(ii) वस्तुओं और सेवाओं पर जो जी.एस.टी. के अधीन कीजा सकती हैं या जिन्हें छूट दी जा सकती है;

(iii) जिस तारीख को पेट्रोलियम कच्चे तेल, हाई स्पीड डीजल, मोटर स्प्रिट (आमतौर पर पेट्रोल के रूप में जाना जाता है), प्राकृतिक गैस और एविएशन टर्बाइन फ्यूल पर जी. एस.टी. लगाया जाएगा;

(iv) मॉडल जी.एस.टी. कानून, करारोपण के सिद्धांत, आईजी.ए स.टी. का संविभाजन और वे सिद्धांत जो आपूर्ति स्थल को निर्धारित करते हैं;

(v) कुल बिक्री की वह सीमारेखा जिसके नीचे वस्तुओं और सेवाओं को जी.एस.टी. से छूट दी जा सकती है;

(vi) वह दरें जिनमें जी.एस.टी.बैंड सहित न्यूनतम तय दरें शामिल हैं;

(vii) प्राकृतिक आपदा या आपदा के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए कोई विशेष दर या निर्धारित अवधि के लिए तय की गई दरें;

(viii) उत्तर–पूर्वी राज्यों, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के संबंध में विशेष प्रावधान; तथा

(ix) जी.एस.टी. से संबंधित कोई अन्य मामला, जिसपर परिषद निर्णय ले सकती है;

25.8.1 जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णय

संविधान का (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 प्रावधान करता है कि जी.एस. टी. परिषद का प्रत्येक निर्णय बैठक में कम से कम कुल उपस्थित सदस्यों के 3/4 के बहुमत से मतदान करने के बाद लिया जाएगा। बैठक में कुल डाले गये मतों के 1/3 हिस्से का महत्व केंद्र सरकार के मतों का और बाकी सभी राज्य सरकारों का एक साथ मिलकर कुल डाले गये मतों का 2/3 हिस्से का महत्व होगा। जी.एस.टी. परिषद के सदस्यों की कुल संख्या में से आधे के साथ बैठकों का कोरम गठित होगा।

25.8.2 न्यूतनतम इंटरफेस

जीएसटी के अंतर्गत करदाताओं तथा कर अधिकारियों के बीच न्यूटनतम फिजिकल इंटरफेस की जरूरत होगी । इस संबन्धि में कुछ महत्व पूर्ण प्रावधान निम्नगलिखित हैं :

(क) केन्द्र एवं राज्य सरकारों से संबन्धित अधिकारियों का परस्पर सशक्तिकरण (क्रास–एम्पावरमेंट) होगा । सीजीएसटी के अधिकारी को एसजीएसटी के अधिकारी के रूप में एवं विलोमत: (वाइस–वर्सा) कार्य करने हेतु अधिकार दिया जायेगा ।

(ख) पंजीकरण ऑनलाइन दिया जाएगा एवं करदाता को पंजीकृत मान लिया जाएगा, यदि कर प्रशासन द्वारा, जिन्हें आवेदन की जाँच आवंटित की गई है, 3 सामान्यर कार्य दिवसों के अन्दर आवेदक को कोई कमी सूचित नहीं की जाती है । ऐसा आवंटन केन्द्र एवं राज्य कर प्रशासन के बीच बारी–बारी से किया जाना है ।

(ग) हर करदाता स्वयं अपने देय दर का मूल्यांकन (स्व–निर्धारण) करेगा एवं इसे सरकार के खाते में जमा कराएगा । करदाता द्वारा फाइल की गई विवरणी (रिटर्न) को स्व–निर्धारण माना जाएगा ।

(घ) कर का भुगतान इलेक्ट्रॉनिक तरीके से इंटरनेट बैंकिंग अथवा क्रेडिट/डेबिट कार्ड के माध्यम से या रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट (आर.टी.जी.एस.) अथवा नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर (नेफ्ट) के द्वारा किया जाएगा । छोटे करदाताओं को बैंक के काउंटर पर कर का भुगतान करने की अनुमति होगी । कर भुगतान के लि सभी चालान गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स नेटवर्क (जी.एस.टी.एन.)पर ऑनलाइन तैयार किए जाएँगे ।

(ड.) कर प्राधिकारियों से बिना किसी मुलाकात/ सहायता के, करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से अपने किये गए प्रदायों का विवरण उपलब्ध कराएगा । प्राप्त किये गए प्रदायों के विवरण को, उनके सादृश्य् प्रदायकर्ताओं द्वारा फाइल किए गए प्रदाय विवरण से स्वयं भर लिया जाएगा ।

(च) आवक एवं जावक प्रदायों, आईटी.सी. का लिया गया क्रेडिट, देय कर, भुगतान किए गए कर और अन्य. निर्धारित विवरणियों का मासिक रिर्टन करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से प्रस्तुत करेगा । कम्पोजीशन करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से तिमाही रिटर्न फाइल करेगा । भूलवश/गलत प्रस्तुरत किए गए ब्यौरों को आगामी वर्ष की सितम्बर माह के रिटर्न फाइल करने की अंतिम तारीख अथवा वार्षिक रिटर्न फाइल करने की वास्तविक तारीख में से, जो भी पहले हो, एक करदाता स्वयं संशोधित कर सकता है।

(छ) परस्पैर मेल नहीं खाने वाले बीजकों के लिए इनपुट कर प्रत्यय का रिवर्सल एवं रिक्लेम करदाता से संपर्क किए बगैर जी.एस.टी.एन. पोर्टल पर इलेक्ट्रॉनिक तरीके से किया जाएगा । साथ ही साथ, यह इलेक्ट्रॉनिक पद्धति नकली बीजकों अथवा एक ही बीजक के आधार पर दुबारा इनपुट कर प्रत्यय लेने के प्रयास को रोकेगा ।

(ज) करदाताओं को इलेक्ट्रॉनिक रूप में लेखे एवं अन्य रिकार्ड रखने की अनुमति दी जाएगी।

25.9 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत आयात व निर्यात

25.9.1 जी.एस.टी. के अंतर्गत आयात

वस्तुओं और सेवाओं के आयात को अंतर–राज्य आपूर्ति के रूप में माना जाएगा और देश में वस्तुओं और सेवाओं के आयात पर आई.जी.एस.टी. लगाया जाएगा। कर की घटना का गतंव्य सिद्धांत पालन करेंगे और एस.जी.एस.टी. के मामले में कर राजस्व उस राज्य द्वारा प्राप्त किया जायेगा जहां आयातित वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग किया जा रहा है। वस्तुओं और सेवाओं के आयात पर पिछले चरण में भुगतान किया गया जी.एस.टी. कर पूरा और सारा (full and final) सेट–ऑफ (वापसी) पुनः प्राप्त हो जाएगा।

25.9.2 जी.एस.टी. के अंतर्गत निर्यात

निर्यात को शून्य दर की आपूर्ति के रूप में माना जाएगा। वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात पर कोई कर देय नहीं होगा, हालांकि इनपुट टैक्स क्रेडिट पर जमा सुविधा उपलब्ध रहेगी और उसे निर्यातकों को रिफंड कर दिया जाएगा। जी.एस.टी. के अंतर्गत संरचना योजना (composite scheme) का क्या कार्यक्षेत्र वे छोटे करदाता जिनकी एक वित्तीय वर्ष में टर्नओवर (50 लाख रुपए) तक है, संरचना कर के पात्र होंगे। इस योजना के अंतर्गत, एक कर दाता बिना आई.टी.सी. लाभ लिये एक वित्तीय वर्ष में अपनी टर्नओवर के प्रतिशत के रूप में कर का भुगतान करता है। सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के लिए कर की सीमारेखा

(threshold) की दर (1 प्रतिशत) से कम नहीं होगी। संरचना का विकल्प चयन करने वाला करदाता अपने ग्राहकों से किसी भी प्रकार का कर वसूल नहीं करेगा। वह करदाता जो अंतर–राज्य आपूर्ति कर रहा है या रिवर्स चार्ज आधार पर कर का भुगतान करता है संरचना योजना का पात्र नहीं होगा।

25.10 आंकलन और लेखा–परीक्षण

अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति एक कर अवधि के लिये स्वयं अपने देय कर का आंकलन करने के लिये जिम्मेदार होगा और इस तरह मूल्यांकन के बाद उसे धारा 27 के अंतर्गत रिटर्न दाखिल करना आवश्यक होगा। चूंकि एक करदाता को अपने स्वयं मूल्यांकन आधार पर कर का भुगतान करना पड़ता है, अस्थायी आधार पर कर के भुगतान का अनुरोध करदाता से प्राप्त होना चाहिये जिसे सक्षम अधिकारी द्वारा अनुमति दी जाएगी। दूसरे शब्दों में, कोई भी कर अधिकारी स्वप्रेरणा से अस्थायी आधार पर कर भुगतान के आदेश नहीं दे सकता। यह एम.जी.एल. की धारा 44 द्वारा संचालित है। अस्थायी आधार पर कर का भुगतान तभी किया जा सकता है जब सक्षम अधिकारी उसे एक आदेश के माध्यम से इसकी अनुमति दे देता है। इस उद्देश्य के लिए, कराधीन व्यक्ति को सक्षम अधिकारी को लिखित अनुरोध देना होगा, जिसमें वह अस्थायी आधार पर कर भुगतान करने का कारण बताएगा। कराधीन व्यक्ति द्वारा इस तरह के अनुरोध केवल ऐसे मामलों में किये जा सकते हैं जहां जहां वह निम्न निर्धारित करने में असमर्थ है:

क) उसके द्वारा आपूर्ति की जाने वाली वस्तुओं या सेवाओं के मूल्य, या

ख) उसके द्वारा आपूर्ति किये जाने वाली वस्तुओं या सेवाओं के कर की दर।

ऐसे मामलों में कराधीन व्यक्ति को एक निर्धारित प्रपत्र में एक प्रतिज्ञापत्र निष्पादित करना होगा, और इस तरह की जमानत या सुरक्षा सहित जैसा सक्षम अधिकारी उचित समझता है।

25.11 प्रतिदाय/रिफंड

प्रतिदाय/रिफंड के बारे में एम.जी.एल. की धारा 38 में चर्चा की गई है। प्रतिदाय/रिफंड में भारत से बाहर विदेशों में निर्यात की गई वस्तुओं और/या सेवाओं पर कर की वापसी या भारत से बाहर विदेशों में निर्यात की गई वस्तुओं और/या सेवाओं में प्रयोग किया गया कच्चा माल/इनपुट या इनपुट सेवाएं, या उन वस्तुओं और/या सेवाओं पर कर की वापसी जिन्हें निर्यात माना गया है, या धारा 38(2) के अंतर्गत प्रदान किये अप्रयुक्त इनपुट टैक्स क्रेडिट शामिल हैं।

एम.जी.एल. की धारा 38 के स्पष्टीकरण में दिए अनुसार संबंधित व्यक्ति को प्रासंगिक तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के भीतर आवेदन दाखिल करना आवश्यक है।

प्रतिदाय/रिफंड स्वीकृत करने की कोई समय सीमा सभी मामलों में 90 दिन है, सिवाय उन मामलों के जो, कुछ निर्यात का श्रेणियों के लिए है, जैसे कि धारा 38 की उप–धारा (4ए) में निर्दिष्ट किया गया है और उनके प्रतिदाय/रिफंड का दावा

80 प्रतिशत की हद तक लौटाने योग्य है। यदि प्रतिदाय/रिफंड तीन महीने के भीतर स्वीकृत नहीं किया जाता, तब ऐसी स्थिति में विभाग द्वारा ब्याज का भुगतान होगा।

25.11.1 इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट)

करदाता को अपने विवरणी (रिटर्न) में, इनपुट पर भुगतान किए गए कर का स्व–निर्धारित क्रेडिट (इनपुट कर प्रत्यनय) लेने की अनुमति है । करदाता नेगिटिव लिस्ट् में विनिर्दिष्टत कुछ मदों के अलावा सभी माल और सेवाओं पर भुगतान किए गए कर का क्रेडिट ले सकता है और उनका उपयोग आउटपुट टैक्स के भुगतान के लिए कर सकता है । इनपुट पर

भुगतान किए गए कर का क्रेडिट वहाँ लिया जा सकता है जहाँ इनपुटों का उपयोग करदाता अपने कारोबार के दौरान या उसे अग्रसर करने अथवा कर योग्यअ प्रदायों के लिए करता है । केन्द्र सरकार और अनेक राज्य सरकारों द्वारा कैपिटल गुड्स की पावती पर, एक से अधिक किश्तों में, इनपुट कर प्रत्यय की अनुमति देने के वर्तमान प्रावधानों के विपरीत जी.एस.टी. प्रावधान पूरे इनपुट कर का एक बार प्रत्यय (क्रेडिट) लेने की अनुमति देते हैं । ऐसे इनपुट कर प्रत्यय को आगे जारी रखा जाएगा जिसका उपयोग नही ंकिया जा सका है। ग्रुप कंपनियों के बीच सेवाओं पर इनपुट सर्विस डिस्ट्रीब्यूंटर (आई.एस.डी.) की व्यवस्था के द्वारा इनपुट कर प्रत्यय के वितरण की सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी ।

25.11.2 धन वापसी (रिफंड)

ऑनलाइन धनवापसी का दावा प्रस्तुत करने की समय–सीमा को एक वर्ष से बढ़ाकर दो वर्ष किया गया है । पूर्ण आवेदन की पावती के 60 दिन के भीतर धनवापसी की मंजूरी प्रदान की जाएगी । निर्धारित 60 दिन की अवधि के भीतर यदि धनवापसी की मंजूरी नहीं दी जाती है तो उस पर ब्याज देय होगा । यदि धनवापसी का दावा दो लाख रूपये से कम राशि का है तो दावाकर्ता के लिए साक्ष्यगत प्रमाण, यह सिद्ध करने के लिए कि उसने किसी और व्यसक्ति को यह कर भार स्थानांतरित नहीं किय है, प्रस्तुत करने की जरूरत नहीं होगी । केवल इस आशय का स्व–प्रमाणन ही पर्याप्त होगा । इनपुट कर प्रत्यय के धन वापसी की अनुमति निर्यात अथवा जहाँ इनवर्टेड ड्यूटी स्ट्रक्चर (अर्थात जहाँ आउटपुट पर लगाए गए कर की दर, इनपुट पर लगाए गए कर की दर से कम है) के कारण क्रेडिट जमा हुआ है, के मामलों में होगी ।

25.11.3 माँग (डिमांड्स)

कर विवादों के लिए सनसेट क्लॉज की एक नई अवधारणा को लागू किया गया है । इसमें यह प्रावधान किया गया है कि सामान्य मामलों में, वार्षिक रिटर्न फाइल करने के तीन वर्ष के भीतर अधिनिर्णयन आदेश जारी कि जाएगा और धोखा–धड़ी जानबूझकर छिपाए गए तथ्यों के मामलों में वार्षिक रिटर्न फाइल करने की तारीख से पाँच वर्ष की समय सीमा के पहले अधिनिर्णयन आदेश जारी किया जाना है । सामान्य मामलों में, अधिनिर्णयन आदेश जारी करने की समय सीमा से तीन महीने पहले कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा तथा धोखा–धड़ी/जानबूझकर छिपाए गए तथ्यों के मामलों में, अधिनिर्णयन आदेश जारी करने की समय सीमा से छह महीने पहले कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा । यदि लेखा–परीक्षा/जाँच पड़ताल के दौरान कम जमा किए गए कर/नहीं जमा किए गए कर को ब्याद सहित जमा करा दिया जाता है तो दण्डक शून्य अथवा काफी कम होगा ।

25.12 जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन

कोई भी व्यक्ति जो किसी आदेश या विरूद्ध पारित किये गये किसी फैसले से असंतुष्ट है उसे अपील करने का अधिकार है। ऐसा आदेश या निर्णय 'निर्णय देने वाले प्राधिकारी' द्वारा पारित किये जाने चाहिए। हालांकि, कुछ निर्णय या आदेश (धारा 93 में प्रदान किये अनुसार) अपील करने योग्य नहीं हैं।

प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल करने की क्या समय सीमा आदेश और फैसला सूचित करने के 3 महीने तय की गई है।

न्यायाधिकरण के पास अपील अस्वीकार करने के लिए शक्तियाँ उस स्थिति में होगी जब ऐसे मामलों में जहां अपील शामिल है –

- कर राशि या
- इनपुट कर क्रेडिट या

- कर में अंतर या
- इनपुट कर क्रेडिट में फर्क है या
- जुर्माने की राशि,
- शुल्क की राशि या
- दंड की राशि का आदेश

रूपये 1,00,000/– से कम है, न्यायाधिकरण के पास कथित अपील को अस्वीकार करने की स्वेच्छा है। (एम.जी.एल. की धारा 82(2))

25.13 निरीक्षण, तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी

एम.जी.एल. के अंतर्गत शब्द "निरीक्षण" एक नया प्रावधान है। यह तलाशी की तुलना में एक नरम प्रावधान है जो अधिकारियों को कराधीन व्यक्ति के व्यापार के किसी भी स्थान पर और इसके साथ ही उस व्यक्ति जो माल के परिवहन में संलग्न है या जो स्वामी है या एक मालगोदाम या गोदाम का ऑपरेटर है उस तक पहुंच बनाने में सक्षम करता है। एम.जी.एल. की धारा 60 के अनुसार, निरीक्षण का कार्यान्वयन सी.जी.एस.टी/एस.जी.एस.टी के सयुंक्त आयुक्त या उससे ऊपर के रैंक के एक अधिकारी द्वारा लिखित अधिकार पत्र के अतं गर्त किया जा सकता है। संयुक्त आयुक्त या उससे उच्च अधिकारी इस तरह के प्राधिकार सिर्फ तभी दे सकते हैं जब उनके पास यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि संबंधित व्यक्ति ने निम्न में से एक किया है:

i. आपूर्ति के किसी लेनदेन को दबाया है;
ii. हाथ में वस्तुओं के स्टॉक को दबाया है;
iii. ज्यादा इनपुट कर क्रेडिट का दावा किया है;
iv. कर के लिए सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टी. अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन किया है;
v. एक ट्रांसपोर्टर या गोदाम के मालिक के पास कुछ माल रखा है जिसपर कर का भुगतान बचाया गया है या अपने खातों या माल को इस तरीके से किसी स्थान पर रख दिया है कि कर से बचने की संभावना हो।

25.14 अपराध और दंड अभियोजन और संयुक्तिकरण

मॉडल जी.एस.टी. कानून अध्याय XVI अपराध और दंड को संहिताबद्ध करता है। अधिनियम की धारा 66 में 21 अपराधों को सूचीबद्ध किया गया है, धारा 8 के अंतर्गत निर्धारित दंड के अतिरिक्त कराधीन व्यक्ति द्वारा आपसी निपटारा प्राप्त करने के लिए जो इसका हकदार नहीं है। कथित अपराध इस प्रकार हैं:–

1) चालान/बिल के बिना आपूर्ति करना या झूठे/गलत बिल/चालान के साथ आपूर्ति करना;
2) बगैर आपूर्ति किए चालान/बिल जारी करना;
3) एकत्रित किया गया कर तीन महीने से भी अधिक अवधि से जमा नहीं करना;
4) एकत्रित किया गया कर एम.जी.एल. के उल्लंघन में तीन महीने से भी अधिक अवधि से जमा नहीं करना;
5) गैर–कटौती या स्रोत पर कर की कम कटौती करना या धारा 37 के अंतर्गत स्रोत पर कर कटौती ;ज्वैद्ध की रकम जमा नहीं करना;

6) गैर–संग्रह या कम–संग्रह या धारा 43सी के अंतर्गत स्रोत पर एकत्रित कर का भुगतान नहीं करना;
7) वस्तुओं और/या सेवाओं की वास्तविक प्राप्ति के बिना इनपुट कर क्रेडिट का लाभ प्राप्त/उपयोग करना;
8) धोखे से कोई प्रतिदाय/रिफंड प्राप्त करना;
9) धारा 17 के उल्लंघन में इनपुट सेवा वितरक से इनपुट कर क्रेडिट का लाभ उठाना/उपयोग करना;
10) झूठी जानकारी या झूठे वित्तीय अभिलेख बनाकर प्रस्तुत करना या कर के भुगतान से बचने के लिए फर्जी खाते/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
11) कर के लिए उत्तरदायी होने के बावजूद पंजीकरण कराने में विफलता;
12) पंजीकरण के लिए अनिवार्य क्षेत्रों के बारे में झूठी जानकारी प्रस्तुत करना;
13) किसी अधिकारी को उसके कर्तव्य का निर्वहन करने में रूकावट डालना या रोकना;
14) निर्धारित दस्तावेजों के बगैर माल परिवहन करना;
15) कारोबार के आंकड़े दबाना जिससे कर की चोरी की जा सके;
16) अधिनियम में निर्दिशट की गई विधि अनुसार खातों/दस्तावेज बनाए रखने में विफलता या अधिनियम में निर्दिष्ट अवधि के लिये खातों/दस्तावेज बनाए रखने के लिए विफल रहना;
17) अधिनियम/नियम के अनुसारएक अधिकारी द्वारा जानकारी/दस्तावेज की मांग पर विफल रहना या किसी भी कार्यवाही के दौरान झूठी जानकारी/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
18) किसी भी जब्ती के लिए उत्तरदायी माल की आपूर्ति/परिवहन/भंडारण;
19) किसी अन्य व्यक्ति के जी.एस.टी.आई.एन. का उपयोग कर चालान/बिल या दस्तावेज जारी करना;
20) किसी भी सामग्री से छेड़छाड़/साक्ष्य नष्ट करना;
21) हिरासत/जब्त/अधिनियम के अंतर्गत संलग्न माल का निपटान/छेड़छाड करना;

धारा 66(1) में प्रावधान करती है कि कोई भी कराधीन व्यक्ति है जिसने धारा 66 में उल्लिखित कोई अपराध किया हे उसे दंड लगाकर निम्नलिखित में सबसे अधिक राशि का भुगतान करना होगाः

- करवंचना की राशि, धोखे से रिफंड के रूप में प्राप्त राशि, ऋण के रूप में लाभ उठाया, या कटौती नहीं करना या एकत्र करना या कम कटौती करना या थोड़ा कम एकत्र करना, से संबंधित राशि या
- 10,000/– रुपए की राशि

इसके अतिरिक्त धारा 66(2) में प्रावधान है कि कोई भी पंजीकृत कराधीन व्यक्ति जो बार–बार कम कर का भुगतान करता है वह सजा के लिए उत्तरदायी है जो निम्न में सबसे अधिक होगी :

- कम भुगतान किए कर का 10 प्रतिशत या
- 10,000/– रुपय

एम.जी.एल. की धारा 70 के अंतर्गत, वस्तुएं/माल जब्ती के लिये उत्तरदायी होगा यदि कोई व्यक्तिः

- इस अधिनियम के किसी प्रावधान के उल्लंघन के परिणाम में माल की आपूर्ति और उस कथित उल्लंघन के परिणामस्वरूप अधिनियम के अंतर्गत कर की चोरी करता है, या

- अधिनियम के अंतर्गत आवश्यक तरीके से वस्तुओं/माल का सही खाते नहीं रखता है, या
- बिना पंजीकरण का आवेदन किये कर के लिये उत्तरदायी वस्तुओं की आपूर्ति करता है, या
- कर भुगतान से बचने के इरादे के साथ अधिनियम/नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है।

एम.जी.एल. की धारा 73 अधिनियम के अंतर्गत कुछ प्रमुख अपराधों को सूचीबद्ध किया गया है जो आपराधिक कार्यवाही और अभियोगप्रारम्भ करने का आदेश देते हैं। नीचे 12 ऐसे प्रमुख अपराधों को सूचीबद्ध किया गया हैः

1) बिना चालान/बिल जारी किये आपूर्ति करना या झूठे/गलत चालान/बिल जारी करना;
2) बिना आपूर्ति किये चालान/बिल जारी करना;
3) 3 महीने से भी अधिक अवधि के लिये एकत्रित किये कर का भुगतान ना करना;
4) अधिनियम का उल्लंघन करते हुए 3 महीने से भी अधिक समय के लिये एकत्र किये गये किसी कर को जमा नहीं करना है;
5) बिना वस्तुओं/माल और/या सेवाओं की वास्तविक प्राप्ति किए इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाना या उपयोग करना;
6) किसी भी प्रकार की धोखाधड़ी से रिफंड प्राप्त करना,
7) झूठी जानकारी प्रस्तुत करना या वित्तीय अभिलेखों की जालसाझी करना या कर के भुगतान से बचने के लिए फर्जी खातों/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
8) किसी अधिकारी को उसके कर्तव्यों का निष्पादन करने में अवरोध उत्पन्न करना या रोकना;
9) जब्ती के लिए उत्तरदायी वस्तुओं/माल से निपटना दूसरे शब्दों में, जब्ती के लिए उत्तरदायी वस्तुओं/माल की रसीद, आपूर्ति, भंडारण या ढुलाई करना;
10) अधिनियम के उल्लंघन करने वाली सेवाओं की आपूर्ति प्राप्त करना/निपटना;
11) अधिनियम/नियम द्वारा आवश्यक किसी जानकारी देने में विफलता या झूठी जानकारी देना;
12) ऊपर 11 अपराधों में से किसी एक को करने का प्रयास करना या सहयोग देना।

25.15 वैकल्पिक विवाद समाधान योजना–अग्रिम विनिर्णय

जीएसटी कानून के अंतर्गत अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) के प्रावधान को जारी रखा गया है । इसकी महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नवत हैं :–

(क) वर्तमान में जितने विषयों में, अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) लेने का प्रावधान है, जी एस टी में उनसे अधिक विषयों में, एडवांस रूलिंग प्राप्त करने की अनुमति दी गई है ।

इनमें शामिल विषय हैं :– वस्तुओं/सेवाओं का वर्गीकरण, प्रदाय का समय एवं मूल्य कर की दर, इनपुट कर क्रेडिट की स्वीकार्यता, कर भुगतान की देयता, रजिस्ट्रेशन लेने की देयता और क्या कोई खास लेन–देन जी.एस.टी. कानून के अंतर्गत प्रदाय के समतुल्य हैं ।

(ख) अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग)लेने का प्रावधान केवल नए कार्यकलापों के लिए ही नहीं है बल्कि यह सुविधा माल और सेवा कर में जारी कार्यकलापों के लिए भी है ।

जी.एस.टी. कानून के अंतर्गत अपीन की सुविधा भी उपलबध कराई गई है जो अभी केन्द्रीय कानून के अंतर्गत उपलब्ध नहीं है ।

(ग) आवेदनकर्ता अथवा राजस्व विभाग यदि अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) से व्यंथित है तो अब से उन्हें एडवांस रूलिंग के रिविजन के लिए अपीलीय प्राधिकारी के सपक्ष अपील दायर करने का मौका मिलेगा । अग्रिम विनिर्णय को पहले की तुलना में, अधिक सरलता से हासिल किया जा सकेगा, क्योंमकि प्रत्येक राज्य में एक अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण और अपील प्राधिकरण होगा ।

25.16 माल और सेवा कर के अन्य प्रावधान

माल और सेवा कर के उल्लेखनीय प्रावधान निम्नववत हैं :–

i) संव्यवहार मूल्य (ट्रान्जैक्शेन वैल्यू) अर्थात बीजक मूल्य, जोकि केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क कानून के अंतर्गत वर्तमान व्यवस्था है, के आधार पर वस्तुओं के प्रदाय का मूल्य निर्धारित किया जाएगा । करदाताओं को इस बात की अनुमति दी गई है कि वे पहले की गई प्रदायों के संबन्ध में अनुपूरक अथवा संशोधित बीजक जारी करें ।

ii) कर का भुगतान करने के लिए नए तरीकों, जैसे कि क्रेडिट कार्ड एवं डेबिट कार्ड, नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर (नेफ्ट) और रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट(आर.टी.जी.एस.) को माल और सेवा कर व्यवस्था में समाविष्ट किया गया है ।

iii) ई–कॉमर्स कम्पनियों से यह अपेक्षित है कि फुल्फिल्मेंट मॉडल के अंतर्गत अपने ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्य म से की गई प्रदायों पर वे स्त्रोत पर ही सरकार द्वारा अधिसूचित दर पर कर संग्रहण करें ।

iv) जीएसटी कानून में एक मुनाफाखोरी–रोधी प्रावधान यह सुनिश्चित करने के लिए समाविष्ट किया गया है कि कर दरों में किसी भी कमी के परिणामस्वरूप ऐसी वस्तुओं/सेवाओं की कीमतों में उसी अनुरूप कमी आनी चाहिए ।

25.17 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान

संविधान (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 प्रदान करता है कि वस्तुओं और सेवाओं की परिषद या उसके कार्यान्वयन की सिफारिशों से उत्पन्न किसी भी विवाद में निर्णय देने के लिये एक मैकेनिज़्म स्थापित करेगी–

(क) भारत सरकार और एक या एक से अधिक राज्यों के बीच; या

(ख) भारत सरकार और कोई राज्य या एक से अधिक राज्य एक तरफ तथा एक या एक से अधिक राज्य दूसरी तरफ, के बीच; या

(ग) दो या अधिक राज्यों के बीच

25.17.1 अपंजीकृत व्यापारियों से माल की खरीद के मामले में क्या उलझने

माल प्राप्त करने वाला आई.टी.सी. (Input Tax Credit) प्राप्त करने में सक्षम नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, वे प्राप्तकर्ता जो संरचना योजनाओं के अंतर्गत पंजीकृत हैं रिवर्स चार्ज के अंतर्गत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होंगे।

25.18 निपटान आयोग

निपटान आयोग की स्थापना का मूल उद्देश्य इस प्रकार हैः–

1. करदाता के लिए विवाद समाधान के लिए एक वैकल्पिक माध्यम प्रदान करना;
2. विवादों में संलग्न जी.एस.टी. के भुगतान में तेजी लाने के लिए महंगी और समय लेने वाली मुकदमेबाजी की प्रक्रिया से बचना;

3. उन करदाताओं को साफ सुथरी छवि प्रस्तुत करने के लिये अवसर प्रदान करना जो कर का भुगतान करने से बचते रहे हैं;
4. करदाता को उनके कर दायित्व के मामलों के निपटान लागू करने के लिये एक मंच की सुविधा प्रदान करना, जोकि उनके द्वारा पूर्ण और समग्र कर दायित्व की घोशणा के आधार पर हो।
5. विवादों के तीव्र निपटारे को प्रोत्साहित करना और कुछ स्थितियों में व्यापार को अभियोजन की चिंताओं से मुक्ति दिलाना;

मॉडल जी.एस.टी. कानून में, केवल आई.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत निपटान आयोग का प्रावधान किया गया है। (धारा–11से 26) इसका आशय यह है कि राज्य के भीतर लेन–देन से संबंधित कर देयता के मामलों को निपटाया नहीं जा सकता। हालांकि, वहां एक संभावना यह है कि उन राज्यों के कर प्रशासन जो निपटान आयोग गठित करना चाहते हैं वह आई.जी.एस.टी. अधिनियम और सी.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किये नमूने/टेम्पलेट के आधार पर ऐसा कर सकते हैं और कथित राज्यों के लिए आईजी.ए स.टी. अधिनियम से उपलब्ध सक्षम प्रावधानों का अनुसरण कर सकते हैं।

आई.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, निपटान के लिए आवेदन करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए ताकि निपटान का मामला स्वीकार किया जा सके:

(क) आवेदक ने रिटर्न प्रस्तुत कर दिया/दी हैं, जिन्हें उसे या आई.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत प्रस्तुत करना आवश्यक था या इसकी आवश्यकता को निपटान आयोग द्वारा इन कारणों की रिकॉर्डिंग करने के बाद कि वह संतुष्ट था, खारिज कर दिया है कि रिटर्न नहीं भरने के पीछे कुछ वैध परिस्थितियां अस्तित्व में थी;

(ख) आवेदक को कर की मांग के लिए एक कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ है या आई.जी. एस.टी. अधिकारी द्वारा कर की मांग की पुश्टि जारी करने का आदेष प्राप्त हुआ है जो प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष लंबित है;

(ग) आवेदन में आवेदक द्वारा स्वीकार किये गये अतिरिक्त कर की राशि पांच लाख रुपए से अधिक है; तथा

(घ) आवेदक ने सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत उसके द्वारा स्वीकृत देय ब्याज सहित कर का अतिरिक्त भुगतान कर दिया है।

25.19 सारांश

वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में अप्रत्यक्ष कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा । जी.एस.टी. वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है। इसे विनिर्माण से अंतिम उपभोग के सभी चरणों पर कर लगाने के लिये प्रस्तावित किया जाता है और पिछले चरणों में भुगतान किये कर को अलग करने के लिये क्रेडिट प्राप्त किया जाता है।

वर्तमान में, केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय अधिकार स्पष्ट रूप से संविधान में सीमांकित किये गये हैं जिनमें संबंधित क्षेत्रों के बीच लगभग किसी तरह का ओवरलैप नही है। यह केंद्र और राज्यों के साथ एक साथ सामान्य कर आधार पर आरोपित एक दोहरा जी.एस.टी. होगा। वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी. एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा तथा राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस.टी. (एस. जी.एस.टी.) कहा जायेगा। इसी प्रकार केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवोओं की आपूर्ति पर एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है।

25.20 शब्दावली

वस्तु एंव सेवा कर : वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है।

सी.जी.एस.टी. :वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा

एस.जी.एस.टी. : वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति पर राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी.) कहा जायेगा।

25.21 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में ....कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा ।
2. केवल ....पर ही कर लगाया जाएगा और कर का बोझ अंतिम उपभोक्ता द्वारा वहन किया जाएगा।
3. केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवोओं की आपूर्ति पर .... लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है।
4. वे कर दाता जिनका एक वित्तीय वर्ष में कुल कारोबार .... तक है उन्हें कर से मुक्त किया जाएगा।
5. निर्यात को .... दर की आपूर्ति के रूप में माना जाएगा। वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात पर कोई कर देय नहीं होगा, हालांकि इनपुट टैक्स क्रेडिट पर जमा सुविधा उपलब्ध रहेगी और उसे निर्यातकों को रिफंड कर दिया जाएगा।

25.22 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अप्रत्यक्ष 2. मूल्य संवर्धन (value addition) 3. एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) 4. (10 लाख रूपये) 5. शून्य

25.23 स्वपरख प्रश्न

1. जी एस टी के अर्थ की व्याख्या कीजिए।
2. जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर कौन–कौन से है ?
3. जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं कौन–कौन सी है ?
4. प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी कौन है ?
5. माल और सेवा कर के लाभों का वर्णन कीजिए ।
6. जीएसटी की मुख्य विशेषताएं कौन–कौन सी है ?
7. जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों का वर्णन कीजिए ।
8. जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन का वर्णन कीजिए ।
9. निपटान आयोग क्या है ?
10. जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान कैसे किया जाता है ?

25.24 संदर्भ पुस्तकें

केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड, नई दिल्ली (**संकलित**)।